बालकाण्ड ३-६८ = ६६
अयोध्या ६९-१२२ = ५०
अरण्य १२५-१७० = ४५
किष्किन्धा १७३-२१० = ३८
सुन्दर २१३-२४६ = ३४
युद्धकाण्ड २४८-४७१ = २२८
४६४

रंगनाथ रामायण

[राजा गोनबुद्ध-रचित मूल तेलुगु से अनूदित]

अनुवादक

श्री .ए० सी० कामाक्षि राव

सम्पादक

श्रीअवधनन्दन

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना

प्रकाशक
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद
पटना

१८८२ शकाब्द; २०१७ विक्रमाब्द; १९६१ खृष्टाब्द

सजिल्द मूल्य ६.५०

मुद्रक
बेनी माधव प्रेस
राँची

वक्तव्य

प्रस्तुत ग्रंथ 'रंगनाथ रामायण' को पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हुए हमें बड़ा हर्ष हो रहा है। परिषद् का मूल उद्देश्य जहाँ अधिकारी विद्वानों द्वारा मौलिक ग्रंथों का प्रणयन कराकर प्रकाशित करना रहा है, वहाँ देश और विदेश की समृद्ध भाषाओं के उत्कृष्ट ग्रंथों का हिन्दी-अनुवाद कराकर उनके प्रकाशनों से हिन्दी-साहित्य की समृद्धि में योगदान भी रहा है। इस प्रकार, परिषद् से अबतक जर्मन भाषा से रिचर्ड पिशल-लिखित 'प्राकृत भाषाओं का व्याकरण' तथा फ्रेंच भाषा से मारिस मेटरलिंक-रचित नाटक 'नीलपंछी' के अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। इन दोनों के अतिरिक्त संस्कृत-साहित्य से 'काव्यमीमांसा' तथा 'कथासरित्सागर' (प्रथम खंड) के अनुवाद मूल संस्कृत के साथ भी परिषद्-द्वारा प्रकाशित हुए हैं। 'कथासरित्सागर' का दूसरा खण्ड इसी साल प्रकाशित होनेवाला है और उसके अन्तिम खण्ड का अनुवाद-कार्य सम्पन्न हो रहा है। पाश्चात्य भाषाओं के साहित्य के अलावा परिषद् ने संविधान द्वारा स्वीकृत चौदह भाषाओं और उनके साहित्य पर परिचयात्मक निबन्ध उन-उन भाषाओं के अधिकारी विद्वानों से लिखवाकर, उनके संग्रह के रूप में 'चतुर्दश भाषा-निबन्धावली' प्रकाशित की है। तदुपरान्त भारत की प्रमुख लोकभाषाओं में से पन्द्रह लोकभाषाओं और उनके साहित्य पर निबन्ध लिखवाकर 'पंचदश लोकभाषा-निबन्धावली' नाम का संग्रह प्रकाशित किया है। उपर्युक्त पुस्तकों का हिन्दी-संसार में अच्छा स्वागत हुआ—यह हमारे लिए प्रसन्नता की बात है।

किन्तु, भारतीय भाषाओं के साहित्य से अनुवाद द्वारा हिन्दी-भाण्डार को भरने की दिशा में परिषद् ने संकल्प किया था कि सर्वप्रथम दक्षिण भारत की चार—तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम—भाषाओं के साहित्य से एक-एक ग्रंथ चुनकर अनूदित कराया जाय। तदनुसार ही तमिल और तेलुगु के एक-एक ग्रंथ और उसके अनुवादक का चुनाव किया गया और अनुवाद के काम सौंपे गये। इस योजना में हमें तेलुगु की 'रंगनाथ रामायण' के अनुवाद की पाण्डुलिपि सबसे पहले प्राप्त हुई और आज हम उसी रामायण को आपके सामने उपस्थित करने में समर्थ हो सके हैं। हमें प्रसन्नता है कि इसके बाद ही हम तमिल का 'कंब रामायण' का हिन्दी-अनुवाद भी यथाशीघ्र प्रकाशित कर हिन्दी-संसार के सामने रख सकेंगे।

मूल 'रंगनाथ रामायण' के सौष्ठव के सम्बन्ध में मद्रास-विश्वविद्यालय के विद्वान् रीडर तथा तेलुगु-विभाग के अध्यक्ष श्रीनिडदवोलु वेंकट राव ने अपने परिचय में जो उद्गार प्रकट किये हैं, वे इसी ग्रंथ में अन्यत्र देखने को मिलगे। फिर, इस ग्रंथ के अनुवादक श्री ए० सी० कामाक्षि राव ने भी, अपनी भूमिका में, तेलुगु-साहित्य का विवेचन करते हुए इस ग्रंथ की महत्ता पर जो कुछ प्रकाश डाला है, वह अलम् है। उसके बाद इस

सम्बन्ध में और कुछ लिखना पिष्टपेषण ही होगा। हम तो कवल इतना ही कहग कि दक्षिण भारत के प्राचीन एवं मूर्धन्य साहित्य की गरिमा एवं आभा से हिन्दी-साहित्य के भाण्डार के भरने की दिशा में हमारा यह विनम्र अनुष्ठान नगण्य न समझा जायगा।

इस अवसर पर हम सबसे पहले श्री म० सत्यनारायण को साधुवाद दिये विना नहीं रह सकते कि उन्होंने परिषद् को इस दिशा में अपने विचार और सुझाव देकर अत्यधिक उत्साहित किया है। प्रारंभ में हमें उनका सहयोग न प्राप्त होता, तो शायद हम इस ग्रंथ को तना शीघ्र प्रकाश में न ला सकते। साथ ही हम दक्षिण भारत के गाँव-गाँव में हिन्दी की धूनी रमानेवाले श्रीअवधनन्दनजी के कृपापूर्ण सहयोग और साहाय्य को शब्दों में बाँधना नहीं चाहते। इसम रंचमात्र भी अत्युक्ति नहीं कि उनके प्रयत्न का ही यह परिणाम है कि हम इस अनुवाद को हिन्दी-जगत् के सामने ला सके हैं। उन्होंने अनुवादक से सारी पाण्डुलिपि प्राप्त कर पढ़ जाने की कृपा की, साथ ही सम्पादन भी यथासाध्य किया। निःसंकोच रूप से हम यह कह सकते हैं कि इस कार्य में साहित्य के प्रति उनका अदम्य उत्साह और परम पवित्र निष्ठा गौरव एवं ईर्ष्या की वस्तु है। हम श्रीनिडदवोलु वेंकट राव के प्रति अतिशय कृतज्ञ हैं कि उनका 'परिचय' हमें इस ग्रंथ के लिए उपलब्ध हो सका। अनुवादक और सम्पादक के साथ-साथ हम उनका भी आभार स्वीकार करते हैं, जिनका साहाय्य हमें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्राप्त हो सका है।

आशा है, सुधी पाठकों को रंगनाथ रामायण के अनुशीलन से प्रसन्नता होगी और वे देख सकेंगे कि वाल्मीकि रामायण एवं तुलसीदास के रामचरितमानस से यह किन-किन बातों में एक और किन-किन बातों में भिन्न है, और यह अनुभव करेंगे कि भाषा और वेश-भूषा की भिन्नता होते हुए भी हमारे सम्पूर्ण देश की मूल संस्कृति किस प्रकार सर्वथा एक, अभिन्न ए अखण्ड है।

७-२-६१

भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'
संचालक

परिचय

तेलुगु-साहित्य में राम-कथा को अग्रस्थान प्राप्त हुआ है और आज तेलुगु में रामकथा से संबंधित रचनाओं की संख्या लगभग तीन-चार सौ तक है। पुराण, प्रबंध, द्विपद, शतक, वचन, यक्षगान, दंडक, पद, गीत एवं संकीर्त्तन--मतलब यह कि आज तेलुगु में महाकाव्य जैसे शास्त्रीय रूप से अपढ़ ग्रामीण जनता के द्वारा गाये जानेवाले लोकगीतों तक में रामकथा उपलब्ध है। साहित्य-रचना के रूप में रामकथा-साहित्य का प्रारंभ तेरहवीं सदी में हुआ और उस समय से उस साहित्य की उत्तरोत्तर उन्नति होती गई। इस साहित्य को प्रेरणा देनेवालों में भद्राचलम् में विराजमान श्रीरामचन्द्र के अनन्यभक्त रामदास तथा अमरगायक भक्त त्यागय्या सर्वश्रेष्ठ हैं।

तेलुगु-साहित्य के सभी युगों में रामकथा विशेष आकर्षण की वस्तु रही है। आज भी जब तेलुगु-साहित्य में भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियाँ जन्म ले चुकी हैं और जन्म ले रही हैं, तेलुगु-भाषा के कई प्रसिद्ध आधुनिक कवियों ने रामकथा को शास्त्रीय पद्धति पर लिखा है और आज भी कुछ कवि इस कथा को लिखने में लगे हैं। यह इस बात को प्रमाणित करता है कि राम-भक्ति तेलुगु-जनता के हृदय को ही नहीं, बल्कि उनकी प्रतिभा पर भी अपनी अमिट छाप छोड़ चुकी है। प्राच्य तथा प्रतीच्य विद्वान् रामायण का अध्ययन आधुनिक ढंग से करने लगे हैं। अतएव आधुनिक विचार एवं सांस्कृतिक परिपार्श्व की दृष्टि से इस महाकाव्य की व्याख्या करना आवश्यक है। चूँकि दक्षिण की भाषाओं में भी संस्कृत-रामायण की कथा अनुवादों के रूप में अथवा मौलिक रचना के रूप में आ गई है, हमें विचार करना होगा कि आर्य एवं आर्येतर संस्कृतियों का समन्वय करने में रामायण का क्या स्थान है और रामायण भारत की सामासिक संस्कृति का प्रतीक कैसे बनी हुई है आदि।

'रंगनाथ रामायण' एक द्विपद-काव्य है, जो तेलुगु की रामकथा-संबंधी कृतियों में अत्यंत लोकप्रिय है। उसकी सरल, शुद्ध तथा प्रवाहमयी देशी शैली ने पंडित एवं पामर दोनों को समान रूप से आकृष्ट किया है। इस कथा के कुछ भाग 'तोलुबोम्म लाटा' (एक विशेष प्रकार की पुतलियों का नृत्य) जैसी लोक-कला के कार्य-क्रमों में भी गाये जाते हैं और यह इस बात को स्पष्ट करता है कि कवि राम की अमर-कथा को तेलुगु-हृदय तक पहुँचाने में किस प्रकार सफल हुए हैं।

चूँकि इस कृति का नाम 'रंगनाथ रामायण' है, सहज ही यह भ्रम हो जाता है कि इसका कवि 'रंगनाथ' नामक कोई व्यक्ति रहा होगा। किन्तु, इस विषय पर

जो शोध-कार्य हुआ है, उससे यह प्रमाणित हो गया है कि तेरहवीं सदी में बूदपुर (ऐतिहासिक बोथान नगर) के आसपास राज करनेवाले सूर्यवंशी राजा विट्ठलराजु के आदेशानुसार उनके पुत्र गोनबुद्ध राजा ने इसकी रचना की है। इसका उल्लेख कवि स्वयं काव्य के प्रारंभ में कर चुके हैं। प्रकाशित एवं अप्रकाशित शिलालेखों के आधार पर यह प्रमाणित हो चुका है कि इस काव्य की रचना लगभग १३८० ई० में हुई थी।

'रंगनाथ रामायण' की विशेषता यह है कि उसकी रचना उस समय तक जनता में प्रचलित राम-कथा के आधार पर हुई है, जो संस्कृत-रामायण से कई स्थानों में भिन्न है। यद्यपि, रामायण आर्यावर्त्त या उत्तरापथ के राजा राम की कथा है, तथापि वह परंपरागत लोक-कथाओं के रूप में सारे दक्षिण में अति प्राचीन काल से व्याप्त थी।

अब यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो चुका है कि दक्षिण की भाषाएँ, तमिल, तलुगु, कन्नड़ और मलयालम--जो संस्कृत भाषा-परिवार से सर्वथा भिन्न परिवार की है-- अपनी प्रारंभिक अवस्था में संस्कृत से किसी प्रकार का संबंध नहीं रखती थीं। ऐसी दशा में यह आशा नहीं की जा सकती कि इन भाषाओं के बोलनेवाले वाल्मीकि रामायण की मूलकथा का ज्ञान प्राप्त करे। उन्होंने स्थूल रूप में कथा को ग्रहण किया होगा और भिन्न-भिन्न व्यक्तियों ने भिन्न-भिन्न युगों में उस कथा का अपने ढंग से मोड़-तोड़कर प्रचार किया होगा। यह कोई आश्चर्य नहीं, यदि घर-घर में इस कथा का प्रचार हो गया हो और उत्सुक बालक-बालिकाओं के मनोरंजन के लिए तथा उनमें राम तथा उनकी पत्नी सीता के आदर्श जीवन में प्रतिबिंबित आर्य-धर्म को प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से घर के बड़े-बूढ़े, रामायण के इतिवृत्त का छोटी-छोटी कहानियों के रूप में प्रसार किया हो। हमारे यहाँ ऐसी प्रथा रही भी है। महाकवि कालिदास अपने मेघदूत में कहते हैं कि कौशांबी नगर में ग्रामवृद्ध अपने पोते-पोतियों को उदयन की कथा सुनाते थे। स्वयं कालिदास-कृत रघुवंश में वर्णित राम-कथा कुछ स्थानों में मूलकथा से भिन्नता रखती है।

राम की कथा त्रेतायुग की होने के कारण उदयन की कथा से भी अधिक प्राचीन है और कदाचित् उसने द्राविड़ों के हृदय एवं प्रतिभा पर अमिट प्रभाव डाला होगा। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि रामायण के दो प्रधान पात्रों में रावण दक्षिण का था। लंका का राज्य, राम के विजय प्राप्त करने के पश्चात् भी बना रहा और विभीषण उसका पालन करता रहा। आधुनिक युग की भाँति यदि राम भी लंका को जीतने के पश्चात् अपने किसी भाई को अपनी तरफ से लंका का राज्य चलाने के लिए नियुक्त करते, तो कदाचित् दक्षिणापथ का इतिहास कुछ बातों में भिन्न होता।

तेलुगु-भाषा तमिल के मुकाबले में प्राचीन न होने पर भी कुछ हद तक प्राचीन हीं कही जा सकती है; उस भाषा के बोलनेवालों में बहुत समय तक वाल्मीकि रामायण की अपेक्षा लोक-कथाओं के द्वारा प्रचलित राम-कथा का ही आदर होता रहा। क्रमशः तेलुगु-भाषाभाषी संस्कृत के प्रति आकृष्ट हुए और उस भाषा के प्रकांड पंडित बन गये। 'रंगनाथ रामायण' और 'भास्कर रामायण' के कवि संस्कृत के महान् पंडित थे और

उन्होंने अपनी कृतियों में स्पष्ट कहा भी है कि उनकी कृतियाँ वाल्मीकि रामायण को आधार मानकर चलती हैं। फिर भी, वे जनता के बीच प्रचलित रामकथा की सर्वथा उपेक्षा नहीं कर सके।

कहा जाता है कि सन् १३१० ई० में 'कवित्रय'[१] के प्रसिद्ध कवि एर्रना ने मूल संस्कृत-रामायण का सही अनुवाद तेलुगु-पद्य में लिखा था। खेद है कि वह रचना आज हमें अप्राप्त है--केवल उसके कुछ एक पद्य तेलुगु के एक लक्षण-ग्रन्थ में हमें मिलते हैं। एर्रना के पश्चात् सन् १८६० ई० तक किसी और कवि ने वाल्मीकि रामायण का सही-सही अनुवाद तेलुगु में प्रस्तुत नहीं किया। सन् १८६० ई० में गोपीनाथ वेंकट कवि ने संस्कृत-रामायण का सही अनुवाद तेलुगु-पद्य में प्रस्तुत किया। उसके पश्चात् कितने ही कवियों ने अपनी प्रतिभा के अनुसार संस्कृत-रामायण का अनुवाद किया। कहने का तात्पर्य यह है कि १८६० ई० तक राम की कथा पर जो काव्य लिखे गये, उनपर लोक-कथाओं का ही अत्यधिक प्रभाव रहा।

आज के शुभ समय में, जबकि भारत की विभिन्न संस्कृतियों में आदान-प्रदान का कार्य प्रारंभ हो गया है, यह अत्यंत हर्ष की बात है कि दक्षिण के एक सुयोग्य तथा हिन्दी-तेलुगु-भाषाओं के निपुण विद्वान् श्री ए० सी० कामाक्षि राव ने, तेलुगु की अत्यंत लोकप्रिय द्विपद रामायण का अनुवाद राष्ट्रभाषा हिन्दी के गद्य में किया है, जिससे वह भारत के सभी साहित्यों तक पहुँच सके।

तेलुगु की 'रंगनाथ रामायण' अपने इतिवृत्त, भाव, कला एवं शैली के कारण तीन करोड़ तेलगु-भाषाभाषियों के हृदय में राम-भक्ति को जागरित करने में सफलता प्राप्त कर चुकी है। यदि उसका हिन्दी-अनुवाद आसेतुहिमाचल व्याप्त चालीस करोड़ भारतवासियों के हृदयों में राम-भक्ति जागरित करनेवाली प्रबल शक्ति का स्रोत बन सके, तो आश्चर्य नहीं करना चाहिए। जयहिन्द।[२]

ता० ८, शाके १८८२
चैत्र, सोमवार
२८-३-६० ई०

विद्यारत्न निडदवोलु वेंकट राव, एम्० ए०
रीडर तथा तेलुगु-विभाग के अध्यक्ष
मद्रास-विश्वविद्यालय

---

१. 'आन्ध्र महाभारत' के तीन प्रसिद्ध कवि नन्नया, तिक्कना और एर्रना 'कवित्रय' के नाम से विख्यात हैं।

२. प्रस्तुत परिचय मूल अगरेजी लेख से अनूदित।

प्रस्तावना

[१]

तेलुगु-भाषा-विदेशी पंडितों के द्वारा 'इटालियन ऑफ् दि ईस्ट' (**Italian of the East**) कही जानवाली तलुगु-भाषा, द्राविड़-भाषा-परिवार की समृद्ध एवं साहित्य-संपन्न भाषा है। वैसे तो इसके तीन नाम हैं--तेलुगु, तेनुगु, आंध्रमु; किन्तु 'तेलुगु' शब्द का ही अधिकाधिक प्रयोग होता है। 'आंध्र' शब्द पहले जाति-परक था, किन्तु बाद को वह देश-परक हुआ और निदान आंध्र देश की भाषा 'आंध्रमु' कहलाई। तेलुगु अजंत भाषा है--प्रायः इसके सभी शब्द स्वरांत और विशेष रूप से उकारांत होते हैं। (उदा०-संतोषमु, साहसमु, नीनु, नेनु आदि)। अतः, यह भाषा अधिक संगीतमय होने की क्षमता रखती है। कदाचित् इसी कारण से विदेशी विद्वानों ने इसे 'पूर्व की इटालियन भाषा' कहा होगा।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि किसी समय आंध्र-साम्राज्य उत्तर में पाटलिपुत्र से कावेरी नदी के दक्षिण तक फैला हुआ था। किन्तु, समय-समय पर इस साम्राज्य पर बहुत-से आक्रमण हुए और इसका बहुत-सा भाग दूसरों के अधीन हो गया। विजयनगर के प्रसिद्ध सम्राट् कृष्णदेवराय के समय में तेलुगु-प्रदेश उत्तर में कटक से प्रारम्भ कर दक्षिण में मदुरै तक फैला हुआ था। आज भाषावार प्रान्तों के विभाजन के बाद तेलुगु-प्रदेश की सीमाएँ बहुत हद तक निश्चित-सी हो गई हैं। आज इसकी उत्तरी सीमा उत्तर-पूर्व में बरहमपुर से प्रारंभकर उत्तर में गोदावरी नदी के किनारे होते हुए नैजामाबाद के कुछ उत्तर तक चली गई है। इसकी दक्षिणी सीमा मद्रास के उत्तर में लगभग तीस मील से प्रारंभ कर कोलार तक है और पूर्व में समुद्र-तट तक यह प्रदेश फैला हुआ है। इन सीमाओं के भीतर-स्थित विशाल भू-भाग में तथा भारत के अन्यान्य प्रान्तों में बसे हुए तेलुगु-भाषाभाषियों की संख्या १९५१ ई० की जन-गणना के अनुसार तीन करोड़ तीस लाख हैं। भारत में हिन्दी-भाषाभाषियों के बाद तेलुगु-भाषाभाषियों की संख्या ही अधिक है।

तेलुगु-भाषा के दो रूप हमें देखने को मिलते हैं--साहित्यिक भाषा का रूप और बोलचाल की भाषा का रूप। साहित्यिक भाषा का रूप प्रदेश-भर में एक ही है, किन्तु बोलचाल की भाषा के रूप में कहीं-कहीं थोड़ा-सा अन्तर दिखाई देता है। सन् १८७५ तक साहित्य-रचना के लिए केवल साहित्यिक भाषा का ही प्रयोग होता रहा, किन्तु उसके बाद बोलचाल की भाषा को भी साहित्य में स्थान देने के लिए आंदोलन

शुरू हुआ । यह आंदोलन आज तक चल रहा है। आज स्थिति ऐसी है कि तेलुगु के पचहत्तर फी सदी लेखक अपनी साहित्य-साधना बोलचाल की भाषा के माध्यम से करते हैं। साहित्यिक भाषा (ग्रांथिक भाषा) और बोलचाल की भाषा (व्यावहारिक भाषा) में जो अन्तर है, वह विशेषतया क्रियाओं तथा कुछ शब्दों के रूपों तथा संधि के नियम-पालन के ऊपर निर्भर करता है । एक उदाहरण से यह अन्तर स्पष्ट करेंगे।

साहित्यिक-भाषा--श्री राम चरित्रमु परम पावन मैनदि । अंदुवलनने तेलुगुलो ननेकुलु रामायण-मुनिदिवरलो रचियिंचिरि। इप्पटिकिनि रचिंचुचु तम जन्ममुनु चरितार्थमु गाविंचु कोनु चुन्नार ।

व्यावहारिक भाषा--

श्रीराम चरित्र परम पावन मैंदि। अंदुवल्लने तेलुगुलो अनेकुलु रामायणान्नि यिदि वरलो व्रासारु । इप्पटिकी व्रास्तू तम जन्मान्नि चरितार्थमु चेसुकुंटुन्नारु।

(श्रीराम की कहानी परम पावन है। इसलिए, कई लोगों ने अबतक रामायण की रचना की। आज भी कुछ लोग इसकी रचना करते हुए अपने जीवन को चरितार्थ कर रहे हैं।)

जैसा हम पहले निवेदन कर चुके हैं, तेलुगु द्राविड़-भाषा-परिवार की एक मुख्य भाषा है । किसी समय तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम मूल द्राविड़-भाषा की बोलियाँ मात्र थीं । किन्तु, बाद को भिन्न-भिन्न वातावरण में पनपने के कारण आज ये एक दूसरे से भिन्न प्रतीत होती हैं। तेलुगु-प्रदेश पर कई राजवंशों ने राज्य किया । सातवीं शताब्दी तक सातवाहन, इक्ष्वाकु, बृहत्फलायन, शालंकायन, पल्लव, विष्णुकुंडिन तथा पूर्व चालुक्य राजाओं ने तेलुगु-प्रदेश पर राज्य किया था । इन राजाओं की राज-भाषा या तो संस्कृत थी या प्राकृत । जो शिलालेख अबतक उपलब्ध हैं, उनमें बहुतों की भाषा प्राकृत है । इन राजाओं में कुछ तो वैदिक धर्मावलंबी थे और कुछ बुद्ध के अनुयायी थे । इस तरह तेलुगु-प्रदेश में राजभाषा तथा धर्म की भाषा की हैसियत से संस्कृत तथा प्राकृत का अत्यधिक प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में देशभाषा पर पड़ता रहा। परिणाम यह हुआ कि आज तेलुगु में पचहत्तर फी सदी शब्द संस्कृत या प्राकृत भाषाओं के तत्सम या तद्भव रूप हैं। तेलुगु-प्रदेश के पंडितों का संस्कृत के प्रति इतना अधिक आग्रह रहा कि तेलुगु का सब से प्रथम व्याकरण संस्कृत-भाषा में लिखा गया ।

तेलुगु की साहित्यिक भाषा के भी दो रूप मिलते हैं । एक रूप वह है, जो संस्कृत शब्दों तथा समस्त पदों से भरा हुआ होता है और दूसरा वह, जिसमें ठेठ तेलुगु शब्दों का ही बाहुल्य है । ठेठ तेलुगु को 'जानु तेनुगु' कहते हैं । इन दोनों रूपों में संस्कृत-बहुल भाषा का ही अधिक आदर होता रहा और धीरे-धीरे ठेठ तेलुगु के प्राचीन काव्यों के बहुत-से शब्दों का प्रचलन कम होता गया। इसलिए, ठेठ तेलुगु के प्राचीन काव्यों को समझना बहुत-से तेलुगु-भाषाभाषियों के लिए भी आज कठिन-सा हो गया है। ठेठ तेलुगु तथा संस्कृतबहुल तेलुगु के उदाहरणों को देखने से इन दोनों में अंतर स्पष्ट हो जायगा--

ठेठ तेलुगु--

चेप्पु लोनिरायि चेविलोनि जोरीग,
कंटिलोनि नलुसु, कालिमुल्ल,
इंटिलोनि पोरु इंतित कादया ।।

(जूतों में पड़ा हुआ कंकड़, कान में पहुँचा हुआ कीड़ा, आँख की किरकिरी, पैरों में काँटा और घर में झगड़ा--इनकी पीड़ा असहनीय होती है।)

संस्कृतबहुल तेलुगु--

अधरमु गदली गदलक
मधुरमु लगु भाष लुडिगि
मौन व्रतुडौ अधिकार रोग पूरित
बधिरांधक शवमु जूड पापमु सुमती ।।

[अधरों को बिना हिलाये, मधुर भाषा से रहित हो, मौन व्रत धारण करनेवाला अधिकार-रोग से भरा व्यक्ति बहरे तथा अंधे शव के बराबर है। उसे देखना भी पाप है। (रेखांकित शब्द संस्कृत के हैं।)]

इन दोनों शैलियों का सामंजस्य भाषा के जिस रूप में पाया जाय, जिसमें तेलुगु का मुहावरा भी और संस्कृत का मधुर एवं गंभीर शब्द-समूह भी हो, वही तेलुगु अधिक लोकप्रिय है और वही सुंदर समझी जाती है। रंगनाथ रामायण की भाषा में ऐसी ही सुंदरता पाई जाती है। इसकी चर्चा यथास्थान आगे की जायगी।

तेलुगु-साहित्य—महाकवि नन्नया का आंध्र-महाभारत तेलुगु-साहित्य के उपलब्ध काव्य-ग्रन्थों में सबसे प्राचीन है। इसकी रचना ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य में हुई थी। इस काव्य की प्रौढ भाषा एवं उत्कृष्ट कला-कौशल को देखकर विद्वान् यह अनुमान करते हैं कि यही महाभारत तेलुगु-साहित्य का आदिकाव्य नहीं हो सकता। उनका विचार है कि किसी भी भाषा के प्रथम साहित्य का रूप इतना विकसित एवं प्रौढ नहीं हो सकता; शताब्दियों की साहित्य-साधना के परिणाम-स्वरूप ही ऐसी प्रौढ रचना का प्रणयन संभव है। यह विचार कल्पना-मात्र कहा नहीं जा सकता। सातवीं तथा आठवीं शताब्दी के जो शिलालेख एवं ताँबे के दानपत्र अबतक उपलब्ध हुए, उनमें उत्कृष्ट काव्य-स्वरूप के नमूने मिलते हैं। अतः, यह कहना सत्य से दूर नहीं होगा कि तेलुगु में साहित्य-रचना का प्रारंभ ईसा की सातवीं शताब्दी में ही हुआ होगा, किन्तु सातवीं से दसवीं शताब्दी तक का साहित्य हमें आज उपलब्ध नहीं हो सका।

सन् १०५० ई० से आजतक के तेलुगु-साहित्य के इतिहास को पाँच युगों में विभाजित किया जा सकता है--

१. पुराण-युग (१०५०--१३५० ई०)
२. श्रीनाथ-युग (१३५०--१५०० ई०)
३. प्रबंध-युग (१५००--१६०० ई०)
४. दक्षिणांध्र-युग (१६००--१८७५ ई०)
५. आधुनिक-युग (१८७५ ई० से)

प्रत्येक युग का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है--

पुराण-युग--वैदिक धर्म तथा उसके समर्थक पुराणों के प्रचारार्थ इस युग में साहित्य-साधना का प्रारंभ हुआ। महाकवि नन्नया ने 'महाभारत' की रचना प्रारंभ की और अरण्य-पर्व का अर्द्ध भाग लिख भी न पाये कि उनका स्वर्गवास हो गया। उसके दो सौ वर्ष के पश्चात् तिक्कना सोमयाजी ने विराट् पर्व से प्रारंभ कर शेष पंद्रह पर्वों की रचना की। उसके पश्चात् एर्रना प्रगडा ने अरण्य-पर्व का अधूरा अंश पूरा किया। इस तरह महाभारत की रचना तीन कवियों के द्वारा लगभग तीन सौ वर्षों में पूरी हुई। इन तीन महाकवियों को 'कवित्रय' कहते हैं। आंध्र-महाभारत तेलुगु-भाषाभाषियों के लिए एक साथ, धर्मशास्त्र, नीति-ग्रन्थ, पुराण तथा महाकाव्य है। उसका प्रभाव तेलुगु-जन-जीवन पर अक्षुण्ण है।

इसी युग में रामायण की रचना भी हुई। गोनबुद्धराजु ने देशज छन्द 'द्विपदा' में रामायण की रचना की, जो साधारण जनता के बीच अत्यंत प्रिय हुई, जिसका हिन्दी-अनुवाद उपस्थित है। 'भास्कर रामायण' की रचना भी इसी युग में हुई, किन्तु वह केवल पंडितों के बीच समादृत हुई। महाभारत तथा रामायण के अलावा इस युग में शैव काव्यों की रचना अत्यधिक मात्रा में हुई। नन्नेचोड़ कवि कृत 'कुमारसम्भव', पालकुरिकि सोमनाथ-कृत 'बसवपुराणमु' तथा 'पंडिताराध्यचरित्र' इस युग की श्रेष्ठतम शैवभक्तिपरक रचनाएँ हैं, जो तेलुगु-साहित्य के उज्ज्वल आभूषणों की भाँति शोभायमान हैं। इस युग के एक और प्रसिद्ध कवि नाचन सोम हैं, जिनका 'उत्तर-हरिवंश' एक बड़ी ही सुंदर कृति है।

श्रीनाथ-युग--इस युग के प्रसिद्ध कवियों में श्रीनाथ तथा पोतना अग्रगण्य हैं। श्रीनाथ राजदरबार के महाकवि तथा महापंडित थे। उन्होंने कविता-शैली में क्रांतिकारी परिवर्त्तन किया। उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं--'काशीखंडमु', 'शृंगारनैषधमु' तथा 'पलनाटि चरित्रमु'। इनमें 'काशीखंडमु' और 'शृंगारनैषधमु' संस्कृत के काव्यों के अनुवाद हैं और 'पलनाटिचरित्रमु' ऐतिहासिक वीर-काव्य है। श्रीनाथ के अनुवाद की शैली भी निराली है। मूल ग्रन्थ को आधार मानते हुए, उसके समस्त काव्य-सौंदर्य को तेलुगु की मुहावरेदार भाषा में मूर्त्तिमान् करने की उनकी क्षमता अद्भुत है। उनके समकालीन कवि पोतना, तेलुगु-भाषाभाषियों के हृदय-पीठ पर सर्वदा विराजमान रहेंगे। उनकी उत्कृष्ट रचना 'आंध्र-महाभागवत' है, जिसका प्रचार गरीब की झोपड़ी से अमीरों के महलों तक में है। पोतना राम के भक्त थे, किन्तु उन्होंने कृष्ण-प्रधान काव्य की रचना की। उनकी भक्ति विलक्षण थी। राम-कृष्ण, शिव-केशव में उन्होंने कोई भेद नहीं किया। उनकी भागवत के कुछ भाग, जैसे प्रह्लाद-चरित्र, गजेन्द्रमोक्ष तथा कृष्ण-लीलाएँ आदि तेलुगु-प्रदेश में इतने प्रसिद्ध हैं कि लोग उन्हें जबानी याद करके समय-समय पर भक्ति-भाव से गाते रहते हैं।

प्रबन्ध-युग--यह युग तेलुगु-साहित्य का स्वर्ण-युग माना जाता है। विजयनगर-साम्राज्य के विख्यात राजा श्रीकृष्णदेवराय का प्राश्रय पाकर तेलुगु-साहित्य ने अभूतपूर्व

उन्नति की। श्रीकृष्णदेवराय स्वयं भी कवि थे और उन्होंने 'आमुक्तमाल्यदा' नामक एक प्रौढ काव्य की रचना की थी। उनके दरबार में आठ महाकवि थे, जो 'अष्टदिग्गज' के नाम से प्रख्यात थे। इस युग में कई प्रबंध-काव्यों की रचना हुई । तेलुगु में प्रबंध-काव्य की एक विलक्षण परिभाषा प्रचलित है । किसी पौराणिक, ऐतिहासिक अथवा काल्पनिक प्रेमाख्यान को आश्रित कर आवश्यकता तथा औचित्य की दृष्टि से उसे घटा-बढ़ाकर अपनी प्रतिभा एवं कला-कौशल के अनुसार तेलुगु की मुहावरेदार भाषा में, तेलुगु-जन-जीवन को प्रतिबिंबित करते हुए जिस कला-कृति का निर्माण कवि करता है, उसे प्रबंध-काव्य कहते हैं। ऐसे प्रबंध-काव्यों में अल्लसानि पेद्दना का 'मनुचरित्र', तिम्पना का 'पारिजातापहरण' तथा रामराजभूषण का 'वसुचरित्र' अत्यंत प्रसिद्ध हैं । धूर्जटि कवि का 'कालहस्तीश्वरशतक' और तेनालि रामकृष्ण का 'पांडुरंगमाहात्म्यमु' इस युग के भक्ति-परक महाकाव्य हैं। इस युग के उत्तरार्द्ध में पिंगलि सूरना ने 'कलापूर्णोदयमु' नामक एक मौलिक प्रबंध-काव्य की रचना की, जो वस्तु, भाव एवं कला की दृष्टि से बेजोड़ है। उन्होंने 'राघवपांडवीयमु' नामक एक द्व्यर्थी काव्य लिखा, जो अपने ढंग का प्रथम काव्य है । इसको अपना आदर्श मानकर आगे कई कवियों ने तीन-तीन, चार-चार अर्थवाले काव्योंकी रचना की।

दक्षिणांध्र-युग—विजयनगर-साम्राज्य के पतन के पश्चात् आंध्र-साम्राज्य दक्षिण मे तंजाऊर और मदुरै में प्रस्फुटित हुआ । वहाँ के प्रायः राजा स्वयं विद्वान् होते थे और विद्वानों तथा कवियों का बहुत आदर करते थे। उनका आश्रय प्राप्त करके कई तेलुगु-कवि तेलुगु-साहित्य-मंदिर को अपनी सरस कृतियों से सजाने लगे। इस युग की कविता भी प्रबंध-शैली को ही अपनाकर चली, किन्तु समय के साथ-साथ उसकी भाव-प्रवणता में शिथिलता आती गई । भाव-सौंदर्य की अपेक्षा पांडित्य-प्रदर्शन एवं आश्रयदाता की अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसा को ही कवि अधिक महत्व देने लगे । फिर भी, इस युग में कई सुंदर काव्यों की रचना हुई, जिनमें कंकंटि पापराजु-कृत 'उत्तर-रामायण', चेन्नकूरि वेंकट कवि-कृत 'विजयविलासमु', कवयित्री मोल्ला द्वारा विरचित 'रामायण' तथा कवयित्री मुद्दु पलनी कृत 'राधिका स्वांतनमु' आदि अत्यंत प्रसिद्ध हैं ।

आधुनिक काल के साहित्य का परिचय देने के पहले तेलुगु-साहित्य की एक और प्रवृत्ति का उल्लेख कर देना आवश्यक है । तेलुगु की प्रबंध-काव्य-धारा के साथ ही मुक्तक-काव्य-धारा का भी विकास समानांतर में होता रहा । मुक्तक-साहित्य के अंतर्गत शतक, गीत, संकीर्त्तन तथा यक्षगान आदि आते हैं । तेलुगु में लगभग एक हजार शतक हैं, जिनमें बहुत-से प्रकाशित हो चुके हैं। तेलुगु-साहित्य में इन शतकों का महत्त्वपूर्ण स्थान है । इनमें बहुत-से शतक भक्तिपरक हैं, कुछ नीति-बोधक है और कुछ शृङ्गार-रस से भरे हैं। इनकी कविता उच्चकोटि की है। इसके अलावा समय-समय पर भक्तों के द्वारा रचे हुए पद तथा संकीर्त्तन साहित्य तथा संगीत की दृष्टि से अद्वितीय हैं । अन्नमय्या, त्यागय्या और क्षेत्रय्या, ये तेलुगु के तीन भक्त-कवि हैं, जिन्होंने भक्ति के उन्मेष में

कितने ही मधुर गीतों का गान किया है। त्यागय्या (त्यागराज) तमिलनाड के तिरुवाड़ी नामक स्थान में हुए थे। उनके कीर्त्तन सारे दक्षिण में गाये जाते हैं।

आधुनिक युग--आधुनिक युग में तेलुगु-गद्य की अच्छी उन्नति हुई। गद्य की विभिन्न प्रवृत्तियों को प्रारंभ करके गद्य का विकास करने का श्रेय स्व० श्रीवीरेशलिंगम् पंतुलु को है। उन्होंने स्वयं कितने ही निबंध, नाटक, प्रहसन तथा उपन्यास आदि लिखे और दूसरे लेखकों को लिखने की प्रेरणा दी। आधुनिक तेलुगु-साहित्य में उनका वही स्थान है, जो हिन्दी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का है। इस युग के प्रारंभ में कई ऐसी संस्थाओं की स्थापना हुई, जो गद्य-साहित्य के निर्माताओं को प्रोत्साहन देती थीं। चिलकमर्त्ति लक्ष्मीनरसिंहम्, पानुगंटि नरसिंहराव, गुरजाड़ अप्पाराव उन प्रारंभिक लेखकों में से हैं, जिन्होंने गद्य-साहित्य के निर्माण में अथक परिश्रम किया था। इसी समय व्यावहारिक भाषा को साहित्य-रचना के लिए प्रयोग करने के प्रश्न पर जबरदस्त आंदोलन शुरू हुआ। कई युवा-लेखकों तथा पत्र-पत्रिकाओं ने इस आंदोलन का समर्थन किया। इस आंदोलन के फलस्वरूप बहुत बड़ी संख्या में गद्य-लेखक निकल आये, जो आजतक गद्य-साहित्य की सर्वतोमुखी उन्नति के लिए प्रयास कर रहे हैं।

कविता के क्षेत्र में भी तेलुगु-साहित्य भारत की अन्यान्य भाषाओं की साहित्यिक प्रगति के साथ कदम-ब-कदम आगे बढ़ रहा है। अँगरेजी साहित्य का अध्ययन, स्वतंत्रता-आंदोलन, वर्त्तमान जीवन का संघर्ष और व्यक्ति-स्वातंत्र्यवाद ने इस युग के कवियों को एक नई दृष्टि प्रदान की तथा उसका प्रभाव उनकी कविताओं में लक्षित होने लगा। छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की जैसी कविताएँ हिन्दी-साहित्य में पाई जाती हैं, वैसी रचनाएँ तेलुगु में भी हैं। भेद इतना ही है कि तेलुगु में उनके नाम भिन्न-भिन्न हैं--जैसे भाव-कविता, अतिवास्तविक कविता, अभ्युदय-कविता आदि। वर्त्तमान समाज में पाई जानेवाली आर्थिक असमानता, संघर्षमय जीवन, प्राचीन रूढियों तथा परंपराओं के प्रति विद्रोह तथा समस्त मानव-जाति के कल्याण का आग्रह आज की कविताओं में दिखाई पड़ते हैं।

[२]

रामायण, महाभारत एवं भागवतपुराण भारत की सांस्कृतिक एकता को सुरक्षित रखनेवाले महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। राम और कृष्ण भारतीय संस्कृति के प्रतीक हैं। वस्तुतः, आसेतुहिमाचल इन अलौकिक महापुरुषों की पूजा होती है और प्रत्येक भारतीय भाषा के कवि इनके जीवन-वृत्तों का गान करने में ही अपने कवि-कर्म की सफलता मानते आये हैं।

रामायण की कथा नित्य नवीन है। हम अपनी बाल्यावस्था से ही न जाने कितनी बार और कितने लोगों के द्वारा इस कथा को सुनते तथा स्वयं पढ़ते रहे हैं, फिर भी जब-जब इसे सुनने या पढ़ने का अवसर मिलता है, तब-तब हम में नवोत्साह जागरित हो उठता है। यही इस कथा की महत्ता है। वाल्मीकि-रामायण में चतुरानन के मुँह से निकले हुए निम्नलिखित शब्द अक्षरशः सत्य प्रमाणित होते हैं—

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावत् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति॥

तेलुगु भाषा में रामकथा-संबंधी कितने ही काव्य हैं। ये काव्य प्रायः दो रूपों में मिलते हैं--प्रबंध-काव्य तथा मुक्तक-गीत। प्रबंध के रूप में प्राप्त होनेवाले काव्यों में अधिकतर काव्य वाल्मीकि-रामायण के सरस अनुवाद-मात्र हैं। 'रंगनाथ रामायण' तथा 'मोल्ल रामायण' ही दो ऐसे प्रबंध-काव्य हैं, जो स्वतंत्र रचना कहे जा सकते हैं इन दोनों की कथा यद्यपि प्रधानतया वाल्मीकि-रामायण को आधार मानकर चली है, तथापि काव्य-रचना के लक्ष्य में, कथा-वस्तु के विधान में वर्णनों में, तथा चरित्र-चित्रण में नवीनता है। इन दोनों में 'मोल्ल रामायण' आकार में छोटी है। 'रंगनाथ रामायण' ही आंध्र-देश में अधिक लोकप्रिय है। इसके रचना-काल तक जनता में प्रचलित रामकथा-संबंधी कई ऐसे प्रसंग इस रामायण में मिलते हैं, जो वाल्मीकि-रामायण में नहीं मिलते। अबतक रामकथा-संबंधी जितने प्रबंध-काव्य उपलब्ध हुए, उनमें यही सब से प्राचीन काव्य है।

'रंगनाथ रामायण' संबंधी चर्चा प्रारंभ करने के पहले हम एक विषय स्पष्ट कर दना आवश्यक समझते हैं। जिस प्रकार तुलसी-रामायण उत्तर-भारत के लोक-जीवन के पोर-पोर में व्याप्त होकर, उसके पारिवारिक सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित कर सकी, उसी प्रकार और उसी मात्रा में तेलुगु-भाषाभाषियों के जीवन को तेलुगु-रामायण प्रभावित नहीं कर सकी। आंध्र-जनता के बीच वह कार्य आंध्र-महाभारत तथा आंध्र-महाभागवत ने किया। इन दोनों ग्रन्थों ने तेलुगु-प्रदेश में लोक-जीवन को प्रभावित ही नहीं, बल्कि अनुप्राणित भी किया है। तुलसी-रामायण हिन्दी-भाषाभाषियों के लिए एक साथ धर्म-ग्रन्थ, पुराण, नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र तथा लोक-जीवन का पथ-प्रदर्शक है। तेलुगु-प्रदेश में वह स्थान तेलुगु-रामायण को नहीं बल्कि तेलुगु-भागवत को प्राप्त है। तेलुगु-भाषाभाषियों के लिए 'आंध्र-महाभारत' एक साथ धर्मशास्त्र, वेदान्त-ग्रन्थ, नीति-ग्रन्थ, महाकाव्य और इतिहास है।

परन्तु, फिर भी राम की कथा, जो परंपरा से जनता के बीच लोक-कथाओं तथा लोक-गीतों के रूप में प्रचलित थी, अपना अक्षुण्ण प्रभाव लोगों के जीवन पर डालती रही। आंध्र-देश में समय-समय पर कई ऐसे भक्त हुए, जिन्होंने अपने भक्ति-रस पूर्ण गीतों एवं भजनों के द्वारा राम-भक्ति का ऐसा प्रचार लोगों में किया कि श्रीराम आंध्रों के इष्टदेव-से हो गये। आंध्र-प्रदेश में विरला ही ऐसा कोई गाँव होगा, जहाँ श्रीराम का मंदिर न मिलता हो। तेलुगु-भाषाभाषियों में रामय्या, रामन्ना, रामराव, रामचन्द्र राव, सीतय्या, लक्ष्मन्ना आदि नामों की तो गिनती ही नहीं है।

किन्तु, प्रश्न यह है कि तुलसी-रामायण के समान सर्वव्यापक तथा प्रभावशाली राम-काव्य तेलुगु में क्यों नहीं लिखा जा सका? ऐसी बात नहीं कि तेलुगु-प्रदेश में इसके लिए आवश्यक प्रतिभा का अभाव था। यदि ऐसी बात होती, तो महाभारत एव भाग वत जैसेप्रौढ एवं सरस महाकाव्यों की रचना ही तेलुगु में नहीं होती। अतः इसका कारण जानने के लिए हमें इतिहास का आश्रय लेना पड़ेगा।

गह सर्वविदित है कि भगवान् बुद्ध की धार्मिक क्रान्ति से वैदिक धर्म को बड़ा भारी धक्का लगा। बौद्धधर्म कई शताब्दियों तक उत्तर-भारत के राजाओं के द्वार

समादृत रहा। उत्तर-भारत के कुछ राजाओं ने जैनधर्म को भी अपनाया था। धीरे-धीरे इन दोनों धर्मों ने अपनी विजय-यात्रा सुदूर दक्षिण तक बढ़ाई। दक्षिणापथ के कई राजाओं ने इस धर्म के आगे अपने घुटने टेक दिये। आंध्र-राजाओं में सबसे प्रथम शातवाहन थे, जिन्होंने वैदिक धर्म के अनुयायी होते हुए भी बौद्ध तथा जैन धर्मों का आदर किया। इन्हीं शातवाहनों के सामंत इक्ष्वाकु-वंश के राजा (ई० पू० २००) बौद्धधर्म के अनुयायी बने। इन्होंने बौद्ध तथा जैन धर्मों को बहुत आदर दिया और वैदिक धर्म के प्रभाव को नष्ट करने का भी यथाशक्ति प्रयत्न किया। इस प्रकार, दक्षिण भारत में वैदिक, बौद्ध एवं जैन धर्मों के बीच कई शताब्दियों तक संघर्ष चलता रहा। बीच-बीच में ऐसे आंध्र-राजा भी हुए, जिन्होंने वैदिक धर्म को प्रोत्साहन दिया और बौद्ध तथा जैन धर्मों को समूल नष्ट करने का प्रयत्न किया।

सन् ८२५ ई० में शंकराचार्य का आविर्भाव हुआ। उन्होंने बौद्धधर्म के प्रचार को रोकने तथा वैदिक धर्म को पुनः प्रतिष्ठापित करने का जो प्रयत्न किया, उससे आंध्र-प्रदेश के वैदिक धर्मावलंबियों को आंध्र-देश से बौद्धधर्म को समूल उखाड़ फेंकने की प्रेरणा मिली। उन्होंने कई मोर्चों पर बौद्धधर्म का विरोध किया। बौद्धधर्मावलंबियों को तरह-तरह की यातनाएँ दी गईं और कई ऐसे ग्रन्थों के निर्माण का प्रयत्न हुआ, जिनके द्वारा वैदिक धर्म तथा उनके समर्थक पुराणों की प्रतिष्ठा बढ़ी। वातावरण भी इसके लिए अनुकूल था। उसी समय तमिल-देश में अनेक वैष्णव तथा शैव संतों का आविर्भाव हुआ, जिन्होंने अपनी सरस एवं सबल रचनाओं से बौद्ध तथा जैन धर्मों का विरोध आरंभ किया। उसी युग में आंध्र में राजराज नरेन्द्र नामक एक विख्यात राजा हुए जो वैदिक धर्म के अनन्य अनुयायी थे। इन महापुरुषों का प्रोत्साहन पाकर तेलुगु-साहित्य में पुराण-युग प्रारंभ हुआ, जिसमें प्रधानतया पुराणों और इतिहासों का अनुवाद-कार्य हुआ। इन ग्रन्थों की रचना करने में कवियों का उद्देश्य यही था कि उनके द्वारा भगवान् के उस लोकरंजनकारी रूप की अभिव्यक्ति की जाय, जिसको आलंबन मानकर मानव-हृदय वैदिक धर्म के कल्याण-मार्ग की ओर अपने आप आकृष्ट हो सके। लगभग सन् १०२५ ई० में कवि नन्नया ने महाभारत का अनुवाद प्रारंभ किया, किन्तु वे महाभारत के केवल ढाई पर्व-मात्र की रचना कर पाये थे कि उनका स्वर्गवास हो गया। इसके पश्चात् तेलुगु-रामायण (रंगनाथ रामायण) की रचना हुई।

तेलुगु में रामायण की रचना को प्रेरणा देनेवाली परिस्थितियाँ तुलसी-रामायण की रचना के लिए प्रेरणा देनेवाली परिस्थितियों से भिन्न थीं। रंगनाथ रामायण का उद्देश्य वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा को बढ़ाना तथा रामचन्द्र जैसे अलौकिक शक्तिशाली एवं सौंदर्य-संपन्न व्यक्ति तथा अवतार-पुरुष के भव्य चरित्र को प्रस्तुत करना था, जिसकी अनुभूति-मात्र से मानव-हृदय गद्गद हो उठे। या यों कह सकते हैं कि रंगनाथ रामायण उस व्यापक पृष्ठभूमि को तैयार करने में सफल हुई, जो पीछे चलकर राम के प्रति भक्ति-भावना को जन्म देने के लिए आवश्यक थी। भक्ति का प्रादुर्भाव अचानक नहीं होता। अनंत सौंदर्य, शक्ति और शील से संपन्न चरित्र के प्रत्यक्षीकरण से व्यक्ति का हृदय पहले

आश्चर्य से भर जाता है और धीरे-धीरे वह उस शक्ति-संपन्न व्यक्ति के महत्त्व की अनुभूति करने लगता है। उसके उपरांत उसकी प्रशंसा करने की इच्छा सहज ही उसके मन में जागरित होती है । महान् व्यक्ति की प्रशंसा करने की यह इच्छा ही भक्ति की पहली सीढ़ी है । रंगनाथ रामायण के प्रतिभावान् रचयिता ने अपनी रचना के द्वारा यही कार्य संपन्न किया।

रंगनाथ रामायण वाल्मीकिरामायण का मात्र अनुवाद नहीं है । स्थूल रूप से वाल्मीकिरामायण की कथा इसमें आ तो गई है, किन्तु उसके कवि ने बीच-बीच में ऐसे प्रसंग भी जोड़े हैं, जो कदाचित् उस समय तक जनता के बीच लोक-कथाओं के रूप में प्रचलित हो चुके थे । हम नीचे ऐसे कुछ प्रसंगों का उल्लेख करेंगे, जो वाल्मीकि-रामायण में नहीं मिलते, यद्यपि उनमें से कुछ प्रसंग जैनग्रन्थों में मिलते हैं। कदाचित् कवि ने वहीं से इन प्रसंगों को लेकर अपनी रामायण में सम्मिलित कर दिया हो :

१. जंबुमाली का वृत्तांत, २. रावण से तिरस्कृत हो विभीषण का अपनी माता के पास जाना, ३. कैकेसी (रावण की माता) का रावण को हितोपदेश, ४. रावण का राम की धनुर्विद्या-कुशलता की प्रशंसा करना, ५. गिलहरी की भक्ति, ६. नागपाश में बद्ध होकर राम-लक्ष्मण के पास नारदजी का आना, ७. रावण के आगे मंदोदरी का राम की महिमा एवं शौर्य की प्रशंसा करना, ८. दूसरी बार संजीवनी लाते समय हनुमान् तथा माल्यवान् का युद्ध, ९. कालनेमि का वृत्तांत, १०. सुलोचना का वृत्तांत, ११. शुक्राचार्य के आगे रावण का दुखड़ा रोना, १२. रावण का पाताल-होम, १३. अंगद का रावण के समक्ष मंदोदरी को बुला लाना, १४. रावण की नाभि में स्थित अमृत-कलश को सोखने के निमित्त आग्नेयास्त्र का प्रयोग करने की विभीषण की सलाह, १५. लक्ष्मण की हँसी ।

उक्त प्रसंगों में जंबुमाली का वृत्तांत, कालनेमि का वृत्तांत, रावण के समक्ष अंगद का मंदोदरी को घसीटकर लाना, आग्नेयास्त्र का प्रयोग करने की विभीषण की सलाह आदि ऐसे हैं, जो मूलकथा की घटनाओं को अधिक तर्क-संगत सिद्ध करने के निमित्त जोड़े हुए प्रतीत होते हैं। रावण से तिरस्कृत होकर विभीषण का अपनी माता के पास जाना, कैकेसी का हितोपदेश और सुलोचना का वृत्तांत आदि रावण के परिवार के लोगों के चरित्र पर प्रकाश डालने के साथ ही साथ इस ओर भी इंगित करते हैं कि रावण भूत-प्रेतों का वंशज एवं भूत-प्रेतों का राजा नहीं था, किन्तु एक विलक्षण परिवार में उत्पन्न हुआ विशिष्ट व्यक्ति था । रावण का, राम की धनुर्विद्या की कुशलता की प्रशंसा करना, मंदोदरी का रावण के समक्ष श्रीराम की महिमा एवं पराक्रम की प्रशंसा करना, गिलहरी का वृत्तांत आदि प्रसंग राम के उस लोकोत्तर व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हैं, जो शत्रुओं की भी प्रशंसा प्राप्त करने की क्षमता रखता था । साथ ही साथ, वे रावण तथा मंदोदरी के चरित्र पर भी प्रकाश डालते हैं । उक्त प्रसंगों के अलावा इस रामायण में यत्र-तत्र ऐसे वर्णन भी मिलते हैं, जो वाल्मीकिरामायण में नहीं मिलते, किन्तु जिन्हें कवि ने वैदिक धर्म में लोगों की निष्ठा बढ़ाने के निमित्त जोड़ा है ।

पात्रों का चित्रण-पात्र-चित्रण की दृष्टि से रंगनाथ रामायण विशेष महत्त्व रखती है। जैसा हमने पहले ही निवेदन किया है, रंगनाथ रामायण में श्रीराम के महिमा-समन्वित शक्ति, शील तथा सौंदर्य से परिपूर्ण चरित्र को प्रस्तुत करने का अधिक प्रयत्न हुआ है। इस रामायण के नायक राम जहाँ एक धीरोदात्त वीर तथा सर्वगुणसंपन्न व्यक्ति थे, वहाँ इस काव्य का खलनायक रावण भी उदार, वीर, साहसी, असमान पराक्रमी, राजनीतिकुशल, स्वाभिमानी एवं शिवजी का अनन्य भक्त भी था। किन्तु, उसके दोष भी उसके गुणोंसे कम नहीं थे। वह कामुक, अभिमानी तथा उद्धत था। इसलिए, इस रामायण के कवि ने रावण के चरित्र का चित्रण करने में अपनी अद्वितीय प्रतिभा एवं सहृदयता का परिचय दिया है। उन्होंने एक कलाकार तथा इतिहास-लेखक--इन दोनों के उत्तरदायित्व को सफलतापूर्वक निभाया है। जहाँ उन्होंने रावण के कृष्ण पक्ष की निंदा की है वहाँ उसके उज्ज्वल पक्ष को प्रकट करने की उदारता भी दिखाई है। उनकी दृष्टि में रावण एक विलक्षण वीर था, जिसमें जड़-चेतन तथा गुण-दोषों का अद्भुत सम्मिश्रण था। उसका पतन इसलिए हुआ था कि जड़ ने चैतन्य पर पूरा-पूरा अधिकार प्राप्त कर लिया था। कदाचित् यह रामायण के प्रति द्राविड़ दृष्टि का प्रमाण भी हो। द्राविड़ लोग रावण को उसी दृष्टि से नहीं देखते, जिस दृष्टि से आर्यों ने उसे देखा और राक्षस, निशाचर आदि नामों से संबोधित किया। द्रविड़ दृष्टि में रावण भी एक वीर, विद्वान्, पराक्रमी मनुष्य ही था, किन्तु उसके गुणों पर दुर्गुणों ने विजय प्राप्त कर ली थी और यही उसके सर्वनाश का कारण हुआ। इसके अतिरिक्त, कला की दृष्टि से देखा जाय, तो हमें यह मानना पड़ेगा कि रामचन्द्रजी का प्रतिद्वन्द्वी केवल एक लंपट तथा नीच व्यक्ति नहीं हो सकता था। रावण को अपने बल-पौरुष का जहाँ अभिमान है, वहाँ उसके हृदय में अपने शत्रु के गुणों के प्रति आदर भी है। वह राम के बल-विक्रम पर आश्चर्य ही प्रकट नहीं करता, बल्कि उनकी प्रशंसा भी करने लगता है। श्रीराम की धनुर्विद्या की निपुणता देखकर रावण कहता है--

> नल्लवो रघुराम नयनाभिराम, विल्लविद्या गुरुव, वीरावतार।
> बापुरे, राम भूपाल, लोकमुल नीपाटि विलुकाडु नेर्चुने कलुग ?

(हे नीलमेघश्याम, नयनाभिराम, धनुर्विद्या-निपुण, वीरावतार, रघुराम, हे राजा राम, इस संसार में तुम्हारे समान धनुर्धर और कोई हो सकता है?)

रावण की इस प्रशंसापूर्ण शब्दों को सुनकर रावण के मंत्री रावण से कहते है कि आपका इस प्रकार शत्रु की प्रशंसा करना आपको शोभा नहीं देता। तब रावण कहता है---

> विल्लुविद्या पेंपुनु, विक्रम क्रममु, गलितनंबुनु, बाहुगर्व राजसमु,
> लादियौ गुणमुल नधिकुडैनहि, कोदंडदीक्षा गुरुनितो राज
> वरुनितो, रामभूवरुनितो नोरुलु पंकिचि चूड नेपट्टुन नैन,
> साटिये इम्मूडु जगमुलयंदु ? मेटि शूरुल पेंपु पेच्चंग वलदे ?

(धनुर्विद्या-नैपुण्य, पराक्रम, शौर्य, बाहुबल आदि गुणों में श्रेष्ठ राजा राम की समता करनेवाला तीनों लोकों में कौन है? क्या महान् पराक्रमी व्यक्तियों की महानता की प्रशंसा नहीं करनी चाहिए ?

रावण के इन शब्दों से कवि दो उद्देश्यों की पूर्ति करना चाहते हैं। रावण के ये वचन जहाँ एक ओर उसकी उदारता प्रकट करते हैं वहाँ वे शत्रु के द्वारा भी प्रशंसा प्राप्त करनेवाले श्रीराम के असाधारण एवं अलौकिक व्यक्तित्व पर भी प्रकाश डालते हैं।

यही नहीं, रावण अच्छी तरह जानता था कि श्रीराम विष्णु के अपर रूप हैं और उनके हाथों मरने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसलिए, वह सोचता है कि युद्ध के लिए ललकारनेवाले शत्रु के सामने घुटने टेककर मैं अपनी दीनता क्यों प्रकट करूँ और अपनी वीरता को क्यों कलंकित करूँ। जब मंदोदरी राम की महिमा का वर्णन करके रावण को युद्ध करने से रोकने का प्रयत्न करती है, तो रावण कहता है—

ये नेल्लभंगुल निक राघवुल बोनीक चंपुदु; भूमिज नीय
वारूठ वलुडनै, यटु गाक येनु श्रीरामु शरमुलचे जत्तुनेनि
नाकवासुलु मेच्च ना कोरुचुन्न वैकुंठ मेदुरागवच्चु निच्चटिकि
ललन नीवेटिकि? लंक येमिटिकि? दलकोन्नु मुक्ति सत्पथमु गैकोंदु।

(अब मैं किसी भी प्रकार राघवों का वध करूँगा ही; मैं सीता को नहीं दूँगा। यदि इसके विपरीत मैं श्रीराम के शरों से ही मारा जाऊँगा, तो मेरा चिर अभिलषित स्वर्ग मेरे पास स्वयं आ जायगा और स्वर्ग के निवासी मेरी प्रशंसा करेंगे। जब मैं मुक्तिपथ को प्राप्त करने जा रहा हूँ, तब हे सुन्दरी! मुझे न तुम्हारी आवश्यकता है न लंका की।)

वाल्मीकिरामायण में सुलोचना का वृत्तांत नहीं मिलता है। तुलसी-रामायण की कुछ प्रतियों में इस कथा का बड़ा सरस वर्णन मिलता है। किन्तु पंडितों का विचार है कि तुलसी-रामायण का यह अंश प्रक्षिप्त है। रंगनाथ रामायण में इस महान् साध्वी के चरित्र का अत्युत्तम चित्रण मिलता है। बँगला-कवि माइकेल मधुसूदन ने अपनी रचना 'मेघनाद-वध' में सुलोचना के चरित्र को विशेष प्रधानता दी है और उस वीर एवं सती-साध्वी स्त्री का एक भव्य चरित्र उपस्थित किया है। इन्द्रजीत की मृत्यु के उपरांत उसकी वीर पत्नी सुलोचना अपने पति के मृत शरीर के साथ सती होना चाहती है। अतः, वह अपने ससुर रावण से इन्द्रजीत के मृत शरीर को मँगा देने की प्रार्थना करती है। किन्तु, रावण अपनी असमर्थता प्रकट करता है; क्योंकि इन्द्रजीत का शव शत्रुओं के अधीन में था। तब सुलोचना अपने पति का मृत शरीर प्राप्त करने के हेतु स्वयं साहस के साथ शत्रु-शिविर में चली जाती है। वहाँ पहुँचकर वह पहले रामचन्द्रजी से पति-भिक्षा देने की प्रार्थना करती है। उसके साहस पति-भक्ति एवं निर्मल चरित्र से प्रभावित होकर रामचन्द्र उसकी प्रार्थना स्वीकार करने को प्रस्तुत-से होते दीखते हैं। तब हनुमान् उन्हें

समझाते हैं कि ब्रह्मा का लेख झूठा नहीं होने देना चाहिए। इस पर रामचन्द्र सुलोचना को आश्वासन देते हैं कि अगले जन्म में तुम अपने पति के साथ चिरकाल तक सुखमय जीवन व्यतीत करने के उपरांत वैकुंठ-धाम प्राप्त करोगी। इसके पश्चात् सुलोचना राम से अपने पति का शरीर माँगती है । तब सुग्रीव उसे ताना देते हुए कहता है--'यदि तुम पतिव्रता हो, तो अपने मृत पति से वार्त्तालाप करो ।' सुलोचना इस चुनौती को स्वीकार करती है और युद्ध-भूमि में पड़े हुए अपने पति के शव के पास जाकर बड़े ओजपूर्ण शब्दों में कहती है--'यदि मैं मन, वचन, कर्म से अपने पति की सच्ची भक्ति करती हूँ, तो मेरे पति सजीव होकर मुझसे वार्त्तालाप करें।' तब मेघनाद का शव आँखें खोलकर कहता है--'हे प्रिये! मेरे पिता ने ही मुझे मारा है। नहीं तो और किसकी ऐसी शक्ति थी कि मुझे मार सके, काल की गति प्रबल है। इसलिए चिन्ता मत करो।' इतना कहकर इन्द्रजीत की आँखें सदा के लिए बंद हो जाती हैं। इसके पश्चात् सती सुलोचना अपने पति के शव को साथ लेकर जाती है और उसके साथ सती होकर देवलोक में पहुँच जाती है ।

कला-पक्ष--कला की दृष्टि से भी रंगनाथ रामायण उच्च कोटि का महाकाव्य है। कला के उत्कृष्ट चमत्कार इसके प्रत्येक पृष्ठ में दृष्टिगोचर होते हैं। कवि संस्कृत के काव्य-शास्त्र के निष्णात विद्वान् होने के कारण उक्ति-वैचित्र्य एवं अर्थगौरव, इन दोनों का उचित अनुपात बनाये रखने में सर्वथा सफल हुए हैं । उनकी कला-साधना में पग-पग पर उनका हाथ बँटानेवाले अनुप्रास एवं यमक अलंकारों की छटा कवि के अगाध पांडित्य एवं भाषा पर उनके विलक्षण अधिकार का प्रमाण प्रस्तुत करती है । भावों की मार्मिक अभिव्यंजना के लिए प्रयुक्त अर्थालंकार इतने स्वाभाविक हैं कि हम कवि की औचित्य-प्रियता पर मुग्ध हो जाते हैं । रंगनाथ रामायण की भाषा विलक्षण माधुर्य एवं गंभीरता से परिपूर्ण है । तेलुगु की साहित्यिक भाषा के जिन दो रूपों की चर्चा पहले की गई है, उन दोनों रूपों का सुन्दर सम्मेलन इस काव्य में हो गया है । कवि का तेलुगु एवं संस्कृत दोनों भाषाओं पर पूरा-पूरा अधिकार था और दोनों भाषाओं के शब्द-भांडार उनके आदेश का पालन के लिए सर्वथा प्रस्तुत रहते दिखाई देते हैं। कवि ने तेलुगु की सजीव एवं मधुर मुहावरेदार भाषा के साथ संस्कृत-शब्दों का ऐसा सुन्दर मेल कराया है कि भाषा में मणि-कांचन-योग की-सी शोभा आ गई है । इसकी भाषा का एक नमूना नीचे दिया जाता है--

राज-तिलक चेतोविनिर्मलशिष्टु विशिष्ठु, गौतम जाबालि कश्यप कण्व वामदेवादुलौ वरमुनीश्वरुल सामादि बहुवेद चतुर बोधकुल भरतुडु रप्पिचि भय भुवतु लोप्प, परम सम्मद वचोभंगुलु, मेरय 'श्री रामुनकु पट्टाभिषेकंबु सेयुडारूढ नियतितो' ननि पलुक वारु पूनि मंगल तूर्यमुलु मोयुचुंड, जानकी रामुल चदुरोप्प तेच्चि रमणीयतरमैन रत्नपीठयुन, कोमरोप्प निरुवुर कूर्चुंड बनि चि मानित वेदोक्त मंत्र पूर्वकमुग अभिषेकंबु करर्मयिचेय ना रामुनौदल ना पूर्णवारि धार डग्गरुनप्पुडु तग चूडनोप्पे गीर्वाण मुख्युलु कीर्तनल सेय पार्वती सहितुडै प्रणुतिपनोप्पु अंगजहरु मौलि नमल मै तोरुगु गंगा नदियु बोले कमनीय मगुचु ना तीर्थधारलु

अंघ्रुल कौलिकि भूतलंबुन निंडि पोलुपारे जूड हरिपाद मुन बुट्टि अय्यादि गंग धरणि पै बरगुविधंबच्चु पडग बरिंकिप राम भूपालकुंडपुडु हरुडुविष्णुवु, दानयनु माड्किनुंडे ।

(भरत ने निर्मलचेता एवं सदाचार-संपन्न वसिष्ठ, गौतम, जाबालि, कश्यप, कण्व, वामदेव आदि मुनीश्वरों को तथा चतुर्वेद-पारंगत विबुधों को बुलाकर विनय एवं भक्ति के साथ उनसे कहा--'आप कृपया विधिवत् श्रीराम का राजतिलक कीजिए।' तब मंगल-वाद्यों की ध्वनि के साथ वे जानकी तथा राम को बुला लाये और रमणीय रत्नपीठ पर उन दोनों को आसीन कराया और वेदमंत्र-पूर्वक पुण्य सलिल से उनका अभिषेक किया। राम के मस्तक पर से गिरनेवाली वह पुण्य जलधारा देखने में बहुत ही रमणीय प्रतीत होती थी। देवताओं की स्तुतियों को प्राप्त करते हुए पार्वती के साथ विलसित होनेवाले परमशिव की जटा से झरनेवाली गंगा नदी की भाँति वह जलधारा अत्यंत कमनीय दीख रही थी। वह (जलधारा) क्रमशः उनके चरणों से होकर पृथ्वी पर ऐसे गिरने लगी, मानों विष्णु के चरणों में जन्म लेकर पवित्र गंगा पृथ्वी पर उतर रही हो। इस प्रकार, उस समय रामचन्द्र स्वयं विष्णु तथा शिव की भाँति शोभायमान हुए।)

मुहावरों का सम्यक् प्रयोग, भावों के अनुकूल भाषा, स्वाभाविक अनुप्रासों की छटा, उक्ति-सौंदर्य तथा ओज, प्रसाद एवं माधुर्य गुणों से युक्त शैली, ये सभी कवि के विलक्षण पांडित्य तथा कवित्व-शक्ति का परिचय देते हैं।

वैसे तो अनुवाद का कार्य ही कुछ कठिन है; क्योंकि कितना भी प्रयत्न किया जाय, मूल की सुन्दरता अनुवाद में नहीं आ सकती। एक भाषा की श्रेष्ठ कलाकृति का दूसरी भाषा के गद्य में सरस अनुवाद प्रस्तुत करना स्वभावतः कठिन कार्य है। तेलुगु और हिन्दी दो भिन्न भाषा-परिवार की भाषाएँ हैं और उनके अपने-अपने मुहावरे हैं। मुहावरों का अनुवाद तो हो नहीं सकता। हाँ, यह प्रयत्न अवश्य हो सकता है कि तेलुगु मुहावरे का मिलता-जुलता हिन्दी-मुहावरा का उपयोग किया जाय। फिर भी, अनुवाद अनुवाद ही है। अनुप्रास, यमक आदि अलंकारों का सौंदर्य एवं उक्ति-वैचित्र्य आदि अनुवाद में लाना कठिन है। उदाहरण के लिए--

तोगलु वेट्टितुमु दुष्टारि सतुल, तोगलु जानकि इंक तोल गंग
तोगलार! इकभीद तोग येट्टि दनुचु, तोगतेल्ल चिदिभि वेतु रु पेच्चु पेरिगि।

'तोग' के कई अर्थ हैं--दुःख, कष्ट, कमल। यहाँ कवि ने यमक अलंकार के द्वारा 'तोग' शब्द के प्रयोग से भिन्न-भिन्न अर्थों की अभिव्यंजना की है; किन्तु यह सुन्दरता अनुवाद में लाना असंभव है।

फिर भी, अनुवादक ने मूल के प्रति निष्ठा बरतते हुए यथासंभव मूल रचना की सुंदरता को अनुवाद में लाने की भरपूर चेष्टा की है। उसे कहाँतक सफलता मिली है, इसका मूल्यांकन करना सहृदय पाठकों का काम है।

मैं अंत में दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभा के भूतपूर्व संयुक्त मंत्री परम आदरणीय पंडित अवधनंदनजी के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जो इस ग्रन्थ के संपादन का कार्य बड़ी दक्षता के साथ संपन्न करते हुए लगातार मेरी सहायता करते रहे। मैं बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् का भी आभार मानता हूँ, जिसने मुझे इस कार्य के लिए योग्य समझकर मेरे द्वारा यह अनुवाद कराया। यदि यह ग्रन्थ हिन्दी-भाषा-भाषियों को तेलुगु की विपुल साहित्य-संपत्ति का किंचित् भी आभास करा सकेगा, तो मैं अपने परिश्रम को सफल मानूंगा।

श्रीरामनवमी
ता० १६, शके १८८२
५-४-१९६० ई०

ए० सी० कामाक्षि राव

विषयानुक्रमणी

रंगनाथ रामायण

श्रीरंगनाथ रामायण

(बालकांड)

१. देव-स्तुति

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरं ।
एकैकमक्षरं प्रोक्तं महापातकनाशनम् ॥
रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे,
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥

श्रीलक्ष्मीनाथ, दैत्य-विजयी, लोक-रक्षक, नित्य, सदानंद, मोक्षदायक, कर्म-रहित, सृष्टि के स्वयंभूत आधार, हृदय-कमल में स्थित भक्ति-रूपी आनन्द को व्यक्त करने के साधन-क्रम में तत्पर भ्रमर-रूपी भगवान्, गजराज को मोक्ष प्रदान करनेवाले, अपने आश्रित-लोक के बंधु, संसार के बंधनों से मुक्ति देनेवाले, वलि को बाँधने का दृढ़ संकल्प करनेवाले, प्रणव-रूप, गोपिकाओं के हृदय में विहार करनेवाले, अवोध-गम्य आकारवाले, निराकार, योगियों के हृदय में ओंकार-रूप में वर्तमान, योगिसंदर्शित, मोक्ष-प्रचारक, श्रुतियों के शिरोमणि, विशुद्ध-चैतन्य स्वरूप, अतिलोकवासी, समस्त लोकों का आश्रय, ब्रह्माण्डरूपी मुक्ता का आयतन, नित्याधार, अखिल तत्त्वातीत, आदि-अंत-रहित, पवित्रात्मा, अविनाशी, वेद-रूपी कमल के लिए सूर्य, अक्षीण कल्याणों का आधार, निश्शंक मन से सद्भक्ति तथा सेवा करनेवाले भक्तों के लिए दया-सिंधु, करुणा-सिंधु, बोधक, बोध्य तथा बोध——इन तीनों में व्यक्त होनेवाले पूर्ण-रूप,

आदितत्त्व, 'तत्त्वमसि' आदि कथनानुसार भेदातीत, अभेद, प्रतापी परमेश्वर का (भक्ति-युक्त ध्यान करने के निमित्त) मैंने अत्यंत धैर्य के साथ नियमों का पालन किया; कर्म के बंधनों को ठुकराया, एकांत में रहते हुए इन्द्रिय-व्यापारों को भुला दिया; सुस्थिर होकर सुलभ-साध्य तथा परिचित आसन (सुखासन) पर उपविष्ट हुआ, मन को भक्ति-रस-परिपूर्ण बनाया; (शरीर के भीतर रहनेवाली) बहत्तर नाड़ियों का विचार करके उनका परिमार्जन किया, एकचित्त तथा निर्मल मन से नाड़ियों में अत्यंत सूक्ष्म रूप से व्याप्त पवन को रोका, मन को निश्चल बनाकर निरुद्ध प्राण-वायु को मूलाधार-चक्र में प्रविष्ट कराया और उसे क्रमशः छह कमलों को पार कराते हुए चंद्रमंडल में पहुँचाया। वहाँ योगीन्द्रों के हृदय का भेद परखने के लिए परम-व्योम के रूप में स्थित अनादि ब्रह्म-स्वरूपा, अत्यंत सूक्ष्म तथा निर्मल नाड़ी को यूप, अविचल मन को यज्ञ-पशु, निष्ठानुरक्ति को वेदी, समस्त इन्द्रियों को काष्ठ, ज्ञान को अखंड अग्नि तथा आनंद-योग को यज्ञ-फल के रूप में मानते हुए इच्छित-आनंद-प्राप्ति के हेतु, कर्म के द्वारा प्राप्त होनेवाले मोक्ष रूपी परमेश्वर, अगोचर, कर्म-रहित, हमारे देव, कमलनेत्रवाले, हमारे पालनहार, आदि नारायण तथा अखिल लोकाधीश की भक्ति, स्तुति, प्रार्थना एवं वंदना की। अपने मन की इच्छा पूर्ण करने के निमित्त हार, कर्पूर, नीहार, गोक्षीर तथा तारकों के सदृश उज्ज्वल शारदा देवी की उपासना की; चारु रामायण-रूपी चंद्र के जन्म-स्थान के रूप में विलसित होनेवाले वाल्मीकि का स्मरण किया, भारत-रूपी मंजरी के पारिजात, तत्त्ववेत्ता पराशर-पुत्र का स्मरण किया और उनके पुत्र शुकदेव की बड़ी भक्ति से स्तुति करने के पश्चात् मैं अपने मन में एक ऐसे ग्रन्थ की रचना करने का विचार करने लगा, जिसकी कथा के कथन से सभी सज्जन मेरा कीर्त्ति-गान करेंगे, जिसकी कथा का वर्णन करने से मेरे इह-लोक और पर-लोक दोनों सफल होंगे और जिस कथा के कथन से ईप्सितार्थ सिद्ध होंगे और साथ-ही-साथ पुण्य की प्राप्ति होगी।

२. ग्रन्थ-रचना का कारण

सृष्टि के समस्त प्राणी, जिस पुण्यात्मा की प्रशंसा बड़े आदर से करते हैं; जो सदाचार के पुण्य-फलस्वरूप सूर्य के समान उदित होकर कलिकाल का अंधकार दूर करते थे; जो श्रेष्ठ धर्म-पथ का महत्त्व जानते थे, जिनके पवित्र तेज के समान शत्रु-रूपी नक्षत्रों के प्रकाश मंद पड़ जाते थे; जिन्होंने अपने खड्ग की दीप्ति-रूपी गंगा-प्रवाह में अन्य राजाओं के ललाट में लगे गर्व-पंक को धो दिया था; असमान बलशाली; सत्यनिष्ठ; शरणार्थी राजा-रूपी भ्रमरों के लिए (जिनका कर-कमल) आधार था; ऐसे कोनकाट भूपति के वंश की कीर्त्ति बढ़ाते हुए नय, विनय, दया के आगार महाराजा के पुत्र गोनरुद्र नरेन्द्र महान प्रतापी तथा पवित्रात्मा थे। उनके पौत्र बुद्ध भूपाल अभंग, अप्रतिम विक्रमी, कुल-गोत्र के संवर्द्धक, देवेन्द्र के समान वैभवशाली, धीर और विख्यात थे। उनके पुत्र अक्षीण दाक्षिण्य-धनी (अर्थात् अक्षीण कृपावाले), धन-धान्य में कुबेर, मर्म में धर्मराज (युधिष्ठिर) के समान अति-पुण्य सौजन्य-शील, शत्रुओं के लिए अति शौर्यवान् वामदेव कार्त्तिकेय, शुभजन्मा, कामिनियों के लिए कामदेव, अखंड विक्रमी और रण-विशारद थे। वे चंदन, मंदार-चंद्रिका-हार, कदली, कुंद, इंदु सम उज्ज्वल कीर्तिमान, गोनवंश-रूपी पारिजात के फल-स्वरूप

दीखनेवाले, गोनवंश-रूपी उदयाद्रि पर भानु-सम दीप्त होनेवाले, गोनवंश-रूपी क्षीरसागर के (उत्पन्न) चंद्र सम सुशोभित, अपनी कीर्ति को दिग्-दिगंतों में व्याप्त करनेवाले, अपने दान-धर्म के द्वारा सबकी प्रशंसा प्राप्त करनेवाले, अपने असमान पौरुष से बड़ी आसानी से शत्रुओं का नाश करनेवाले, महा बलशाली एवं प्रतापी राजाओं के लिए वज्रपाणि सम दीखनेवाले, (शत्रु) नृप-वन के लिए साक्षात् अग्निदेव, सत्यनिष्ठ, महाबलशाली शत्रु-सेनाओं को मथने में मंथर पर्वत की भाँति प्रचंड रूप धारण करनेवाले, अपने खड्ग-रूपी सूर्य-बिम्ब की प्रभा से प्रतापी राजा-रूपी अंधकार का नाश करके अमर-वधुओं के मुख-कमलों को वीर-भ्रमरों से अलंकृत करनेवाले, शत्रुओं के प्राण-रूपी अनिल का सेवन करनेवाले श्रेष्ठ भुज-भुजंगों (सर्प-रूपी भुजाओं) पर राज्य-भार वहन करनेवाले थे, वे कुरु, केरल, अवंती, कुंतल, द्रविड़, मरु, मत्स्य, करुष, मगध, पुलिंद, सरस, पाण्ड्य, कोसल और बर्बर की राज-सभाओं में प्रशंसा प्राप्त करनेवाले, साम-दाम-भेद आदि नीतियों में निपुण, प्राचीन राजाओं के समान समस्त वैभवों से युक्त तथा नय, विनय आदि उपायों से सुस्थिर विजय प्राप्त किये हुए, यशस्वी विट्ठलनरेश, राजाओं में सर्वज्ञ, नरेशों से पूजित, सफल जगद्धित-चातुर्य-धुरी, एक दिन अपनी राज-सभा में बैठे हुए थे । उस समय पुराणवेत्ता, शास्त्रज्ञ, काव्य-नाटक-शिरोमणि, मित्र, मंत्री, पुरोहित, आश्रित, पुत्र, सामंत राजा और बहुश्रुत उनकी सेवा में उपस्थित थे । राजा भूलोक के देवेन्द्र के समान बड़े उत्साह से रसिकजनों द्वारा भारत, रामायण आदि का पाठ सुनकर बहुत प्रसन्न हुए ।

तत्पश्चात् वे रसिक-शेखर (राजा) राम-कथा-सुधा से अनुरक्त हो, सभा में यों बोले—'तेलुगु में रामायण को सुंदर ढंग से कहने की कविता-शक्ति रखनेवाले कवि इस संसार में कौन हैं ?' तब पंडितों ने उस उदात्त, यशस्वी विट्ठलनरेश से कहा—

(महाराज) आपके सुपुत्र, निपुण, पापरहित, नीति-निष्ठ, सर्वज्ञ, अनघ, शिष्ट-संपन्न, सर्वपुराणवेत्ता, सुंदर कलाओं के मर्मज्ञ, सज्जनों को आश्रय देने में ही सुख का अनुभव करनेवाले, कविसार्वभौम, कवि-कल्पतरु, कवि-कुल-भोज, कवीन्द्र, शत्रु-राजाओं के लिए वज्र-पाणि, शत्रु राजा-रूपी वन के लिए प्रचण्ड पावक के समान दीखनेवाले, जिनके भयंकर खड्ग में स्वर्गलोक तक प्रतिबिंबित है, त्रिलोक-दुर्दम, श्रेष्ठ-साधु-जन-रूपी कमलों के लिए सूर्य, पुरुषश्रेष्ठ, आपके परम भक्त, निखिल शब्द, अर्थ, गुण आदि के ज्ञाता, महापंडित, रामायण के मर्मज्ञ बुद्ध-नरेश (रामायण की कथा तेलुगु में कहने की) कविता-शक्ति रखते हैं । (काव्य रचने के लिए) आप उन्हें आदेश दें ।"

यह सुनकर उदात्त चरित्रवाले मेरे जनक ने मुझे बड़े स्नेह से बुलाकर यह आदेश दिया—'रामायण की कथा पुराणों के ढंग पर तेलुगु भाषा में मेरे नाम पर लिखो कि संसार के कवि और पंडित उसकी प्रशंसा करें ।' उनके मृदु वचनों से अत्यंत हर्षित होकर उनकी आज्ञा का पालन करने के हेतु शत्रुओं के लिए भयंकर मूर्त्ति, महान्, ललितसद्गुणा-लंकारवाले, निश्चल दयालु, धन्यात्मा तथा पुण्यात्मा मेरे पिता विट्ठलनरेश के नाम पर श्रीरामचन्द्र का चरित्र, इस ढंग से लिखूँगा कि राजा, पंडित, रसिक, सुकवि-श्रेष्ठ, गोष्ठियों में (उसे सुनकर) हर्षित होकर उसकी प्रशंसा करेंगे और जिसमें, शब्द, अर्थ, भाव,

गति, पद, शय्या, अर्थ-गौरव, यति, रस, कल्पना, प्रास, असमान रीतियाँ आदि होंगे और आदि कवि वाल्मीकि की कृपा से सभी सज्जन मेरी प्रशंसा करेंगे । कथा का प्रारंभ यों है—

३. कथा का प्रारंभ

एक दिन श्रेष्ठ तपस्स्वाध्याय-निरत, महान् शीलवान् मुनिश्रेष्ठ नारद से, अनघ, तपोनिधि वाल्मीकि ने हाथ जोड़कर प्रश्न किया—"हे मुने, आप कृपया बतलाइए कि इस संसार में, श्रीमान्, क्षमाशील, पुण्यात्मा, उन्नत, नीतिज्ञ, प्राज्ञ, दुर्दम, उत्तम, जितकाय, अजेय, ईर्ष्याहीन, संपन्न, सुव्रती, उदार और चरित्रवान् कौन है ? किसके क्रोध से इंद्रादि देवता डरते रहते हैं ? ऐसा व्यक्ति क्या, कभी हुआ है या आगे चलकर इस पृथ्वी पर जन्म लेनेवाला है ?"

यह सुनकर लोकज्ञाता नारद मुनि ने अपने मन में बहुत देर तक सोच-विचार कर कहा—"इस पृथ्वी पर श्रीविष्णु, महाराज दशरथ के यहाँ जन्मे हैं । वे नियतात्मा, अति-शौर्यनिधि, कृपानिधि, जयी और स्वजनों की रक्षा में विचक्षण हैं। वे कंबु-कंधर, सुंदराकार, बिंबारुण ओष्ठ, पीन वक्ष, विशाल-नेत्र, विशाल अवतंस और आजानुबाहु हैं । वे नियतात्मा, वेदवेदांग-कोविद, वेदविद्, विवेकभूषण, सूर्य के समान तेजस्वी, समुद्र के समान गंभीर, अमराद्रि के समान धीर और पृथ्वी के समान क्षमाशील हैं । उनकी मूर्त्ति (लोगों को) अपनी ओर आकृष्ट करती है । वे कौसल्या के आनंद-दाता, श्रीकर, दीप्तिमान्, त्रिलोक-पावन मूर्त्ति, राम के नाम से अवतरित हुए हैं ।

राजर्षि (विश्वामित्र) के (रामचन्द्र को) माँगने तथा राजा के भेजने पर वे मुनि के साथ गये । (उन्होंने) यज्ञ की रक्षा की, दानवी का नाश किया, राक्षसों का संहार किया, शिला को स्त्री बनाया, शिव-धनुष को तोड़ा और सीताजी से विवाह करके बड़ी ख्याति पाई । सीताजी के साथ अयोध्या जाते समय बड़े क्रोध से विप्र (परशुराम) ने आकर उन्हें रोका, तो वे उनसे जूझ पड़े और उनका धनुष छीनकर उसे तोड़ डाला । उसके बाद सब लोगों के हृदयों को आनंद से भरते हुए वे अयोध्या पहुँचे ।

जब पिता '(राम को) युवराज बनाऊँगा'—ऐसा कहकर अयोध्या का राज देने को उद्यत हुए, तब ढीठ मंथरा ने कैकेयी के कान भरे । कैकेयी पहले ही युद्ध में दो वर प्राप्त कर चुकी थी । (राजा ने) राघव को कानन में भेज दिया । पिता के वचन से बँधकर, वे सीता और लक्ष्मण के साथ वन में गये, जहाँ उन्होंने बड़े उत्साह से वनों में तपस्या करनेवाले संयमी मुनियों की रक्षा की, खर-दूषणादि राक्षसों के सर शरों से काट डाले, ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव से मित्रता की, एक ही बाण से वालि का संहार किया, (सीता को पुनः प्राप्त करने का) दृढ़ निश्चय करके सेतु को बाँधा तथा पापी दशकंठ के दसों सिर काट डाले ।

उसके पश्चात् आश्रितों के कल्पवृक्ष रामचंद्र, सीता के साथ, वनचर-समूह तथा इन्द्रादि देवताओं द्वारा स्तुति किये जाते हुए और सेवा प्राप्त करते हुए, (अयोध्या) आये और अपनी पूज्य साम्राज्य-लक्ष्मी का पालन करते हुए तथा प्रजा को सुख पहुँचाते हुए कृत-कृत्य हुए हैं ।"

इस प्रकार श्रीराम का चरित्र अथ से इति तक कहकर नारद मुनि ब्रह्मलोक को चले गये । मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि अत्यंत हर्ष से अपने शिष्य भरद्वाज के साथ सज्जनता की मूर्त्ति, अकलुष जीवन-युक्त, तमसा नदी के तट पर गये और उस नदी के जल से अपने अनुष्ठान का पालन करते रहे । उस नदी के किनारे (पेड़ पर) क्रौंच पक्षियों का एक जोड़ा बड़े प्रेम से मिलकर बैठा था । एक व्याध ने जब उनमें से एक को मार गिराया, तब क्रौंची शोक से विलाप करने लगी । यह देखकर न्याय और धर्म का विचार करके मुनि उस व्याध पर क्रोध करते हुए बोले––"हे निषाद, हे पापी, इन्होंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था ? जब ये क्रौंच बड़े प्रेम से मिले, तब तुमने इस प्रकार एक को क्यों मार गिराया ? इस पाप के कारण तुम बहुत दुःख प्राप्त करते हुए अनेक वर्षों तक भटकते रहोगे ।"

इस प्रकार व्याध को शाप देकर वाल्मीकि ने अपने शिष्य भरद्वाज से छन्दोबद्ध शब्दों में कहा––"मेरे द्वारा कहे हुए वचनों पर बार-बार विचार करने पर मालूम होता है कि इन चार समवर्ण पंक्तियों में छन्दोबद्धता है । यह बड़े आश्चर्य की बात है कि ये शाप के वाक्य अपने आप एक पद्य के रूप में प्रकट हुए हैं ।" तब भरद्वाज आदि शिष्य बड़ी भक्ति से उस पद्य को (दुहराने) पढ़ने लगे । अनघ वाल्मीकि अपने आश्रम को लौट आये ।

एक दिन ब्रह्मा उनके आश्रम में आये । वाल्मीकि ने उनकी अगवानी की, चरणों पर झुककर नमस्कार किया, कुशासन पर बिठाकर उनकी पूजा की और हाथ जोड़कर अपने मुँह से निकले छन्दोबद्ध शाप-वचन उन्हें सुनाया । तब ब्रह्मा ने मुस्कुराकर कहा––"हे अनघ, यह वाणी पद्य के रूप में आपके मुख से व्यक्त हुई है । नारद ने सारा राम-चरित मुझे संक्षेप में कह सुनाया है । आप उसको विस्तार के साथ सुनाइए । अपने आप वह चरित्र आपको सूझ जायेगा ।" यों कहकर ब्रह्मा चले गये ।

इस प्रकार बड़ी कृपापूर्वक कमलासन के वर देकर चले जाने के पश्चात् मुनि ने निर्मल मति से ध्यान लगाकर सोचा और रघुचरित, दशरथ की कथा, रघुराम का जन्म, राम का आचरण, ताड़का-वध, उद्दण्ड राक्षसों का गर्व-भंग, यज्ञ-रक्षा, गंगा का महत्त्व, गौतम की स्त्री का शाप-मोचन, धनुर्भंग, सीता-विवाह, अयोध्या जाते समय परशुराम का क्रोध, राम के युवराज्याभिषेक की तैयारी, दुष्ट स्त्री कैकेयी के कटुवचन, अभिषेक में विघ्न, राम-वन-गमन, राजा का शोक, दशरथ की मृत्यु, दाशरथि से गुह की भेंट, गंगा पार करना, तपोनिधि भरद्वाज से (राम की) भेंट, चित्रकूट पर्वत पर पहुँचना, भरत और राम की भेंट और उनका पादुका प्राप्त करके लौट जाना, दंडकवन-गमन, प्रचंड विराध का वध, पुण्यात्मा शरभंग के दर्शन, मुनियों को वचन देना, अगस्त्याश्रम में पहुँचना, दिव्य अस्त्रों की प्राप्ति, मुनि के आदेशानुसार पर्ण-कुटी बनाकर निवास करना, (राम पर) मुग्ध होकर राक्षसी (शूर्पणखा) का आना, उसके साथ वार्त्तालाप, रामानुज के द्वारा उसका नाश, उधर रावण का बुद्धि-भ्रष्ट होना, कुटिल मारीच की मृत्यु, राक्षसराज (रावण) के द्वारा सीता-पहरण, राम का विलाप, जटायु की मृत्यु, कबंध से भेंट, पंपासरोवर को गमन, ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव से भेंट, उससे मित्रता, वालि-सुग्रीव के वैर का कारण जानना, श्रीराम का एक साथ

सातों ताड़ के पेड़ों को काट देना, वालि का वध, दारा का विलाप, रविपुत्र (अंगद) का राज्याभिषेक, माल्यवंत में उस पुरुषोत्तम का वर्षा-काल बिताना, काकुत्स्थ (राम) का कोप, कपियों का आना, अंगूठी देकर (उन्हें) भेजना, वानरों के द्वारा सीता का अथक अन्वेषण, बिल का दर्शन, महेन्द्रगिरि का आरोहण, संपाती से भेंट, समुद्र को लाँघते समय बीच में मैनाक के दर्शन, सिंहिका की वायुपुत्र से मुठभेड़ और उसकी मृत्यु, लंका राक्षसी को तंग करना, उस स्त्री से लंका का मार्ग जानकर लंका में प्रवेश करना, अंतःपुर में सीता की खोज, अशोकवन का अवलोकन, वहाँ सीताजी का संदर्शन, विश्वास दिलाने के लिए अंगूठी देकर उन्हें सान्त्वना देना, अशोकवन को उजाड़ना, उस समय हनुमान् का अक्षयकुमार को मार डालना, पवनसुत का बंधन में पड़ना, लंका नगर को जलाना, मानिनी सीता का चूड़ामणि देकर श्रीराम तथा हनुमान को उत्साहित करना, सूर्यकुलाधिप (श्रीराम) का लंका पर आक्रमण करना, समुद्र-तट पर पहुँचना, समुद्र का मार्ग देने से इनकार करना, श्रीराम का क्रोध, विभीषण का आगमन, विभीषण के दुःख से राम का दुःखी होना, सेतु-बंधन, जलधि को पार करना, सेना को (उचित स्थानों पर) नियुक्त करना, पराक्रम के साथ कुंभकर्ण आदि उग्र वीरों को मार डालना, रावण का वध करना, दया से विभीषण को लंकाधिपति बनाना, अनुपम शुद्धि (सीता का अग्नि-प्रवेश), ब्रह्मादि देवताओं द्वारा प्रशंसित होते समय सीताजी की रामचंद्रजी से भेंट, पुष्पक विमान में बड़े कुतूहल के साथ समुद्र पार करना, सेतु पर श्रीकंठ को प्रतिष्ठित करना, अयोध्या को लौट आना, भरत-मिलन, अद्वितीय ढंग से रघुराम का सिंहासनारूढ़ होना, कपि सेनापति, सुग्रीव, विभीषण आदि को विपुल संपत्ति देकर विदा करना, बड़े प्रेम से सब प्रकार से प्रजा की रक्षा करते हुए उनका पालन करना, आदि सब बातें अच्छी तरह जानकर चौबीस हजार श्लोकों और पाँच सौ सर्गों में तथा छह कांडों में रामायण की रचना की ।

बाद की कथा उत्तर-काण्ड में लिखकर वाल्मीकि मुनि सोचने लगे कि कौन इस कथा का पाठ करने में समर्थ होंगे और पृथ्वी में यह कथा कैसे फैलेगी ? उसी समय, शुद्धातमा, मनसिजाकारवाले, मंजुभाषी, संगीत-साहित्य-वेत्ता, मुनिवेषधारी कुश और लव उनके पास आये और हाथ जोड़कर बोले—'हे अनघ, हम बड़े उत्साह से रामायण पढ़ने आये हैं, हमें पढ़ाइए ।' (यह सुनकर) हर्षित होकर मुनि ने सोचा, मेरा मनोरथ पूरा हो गया । उन्होंने राम का चरित्र, जो गेय, पठनीय तथा पुण्यदायक है, तंत्री-लयान्वित रीति से उन्हें पढ़ाया । उन्होंने भी श्रृंगारादि रस, वृत्ति-भेद, संधि, समास, शब्द और अर्थ जानते हुए उसका अध्ययन किया और स्थान-स्थान में, मुनि-समाजों में उसका गान करते हुए उनकी प्रशंसा पाते रहे । काकुत्स्थवल्लभ (राम) ने भी अपने भाइयों के साथ बड़े कुतूहल से उन्हें सभा में बुला भेजा । उनके रूप, उनकी स्थिरता, उनकी वाणी आदि (श्रीराम को) बहुत प्रिय लगे । श्रीराम कथा सुनने लगे । वह कथा इस प्रकार है—

४. कुश-लव का रामायण-गान

कोसल-देश में सरयू नदी के किनारे, पृथ्वी के उरु-भाग के समान अयोध्या नगर सुशोभित था। वह बारह योजन लंबा, पाँच योजन चौड़ा था और शिल्प-निपुण मय द्वारा निर्मित था। वह शत्रु-राजाओं की आँखों में खटकनेवाला नगर सूर्यवंशी राजाओं की राजधानी था। वह रत्नमय गोपुर, मणिमय तोरण, मणिमय कुट्टिम (फर्श), गवाक्ष, क्रीड़ा-गृह, कृतक शैल (बनावटी पर्वत), पटह-नाद (नगाड़े की आवाज), विशालकाय हाथी, उत्तम घोड़े, नाना प्रकार के रथ-समूह, सेना, स्वच्छ सौध, बाजार, कमनीय उपवन, सरोवर, तालाब, बावड़ी ऊख के खेत, धान के खेत, गहरी खाई तथा महलों से भरा हुआ संसार-भर में विख्यात था। उस नगर में दशरथ नामक राजा राज्य करते थे, जो धनुर्विद्या में निपुण, साम, दाम, भेद आदि चार उपायों के ज्ञाता, (भगवान् के ऐश्वर्य आदि) षड्गुणों के आगार, (इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया) शक्तित्रय-संधानकर्त्ता, धर्मनिरत, कृताध्वर (जिसने यज्ञ किया है), श्रीसंपन्न, धर्मशास्त्र, पुराणादि के ज्ञाता, अजनंदन, बाल्यावस्था से नियमानुकूल प्रजा का पालन करते रहनेवाले परमपवित्र व्यक्ति, इन्द्र के निमित्त शंबरासुर का गर्व भंग कर इंद्र से मंदार-पुष्पों को प्राप्त करनेवाले, इन्दुमती के पुत्र और सूर्यवंश में श्रेष्ठ राजा थे।

वे तेज, कांति, त्याग, चातुर्य, उदारता, साहस, आदि सद्गुणों के भांडार थे। वे उदित होते हुए सूर्य की भाँति अपने उग्र तेज से सप्त द्वीपों को दीप्त करते हुए शासन करते थे। उस नरनाथ के तीन सौ पचास रानियाँ थीं, जिनमें विशेष कर अचल शील-वाली कौसल्या, कुचकुंभ-निर्जित परिधानवाली कैकेयी, पुण्यशीला सुमित्रा त्रयी विद्याओं के समान थीं। इस पृथ्वी पर उनके हितैषी पुरोहित वसिष्ठ आदि पुण्य संयमी थे। पुण्यात्मा धृष्टि, विजय, सिद्धार्थ, अर्थसाधक, जयंत, नीतिवेत्ता अशोक, धीमान् मंत्री सुमंत्र आदि उनके आठ सचिव थे। सभी सचिव परस्पर मित्र और स्वामिकार्य में विचक्षण और चतुर थे। वे परम मर्मों के उद्घाटन में निपुण थे और विचार-पूर्वक प्रजा की रक्षा करते थे। समस्त कार्यों को सँभालनेवाले ऐसे आठ मंत्रियों से युक्त राजा दशरथ अष्टाक्षर और अष्ट-भुजाओं से समन्वित नारायण की तरह सुशोभित थे। उनके राज्य में निर्बल, चुगलखोर, रोगी, दरिद्र, व्यभिचारी, अनाचारी, पापी, क्रूर, नीच, जड़, मूर्ख, मंद, एक भी व्यक्ति नहीं था। सारी प्रजा मणि-कुंडल आदि से अलंकृत, धर्मपरायण, कुलाचार-निरत, सकलशास्त्र-पारंगत तथा विष्णु-भक्त थी। इस प्रकार बड़ी कुशलता से राज्य का पालन करते और राज्य-सुख भोगते हुए राजा दशरथ एक दिन अपने मन-ही-मन इस प्रकार सोचने लगे।

५. पुत्रकामेष्टि यज्ञ करने के लिए दशरथ का मंत्रियों से परामर्श

राजा दशरथ अपनी निस्संतान अवस्था का तथा अपनी ढलती आयु का विचार करते हुए बहुत दुःखी हुए। उन्होंने अपने सभी श्रेष्ठ मंत्रियों को बुला भेजा और उन्हें उचित आसन पर बैठने का आदेश देकर स्वयं भी आसन पर बैठ गये। और, उनसे इस प्रकार कहने लगे––"मैंने बहुत दान दिये, अनेक धर्म-कार्य किये, कई यज्ञ किये और बहुत

सालों से जीवन व्यतीत कर रहा हूँ । मैंने बड़ी कीर्त्ति पाई है । तुम्हारे जैसे स्नेही मंत्रियों के रहते हुए मुझे किसी बात का अभाव नहीं है । पुत्र-हीन होने का एकमात्र दुःख ही मुझे है । कुल का उद्धार करनेवाले पुत्रों के विना कोई भी व्यक्ति पुण्य और स्वर्गलोक की प्राप्ति नहीं कर सकता । इसलिए मेरे भी पुत्र उत्पन्न होने चाहिए । समस्त संसार मेरी प्रशंसा करे, एतदर्थ मैं अश्वमेध यज्ञ करूँगा और उसके बाद पुत्र-कामेष्टि यज्ञ करूँगा । इन यज्ञों के कारण मेरा हित होगा और मैं जरूर पुत्र प्राप्त करूँगा । राजा के यों कहने पर वे सब बड़े संभ्रमचित्त होकर मन में हर्षित हुए । उन्हें प्रसन्न देखकर राजा मन में विचारकर बोले--

मैं अनुपम रीति से, बड़े विनय के साथ अश्वमेध यज्ञ करूँगा, जिसकी प्रशंसा देवता भी करेंगे और पुत्रों के लिए पुत्रकामेष्टि-यज्ञ नेत्र-पर्व रीति (दर्शकों की आँखों को तृप्ति देनेवाली रीति) से करूँगा । ऐसा कहकर उन्होंने आवश्यक प्रबन्ध करने के लिए सब लोगों को भेजा । उसी समय अनघ वसिष्ठ आदि मुनि वहाँ आये । (राजा ने) दण्डवत की और बड़ी श्रद्धा से उन्हें लिवा लाये और उनसे बोले--हे महान् संयमी तथा पुण्यवान् वसिष्ठ ! यथाशीघ्र आप मुझसे श्रेष्ठ अश्वमेध यज्ञ करवाइए, जिससे मुझे एक पुत्र की प्राप्ति हो ।' इस पर (मुनि बोले)--'तुम्हारे द्वारा संपन्न होनेवाले अश्वमेध यज्ञ का निर्वाह हम करेंगे । उस श्रेष्ठ यज्ञ की महिमा का वर्णन करना क्या सहज है ? इसके अतिरिक्त पुत्र-कामेष्टि करने से तुम धन्यात्मा पुत्रों को प्राप्त करोगे ।' यह सुनकर राजा को बड़ा हर्ष हुआ । उन्होंने सबको विदा किया और रनवास में पहुँचकर सभी रानियों को यह शुभ संवाद सुनाया । तब से वे प्रसन्नचित्त रहने लगे । एक दिन अनघ सूत (सुमंत्र) राजा के पास आकर एकान्त में यों कहने लगे--

६. ऋष्यशृंग का वृत्तांत

सुमंत्र ने कहा--"हे महाराज, इसके पहले आपको संतान-प्राप्ति कैसे होगी, इस सम्बन्ध में मैंने एक कथा सुनी थी। आप उसे सुनें । अंगराज के पुत्र गुणवान् रोमपाद के राज्य में न जाने उनके किस अपराध से वर्षा नहीं हुई । अपने राज्य में कहीं भी वर्षा न होते देख राजा बहुत दुःखी हुए । उन्होंने श्रेष्ठ मुनियों से वर्षा के निमित्त बहुत हवन करवाये; फिर भी वर्षा नहीं हुई । तब राजा को अत्यंत दुःख से पीड़ित देखकर मुनियों ने कहा--"हे महीपाल ! हे राजचन्द्र! इस पृथ्वी पर वर्षा होने के लिए हम शुद्ध मन से आपको एक उपाय बतायेंगे । हे पर्वत के समान धीर ! परहितनिरत विभांडक के पुत्र पुण्यनिधि ऋष्यशृंग जन्म से नगर-ग्राम के सम्बन्ध में कोई ज्ञान न रखने के कारण स्त्रियों के नाम तक से अनभिज्ञ हैं । वे तपस्वी की वृत्ति में जंगलों में रहते हैं । हे वसुधेश ! उनके यहाँ आते ही अनावृष्टि-दोष तुरन्त दूर हो जायगा । इसपर राजा अपने मन में सोचने लगे कि उस मुनिश्रेष्ठ को नगर में कैसे ले आ सकूँगा । उन्होंने बुद्धिमान् मंत्रियों तथा मुनियों को बुलाकर बड़े प्रसन्न चित्त से पूछा । मुनियों तथा मंत्रियों ने भी बड़ी प्रसन्नता से उपाय बताये, तो राजा मन ही मन बहुत हर्षित हुए । मुनियों ने कहा--"महाराज, अभी आप कई (प्रकार के) मिष्टान्न तथा सुन्दर वस्तुएँ देकर वेश्याओं को वन में भेजिए ।

वे प्रौढ़ कामिनियाँ सीधे वहाँ जाकर, अच्छी तरह उस मुनि के दर्शन करेंगी, उनकी महिमा देखेंगी, उन्हें मिष्टान्न देंगी और बड़े प्रेम से उनके मन को विचलित करेंगी । वे कामिनियाँ अपनी विलास-चेष्टाओं से उनके मन को रसार्द्र बना देंगी और अपने मोहक रूप की माया का प्रभाव डालकर यहाँ वापस आयेंगी । तब वे भी उनके पीछे-पीछे यहाँ आयेंगे ।

यों कहकर सभी मुनि चले गये । उस दिन रात्रि को राजा बहुत प्रसन्नचित्त रहे । सबेरे उठते ही राजा ने मुनियों का स्मरण करते हुए बड़ी अनुरक्ति के साथ अनुपम यौवन-रूप-संपन्न, कामदेव के मोहन मंत्र के सदृश सुन्दर तथा चतुर वेश्याओं को वन में भेजा । वे युवतियाँ उस मुनि के वन में गई और उनके आश्रम के पास जा पहुँचीं । उन्होंने अपनी नाट्य-कला तथा संगीत-कला का परिचय मुनि को दिया । वे पुण्यनिधि यह न जान सके कि वे स्त्रियाँ हैं, और संगीत आदि का रसास्वादन न कर सकने के कारण सोचने लगे कि ये इस वन में रहनेवाली मंदगामिनी कोई अनोखी मृगी हैं । एक दिन वे रमणियाँ उनके पास पहुँच गई । उन्होंने कामिनियों को अच्छी तरह देखा, उनके कुचों का नाम पूछा, कुचों पर डोलनेवाले हारों का उद्देश्य पूछा और कहने लगे—"मेरे सिर पर तो एक ही शृंग है, लेकिन आपके उर पर दो शृंग निकल आये हैं । आपके ये वल्कल वस्त्र बड़े ही कोमल हैं । ये अनुपम वल्कल किस पेड़ से प्राप्त होते हैं ? आपके जटाजूट मेरी जटाओं के समान नहीं हैं, वे चमक रहे हैं । आपके शरीर पर मली हुई राख सुगंध दे रही है । आपके ये वेद-नाद श्रुतिमधुर हैं । मैंने इस वन में ऐसा दृश्य अबतक नहीं देखा है, न सुना है । कहीं मुनियों की भी ऐसी वेष-भूषा होती है ? आप कहाँ के मुनि हैं ?"

उस महान् व्यक्ति को अपने जाल में फँसते देख उन स्त्रियों ने हँसते हुए कहा—"हे मुनि, कर्ण-मधुर साम-गान करते हुए, उसके अनुसार शुद्ध रीति से पदन्यास करके दिखाना हम जानती हैं। इस पृथ्वी पर हमारा कौशल जानना आपके लिए कहाँ संभव है ?" इस तरह अपनी वचन-चातुरी से उस मुनिनाथ को भुलावा देकर उन सुंदरियों ने पूछा—'आप कौन हैं ? किनके पुत्र हैं ? क्यों इस वन में रहते हैं, बताइए ।' तब उन्होंने कहा—"मैं शुद्ध कीर्तिमान्, पुण्यात्मा विभांडक का पुत्र हूँ । मेरा नाम ऋष्यशृंग है । तप में महान् निष्ठा रखते हुए तपस्या करने के लिए ही मैं यहाँ रहता हूँ । मेरे पिताजी भागीरथी में स्नान करने की इच्छा से योगिपुंगवों के साथ गये हुए हैं । वे अन्य देशों में न जाकर बड़ी तपस्याएँ करते हुए अमल तथा भक्तियुक्त चित्त से यहीं पर रहते हैं । आप लोगों के यहाँ आने से मैं पापरहित हुआ, कृतार्थ हुआ । अपने पिताजी की कृपा से बहुत अधिक तपश्चर्या में लीन मैं भी यहीं रहता हूँ । इन वनों में आप जैसे नागर लोगों को देखकर मुझे आश्चर्य हुआ । क्या अब हम सब आश्रम में चलें ? "

यों कहकर उन मुनियों को (उन वार-वनिताओं को) अपने आश्रम में ले जाकर ऋष्यशृंग ने उनका आदर-सत्कार किया । उन युवतियों ने प्रसन्नता से उन मुनि का आतिथ्य ग्रहण करने के बाद कहा—'हे मुनिवर, यह लीजिए, हम अपने वन से श्रेष्ठ फल लाये हैं ।' यों कहकर उन्होंने स्वादिष्ठ एवं मनोहर लड्डू, पूड़ी और तरह-तरह के स्वादिष्ठ मिष्टान्न उन्हें दिये । मुनि उन्हें खाते जाते थे और बीच-बीच में उनके स्वाद की प्रशंसा

करते जाते थे । उन युवतियों की ओर देकर बार-बार मिठाई माँगते, परवश-से होकर हाथ फैलाते और कहते--'हे मुनिवर, मैं ने अब तक ऐसे फल कहीं नहीं देखे । आपका ही तप श्रेष्ठ तप है ।'

यह सुनकर उन युवतियों ने मुस्कुराते हुए अपनी तनुलताओं को उनके शरीर से छुलाकर, अपने सौरभमय उच्छ्वासों से उनके धैर्य को डिगाते हुए हौले-हौले अपने मुख-कमलों को उनके मुख से सटाया और मीठे वचन, हाव भाव, मधुर संगीत तथा मादक दृष्टियों से उन्हें मोहित कर उनके हृदय को रसार्द्र करते हुए, अपने कुचों से कसकर आलिंगन पाश में उन्हें परवश बनाया और फिर कहने लगीं--'हे अनघ, अब हमें आज्ञा दें कि अपने आश्रम को वापस जायँ ।' यों कहते हुए विभांडक के आगमन के भय से पीड़ित वे वहाँ से रवाना हो गईं और उस वन के निकट ही रहने लगीं । उन कमल-लोचन रमणियों के जाने के पश्चात्, ऋष्यश्रृंग ने यह सोचते हुए कि न जाने वे फिर कब लौट आयेंगी, सारी रात जागकर ही व्यतीत कर दी और दूसरे दिन वे उस जगह पर जा पहुँचे, जहाँ पहले दिन उन्होंने उन रमणियों को देखा था ।

७. वेश्याओं के साथ ऋष्यशृंग का रोमपाद के घर आना

पायलों का झंकार करती हुई, राजहंसों की गति से वे युवतियाँ मुनि के पास आईं और प्रफुल्ल वदन हो चारों ओर से उन्हें घेरकर कहने लगीं--'हे मुनिवर, आप हमारे वन में पधारें ।' जब उन्होंने स्वीकार कर लिया, तब वे उस श्रेष्ठ मुनि के चित्त कोद्रवित करनेवाली बातें करते हुए, अपने उपायों तथा हाव-भावों से उनको मोह-मुग्ध कर लिया और उन्हें अंग-देश में इस प्रकार ले आईं, जैसे शिकारी पक्षी किसी नये शिकार को पकड़-कर ले जाते समय विस्तृत पथ के भय से उसे बचाने के लिए अपने हस्तपल्लव-रूपी पालकी में (चंगुल में) ले जाता है । उस ऋष्यश्रृंग के आते ही अंग-राज्य में घोर वर्षा होने लगी और शस्य बढ़ने लगे । राजा सकल सौभाग्य से युक्त हो संतुष्ट हुए । उन्होंने बड़ी भक्ति से उस मुनि की पूजा की और अपनी पुत्री शान्ता का विवाह उनके साथ कर दिया । वे मुनि उसी राजा के यहाँ रहते हैं । यदि दशरथ उस मुनि को अपने यहाँ ले आकर उनसे पुत्र-कामेष्टि यज्ञ करायें, तो वे (दशरथ) चार बहुश्रुत तथा महान् पुत्र तथा समृद्धि प्राप्त करेंगे । इस प्रकार मुझसे पहले सनत्कुमार ने कहा था । इसलिए आप उस ऋष्यश्रृंग से भक्तियुक्त प्रार्थना कर उन्हें यहाँ ले आयें ।"

इस प्रकार कहकर सूत चले गये । उनके जाने के बाद मन में हर्ष तथा भक्ति का अनुभव करते हुए चतुर दशरथ उस राजा रोमपाद के यहाँ गये और मुनिश्रेष्ठ ऋष्यश्रृंग को प्रणाम करके कहा--'हे पवित्र आत्मा मुनिराज, आप मेरी विनती सुनें । मैं अपने मन में पुत्र प्राप्ति की इच्छा लेकर आपके यहाँ आया हूँ । आप मुझे अपनाइए ।' राजा ने उनकी कृपा प्राप्त करने के लिए इस प्रकार उनकी स्तुति की और उनसे यज्ञ का ऋत्विक् बनने की प्रार्थना की । फिर अनुपम पालकी में उन्हें बिठाकर अयोध्या के लिए रवाना हुए । उन्होंने दूतों के द्वारा अपने नगरनिवासियों को यह आदेश भेज दिया कि नगर इन्द्रपुरी के समान सुन्दर सजाकर रखा जाय । दूतों ने नगरनिवासियों को यह आदेश

सुनाया । उन्होंने नाना प्रकार से नगर को सजाया और जहाँ-तहाँ दुंदुभि, शंख, आदि का तुमुल नाद करने लगे । उसी समय राजा ने भी नगर में प्रवेश किया और मंगलवाद्यों के बजते हुए, विघ्ननाशक (ऋष्यश्रृंग) को शांता देवी के साथ, बड़ी चतुरता से अयोध्या में लाये ।

राजा ने ऋष्यश्रृंग को लाकर अन्तःपुर में ठहराया । अर्घ्य-पादादि देकर विधिवत् उनकी पूजा की और अपने को कृतार्थ मानकर प्रसन्न हुए । उसी समय कौसल्या आदि रानियों ने राजा की आज्ञा लेकर बड़े हर्ष से शान्ता[1] देवी को श्रेष्ठ भूषण, वस्त्र, माला आदि देकर बहुविधि से उनका सत्कार किया ।

कुछ दिन के पश्चात् संसार के प्राणियों को आनंदित करते हुए वसन्त ऋतु आई । तब राजा बड़े उत्साह से ऋष्यश्रृंग के पास गये और बड़ी भक्ति से प्रणाम करके विनय किया--'हे संयमीप्रवर! आप मुझसे यज्ञ कराके मेरा उद्धार कीजिए ।' तब उन्होंने--'ऐसा ही हो,' कहकर रविकुलोत्तम राजा दशरथ से आगे कहा--'हे राजन्, यज्ञ के लिए विधिवत् आवश्यक सामग्री शीघ्र मँगवाइए ।' तब राजा ने योग्य व्यक्तियों को उन सब वस्तुओं का संचय करने के लिए भेजा और सब सामग्री मँगवाई । (उन्होंने) सुमंत्र को भेजकर कीर्त्तिमान् केकयराज, अप्रतिहत तेजस्वी काशिराज, जनक महाराज, अंगराज आदि पुण्यचरित्र नरेशों को यज्ञ देखने के लिए सविनय आमंत्रित किया । (इसके पश्चात्) उन्होंने सुमंत्र से कहा--'तुम शीघ्र जाकर पुण्यवान् वेदवेदांग-पारंगत, गृहस्थ, निपुण एवं महिमा-समन्वित ब्राह्मणों को तथा सुयज्ञ, जाबालि, कश्यप, महात्मा वसिष्ठ तथा वामदेव आदि (पुरोहितों) को लिवा लाओ ।'

सुमंत्र बड़ी प्रसन्नता से गया और बड़ी श्रद्धा से उन सबको लिवा लाया । (राजा ने) उन्हें अर्घ्य, पाद्य आदि देकर (उनका स्वागत-सत्कार किया) । वे अपने निर्मल व्रत की निष्ठा के अनुकूल धर्मसम्मत तथा उचित वचन यों बोले--"हे मुनिश्रेष्ठ, पुत्रहीन होने से अत्यन्त दुःखी हूँ, पुत्र-प्राप्ति की इच्छा बलवती होने के कारण मित्रों के परामर्श से अश्वमेध यज्ञ, तथा पुत्र-प्राप्ति के लिए पुत्र-कामेष्टि यज्ञ करने के लिए इन ऋष्यश्रृंगजी को आमंत्रित किया है । (अब) आपके अनुग्रह का प्रार्थी हूँ ।"

राजा की बातों से प्रसन्न होकर वसिष्ठ आदि तपोधन मुनियों ने कहा--"हे रवि-कुलोत्तम, लोकहितार्थ पुत्रों को प्राप्त करने की आपकी इच्छा सर्वथा संगत है । अब अश्व को छोड़िए । इस अश्वमेध से आपके विश्वरक्षक एवं उज्ज्वल पराक्रमी चार पुत्र होंगे ।"

इससे बहुत संतुष्ट होकर राजा ने यज्ञ के लिए योग्य जवनाश्व (तेज जानेवाला घोड़ा) को चुनकर, भुवनपावन मूर्त्ति की पूजा करके, उस घोड़े के ललाट पर अपना नामांकित एक पट्ट बाँधकर, एक साल तक उसे अपनी इच्छा से घूमने के लिए छोड़ दिया । उस अश्व की रक्षा के लिए पराक्रमी सेना तथा सामंत नरेश भी भेजे । उसके बाद वसिष्ठ आदि मुनियों की अनुमति से अनुपम शिल्पकारों को बुलाकर सरयू नदी की उत्तर दिशा में वेद-विधि के अनुसार एक यज्ञ-शाला का निर्माण करने के लिए भेजा और सभी देश के राजाओं तथा उन देशों में निवास करनेवाले विप्र, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों को भी आमंत्रित किया ।

इतने में एक वर्ष पूरा हुआ और मधुमास आया । तब राजा ने चिर तपोनिधि ऋष्यश्रृंग की अनुमति तथा गुरु की आज्ञा लेकर एक अच्छे मुहूर्त्त में बड़े उत्साह से शान्ता तथा ऋष्यश्रृंग के साथ, यज्ञोपकरणों तथा हवन-कुंड से युक्त, इक्कीस सुन्दर यूपों से शोभायमान, श्रौतधर्म-क्रियाचार-विहित, मायाप्रवीण, राक्षसों से रहित तथा समस्त पाप-रहित यज्ञ-शाला में प्रवेश किया ।

८. दशरथ का यज्ञ-दीक्षा लेना

यज्ञाश्व के आते ही, यज्ञ-दीक्षा ग्रहण कर, यतिशुद्धि प्राप्त करके, वसिष्ठ आदि श्रेष्ठ मुनिजनों को ऋत्विकों के रूप में वरण कर, अपनी इच्छा से सवनत्रय को पूरा करके, विमल यूपकाष्ठों से बँधे हुए जलचर, वनचर, विहग, उरग आदि तीन सौ पशुओं तथा प्रख्यात यज्ञाश्व का वध करके श्रुतियों में जिन-जिन मंत्रों के साथ, जिन-जिन आहुतियों को देने की विधि बताई गई है, उन मंत्रों के साथ ऋत्विकों ने उन आहुतियों का हवन किया । अग्निदेव सप्त-जिह्वाओं से प्रज्वलित हुए । देवता उन आहुतियों से तृप्त हुए । उस यज्ञ के दिनों में न कोई भूखा रहा, न कोई संतप्त रह गया । सभी मिष्टान्न, वस्त्र. स्वर्ण, मणिभूषण आदि से संतृप्त किये गये ।

जब किसी भी विघ्न के विना यज्ञ समाप्त हुआ, तब ज्योतिष्टोम, विश्वजित् आदि महान् यज्ञ-क्रियाओं को सांग रूप से पूरा किया और यज्ञ-दक्षिणा के रूप में अध्वर्यु (यज्ञ-करानेवाले चार ऋत्विकों में से एक) को (अपने राज्य का) दक्षिण का भाग, होता को पश्चिम का भाग तथा उद्‌गाता को उत्तर का भाग दिया । अयोध्या को छोड़ बाकी सभी देशों को (दान में) दे दिया, जिससे ऋत्विक् प्रसन्न होकर कहने लगे—"कब हम आपके दिये हुए राज्य का शासन करें और कब अपने अनुष्ठान का पालन करें । हम कहाँ और देश का शासन कहाँ ? हे राजन्, आप हमें इस राज्य का मूल्य दे दें ।" तब राजा ने दस करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ, सोने की चौगुनी चाँदी और एक लाख गायें उन्हें दीं । ऋष्यश्रृंग आदि ऋत्विक् उस धन को आपस में बाँटकर संतुष्ट हुए । उस विमल यज्ञ-कर्म में प्रवृत्त परिचारकों को राजा ने एक करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ दीं । माँगनेवालों को श्रेष्ठ आभूषण दिये । जिसने जो कुछ माँगा, राजा ने प्रेम से उसे वह दे दिया । उन्होंने सभी ब्राह्मणों को भक्ति से प्रणाम किया और क्रमशः उनके आशीर्वाद पाते हुए उन्हें दिव्य वस्त्राभरण देकर अकलंक चित्त से यज्ञांत स्नान किया । (उधर) ऋष्यश्रृंग के द्वारा कराये गये पुत्र-कामेष्टि यज्ञ में आकर क्रमशः अपने-अपने यज्ञ-भाग प्राप्त करनेवाले देवता रावण के सम्बन्ध में अपने मन में विचार करने लगे ।

९. रावण के अत्याचारों के बारे में ब्रह्मा से देवताओं की शिकायत

ब्रह्मा के पास पहुँचकर (देवताओं ने) उनको प्रणाम किया और यों विनती की—"हे प्रभो ! आपके वर की शक्ति से दशकंधर, पुण्यात्मा आचार्यों ब्रह्मर्षियों, देवताओं तथा मुनियों को दुःख दे रहा है । हे कमलासन ! हमारा खयाल है कि आपके वर की प्रचण्ड शक्ति के कारण ही हम उसको जीत नहीं सकते । वह देवताओं के साथ इन्द्र को भी पकड़कर उनका अपमान करता है और उन्हें दुःख देता रहता है । (अपने) भुजबल के दर्प से

वह गंधर्व, यक्ष आदि देवगणों, मुनियों तथा साधुओं को पकड़कर कष्ट दे रहा है। सभी कुल-पर्वत उसके नाम से डरते हैं। सूर्य भी ताप फैलाने से डरता है। वह जिस नगर में रहता है, वहाँ पवन भी अपनी पूरी शक्ति के साथ चलने से डरता है। उसके अतिशय प्रताप से डरकर समुद्र अच्छी तरह गर्जन नहीं कर पाता है। दीख पड़ने पर हमें भी दुःख देता है। ऐसे पापी दशकंधर का अन्त करने का उपाय आपको सोचना चाहिए।"

तब ब्रह्मा ने उन सारी बातों को हृदयंगम करके देवताओं से कहा--"(रावण) अमरों के हाथ नहीं मरेगा, राक्षसों से नष्ट नहीं होगा, गंधर्वों से मिटेगा नहीं, रजनीचरों से समाप्त नहीं होगा, भुजंगों से मारा नहीं जायगा, यक्षों से हत नहीं होगा, पक्षिसमूह से पराजित नहीं होगा। मेरे वर देते समय उसने नरों का नाम नहीं लिया था, इसलिए वह नरों से ही मरेगा। स्पष्ट सुनो, हिरण्यकशिपु जब सारे संसार को दुख देता था, तब नारायण ने स्वयं नरसिंह का रूप धारण कर उसे चीर डाला था। उसी ने अब विश्रवसु के यहाँ जन्म लिया है। इसलिए नारायण ही अब इसका नाश करेंगे। अब हमें उस विष्णु से अभयदान के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।"

ब्रह्मा के इस प्रकार कहने पर सभी लोग तुरन्त क्षीर समुद्र के निकट गये और अच्युत को देखकर पवित्र हृदय से उनकी स्तुति की। हाथ जोड़कर बड़ी भक्ति से प्रणाम किया और विष्णु से इस प्रकार विनती की।

१०. देवताओं का विष्णु की स्तुति करना

हे त्रिलोकीनाथ, कमलालय-वक्ष, वसुमतिरक्षक, वनजाक्ष, आपके अतिरिक्त हमारा कोई (सहायक) नहीं, यह सत्य है। हे गोविन्द, परिपूर्णगुण चिदानन्द, हे देव, जगन्मय, देवाधिदेव, देवों के रक्षक, दिव्यावतार, अमृतसागर में पहले आपकी शरण में आये हुए हमें (आपने) अपना अभयदान दिया था। हे दानवदलन, आपके भुजबल-विक्रम से ही समस्त लोकों की रक्षा होती है। हे भक्तवत्सल, भक्तियोग को छोड़ अन्य उपायों से आपको पहचानना असंभव है। हे मधुसूदन, मन में आपका ध्यान करनेवालों को क्या कभी कोई विपदा सता सकती है? जगत् की सृष्टि, स्थिति, लय आदि आपकी लीलामात्र हैं। समस्त लोक आपकी माया का आधार लेकर ही आपका महनीय तनु धारण करते हैं। हे शेषशायी, आपका वैभव तथा आपकी महिमा अवाङ्मानसगोचर है। हे शरणागत रक्षक, हे लोकेश, हम आपकी शरण में आये हैं। हम शरणार्थियों की रक्षा आपको करनी ही चाहिए। आप त्रिलोक-कंटक रावण का वध करके हमारी रक्षा कीजिए। हे लोकैक-स्तुत्य, विना विलंब हमारा कार्य संपन्न कीजिए और यश पाइए। निर्मलचित्त, निश्चलव्रती, धर्मात्मा, उत्तमगुण-समन्वित, राजा दशरथ अश्वमेध यज्ञ पूरा करके पवित्र मन से युक्त हुए हैं। उस काकुत्स्थ-वंशी (राजा दशरथ) की स्त्रियों का विचार करें, तो कोई भी स्त्री उनकी बराबरी नहीं कर सकती। हे कमलगर्भ, आप अपने चारों अंशों के साथ नर के रूप में जन्म लीजिए। वर के प्रताप से जो देवताओं के लिए अवध्य है, जो लोकत्रासक है, जिस पापी ने गंधर्व एवं किन्नरों का वध किया है, हे पुण्डरीक, ऐसे दशकंधर का वध करके यज्ञ-संपादन कराइए और संयम-धनी पुरुषों की तथा संसार की रक्षा कीजिए।"

इस प्रकार विनती करनेवाले देवताओं को देखकर वनजाक्ष (विष्णु) ने घन-गर्जन के समान गंभीर ध्वनि में कहा—"हे देवताओ, तुम लोग सुखी होओ । मैं मर्त्यलोक में अवतार लूँगा और उसके पश्चात् दशकंधर का बंधु, मित्र, अमात्य, पौत्र तथा बंधुओं के साथ नाश करके, ग्यारह हजार वर्ष तक नियमानुकूल इस पृथ्वी का पालन करूँगा । ब्रह्मा के वर से ही राक्षसेन्द्र इस अवनीतल पर जीवित है ।" यों कहते हुए असुरारि (विष्णु) ब्रह्मा तथा देवताओं को विदा करके चले गये ।

११. दशरथ को यज्ञ-पुरुष का पायस देना

उधर विमल हवनाग्नि से नीले अंगवाले, अरुणांबरधारी, सूर्य के समान तेजस्वी, महान् विक्रमी तथा पुण्यात्मा एक दिव्य मूर्त्ति अपने हाथ में पायस (खीर) से भरे एक स्वर्ण-पात्र को लिये बाहर आये । उन्हें देख राजा अद्भुत आश्चर्य में पड़ गये और विनय के साथ उठकर खड़े हो गये । राजा को देखकर (यज्ञ-पुरुष ने) कहा—"राजन् मैं यज्ञ-पुरुष हूँ। तुम्हें पुत्र-दान देने की इच्छा से आया हूँ । इस पायस को ग्रहण कर भक्ति के के साथ अपनी रानियों को दो ।" इसपर राजा ने बड़ी भक्ति के साथ उनकी पूजा की और पायस यों ग्रहण किया; जैसे शचीपति ने सुधा-कलश ग्रहण किया था । अग्निदेव के अन्तर्द्धान होने के बाद राजा अन्तःपुर में गये, तो रानियों ने बड़े आनन्द से उनका स्वागत किया । (राजा ने) देवताओं से बनाये गये उस पायस का आधा भाग कौसल्या को दिया, शेष आधे का आधा सुमित्रा को दिया, बचे हुए भाग का आधा कैकेयी को और शष पुनः प्रसन्नता से सुमित्रा को दिया ।

उस पायस को भक्ति से ग्रहण करने के बाद रानियाँ गर्भवती हुई । उन्हें देखकर राजा आनन्द-मग्न दिखाई देने लगे। निदान, राजा ने ऋष्यश्रृंग आदि मुनियों तथा अन्य राजाओं को बड़े आदर-सत्कार के साथ विदा किया और रानियों के साथ परम अनुरागयुक्त हो नगर में लौट आये ।

१२. देवताओं को वानरों के रूप में जन्म लेने के लिए ब्रह्मा की सलाह

अपना-अपना यज्ञ-भाग लेकर जब देवता अपने लोक को जाने लगे, तब ब्रह्मा ने इन्द्रादि देवताओं को देखकर कहा—"लोकरक्षणार्थ विष्णु इस पृथ्वी पर अवतार ले रहे हैं । इसलिए तुम्हें भी उनकी सहायता के लिए तैयार हो जाना चाहिए । इसलिए तुम लोग लोकहितार्थी, शक्तिमान्, पराक्रमी, बल तथा पराक्रम में अपने समान शक्तिमान् कई वानरों को, किन्नर, गंधर्व, खेचर, यक्ष, पन्नग, अमर, तथा सिद्ध स्त्रियों (के गर्भ) से उत्पन्न करो । मैं अत्यन्त बलनिधि जाम्बवान् को पहले ही जन्म दे चुका हूँ । मेरे जँभाई लेते समय उसने जन्म लिया है । वह चिरंजीवी है ।"

इस तरह ब्रह्मा का आदेश पाकर देवता लोग प्रसन्न हुए । इन्द्र ने वालि को, अग्नि ने नील को, सूर्य ने सुग्रीव को, बृहस्पति ने तारु को, वरुण ने सुषेण को, कुबेर ने गंधमादन को, विश्वकर्मा ने नल को, अश्विनीकुमारों ने द्विविद-मैंद को, पर्जन्य ने शरभ को और वायुदेव ने हनुमान् को इस पृथ्वी पर जन्म दिया । अन्य देवताओं ने भी अपने-अपने तेज से अमित पराक्रमी तथा श्रेष्ठ वानरों को जन्म दिया। वे (सभी) वानर जगत् के

आप्त बंधु, दावाग्नि-तुल्य विक्रमी, आकार तथा शक्ति में पर्वत की समानता करनेवाले, बड़े साहसी, कामरूपी, समुद्रों को भी पार करनेवाले, पहाड़ों को भी उखाड़ फेंकनेवाले, नख और दाँतों में अमित शक्ति रखनेवाले, अलौकिक शक्तिवाली तथा पृथ्वी को भी चीर डालनेवाली क्षमता रखनेवाले थे। ऐसे होने पर भी, आश्चर्य! उनमें कुछ लोग सुग्रीव की, कुछ हनुमान् की, कुछ नील की, और कुछ मैंदकुमुद की सेवा करते थे। वे सर्वत्र सिद्ध होते हुए अपना शौर्य प्रकट करते हुए, मलय, दर्दुर, गंधमादन, तथा विंध्य पर्वत एवं काननों और बहुत-से जल-नद-नदी प्रान्तों में बड़े आनन्द के साथ विचरण करते थे।

उस महिमायुक्त पायस के प्रभाव से राजा की कुलवधुओं ने गर्भ धारण किया। गर्भधारण के समय से (उनकी) क्षीण कटियाँ पुष्ट होने लगीं। अमृतमय भोजन की रुचि लगातार कम होने लगी। सुन्दर देह की कान्ति पांडु रंग धारण करने लगी, मानों ये सभी रावण की साम्राज्य-लक्ष्मी की नाक में कालिख लगानेवाले चिह्न हों। उनके कुचाग्र (इस प्रकार) काले होने लगे, मानों अनपत्यता-दोष (शरीर से) बाहर निकल रहा हो। कपोल पतले हो गये। दोहद (मचली आदि) दीखने लगे। नाभियाँ उभरने लगीं, त्रिवलियों की रेखाएँ मिट गईं और (अनेक प्रकार की चीजों को पाने की) इच्छाएँ उत्पन्न होने लगीं। धीरे-धीरे नौ महीने पूरे हुए।

१३. श्रीराम आदि का जन्म

प्रशंसनीय मधुमास के श्रेष्ठ शुक्ल पक्ष में, पूर्ण नवमी तिथि, बुधवार, पुनर्वसु नक्षत्र में मध्याह्न के समय ग्रह-पंचकों के उच्च स्थिति में रहते समय, गुरु और चन्द्र का योग रहते हुए, ललित कर्क लग्न में, सर्वलोकाधार, जगदेकवीर, इंद्रादि देवताओं से स्तुत्य, दिव्य लक्षणों से देदीप्यमान, अव्यय, असमान, आर्त्त-त्राण-परायण, भव्य, चिदानन्द, परम कल्याण-मूर्त्ति, देवताओं के रक्षक, दीनार्त्तिहरण, गुणों से अलंकृत, महान् कीर्त्तिवान्, शेषशायी, श्रीपति, हृषीकेश, उस कमल-गर्भ (विष्णु) के अर्द्धांश के रूप में, काकुत्स्थवंशी श्रीराम कौसल्या के गर्भ से उत्पन्न हुए। जिस प्रकार अदिति ने इन्द्र को और प्राच्य-सती ने चन्द्र को जन्म दिया था, वैसे ही पुण्य-नक्षत्र युक्त मीन लग्न में कैकेयी ने भरत को जन्म दिया। स्तुत्य आश्लेषा नक्षत्र-युक्त कर्क लग्न में कमलदललोचनी सुमित्रा ने समान-चरित्रवाले लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न को जन्म दिया। देव-दुंदुभियों से सारा आकाश गूंजने लगा, देवस्त्रियाँ नृत्य करने लगीं, पुष्पों की अत्यधिक वृष्टि होने लगी, ब्रह्मादि देवता परितुष्ट हुए; अयोध्या में छोटे-बड़े सभी निवासी उत्सव मनाने लगे।

तब दशरथ ने पुण्यात्मा वसिष्ठ को बुलाकर (बालकों का) जातकर्म आदि करवाया। फिर, पुत्र-जन्मोत्सव ऐसा मनाया कि देवताओं तथा पुरजनों का नेत्रोत्सव हो गया। जात-शौच समाप्त होने के पश्चात् एक पुण्य दिन को राजा ने उन वंशोद्धारक पुत्रों का नाम-करण-संस्कार करने की प्रार्थना वसिष्ठ से की। उन्होंने अपने मन में विचार करके कहा कि 'रम्', अर्थात् 'क्रीडा' नामक धातु से 'रमयति' अर्थ देनेवाला 'राम' नाम से कौसल्या-सुत अभिहित होगा। कैकेयी का पुत्र महान् बलशाली, सुकुमार शरीरवाला तथा सुकीर्त्ति-वान् है, इसलिए वह भरत के नाम से विख्यात होगा। विचार करके देखने से सुमित्रा के

पुत्र सुन्दर तथा श्रेष्ठ गुणों से युक्त हैं, इसलिए उनके लिए लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न नाम उचित होंगे। (राजा ने) उन लक्ष्मी-समन्वित (राजकुमारों को) राम, भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न जैसे सुन्दर नाम देकर नामकरण-संस्कार सम्पन्न किया और अपरिमित धन दान में दिया।

१४. श्रीरामादि का बचपन

वे (बालक) माताओं तथा धाइयों के स्नेह तथा ममता-युक्त पालन-पोषण में (फलस्वरूप) बढ़ने लगे। (वे) भोली-भाली हँसी के साथ आँखें खोलने लगे। धीरे-धीरे अटपटाकर चलते हुए अपनी तोतली बोली से सबको आनन्द पहुँचाने लगे। उनकी लटों में (पिरोई गई) मोती तथा मणियों की लड़ियाँ कपोलों तक फैली थीं। उनके भाल (रूपी) इन्दु पर अशोक के पत्ते के समान एक मँगटीका डोल रहा था। मणिखचित बहुत सुन्दर बघनखा की श्रेष्ठ कान्ति उनके हृदय पर विराज रही थी। शरीर पर जहाँ-तहाँ मरकत मणियों के आभरण शोभा दे रहे थे, कटि की करधनी से घूंघरू के शब्द हो रहे थे तथा घुंघरूदार नूपुर पैरों में ध्वनि कर रहे थे। वे राजा के सामने हँसते हुए अपनी बालक्रीड़ाएँ करते और उन्हें अपनी मोहनाकृति से मुग्ध कर देते थे। वे चारों (कुमार) धीरे-धीरे बढ़ने लगे और समान रूप से उनका मानसिक विकास होने लगा।

वे दशरथात्मज आपस में जोड़ियाँ बना लेते। रमणीय आकृतिवाले राम और लक्ष्मण की एक जोड़ी बनती और भरत-शत्रुघ्न की दूसरी जोड़ी बनती। उनके चूड़ाकरण तथा यज्ञोपवीत-संस्कार कराये गये और वे सुन्दर (राजकुमार) तरह-तरह के खेलों में मग्न रहने लगे।

एक बार रघुराम अपने मित्रों के साथ बड़े प्रेम से (अपने-अपने) गुइयाँ चुनकर, गेंद तथा डंडा लिये फुर्ती से खेल रहे थे। उसी समय कैकेयी की दासी मंथरा वेग से वहाँ आई और कौतुक से गेंद को रोक लिया। इस पर राम ने बड़े क्रोध से डंडे से उसपर प्रहार किया, जिससे तुरन्त उसकी टाँग टूट गई। (इसके पश्चात् भी) श्रीराम को अधिक उत्साह से खेलते हुए देखकर उनपर क्रुद्ध हो, लँगड़ी टाँग से वह कैकेयी के महल में गई और सारा वृत्तान्त कह सुनाया। कैकेयी ने तुरन्त यह समाचार दशरथ को सुनाया। सारी बातें जानकर राजा ने वसिष्ठजी को अयोध्या में बुलवाकर उन्हें भक्ति से प्रणाम किया और कहा—'हे श्रेष्ठ मुनिचन्द्र, आप इन बालकों को वेदादि समस्त विद्याएँ सिखायें।' यह कहकर राजा ने बालकों को वसिष्ठ को सौंप दिया। उस मुनीश्वर ने भी वैसा ही किया। राजकुमारों ने उस संयमी मुनि की कृपा से हाथी-घोड़े की सवारी, रथ-संचालन आदि की क्रियाएँ सीख लीं। समस्त वेदों, शास्त्रों और शस्त्रास्त्रों के प्रयोग भी सीख लिये। उनमें श्रीराम तो विष्णुदेव ही थे। इसलिए अपार शौर्य, विवेक तथा सद्-गुणों में सबसे श्रेष्ठ थे।

१५. विश्वामित्र का आगमन

(राजा) अपने पुत्रों के विवाह की बात सोच रहे थे कि (एक दिन) विश्वामित्र मुनि आ पहुँचे। द्वारपाल ने आकर महाराज दशरथ से निवेदन किया—'देव, विश्वामित्र

मुनि द्वार पर आये हैं ।' तब दशरथ अपने बंधु-वर्ग तथा वसिष्ठ मुनि के साथ बड़ी प्रसन्नता से, परमेष्ठी की अगवानी के लिए जानेवाले इन्द्र की तरह, उनका स्वागत करने गये। उनकी अमित शक्ति को जानते हुए उनको लिवा लाये और अर्घ्य, पाद्यादि देकर उनकी उचित रीति से पूजा की । तब मुनि ने पूछा—'(हे राजन्) तुम्हारी प्रजा कुशल से तो है, हे पूजनीय व्रती वसिष्ठ, आप कुशल से हैं न ? हे मुनियो, आप कुशल से हैं ?' (तब राजा ने कहा)—"हमें किसी बात का अभाव नहीं है । हम धन्य हैं । हे परम मुनींद्र, आप हमारा गृह पवित्र करने की इच्छा से यहाँ पधारे । इस कृपा से मैं समस्त लोकों में प्रख्यात हुआ और सभी राजाओं में आदरणीय हुआ । आप अपने आगमन का कारण कहें । आपका जो भी कार्य होगा, मैं उसे सम्पन्न करूँगा ।

१६. यज्ञ की रक्षा के लिए श्रीराम को भेजने के लिए राजा से विश्वामित्र की प्रार्थना

तब विश्वामित्र ने राजा को देखकर कहा—"हे राजन्, दसरात्रि-पर्यंत यज्ञ करने की इच्छा से मैं (यज्ञ) करने लगा, तो भयंकर आकारवाले राक्षस हमारी यज्ञशाला में लगातार रक्त-मांस की वर्षा करते हुए प्रबल विघ्न डालने लगे । यज्ञ करते समय हमें क्रोध नहीं करना चाहिए, इसलिए तुम्हारे पुत्र महाबली श्रीराम को यज्ञ-रक्षणार्थ ले जाने के लिए आया हूँ । वे क्रूर राक्षस उनके सिवा अन्य किसी से नहीं मारे जायँगे । उनकी (राम की) महत्ता मैं जानता हूँ, (और) ब्रह्मा के पुत्र ये वसिष्ठ भी जानते हैं । हे अनघ ! 'राम बालक है' ऐसा विचार मत करो । 'वे मेरे पुत्र हैं', ऐसा लोभ छोड़ दो । वे स्वयं यज्ञ-कर्त्ता, यज्ञ-मूर्त्ति तथा यज्ञ-भोक्ता हैं । उन्हें लोकाराध्य मानकर भेजो । मैं उन्हें अतुल्य शस्त्रास्त्र दूंगा । उनसे ही हमारे यज्ञ की रक्षा होगी ।"

मुनि के ऐसा कहते ही राजा मूर्च्छित हो गये । बड़ी देर के बाद उनकी मूर्च्छा दूर हुई । वे फीके पड़ गये और दीन तथा दुःखी होकर गद्गद-कंठ से विश्वामित्र की विनती करते हुए बोले—"राम अभी बालक है, वह बच्चा है । वह युद्ध-कला नहीं जानता । वह पन्द्रह साल का ही है । हिलती हुई शिखावाला है (अभी उसमें दृढ़ता नहीं आई है)। अपने तथा शत्रुओं के बल का विचार करने की क्षमता उसमें नहीं है। हाय ! आप दया-मय होते हुए ऐसे बच्चे को क्यों माँगते हैं ? राक्षस तो कई दिव्य शस्त्रास्त्र रखनेवाले हैं । वे युद्ध-कला में निपुण होते हैं । वे विपुल बाहुबलवाले हैं । उनके साथ लड़ने की योग्यता राम में कहाँ है ? कहाँ वे और कहाँ यह ? हे श्रेष्ठ मुनीश्वर, साठ हजार साल तक पृथ्वी का शासन करने पश्चात् असमय वृद्धावस्था में मैंने इसे प्राप्त किया है । मैं इसे भेज नहीं सकता। यज्ञ रक्षा की चिन्ता आपको क्यों है ? आप जाइए, मैं आज ही सेना के साथ आपके पीछे-पीछे चला आऊँगा । हे मुनिनाथ, आपके यज्ञ में बाधा डालनेवाले राक्षसों की शक्ति कितनी है ? वे कौन हैं ? उनके नाम क्या हैं ? यह राघव उन्हें कैसे जीत सकेगा ?"

तब विश्वामित्र ने राजा से कहा—"पुलस्त्य ब्रह्मा का पोता, विश्रवसु का पुत्र, अखिल लोक का कंटक, पापी रावण के आदेश से बल प्राप्त करके घमण्ड से भरे मारीच तथा सुबाहु नामक (राक्षस) उग्र रूप धारण कर यज्ञ में विघ्न डालते हैं । राम के सिवा अन्य कोई भी रणभूमि में उनका सामना नहीं कर सकेगा ।"

ऐसा मुनि के कहने पर, उन बातों पर विश्वास न करके राजा ने मुनिनाथ से विना संकोच कहा—"वह (रावण) चौथा ब्रह्मा है, महान् साहसी है और ब्रह्मा से वर प्राप्त किये हुए है। ऐसे रावण के भेजे हुए वीरों को जीतने में यह (राम) कैसे समर्थ होगा? उन (राक्षसों) की शक्ति जाने विना मैं आने की बात कही थी। अब आप लौट जाइए।"

यों राजा के कहते ही विश्वामित्र (क्रोध से) जलते हुए, रोष-रक्त नेत्रों से देखने लगे। उनके गंडस्थल अत्यधिक वेग से हिलने लगे, सारा शरीर काँपने लगा। वे राजा को देखकर बोले—"काकुत्स्थ-वंशजों की रीति पर विचार किये विना ही ऐसे कुवचन क्यों कह रहे हो? (तुमने) मेरे आगमन का कारण बताने के लिए कहा। यह कहा कि मैं आपका कार्य अवश्य सिद्ध करूँगा। अब तुम मुकर रहे हो। यज्ञ-रक्षा के लिए मैंने राम को भेजने की प्रार्थना की। पर तुम हिम्मत हारकर कहते हो 'नहीं भेजूंगा।' हे असत्य-भाषी, तुम्हारा तो मुँह देखना भी नहीं चाहिए। इसलिए मैं जा रहा हूँ।"

मुनि के इस प्रकार कहते ही समुद्र सूख गये, पृथ्वी धँस गई, समस्त लोक व्याकुल हो उठे। दिग्गजों ने घुटने टेक दिये, देवता सहम गये, दिशाएँ सिमट गई। सभी भूत अवश हो गये। मुनि के क्रोधावेश की कल्पना करके वसिष्ठ ने दशरथ को देखकर यों कहा—

१७. राम-लक्ष्मण को विश्वामित्र के साथ भेजने के लिए वसिष्ठ की सम्मति

(वसिष्ठ ने कहा)—"हे राजन्, सूर्यवंशी इस संसार में कभी असत्य भाषण नहीं करते। यदि तुम असत्य कहोगे, तो तुम्हारी श्रेष्ठ कीर्त्ति और तुम्हारे पूर्वजों की कीर्त्ति नष्ट हो जायगी। देने का वचन कहकर नहीं दोगे, तो शुद्ध (मन से) किये हुए सभी धर्म नष्ट हो जायँगे। 'दशरथ महाराज बड़े धर्मात्मा हैं'—ऐसे तुम इस पृथ्वी में विख्यात हो। लोकरक्षा के सिवा राजाओं का धर्म और क्या है? इसलिए, हे राजन्, राम को माननीय गाधि-पुत्र के साथ जाने दो। ऐसी शंका क्यों करते हो कि मेरा पुत्र बालक है, वह युद्ध में महाबली राक्षसों की बराबरी नहीं कर सकेगा। कौशिक के रहते किस बात का भय है? राजन्, विश्वामित्र का उग्र तप और उनकी शक्ति विचित्र हैं। ये पुण्यात्मा देव, दानव, गंधर्व तथा दैत्यों से भी अधिक दिव्यास्त्रों के प्रयोगों को जानते हैं। कोई भी ऐसा विषय कहीं भी नहीं है, जिसे ये नहीं जानते हों। हे जननायक, दक्ष (प्रजापति) के जया तथा सुप्रभा नामक दो पुत्रियाँ थीं। उन जया और सुप्रभा के द्वारा भृशाश्व ने राक्षस-वध के लिए अस्त्र के रूप में पचास पुत्र प्राप्त किये। वे सब (पुत्र) कामरूपी हैं। हे राजन्, उस भृशाश्व ने (उन सभी अस्त्रशस्त्रों को) इन्हें दे दिया। इसलिए ये मुनि सभी शस्त्रास्त्रों के ज्ञाता हैं। तुम डरो मत। इन मुनि की शक्ति तुम नहीं जानते। इनको वचन देकर क्यों टाल रहे हो? इनके साथ जाने से राम का हित ही होगा, उनकी जय अवश्य होगी। क्या ये (स्वयं) राक्षसों को जीत नहीं सकते थे? राजन् (तुम्हारे) हित-चिन्तक के रूप में, तुम्हारे पुत्र उज्ज्वल चरित्रवान् (राम) को शस्त्रास्त्र विद्या में निपुण सिद्ध करने के उद्देश्य से ही ये यहाँ पधारे हैं। अतः यज्ञ की रक्षा के लिए राम को भेजो। इन्हें (राम को) देने में ही (तुम्हारा) कल्याण होगा।

१८. विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण को भेजना

इस प्रकार वसिष्ठ के कहने पर, उनकी बातों पर विश्वास करके राजा ने रामचन्द्र को बुला भेजा। उनका बालकपन देखकर राजा की आँखों में आँसू भर आये। उन्होंने उन्हें गले से लगाया, प्रेम से आशीर्वाद दिये, उनके केशों पर हाथ फेरा, कपोलों को प्यार से छुआ, थोड़ी देर सोचते रहे, फिर पुण्याह वाचन, पुण्यव्रत, पुण्य हवन और ग्रहों की पूजा करके सुन्दर वस्त्र तथा भूषण प्रेम से दिये। फिर स्वयं, कौसल्या तथा वसिष्ठ ने (उन्हें) उचित आशीर्वाद देकर, पुण्य मुहूर्त्त में अपने पुत्र-रत्न को पुण्यात्मा गाधि-पुत्र को सौंपा। प्रेम और त्याग, इन दोनों का संघर्ष (मन में) चलते रहने पर भी (राजा ने) उस मुनि का सत्कार करके उन्हें विदा किया। तब लक्ष्मण भी उस राम से प्रार्थना करके उनके साथ गये। (उस समय) वृष्टि हुई, अनुकूल पवन चलने लगा, श्रेष्ठ मंगल बज उठे। आकाश से देवता बड़े प्रेम से धनुष, उत्तम शस्त्र, महान तूणीर, खड्ग आदि सहज रीति से धारण किये हुए, बड़े उत्साह से जानेवाले राघव को देखने लगे। अक्षय तूणीर, पहुँचा तथा अंगुली-त्राण पहने कटि से लटकनेवाले कृपाण के साथ दिव्य शर तथा चाप लिये हुए राघव उस मुनि के पीछे बड़े उत्साह से इस प्रकार जा रहे थे, जैसे अश्विनि-देवता भक्ति से ब्रह्मा की सेवा करते हुए जा रहे हों। वे पुण्य-चरित आधा योजन चलकर सरयू नदी के तट पर (पहुँचते-पहुँचते) थक गये। तब कौशिक ने राम-लक्ष्मण को बुलाकर उन्हें बल, अतिबल, नामक महामंत्रों का उपदेश दिया, जिन्हें उन्होंने घोर तपस्या के उपरान्त प्राप्त किया था और जो ब्रह्मा की पुत्रियाँ थीं और सभी मंत्रों की मूलाधार थीं तथा सदा सुखप्रदायिनी थीं। राम-लक्ष्मण ने उस मंत्र-शक्ति के प्रताप से सूर्य का-सा तेज प्राप्त कर लिया। थकावट, भूख और प्यास आदि संकट से वे मुक्त हो शक्ति से शोभायमान हो गये। उस रात्रि को दाशरथि सरयू नदी के किनारे, तरुण कोमल कुश-शय्या पर, कौशिक से पुण्य-कथाएँ सुनते हुए बड़े आनन्द से सो गये।

गाधिपुत्र-प्रभात के समय शीघ्र ही उठे और वहाँ तृण-शय्या पर आँखें बन्द किये हुए राघवों को देखकर बड़े कौतूहल से कहने लगे—'हे अनघ, अरुणोदय हो चला। प्रातः काल के नित्य कर्मों का पालन होना चाहिए। इसलिए तुम्हें अब जागना चाहिए।' यह सुनते ही (वे उठे और) संध्यावन्दन से निवृत्त होकर प्रफुल्लचित्त से कौशिक को प्रणाम किया। (उसके पश्चात्) नदी-धारा के किनारे-किनारे चलकर वे सरयू तथा गंगा के संगम के पास पहुँचे और वहाँ कई सहस्र वर्षों से नियमबद्ध हो तपस्या करनेवाले परम संयमी मुनियों को देखकर, बहुत ही हर्षित होकर दशरथात्मज ने गाधि-पुत्र से यों कहा—

१९. अनंगाश्रम का वृत्तान्त

'हे संयमीन्द्र, यह किसका आश्रम है? इस तपोभूमि में कौन रहते हैं?' तब मुनि ने कहा—"यह अनंगाश्रम के नाम से लोक में विख्यात है। इस आश्रम में बड़े धैर्य के साथ तप में लीन शिव को देखकर कंदर्प ने बड़े दर्प के साथ चन्द्रशेखर पर (पुष्प) बाण चलाया था और उस देव के भाल-नेत्र की अग्नि से भस्म होकर अनंग नाम पाया था।

(उसके) अंगों से संबंधित यह आश्रम-भूमि तब से अंगदेश कहलाने लगी[१]। इस आश्रम भूमि में कठिन तपस्या करनेवाले पुण्यात्मा कृतार्थ हो जाते हैं।"

इस तरह विश्वामित्र ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। रघुवीर तथा मुनि वहाँ ठहरकर स्नानादि अनुष्ठान पूरा करके संतुष्ट हुए। उस स्थान के आश्रमवासी मुनीश्वरों ने दिव्य दृष्टि से यह बात जान ली। वे रमणीय रूपवाले राम-लक्ष्मण तथा अमित तपोधनी कौशिक को अपने आश्रम में लिवा ले गये और अत्यन्त उत्साह से अर्घ्य, पाद्यादि देकर उनका सत्कार किया। पुण्य-कथाओं के कथन से वह रात्रि पुण्यरात्रि हो गई। दूसरे दिन जब वे पुण्य संयमी उस नदी में नित्य कर्मों से निवृत्त हो चुके, तब विश्वामित्र ने कहा—'हमें इस नदी का पार उतारने के लिए यह नाविक समर्थ है। यह नाव सूर्य-वंशजों के लिए लायक है।' यह सुनकर राम-लक्ष्मण ने उन मुनियों को प्रणाम किया। मुनियों ने उनको विदा किया। तब वे विश्वामित्र के साथ नाव पर चढ़कर सरयू नदी पार करने लगे। जब नाव बीच धार में पहुँची, तब (रामने) आश्चर्य के साथ हाथ जोड़-कर पूछा—'यह कैसी ध्वनि आकाश तक गूँज रही है। कृपा करके बताइए।'

मुनि ने कहा—"कैलास पर्वत के मानसरोवर में जन्म लेकर, समृद्ध साकेतनगरी को चारों ओर से घेरने के बाद गंगा नदी में मिलनेवाली सरयू नदी की लहरों का यह घोष है। इस पर (राम-लक्ष्मण) ने बड़ी श्रद्धा से उसे प्रणाम किया। उन पुण्यात्माओं ने नदी को पार किया और हाथी, सुअर, भैंसा, हिरण, शरभ, अजगर, बाघ, रीछ, सिंह से भरे हुए जंगल में प्रवेश किया। तब राघव ने कहा—"हे मुनीश्वर, खदिर (कत्था), तिन्दुक, पूग, खजूर, निम्ब, बदरी, वट, अशोक, पाटलि आदि तरुओं तथा बहुकंटक एवं लता-परिवेष्टित वृक्षों से युक्त, यह निर्जन वन किसका आश्रम है? कृपया बताइए।" तब विश्वामित्र श्रीराम से सारा वृत्तान्त यों कहने लगे—"प्राचीन काल में इन्द्र वृत्रासुर का वध करने से मल-कलुष-प्राप्त तथा मलिनांग हुआ। तब देवता तथा मुनि इन्द्र को पाप-मुक्त करने के लिए यहाँ ले आये और पुण्यसलिल तथा पवित्र मंत्रों से पुण्याभिसेचन किया। इससे उसके शरीर पर लगे मल-कलुष दोनों यहाँ के प्रदेशों में भर गये और इन्द्र शुद्ध हो गया। इसलिए इन्द्र ने इन प्रदेशों को, मल युक्त होने से 'मलद' तथा क्लेश-कलित होने से 'करुष' तथा 'पापघ्न' नाम दिये। वृत्रासुर के वध से लगे हुए पाप की मुक्ति इस प्रदेश में होने से इन्द्र ने इन नगरों को धन-धान्य-वैभव से समृद्ध रहने का वर दिया। हे रघुराम, एक बात और सुनो।

२०. विश्वामित्र का श्रीरामचन्द्र को ताड़का का वृत्तान्त सुनाना

"इस पृथ्वी पर ताड़का नाम की एक राक्षसी, एक हजार हाथियों का बल रखती हुई, बड़े साहस के साथ, इन दोनों प्रदेशों में प्रवेश कर स्वेच्छा से लोगों को तंग करती है।" इसपर राघव ने पूछा—'इस स्त्री को किसने इतनी शक्ति दी? यह दुष्टबुद्धि किसकी लड़की है? यह पापिन क्यों इन दो प्रदेशों को पीड़ा पहुँचा रही है? कृपया बताइए।'

---

१. वाल्मीकि और कालिदास ने भी अनंगाश्रम का वर्णन किया है, पर वह अंग-देश में नहीं था। वह तो सरयू नदी के किनारे था। अंग-देश तो वर्त्तमान भागलपुर और मुंगेर जिले माने गये हैं, जिसमें सरयू नदी नहीं है।—सम्पादक

इस पृथ्वी पर सुकेत नामक एक यक्ष ने पूर्व में ब्रह्मा की तपस्या की थी और अत्यधिक भक्ति से उनको तृप्त किया और उनसे एक पुत्र माँगा। (तब ब्रह्मा ने कहा) 'मैं तुम्हें पुत्र नहीं दूँगा। एक हजार हाथियों का बल रखनेवाली एक पुत्री दूँगा।' उस वर से उसे एक लड़की प्राप्त हुई। उसने विचार करके अपनी उस लड़की का विवाह सुंद (नामक व्यक्ति) से कर दिया। उसने (सुंद ने) उस स्त्री से 'मारीच' तथा 'सुबाहु' नामक दो भयंकर शक्तिशाली पुत्र उत्पन्न किये। इसके पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई। वह स्त्री अपने पुत्रों के साथ बड़े गर्व से अगस्त्य के आश्रम में जाकर बार-बार उनको तंग करने लगी। अगस्त्य ने इन पापियों को देखकर क्रोध से उन्हें राक्षस बन जाने का शाप दिया। उस दिन से राक्षस-रूप धारण कर निर्दयी हो वह मनुष्यों का आहार करती हुई यहीं रहती है और पृथ्वी को दुःख देती है। तुम्हारे अतिरिक्त कोई इसे मार नहीं सकता। सिवा तुम्हारे हाथ के किसी से यह नहीं मरेगी। यह मत कहो कि यह स्त्री है, इसलिए इसे मारना नहीं चाहिए। यदि गो-ब्राह्मणों का हित हो, तो यही कारण स्त्रियों को मारने के लिए राजाओं को पर्याप्त है। प्राचीन काल में सारे संसार का नाश करने के लिए उद्यत, मतिमान् विरोचन की दुष्टा पुत्री को क्या इन्द्र ने क्रोध से नहीं मारा था? क्या वह कार्य (संसार में) स्तुत्य नहीं हुआ है? पहले दृढ़ व्रतवाली भृगु-पत्नी के संसार में अशान्ति फैलाने का उपक्रम करने पर क्या विष्णु ने (स्वयं) उस स्त्री का वध नहीं किया था? इसलिए हे पुण्य-चरित्र, लोकहित के लिए स्त्रियों का वध करना भी पुण्य ही है।"

२१. ताड़का का वध

विश्वामित्र के ऐसे अनुपम वाक्यों तथा अपने पिता के आदेश का विचार करके राघव ने, उस ब्रह्मर्षि के वचन की अवहेलना नहीं करते हुए कहा कि मैं ताड़का को दण्ड दूँगा। उन्होंने (अपने) धनुष की टंकार से सारे आकाश को गुंजा दिया। (उसे सुनकर) ताड़का क्रोध से उबल उठी। कर्ण-कठोर धनुष की टंकार सुनकर उसका चंचल लाल नेत्रोंवाला मुख विकृत हो उठा। वह अपने दोनों हाथों को ऊपर उठाये हुए इस प्रकार आने लगी, जैसे पंखोंवाला पहाड़ बड़े वेग से आ रहा हो। प्रकट अट्टहास से उसके बड़े-बड़े दंष्ट्रों की कांति चारों ओर बिखर रही थी। (चलते समय) वह अपने पदाघात से अपनी अमित शक्ति का परिचय पृथ्वी को दे रही थी। सारा आकाश एकदम हिल-सा गया। इस प्रकार आनेवाली ताड़का को देखकर दाशरथि राम ने संभ्रम-चित्त से अपने भाई से कहा—'देखा तुमने इसका ढंग, इसका रूप और इसकी भयंकर दृष्टि। इसको देखने पर किसे भय नहीं होगा? मैं अवश्य इसका वध करूँगा।"

इस प्रकार (श्रीराम) कह ही रहे थे कि (अपने) गर्जन से समस्त आकाश को कँपाती हुई, अपनी पद-धूलि से समस्त (संसार) को ढकती हुई वह भयंकर राक्षसी बड़ी-बड़ी शिलाओं की वर्षा करने लगी। इससे क्रुद्ध हो राघव ने अपने अनुपम अस्त्रों से उन शिलाओं को काट डाला और उस (राक्षसी) के दोनों हाथ भी काट डाले। तब लक्ष्मण ने उसकी नाक और कान इस प्रकार काट डाले, मानों वे यह बतलाना चाहते हों कि आगे मैं उस असुर-राज की बहन की भी यही दशा कर दूँगा।

बड़े आश्चर्य की बात है कि तब वह कामरूपिणी, माया का रूप धारण करके, कई अस्त्रों की वर्षा करने लगी। तब विश्वामित्र ने कहा--'हे अनघ, संध्या हो रही है और संध्या के समय राक्षसों को जीतना कठिन है। अब तुम उसपर दया करना छोड़ दो और लोक-हितार्थ इसे तुरंत मार डालो।'

तब गाधेय का आदेश मानकर (राघव ने) शब्द-वेधी बाणों से उस मायाविनी की मायाओं को दूरकर, भयंकर गर्जन करती हुई बिजली के समान आनेवाली राक्षसी को (उन्होंने) देखा। तब उन्होंने एक महान् अस्त्र उसके कुचाग्र पर ऐसा चलाया कि रक्त की कई धाराएँ बह निकलीं, मानों रामचंद्र असुरों को दण्ड देने का उपक्रम करते समय शरों को (रक्त का) उपहार दे रहे हों।

तब वह (राक्षसी) पृथ्वी पर इस तरह गिरी, मानों प्रलय-मारुत से संध्या का आकाश टूटकर पृथ्वी पर गिर गया हो। समस्त प्राणी आनंदित हुए। देवता तथा मुनि हर्षित हुए। कौशिक ने राम को गले से लगाकर आशीर्वाद दिये।

तब देवता तथा गंधर्वों के साथ देवेन्द्र वहाँ आया और श्रीराम के दर्शन करके, उनकी पूजा तथा प्रार्थना की। फिर देव-भक्त गाधेय को देखकर इन्द्र ने कहा--"हमारी रक्षा करने के लिए इस पृथ्वी पर अवतार लिये हुए इस महापुरुष को आप भृशाश्व की संतान-रूपी सभी अस्त्र-शस्त्र प्रदान करें।" इस प्रकार कहकर इन्द्र देव-लोक को लौट गये। इतने में सूर्यास्त हो गया। वे लोग वहीं ठहर गये।

२२. विश्वामित्र का श्रीराम को भृशाश्व-संतान-रूपी शस्त्र देना

दूसरे दिन विश्वामित्र ने राम को बड़े प्रेम से अपने पास बुलाकर कहा--'हे राम! तुम्हारा रण-कौशल देखकर हम बहुत प्रसन्न हुए। अब हम तुम्हें ऐसे शस्त्रास्त्र देंगे, जो अमर, उरग, असुर तथा यक्षों के साथ युद्धों में श्रेष्ठ सिद्ध होंगे।"

यों कहकर तन और मन से शुद्ध हो, मुनीश्वर ने राम को पूर्वाभिमुख बिठाया, ध्यान किया और क्रमशः दंड-चक्र, धर्म-चक्र, काल-चक्र, विष्णु-चक्र, इन्द्र का वज्र और खड्ग, वरुण-पाश, धर्म-पाश, काल-पाश, परमशिव का भयंकर शूल, शक्तियुग्म (विष्णु-शक्ति तथा रुद्र-शक्ति), भयंकर उष्ण तथा अनुष्ण अशनियाँ (शुष्काशनि तथा आर्द्राशनि), कंकाल (जिन्हें राक्षस धारण करते हैं), भयंकर करवाल, मूसल, कंकण और क्रौंचबाण आदि शस्त्र (श्रीराम को) दिये। इसके पश्चात् (उन्होंने) बड़ी प्रसन्नता तथा प्रेम से आग्नेयास्त्र, ब्रह्मास्त्र, तेजःप्रभास्त्र, ऐन्द्रास्त्र, ब्रह्मशिर, प्रस्थापन, नारायण, पैनाक, शिशिर, दारुण, शौर्य तथा सुदामन्, प्रशमन, विलापन, विशद प्रभावाला विद्याधर, वायव्य, सौम्य, संवर्त्त आदि नामक अस्त्र तथा मायाधर, मानव, मदन, सौमन, रुद्र, संतापन, मौसल, दर्पण, हयशिर आदि अस्त्र, मायाओं का प्रयोग कर विजय दिलानेवाले गांधर्व तथा सम्मोहनास्त्र, अत्यंत निष्ठा-समन्वित तथा शोणिताख्य अद्वितीय आग्नेयास्त्र, गरुडास्त्र, कौबेरास्त्र, नरसिंहास्त्र, नागास्त्र, अवार्य वैष्णवास्त्र, सतत स्तुत्य वैद्याधरास्त्र, रौद्रास्त्र, राक्षसास्त्र, कल्याण-प्रद पाशुपतास्त्र, कर्त्तरीचक्र, मेघास्त्र जैसे अगणित अस्त्रसमूह; अखिल दारुण मोदकी, शिखरी नामक गदाएँ, वामन, पैशाच तथा वायव्य शस्त्र; सोम, सौम्य, संवर्द्धन, साम, मदन,

संतापन, तामस, जैसे दारुण अस्त्र; कंकोल, करवाल, मूसल आदि धारण-योग्य अस्त्र राम को दिये । उन्हें लेते हुए राम ने उस महात्मा को देखकर कहा "हे मुनिनाथ, आपकी कृपा से अभी अस्त्र प्राप्त करके मैं कृतार्थ हुआ । अब आप मुझे उपसंहार के अस्त्र प्रदान कीजिए ।"

इस पर प्रसन्न हो उस मुनि ने उन्हें सत्यवंत, रभस, परामुख, सत्य-कीर्त्ति, दशाक्ष, अवाङ्मुख, प्रतिहारतर, मारण, शुचि, शतवक्त्र, दैत्य, धृष्ट, लक्ष्य, कृशन, करवीरक, दश-शीर्ष, शतोदर, ज्यौतिष, विमल, मकर, विरुचि, निष्कुलि, प्रमथन, सुनाम, सर्वनाम, दुंदुनाभ, पद्मनाभ, तृणनाभ, नैराश्य,का रूप, योगंधर, सैमन, निद्रा, संधान, मोहन, विषमाक्ष, महानाभ, वाहुविभूति, जृम्भक, धन, धान्य, वृत्तवंत, रुचिर, सार्चिर्माली, धृतिमाली नामक कामरूपवाले महान् अस्त्रों का उपदेश राजकुमार को दिया । इनके अतिरिक्त भी (मुनि ने) उस रघु-वंश प्रभु को अनेक शस्त्रास्त्र-समूह दिये, उनकी शक्ति बताई, उनसे संबंध रखनेवाले मंत्र बताये, उनके प्रयोग की तथा उपसंहार की विधि बताई । शस्त्रास्त्र-संबंधी सभी मर्म बताये ।

तब राम के आगे वे सभी (शस्त्रास्त्र) तरह-तरह के रूप धारण करके प्रकट हुए । उनमें कुछ अग्नि-सदृश थे, कुछ भयंकर थे, कुछ धूमिल कांति के थे, कुछ अनुपम दीप्तिमान् थे, कुछ दिव्य शरीरवाले थे, कुछ चंद्र-प्रभा-विलसित थे, कुछ भानु-दीप्ति-विलसित थे, कुछ अंधकार-विलसित थे, कुछ भयंकर अट्टहास कर रहे थे और कुछ पवित्र रूप धारण किये हुए थे । उन सब ने मुकुलित करों से (राम के आगे) खड़े होकर कहा—'हे राजन्, हम कौन-सा कार्य करें, हमें क्या आदेश देते हैं ? हमें कहाँ भेजेंगे ?' तब राम ने कहा—'मेरे स्मरण करने पर तुम चले आना, अभी तुम जा सकते हो ।' यह सुनकर सभी शस्त्रों ने उस वसुवेश की प्रदक्षिणा की और नमस्कार करके चले गये ।

तब राघव ने मुनिनाथ के सामने हाथ जोड़कर विनय, भक्ति तथा विश्वास प्रकट करते हुए कहा—'हे अनघ, आपकी कृपा से मैं कृतार्थ हुआ ।'

उसके पश्चात् वे विश्वामित्र के पीछे-पीछे चलने लगे । चलते-चलते उन्हें वामनाश्रम का सुंदर प्रदेश दिखाई पड़ा । उसे देखकर काकुत्स्थवंशी राम ने कहा—"हे संयमींद्र, इस पर्वत के निकट, नाना मृगों की ध्वनियों, सुंदर पक्षियों तथा मृगों से भरा यह दर्शनीय तथा सुंदर वन किसका आश्रम है ? यहाँ सब मृग बड़े सुख से रह रहे हैं । हे सर्वज्ञ, आपकी यज्ञ-भूमि यहाँ से कितनी दूर है ? चंचल तथा उद्धत राक्षस आपके यज्ञ को अपवित्र करने के लिए कहाँ से आते हैं ? मैं अपने तेज बाणों से उन समस्त राक्षसों को मार डालूँगा और यज्ञ की रक्षा करूँगा ।"

तब कौशिक ने जगदभिराम राम के कपोल स्नेह से छूकर बड़े प्रेम से कहा—'हे अनघ, क्या कोई ऐसा विषय है, जिसे तुम नहीं जानते ? यदि मुझसे ही सुनने की इच्छा है, तो सुनो ।'

२३. कौशिक का श्रीराम को सिद्धाश्रम का वृत्तांत सुनाना।

"प्राचीन काल में विष्णुदेव बड़े आनंद से तपस्या करने के लिए यहाँ अनेक युगों तक रहे। इसलिए हे अनघ, इसे वामनाश्रम कहते हैं। उसके पहले यह सिद्धाश्रम नाम से विख्यात था। हे जननाथ, विरोचन का पुत्र बलि अपने विशाल राज्य-वैभव के कारण घमंड से प्रबल होकर देव तथा सुरों को यातनाएँ देने लगा। तब मुनि तथा देवता इस आश्रम में आये और कमलनाभ को प्रणाम करके कहा—'हे शरणागत-प्रिय, हे लोकेश, हे कमलगर्भ, हमारी रक्षा कीजिए। हमें शरण दीजिए। हमें त्रास देनेवाला बलि यज्ञ कर रहा है। उस राक्षस-यज्ञ-भूमि में जो कोई भी जो कुछ माँगता है, वह दे रहा है। उस यज्ञ की समाप्ति के पहले ही आप हमारा हित सिद्ध कीजिए।'

"उसी समय उज्ज्वल व्रत-निष्ठ कश्यप ने अदिति के साथ एक सहस्र वर्ष का तप पूरा किया। उसके उपरांत संतुष्ट हो विष्णु ने उन्हें दर्शन दिये। तब (उस दंपति ने) प्रार्थना की—'हे रवि-शशि-लोचन, आप अपने शरीर में हमें समस्त लोकों के दर्शन कराइए। हे आद्यन्त-रहित और वेद-वेद्य, हम आपकी शरण में आये हैं।'

"विष्णु ने कृपा-दृष्टि से कश्यप को देखकर कहा—'आप अपने इच्छानुसार कोई वर माँग लीजिए, मैं दे दूँगा।' कश्यप ने बड़ी प्रसन्नता तथा भक्ति से हाथ जोड़कर कहा—'हे भगवन्, आप अत्यंत तेज-समन्वित होकर मेरे तथा अदिति के पुत्र होकर जन्म लीजिए तथा सुरों की रक्षा कीजिए। यही मेरी तथा देवताओं की इच्छा है। हम सब की इच्छा आप पूर्ण कीजिए।"

"कश्यप के इस प्रकार कहने पर विष्णु ने अपने अनुपम तेज से युक्त हो अदिति के गर्भ में जन्म लिया। उन्होंने वामन का रूप धारण कर उस दानव (बलि) से तीन पग धरती माँगी। फिर, दो पगों से पृथ्वी तथा आकाश को नाप लिया और उस धन्यात्मा (बलि) को बाँधकर इन्द्र को तीनों लोक देते हुए कहा—'तुम इन पर शासन करो।' इसीलिए यह स्थान वामनाश्रम कहलाता है। यही हमारा आश्रम है। इस पुण्यभूमि के निवासी तपोसिद्ध हैं; अतः यह सिद्धाश्रम भी कहलाता है। तुम्हीं वामन होकर त्रिविक्रम का अवतार लेनेवाले विष्णु हो। उन दिनों में भी यह तुम्हारा ही वन था। हे राम, आज भी उसी रीति से यह तुम्हारा ही वन है।" इस प्रकार, कहते हुए कौशिक अपने आश्रम में गये और (वहाँ जाकर) राम-लक्ष्मण का सत्कार किया।

२४. विश्वामित्र का यज्ञ

वहाँ के मुनियों ने बड़े प्रेम के साथ राम की पूजा की। तब राघव ने विश्वामित्र के देखकर बड़े हर्ष से कहा—'हे मुनीश्वर, आप निश्चिंत होकर आज ही यज्ञ-दीक्षा ले लीजिए। यज्ञ के शत्रुओं का संहार मैं अवश्य करूँगा।'

तब विश्वामित्र अत्यंत हर्षित हुए और मुनियों को बुलाकर स्वयं यज्ञ-दीक्षा ली। मुनियों ने यज्ञ की वेदियाँ तैयार कर दीं और यज्ञ के आवश्यक अंगों से यज्ञ-वेदी संपन्न हो गई। घी की आहुतियाँ पड़ने लगीं और अग्नि की ज्वालाएँ आकाश तक फैलने लगीं। हवन की अग्नि के प्रज्ज्वलित होने के साथ-ही-साथ साम आदि वेदों के आनन्द-घोष, निरंतर

(सुनाई पड़नेवाली) देवताओं का आह्वान करनेवाली ध्वनियाँ तथा होताओं के पुण्य-मंत्रों के शब्दों से दिशाएँ अत्यधिक गूंजने लगीं । एक ओर बड़े आश्चर्य के साथ यज्ञ के कार्य हो रहे थे, दूसरी ओर रामचंद्र धनुष धारण कर, भाई सौमित्र के साथ, बड़ी सतर्कता से, राक्षसों के आने का मार्ग पहले ही जानकर उस मुनि विश्वामित्र की रक्षा इस प्रकार करने लगे, जैसे समस्त विश्व को अंधकार से आवृत होने से बचाने के लिए चंद्र और सूर्य अपनी शाश्वत प्रभा फैलाते हैं । बड़ी भक्ति के साथ पाँच दिनों तक वे (उस यज्ञ की) रक्षा इस प्रकार करते रहे, जैसे पलकें पुतलियों की रक्षा करती हैं । छठे दिन मारीच तथा सुबाहु अपना समस्त बल इकट्ठा करके, उद्धत गति से आकाश में ऐसे व्याप्त हो गये, मानों (उन सबके शरीर) काले मेघों की राशि हों और उनके श्रेष्ठ खड्गों की कांति बिजली हो । वहाँ खड़े होकर वे गर्जन करते हुए घमंड से फूलकर यज्ञ-भूमि में लगातार रक्त-मांस की वर्षा करने लगे । तब होताओं में कोलाहल होने लगा । उपस्थित सदस्यों में कल-कल ध्वनि प्रारंभ हो गई । परिचारकों के दीन वार्त्तालाप सुनाई पड़ने लगे ।

यह सुनकर रामचंद्र ने क्रोध के आवेश में लक्ष्मण से कहा—"हे लक्ष्मण, अब तुम मेरी शक्ति देखो । उनके धनुष की टंकार विजय-लक्ष्मी के धनुष की टंकार के समान थी। उन्होंने खड़े होकर अपनी दृष्टि आकाश पर केंद्रित की और अत्यंत वेग के साथ वायव्य बाण चलाया । वह बाण मारीच को द्रुतगति से शत योजन तक उठा ले गया और उस क्रूर राक्षस को समुद्र में फेंक दिया । वज्र के प्रहार से समुद्र में गिरे हुए मैनाक की तरह वह असुर समुद्र में गिरा; फिर किसी तरह तट तक पहुँचा । उसने उस सूर्यवंशी (राम) के उज्ज्वल पराक्रम की प्रशंसा जहाँ-तहाँ की; (अपने) राक्षस-दल को छोड़ दिया, अपना शौर्य त्याग दिया, आसुरी वृत्ति को दबा दिया और आसुचंद्राश्रम-भूमि में सतत तपस्या में लीन रहने लगा ।

उसके पश्चात् रघुराम ने सुबाहु के हृदय पर अग्नि-बाण चलाकर उसका संहार कर डाला । एक मानव-शर से अन्य राक्षस-सेना का वध कर दिया। (यह देखकर) देवता बड़े हर्ष से पुष्प-वृष्टि करने लगे। मुनियों ने (राम की) स्तुति की। जिस प्रकार वृत्रासुर का वध करने पर देवता लोग इन्द्र की प्रशंसा करने के हेतु उनके चारों ओर एकत्र हुए थे, वैसे ही (आज) राम अपने भुज-बल के प्रताप से यज्ञ के शत्रुओं को दंड देने के कारण (मुनिजनों के बीच) शोभायमान हो रहे थे ।

विश्वामित्र बड़ी निष्ठा के साथ यज्ञ की सभी क्रियाओं को समाप्त करके आये और राम को बड़े हर्ष से गले लगाकर उनकी प्रशंसा की और आशीर्वाद देकर बोले—'रघुराम, तुम्हारी कृपा से मैं बिना किसी कठिनाई के यज्ञ संपूर्ण करके कृतार्थ हुआ ।'

इस प्रकार, उस पुण्यात्मा विश्वामित्र मुनि का अनुराग प्राप्त करके राम ने वहीं रात्रि बिताई और बड़े सबेरे, प्रातःकाल की सभी विधियों से निवृत्त होकर, सब मुनियों को प्रणाम करके, गाधि-पुत्र से कहा—'हे तपोनिष्ठ, अब हमारे लिए क्या आज्ञा है ? हम आपके दास हैं और आपकी कृपा के पात्र हैं ।"

तब वहाँ के सभी मुनि गाधि-पुत्र को आगे करके इस प्रकार कहने लगे--"हे रवि-कुल श्रेष्ठ, महाराज जनक बड़े सुंदर ढंग से यज्ञ कर रहे हैं। हम वहाँ चलें। उनके पास परमशिव का दिव्य धनुष है। गंधर्व तथा राक्षस आदि कई वीर उसे उठाने में असमर्थ हो चुके हैं। ऐसे धनुष को उठाकर उस पर प्रत्यंचा चढ़ानेवाले श्रेष्ठ वीर के साथ ही अपनी पुत्री का विवाह करने की प्रतिज्ञा राजा जनक कर चुके हैं। इसलिए उस श्रेष्ठ धनुष को तथा जनक के यज्ञ को देखने आपको अवश्य जाना चाहिए।"

इस प्रकार विश्वामित्र तथा अन्य मुनियों ने उन वीर, पुण्यात्मा, दाशरथियों को मिथिलापुरी चलने की प्रेरणा दी। सब लोग बड़े हर्ष से प्रस्थानकर गंगा के उत्तर तट पर पहुँचे[1] और हिमाचल तथा सिद्धाश्रम को दक्षिण में छोड़कर[2] उत्तर की ओर बढ़े। उस मार्ग से यात्रा करते हुए वे उस दिन तीसरे पहर तक तीन योजन चले। वहाँ शोण नदी के किनारे वे ठहरे और वहाँ के पुण्य तीर्थ में स्नान आदि क्रिया से निवृत्त हुए (उसके पश्चात्) उस रम्य स्थल में मुनियों के साथ बड़े आनंद से रहते हुए राम ने कौशिक से यों कहा--

२५. कौशांबी का वृत्तांत

(श्रीराम ने कहा)--'हे मुनिनाथ, अत्यधिक प्रजा-समृद्ध यह देश किसका है? कृपया बतलाइए।' तब विश्वामित्र ने कहा--"हे राजन्, सुनो, ब्रह्मा के मानस-पुत्र कुश नामक एक यशस्वी मुनि पूर्व काल में रहते थे। उन्होंने वैदर्भी नामक स्त्री से रूपवान् तथा शांत प्रकृतिवाले अधूर्त्तरज, वसु, कुशांब और कुशनाभ नामक चार पुत्र प्राप्त किये। चारों पुत्र अत्यंत साहस तथा शूरता के साथ अपने क्षत्रिय-धर्म का पालन करने लगे। अपने पुत्रों के चरित्र तथा सद्गुण देखकर कुश ने बड़े हर्ष से कहा--'इस पृथ्वी पर तुम लोगों को प्रजा का पालन करना चाहिए। इससे तुम्हारी कीर्त्ति व्याप्त होगी।'

"तब कुशल कुशांब ने बहुत प्रसन्न होकर कौशांबी नाम से एक नगर का निर्माण किया। हे दशरथात्मज, कुशनाभ ने महोदय नामक नगर बसाया। शूर अधूर्त्तरज ने धर्मारण्य नामक सुंदर नगर का निर्माण किया और वसु ने गिरिवज्र नामक एक अत्यंत दर्शनीय नगर बसाया। यह प्रदेश, जहाँ हम हैं, महाराज वसु के राज्य में है; इस प्रदेश के चारों दिशाओं में पाँच पर्वत हैं। उन पर्वतों के मध्य मागधी नामक एक नदी बहती है। इस सारे मगध देश पर वसु महाराज अत्यंत धर्म की रीति से प्रजा का पालन करते हैं।

"कुशनाभ ने घृताची नामक एक अप्सरा से प्रेम करके (विवाह किया)। मन्मथ-शर जैसे नेत्रवाली सौ रूपवती पुत्रियों को प्राप्त किया। एक दिन कमनीय कांति-युक्त तथा मनोहर यौवन-संपन्न वे युवतियाँ उद्यान में गईं।

---

१. गंगा के दक्षिण तट से चले; क्योंकि उत्तर तट पर पहुँचकर चलने से शोण नदी नहीं मिलगी। --सम्पादक

२. हिमाचल तो 'जनकपु' से भी उत्तर है, उसे दक्षिण में छोड़कर 'सिद्धाश्रम' से चलना असंगत है। वाल्मीकिरामायण में लिखा है कि सिद्धाश्रम हिमालय की ओर उत्तर दिशा में चलने के उद्देश्य से वे चले।--सम्पादक

"वहाँ अपने मंजीर, मेखला तथा कंकणों को मधुर-मधुर मुखरित करती हुई ताल-गति के साथ लास्य करने लगीं। कुछ युवतियाँ मृदु-मधुर रीति से मृदंग आदि वाद्यों को बजाने लगीं; कुछ अपने कर-पल्लवों से वीणाओं को क्वणित करने लगीं; कुछ अन्य युवतियाँ आम्र-मंजरी के मधु-पान से मस्त कोकिल-कंठ से गान करने लगीं। इस प्रकार वे सभी कन्याएँ उस उद्यान में क्रीड़ाओं में मग्न हो गईं।

उन सुंदरियों को देखकर काम-पीड़ा से व्याकुल होकर पवनदेव ने उन मानिनियों से कहा—'हे मानिनियो, आप किञ्चित् मेरी बात पर ध्यान दें। हे पद्माक्षियो, आप मुझे (अपना पति) वरण करें और अमरत्व को प्राप्त करें। इस तरह आप अजर-अमर होकर सतत यौवनावस्था में रहती हुई उन्नत कीर्त्ति प्राप्त करेंगी।'

"तब उन कन्याओं ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया—'हे अनिल, आप सब के हृदयों में संचार करनेवाले हैं। आप हमें जानते हैं। हाय! आप अपनी महत्ता का भी विचार किये विना क्या कह रहे हैं? हम उस कुशनाभ की पुत्रियाँ हैं, जो नीति-नय-संपन्न तथा धर्मानुरक्त हैं। हमारे पिता के रहते हुए हम अपने-आप किसी का वरण कर लें, तो इससे हमारे कुल को कलंक लगेगा। हमारे पिता हमें (विवाह में) जिन्हें देंगे, वे ही हमारे पति होंगे।'

"यह सुनकर पवन अपने क्रोध को सँभाल नहीं सका। उसने उनके अंगों में प्रवेश करके उन्हें कुब्जाओं के रूप में परिवर्त्तित कर दिया। खिन्न होकर वे सभी (कन्याएँ) अपने पिता के सामने गईं और सिर झुकाये आँखों में आँसू भरे खड़ी रहीं। कुशनाभ अपनी पुत्रियों की दशा देखकर सहम गये और पूछने लगे—'हे पुत्रियो, तुम्हें ऐसा रूप कैसे प्राप्त हुआ? किसने ऐसा किया? तुम बोलती क्यों नहीं हो? इसका क्या कारण है?"

"तब उन धवलाक्षियों ने हाथ जोड़कर अपने पिता से कहा—'पिताजी, हमें देखकर पवन ने निर्लज्जता से कहा कि हे सुंदरियो, तुम लोग मुझे वरो। हमने उसका प्रस्ताव स्वीकार नहीं करके कहा कि आप यह बात हमारे पिता से जाकर कहिए। इसपर उस क्रूर ने कामांध होकर हमें कुब्जा बना दिया।"

"यह सुनकर उन्होंने उन कमलाक्षियों से कहा—'हे कन्याओ! औचित्य और धर्म का विचार करके (कुल की मर्यादा का उल्लंघन करना) अनुचित समझते हुए तुम लोगों ने उस मर्यादा का पालन किया। तुम्हारे इस गौरवपूर्ण कार्य से मेरे कुल की प्रतिष्ठा बढ़ गई है। देवताओं के संबंध में क्रोध करने का साहस तुमने नहीं किया। इस प्रकार तुम्हारा सहन कर जाना ही उत्तम है। क्षमा (सहनशीलता) ही सत्य है, शील है, तप है, धर्म है और कीर्त्ति है। वही समस्त लोकों की रक्षा करनेवाली है।"

"इस प्रकार (सांत्वना देकर) राजाने अपनी कन्याओं को विदा किया। (उसके पश्चात्) उन्होंने अपने मंत्रियों से परामर्श करके पुण्यात्मा चूली नामक मुनिवर के पुत्र सद्गुण-संपन्न ब्रह्मदत्त को बुलावा भेजा और निर्मल मति से उस महात्मा की धर्मपत्नियों के रूप में अपनी कन्याओं को दे दिया। चूली-पुत्र के उन्हें स्वीकार करते ही उन कन्याओं की विकृति दूर हो गई।"

"हे अवनीश, उस दिन से वह उत्तम नगर 'कन्याकुब्ज' के नाम से इस पृथ्वी पर विख्यात हुआ । तब कुशनाभ अपनी पुत्रियों के कमनीय रूप देखकर बहुत प्रसन्न हुए और अपनी पुत्रियों तथा जामाता को विदा किया । तब कुश ने अपने पुत्र कुशनाभ को संबोधित करके कहा––'तुम पुत्रकामेष्टि-यज्ञ करो' तो तुम्हें अमित कीर्त्तिमान् तथा पुण्यात्मा गाधि नामक पुत्र होगा । यों कहकर वे ब्रह्मलोक सिधारे ।"

"कुश के पौत्र रूप में गाधि ने जन्म लिया । हे दशरथात्मज, मैं उसी गाधि का पुत्र हूँ । कुश का वंशज होने के कारण मुझे कौशिक भी कहते हैं । गुणवती तथा धर्म-निष्णाता मेरी बड़ी बहन सत्यवती, अपने प्राणेश्वर ऋचिक के साथ सशरीर इन्द्रलोक में गई और इस लोक का कल्याण करने के लिए प्रालेय-पर्वत में स्वयं कौशिकी नाम से नदी के रूप में बह रही है । सिद्धाश्रम में प्रवेश में करने के कारण सच ही मैं तपःसिद्ध हुआ । प्राचीन काल से मैं अपना नाम तथा इस देश के निर्माण के संबंध में यह वृत्तांत सुनता आ रहा हूँ । अब हे राजन्, अर्द्ध-रात्रि हो गई । तुम बहुत थके हुए हो, अतः विश्राम करो ।"

"सभी वृक्ष स्थिर हो गये हैं; इस वन-प्रान्त में मृग-समूह का संचार अब नहीं रहा; विहंग अपने घोंसले में पहुँचकर अपनी मीठी बोलियों को भूले हुए पड़े हैं; अब निशाचर, यक्ष तथा राक्षस अपने इच्छानुसार इस पृथ्वी पर संचरण करेंगे; समस्त दिशाएँ तथा आकाश कालिख पोते हुए-से अंधकारमय दीख रहे हैं; ब्रह्माण्ड-रूपी गृह के लिए नीलांबर में लगाये हुए मोतियों से युक्त तंबू के समान यह आकाश नक्षत्रों से युक्त होकर शोभा दे रहा है तथा जन-जन को आनंदित करते हुए नक्षत्र-पति अभी-अभी उदित हो रहा है ।"

उन वचनों से प्रसन्न होकर संयमी मुनियों ने विश्वामित्र से कहा––'हे अनघ, आपका वंश अमल है । आपके वंशज अतुलनीय माहात्म्यवाले हैं । आप ब्रह्मा के समान हैं । आपका ब्रह्म-तेज स्तुत्य है ।' तब विश्वामित्र ने उन मुनीश्वरों को धन्यवाद दिये । फिर राजकुमार तथा मुनिजनों ने उस रात्रि को वहीं शयन किया ।

"प्रातःकाल होने पर ऋषियों तथा विश्वामित्र ने (राजकुमारों से) कहा––'हे राजकुमारो, अब तुम निद्रा तजो ।' वे जग पड़े और प्रातःकाल की क्रियाओं से निवृत्त होकर कौशिक से कहा––"यह शोण नदी-रत्न कितना अगाध और सुंदर है ? मछलियों से परिपूर्ण, अत्यंत रमणीय सैकत स्थल, मधुर जल तथा परिचित हंस आदि खग-कुल से शोभायमान, मंद-मंद पवन (के कारण) तरल तरंगों से युक्त यह नदी बड़ी ही रमणीय है । हे अनघ, हम कहाँ और किस प्रकार इस नदी को पार करेंगे ?"

तब विश्वामित्र ने कहा––'मुनिलोग प्रायः जिस स्थान से होकर इसे पार करते हैं, उसे जानकर हम भी वहीं से इसे पार करेंगे ।'

इस प्रकार कहते हुए वे सब लोग कुछ दूर आगे चले । (वे ऐसी जगह पहुँचे), जहाँ कुल हंस, सारस, कारंडव आदि जल-पक्षियों का कलनाद ऐसा मीठा सुनाई पड़ रहा था, मानों वे लोगों का स्वागत कर रहे हों । राम ने उस ध्वनि को सुनकर, मध्याह्न के समय सिद्ध मुनिपुंगवों से सुसेवित, शुद्ध तथा पुण्य जल से पूर्ण, पृथ्वी में श्रेष्ठ नदी के नाम से विख्यात जाह्नवी को देखा और उसको प्रणाम करके कहा––'हे गाधेय, वह जो

अगाध श्रेष्ठ नदी दिखाई पड़ रही है, वहाँ तक हम कैसे पहुँचेंगे ?' तब मुनि बोले--'हे नरनाथ, शोण नदी को पार करके तीन योजन आगे जाने पर हम उस महानदी के पास पहुँच सकते हैं । तब तक हमें मार्ग में जल और फल आदि बहुत मिल जायेंगे ।'

यों कहकर वे (शोण) नदी पार करके चलने लगे । (निदान) वे उस गंगा नदी के तट पर पहुँचे, जो सारस-समूह, पुण्य-सलिल, विकसित-कमल, फेन तथा सुंदर मछलियों से युक्त हो नित्य गंभीर गति से बहती थी। वे वहाँ घन-लता-कुंजों से युक्त एक समतल स्थान पर ठहर गये । वहाँ राजकुमार मध्याह्न की (संध्या आदि) पूजाओं से निवृत्त हुए, बड़े आनन्द से उचित आहार ग्रहण किया और मुनियों की संगति में बैठकर वार्त्तालाप करने लगे ।

(उस समय) राजहंसों द्वारा (कमल-पुष्पों को) हिलाये जाने से गिरे हुए कमल-रज से पूर्ण तथा राजीव-राजित तरंगों से युक्त गंगा नदी को देखकर क्षत्रिय-तिलक रामचंद्र ने कौशिक से पूछा--"हे महात्मा, गंगा नदी इस पृथ्वी पर कैसे आई, यहाँ से वह स्वर्ग-लोक में कैसे पहुँची ? पाताल को वह कैसे प्राप्त हुई ? कैसे वह समुद्र में जा मिली ? उस महानदी का जन्म कैसे हुआ ? कृपया बताइए ।'

तब उस पुण्यधनी विश्वामित्र ने राम से कहा--"हिमवान् (हिमालय) के कमनीय दीप्तिवाली दो पुत्रियाँ हैं । देवता लोग हिमालय से प्रार्थना करके उन दोनों में से बड़ी पुत्री पुण्यशीला गंगा को यज्ञ के लिये स्वर्गलोक में ले गये । दूसरी कन्या परम सुंदरी पार्वती को भाल-लोचन (शिव) की घोर तपोनिष्ठा से संतुष्ट हो, उन्हें पत्नी के रूप में दिया । गंगा सुरुचिर गति से स्वर्ग में गई और वहाँ सुरनदी के नाम से विख्यात हुई ।'

इतना कहने के बाद मुनिवर ने राजकुमार को देखकर कहा--"और एक वृत्तांत है, सुनो । पार्वती से विवाह करने के पश्चात् चंद्र-शेखर (शिव) बड़ी अनुरक्ति के साथ एक सौ दिव्य वर्षों तक रति-क्रीड़ा में निमग्न रहे। तब ब्रह्मा से लेकर समस्त देवता अपने-आप सोचने लगे कि इन दोनों (शिव-पार्वती) का विषम तेज कौन धारण कर सकेगा ? इनके द्वारा उत्पन्न पुत्र की विषम शक्ति के सामने कौन टिक सकेगा ? इसलिए वे सब महादेव के पास जाकर बड़ी भक्ति से विनम्र हो कहने लगे--"हे देवाधिदेव, हे महेश, हे सर्वेश, आपकी महिमा सभी देवता जानते हैं । हे सर्वज्ञ, आप हम पर प्रसन्न होइए । आपके महान् तेज को धारण करने की क्षमता किस में है ? इसलिए आप यह क्रीड़ा छोड़ दें । आप कृपा करके तपोवृत्ति ग्रहण कर ब्रह्मचर्य का पालन कीजिए ।' इस पर गौरीश ने उनकी बात स्वीकार कर ली और कहा--'(किन्तु) अब तो तेज अपने स्थान (रेतःस्थान) से विचलित हो चुका है । अब आपमें से कौन इस तेज को धारण करेगा ?' तब उनकी बात मानकर हर ने अपने (तेज का) विमोचन धरती पर कर दिया । तब देवताओं ने अग्निदेव को देखकर कहा--'हे पावक, तुम पवन के साथ, धरती पर पड़े हुए तेज में प्रवेश करो ।' अग्नि तथा वायु उस तेज को धारण करने में असमर्थ रहे। तब गंगा नदी ने उस तेज को बड़ी श्रद्धा के साथ धारण किया । लेकिन अपने प्रभु का तेज धारण किये रहना उसके लिए भी असंभव हो गया । वह भय से काँप उठी और उसकी लहरें

भय प्रकट करते हुए उत्तुंग बन गईं । तब उसने क्षुभित चित्त से उस तेज को अपने तट पर उगनेवाले सरकंडों के वन में प्रतिष्ठित कर दिया । शिव का तेज उस सरकंडे के वन में प्रतिष्ठित हुआ ।

'एक दिन ऋषि-पत्नियाँ अपने नित्य कृत्यों से निवृत्त होने वहाँ आ पहुँची । उन्होंने स्नान करते समय आपस में विचार किया कि हम ठंड से ठिठुर रहीं हैं, इसलिए सरकंडों की उस झाड़ी में त्रेताग्नियों के समान प्रज्वलित होनेवाली उन अग्नियों की हम शरण लेंगी (उसके पास जाकर अपनी ठंड दूर करेंगी) । इस प्रकार सोचकर वे ऋषि-पत्नियाँ उन अग्नियों के पास जा पहुँची ।

"जो स्त्रियाँ उन अग्नियों के पास गईं और जिन्होंने बड़े उत्साह से उन्हें देखा, वे सब गर्भवती हो गईं । (इससे) वे अत्यंत भीत हो उठीं और पश्चात्ताप करती हुई घर पहुँची । शांतचित्त मुनियों ने अपनी योग-दृष्टि से उस सारे वृत्तान्त को जान लिया और उन स्त्रियों से कहा—'यह सब तुम्हारे गर्व तथा सुख की इच्छा का फल है ।' (इसके पश्चात्) वे स्त्रियों पर क्रोधोन्मत्त हो, सारी पृथ्वी को कँपाते हुए-से बोले—'तुम सब बुद्धिहीन हो, तुम्हें क्षमा नहीं करनी चाहिए । तुम अपने पतियों से पृथक् हो जाओ ।' इस पर वे फिर गंगा नदी के पास गईं और कहने लगीं—'हे माता क्या, यही तुम्हें करना चाहिए ? क्या (हमारी ऐसी दशा कर देना) तुम्हें शोभा देता है ?'

"इस प्रकार कहती हुईं वे स्त्रियाँ अपने गर्भ पर अपने हाथों से ताड़न करने लगीं । कर-ताड़न के फल-स्वरूप उनके गर्भ विच्छिन्न हो छह खंडों में पृथ्वी पर गिर गये । वे (स्त्रियाँ) गिरे हुए उन खंडों को चुनकर उन्हें सरकंडे के वन में रखकर तप करने चली गईं ।

"वह उग्र तेज वहाँ एक जगह एकत्र होकर बढ़ने लगा और वही इस पृथ्वी पर श्वेताद्रि के नाम से विख्यात हुआ । उस पर्वत पर परम शिव के तेज से कुमार का जन्म अद्भुत रीति से हुआ । जन्म-स्थान सरकंडों से भरा प्रदेश था, इसलिए वे शरजन्मा (शरवणभव) कहलाये । इस पृथ्वी पर जन्म लेने के पश्चात् कृत्तिकाओं ने उन्हें स्तन्य-पान कराकर पाला-पोसा, इसलिए उनका नाम कार्त्तिकेय पड़ गया । वे माताएँ (कृत्तिकाएँ) छह थीं । अतएव उन्हें संतुष्ट करने के लिए कुमार ने छह मुँह धारण करके स्तन-पान किया, इसलिए वे षण्मुख (और षाण्मातुर) कहलाये । चन्द्रमौलि के वीर्य-स्कंदन (पतन) से उनका जन्म हुआ, इसलिए वे स्कंद कहलाये ।

"(फिर) यहाँ देवता शिव-पार्वती की स्तुति करने लगे । (पुत्रोत्पत्ति में बाधा डालने के कारण देवताओं पर) क्रुद्ध होकर लाल-लाल नेत्रों से उन्हें देखती हुई पार्वती ने कहा—'हे देवताओ, तुम और यह वसुंधरा संतानहीन हो जाओ । आगे से इस पृथ्वी को बहु-पतित्व प्राप्त होगा ।' (यह सुनकर) देवता व्याकुल हुए । उसके पश्चात् शिवजी पार्वती के साथ तपस्या करने हिमाचल पर चले गये ।

"इन्द्र के साथ सभी देवता ब्रह्मा के पास गये और उनसे विनती की—'हे जलज-संभव, हमें अत्यंत भुजबली एक सेनापति प्रदान कीजिए ।' तब उन्होंने देवताओं को देख-

देखकर कहा—'गौरीश के पुत्र कार्त्तिकेय तुम्हारी सेना का नायकत्व ग्रहण करेंगे।' देवता बहुत प्रसन्न हुए और कार्त्तिकेय उनके सेनाधिपति हुए। इससे इन्द्र को उन्नति तथा सुख प्राप्त हुए।"

इस प्रकार मुनि के कहने पर रघुराम अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्हें देखकर कहा—'हे संयमीश्रेष्ठ, इस महानदी (गंगा) के त्रिपथगा होने का क्या कारण है ?'

२६. गंगा नदी का वृत्तान्त

तब कौशिक श्रीराम से उसकी कथा यों कहने लगे—"पुण्यवान् सगर अयोध्या के विख्यात सम्राट् थे। पुत्र-प्राप्ति की इच्छा से उन्होंने (एक बार) हिमाचल में भृगु की तपस्या की। उनकी तपस्या से संतुष्ट होकर भृगु ने उन्हें देखकर कहा—'हे राजन्, तुम्हारे बहुत-से कीर्त्तिवान् पुत्र होंगे। तुम्हारी एक स्त्री एक वंशोद्धारक पुत्र का जन्म देगी और दूसरी स्त्री साठ हजार अतिबलशाली पुत्र उत्पन्न करेगी।' यह वरदान प्राप्त करके रानियों ने हाथ जोड़कर बड़े विनय से मुनि को प्रणाम किया और पूछा—'हे मुनीश्वर, हम (दोनों) में से किसके एक पुत्र होगा और किसके साठ हजार पुत्र उत्पन्न होंगे ?' तब मुनि बोले—'तुम्हारी इच्छा जैसी हो, वैसे ही पुत्रों का जन्म होगा।' इससे प्रसन्न होकर बड़ी रानी ने राजा से (अपने) नाम को सार्थक करनेवाले एक ही पुत्र पाने की इच्छा प्रकट की। दूसरी रानी ने साठ हजार पुत्रों को प्राप्त करना चाहा। फिर उन्होंने बड़े हर्ष से उस मुनिश्रेष्ठ की परिक्रमा की, उन्हें प्रणाम किया और नगर को लौट आये।

"कुछ दिनों के पश्चात् बड़ी रानी केशिनी ने असमंजस (अश्वमंज) नामक एक पुत्र को जन्म दिया। (दूसरी रानी) सुकृति ने लौकी के आकार का एक गर्भ-पिंड उत्पन्न किया, जिसमें से बड़े आश्चर्य से साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए। तब धाइयों ने उन शिशुओं को घी के पात्रों में रखकर कुछ दिनों तक उनका पालन-पोषण किया। वे क्रमशः रूप तथा यौवन प्राप्त करने लगे। ज्येष्ठ पुत्र बड़े दर्प के साथ अपने छोटे भाइयों को बलात् पकड़-पकड़कर सरयू नदी में फेंक देता था और (उन्हें डूबते देख) बहुत हर्षित होता था। ऐसे दुष्ट असमंजस के अंशुमान् नामक एक तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। असमंजस को अति-दुष्ट जानकर राजा ने उसे निर्वासित कर दिया और शाश्वत-धर्म-निष्ठा में तत्पर हो अश्व-मेध-यज्ञ करने का यत्न करने लगे।"

मुनि के यों कहने पर श्रीराम ने कौशिक से कहा—'हे मुनिनाथ, मुझे अपने पूर्वजों के चरित सुनने की बड़ी इच्छा हो रही है। कृपया विस्तार से कहें।'

तब विश्वामित्र कहने लगे—"हिमाचल और विंध्याचल के मध्य की भूमि में सगर ने अपना अश्वमेध-यज्ञ प्रारंभ किया। यज्ञाश्व की रक्षा करने के लिए अंशुमान् नियुक्त किया गया। उस समय इंन्द्र राक्षस का वेश धरकर अश्व को चुरा ले गया और पाताल-लोक में प्रवेश करके वहाँ तपस्या में लीन कपिल मुनि के निकट यज्ञाश्व को बाँधकर स्वयं स्वर्गलोक को लौट आया। अश्व का पता न लगने से क्रुद्ध होकर राजा (सगर) ने अपने पुत्रों को संबोधित करके कहा—"अश्व का कहीं पता नहीं है। कोई कुटिलात्मा उसे चुरा ले गया है। अतः तुम लोग तुरंत जाओ और जिस किसी के पास वह अश्व हो, उसका

वध करके अश्व को शीघ्र ले आओ ।' साठ हजार सगर-पुत्र अपने भुज-बल का प्रदर्शन करते हुए, निकल पड़े । उन्होंने पहले स्वर्ग, फिर भूलोक में अच्छी तरह उस अश्व को ढूँढ़ा । जब कहीं भी उसका पता न चला तब वे पृथ्वी को टुकड़े-टुकड़े करने लगे । 'हममें से प्रत्येक एक योजन पृथ्वी को खोद डालेंगे'—ऐसा निश्चय करके वे प्राच्य दिशा से प्रारंभ करके, बड़ी-बड़ी कुदालों और शूलों से पृथ्वी को रसातल तक खोदने लगे । इस प्रक्रिया में सामने आनेवाले पातालवासी तथा अन्य प्राणियों के समूहों का संहार भी वे करते जाते थे ।

"इस प्रकार उन अतुल बलशाली राजकुमारों ने साठ हजार योजन भूमि सहज ही खोद डाली । इस प्रकार असंख्य प्राणियों से युक्त जंबूद्वीप को सतत खोदते हुए, उपद्रव करनेवाले सगर-पुत्रों को देखकर अमर, गंधर्व तथा सिद्ध घबरा उठे और ब्रह्मा के पास जाकर भक्ति से प्रणाम करके बोले—"हे जलजसंभव, वन, पर्वत तथा द्वीपों से युक्त इस पृथ्वी को सगर-पुत्र खोद रहे हैं । जो कोई भी उनकी दृष्टि में पड़ जाता है, उसे 'इसीने यज्ञ में बाधा डाली है, यही अश्वहर है,' ऐसा कहते हुए व्यर्थ ही उसका वध कर डालते हैं । इस प्रकार उन्होंने कितने ही शक्ति-संपन्न जलचरों का संहार कर डाला । आप कृपया इसके निवारण का कोई उपाय कीजिए ।

"तब ब्रह्मा ने उनसे कहा—'अव्यय दामोदर (विष्णु) कपिल मुनि के रूप में तप कर रहे हैं । उस मुनि की क्रोधाग्नि में वे सब भस्म हो जायेंगे ।'

"सगर-पुत्रों ने वज्र के समान भयंकर गर्जन करते हुए इस पृथ्वी को चारों ओर से खोद डाला, किन्तु उन्हें कहीं भी घोड़े का पता न चला । तब वे अपने पिता के पास लौट आये और बोले—'हे देव, हमने समस्त पृथ्वी छान डाली, किन्तु कहीं भी हमें अश्व के चोर का पता नहीं चला । अब जैसी आपकी आज्ञा हो ।'

"तब राजा ने अत्यन्त क्रोध से अपने पुत्रों से कहा—'तुम लोग समस्त विश्व में व्याप्त होकर घोड़े की खोज करो । विना अश्व के तुम लोग यहाँ मत आना ।'

"सगर-पुत्रों ने पिता की आज्ञा शिरोधारण करके बड़ी भयंकर गति से रसातल में प्रवेश किया । वहाँ वे पूर्व से लेकर दक्षिण की तरफ खोदने लगे । पूर्व दिशा-भर में खोजने पर उन्हें कहीं भी घोड़ा दिखाई नहीं पड़ा । उन्होंने वहाँ पर एक श्रेष्ठ गजेन्द्र को देखा, जो चारों ओर से पृथ्वी-तल को इस प्रकार सँभाले हुए था, जैसे विष्णु ने अपनी सुन्दर भुजाओं से पृथ्वी को ऊपर उठाया था । सगर के पुत्रों ने उस गजराज को देखकर उसकी पूजा की और विना विलंब किये आग्नेय दिशा में चल पड़े । वहाँ खोजने पर भी उन्हें उस अश्व का पता नहीं लगा । वहाँ निरंतर बहनेवाले मदजल की सुगंधि से आकृष्ट, भ्रमरों से युक्त 'पुण्डरीक' नामक गज को देखकर उसकी पूजा तथा स्तुति की और दक्षिण दिशा में चल पड़े । वहाँ भी उन्हें अश्व का कोई समाचार नहीं मिला । किन्तु वहाँ उन्होंने 'वामन' नामक श्रेष्ठ गज को देखकर उसकी अर्चना की और नैऋती दिशा में खोज करने लगे । वहाँ भी अश्व का पता नहीं लगा । वहाँ उन्होंने कुमुद-समान कोमल तथा कुमुद-पुष्प के वर्णवाले 'कुमुद' नामक कुंजर को देखा । उन्होंने उसको प्रणाम करके पश्चिम

की ओर प्रस्थान किया । वहाँ खोजने पर भी अश्व नहीं मिला । पर वहाँ उन्होंने अंजन-पर्वत के समान, मदजल से युक्त 'अंजन' नामक हाथी को देखकर उसकी वंदना की । वे वहाँ से वायव्य दिशा में निकल पड़े; पर बहुत समय तक खोजने पर भी अश्व का पता नहीं लगा सके । वहाँ 'नमुचि' नामक राक्षस का संहार करनेवाले हाथी के समान दाँत रखते हुए भी 'पुष्पदन्त' नाम से अभिहित गज को देखकर बड़ी भक्ति से उसको प्रणाम किया और वहाँ से कुबेर की दिशा (उत्तर) में खोजने निकले । वहाँ भी उन्हें अश्व नहीं दीख पड़ा । वहाँ उन्होंने समस्त गज-लोक के चक्रवर्ती के समान विराजमान 'सार्वभौम' नामक गजेन्द्र को देखा और बड़ी भक्ति से उसको प्रणाम किया । वहाँ से ऐशानी दिशा में चले । उस समय उन्होंने निकट ही नेत्र बंद किये हुए एकांत तपोनिष्ठा में लीन हवनाग्नि के समान (पवित्र) अनघात्मा महामुनि कपिल को और उनके पास ही अश्व को (बँधा हुआ) देखा । सगर-पुत्र उन्हें कष्ट देने लगे । जब मुनि ने क्रोध में आकर उनकी ओर दृष्टि डाली, तब वे साठ हजार सगर-पुत्र वहीं भस्मीभूत हो गये ।

"अश्व के लाने में विलंब होते देखकर 'सगर' बहुत दुःखी हुए और उन्होंने अपने पोते अंशुमान् को भेजा । अंशुमान् भी उसी मार्ग से गया और पूर्व दिशा में रहनेवाले 'विरूपाक्ष' नामक हाथी को देखकर उसकी परिक्रमा की और उससे विनयपूर्वक पूछा—'हे गजराज, क्या आप बता करते हैं कि मेरे चाचा किस दिशा में गये हैं, कहाँ हैं और अश्व का चोर कहाँ छिपा है ?'

तब उस गजराज ने अंशुमान् को बड़े स्नेह के साथ देखते हुए कहा—'हे राजकुमार, तुम किसी स्थान में अवश्य अश्व को देख सकोगे ।' वहाँ से चलकर प्रत्येक दिग्गज से इसी प्रकार प्रश्न करते हुए और इसी प्रकार का उत्तर प्राप्त करते हुए अंत में उसने कपिल मुनि के निकट यज्ञाश्व को देखा । वहाँ सगर-पुत्रों के शरीरों की भस्म-राशियों को देखकर वह शोक-संतप्त हो गया । उसने अपने पितरों की तिलोदक-क्रिया करने के विचार से जल की खोज की, पर वहाँ जल कहीं भी नहीं मिला ।

२७. गंगावतरण की कथा

"उस राजकुमार पर दया करके उस समय वहाँ गरुड़ आये और राजकुमार से कहने लगे–'हे पुत्र, कपिल को क्रोधित करके उनकी क्रोधाग्नि से सभी सगर-पुत्र भस्म हो गये हैं । इस तरह शोक-संतप्त क्यों होते हो ? यह शोक करने का समय नहीं है । एक बात सुनो । सरसिजासन (ब्रह्मा) के लिए वंद्य, अरविंद-चरणवाले, अरविंददल-नेत्रवाले, आदि-पुरुष (विष्णु) ने दानव-राजा बलि को बाँधते समय, त्रिविक्रम का रूप धारण करके, अपनी अगणित शक्ति से दो पादों में ही समस्त पृथ्वी को समेट लिया था और जलजात, जलचर, तथा शंख-चक्र के लिए परिचित तीसरा चरण ब्रह्मलोक तक फैलाया था । तब ब्रह्मा शीघ्र वहाँ आये और बड़ी भक्ति के साथ अपने कमंडल के जल से उनके चरण-कमल धोये । वह जल स्वर्गलोक में मंदाकिनी के नाम से बह रहा है । तुम बड़ी भक्ति के साथ ब्रह्मा की कृपा पाने के लिए तपस्या करो और स्वर्गलोक की उस गंगा को इस

पृथ्वी पर ले आओ । उस पवित्र जल से इन भस्म-राशियों को सींचने से ही सगर-पुत्रों को स्वर्गलोक का सुख प्राप्त होगा । इसलिए तुम पहले इस अश्व को लेकर जाओ ।'

"अंशुमान् अश्व को अपने साथ लेकर गया और अपने दादा को सारी कथा कह सुनाई । सगर अत्यंत दुःखी हुए । उन्होंने पुण्य-यज्ञ समाप्त किया और उसके पश्चात मंदाकिनी को पृथ्वी पर लाने के उद्देश्य से तीस हजार वर्ष तक सतत तप करते रहे और (बिना सिद्धि प्राप्त किये ही) स्वर्ग सिधारे । उस राजा का पोता अंशुमान् भी मंदाकिनी को पृथ्वी पर लाने का दृढ़ संकल्प करके लगातार तीस हजार वर्ष तक तपस्या करने के बाद स्वर्ग-लोक को प्राप्त हुआ । उसका पुत्र राजा दिलीप भी मंदाकिनी को पृथ्वी पर लाने के उद्देश्य से तीस हजार साल तक तपस्या करता रहा और अंत में वह भी रोग-पीड़ित होकर दिवंगत हुआ । उसके पुत्र पुण्यवान् भगीरथ ने अपना राज्य अपने मंत्रियों के हाथों में सौंपकर, धर्मात्मा तथा सद्‌गुण-संपन्न पुत्रों की प्राप्ति तथा पृथ्वी के समस्त पापों को दूर करने की इच्छा से आकाश-गंगा को पृथ्वी पर ले आने का दृढ़ संकल्प कर लिया । उन्होंने अत्यंत भक्ति के साथ गोकर्णाश्रम में दस हजार वर्ष तक अनुपम रीति से तपस्या की । उनकी तपस्या से संतुष्ट होकर ब्रह्मा ने उन्हें दर्शन देकर कहा कि तुम कोई वर माँगो ।

"तब भगीरथ ने हाथ जोड़कर कहा--'हे भारती-वल्लभ, हे लोक-स्रष्टा, हे सूर्यलोक-रक्षक, हे सत्यसंपन्न, हे विधाता, हमारे पूर्वज अपनी उद्दण्डता के कारण कपिल की क्रोधाग्नि में भस्मीभूत होकर सौ सहस्र वर्षों से परलोक-गति से वंचित हो भस्म के रूप में पड़े हुए हैं । उस भस्म को मंदाकिनी के पवित्र जल से सींचे बिना उन्हें मुक्ति नहीं मिल सकती ।'

"इस पर ब्रह्मा ने कहा—'परमशिव के अतिरिक्त अन्य कोई उस गंगा को धारण नहीं कर सकेंगे । इसलिए, तुम निष्ठा के साथ शिव की तपस्या करो कि वे गंगा को धारण करें ।' इतना कहकर ब्रह्मा ने भगीरथ को उनकी इच्छा के अनुसार पुत्र-प्राप्ति का वर दिया और ब्रह्मलोक को चले गये ।

"उसके पश्चात् भगीरथ ने एक अंगूठे पर खड़े होकर शिवजी के प्रति घोर तपस्या की । उनकी तपस्या से संतुष्ट होकर शिवजी ने उन्हें दर्शन देकर कहा--"तुम गंगा को ले जाओ, मैं उसे अपने सिर पर धारण करूँगा ।' तब भगीरथ ने गंगा की प्रार्थना की । गंगा गगन-मंडल तथा नक्षत्र-मंडल को भेदकर समस्त लोकों को अपने गुरु गर्जन से गुँजाती हुई, सारे जगत् को भयभीत करती हुई, यों प्रवाहित होने लगी, मानों वह कुल-पर्वतों से युक्त पृथ्वी के साथ महादेव को भी पाताल तक बहा ले जाना चाहती हो । शिवजी ने उसका गर्व-भंग करने के लिए अपने जटा-जूट को ऐसा बढ़ाया कि गंगा उसमें उलझकर बाहर निकलने में असमर्थ हो गई ।

"तब भगीरथ आश्चर्य करने लगे, उतनी विशाल जल-धारा कहाँ छिप गई होगी ! उन्हें भय होने लगा । इसलिए, वे फिर शिवजी के प्रति उग्र तपस्या करने लगे । भगीरथ के तप से संतुष्ट होकर (शिव ने) अपने जटा-जूट में बँधी हुई गंगा से कहा—'अब तुम भूलोक में चली जाओ ।'

"तब गंगा उनके जटा-जूट के दक्षिण भाग से बाहर निकली । उस मंदाकिनी की धारा में मुकुलित कमल ऐसी शोभा दे रहे थे, मानों वह (मंदाकिनी) पाताल की ओर देखकर अपनी दिव्य-दृष्टि से वहाँ के कपिल मुनि को पहचानकर, उनकी महिमा पर आश्चर्य करती हुई हाथ जोड़े उनसे प्रार्थना करती हो कि (हे मुनि) आपको जिन भयंकर व्यक्तियों ने दुःख दिया था, उन्हें सुगति प्रदान करने के लिए मैं आ रही हूँ, आप क्रोध न करें । उस धारा में भँवर ऐसे पड़ रहे थे, मानों उस मुनि के क्रोध की कल्पना करके मंदाकिनी भय से व्याकुल हो रही हो । धारा के बीच कमल-पुष्पों के भींग जाने से उनमें बैठे न रह सकने के कारण भ्रमर आकाश में व्याप्त हो, इस प्रकार गुंजार कर रहे थे, मानों सगर-पुत्रों के पाप, वेग से आनेवाली मंदाकिनी की धारा को देखकर इधर-उधर भागते हुए शिवजी से विनती कर रहे हों कि (हे शिवजी) गंगा हम पर आक्रमण करने के लिए आ रही हैं, हम अब भागकर कहाँ जायें ? हंस आकाश-पथ में ऐसे मँडरा रहे थे, मानों शिव के जटा-जूट से पृथ्वी पर उतरनेवाली गंगा को धूप से बचाना चाहते हों। उस नदी की सुंदर तथा उत्तुंग लहरें ऐसी शोभा दे रही थीं, मानों वे सगर-पुत्रों के पाप-समूह को मिटानेवाले उस (नदी के) हाथ हों । धारा इतने अधिक फेन से व्याप्त थी, मानो भगीरथ की अनुपम कीत्ति समस्त संसार में व्याप्त होने के लिए एकत्र हो रही हो । उस नदी का अतुल घोष क्रमशः बढता हुआ सारे ब्रह्माण्ड तथा आकाश में व्याप्त हो गया । इस प्रकार वह शिव के जटा-जूट से बिंदु-सरोवर में यह कहती हुई उतरी कि मैं इस संसार के पापियों को पुण्य प्रदान करने के लिए आ रही हूँ । ब्रह्मा आदि देवता उसकी स्तुति करने लगे । सुर तथा खेचर बड़े उत्साह से यह दृश्य देखने लगे । गरुड़ तथा गंधर्व उसकी प्रशंसा करने लगे ।

"मंदाकिनी की धारा की सात शाखाएँ हुई । पावनी, ह्लादिनी, और नलिनी नामक तीन शाखाएँ पूरब की ओर गईं । सीता, सुचक्षु तथा सिंधु नामक तीन शाखाएँ पश्चिम की ओर गईं । एक शाखा राजा भगीरथ के पीछे भूलोक की ओर चली । वह श्रेष्ठ तथा विशाल जल-धारा आकाश-मार्ग में शरत्काल के बादल के समान शोभित हो रही थी । वह जल-धारा, पृथ्वी की तरफ इस प्रकार उतर रही थी, मानों स्वर्गाकांक्षी भूलोक-निवासियों के लिए सीढ़ी लगी हो । उसकी तरंगों की ध्वनि पृथ्वी तथा आकाश को गुँजा देती थी । उस धारा में ऐसे भँवर पड़ रहे थे, मानों वह यह बताना चाहती हो कि मैं (पृथ्वी) के समस्त पापों को उसी तरह नचा दूँगी (ध्वंस कर दूँगी) ।

"पृथ्वी पर उसके उतरते समय जल की बूँदें आकाश की तरफ ऐसे उछल रही थीं, मानों वे नक्षत्रों से मित्रता करना चाहती हों । उसका स्वच्छ फेन-समूह ऐसा सुशोभित हो रहा था, मानों वह नदी (बड़े हर्ष से) हँसती हुई यह कह रही हो कि मैं धर्मात्माओं की पवित्र कीर्त्तियों के लिए योग्य स्थान हूँ । उस धारा में क्रीड़ा करनेवाली मछलियाँ ऐसी दीख रही थीं, मानों नदी कह रही हो कि मैं अपने असंख्य नेत्रों से पृथ्वी की श्रेष्ठता देखूँगी । इस प्रकार भिन्न-भिन्न जलचरों से युक्त हो, वह नदी पृथ्वी पर उतर आई ।

"तब सौ-सौ सूर्यों की कान्ति के समान प्रकाशित होनेवाले, बहु-रत्न-खचित आभूषणों की कान्ति से सारे आकाश को दीप्तिमान् करते हुए, गज तथा विमानों में आरूढ़ होकर अमर, गंधर्व तथा सिद्ध बड़े कौतुक से इस दृश्य को देखने आये। उस प्रवाह की चंचल गति को देखकर महानागों ने भी उसके सामने घुटने टेके। देवताओं ने जप आदि करके उस नदी में स्नान किया और बहुत ही प्रसन्न हुए। अप्सराओं ने नृत्य किया, देवों तथा मुनियों ने बड़े हर्ष से उस नदी की पूजा पुष्पों से की। उस पुण्य-नदी की धारा में अमित पापी तथा शाप-पीड़ित जन स्नान करके स्वर्ग जाने लगे। देवता, अप्सराएँ, गंधर्व, दनुज, पन्नग, यक्ष, किन्नर आदि बड़े उत्साह से भगीरथ के रथ के पीछे-पीछे चले।

"तब वह गंगा बड़े-बड़े पर्वतों को भेदती हुई भगीरथ के पीछे-पीछे जाने लगी। उसी मार्ग में जह्नु नामक ऋषि की यज्ञ-भूमि थी। गंगा ने अपने अतुल प्रवाह से उस आश्रम-भूमि को घेर लिया। यज्ञोपकरण सभी गंगा के प्रवाह में बह गये। यज्ञ में विघ्न पड़ा हुआ देख, जह्नु क्रुद्ध हुए और उद्धत गति से आनेवाली उस गंगा का सारा जल पी गये। तब देवता तथा मुनियों ने भगीरथ से कहा—'हे राजन्, यह मुनि क्रोध में आकर गंगा को पी गये हैं। आप उनसे अपना क्रोध त्यागने तथा गंगा को मुक्त करने की प्रार्थना कीजिए। मुनि प्रसन्न होकर आपकी प्रार्थना स्वीकार करेंगे।' तब भगीरथ बड़ी भक्ति तथा विनय के साथ हाथ जोड़कर उस मुनि से प्रार्थना करने लगे।

"हे मुनिचन्द्र, हे विमलात्मा, मैं इस श्रेष्ठ गंगा को घोर तपस्या के उपरान्त पृथ्वी पर ला सका हूँ। किंतु, यहाँ आने के बाद मैं उसे खो बैठा। हे धन्यचरित, हे संयमीन्द्र, आप कृपाकर उसे मुक्त कर दें।' (राजा की बात सुनकर मुनिवर के मन में दया उत्पन्न हुई) वे बोले—'हे भगीरथ, गंगानदी को इस प्रकार पृथ्वी पर ले आने में आपकी तपस्या, आपके महत्व तथा आपकी कीर्त्ति का वर्णन मैं कैसे करूँ? अब मैं गंगा को मुक्त कर दूँगा। इस संसार में आपके यश की व्याप्ति होगी।'

"इस प्रकार कहकर, गंगा को मुँह से छोड़कर उसे जूठा न करने की इच्छा से उन्होंने अपने कान के मार्ग से उसे बाहर छोड़ दिया। पूर्व की तरह गंगा प्रवाहित होने लगी। तभी उसका नाम जाह्नवी पड़ गया।

"जिस प्रकार पूर्वकृत पुण्य जीवन के विघ्नों को दूर करता हुआ आता है, उसी प्रकार जाह्नवी राजा के पीछे चली और समुद्र में प्रवेश करके रसातल में पहुँच गई। वहाँ सगर-पुत्रों की भस्म-राशियों को अपने पुण्य-सलिल से सींचा। तब कमलासन (ब्रह्मा) ने बड़े हर्ष से भगीरथ से कहा—'हे राजन्, जबतक समुद्र में जल रहेगा तबतक ये सगर-पुत्र दिव्य चंदन, वस्त्राभूषणों से अलंकृत हो स्वर्ग-लोक में दिव्य भोगों का अनुभव करेंगे। हे अनघ, आज से यह नदी भागीरथी, त्रिपथगा तथा जाह्नवी के नामों से समस्त लोकों में विख्यात होगी। तुम्हारे पूर्वज सगर, अंशुमान् तथा दिलीप ने जो संकल्प किया था, वे उसे सिद्ध नहीं कर सके। तुम बड़े प्रयत्न के उपरान्त गंगा को इस पृथ्वी पर ले आये हो, (अतएव) तुम गंगाजल के निर्मल तथा कमनीय पद को प्राप्त करके चिर कीर्त्ति-वान् होकर निवास करो। काकुत्स्थ-वंश की प्रतिष्ठा तथा गौरव के आधार-स्वरूप पुत्रों

को प्राप्त करो। तुम सुंदर धर्मों के आधार हो गये। अब तुम इस पुण्य-सलिल में विधिवत् पुण्य-स्नान करके उसका फल प्राप्त करो।' यों कहकर कमलसंभव (ब्रह्मा) अपने लोक को चले गये।

"उसके पश्चात् भगीरथ ने गंगा में स्नान करके बड़ी निष्ठा के साथ साठ हजार सगर-पुत्रों की तिलोदक-क्रिया की। उस पुण्य-क्रिया के फलस्वरूप सगर-पुत्रों ने अमरत्व प्राप्त किया और भगीरथ को आशीर्वाद देकर स्वर्गलोक सिधारे। पुण्यवान् भगीरथ अयोध्या लौटकर सुख से राज्य करने लगे।

"पापों का नाश करनेवाला यह उपाख्यान जो कोई भक्ति से पढ़ेगा या सुनेगा, वह अनंत पुण्य प्राप्त करता हुआ धन-धान्य तथा यश से समृद्ध हो चिरजीवी होगा। उसपर सभी देवता प्रसन्न होंगे; उसके सभी कार्य सिद्ध होंगे; उसे स्वर्ग की प्राप्ति होगी तथा उसके पितरों को सद्गति मिलेगी।"

इस प्रकार राघव ने गंगावतरण की कथा कौशिक से सुनकर उनकी प्रशंसा करते हुए कहा—'हे मुनीन्द्र, मैं आपसे पृथ्वी पर गंगावतरण की कथा बड़े आश्चर्य के साथ सुन प्रसन्न हुआ।'

(उन्होंने) वह रात्रि वहीं बिताई और प्रातःकाल ही उस प्रसिद्ध नदी में स्नान करके संध्या आदि कार्यों से निवृत्त होकर जाह्नवी नदी को पार किया। नदी के उत्तर तट पर निवास करनेवाले मुनियों की बड़ी भक्ति के साथ पूजा की और उस स्थान को छोड़कर आगे चले।

थोड़ी दूर जाने पर उन्हें 'विशाला' नामक सुंदर नगर दिखाई पड़ा। तब राम ने गाधेय को संबोधित करके पूछा—'हे मुनि, इस नगर का नाम क्या है? किस वंश का राजा यहाँ राज्य करता है? आप कृपाकर बतलाइए।'

२८. अमृत-मंथन की कथा

तब कौशिक ने राघव से कहा—"मैंने बहुत पहले यह कथा इन्द्र से सुनी थी। प्राचीन काल में दिति के अत्यन्त बलवान् तथा पराक्रमी पुत्र तथा अदिति के बड़े धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न हुए। उन्होंने सोचा कि क्षीरसागर को पहले रस तथा औषधियों से भरकर उसका मंथन करें और उस जलराशि से उत्पन्न होनेवाली श्रेष्ठ तथा कान्तियुक्त वस्तुओं को बड़ी प्रसन्नता से ग्रहण करें। (इस प्रकार सोचकर) वे मंदर-पर्वत को मथनी और वासुकी को रस्सी बनाकर मंथन करने लगे। उस समय समुद्र में से समस्त लोकों को, मन्मथ-समुद्र में डुबोने की क्षमता रखनेवाला सौंदर्य, क्वणित होनेवाली करधनी से युक्त गुरु नितम्ब, क्षीण कटि, सुन्दर कुच, कोमल भ्रू-लता-रूपी कोदण्डवाले कामदेव के बाणों के समान (तीक्ष्ण) कटाक्ष, भव्य भुज-लता-विक्षेप, अमर नव-यौवन तथा कमनीयता से सुशोभित साठ हजार अप्सराएँ तथा उन सुन्दरियों के योग्य हाव-भावों से युक्त परिचारिकाएँ उत्पन्न हुईं। उन अप्सरा-युवतियों को देवता तथा दैत्यों ने क्रमशः ले लिया। उसके पश्चात् भी समुद्र-मंथन चलता रहा। तब वरुण की पुत्री वारुणी का जन्म हुआ। दिति के पुत्रों ने उसका वरण करना स्वीकार नहीं किया। इसलिए वे असुर कहलाये। अदिति

के पुत्रों ने उसे स्वीकार कर लिया । इसलिए, वे सुर के नाम से विख्यात हुए । उसके पश्चात् उच्चैःश्रवा नामक अश्व, श्वेत गज (ऐरावत) तथा कौस्तुभ-मणि का जन्म हुआ । कौस्तुभ-मणि के बाद अमृत उत्पन्न हुआ । अमृत के बाद सुधा-कमण्डल को लिये धन्वन्तरि का जन्म हुआ । फिर विष उत्पन्न हुआ । जब वह (विष) अत्यन्त भयंकर अग्नि के समान व्याप्त होने लगा, तब शिव ने उसका पान किया । इसके उपरान्त अमृत के लिए सुर और असुर परस्पर युद्ध करने लगे । उस समय उन सुरासुरों को देखकर सुरों पर कृपा करते हुए, विष्णु एक सुन्दरी का रूप धारण कर आये और अमृत का वितरण करने लगे । उस समय राहु तथा केतु नामक राक्षस (विष्णु के मन की बात जानकर) सुरों की पंक्ति में आकर बैठ गये और अमृत के लिए हाथ फैलाया । उनके शरीर की कान्ति देखे विना ही उस सुन्दरी ने अमृत दे दिया । रवि तथा शशि ने बड़ी घबराहट के साथ इसे देखा और सुन्दरी को आँख के संकेत से यह बताया । तब विष्णु ने क्रुद्ध होकर अपना चक्र उन (राक्षसों) पर चलाकर उनके सिर काट डाले । उन्होंने उन राक्षसों के शिरों को ग्रहों के रूप में आकाश में प्रतिष्ठित किया । अमृत-पान करने से वे मृत्यु को प्राप्त हुए विना रहने लगे । उसी दिन से वे (राक्षस) पुण्य के दिनों में सूर्य और चन्द्र को पीड़ा पहुँचाते आ रहे हैं ।

"सुन्दरी ने असुरों की आँख बचाकर सुरों को ही अमृत दिया और युद्ध में उनको विजय भी प्रदान की । इन्द्र ने सभी दैत्यों का नाश किया और तीनों लोकों का अधिपति बनकर राज्य करने लगा ।

"अपने सभी पुत्रों की मृत्यु से दुःखी होकर दिति ने बड़ी दीनता से अपने पति कश्यप से कहा—'हे महात्मा, आप मुझे एक ऐसा पुत्र प्रदान कीजिए, जो इन्द्र को भी मारने की शक्ति तथा पराक्रम रखता हो ।' उसकी प्रार्थना स्वीकार करके कश्यप ने कहा—'हे भद्रे, यदि तुम एक हजार साल तक शुद्धात्मा तथा पवित्र रह सकोगी, तो तुम्हें तीनों लोकों को जीतनेवाला तथा इन्द्र का अन्त करनेवाला पुत्र मुझसे प्राप्त होगा ।' यों कहकर उन्होंने अपने कर-कमल से दिति के शरीर का मृदु गति से परिमार्जन कर दिया । उसके पश्चात् वे तप करने चले गये ।

"उनके चले जाने के बाद दिति 'कुशप्लव' (नामक स्थान में) उग्र तपस्या करने चली गई । यह वृत्तान्त जानकर इन्द्र माता दिति के पास शिष्य के रूप में पहुँच गया और बड़ी भक्ति के साथ उनकी पूजा-अर्चना करने के लिए आवश्यक कुश, समिधा, फल, कंद-मूल, जल आदि वस्तुएँ जुटाते हुए सतत उनकी सेवा-परिचर्या करता रहा । दिति जब जो वस्तु चाहती, वह उसके संकेत-मात्र से ही वह वस्तु वहाँ प्रस्तुत कर देता था । इस प्रकार नौ सौ निन्यानवे वर्ष बीत गये ।

"एक दिन दिति अपने मन की बात छिपा नहीं सकी । उन्होंने इन्द्र से कहा—'हे इन्द्र, मैंने तुम्हारे पिता से एक पुत्र की प्रार्थना की थी । एक हजार वर्ष के उपरान्त मुझे एक पुत्र होगा, ऐसा वर उन्होंने मुझे प्रदान किया है । आज से दस वर्ष के पश्चात् तुम्हारे भाई का जन्म होगा । तुम और वह दोनों तीनों लोकों का राज्य करोगे और यशस्वी बनोगे ।'

उस दिन मध्याह्न के समय दिति थकावट के कारण अपने केश बिखेरकर (खाट पर) पायताने की तरफ सिर रखकर सो गई । उन्हें इस प्रकार देखकर इन्द्र बहुत प्रसन्न हुआ और सोचा कि यही मेरे लिए अच्छा अवसर है । उसने अपनी योग-शक्ति से दिति के गर्भ में प्रवेश किया और अपने वज्रायुध से अपने शत्रु-शिशु के खण्ड-खण्ड करने लगा । शिशु का रुदन सुनकर दिति जाग पड़ी । तब इन्द्र धीरे-धीरे कहने लगा—'मा रुदः मा रुदः (मत रोओ, मत रोओ) । दिति चिल्लाने लगी—'शिशु का वध मत करो ।' दिति का क्रंदन सुनकर इन्द्र गर्भ से बाहर आ गया और हाथ जोड़कर बड़ी भक्ति के साथ दिति से कहा—'माता, आप मुक्तकेशी होकर पायताने की ओर सिर किये सो रही थीं । इससे आपकी पवित्रता में भंग पड़ गया । इसलिए मैंने अपने कार्य की सिद्धि के लिए आपके गर्भ में प्रवेश करने का साहस किया और मेरा नाश करने के लिए उत्पन्न होने-वाले गर्भस्थ शिशु के सात खण्ड कर दिये । नन्हा शिशु मेरा शत्रु था, इसलिए मैंने उसका वध किया । हे माता, धर्म का विचार करके आप (मुझे) क्षमा कीजिए ।' इस प्रकार इन्द्र दुःख प्रकट करने लगा ।

"इन्द्र को दुःखी देखकर दिति ने कहा—'हे स्वर्ग के स्वामी, इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है । सारा दोष मेरा ही है । ये सातों खण्ड मरुत नाम से तेजस्वी बनकर उत्पन्न होंगे । तुम उन्हें इच्छानुसार सारे संसार में विचरण करने देना । तुम मेरे इन सातों पुत्रों को सप्त मारुतों के गण-नायक बनाना । यही तुमसे मेरी विनती है ।'

"इन्द्र उनकी प्रार्थना स्वीकार करके इन्द्रलोक को चला गया । वे सातों शिशु क्रमशः इन्द्र की मित्रता प्राप्त करके मरुद्गण तथा देवता बन गये । इसी पुण्य-प्रदेश में देवेन्द्र ने दिति की परिचर्या की थी । वहीं पर इक्ष्वाकु नामक राजा ने अपनी रानी अलंबुषा से 'विशाल' नामक पुत्र उत्पन्न किया था । उस विशाल ने यहाँ 'विशाला' नामक नगर का निर्माण किया । उस विशाल के हेमचंद्र नामक पुत्र हुआ । उसने सुचन्द्र को, सुचन्द्र ने धूम्राश्व को, धूम्राश्व ने सृंजय को, सृंजय ने कुशाश्व को, उसने सोमदत्त को, सोमदत्त ने ककुत्स्थ को और ककुत्स्थ ने सुमति को जन्म दिया । वह सुमति अभी इस नगर में रहते हुए अत्यन्त धर्म-बुद्ध होकर राज्य कर रहा है । हे अनघ, धर्म तथा वैभवसंपन्न ये राजा संसार में 'वैशालिक' के नाम से विख्यात हैं । हम यहाँ आज की रात्रि बितायें और प्रातःकाल होते ही राजा को देखने चलेंगे ।"

वहाँ का राजा सुमति विश्वामित्र के आगमन का समाचार जानकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ । वह अपने पुरोहित तथा बंधु-जनों के साथ नगर के बाहर आया और विधिवत् संयमीन्द्र विश्वामित्र की पूजा करके उनसे हाथ जोड़कर बड़ी श्रद्धा से कहा—'हे मुनीन्द्र, मैं आज इस पृथ्वी पर धन्य हुआ । मेरा जन्म सार्थक हुआ ।'

परस्पर कुशल-प्रश्नों के पश्चात् सुमति ने विश्वामित्र को संबोधित करके कहा—'हे मुनिनाथ, आपके साथ रहनेवाले असमान रूपवान्, विशालबाहु, दिव्य-पराक्रमी, गज की गतिवाले, सिंह-सम शक्तिशाली, ललित तथा प्रफुल्ल अरविंद-सम नेत्रवाले, धनुष तथा करवाल-धारी, आकाश जैसे रवि-शशि के संचार से अलंकृत होता है, वैसे ही आपके पदन्यास को

अलंकृत करनेवाले, दर्शकों को दोनों ही सब प्रकार से समान दीखनेवाले ये कुमार कौन हैं ? किसके पुत्र हैं ? कृपया बताइए ।'

तब विश्वामित्र ने उसे देखकर कहा—"हे राजकुल-चन्द्र, हे सद्‌गुण-सागर, मैं इनका वृत्तान्त तुम्हें सुनाता हूँ, तुम सुनो । सरयू नदी के किनारे कोशल-देश में अयोध्या नामक नगर है । उस नगर में अत्यन्त प्रीति से प्रजा का पालन करनेवाले राजा दशरथ राज्य करते हैं । यह उनका श्रेष्ठ पुत्र राम है । यह उसका अनुज लक्ष्मण है । मेरी प्रार्थना पर राजा ने यज्ञ-रक्षणार्थ इन दोनों को मेरे साथ भेजा है । मेरे साथ आकर (इन दोनों ने) मेरे यज्ञ की रक्षा की; युद्ध में बड़े पराक्रम के साथ सुबाहु का वध किया और मारीच को परास्त किया । उसके पश्चात् मिथिला जाने के उद्देश्य से गंगा पार करके यहाँ आये हैं । ये राजचन्द्र सूर्य-वंश-तिलक हैं । उनके सामर्थ्य की कथा आश्चर्य में डालनेवाली है ।"

विश्वामित्र के वचन सुनकर राजा सुमति आश्चर्य-चकित हुआ । उसने उन राजकुमारों का आदर-सत्कार किया । उन्होंने प्रेम से राजा का आतिथ्य ग्रहण किया । सबने रात्रि वहीं बिताई और प्रभात होने पर राजा ने उनको वहाँ से विदा किया ।

२९. गौतम के आश्रम का वृत्तान्त

(वहाँ से चलकर) मार्ग में चलते-चलते राघव ने गौतम के आश्रम को देखकर गाधि-पुत्र को संबोधित करके कहा—"हे मुनीश्वर, ललित पल्लवों से युक्त, आम्र, कटहल, नारंगी, जंबीर, नारिकेल, देवदारु, बिजौरी, नीबू, बेल, सुपारी, केला, अशोक, लाख, दाड़िम, तेंदू, सेमल, चंदन, कर्पूर, मीठे आम, भिलावाँ, गुग्गुल, आदि पेड़ों से सुशोभित, सिंधुवार, पुन्नाग, मौलसिरी, चमेली, कुंद, कर्पूर आदि पुष्पों की सुगंधि से परिपूर्ण, सर्वत्र व्याप्त लौंग तथा एला की लताओं से युक्त, सरोवरों से सुशोभित, रम्य पक्षियों के कल-कूजन से मुखरित यह आश्रम-भूमि आज निर्जन क्यों है ? इसके पहले कौन मुनि यहाँ तपस्या करते थे ? कृपया बतलाइए ।"

तब मुनि ने कहा—"किसी समय गौतम मुनि अहल्या के साथ इस आश्रम में अत्यन्त निष्ठा से घोर तपस्या करते थे । यह देख इन्द्र ने उनकी तपस्या में बाधा डालनी चाही । एक दिन उसने मुर्गे के रूप में पर्णशाला के पास पहुँचकर बाँग दी । मुनि (प्रातःकाल हो गया समझकर) अनुष्ठान करने के लिए (नदी-तट पर) चले गये । तब इन्द्र गौतम का रूप धारण करके आया और अहल्या को देखकर कहा—'अभी रात्रि बहुत बाकी है । हे सुन्दरी, यह तुम्हारा ऋतु-काल है । इस समय रति-क्रीड़ा करने की इच्छा से ही मैं आया हूँ ।' इस पर (सारी बातें जानकर) अहल्या ने कहा—'मैं जानती हूँ कि तुम इन्द्र हो; अंदर चले आओ ।' यों कहती हुई वह इन्द्र को पर्णशाला में ले गई और उसके साथ रति-क्रीड़ा की । जब इन्द्र झिझक तथा भय से वहाँ से जाने लगा, तभी गौतम मुनि वहाँ पहुँच गये । (इन्द्र को देख) उन्होंने शाप दिया—'रे पापी, क्या यह तुम्हारे लिए उचित है कि तुम मेरा रूप धारण कर मेरी पत्नी से मिलो । इस पाप-कर्म के लिए तुम अंडकोश-रहित हो जाओ ।' गौतम का शाप अप्रतिहत होकर उसे लगा और तुरंत उसके अण्डकोश भूमि पर गिर गये ।

"इसके पश्चात् गौतम ने अहल्या को देखकर कहा--'हे नारी, तुम पाषाण होकर इस भूमि पर पड़ जाओ और प्रचण्ड धूप में लोटती रहो ।' तब अहल्या ने उनसे पूछा--'हे देव, आपके शाप का अंत कैसे होगा ?' तब गौतम ने कहा--'वैकुंठवासी, अवाप्त-कामी, लोक-रक्षक और पुराण-पुरुष (विष्णु) राम के रूप में जन्म लेंगे । कौशिक के यज्ञ की रक्षा करने के बाद वे सूर्यवंशतिलक इसी मार्ग से आयेंगे। यदि उनके चरणों का स्पर्श तुमसे होगा तो तुम शाप-मुक्त हो जाओगी ।' यों कहकर वे शीताद्रि के लिए चल पड़े । वही मुनि-पत्नी यहाँ पाषाण के रूप में पड़ी हुई है ।

"जब सुरराज (इन्द्र) ने अपनी दुर्गति का समाचार देवताओं से कहा, तब उन्होंने मेष (भेड़) का अंडकोश लाकर इन्द्र के शरीर में जोड़ दिया । इसी कारण से पुण्यवान् लोग यज्ञ के समय मेषों का वध करते हैं ।

"इस प्रकार मुनि के शाप से पीड़ित अहल्या इसी तपोवन में पड़ी हुई है । हे राम, हे पुण्यधाम, तुम उस अहल्या का दुख-मोचन करो ।"

यों कहकर विश्वामित्र (राम-लक्ष्मण के साथ) गौतम के आश्रम में आये । श्रीराम का चरण छूते ही, बादलों के हटने पर प्रकाशित होनेवाले चन्द्र के समान, धुआँ से मुक्त होने पर हवन-कुंड की अग्नि-ज्वाला के समान, कलंक-रहित कमलिनी के समान, मलिनता से रहित स्वर्ण के समान, राम के चरण-कमलों के रज का स्पर्श होते ही पाप-मुक्त होकर उस स्त्री (अहल्या) ने शिला का रूप तजकर निज रूप प्राप्त कर लिया । वह पहले ही अपने पति से राम की महत्ता के विषय में सुन चुकी थी, इसलिए उस गजगामिनी ने उस महापुरुष का आतिथ्य किया और कहा--'आपके शुभागमन से मैं कृतार्थ हो गई । आपके चरण-कमलों ने मेरा उद्धार कर दिया । हे त्रिलोकीनाथ! हे रघुनाथ ! आपका चरणोदक ही आकाश-गंगा के रूप में धरती के समस्त पापों को दूर करने (पृथ्वी पर) आया है । आपने अपने एक चरण से पृथ्वी को और दूसरे चरण से आकाश को नाप-कर बलि को दबाया था, सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त होकर वेदों के शिरोभाग में विचरण करनेवाले आपके चरण यदि मुझे शाप-मुक्त कर दें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?' इस प्रकार अहल्या ने राम की स्तुति की । इतने में गौतम मुनि भी वहाँ आ पहुँचे । उन्होंने रघु रामचन्द्र की पूजा की और पूर्व-जन्म की सुकृति-रूपी अहल्या को स्वीकार करके पूर्ववत् उसी आश्रम में रहने लगे । तब कुंभ-वृष्टि (घोर वृष्टि) हुई और देव लोग दुंदुभियाँ बजाने लगे ।

३०. मिथिला में आगमन

वे पुण्यचरित वहाँ से चलकर जनक की राजधानी मिथिला नगर में पहुँचे, जो गगनचुंबी प्राकारों, सौध-समूहों, रत्न-खचित गृहों, रमणीय राजमार्गों, दुर्गों, मनोहर उद्यानों, सुन्दर वनस्पतियों तथा समस्त शुभों से परिपूर्ण था ।

जनक की यज्ञ-भूमि में कलिंग, नैपाल, कर्णाटक, लाट, मालव, सौवीर, मगध, पांचाल, कुरु, पाण्ड्य, बर्बल, कुंतल, अवंती, मरु, तरुष्क, आभीर आदि देशों के राजा विराजमान थे । वह यज्ञ-भूमि, यज्ञोपकरणों तथा उसके अनुरूप पशुओं, यूपकाष्ठ, दधि-क्षीर से

भरे पूर्ण कुंभों, समिधाओं से भरे सुंदर स्थलों, पंक्तियों में सजे हुए दर्भासनों, उचित आसनों पर विराजमान तपोनिधि मुनियों, अत्यन्त रमणीय रत्न-पल्लव तोरणों, सामादि वेदों के घोषों, सतत यज्ञ के दर्शनार्थ आनेवाले तपस्वियों, आकाश तक व्याप्त होनेवाला हवन का धुआँ, देवताओं का आह्वान करनेवाली ध्वनियों, पूजाओं को ग्रहण करनेवाले पुण्य संयमी (मुनियों) तथा पूजाओं को प्राप्त करने में न थकनेवाले ब्राह्मणों से परिपूर्ण था।

(गाधि-पुत्र को आया जानकर) जनक महाराज बड़े उत्साह से उनके सम्मुख गये, मुनिनाथ को दंडवत्-प्रणाम किया और उन्हें ले जाकर उनकी उचित पूजा की और कुशल-प्रश्न पूछे। उसके पश्चात् वे उस मुनीन्द्र की प्रशंसा करते हुए कहने लगे—आपके आगमन से मैं परम पवित्र हुआ। मेरा यज्ञ समृद्ध हुआ।' इस प्रकार कहने के उपरान्त उस मुनीन्द्र के पीछे सुशोभित विशाल वक्षवाले, काकपक्षधारी, महाधनुर्धर, कोमल शरीरवाले, सुभग, यशस्वी, भूमि पर अवतार लिये हुए देवताओं के समान दीखनेवाले दयालु, सतत प्रसन्नवदनवाले, भुवन-पावन चरित्रवाले, सूर्य तथा चन्द्र की-सी कान्ति से विलसित, आजानु-बाहु, अश्विनीकुमारों के समान दीखनेवाले, अतुल पराक्रमी और कमल-लोचनवाले, राम तथा लक्ष्मण को देखकर जनक ने विश्वामित्र से पूछा—'हे महात्मा, ये, धनुर्बाणधारी तथा चतुर बालक किनके पुत्र हैं ? ये नव-पल्लव के सदृश अरुण तथा कोमल चरण-कमल यहाँ तक कैसे पैदल आये ?'

तब विश्वामित्र ने कहा—'हे राजन्, ये अनघ महाराज दशरथ के पुत्र हैं। इन्होंने अपनी अमित शक्ति से मेरे यज्ञ की रक्षा की। कृपा करके अहल्या का उद्धार किया और आपके घर में रखे हुए शिव-धनु को देखने यहाँ आये हैं।' मुनीश्वर की इन बातों से प्रसन्न होकर जनक ने उन (राजकुमारों) का स्वागत-सत्कार किया।

फिर गौतम मुनि के शिष्य शतानन्द ने कौशिक को संबोधित करके कहा—"हे महात्मा, राघव को अपने साथ ले आकर आपने हम पर बड़ी कृपा की है। इस विश्वप्रभु को यहाँ तक ले आने का कार्य किसके लिए संभव था ? राघव के चरण-रज ने मेरी माता अहल्या के पापों का शमन कर दिया। गौतम मुनि के शाप से मुक्ति प्राप्त कर मेरी माता फिर मुनि से मिल गई हैं। रामचंद्र के चरण की महिमा का वर्णन मैं किन शब्दों में करूँ ?"

३१. विश्वामित्र की शक्ति का परिचय

इसके पश्चात् शतानंद ने राम की ओर देख कर कहा—"हे रामचंद्र, सुनते हैं कि यह पुण्यात्मा कौशिक, इस पृथ्वी पर, आपके अभिभावक हैं। अब आपको किस बात की कमी है ? विश्वामित्र की असमान क्षमता का वर्णन करना कठिन है। फिर भी आप सुनें। हे दशरथात्मज, कुश नामक मुनि ब्रह्मा के पुत्र थे, कुश ने कुशनाभ को जन्म दिया। गाधि उस कुशनाभ के पुत्र थे। ऐसे पवित्र गाधि के ये (विश्वामित्र) पुत्र हैं। ये धर्म-निरत होकर, अमित पराक्रम के साथ पृथ्वी का शासन करते थे। एक दिन विनोदार्थ मृगया खेलने के लिए अपनी विशाल सेना के साथ निकले। बहुत समय तक वन में मृगया खेलने के पश्चात् बहुत ही थके-माँदे होकर वे वसिष्ठ के आश्रम में पहुँचे। वसिष्ठ का

आश्रम नाना प्रकार की सुगंधित पुष्प-मंजरियों से तथा विविध प्रकार के फलों से लदे वृक्षों से भरा था । पक्षियों का कलरव तथा वेद-घोषों से सारा आश्रम गूंज रहा था । उसमें कई सरोवर तथा यज्ञ की वेदियाँ थीं । भिन्न-भिन्न जाति के मृग अपने स्वभाव-सुलभ वैर को भूलकर वहाँ विचरण कर रहे थे । उनका आश्रम वायु, जल तथा (वृक्षों से गिरे) पांडु-पत्रों पर जीवन व्यतीत करते हुए तप करनेवाले मुनियों, योगियों, पुंगवों, पन्नगों, खेचरों, सिद्धों, सुपर्वों तथा किन्नरों से युक्त होकर ब्रह्मलोक के समान सुशोभित था । विश्वामित्र ने बड़ी प्रसन्नता तथा भक्ति से वसिष्ठ को प्रणाम किया । उन्होंने आशीर्वाद दिये और उचित आसन पर बिठाकर उनका सत्कार किया और सुस्वादु फल, मूल आदि प्रस्तुत किये ।

"विश्वामित्र ने उन सबको ग्रहण करते हुए हाथ जोड़कर बड़ी भक्ति के साथ पूछा--'हे अनघात्मा ! लोकहितार्थ चलनेवाले आपके तप तथा हवन आदि अच्छी तरह हो रहे हैं न ? आप, आपके शिष्य और आश्रम के सभी व्यक्ति प्रसन्न तो हैं ?'

"तब वसिष्ठ ने कहा--'हम सब प्रसन्न हैं । आप नीति-युक्त हो राज्य कर रहे हैं न ? स्नेह के साथ अपने भृत्यों का पालन करते हैं न ? राज्य के सभी अंगों का (उचित रीति से) पर्यवेक्षण कर रहे हैं न ? आक्रमण करनेवाले शत्रुओं को आप पराजित कर तो रहे हैं न ? आप स्वयं सकुशल तो हैं ? आपके पुत्र और पत्नियाँ कुशल से हैं न ?'

"तब कौशिक ने वसिष्ठ से कहा--'महात्मा, आपकी कृपा से हम सब कुशल-मंगल से हैं ।' तब वसिष्ठ ने कहा--'राजन् मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप मेरे यहाँ भोजन करके यहाँ से जायँ ।"

"कौशिक ने उनका निमंत्रण स्वीकार किया । वसिष्ठ ने विश्वामित्र तथा उनकी सेना को भोजन देने के उद्देश्य से अपनी काम-धेनु का स्मरण करके उससे प्रार्थना की कि राजा तथा उनकी सेना को विविध मिष्टान्न तथा भोजन से तृप्त करना है । इसके लिए आवश्यक वस्तुओं का तुम प्रबंध करो ।

"तब कामधेनु विभिन्न प्रकार के भात, शाक, मिष्टान्न, अँचार, विविध फल, खीर, मक्खन, चीनी, ताजा घी, कई प्रकार के मद्य और मांस आदि से युक्त बढ़िया भोजन का प्रबंध किया । जिसकी जो इच्छा होती, वह उसे विना माँगे ही मिल जाता था । गाधेय तथा उनके सैनिक भर-पेट भोजन करके संतुष्ट हुए ।

"इसके पश्चात् गाधि-पुत्र ने मन में सोचा कि इस कामधेनु को किसी भी तरह मुनि से ले लेना चाहिए । वे मुनि के पास जाकर बोले—'हे मुनिवर, मैं आपको एक लाख अश्व, एक लाख हाथी, एक लाख गायें और कई हजार मणियाँ दूंगा । आप यह गाय मुझे दे दें ।' इस पर मुनि अत्यन्त दुःखी होकर बोले—'हे राजन्, यह गाय मेरा जीवन है, मेरा प्राण है, मेरी तपस्या का साधन है । हव्य-कव्य तथा अतिथि-सत्कार इसी गाय के कारण विना विघ्न के संपन्न होते हैं । अतः इस पुण्य-धेनु को मैं तुम्हें दे नहीं सकता ।'

"तब महाबली विश्वामित्र क्रोध में आकर बोले—'मैं आपसे यह गाय देने की प्रार्थना क्यों करूँ ?' यह कहकर उन्होंने अपने हजारों सेवकों की सहायता से बलात् उस गाय को पकड़कर ले जाने का प्रयत्न किया। तब उस गाय ने उनके पीछे न जाकर मुनिपुंगव को देखकर कहा—'हे अनघ, वसिष्ठ, हे संयमीन्द्र ! कौशिक (अपने बल के) मद में मुझे बलात् ले जाने का यत्न कर रहा है। हाय! आप दुर्वार होते हुए भी उसे रोकते क्यों नहीं ? निर्विरोध मुझे उसके हाथों में सौंपना, क्या आपको उचित जँचता है ? हे अनघात्मा ! मैंने आपके प्रति कोई अपराध नहीं किया है; फिर भी मेरी उपेक्षा करना क्या आपके लिए उचित है ?'

"धेनु की बातें सुनकर वसिष्ठ दयार्द्रचित्त होकर कहने लगे—'मैं तुम्हें क्यों छोड़ने लगा ? राजा अपने भुज-बल से बलात् तुम्हें ले जा रहे हैं। यदि क्षत्रिय उद्दण्ड हो जायँ, तो ब्राह्मण उनका निवारण किस प्रकार कर सकते हैं ? यह गाधि-पुत्र इस पृथ्वी के अधीश्वर हैं। इनके पास अक्षौहिणी सेना है। मैं इन्हें कैसे जीत सकूँगा ?'

"तब धेनु ने मुनि से कहा—'हे मुनिनाथ ! संसार में ब्राह्मण-तेज, क्षत्रिय के तेज से अधिक बलवान् होता है; इसलिए मैं यह बात जानती हूँ कि कौशिक किसी भी दशा में आपसे अधिक श्रेष्ठ नहीं हो सकता। आप मुझे आज्ञा दीजिए, मैं इसकी सारी सेना को एक ओर से नष्ट कर दूँगी।' तब वसिष्ठ ने गाय से कहा—'अच्छा, तो तुम सेना उत्पन्न करके (राजा की सेना का) नाश करो।'

"वसिष्ठ की आज्ञा मिलते ही धेनु ने हुंकार भरी। उसके हुंकार भरते ही उसके कान, पूँछ, दाँत, रोम, खुर, जाँघ, आँख, घुटने, श्वास, गलकंबल, और रोम-कूपों से भयंकर आकारवाले असंख्य किरात, पल्लव, काम्भोज तथा यवन वीर उत्पन्न हुए। वे प्रचण्ड विक्रमी, अद्भुत आकार तथा विचित्र आयुध धारण किये हुए थे। उनके नेत्र और हुंकार अनोखे ढंग के थे। योद्धाओं का वह समूह हाथी तथा अश्वों पर (आरूढ़ होकर) विश्वामित्र की सेना का संहार करने लगा यह देखकर विश्वामित्र के पुत्र विविध आयुधों से सुसज्जित होकर वसिष्ठ का वध करने आये। किन्तु धेनु के हुंकार-मात्र से भस्म हो गये।

"अतुल पराक्रमी वीरों से पूर्ण अपनी सेना को मृत्यु का ग्रास बनते देखकर तथा अपने सौ वीर पुत्रों की मृत्यु का विचार करके विश्वामित्र दुःख तथा शोक से संतप्त हो उठे। वे अपने एक पुत्र को अपना राज्य सौंपकर तप करने के लिए हिमालय में चले गये। वहाँ उन्होंने जल में खड़े रहकर त्रिपुरांतक (शिव) के प्रति घोर तपस्या की। शिवजी प्रत्यक्ष हुए और विश्वामित्र ने उनसे विविध दिव्यास्त्र प्राप्त किये।

"इसके पश्चात् विश्वामित्र बड़ी शीघ्रता से वसिष्ठाश्रम के पास आये और (उस आश्रम पर) आग्नेय बाण चलाने लगे। उनके बाणों के तेज से वसिष्ठ के आश्रम में अग्नि की ज्वालाएँ फैल गईं। यह देखकर वसिष्ठ, काल-दंड लिये हुए यमराज के समान क्रोधोन्मत्त हो अपने हाथ में अधारी लिये हुए बाहर आये और बोले—'हे पापी, हे विश्वा-मित्र, क्या इस प्रकार कहीं पुण्य-भूमि तपोवन को जलाया जाता है ? तुम्हारी शक्ति कितनी है, और मेरी शक्ति कितनी ? (क्या इसका भी तुम्हें ज्ञान है ?)'

"तब अत्यधिक क्रोध से उन्मत्त होकर कौशिक ने उनपर, रौद्रास्त्र, पशुपतास्त्र, शक्तिमान्, वज्र, ब्रह्मपाश, पैशाचास्त्र, काल-पाश, विष्णु-चक्र, कालचक्र, वारुणास्त्र, गांधर्वास्त्र, वायव्यास्त्र आदि कई शक्तिशाली अस्त्रों को चलाया। किन्तु वसिष्ठ ने अपने ब्रह्मदंड की सहायता से उन सबको व्यर्थ कर दिया। इन शस्त्रों से केवल अग्नि-कण बिखर जाते थे। इससे और भी क्रुद्ध होकर विश्वामित्र ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करके उसे वसिष्ठ पर चलाया। (यह देखकर) सब देवता, संयमी, गंधर्व, पन्नग, भूत, दिक्पाल, सभी नक्षत्र, ग्रह, सूर्य, चन्द्र और समस्त लोक क्षुब्ध हो उठे। सभी दिशाएँ प्रज्वलित होने लगीं। सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त होकर प्रचण्ड वेग से ब्रह्म-दण्डकी शक्ति का अतिक्रमण करके उस ब्रह्मास्त्र को अपनी ओर आते देखकर ब्रह्मादि देवताओं के लिए भी दुर्वार उस अस्त्र को वसिष्ठ ने सहज ही पकड़कर निगल लिया। वसिष्ठ की मूर्त्ति प्रभापुंज ब्रह्म-तेज से दीप्त हो उठी। उनके रोम-रोम से अनेक बाण, ज्वाला उगलते हुए, निकले और विश्वामित्र को जलाने लगे। यह देखकर कौशिक अधीर हो उठे; उनकी सारी शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई। वे सोचने लगे कि इस एक ब्रह्मदण्ड के कारण मरे सभी श्रेष्ठ अस्त्र-समूह व्यर्थ हो गये। इनका (वसिष्ठ का) ब्रह्म-तेज अत्रस्त तथा अचल है। क्षत्रिय-तज (इसके आगे) किस काम का?

"इस प्रकार परास्त होने के पश्चात् विश्वामित्र अपनी धर्मपत्नी के साथ (दक्षिण की ओर जाकर) घोर तप करने लगे। इसी समय उन्होंने दुष्यंद, मधुष्यंद, दृढ़नेत्र तथा महारथ नामक चार शक्तिशाली पुत्र प्राप्त किये। अविचल निष्ठा के साथ कई वर्षों तक तपस्या करने के उपरान्त ब्रह्मा ने उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिया और बोले--'हे अनघ, मैं तुम्हारे तप से संतुष्ट हुआ। जाओ, मैं तुम्हें राजर्षि का पद देता हूँ।'

"गाधेय अत्यन्त विनम्र होकर बोले--'इतने दिनों तक घोर तपस्या करने के बाद भी मैं ब्रह्मर्षि नहीं बन सका। मेरा उग्र तप विफल हो गया है। मैं राजर्षि का पद नहीं चाहता।' यह कहकर वे पुनः घोर तपस्या में निरत हो गये।

"इसी समय इक्ष्वाकु-वंश के त्रिशंकु नामक यशस्वी राजा ने सशरीर स्वर्ग जाने के लिए यज्ञ करना चाहा। उसने बड़ी भक्ति से वसिष्ठ को बुलावा भेजा और अत्यन्त विनय से उनसे कहा—'हे अनघ, सशरीर स्वर्ग में जाने के निमित्त आप मुझसे एक यज्ञ कराने की कृपा कीजिए। आप (इसके लिए) मुनियों को यहाँ बुला भेजिए।' तब वसिष्ठ ने कहा—'हे राजन्, पृथ्वी के निवासियों का सशरीर स्वर्ग में जाना असंभव है।'

"इसके पश्चात् राजा दक्षिण दिशा में घोर निष्ठा से तपश्चर्या में लीन वसिष्ठ के पुत्र के पास गया और प्रणाम करके कहा—'महात्मा, सशरीर स्वर्ग में पहुँचने के निमित्त आप मुझसे एक यज्ञ कराइए।' तब उन्होंने कहा—'अगर वसिष्ठजी इस प्रकार का यज्ञ कराने का आदेश दें, तो मैं अवश्य ऐसा यज्ञ कराऊँगा।' तब राजा ने कहा--'हे मुनि, वसिष्ठ मुनि ने तो कहा है कि ऐसा यज्ञ कोई राजा कर ही नहीं सकता। इसीलिए तो मैं आपकी शरण में आया हूँ। आप मुझपर कृपा करके मुझसे ऐसा यज्ञ कराइए। पुरोहित ही तो राजाओं के लिए धर्म-साधक होते हैं।'

"इसपर वसिष्ठ के पुत्र ने कहा—'राजन्, तुम्हारे-जैसे दुर्मतियों के अतिरिक्त दूसरा कोई निर्मल चित्तवाला व्यक्ति ऐसे यज्ञ की बात सोच भी सकता है ?' मुनि-पुत्र के यह कहने पर राजा ने उपेक्षा से कहा—'आपके पिता ने यज्ञ कराना अस्वीकार कर दिया है, और आप भी अस्वीकार करते हैं। मेरे हित की चिंता न करनेवालों से अब मेरा क्या संबंध ? मैं किसी और से यह यज्ञ कराऊँगा।'

"तब रुष्ट होकर उस पुण्यात्मा ने कहा—'तुम चांडाल हो जाओ।' तुरंत राजा का रूप ऐसा विकृत हो गया, मानों उसका दीप्तिमान् तेज वासिष्ठ की क्रोधाग्नि से भस्म हो गया हो। उसका शरीर काला हो गया। उसके शरीर पर के वस्त्र काले हो गये। उसके केश बिखर गये। उसका रूप इतना मलिन हो गया, मानों उसके स्पर्श-मात्र से दूसरा भी मलिन हो जायगा। उसके शरीर पर रहनेवाले कान्तिमान् मणिमय स्वर्णाभरण लोहवत हो गये। उसके रूप, रंग, वाणी आदि चांडाल-जाति के अनुरूप हो गये।

"इस प्रकार राजा को भयंकर चांडाल-रूप धारण किये हुए देखकर नागरिक, सेवक, अमात्य तथा बंधु-वर्ग ने उसे त्याग दिया। तब राजा अत्यन्त भयभीत होकर लोगों (के मार्ग) से बचता हुआ अपने-आपको छिपाता हुआ धीरे-धीरे महातेजस्वी विश्वामित्र मुनि के पास जा पहुँचा। उसे देखकर गाधि-पुत्र का हृदय दया से उमड़ आया। वे बोले—'अयोध्या का शासन करनेवाले, तुम्हें यह चाण्डालत्व कैसे प्राप्त हुआ ?'

"तब राजा ने हाथ जोड़कर कहा—'हे महात्मा, मैंने वसिष्ठ से सशरीर स्वर्ग-गमन का यज्ञ कराने की प्रार्थना की थी, तो उन्होंने अस्वीकार कर दिया। उनके पुत्र ने कहा कि जब वसिष्ठ की ऐसी सम्मति है, तब यज्ञ हो नहीं सकता। इसपर मैंने दूसरों से यज्ञ संपन्न करवा लेने का विचार प्रकट किया, तो अत्यन्त क्रुद्ध होकर उन्होंने मुझे चाण्डाल बन जाने का शाप दिया। इसी कारण मुझे यह रूप मिला है। मैंने जो यज्ञ करने का संकल्प किया है, उसे अवश्य पूरा करूँगा। विपत्ति में भी मैं असत्य नहीं बोलता। भविष्य में भी किसी भी प्रकार से मैं सत्य का पालन करूँगा। मैंने अबतक कितने ही यज्ञ किये, कितने ही धर्म-संबंधी कार्य किये और सुख-समृद्धि प्राप्त की। मैंने गुरुओं से प्रार्थना की, परन्तु उनकी कृपा न रहने से यह धर्म-कार्य पूर्ण नहीं हो सका। दैव-बल के अभाव में पुरुषार्थ में भी दोष आ जाता है। हे अनघ, आप मेरे लिए ईश्वर-तुल्य हैं। किसी भी प्रकार आप मेरी रक्षा कीजिए।'

"तब विश्वामित्र ने उसे देखकर कहा—'हे राजन्, अब तुम दुःख मत करो। तुम्हें दीन जानकर मैं त्रिकरण शुद्धि (पवित्र मन, वचन एवं शरीर) से तुम्हें शरण दे रहा हूँ। मैं मुनियों को बुलाकर तुमसे यज्ञ कराऊँगा और तुम्हें सशरीर स्वर्ग भेजूँगा, जिससे तुम्हारी प्रतिज्ञा झूठी न हो। मैं तुम्हें पवित्र बनाऊँगा।' इस प्रकार कहकर उन्होंने अपने शिष्यों से कहा—'तुम लोग तुरंत जाओ और त्रिशंकु के यज्ञ के लिए ऋत्विजों तथा मुनियों को लेकर शीघ्र आओ।'

सभी शिष्य तुरंत गये और श्रेष्ठ मुनियों को साथ लिये हुए विश्वामित्र के पास आकर बोले—'हे अनघात्मा, हम सभी मुनियों को बड़ी प्रसन्नता से ले आये हैं। वसिष्ठ के

आश्रम के मुनियों के अतिरिक्त शेष सभी मुनि आ गये हैं। वसिष्ठ के पुत्रों ने जो जो अपशब्द कहे, उन्हें सुन लीजिए। उन्होंने कहा--'यह कितने आश्चर्य की बात है कि यज्ञ करानेवाला एक राजा है और यज्ञकर्त्ता एक चांडाल! भला चांडाल के यज्ञ में भाग लेने-वाले मुनि किस प्रकार वहाँ भोजन करेंगे? देवता अपने हविर्भाग लेने किस मुँह से आयेंगे? विश्वामित्र की शरण प्राप्त करने-मात्र से कहीं नर स्वर्ग-लोक प्राप्त कर सकेगा?'

"इन बातों को सुनकर विश्वामित्र क्रोध से जल उठे। बोले--'अत्यंत निष्ठा के साथ तपस्या करनेवाले मुझे, अपशब्द कहनेवाले सभी पापी संसार में सात सौ वर्ष तक राक्षस-भाव धारण किये हुए, मानव तथा कुत्तों का मांस खाते हुए, नीच होकर रहेंगे। दर्प से मेरी निंदा करनेवाला वह महातमा पृथ्वी पर निषाद होकर जन्म लेगा।' इस प्रकार, शाप देकर संयमी मुनियों को देखकर उन्होंने कहा--'हे मुनियो, ये राजा त्रिशंकु उच्चकुलीन, कीर्त्तिमान्, धर्मज्ञ तथा सत्यनिष्ठ हैं। इसलिए इनसे आप यज्ञ कराइए, जिससे ये शरीर के साथ इंद्रपुरी को जा सकें।'

"ऋषि के वचन सुनकर वे सभी मुनि परस्पर यों विचार करने लगे--'यदि हम गाधि-पुत्र के वचनों को टाल दें, तो वे क्रोध में आकर हमें घोर शाप देंगे। अतः उनके कहे अनुसार हम राजा से यज्ञ करायेंगे।' यों सोचकर सभी मुनि यज्ञ-कर्म में लग गये। विश्वामित्र ऋत्विक् बने और मंत्रों के उच्चारण के साथ उन्होंने यज्ञ-भाग लेने के लिए देवताओं का आह्वान किया। देवताओं ने उच्च स्वर में कहा कि हम नहीं आयेंगे।

"तब क्रोधाग्नि से भभकते हुए, कुश की पवित्री हाथ में लिये हुए, स्रुवा उठाकर कौशिक ने कहा--'हे त्रिशंकु यदि मैंने बाल्यावस्था से नियमों का पालन करते हुए तप किया हो, तो तुम सशरीर स्वर्गलोक में पहुँच जाओगे। अब तुम जाओ।'

"इसपर त्रिशंकु स्वर्ग में पहुँच गया। किन्तु (वहाँ जाने पर) इन्द्र ने कहा--'तुम चाण्डाल हो, हम तुम्हें यहाँ रहने नहीं देंगे।' और उसने त्रिशंकु को स्वर्ग से नीचे ढकेल दिया।

"त्रिशंकु सिर के बल नीचे की ओर गिरते हुए चिल्लाने लगा--'हे विश्वामित्र, मेरी रक्षा कीजिए, मेरी रक्षा कीजिए।' तब विश्वामित्र का हृदय दया से भर गया। उन्होंने कहा--'हे राजन्, तुम आकाश में ही ठहर जाओ।' यों कहकर उन्होंने त्रिशंकु को आकाश में ही ठहरा दिया और बड़े क्रोध में आकर इन्द्र से प्रतिरोध लेने के उद्देश्य से उन्होंने दक्षिण दिशा में अपर स्वर्ग का निर्माण किया। उसमें उन्होंने (नये) सप्त ऋषियों तथा नक्षत्रों का सर्जन किया। इतना ही नहीं, वे उस स्वर्ग में दूसरे देवताओं तथा अपर इंद्र को भी उत्पन्न करने का संकल्प मन-ही-मन करने लगे।

"यह समाचार मिलते ही सभी मुनि तथा देवता विश्वामित्र के पास आकर बोले--'हे मुनिनाथ, यह त्रिशंकु गुरु के शाप से पीड़ित है। यह स्वर्ग में रहने योग्य नहीं है।' इस पर विश्वामित्र ने कहा--'हे देवताओ मैंने त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग भेजने का वचन दिया है। मेरा वचन व्यर्थ नहीं होना चाहिए। इसलिए इस राजा को इसी स्वर्ग में रहने दो। जबतक यह संसार रहेगा, ये नक्षत्र, देवलोक से भी ऊपर आसमान में तेज से प्रकाश-

७

मान रहेंगे । उन नक्षत्रों के बीच त्रिशंकु को इसी दशा में (सिर नीचा किये) देवताओं के समान रहने दो और पुण्यात्मा तथा यशस्वी बनने दो ।' इस व्यवस्था को स्वीकार कर मुनि तथा देवता विश्वामित्र की प्रशंसा करते हुए अपने-अपने स्थान को लौट गये ।

"तब विश्वामित्र ने (अपने आश्रम के) मुनियों को देखकर कहा--'यह स्थान अब तपस्या के लिए उपयुक्त नहीं है । यहाँ अब लोगों की भीड़ एकत्र होने लगी है । अतः हम यहाँ से किसी दूसरे स्थान में चले जायेंगे ।' यों कहकर वे उस स्थान को छोड़कर (पश्चिम दिशा में) विशाला के निकट पुष्कर-तीर्थ में जा पहुँचे । वहाँ केवल जल और फल का ही आहार करते हुए बहुत वर्ष तक वे तपस्या करते रहे ।

"उस समय अयोध्या के राजा, मन्मथ के समान रूपवान् अंबरीष ने एक यज्ञ करने का निश्चय किया । उस यज्ञाश्व को इन्द्र ने चुरा लिया । राजा ने यज्ञाश्व को कई स्थानों में ढूंढा, किन्तु अश्व के न मिलने से उसके प्रायश्चित्त-स्वरूप विधि पूरी करने के निमित्त नर-पशु की माँग करते हुए वह कई आश्रमों में गया । निदान भृगुतुंग में अत्यंत तपोनिष्ठा में संलग्न रुचि नामक मुनि के पास पहुँचकर राजा ने मुनि को प्रणाम करके कहा--'हे करुणानिधि, मैंने यज्ञ करने का यत्न किया था, किन्तु यज्ञाश्व कहीं खो गया है । आप कृपया अपने एक पुत्र को यज्ञ-पशु के रूप में मुझे दें । उसके बदले में एक लाख गायें मैं आपको दूंगा ।' तब मुनि ने कहा--'मैं अपने जेष्ठ पुत्र से अत्यधिक स्नेह रखता हूं; इसलिए मैं उसको नहीं दे सकता ।' तब मुनिपत्नी ने कहा--'मैं कनिष्ठ को बहुत चाहती हूँ । मैं उसे दे नहीं सकती ।' उन दोनों की बातें सुनकर शुनःशेप ने राजा से कहा--'ज्येष्ठ पुत्र को मेरे पिता चाहते हैं और कनिष्ठ पुत्र को मेरी माता चाहती हैं । अतः उनकी बात छोड़ दीजिए, मैं आप के साथ चलूंगा । इसके लिए आप मेरे माता-पिता को सहस्र गायें दीजिए ।' राजा ने वैसा ही किया और शुनःशेप को रथ पर बिठाकर शीघ्र वहाँ से चल दिया ।

"इस प्रकार राजा शुनःशेप को साथ लेकर पुष्कर-प्रदेश में स्थित आश्रम में पहुँचा । वहाँ अमित तपोनिष्ठा में लीन, अचल रीति से तपस्या करनेवाले अपने मामा विश्वामित्र को देखकर शुनःशेप ने उनको प्रणाम किया और कहा--'हे अनघ, मेरे माता-पिता ने मुझे इस राजा को यज्ञ-पशु के रूप में बेच दिया है । आप कृपया इस राजा के यज्ञ को सफल बनाकर मे` प्राणों की रक्षा कीजिए। आज आप ही मेरे माता, पिता, गुरु और बंधु हैं ।'

"इस प्रकार अत्यंत दीन होकर जब शुनःशेप ने कहा, तब विश्वामित्र ने अपने पुत्रों को संबोधित करके कहा--'पुण्यात्मा लोग परलोक में सुगति प्राप्त करने के लिए ही पुत्र उत्पन्न करते हैं । इस बालक ने मेरी शरण ली है, इसलिए इसकी प्राण-रक्षा करना ही अब मेरे लिए स्वर्ग है । यह मेरा भानजा है । तुम लोग इसकी रक्षा करो और तुममें से कोई सके लिए अपने प्राण दो ।'

"मुनि-पुत्रों में से कोई भी उनका आदेश पालन करने के लिए सन्नद्ध नहीं हुआ, तब अत्यंत क्रुद्ध होकर मुनि ने उन्हें शाप दिया--'तुम एक हजार वर्ष तक कुत्ते का मांस खाते हुए दुःख भोगो ।'

"इसके पश्चात् विश्वामित्र ने उस शुनःशेप को बड़े प्रेम से अपने पास बुलाकर कहा--'मैं तुम्हें दो मंत्र देता हूँ। तुम सतत उनका जप करते रहो। वे (मंत्र) तुम्हारी रक्षा करेंगे और अंबरीष का यज्ञ भी सफल हो जायगा।' यों कहते हुए उन्होंने उसे दो मंत्रों का उपदेश किया।

"दूसरे दिन राजा अपनी यज्ञ-भूमि में पहुँच गया। उसने उस निर्मल आत्मा (शुनः-शेप) की पूजा आदि करके उसे यूपकाष्ठ से बाँध दिया। तब वह मुनि-पुत्र अत्यंत शांत तथा निश्चल चित्त से उन मंत्रों का जप करने लगा। तब देवेन्द्र ने वहाँ आकर अंबरीष का यज्ञ सफल बनाया तथा रुचि मुनि के पुत्र को चिरंजीवी बनाकर देवताओं के साथ (अपने लोक में) चला गया।

"एक हजार वर्ष तक घोर तप करने के उपरान्त ब्रह्मा ने विश्वामित्र को दर्शन दिये, और बोले--'तुम्हारी तपस्या सफल हुई। तुम्हें ऋषित्व प्राप्त हो गया।'

"उनके चले जाने के पश्चात् भी विश्वामित्र अत्यंत निष्ठा के साथ तपस्या करने में ही संलग्न रहे। तब कामरूप धारण करने में चतुर, कामदेव का कमनीय बाण ही अप्सरा के रूप में प्रकट हुआ हो, ऐसा दिखाई देनेवाला ललित यौवन-कला-विलास से युक्त मेनका (अप्सरा) जलक्रीड़ा करके वहाँ आई। उसका जूड़ा शिथिल हो रहा था। मनोहर नेत्र, स्निग्ध कपोल, मंत्रमुग्ध करनेवाला मुख, माणिक्य के-से ओंठ, मधुर-मंद मुस्कान, स्वर्ण कलश के समान कुच, सोलहों कलाओं से परिपूर्ण कांति, स्वर्ण-चूर्ण झरनेवाले बाहुमूल, ललित रोमराजि, सिंह की-सी कटि, पुन्नाग के पुष्प के सदृश नाभि, गुरु नितंब, तथा काम-विकारों को उद्दीपन करनेवाले उरुभाग से युक्त वह सुंदरी विश्वामित्र के सामने उपस्थित हुई। अपने शरीर की कांति को विकीर्ण करनेवाली उस अप्सरा को देखकर विश्वामित्र में काम-वासना प्रबल हो उठी। उन्होंने अपने ध्यान, मौन-व्रत तथा तपस्या को तिलांजलि देते हुए कहा--'हे सुंदरी, तुम मेरे साथ रतिक्रीड़ा में अनुरक्त हो जाओ।' उनका आदेश स्वीकार करके मेनका ने दस वर्ष तक उस मुनि को रति-क्रीड़ा से परितृप्त किया। तब विश्वामित्र ने मन-ही-मन विचार करके जान लिया कि मेरे तप में विघ्न डालने के लिए ही देवताओं ने इस सुंदर रमणी को भेजा है। इसलिए उन्होंने उस कामिनी को देवलोक में भेज दिया और कामदेव को जीतने का विचार करके आप उत्तर पर्वत में कौशिकी नदी के तट पर निवास करते हुए एक सहस्र वर्ष तक बड़ी निष्ठा से घोर तपस्या करते रहे। उनके कठोर तप से देवता भीत होकर ब्रह्मा के पास पहुँचे और बोले--'हे कमलासन, विश्वामित्र अब आपसे महर्षि मान लिये जाने की अर्हता (योग्यता) रखते हैं। ब्रह्मा भी विश्वामित्र के तप से संतुष्ट हुए और कौशिक के पास जाकर बोले--'हे मुनि आज से तुम संसार में महर्षि के रूप में विख्यात होगे।' तब मुनिनाथ कौशिक ने कहा--'हे कमलासन, जबतक आप संतृप्त होकर मुझे ब्रह्मर्षि घोषित नहीं करेंगे, तबतक मैं तपस्या करता ही रहूँगा।' ब्रह्मा ने कहा कि 'ऐसा ही करो' और वे अपने लोक को चले गय। विश्वामित्र ने संकल्प कर लिया कि मैं ब्रह्मा को संतृप्त करके ब्रह्मर्षि का पद अवश्य प्राप्त करूँगा। इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके वे अन्न-जल त्यागकर ऊर्ध्वबाहु हो,

वायु-भक्षण करते हुए ग्रीष्म ऋतु में, आश्रम के बाहर, तथा जाड़े में जल-कुंडों में खड़े रहकर अत्यंत उग्र तप करने लगे ।

"इस प्रकार एक हजार वर्ष व्यतीत हो गये । एक दिन इन्द्र ने रंभा को देखकर कहा--'हे सुंदरी, मैं तुमसे एक ऐसा कार्य कहूँगा, जिसमें देवताओं का हित निहित है। किसी तरह तुम कौशिक को काम-पीड़ित करके उनके तप में विघ्न डालो ।' तब रंभा ने कहा--'हे देव, कौशिक क्रोध में मुझे शाप दे देंगे । इसीका मुझे भय होता है। ऐसे उग्र तप में लीन उस मुनि के पास पहुँचना क्या मेरे लिए संभव है ? हे शचीनाथ, मैं आपसे क्षमा चाहती हूँ । मैं ऐसे महामूर्ख की तरफ आँख उठाकर भी नहीं देख सकती; आपके चरणों का सौगंध खाकर कहती हूँ । ऐसा मूर्ख कौन होगा, जो जान-बूझकर आग में कूद पड़े ?'

यह सुनकर इन्द्र ने कहा--'यदि तुम्हें इतना भय है, तो मन्मथ और वसंत भी तुम्हारे साथ जायेंगे, तुम जाओ ।' इन्द्र की इच्छा की अवहेलना न कर सकने के कारण वह सुंदरी, मन्मथ तथा वसंत की सहायता से कीर, कोकिल से युक्त हो, मयूर तथा सारिकाओं को साथ लेकर अपनी सखियों के साथ उस तपोवन में गई, जहाँ गाधि-पुत्र तप कर रहे थे । वहाँ पहुँचकर रंभा मनोहर गति से लास्य करने लगी । कौशिक क्रुद्ध होकर बोले--'हे पद्ममुखी, तुम दस हजार वर्ष तक पाषाण बनकर पड़ी रहो । उसके बाद एक श्रेष्ठ तपोनिधि ब्राह्मण के द्वारा तुम्हारा शाप-मोचन होगा ।'

"मुनि के शाप देते ही रंभा पाषाण बन गई । मन्मथ भीत होकर वहाँ से भाग गया। शाप देने के कारण गाधि-पुत्र ने देखा कि उनके तप का एक भाग नष्ट हो गया है । उन्होंने सोचा पहले काम-वासना के कारण मेरा तप नष्ट हो गया था और अब क्रोध से मैंने अपनी तपस्या खो दी । इस प्रकार चिंतित होकर उन्होंने काम तथा क्रोध दोनों का त्यागकर निराहार तथा जितेन्द्रिय हो एक हजार वर्ष तक तप किया । ब्रह्मा उनपर बहुत प्रसन्न हुए । (तब विश्वामित्र ने) ब्रह्मर्षि कहलाने की अदम्य इच्छा लिये उत्तर दिशा को छोड़कर पूर्व दिशा की ओर प्रस्थान किया और वहाँ इन्द्र के असंख्य विघ्नों से विचलित न होते हुए अटल भाव से तप किया । उसके पश्चात् सिद्धाश्रम में पहुँचकर वहीं घोर तप करते हुए रहने लगे ।

"इस प्रकार श्रेष्ठ तपोनिष्ठा में एक सहस्र वर्ष बीत गये । विश्वामित्र तपस्या की पूर्त्ति के पश्चात् पारण करने के लिए नीवार-धान्य एकत्र करके ले आये, उसे पकाया और देवताओं को अर्पण करने के उपरांत भोजन करने ही वाले थे कि इन्द्र एक बूढ़े ब्राह्मण का रूप धरकर वहाँ आया और भोजन माँगा। विश्वामित्र ने सारा भोजन उस ब्राह्मण को दे दिया । इन्द्र ने विना एक दाना छोड़े सब खा लिया । इस पर विश्वामित्र फिर एक हजार साल तक अविचल निष्ठा से तपस्या करते रहे ।

"इस घोर तपस्या के फलस्वरूप उनके सिर से धुआँ निकलकर सारे लोक में फैल गया । सभी समुद्र क्षुब्ध हो गये । पृथ्वी काँपने लगी । कुलपर्वत थर्रा उठे । दिशाएँ उलझ गईं । अमर, गंधर्व तथा सभी मुनि ब्रह्मा के पास जाकर बोले--'हे कमलगर्भ,

कौशिक बड़े उत्साह से उग्र तप कर रहे हैं। उनका मनोरथ पूर्ण करके यदि उनकी तपस्या को बंद नहीं करायेंगे, तो उस पुण्यात्मा विश्वामित्र के तप से उत्पन्न अग्नि से सभी लोक भस्म हो जायेंगे।'

"उनकी बातें सुनकर ब्रह्मा उनको साथ लिये हुए विश्वामित्र के पास आये और बोले—'हे कौशिक सुनो। अब इस उग्र तप की आवश्यकता नहीं है। आज से तुम ब्रह्मर्षि हो गये।'

"तब कौशिक ने ब्रह्मा आदि देवताओं को देखकर बड़ी भक्ति तथा आश्चर्य के साथ कहा—'यदि मैंने सच ही ब्रह्मर्षि का पद प्राप्त कर लिया है, तो ब्रह्मा के पुत्र, चिर-पुण्यात्मा, लोक-पावन वसिष्ठ आकर मुझे ब्रह्मर्षि कहें। तभी मैं विश्वास करूँगा।'

"तब ब्रह्मा तथा देवताओं की प्रार्थना पर वसिष्ठ वहाँ आये और बोले—'अपने उग्र तप से तुम ब्रह्मर्षि हो गये, इसमें कोई संदेह नहीं है। तुम प्रसन्न होकर जा सकते हो।' तब विश्वामित्र ने बड़ी भक्ति से वसिष्ठ की पूजा की। सभी देवता विश्वामित्र को आशीर्वाद देकर देवलोक को चले गये।

"विश्वामित्र की महिमा इन अद्‌भुत कार्यों से आपको विदित होगी।"

शतानंद के इस प्रकार कहने पर राम, लक्ष्मण, जनक तथा उनके सभासद अत्यंत प्रसन्न हुए (इतने में) सूर्यास्त हुआ, मानो सूर्य रसातल में यह समाचार देने जा रहा हो कि कल राघव जनक के निवास में रखे हुए शिव-धनुष को तोड़कर सीता का पाणि-ग्रहण करेंगे।

जनक को विदा करके गाधि-पुत्र ने राम तथा लक्ष्मण के साथ अपने निवास में बड़े आनंद से रात बिताई। सूर्योदय होते ही स्नान, पूजा आदि से निवृत्त होकर विश्वामित्र राम के साथ जनक के यहाँ गये और बोले—'हे जनक, कोटिसूर्य-प्रभा-समन्वित, पुण्य-चरित, अनन्य-गोचर तथा विश्वमूर्त्ति आपके यहाँ स्थित शिव-धनुष के दर्शनार्थ आये हैं। आप कृपया उस धनुष को मँगावें।'

३२. शिव-धनुष का वृत्तांत

तब जनक बड़े आश्चर्य-चकित होकर बोले—"हे नियतात्मा, शिवजी ने अंधकासुर, भस्मासुर आदि राक्षसों को इसी धनुष से मारा था। पूर्व काल में उसी धनुष से उन्होंने भयंकर राक्षसों का संहार किया था। शंकर ने अत्यन्त क्रोध करके इसी धनुष से त्रिपुर-दुर्गों को जीता था, इसी धनुष से उन्होंने देवेन्द्र आदि देवताओं को भगाकर दक्ष के यज्ञ का ध्वंस किया था। शिवजी ने हमारे पितामह नीति-संपन्न निमि चक्रवर्त्ती से छह पीढ़ी पूर्व के हमारे पूर्वज देवरात को यह धनुष सौंपा। तब से यह अतुल शक्ति-संपन्न धनुष हमारे घर में है। मैंने यज्ञ करने का संकल्प करके, भूमि को शुद्ध करने के लिए जब उसमें हल चलाया, तो मुझे हल की फाल-रेखा में एक मंजूषा (पिटारी) मिली। हर्ष-पुलकित हो जब मैंने उसे खोला, तो मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। उसमें एक अत्यंत प्रभा-समन्वित कन्या निकली। मैंने उसका नाम सीता रखा और उसे अपनी पुत्री मानकर बड़े प्रेम से उसका लालन-पालन करने लगा। वसंत ऋतु में बढ़नेवाली लता के समान तथा दिन-प्रति-दिन वृद्धि-पानेवाली चंद्रकला के सदृश वह कन्या बढ़ने लगी। क्रमशः यौवनावस्था को प्राप्त

हो गई । यह देखकर इस पृथ्वी के कई नरेशों ने उस कन्या के साथ विवाह करने की प्रार्थना की । तब मैंने उन से कहा--'इस चन्द्रमुखी को प्राप्त करने के लिए एक कन्या-शुल्क नियत है । (वह शुल्क) यह शिव-धनुष है । जो नरेश इस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर अपने भुज-बल का परिचय देगा, उसी को मैं अपनी पुत्री बड़े हर्ष से दूँगा ।' बहुत-से राजा आये, किन्तु कितने ही राजा उस धनुष को उठाने में भी असमर्थ होने के कारण लज्जा से अपना सिर भी न उठा सके । इसलिए उन राजाओं ने सोचा--'पुत्री को देने का वचन देकर, कोदण्ड का दुस्साध्य प्रतिबंध लगाकर जनक ने हमें अच्छी तरह भ्रम में डाल दिया है । हम उन्हें युद्ध में परास्त करके उनसे प्रतिशोध लेंगे ।' इस प्रकार सोचकर वे अपनी विशाल सेना के साथ एक वर्ष तक हमारे किले पर घेरा डाले रहे । जो अन्न तथा खाद्य-सामग्री हमने पूर्व से किले में संचित करके रखी थी, सब समाप्त हो गई । अतः मैंने मन में विचार करके देवताओं की प्रार्थना की । उनकी कृपा से प्राप्त चतुरंगिनी सेना के साथ मैंने शत्रु-सेना पर आक्रमण किया । इस सेना का सामना न कर सकने के कारण कुछ लोग भीत होकर भाग खड़े हुए तथा कुछ मेरे साथ घोर युद्ध करके हार गये और तितर-बितर हो गये । यदि राम अपनी आश्चर्यजनक शक्ति से उस शिव-धनुष का संधान कर सकें, तो मैं अपनी पुत्री का विवाह उनके साथ कर दूँगा ।"

३३. शिव-धनुर्भंग

इसके पश्चात् जनक ने धनुष की पेटी ले आने के लिए दस हजार बलिष्ठ सेवकों को भेजा । वह लोहे की पेटी बहुत ही विशाल तथा आठ पहियों से युक्त थी । वे सभी बलवान् उस पेटी को अपना सारा बल लगाकर इस प्रकार खींचकर लाने लगे, मानों मेरु पर्वत को ही लिये आ रहे हों । यह देखकर जनक के अन्तःपुर के परिचारक तथा परिचारिकाएँ, जानकी, उर्मिला तथा जनक की पत्नी के निकट जाकर बोलीं--"देवियो, हमारा एक निवेदन सुनें । हमारी राज-सभा में गाधि-पुत्र कौशिक के साथ दो आजानुबाहु, देवों तथा गंधर्वों से भी अधिक तेजस्वी, दो उत्तम नर-रत्नों को आया हुआ देखकर महाराज जनक ने मुनि से प्रश्न किया कि ये कौन हैं ? तब कौशिक ने अत्यन्त हर्ष से कहा--'हे राजन्, ये दशरथ के पुत्र हैं । शिव-धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने के लिए यहाँ आये हैं । इसलिए आप योग्य व्यक्तियों को भेजकर धनुष को मँगवाइए ।' तब राजा ने अपने मंत्रियों को बुलाकर धनुष को लाने के लिए भेजा है । हम वह दृश्य गवाक्ष से देख सकती हैं । आप भी शीघ्र चलकर देखिए ।"

परिचारिकाएँ जब राम के कुल, रूप, शौर्य तथा गुणों का वर्णन कर रही थीं, तब सीता को ऐसा भान हो रहा था, मानों उनके कानों में सुधा की वर्षा हो रही हो । उन्हें रोमांच हो आया । उन्हें प्रीति तथा भय का अनुभव होने लगा । वे सिर झुकाये खड़ी रहीं । लज्जा से अभिभूत उस सुन्दरी को चुपचाप खड़ी देखकर सखियाँ उनकी परिचर्या करने लगीं । गुलाब-जल में कुंकुम घोलकर एक ने उनके कपोलों पर सुन्दर ढंग से 'मकरिका-पत्र' की रचना की (चित्र बनाये) । दूसरी ने जवादियुक्त चंदन का लेप किया । एक दूसरी परिचारिका ने माथे पर कस्तूरी का तिलक लगाया और एक उनके सामने

दर्पण लिये खड़ी रही । एक युवती ने उनके केशों को कंघा करके उनका जूड़ा बाँध दिया, तो अन्य एक ने उसे निराले ढंग से पुष्पों से अलंकृत कर दिया । एक रमणी ने उन्हें सुगंधित बीड़ा दिया । किसी ने उनकी कटि-तट पर किंकिणियुक्त करधनी बाँधी, तो किसी सुन्दरी ने उनके कुचों पर डोलनेवाले मोतियों के हार पहनाये । एक सखी ने चंद्र-कांति-सम धवल वस्त्र उन्हें उत्तम ढंग से पहनाये । इस प्रकार सभी सखियाँ सीता को एक स्वर्ण-पीठ पर बिठाकर उनका अलंकरण कर रही थीं । अलंकरण समाप्त होते ही जनक की पत्नी उस कल्याणी राजकुमारी को साथ लेकर कनक-सौध के गवाक्ष के निकट आई । उन सब रमणियों के मन में 'सूर्यवंश में उत्पन्न राघव को कब देखेंगे' ऐसा कुतूहल भरा था । उन्होंने गवाक्ष से लोकाभिराम दिव्य धाम, अत्यंत रूपवान्, विष्णु के समान तेजस्वी, धनुर्धर, प्रत्यंचा के चिह्न से अंकित कर-कमलवाले राम को देखा । उनको देखकर सखियाँ मन-ही-मन सोचने लगीं, रूप और रंग में ये अद्वितीय हैं । ये विष्णु के अंशज हैं और राजपुत्रों के रूप में जन्में हैं । जानकी रामचन्द्र के लिए योग्य हैं और उर्मिला सौमित्र के लिए । इस प्रकार सोचती हुई वे अत्यन्त आसक्ति के साथ सभा की ओर देखती रहीं ।

इन्द्र-सभा के समान सुशोभित उस राज-सभा में धनुष की पेटी लाई गई । तब महाराज जनक ने शुभमूर्त्ति गाधि-पुत्र को देखकर कहा--'हे मुनि, किन्नर, यक्ष, गंधर्व, देवता, पन्नग, तथा राक्षस आदियों में से कोई इस धनुष की डोरी को न चढ़ा सका । फिर नरों की कौन कहे ? यह धनुष आप राम-लक्ष्मण को दिखाइए ।' तब मुनि ने रामचंद्र की ओर देखकर कहा--'हे रघुवंश के वीर, इस महान् धनुष को उठाकर उसकी प्रत्यंचा चढ़ा दो । आदिवराह का अवतार लेकर समस्त भूतल को सहज ही उठाकर अपनी शक्ति का परिचय देनेवाले तुम्हारे लिए यह धनुष क्या वस्तु है ?'

इस प्रकार मुनि का आदेश प्राप्त करके राम, लक्ष्मण के साथ उठे । उनके मन में प्रेम तथा उमंग का संघर्ष हो रहा था । उन्होंने अपना दुकूल उतार दिया और कमरबंद कसकर बाँधा । उस समय उनके मोहक रूप की कांति सभी दिशाओं में बिखर रही थी । उस कमल-लोचन तथा अद्वितीय साहसी की करधनी की छोटी-छोटी घंटिकाओं का सौंदर्य अद्भुत था । उनकी नव-रत्नमालिका बाहुओं तक डोल रही थी । उनके कंकण और अँगूठियों की कांति चारों ओर छिटक रही थी । कर्णाभूषणों की कांति स्निग्ध कपोलों पर प्रकाशित हो रही थी । उनके केश पीठ पर नृत्य कर रहे थे और कनक वर्णवाला उनका शरीर चारों ओर अपनी आभा विकीर्ण कर रहा था । करोड़ों मन्मथों का-सा सौंदर्य लिये हुए वे मनुवंश-तिलक गंभीर गति से जनक की सभा में सब के सम्मुख आये और धनुष की पेटी खोली । समस्त धरा को अपने ऊपर धारणकर चिरनिद्रा में सुख से सोने-वाले शेषनाग के समान, काले बादलों के मध्य अपनी पूरी कान्ति को समेटकर अचल भाव से रहनेवाले विद्युत्-दंड के समान अनुपम सौंदर्य से समन्वित धनुष को राम ने पेटी में से उठाया ।

वह अनुपम धनुष अरुण रत्न-प्रभा की-सी दीप्ति बिखेरनेवाली अग्नि-ज्वाला के समान ऐसा खड़ा था, मानों वह उसे उठाने के लिए बड़े गर्व के साथ प्रयत्न करनेवाले राजकुमारों के

बल को आहुति के रूप में निगलने के लिए उद्यत हो। राम जब उस धनुष की डोरी चढ़ाने का उपक्रम करने लगे, तब विश्वामित्र बोले--'राम अपनी समस्त शक्ति से संपन्न होकर शिवजी के धनुष की प्रत्यंचा चढ़ा रहे हैं। हे धरती, तुम दोलायमान मत होओ। हे शेषनाग, तुम विचलित मत होओ। हे दिग्गजो, तुम सावधान रहो।'

इसी समय राघव ने धनुष की डोरी चढ़ाई और अपने भुज-बल का परिचय दिया। वे जनक से बोले--'हे भूपाल, यह धनुष बहुत ही पुराना, कमजोर, और घटिया है। यदि बाण का संधान किया जाय, तो यह टिक नहीं सकेगा। इसी धनुष की आपने इतनी प्रशंसा की थी?'

इस प्रकार कहते हुए (राम ने) सुर, खेचर, भूसुर, किन्नर, नर तथा नृपतियों के समक्ष धनुष की ऐसी टंकार की, मानों वह सब दिशाओं में उनकी विजय की घोषणा कर रही हो। इसके पश्चात् उन्होंने चाप के गुण को (धनुष की प्रत्यंचा को) आकर्णात् इस प्रकार खींचा, मानों सीता के गुण उनके कानों तक पहुँच गये हों। (फिर) उन्होंने अपनी मुट्ठी की पकड़ इस तरह ढीली कर दी, जैसे राक्षसों की पकड़ (शक्ति) ढीली पड़ गई हो। तुरंत वह धनुष अरराकर टूट गया। दिशाएँ उस ध्वनि से गूँज उठीं। धनुष के टूटते ही सभी राजाओं का अभिमान भी चूर-चूर हो गया; सारी पृथ्वी में दरारें पड़ गई; दिग्गज कुचल गये; शेषनाग धँस गया; समस्त भूत भीत हो गये और सभी लोक थर्रा उठे। उस कठोर ध्वनि को सुनते ही जनक, राम, लक्ष्मण तथा विश्वामित्र को छोड़कर शेष सभी लोग मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। जनक महाराज हर्ष तथा विस्मय के साथ कौशिक को देखकर बोले--'मैं अपने वचन के अनुसार बिना विलंब के ही अपनी पुत्री का विवाह इस महान् व्यक्ति से कर दूँगा। महाराज दशरथ को विवाह के लिए सादर निमंत्रण भेजूँगा।'

इस प्रकार कहने के पश्चात् उन्होंने तुरंत अपने प्रिय मंत्रियों को बुलाकर दशरथ को सारा समाचार सुनाकर उन्हें शीघ्र लिवा लाने के लिए भेजा। वे भी जवनाश्वों (तेज़ घोड़ों) पर रवाना हुए और तीन दिन की यात्रा के उपरान्त साकेत (अयोध्या) पहुँच गये। वहाँ अपने पुत्रों की कुशल की चिंता में निमग्न राजा (दशरथ) को देखकर जनक के मंत्री बोले--'हे राजश्रेष्ठ, आपके पुत्र शौर्यनिधि रामचन्द्र ने कौशिक मुनि के यज्ञ की रक्षा की और जनक महाराज का यज्ञ देखने (मिथिला) आये। वहाँ मुनि तथा अन्य राजाओं के समक्ष उन्होंने उस शिव-धनुष का संधान करके उसे सहज ही तोड़ डाला, जिसे उठाना सुरों तथा असुरों के लिए भी असंभव है। इसपर महाराज जनक ने अपनी पुत्री सीता का विवाह राम के साथ करने का निश्चय किया है। उस विवाह में आपको सादर आमंत्रित करने के लिए हमें भेजा है। इसलिए आप शीघ्र पधारें।'

यह समाचार सुनकर राजा आनन्द-सागर में डूब गये। उन्होंने नगर-भर में विवाह की सूचना देने के लिए दूत भेजे और महाराज जनक के मंत्रियों को श्रेष्ठ रत्न, आभूषण कनकांबर (सोने की पोशाक) आदि बड़ी प्रसन्नता से भेंट किये। उन्होंने तुरंत अपने कुल-गुरु वसिष्ठ, धीरात्मा वामदेव, जाबालि, कश्यप, मार्कण्डेय, महिमावान् कात्यायन (आदि मुनियों)

तथा अपने अमात्यों को बड़े आदर के साथ बुला भेजा और अत्यन्त नम्रता से बोले--"राम और लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ विदेह के घर में हैं । राम ने राजाओं की प्रशंसा प्राप्त करते हुए इन्दु-शेखर (शिव) का कठोर धनुष तोड़ा है । अतः महाराज जनक ने सीता का विवाह राम के साथ करने का निश्चय करके, विवाह के लिए हमें आमंत्रित करने के लिए इन्हें (मंत्रियों को) भेजा है । क्या जनक के साथ (हमारा) संबंध प्रजा को स्वीकृत होगा ?" तब सबने उस संबंध की प्रशंसा की ।

दूसरे दिन वसिष्ठ आदि मुनियों, बंधु-मित्र तथा अन्य राजाओं के साथ राजश्रेष्ठ दशरथ ने रथ में बैठकर बड़े आनन्द से मिथिला के लिए प्रस्थान किया । उनके साथ रमणीय दिव्यांबर, कमनीय रत्न-समूह, हाथी, रथ, तुरंग तथा पदचर सेना, परम आप्त मंत्री तथा पवित्र स्त्रियों के समूह थे । राजा के पार्श्व में उनके पुत्र भरत तथा शत्रुघ्न हाथियों पर, मोतियों के छत्र की छाया में चल रहे थे । मंगल-वाद्यों के घन-नाद से सभी दिशाएँ मुखरित हो रही थीं । इस प्रकार, जहाँ-तहाँ ठहरते हुए, चार दिन की यात्रा के पश्चात्, दशरथ (अपने परिवार के साथ) मिथिला पहुँच गये ।

तब महाराज जनक सूर्यवंश में श्रेष्ठ राजा (दशरथ) की अगवानी करने आये और बड़े उत्साह एवं आदर के साथ उन्हें ले जाकर उनका उचित रीति से आदर-सत्कार किया । उसके बाद सभी मुनियों को प्रसन्न करते हुए वे बड़े हर्ष से बोले--"महाराज, अपनी पुत्री का विवाह आपके पुत्र के साथ करने का निश्चय करके मैंने आपको निमंत्रित किया है । आपके आगमन से मैं कृतार्थ हुआ । इन वसिष्ठ, वामदेव आदि मुनियों के आगमन से मेरी इच्छाएँ पूर्ण हो गईं । मेरा जन्म सफल हुआ । मेरा वंश पवित्र हुआ । रविकुल के उत्तम नरेश के साथ संबंध करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ । कल ही विवाह का शुभ मुहूर्त्त है । आप अपने इष्ट-मित्रों को बुलाकर उचित तथा आवश्यक कार्य संपन्न कीजिए ।"

उनके वचन सुनकर दशरथ ने बड़े प्रेम से कहा--'ऐसा ही हो' और जनक के द्वारा संपन्न कराये गये जनवासे में प्रसन्न-चित्त से ठहरे । तब विश्वामित्र राम तथा लक्ष्मण के साथ वहाँ आ पहुँचे । दशरथ ने उस मुनि को प्रणाम करके बड़े विनय से कहा--"हे अनघात्मा, आपकी कृपा से मैं धन्य हुआ ।" तब कौशिक बोले--"हे राजन्, तुम अकलंक-चरित्र हो । अपने पुण्य-कार्य से तुम पवित्र हो गये हो । रविकुलोत्तम राम को पुत्र के रूप में प्राप्त करके तुम विशेष रूप से पवित्र हुए हो । उस दिन तुमने यज्ञ की रक्षा करने के लिए सद्बुद्धि से अपने पुत्र राम-लक्ष्मण को मुझे दिया था । यह लो, तुम्हारे पुत्र कुशल-मंगल से हैं । उन्हें स्वीकार करो ।" इतने में दोनों (राम-लक्ष्मण) ने राजा को प्रणाम किया । राजा ने उन्हें आशीर्वाद देकर बड़े स्नेह से गले लगा लिया ।

दशरथ उस दिन अपने नित्य-नैमित्तिक वैदिक कर्मों से निवृत्त हुए । दूसरे दिन जनक अपने मंत्रियों के साथ विवाह-मंडप में आ विराजे । अपने पुरोहित शतानन्द को देखकर कहा--'हे अनघात्मा, मेरे भाई कुशध्वज को भी इस विवाह में अवश्य आना चाहिए । वह इक्षुमती के किनारे सांकाश्यपुरी में रहता है ।' यों कहकर उन्होंने (अपने भाई को) बुला भेजा ।

८

बड़े कौतूहल के साथ कुशध्वज वहाँ आया और शतानन्द तथा महाराज जनक को बड़ी श्रद्धा से प्रणाम किया और महाराज की आज्ञा पाकर उचित आसन पर बैठा। तब जनक ने सुदामन नामक अपने मंत्री से कहा--'तुम शीघ्र जाकर महाराज दशरथ को उनके सचिव, पुत्र, वसिष्ठ आदि मुनियों के साथ सादर लिवा लाओ।' उसने दशरथ के सम्मुख पहुँचकर निवेदन किया--'महाराज, राजा जनक ने मुझे आपकी सेवा में भेजा है। आप कृपाकर अपने पुरोहित, पुत्र तथा अमात्यों के साथ विवाह-मंडप में पधारें।' राजा दशरथ सपरिवार वहाँ पहुँचे और (उचित आसन पर) आसीन होने के पश्चात् जनक से बोले--'महाराज, हम इक्ष्वाकुओं के लिए मुनि वसिष्ठ गुरु तथा देवता हैं। वे सर्वज्ञ तथा जितेन्द्रिय हैं। वे ही हमारे पुरोहित रहकर संस्कार करायेंगे।'

३४· दशरथ का वंश-क्रम

तब मुनि वसिष्ठ दशरथ के वंश का वर्णन करते हुए कहने लगे--'हे राजन्, निर्गुण ब्रह्म ने सगुण रूप धारण करके, अपनी लीला प्रसारित करने के निमित्त, अपने नाभि-कमल में ब्रह्मा को उत्पन्न किया। इस प्रकार हरि के पुत्र ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्मा के पुत्र मरीचि हुए। मरीचि के पुत्र कश्यप हुए और उनसे सूर्य उत्पन्न हुआ। सूर्य का पुत्र था वैवस्वत मनु। उसका पुत्र इक्ष्वाकु नामक राजा बहुत विख्यात हुआ। इक्ष्वाकु का पुत्र कुक्षि हुआ, और कुक्षि का पुत्र विकुक्षि उत्पन्न हुआ। विकुक्षि के पुत्र बाण के सनरण्य नामक पुत्र हुआ। उसके पृथु नामक पुत्र हुआ, जिसका पुत्र त्रिशंकु हुआ, जो बड़ा ही चतुर राजा था। उसके पुत्र हरिश्चन्द्र के रोहिताश्व नामक पुत्र हुआ, जिसका पुत्र दुंदुमार हुआ। दुंदुमार का पुत्र युवनाश्व था, उसकी दो रूपवती रानियाँ थीं। किन्तु उसके संतान नहीं थी। इसलिए राजा ने संतान की प्राप्ति की इच्छा से बहुत-से श्रेष्ठ मुनियों को बुला भेजा और उन महान् आत्माओं की अर्घ्य-पाद्य आदि से पूजा की और उनसे निवेदन किया--'हे महात्माओ, आप कृपा करके मुझे संतान-प्राप्ति का वर दीजिए।' तब बड़ी प्रसन्नता से मुनि बोले--'हे राजन्, तुम भक्ति-युक्त हो ऐन्द्र-यज्ञ करो, तो तुम्हें संतान-प्राप्ति होगी।'

"राजा ने यज्ञ के लिए आवश्यक उपकरणों को तुरंत एकत्र कराया। संयमी मुनियों ने बड़े हर्ष के साथ राजा के संतान-प्राप्ति हेतु ऐन्द्र नामक यज्ञ प्रारंभ किया। यज्ञ पूरा हुआ और मुनियों ने अभिमंत्रित जल से पूर्ण कुंभों को यज्ञ-शाला में एक ओर रखा। उसी दिन रात्रि के समय राजा ने प्यास से पीड़ित होकर, भूल से यज्ञ-शाला में रखे हुए कलशों में से लेकर अभिमंत्रित जल पी लिया।

"(दूसरे दिन) जल-रहित कलशों को देखकर मुनि कहने लगे--'कलशों का जल किसने पी लिया? जल कहाँ गया?' जब उन्होंने ध्यान लगाकर देखा, तब उन्हें ज्ञात हुआ कि राजा ने ही जल पीया है। इस विचित्र दैव-माया को देखकर सभी मुनि आश्चर्य-चकित हो गये। राजा ने गर्भ धारण किया और एक बालक को जन्म देकर मर गया। ऋषि अत्यन्त दुःखी हुए और मंत्र-शक्ति के प्रभाव से युवनाश्व को फिर सजीव बनाया। युवनाश्व जीवित हो उठा।

"चक्रवर्ती के शुभ लक्षणों से युक्त उस बालक को देखकर ऋषियों ने विचार किया कि वह सप्तद्वीपों पर राज्य करेगा। इससे वे बहुत प्रसन्न हुए। युवनाश्व ने बड़े प्रेम से

उन ऋषियों को अतुल धन देकर उनका सम्मान किया और वे विदा हुए। मातृहीन वह शिशु भूख से व्याकुल होकर जब रोने लगा, तब इन्द्र वहाँ आया और उसकी भूख मिटाने के लिए अपना अंगूठा उस शिशु के मुँह में दे दिया। शिशु उससे अमृत-पान करने लगा। सुधा-पान करने के कारण इन्द्र ने बुधजनों के द्वारा उस शुभलक्षण का नाम मान्धाता रखवाया और इन्द्र-लोक को लौट गया।

"मान्धाता पूर्ण-चन्द्रप्रभा-सम दीप्तिमान् होकर बढ़ने लगा। यौवन के आते ही वह अत्यन्त शौर्य-संपन्न हुआ और रावण आदि (बलशाली) राजाओं को कई युद्धों में परास्त कर समस्त भूमंडल का शासक बन बैठा। विष्णु की भक्ति करते हुए इन्द्र का बल प्राप्त करके उसने बहुत-से यज्ञ किये। उस राजा के विमलांगी नामक स्त्री से अत्यन्त तेजस्वी मुचुकुंद और सुसंधि नामक दो पुत्र और पचास पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। कन्याओं के युवावस्था को प्राप्त होते ही राजा ने उनका विवाह सौभरि नामक मुनि के साथ कर दिया। उन कन्याओं का अग्रज हरि-भक्ति में जीवन व्यतीत करते हुए स्वर्ग सिधारा। उसके भाई सुसंधि ने पुण्य-कार्य करते हुए (चिर काल तक) राज्य का पालन किया। उस सुसंधि के ध्रुवसंधि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके पुत्र प्रसेनजित् के भरत नामक पुत्र हुआ और भरत के असित नामक पुत्र हुआ।

"असित के राज्य-काल में अत्यंत पराक्रमी हैहय-वंश में भयंकर आकारवाला ताल-जंघ नामक वीर उत्पन्न हुआ। उसने असित के साथ घोर युद्ध किया और युद्ध में पराजित करके उसका वध कर डाला। राजा की दोनों रानियों ने अत्यन्त दुःखी होकर राज-काज का सारा भार मंत्रियों को सौंप दिया और शान्ति से जीवन बिताने लगीं। उन दोनों रानियों में कालिंदी नामक रानी गर्भवती थीं। सौतिया डाह के कारण दूसरी रानी से यह सहा नहीं गया और उसने उस गर्भ को हानि पहुँचाने के उद्देश्य से विष का प्रयोग किया। विष-प्रयोग से गर्भ-पात तो नहीं हुआ, किन्तु उसके प्रभाव से वह कड़ी वेदना का अनुभव करने लगी। तब कालिंदी हिमालय में च्यवन ऋषि के यहाँ गई और बड़ी भक्ति से उन्हें प्रणाम करके अपना सारा वृत्तांत कह सुनाया। मुनि ने उसके दुःख की कथा सुनकर कहा—'बेटी, तुम मेरी पुत्री के समान हो; डरने की कोई बात नहीं है।' उन्होंने उसे स्नेह से उठाया और अपनी दिव्य-दृष्टि से सारी स्थिति को समझकर कहा—'हे कालिंदी, तुम्हारे अत्यंत धार्मिक, अतुल तेजस्वी, महान् चेता, कीर्त्तिवान्, वंशोद्धारक, रूपवान् तथा शत्रुदमन पुत्र उत्पन्न होगा।' इस प्रकार मुनि का आशीर्वाद प्राप्त करने के पश्चात् वह रमणी मुनि को प्रणाम करके अपने घर लौटकर प्रसन्न-चित्त रहने लगी।

"निदान शुभ मुहूर्त्त में उस शुभांगी के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। कालिंदी अत्यन्त हर्षित हुई। वह अपने शत्रुओं का दमन करके बड़े आनन्द से राज करने लगा। उसका नाम सगर था। उसका पुत्र असमंजस था। असंमजस का पुत्र अंशुमान था, जिसका पुत्र राजा दिलीप था। दिलीप के पुत्र पुण्यात्मा भगीरथ थे, जिन्हें ककुत्स्थ नामक पुत्र हुआ। उसके पुत्र रघु महाराज के पुरुषादक नामक पुत्र हुआ। उसके उज्ज्वल-कीर्त्तिमान् नामक पुत्र हुआ। उसके पुत्र शंखण था, जिसके पुत्र सुदर्शन के अग्निवर्ण नामक पुत्र हुआ, जिसका पुत्र ऋतुपर्ण था। ऋतुपर्ण का पुत्र मरु था और उसका पुत्र शीघ्रग था। शीघ्रग के

पुत्र मनु के अंबरीष नामक पुत्र हुआ । अंबरीष का पुत्र जनवंदित नहुष था, जिसका पुत्र ययाति नामक वीर था । ययाति के पुत्र नाभाग था और उसका पुत्र अज था । अज के पुत्र ही ये दशरथ हैं, जो पुण्यात्मा तथा सफल मनोरथ हैं । इन्हीं दशरथ के पुत्र राम हैं । इनके विषय में अधिक क्या कहूँ ? इनके पुत्र को ही तुमने अपनी पुत्री देने का निश्चय किया है । तुम कृतकृत्य हो । तुम्हारा वंश (इससे) मंगलमय हुआ ।

इस प्रकार वसिष्ठ को रघुवंश की प्रशंसा करते हुए सुनकर पवित्रात्मा शतानन्द जनक की अनुमति लेकर बड़े हर्ष से सभी सभासदों के सुनते हुए यों कहने लगे—'हे मुनीन्द्र, हमने बड़े हर्ष से अनघात्मा दशरथ के वंश-क्रम का वर्णन आपसे सुना । मैं अब आपको प्रशंसनीय जनक की वंशावली सुनाऊँगा ।"

३५· राजा जनक की वंशावली

"द्विजों तथा परमहंसों के जन्मदाता अद्वितीय ब्रह्म अच्युत के नाभि-कमल में ब्रह्मा का जन्म हुआ और उनका पुत्र हुआ मरीचि । मरीचि का पुत्र कश्यप था । कश्यप के सूर्य उत्पन्न हुआ । उसका पुत्र था मतिमान्, जिसके मनु नामक पुत्र हुआ । मनु ने ध्यान-मग्न अवस्था में कभी छींका, तो (उस छींक से) वैवस्वत का जन्म हुआ । उस वैवस्वत का पुत्र निमि था, जो निर्मल आचारवान्, नीतिकोविद, धर्मनिरत, विमल मूर्तिमान् तथा यशस्वी था । उसका पुत्र मिथि था, जिसके जनक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । जनक के उदावसु नामक पुत्र हुआ, जिसका पुत्र नन्दिवर्द्धन था । नन्दिवर्द्धन का पुत्र सुकेतु था, जिसका पुत्र देवरात था । देव-रात के बृहद्रथ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसके महाविभु नामक पुत्र था । महाविभु का पुत्र सुधृति था, सुधृति का पुत्र धृष्टकेतु और उसका पुत्र हर्यश्व था । हर्यश्व के मरु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसके प्रतींधक नामक पुत्र हुआ । प्रतींधक का पुत्र कीर्त्तिरथ था, जिसके देवमीढ नामक पुत्र हुआ । देवमीढ का पुत्र विबुध और विबुध का पुत्र महाध्रक था । महाध्रक के कीर्त्तिरात नामक पुत्र हुआ और उसका पुत्र महारोम था । महारोम के स्वर्ण-रोम नामक पुत्र हुआ, जिसके ह्रस्वरोम नामक गुणवान् पुत्र हुआ । ह्रस्वरोम के दो पुत्र हुए —महाराज जनक और कुशध्वज । ये दोनों सौजन्य की मूर्त्ति हैं । जब जनक महाराज राज्य करते थे, तब सांकाश्य का पराक्रमी राजा सुधन्वा अपनी सेना के साथ आया और मिथिला तथा सीता-समेत शिव का धनुष माँगते हुए एक दूत भेजा । जब उसकी माँग की उपेक्षा कर दी गई, तब उसने शिव-धनुष तथा सीता को प्राप्त करने के लिए घोर युद्ध किया । जनक ने युद्ध-भूमि में उसका संहार किया और अपने अनुज को उस राज्य का राजा बनाया । जनक से लेकर उस वंश में उत्पन्न सभी राजाओं के नाम जनक के कारण प्रशस्त हो गये है । निमि-वंश में जन्म लेनेवाले सभी नरेश योग-ज्ञान-सम्पन्न तथा चिरजीवी होते हैं ।"

इस प्रकार, जनक के वंश के सदाचरण तथा सीता के सद्गुणों की प्रशंसा करने के पश्चात्, अत्यंत प्रतापी तथा विमल-भाषी दशरथ को संबोधित करके (शतानन्द ने) कहा— 'हे महाराज आप अपने नित्य अभिराम पुत्र राम का विवाह सीता के साथ संपन्न करके चिर-कीर्त्ति प्राप्त कीजिए।'

दशरथ ने इन बातों को सुनकर बड़े उत्साह से वसिष्ठ तथा गाधि-पुत्र को देखकर कहा—'आप जनक महाराज से कहिए कि वे उर्मिला का विवाह सौमित्र से तथा राजा कुशध्वज की कन्याओं का विवाह उत्तम गुण-संपन्न भरत तथा शत्रुघ्न के साथ कर दें ।' तब उन्होंने राजा जनक को सारी बातें कह सुनाईं और उनकी सम्मति प्राप्त करके बड़े हर्ष से राजा दशरथ को जनक की स्वीकृति कह सुनाई ।

दूसरे दिन विवाह के लिए अनुकूल शुभ लग्न था । अतः जनक ने उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र में विवाह का शुभ-मुहूर्त्त ठहराया और नगर तथा अंतःपुर को सजाने के लिए परिचारकों को भेजा । उन्होंने चंदन-कस्तूरी-मिश्रित जल से (नगर के) मार्गों पर छिड़काव करके उन्हें सुगंधमय बनाया । चीनांशुकों (रेशमी वस्त्र) के वितान सजाये, मणि-तोरण-ध्वजाओं से सारा नगर अलंकृत किया, फलों के भार से अवनत कदली के पेड़ों तथा सुपारी के पत्तों से प्रत्येक घर तथा कक्षों के द्वारों को सजाया और विशाल चबूतरों को जवादि से लीपकर उनपर चौक पूरे । मणिकंचन-कलशों से युक्त सौधों के गोपुरों का समूह अगणित सूर्यों का भ्रम उत्पन्न कर रहा था । सारा नगर मणि-दीपों, वारंभी (धूप) के धुएँ तथा पुष्प-कलापों का भार वहन कर रहा था । इस प्रकार नगर को अलंकृत करने के पश्चात् उन्होंने अंतःपुर को बड़ी निपुणता से सजाया । फिर उन्होंने शिल्पकारों द्वारा विवाह-वेदी का निर्माण कराने का आदेश दिया । शिल्पकारों ने मरकत की भूमि पर सोने के स्तंभ स्थापित किये, उनपर नीलमणि के कार्निस लगाये और उनपर माणिक्य की धरन (शहतीर) बैठाई । सुंदर ढंग से नक्काशी करके बनाये गोमेदक के छज्जे बनाये और ऊपर वज्र (हीरे) का गारा किया । (उस मंडप के) चार विशाल किवाड़ बनाये गये, जो मणि तथा स्वर्ण के बने थे । (मण्डप में) सोने के सुन्दर चित्र बनाये गये । नीलमणि के हाथी तथा स्फटिक के सिंहों से सुसज्जित सोपान रचे गये । उशीर (खस) का विशाल शामियाना बनाया गया, जिसके मध्य में फूलों की लड़ियाँ लटकाई गईं । विवाह के लिए मरकत की वेदी बनाई गई । उसे कस्तूरी से लीपकर उसपर मोतियों के चौक पूरे गये । इस प्रकार सुसज्जित वह विवाह-मण्डप दर्शकों को नेत्रोत्सव प्रदान कर रहा था ।

तब वसिष्ठ, विश्वामित्र तथा अन्य पुण्यात्माओं को देखकर जनक ने कहा—'आप लोग ही मिथिला तथा अयोध्या के कर्त्ता (विधाता) हैं । अब आगे जो कार्य करना उचित हो, उन्हें कराइए ।'

निरंतर बजनेवाले मंगल-वाद्यों के कलनाद तथा सुमंगली स्त्रियों के मधुर गीतों के बीच महाराजा दशरथ तथा उनके चारों पुत्र मणिपीठों पर बैठे । उन्हें तैल तथा उबटन लगाकर उनका मंगल-स्नान कराया गया । उसके उपरांत माथे पर तिलक देकर उन्हें चीनांशुक (रेशमी वस्त्र) तथा आभूषणों से अलंकृत किया गया । (उन्हें देखकर) दशरथ तथा उनकी पत्नियाँ आनन्द से फूली नहीं समाती थीं । इसके पश्चात् उन्होंने पवित्र मन से अपने पुत्रों के शुभ अभ्युदय के निमित्त गो-दान देने का निश्चय किया । प्रत्येक पुत्र के हितार्थ उन्होंने वेद-विधि के अनुसार सोलह हजार गायें श्रेष्ठ ब्राह्मणों को दान दीं । वे गायें धौत-खुर, कनक-श्रृंग, ताम्र-पुच्छ से अलंकृत थीं और सुन्दर दीखती थीं । उनके साथ

उनके बछड़े भी थे । ये गायें श्रेष्ठ वस्त्रों से सज्जित थीं । गायों के साथ उनको दूहने के लिए काँसे की दोहनी भी राजा ने दान में दी । इनके अतिरिक्त राजा ने स्वर्ण, भूमि तथा रत्नादि दक्षिणा के साथ अलग-अलग (पुत्रों के हितार्थ अलग-अलग ब्राह्मणों को) दिये।

इसी समय भरत का मामा युधाजित् वहाँ आ पहुँचा । वह अपने पिता कैकय-नरेश की आज्ञा से भरत को ले जाने के लिए अयोध्या आया था। किन्तु पुत्रों के विवाहार्थ दशरथ को मिथिला गये हुए जानकर वह सीधे मिथिला आ गया । दशरथ ने बड़े प्रेम से उसका आदर-सत्कार किया और कुशल-समाचार पूछे ।

दूसरे दिन स्नातक आदि विधियों को पूर्ण करने के पश्चात् (राम) अपने भाइयों के साथ दशरथ के सम्मुख उपस्थित हुए । दशरथ ने उनका अलंकार करने का आदेश दिया। (परिचारक राम का अलंकार करने लगे) उनके सिर पर मुकुट, उदयाद्रि के श्रृंग के समान शोभा दे रहा था । उन्होंने हाथों में कंकण धारण किये, मानों वे भक्तों की रक्षा के लिए बद्ध-कंकण (कृत-संकल्प) हो रहे हों ।

उनके वक्ष पर हार ऐसे शोभ रहे थे, मानों उनके वक्षःस्थल से उत्पन्न चन्द्रकिरणें चारों ओर छिटक रही हों । कटि-प्रदेश में कनक-वस्त्र ऐसे शोभित हो रहे थे, मानों पृथ्वी ने उनके कनकांबरत्व को धारण कर लिया हो । उनके कानों में कुंडल ऐसे शोभ रहे थे, मानों रावण के अत्याचार से पीड़ित अष्ट-दिक्पालों का यश दोनों ओर मोतियों के बहाने अपनी विनती (श्रीराम को) सुना रहे हों । ऐसे सौंदर्य से संपन्न उनके मुख की कान्ति को बढ़ाते हुए कस्तूरी-तिलक शोभित हो रहा था । उदित होनेवाले भानु के तेज के समान विलसित, एवं कुंडल, केयूर, मुकुट तथा हारों से मंडित लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न के बीच राम ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानों दिक्पालकों के मध्य इन्द्र विराज रहा हो ।

वहाँ (जनक के अंतःपुर में) जनक ने (अपनी) चारों कन्याओं को सुसज्जित करने के लिए दासियों को आदेश दिया । उन्होंने उन कन्याओं को दीप्तिमान् मणिपीठ पर बिठाया, सुमंगलियों के मंगल-गीतों और शारिका तथा कीरों के कलरव के बीच प्रत्येक को कुंकुम, कस्तूरी, गोरोचन तथा जवादि की सुगंधि से सुवासित उबटन लगाया । कंकणों की मृदु ध्वनियों से मुखरित कर-पल्लवों से उनके केशों में चंपा का तेल लगाया, हरिचंदन का लेप किया और घनसार की सुगंधि से युक्त कुनकुने जल से उन कन्याओं का स्नान कराया, महीन कपड़ों से (उनके शरीर को) पोंछा और गुलाबी रंग के लहंगों पर सुनहली जरीदार अंचलवाले वस्त्र पहनाये । (उसके बाद) उन्होंने उनके जूड़े ऐसे सुंदर ढंग से बाँधे मानों समस्त श्रृंगारों की राशि एकत्र कर दी हो । उन जूड़ों में जूही की कलियाँ सजाई । कर्पूर तथा गुलाब-जल में कस्तूरी घोलकर (सारे शरीर पर) लेप किया, सुनहली जरीदार कंचुकी पहनाई तथा उनके वक्ष पर मरकत-मोतियों के हार पहनाये । फिर उनके (कन्याओं) के कमनीय मुखों के सौंदर्य की वृद्धि करते हुए तिलक लगाये, कपोलों पर मकरिका-पत्रों को रचा, नाक में बेसर पहनाये, रत्नों के कर्णफूल, मोतियों की बालियाँ और माणिक्य के कुण्डल सजाये । सके पश्चात् (उनके पैरों में) मरकत के कड़े; पद्म-राग जड़े नूपुर तथा गोमेदक-जड़े पाजेब पहनाये ।

इस प्रकार, हारों तथा आभूषणों से अलंकृत होने पर उन्हें देख सब स्त्रियाँ आश्चर्य करने लगीं कि ये दुलहिनें शरत्-पूर्णिमा के चन्द्र हैं, वसंत-काल की पुष्प-लताएँ हैं या खराद पर चढ़े हुए श्रेष्ठ रत्न हैं, श्री-समन्वित कुंदन की शलाकाएँ हैं, धौत मुक्ताएँ हैं, अथवा सुगंध से परिपूर्ण चंदन की प्रतिमाएँ हैं । उनमें सीता तो स्वयं लावण्य की मूर्त्ति, श्रेष्ठ गुणवती, जगन्माता, आदिलक्ष्मी का अवतार थीं; उस देवी के सौंदर्य का वर्णन करना किसके लिए संभव है ? वे भूषणों के लिए आभूषण थीं, भूदेवी के समान थीं, रत्नाकर की मेखला थीं; गंधवती (पृथ्वी) थीं और वसुमती थीं ।

शुभ मुहूर्त्त निकट आते देखकर वसिष्ठ जनक से परामर्श करके आये और दशरथ को इसकी सूचना दी । तब महाराज दशरथ कौशिक, वसिष्ठ आदि गुरुओं को साथ लेकर अमरेन्द्र के वैभव से युक्त हो, उचित वाहनों पर सवार होकर जनक के अंतःपुर की ओर चले । उनके पीछे-पीछे उनके पुत्र तथा सुसज्जित हो रमणियाँ चलने लगीं । उनके पीछे राजा के सामन्त, मंगलप्रद द्रव्यों को लिये हुई पुण्यवती स्त्रियाँ, याचक, अलंकृत अश्व तथा गज, मंत्री, वेद-पाठ करते हुए विप्र तथा प्रसन्न-चित्त मुनिगण चलने लगे ।

३६. सीता और राम का विवाह

बरात को आते देख जनक ने अत्यन्त उत्साह से उनकी अगवानी की थी । कमल-लोचनी सुहागिनों ने उनकी आरती उतारी । जनक ने उन्हें विवाह-मंडप में नवरत्न-खचित पीठों पर आसीन कराया । उसके पश्चात् उन्होंने अविलंब अपने पुरोहित के द्वारा स्वर्ण-वेदी में अग्नि की प्रतिष्ठा कराई और वेदोक्त विधि से हवन-कार्य संपन्न किया । उसके उपरान्त उन्होंने देव-कन्याओं की-सी दीखनेवाली, लावण्यवती अपनी कन्याओं को बड़े स्नेह से बुलवाया । उन्होंने मधुपर्क की विधि पूरी की और अपनी प्रिय पुत्री विद्युत् अंगवाली, स्त्री-रत्न, कमललोचनी सीता को परदे के पीछे खड़ा किया । फिर उन्होंने वांछित फल की सिद्धि के हेतु संकल्प-पूर्वक राम से कहा—'हे राम, मेरी पुत्री, सद्धर्मचारिणी सीता को अग्नि के समक्ष ग्रहण करो ।' इस प्रकार कहते हुए उन्होंने (राम के हाथों में) सीता को सौंपा । (उस समय) अजस्र पुष्प-वृष्टि हुई तथा देव-दुंदुभियाँ बजने लगीं । सुंदर रमणियाँ दीपों की थालियाँ लिये खड़ी थीं; स्वर्ण के थालों में मंगलाक्षत लिये सुमंगलालियाँ पार्श्व-भाग में खड़ी थीं । गुड़ तथा जीरा मिलाकर वधु-वरों के सिर पर रखा गया ।[1]

तब सुमुहूर्त्त जानकर (मुनि ने) परदा हटाया । सीता का भव्य मुख सामने देखकर राम की आँखें पूर्णिमा के चन्द्र के प्रकाश में विकसित कुमुद-पुष्प के समान प्रफुल्लित हो गई । सीता की दृष्टि पति के चरण-कमलों पर इस प्रकार स्थित हुई, जैसे पद्म पर भ्रमर बैठे हों ।

रामचन्द्र की दृष्टि इस प्रकार दीखने लगी, मानों वह उस परम सुन्दरी के लावण्य-रूपी सागर में तैर रही हो । वधू की दृष्टि वर के शरीर के कान्ति-रूपी प्रवाह के मध्य विकसित पद्म (कमलों) के सदृश शोभायमान हो रही थी । पत्नी तथा पति की आँखें थोड़ी

---

१. आंध्र-देश में विवाह के समय शुभ मुहूर्त्त में वर-कन्या के सिरों पर गुड़ तथा जीरा मिलाकर रखने की प्रथा है । यह शुभ माना जाता है ।

देर के लिए आपस में इस प्रकार मिलीं, जैसे रति तथा मन्मथ के सुन्दर रूप बड़ी शोभायुक्त गति से परस्पर मिले हों। उसके पश्चात् रघुवीर ने सीता के लाल कमल के समान कर को अपने हाथ में लिया और पुलकित गात्रों से दोनों एक ही पीठ पर आसीन होकर बड़ी प्रीति से हवन का कार्य संपन्न करने लगे। जनक ने बड़ी प्रीति से श्रेष्ठ युवती उर्मिला का हाथ लक्ष्मण के हाथ में दिया, कुशध्वज की पुत्रियों में से कमल के-से विशाल नेत्रोंवाली मांडवी का कर भरत के हाथ में सौंपा और चन्द्रमुखी श्रुतकीर्त्ति का हाथ शत्रुघ्न को दिया।

इस प्रकार वेद-विधि से पाणिग्रहण-संस्कार समाप्त करके दशरथ के पुत्रों ने अक्षतारोपण-विधि पूरी की और लाज-होम (धान का लावा अग्नि में डालने की क्रिया) संपन्न करके मुनियों के आशीर्वाद प्राप्त किये। स्वर्ग के देवों ने दुंदुभियाँ बजाईं, पुष्प-वृष्टि की, देवता संतुष्ट हुए, मुनि प्रसन्न हुए, गंधर्व अत्यन्त हर्षित होकर गाने लगे तथा आनन्द से अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। तब वसिष्ठ ने वैवाहिक हवन के उपरान्त राजकुमारों को अग्नि की परिक्रमा कराई और सप्तर्षियों की पूजा कराई। सब मुनि तथा पुरोहितों ने बड़े हर्ष से वर-वधुओं को आशीर्वाद दिये। दूसरे दिन सदसि (ब्राह्मणों की सभा, जिसमें वे वेदोच्चारण के साथ वर-वधू को आशीर्वाद देते हैं) संपन्न किया गया और सबने शुद्ध चित्त से आशीर्वाद दिये।

इस प्रकार, विवाह के चार दिन बड़े समारोह के साथ व्यतीत हुए। समस्त शुभ संस्कारों का दर्शन करके, महाराज दशरथ तथा समुद्र-सदृश शीलवान् जनक को आशीर्वाद देकर कौशिक ने हिमाचल की ओर प्रस्थान किया। मिथिलेश के आनन्द की सीमा न रही। इसके पश्चात् (जनक तथा दशरथ) दोनों राजाओं ने अपने विभव के अनुकूल विवाह में आये हुए राजाओं को श्रेष्ठ वस्त्राभरण देकर विदा किया और सभी याचकों को अपरिमित धन देकर संतुष्ट किया।

जनक ने अपनी पुत्रियों को बड़े स्नेह से उचित सीख दी और उन्हें श्रेष्ठ रत्नाभूषण, चित्र-विचित्र के चीनांबर तथा दासियाँ भेंट में दीं। अपने जामाताओं को रथ, गज, तुरंग, पदचर, सैनिक तथा आभूषण भेंट किये। वसिष्ठ आदि संयमियों तथा महाराज दशरथ को विविध रत्नाभरण देकर उनका सत्कार किया और अपनी पुत्रियों को उनके साथ विदा किया। अपने पुत्र तथा पुत्र-वधुओं के साथ राजा दशरथ अयोध्या के लिए रवाना हुए। किन्तु मार्ग में अचानक बड़े वेग से प्रतिकूल पवन चलने लगा। इसके अतिरिक्त कितने ही अपशकुन भी होने लगे। राजा ने बहुत व्याकुल होकर वसिष्ठ से पूछा—"हे मुनीश्वर, ये अपशकुन किस कारण से हो रहे हैं ?" तब बड़ी अनुकंपा से वसिष्ठ ने राजा को देखकर कहा—'राजन्, आगे एक बड़ी विपत्ति आनेवाली है, पर वह देखते-देखते दूर हो जायेगी। चिंता मत करो।'

मुनि इस प्रकार कह ही रहे थे कि पवन प्रचण्ड गति से चलने लगा, सारे आकाश में धूल छा गई। हाथी, घोड़े तथा रथों पर सवार योद्धा तथा अन्य लोग चकित-से रह गये। सारी सेना तितर-बितर हो गई। सूर्य का तेज मलिन हो गया। उसी समय

पराक्रमी परशुराम कंधे पर परशु धारण किये आते दिखाई पड़े, जिन्होंने इक्कीस बार इस पृथ्वी को निःक्षत्रिय कर दिया था। उनकी आँखें ऐसी लाल थीं, मानों अपने जटा-जूट में स्थित गंगा की आर्द्रता से ललाट को आर्द्र बनाये हुए, अत्यंत भयंकर रूप से जलनेवाले तथा अपने कंठ के विष को क्रोध से दैत्यों के ऊपर उगलनेवाले परम शिव के ललाट-नेत्र की प्रज्वलित वह्नि को (परशुराम) अपनी दोनों आँखों में लिये हुए आ रहे हों। उनकी बिखरी हुई लाल-लाल जटाएँ ऐसी दीख रही थीं, मानों उनके भीतर की क्रोधाग्नि प्रज्वलित होकर बाहर तक अपनी लाल-लाल ज्वालाएँ फैला रही हो। उनके कंधे पर रहने-वाला परशु ऐसा शोभा दे रहा था, मानों उनकी भुजा रूपी लक्ष्मी ने नाल-युक्त विकसित कमल हाथ में धारण किया हो। ऐसे भयंकर रूप में आनेवाले परशुराम को देखकर राजा दशरथ तथा मुनिगण भयभीत होकर भय-निवारक मंत्रों का जप करते हुए अर्घ्य-पाद्यों के साथ परशुराम के सामने आये।

३७. परशुराम का गर्व-भंग

परशुराम ने अर्घ्य-पाद्य ग्रहण नहीं किया और राजा दशरथ को डरा-धमकाकर राम के आगे आकर खड़े हुए। भार्गव राम (परशुराम) को देखकर राम ने बड़ी भक्ति से प्रणाम किया और हाथ जोड़े बड़े विनय से खड़े रहे। उन्हें देखकर परशुराम ने कहा—'हे राजन्, तुम कितना भी विनय दिखाओ, तोभी मैं तुम्हें क्षमा नहीं करूँगा। तुम मुझसे युद्ध करो।' तब राम ने कहा—"हे भूसुरोत्तम, आपने कश्यप आदि ब्राह्मणों को सारी पृथ्वी दान कर दी है और महान् जितेन्द्रिय हो वनों में रहकर घोर तपस्या में संलग्न रहते हैं। अतः आपकी वंदना करना उचित है। हे मुनीश्वर, यही विचार करके मैंने आपको प्रणाम किया है, आपसे भीत होकर नहीं। क्या यह उचित है कि आप व्यर्थ ही मेरी निंदा करें?"

परशुराम बोले—"तुम मुझे तपस्वी कहते हो? जानते हो, मैंने युद्ध में सहस्रबाहु को मार डाला और इक्कीस बार पृथ्वी पर के सभी क्षत्रियों का नाश कर डाला है तथा (उनके) रक्त से अपने पितरों की तिलोदक-क्रिया की है। हमारे पितर राजाओं के शवों का सोपान बनाकर स्वर्ग में चले गये हैं। हे अनघ, ऐसे भार्गव राम को बिना जाने तुम इस संसार में राम होकर कैसे जन्मे? क्षत्रिय के नाम से जो जन्म लेता है, मैं उसका नाश करूँगा। (ऐसी दशा में) राम का नाम धारण करनेवाले क्षत्रिय को क्या मैं कभी छोड़ सकता हूँ? राज-वंश में जन्म लेकर राम का नाम धारण करनेवाले तुम्हें मैं कदापि क्षमा नहीं करूँगा। राजा होने के कारण तुम्हारे पिता को युद्ध में मार डालने के उद्देश्य से मैं आया था; लेकिन स्त्रियों की आड़ में शरण लेने के कारण मैंने उसे छोड़ दिया था। इसीलिए वह गर्वांध हो यहाँ फूला-फूला विचर रहा है। आज भले ही वह कहीं छिप जाय, पर मैं उसे जीवित नहीं रहने दूँगा।"

तब दशरथ अत्यन्त भीत होकर बड़े विनय से भार्गव से बोले—"हे भार्गव, आप ब्राह्मण हैं, आपको इतना रोष क्यों? मेरे पुत्र बालक हैं। उनपर क्रोध करना आपको शोभा नहीं देता। मैं जानता हूँ कि आप समस्त शास्त्रों एवं पुराणों में पारंगत हैं। ऐसा

कौन धर्म है, जिसे आप नहीं जानते । आपका सामना करके आपसे युद्ध करने की क्षमता शिवजी में भी नहीं है । ऐसी दशा में दूसरों की शक्ति की बात कौन कहे ? हे परम-पावन, देवेन्द्र भी आपकी कठोर प्रतिज्ञा को व्यर्थ नहीं कर सकता । आप हम सबको क्षमा करके प्रसन्नता से गमन कीजिए ।"

दशरथ ने इस प्रकार कहकर प्रणाम किया और सिर झुकाकर चुपचाप खड़े हो गये । फिर भी परशुराम की आँखें क्रोध से लाल ही रहीं । उन्होंने अपनी प्रशंसा में कहे हुए वचनों को अनसुनी कर दिया और मन-ही-मन उन सबका दमन करने का विचार करके अत्यंत क्रोध के साथ बोले—"जिस समय मैं शिव के साथ धनुर्विद्या का अभ्यास कर रहा था, उस समय कार्तिकेय ने मुझसे युद्ध आरंभ किया, पर वह मुझसे हार गया । तब शिव ने भी मेरी शक्ति की प्रशंसा की थो । उस शिव के धनुष का तोड़ना मैं कैसे सहन कर सकता हूँ ?"

तब रघुराम ने हँसते हुए कहा—"मैंने विनोदार्थ उस धनुष का संधान किया, तो वह टूट गया । इतना ही नहीं, मेरे संधान करने से भला वह पिनाक कहीं टिक सकता था ? मेरी भुजाओं की शक्ति ही इतनी अधिक है । इक्ष्वाकु-वंशी युद्धों में कभी पशुओं तथा ब्राह्मणों का वध करना नहीं चाहते । आपने जो बातें कहीं, वे सब आपके लिए उचित हैं । आप ब्राह्मण हैं, मैं आपका वध करना नहीं चाहता । यह मेरी गर्दन है, वह आपका परशु है । बिना दया दिखाये जो उचित समझें, करें ।"

रघुराम को क्रोधोद्दीप्त देखकर भार्गव राम घबराकर बोले—"तुम्हारी बातों से मुझे ज्ञात होता है कि तुम्हें इस बात का गर्व है कि मैं ब्राह्मण हूँ और तुम क्षत्रिय हो । तुम ऐसा मत सोचो । मैं अभी अपने प्रताप का तेज तुम्हें दरसाऊँगा । उस जनक राजा के घर में जिस धनुष को तुमने तोड़ा है, उसे तथा इस धनुष को (जो मेरे पास है) पहले देवताओं ने बड़े प्रेम से विश्वकर्मा के द्वारा एक साथ बनवाया था । उनमें से एक उन्होंने त्रिपुर-विजय के लिए जाते समय शिव को दिया । रुद्र ने उसी धनुष से त्रिपुरों को विजित किया ।" उसके पश्चात् वीर-गर्व की मुद्रा धारण करके वे कहने लगे—'मैंने बिना किसी की सहायता के ही त्रिपुरासुरों का वध किया है । मेरे समान शक्तिशाली इस संसार में कौन है ?'

(उनके वचनों को सुनकर) देवता, मुनि, सनकादि, विष्णु के पार्श्वचर कहने लगे कि विष्णु त्रिपुरासुर के वध में शिव के सहायक बने, अन्यथा रुद्र से यह कार्य कैसे सधता ? यह वार्त्ता रुद्रगण ने सुनकर शिव से कह दिया । शिव ने अत्यंत क्रोध करके विष्णु को युद्ध के लिए ललकारा । (यह बात जानकर) सुर, गरुड़ तथा उरगादि देवता ब्रह्मा के पास गये और उनसे परामर्श करने के बाद यह निश्चय किया कि हरि तथा हर की परीक्षा के लिए दोनों में युद्ध होना ही चाहिए । अतः उन्होंने कामुक नामक धनुष विष्णु को दिया । हरि तथा हर दोनों अतुल रीति से युद्ध करने लगे । नारायण द्वारा की गई भयंकर बाण-वर्षा के कारण शिव के धनुष का थोड़ा-सा भाग टूट गया । तब देवताओं ने निर्णय किया कि हरि की शक्ति ही प्रबल है और उन्होंने दोनों का युद्ध बंद करवा दिया।

देवताओं का मनोभाव जानकर शिव ने अपना धनुष देवरात को दिया। उन्होंने वह धनुष जनक को दिया। विष्णु ने अपना धनुष रुचिक को दिया, रुचिक ने जमदग्नि को दिया और जमदग्नि ने कृपा करके मुझे यह धनुष दिया। शिव का धनुष पहले ही थोड़ा-सा टूटा हुआ था, इसलिए तुमने उसे तोड़ा होगा। हे राजन्, मेरे हाथ का यह धनुष उसी धनुष के जोड़ का है। इसपर बाण-संधान करके अपनी शक्ति का परिचय दिये बिना मैं तुम्हें यहाँ से हटने नहीं दूँगा।"

इन वचनों को सुनकर दशरथात्मज अत्यंत क्रुद्ध हुए। उनकी आँखों से अग्नि-कण निकलने लगे। राम ने भार्गव राम से, जो उनकी शक्ति से अनभिज्ञ थे, कहा—"मैं जानता हूँ कि आपमें अतुल बल है। मैं यह भी जानता हूँ कि आपने क्षत्रियों को परास्त करके उनका वध किया है। किन्तु, आप मुझे भी दूसरों की तरह समझकर, निर्भय होकर डींग मार रहे हैं। आपको मेरे भुज-बल का ज्ञान नहीं है। भला, आपकी शक्ति ही कितनी है? आपका यह धनुष क्या चीज है? लाइए, देखूँ तो सही।

इस प्रकार कहकर उन्होंने (परशुराम के हाथ से) धनुष लेकर, उसकी प्रत्यंचा चढ़ा दी और एक उग्र बाण-संधान करके कहा—"मैं आपके पैर काटकर आपका गर्व-भंग करते हुए आपका क्रोध दूर करूँगा।"

परशुराम भयभीत हो गये। उनका घमंड चूर-चूर हो गया। उनकी हेंकड़ी जाती रही। तुरन्त बड़ी नम्रता से प्रार्थनापूर्वक कहने लगे—"हे राजेन्द्र, हे राम, मानवाधीश मुझे क्षमा करो। मेरी रक्षा करो। मैंने सारी पृथ्वी कश्यप को दान में दे दी है। अतः मैं रात के समय इस पृथ्वी पर ठहर नहीं सकता। मुझे रात तक महेन्द्राचल पर पहुँच जाना चाहिए। इसलिए तुम मेरे पैर मत काटो। (तुम चाहे तो) मेरे समस्त संचित पुण्य पर यह बाण छोड़ दो।"

तब राम ने वह बाण परशुराम के (संचित) पुण्य पर छोड़ दिया। देवता, सिद्ध, खेचर आदि जड़वत् खड़े भार्गव राम तथा क्रुद्ध काकुत्स्थ राम को देखते रहे। तब पुष्प-वृष्टि हुई। स्वर्ग में रहनेवाले ब्रह्मादि देवता आनन्दित होकर राम की प्रशंसा करने लगे।

भार्गव राम राम को देखकर मन-ही-मन उनकी महिमा का विचार करके बोले—"हे अनघ, मैंने तुम्हारी शक्ति को देख, मन-ही-मन विचार करके जान लिया है कि तुम विष्णु हो। हे काकुत्स्थ, इसलिए युद्ध में हार जाना मेरे लिए स्वाभाविक ही है। तुम मेरे बल हो, मेरी आत्मा हो, मेरे बंधु-बांधव सब तुम ही हो। हे रामचन्द्र, तुम मेरे कुवचनों का खयाल मत करो। हे रघुकुलाधीश राम, तुम मेरी रक्षा करो।"

इस प्रकार उन्होंने राम की स्तुति की, मन-ही-मन रघुराम की महिमा गुनते हुए उनकी परिक्रमा की और भक्ति से हाथ जोड़कर, अत्यन्त विनय से राम की कृपा प्राप्त करने के उद्देश्य से बोले—"हे राघव, हे जानकीनाथ, अब मुझे जाने की आज्ञा दो। मेरी त्रुटियों का ध्यान न करके उन्हें क्षमा कर दो, मेरी रक्षा करो और स्नेह से मुझे जाने की अनुमति प्रदान करो। मैं एकनिष्ठ होकर, अविचल रीति से नेत्र बंद करके तुम्हारे प्रति तपस्या करूँगा और ज्ञान प्राप्त करूँगा, जिससे सभी मुनि-समाज हर्षित हो जाय।"

इस प्रकार राम की स्तुति करके, बड़े प्रेम से वे वहाँ से प्रस्थान करते हुए बोले-- 'राम, तुम्हारी शक्ति अनुपम है ।' उसके पश्चात् वे महेन्द्राचल पर चले गये । वरुण की प्रार्थना मानकर रघुराम ने उसी क्षण परशुराम का धनुष उन्हें दे दिया ।

तब अनुकूल पवन चलने लगा । सेना में फिर से उत्साह छा गया । नर तथा सुरों की प्रशंसा प्राप्त करते हुए विजय-श्री से युक्त हो राघव ने अपने पिता महाराज दशरथ तथा पुण्यात्मा वसिष्ठ को प्रणाम किया । राजा ने बड़े आनन्द से उन्हें गले से लगाकर आशीर्वाद दिया और बोले—"मेरा पुनर्जन्म-जैसा हुआ है । तुम्हारे जैसा पुत्र प्राप्त करक इस पृथ्वी पर मैं देवराज इन्द्र के समान बन गया । परम पावन परशुराम जब शिव की तरह (भयंकर रूप लेकर) यहाँ आये, तब भय से मेरा सारा शरीर काँपने लगा और मैंने सोचा कि अब कोई उपाय नहीं है । इसलिए मैंने उनसे विनती की । जब उन्होंने मेरे विनीत वचनों को ठुकरा दिया, तब पुत्र-स्नेह से विह्वल होकर मैं चुप हो रहा । (तुम्हारा) उनको जीतना मेरे लिए बड़े आश्चर्य का विषय है । मैंने आज अतुल वैभव प्राप्त किया है । तुम्हारे प्रताप के फलस्वरूप सारा भय दूर हो गया है । मैं इस संसार में यशस्वी हुआ ।"

इस प्रकार, राम का अभिनंदन करने के उपरान्त राजा ने वसिष्ठादि मुनियों और सभी सेनाओं को साथ लिये हुए बड़े आनन्द से अयोध्या की ओर प्रस्थान किया ।

३८. अयोध्या में प्रवेश

मंगल-चिह्नों तथा पुण्यात्माओं के साथ, मंगल-वाद्यों की ध्वनि होते हुए, दशरथ ने अपने पुत्रों-सहित बड़ी प्रसन्नता से अयोध्या में प्रवेश किया । अलंकृत राजमार्ग में, राज-कुल के लोग तथा अन्य मित्र-वर्ग, सौधों पर से उन सुन्दर राजकुमारों को देखकर उनपर पुष्प-वृष्टि करने लगे । भूसुर आशीर्वाद देने लगे । तब राजा ने अत्यन्त सुन्दर ढंग से अलंकृत अंतःपुर में प्रवेश किया । कौसल्या, कैकेयी तथा सुमित्रा आदि रनवास की सभी स्त्रियाँ अत्यन्त हर्ष से उनके स्वागतार्थ आईं । उन्होंने उनपर फूलों कीं वर्षा की और उनकी आरती उतारी । पुत्र तथा पुत्र-वधुओं ने उनके पैर छुए, तो उन्होंने उन्हें गले लगाकर आशीर्वाद दिये । सीता आदि पुत्र-वधुओं का मधुर स्वभाव एवं कुशलता देखकर सभी संतुष्ट हुए ।

दशरथ अपने चारों पुत्रों की सेवाएँ प्राप्त करते हुए, चतुर्भुज विष्णु के समान, चार शृंगोंवाले स्वर्ग के हाथी (ऐरावत) के समान विलसित होते थे और बड़े आनन्द से पुण्य की रक्षा करते हुए राज्य करने लगे । एक दिन दशरथ ने उचित समय देखकर शुभ लक्षणों से संपन्न अपने पुत्र भरत को बुलाकर कहा—"हे वत्स, तुम्हारे मामा कैकय तुम्हें अपने यहाँ ले जाना चाहते हैं, अतः तुम शत्रुघ्न के साथ उनके यहाँ जाओ और उनकी इच्छा पूर्ण करो । हे वत्स, (वहाँ) अपने नाना, नानी, मामा तथा ब्राह्मणों के प्रति भक्ति-युक्त विनय दरसाते रहना । उनकी परिचर्या करते हुए उनसे रथ चलाना, शस्त्र चलाना, वेद-शास्त्र, नीति-शास्त्र तथा अन्य सभी कलाओं को सीखने में सतत तत्पर रहना । एक क्षण भी व्यर्थ न विताना और (समय-समय पर) अपना कुशल-समाचार भेजते रहना।"

राजा का आदेश पाते ही भरत ने माता-पिता तथा रघुराम को विनय से प्रणाम किया और शत्रुघ्न को साथ लेकर अपने मामा के साथ राजगृह की राजधानी के लिए रवाना हुए ।

राजकुमारों ने अपने आगमन का समाचार अपने नाना को भेज दिया। उस राजा ने अपने नगर को फूल-मालाओं, तोरणों तथा पताकाओं से सुंदर ढंग से सजाया। सुगंधित जल से मार्गों का सिंचन करवाया तथा पुष्प एवं धूप आदि से राजमार्ग को सुगंधित किया। (फिर) मंत्रियों, स्त्रियों तथा परिचारकों को साथ लेकर तरह-तरह के वाद्य, नृत्य, गीतों से युक्त हो राजा ने उनकी अगवानी की और वंदी, सूत तथा मागध-जन की स्तुति-वचनों के साथ अपने नाती को बड़े स्नेह से अंतःपुर में ले आये। भरत ने अपने नाना से लेकर क्रमशः सभी गुरुजनों को प्रणाम किया और उनके आशीर्वाद प्राप्त किये।

युवराज राम बड़ी कुशलता तथा एकाग्रता से, अपने पिता की सेवा करते हुए, भी प्रजा को एक समान मानते हुए धर्म-निरत हो, सीता के साथ नव-वैवाहिक जीवन का आनन्द प्राप्त करने लगे। वे अट्टालिकाओं पर, क्रीड़ा-सौधों में, चन्द्रकान्त शिलाओं पर, शीश-महलों में, सोने के शयनागारों में, जूही की पुष्प-शय्याओं पर, चंपक, पूग, नारियल, रसाल, नारंगी आदि वृक्षों से युक्त उपवनों में, क्रीड़ा-पर्वतों पर, सरोवरों में, लतागृहों में, धवल वितानों में, बालुकामय भूमि पर, आमोद-प्रमोद के साथ रहते हुए, समस्त सुख-भोगों का अनुभव करते रहे।

इस प्रकार, आंध्र के भाषा-सम्राट्, काव्य तथा आगमों के ज्ञाता, आचारवान्, अपार ज्ञान-समुद्र, भूलोक के लिए निधि-सम दीखनेवाले गोनबुद्ध राजाने अपने पिताश्रेष्ठ, धैर्यवान्, शत्रुओं के लिए काल-स्वरूप, महापुरुष, श्रेष्ठ शूर, दयालु, गुणवान् विट्ठलराजा के नाम, आचन्द्रार्क विलसित होनेवाली, समस्त भूमंडल में अत्यंत पूज्य, अनुपम, ललित शब्दार्थों से युक्त रस-सिद्ध रामायण के कला एवं भावों से परिपूर्ण बालकांड की रचना की।

आर्षग्रन्थ, आदि काव्य, रसिकों को आनंद देनेवाले तथा शाश्वत, इस पुण्यचरित्र को जो कोई पढ़ेंगे या सुनेंगे, वे सामादि वेद-समूहों का निवास-स्थान, रामनाम चिंता-मणि, समस्त भोग, परहित आचरण, ऊँचे विचार, पूर्ण शक्ति, राज-सुख, विमल यश, चिर सुख, धर्म-निष्ठा, दान में आसक्ति, चिरायु, स्वास्थ्य, समृद्धि आदि अवश्य ही प्राप्त करेंगे। उनके पापों का नाश होगा, पुत्र की प्राप्ति होगी, शत्रुओं का नाश होगा और धन-धान्य की वृद्धि होगी। विना किसी प्रकार के विघ्न-बाधाओं के, उन्हें लावण्यवती धर्म-पत्नी का सह-वास प्राप्त होगा। उनके भाई भी उन्नति प्राप्त करते हुए बड़े स्नेह से हिल-मिलकर रहेंगे। देवता तथा पितर सदा तृप्त रहेंगे। यह रामायण मोक्ष-साधक है, पापहारी है, दिव्य तथा भव्य है। शुभप्रद है। इस रामायण की पूजा नियम-पूर्वक करने से पुण्य प्राप्त होगा, इसकी रचना करनेवालों की शुभ उन्नति होगी और स्वर्ग-लोक का निवास प्राप्त होगा। जबतक कुल पर्वत, समुद्र, रवि-चंद्र, नक्षत्र, वेद, दिशाएँ तथा संसार शोभायमान रहेंगे, तबतक यह कथा शाश्वत आनंद-समूह का निवास-स्थान बनी रहेगी।

: बालकांड सामप्त :

श्रीरंगनाथ रामायण

(अयोध्या कांड)

१· राम-राज्याभिषेक का संकल्प

महाराजा दशरथ अत्यंत शुभप्रद रीति से राज्य का पालन करते थे। एक दिन उन्होंने विचार किया, 'मेरा पुत्र राम, मेरे चारों पुत्रों में शुभ-गुण-संपन्न, अतुल यशस्वी, सदा दीन-दुखियों की चिंता करनेवाला, परहित का विचार करनेवाला, समस्त प्राणियों पर दया दिखानेवाला, चारों पुरुषार्थों की सिद्धि के लिए यत्न करनेवाला, सतत संतुष्ट, प्रशंसा के योग्य गुणों से युक्त उचित क्रोध तथा प्रसाद गुणों से पूर्ण, शासन-शक्ति से समन्वित, गज-तुरग आदि के आरोहण में दक्ष, विजयलक्ष्मी से समन्वित, चतुर, इच्छित कार्यों को अविलंब संपन्न करनेवाला, दीर्घ कोप से रहित, सेवकों पर कृपा रखनेवाला, अतिरथी, ईर्ष्यारहित, करुणा-सिंधु, दूसरा के अच्छे गुणों का आदर करनेवाला, बुद्धि में बृहस्पति को भी परास्त करनेवाला, शुद्ध तेज में सूर्य के सदृश दीखनेवाला, प्रजारंजक, चंद्र के समान शोभायमान, धनुर्वेद तथा वेदशास्त्रों में पारंगत, न्याय के मार्ग से ही धनार्जन करने में निपुण, क्षमा में पृथ्वी के समान और सकल-सद्गुण-संपन्न है। उसका राज-तिलक कर देना चाहिए।' ऐसा विचार करके उन्होंने वसिष्ठादि महामुनि, सुमंत्र आदि सचिव, पास-पड़ोस के राजा, मित्र, बंधु, नागरिक, जनपद के लोग, आश्रित, बुद्धिमान्, सामंत राजा, योद्धा, राजनीतिज्ञ

आदि लोगों को राजसभा में बुला भेजा। उनके समक्ष राजा घन-गंभीर स्वर में बोले--'हमारे पूर्वज इक्ष्वाकु-वंश के राजाओं ने बड़ी उत्तम रीति से इस पृथ्वी पर शासन किया था। उनके समान मैंने भी इस राज्य-भार को बड़ी क्षमता से वहन किया और आपके सहयोग से निजकुल-धर्म में निरत होकर मैंने इसका पालन किया। यह विषय तो आपको ज्ञात ही है। मैं आपसे और एक बात कहना चाहता हूँ। साठ हजार वर्ष तक मैंने इस राज्य का पालन किया, सुंदर श्वेत छत्र की छाया में रहते हुए वृद्ध हो गया हूँ। भूमि-भार की अपेक्षा वृद्धावस्था का भार मुझपर अधिक हो गया है। विकसित कमल के सदृश मेरा शरीर कौमुदी के समान (पांडुर) हो गया है। केवल प्रताप बचा हुआ है। अतः, प्रजा का पालन करने के लिए मैं अपने पुत्रकल्याण राम, देवता-हितकांक्षी धीमान्, इंदीवर-श्याम, कोटिसूर्यप्रभावान्, सौंदर्य में मन्मथ को भी जीतनेवाले, जगदभिराम, राम का राजतिलक कर देना चाहता हूँ और राज-भार से अवकाश लेना चाहता हूँ। क्या आप इसको स्वीकार करेंगे?'

घन-गर्जन को सुनकर हर्षित होनेवाले वन-मयूरों की भाँति सभासदों में अत्यधिक उत्साह छा गया। कल-कल ध्वनि होने लगी। प्रजा में प्रमुख भूसुरों ने परस्पर परामर्श करके सूर्यवंशी राजा से कहा--'हे राजन्, आपके श्रेष्ठवचन सब लोगों के लिए हितकर, हृदयरंजक तथा अभीष्टदायक है। वे सब लोगों के लिए आनंददायक हैं। राजनीतिज्ञ, निर्मल-धर्मनिपुण, जगत् के बंधु, दीनों के लिए कृपा-सिंधु, शांति-संपन्न, सत्यव्रती, सतत विप्र-पूजा-निरत, सच्चरित्रवान्, नीति, प्रीति, निपुणता, क्षमा, ख्याति, ऐश्वर्य, कांति, दांति, शांति आदि कितने ही सद्गुणों से आपसे भी श्रेष्ठ, लोकाभिराम राम को राजा बनाना सर्वथा उचित है। वे तीनों लोकों का शासन करने में समर्थ हैं, फिर इस लोक का शासन करना इनके लिए कौन बड़ी बात है? हमारी भी यही इच्छा है कि आप उनका राज-तलक कर दें।'

राजा ने ये बातें सुनीं, तो उनका हर्ष दूना हो गया। हर्षातिरेक से प्रफुल्लित होकर वे वसिष्ठ तथा वामदेव को देखकर बोले—'हे अनघ, यह मधुमास अभीष्टप्रदायक है। अतः, हम इसी मास में राम को समस्त साम्राज्य-लक्ष्मी का राजा बनायेंगे। आप उचित रीति से उसके लिए आवश्यक वस्तुएँ संचित करावें।' ये बातें सुनकर ऋषियों ने अभिषेकार्थ आवश्यक वस्तुओं का संचय करने के लिए आदमी भेजे।

वसिष्ठ ने राजा की आज्ञा के अनुसार परिचारकों से कहा—'तुम लोग, श्रेष्ठ स्वर्ण, रत्न, समस्त ओषधियाँ, चंदन, धवल पुष्प, मधु, घृत, खील (धान का लावा), नव ललित-वस्त्र, राजा के लिए योग्य श्रेष्ठ रथ, स्वर्ण-रत्नजटित आयुध, शुभ लक्षणों से युक्त भद्रगज, श्वेत अश्व, विजन धवल छत्र, चामर, श्रेष्ठ पताके, एक सौ स्वर्ण कलश, स्वर्ण शृंगों से युक्त श्रेष्ठ वृषभ, व्याघ्र-चर्म और अन्य आवश्यक मंगल-द्रव्य हवन-शाला में ले आओ। नगर के द्वार, राज-पथ तथा सौध-शिखरों का अलंकार करो। समस्त नगर को फूल-मालाओं, पताकाओं तथा तोरणों से सजाओ। कम-से-कम एक लाख भूसुरों (ब्राह्मणों) के भोजन की व्यवस्था करो। दान-दक्षिणा आदि के लिए आवश्यक धन प्रस्तुत रखो।

पूजा तथा उपहारों से नगर-देवताओं की अर्चना करो । नगर के सभी निवासी तथा वेश्याएँ, नगर के दूसरे फाटक के पास ढंग से आकर खड़े रहें । नगर के सभी सेवकों को सेवा के लिए उपस्थित रहने की सूचना दो ।' परिचारकों ने वसिष्ठ के आदेशों का पालन करके उसकी सूचना वसिष्ठ को दी ।

राजा ने सुमंत्र आदि उत्तम सचिवों तथा सगे-संबंधियों को अलग-अलग बुलाकर उन्हें संकल्प कह सुनाया । उन्होंने भी राजा के निश्चय का अनुमोदन किया । तब उन्होंने शीघ्र रघुराम को बुला भेजा और अपनी आँखों से स्नेह-सुधा की वृष्टि करते हुए कहा—'हे वत्स, प्रजा की प्रशंसा प्राप्त करते हुए मैंने दीर्घ काल तक राज्य किया । दान, धर्म तथा यज्ञादि बड़ी निष्ठा से मैंने पूरे किये और अंत में तुम जैसे सद्गुण-संपन्न को पुत्र के रूप में प्राप्त किया । अब मैं राज का भार सँभालने में असमर्थ हो रहा हूँ । इसलिए मैं तुम्हारा राज-तिलक कर दूंगा। परसों ही राज्याभिषेक के लिए उपयुक्त शुभ मुहूर्त्त है । सलिए तुम और सीता भक्ति के साथ उपवास करो ।'

तब राम ने राजा को देखकर विनय तथा साहस के साथ कहा—'हे महाराज, मेरे लिए आपके चरण-कमलों की सेवा से बढ़कर कोई दूसरा राज्य इस संसार में हो नहीं सकता । आप अपने इन विचारों को त्याग दीजिए ।' तब राजा ने कहा—'हे वत्स, तुम पुण्य-चरित्र हो, पुण्य-धनी हो, सूर्यकुल के रत्न हो । तुम्हारे सिवा इस पृथ्वी का पालन करने के लिए योग्य और कौन हो सकता है ? अतः, हे अद्वितीय वीर ! तुम इस राज्य-भार को अवश्य सँभालो ।'

राम ने उनकी आज्ञा के सामने सिर झुकाया और अपने महल में चले गये । राजा भी सामंत राजाओं, नागरिकों तथा अन्य नातेदारों को विदा करके अपने महल में गये । (वहाँ पहुँचकर) उन्होंने सुमंत्र के द्वारा श्रीराम को बुलवाया, उन्हें अपने पास बिठाकर, आनंदाश्रु बहाते हुए बोले—'हे मेरे भाग्य-निधि, हे मेरे पुण्य-स्वरूप, मेरे तप के फल, हे मेरे पुत्र, मैंने कुछ बुरे स्वप्न देखे हैं । मैंने दुष्ट ग्रहों को तथा उल्का-पात होते देखा है । अतः मेरा मन बहुत व्याकुल हो रहा है । अभी तुम इस 'पुण्य-योग' में ही राज-तिलक कर लो । इससे मेरी इच्छा पूर्ण होगी । विलंब क्यों ? तुम्हारी उन्नति का समस्त संसार इच्छुक है ।'

रामचंद्र ने पिता की आज्ञा शिरोधारण करके, उन्हें प्रणाम किया और उनकी आज्ञा लेकर वहाँ से विदा हुए । उन्होंने अपनी माता, सुमित्रा तथा जानकी तथा लक्ष्मण को यह समाचार सुनाकर उन्हें आनंद-सागर में डुबो दिया । उसके पश्चात् पूर्ण-चन्द्रसदृश राम, सीता के साथ प्रफुल्लचित्त से अपने महल में गये ।

इसके पश्चात् राजा ने वसिष्ठ से कहा कि आप राम के उपवास के लिए विधिवत् संकल्प कराइए । तब वसिष्ठ ब्रह्म-रथ पर आरूढ़ हो रामचन्द्र के महल के लिए रवाना हुए और अपने आगमन का समाचार देने के लिए एक शिष्य को पहले ही भेज दिया । उनके तीसरे फाटक तक पहुँचते-पहुँचते राम उनके स्वागतार्थ आ पहुँचे और बड़ी भक्ति से उस पुण्यात्मा को प्रणाम किया और बड़े हर्ष से उन्हें अंतःपुर में ले गये । वहाँ उन्होंने

उस लोक-वंद्य का उचित आदर-सत्कार किया । वसिष्ठ ने पुण्याह-वाचन कराया और पुण्य-संकल्प-पूर्वक उपवास व्रत का प्रारंभ कराया । दक्षिणा के रूप में राम से दस हजार गायें लेकर वसिष्ठ ने सारा समाचार राजा को कह सुनाया और घर चले गये ।

राम ने बड़े प्रसन्नचित्त से सीता के साथ स्नान आदि से निवृत्त होकर विष्णु की प्रीति के लिए हवन किया, हवन-शेष को ग्रहण किया और वसिष्ठ के आदेश के अनुसार विष्णुगृह में कुशासन पर एकनिष्ठ हो विष्णु का ध्यान करते हुए उपवास करते रहे ।

अयोध्या में लोग बड़े हर्ष से आनंदोत्सव की तैयारी में लग गये । कोई मोतियों से चौक पूर रहा था, तो कोई अपने घरों का अलंकार कर रहा था । कोई मणिमय तोरण सजा रहा था, तो कोई फूलों से वितान बना रहा था । कुछ लोग झंडे लगा रहे थे । कुछ जहाँ-तहाँ फूल-मालाएँ लटका रहे थे । कुछ एक दूसरे के अलंकरण में मग्न थे । कहीं लोग दशरथ की प्रशंसा कर रहे थे, तो कहीं इष्ट देवताओं की पूजा कर रहे थे । कुछ दान-पुण्य कर रहे थे और पुण्य कथा-गोष्ठियों में भाग ले रहे थे । जहाँ-तहाँ लोगों की भीड़ एकत्रित होकर राम के गुणों का गान कर रही थी । लोग उनकी सेवा करने के लिए आतुरता प्रकट करते थे और भगवान् से राम को ही राजा बनाने की प्रार्थना कर रहे थे ।

२. मंथरा की कुमंत्रणा

उसी समय कैकेयी की दासी मंथरा ने रनवास की छत पर से नगर का यह आनंदोत्सव देखा । वह सोचने लगी—'क्या कारण है कि आज नगर अद्भुत साज-सज्जा से परिपूर्ण है । सभी नगरवासी सजे-धजे तथा प्रफुल्ल दिखाई पड़ रहे हैं । कौसल्या के अंतःपुर की सभी स्त्रियाँ सुसज्जित होकर आनंद-मग्न हो रही हैं । जाने किस कारण से आज कौसल्या अगणित धन व्यय कर रही है ।' उसने आनंद में मग्न राम की धाय से पूछकर यह जान लिया कि राम के राज-तिलक के लिए ही सारे नगर में उत्सव मनाया जा रहा है । तब उसने निश्चय किया कि बाल्यावस्था में रामने जो मेरी टाँग तोड़ दी थी, उसका बदला लेने का यही अच्छा अवसर है । इस प्रकार सोचकर वह रानी कैकेयी को सारा वृत्तांत सुनाने के लिए उनके महल में गई । उस समय पद्मलोचना कैकेयी अपने क्रीड़ा-घर में हिंडोले पर लेटी थी । मंथरा ने उससे कहा—'उठिए महारानी, आपको किसी बात की चिंता ही नही है ।' यों कहते हुए उसने कैकेयी का हाथ पकड़कर उसे उठाकर बैठाया और त्रिया-चरित्र रचती हुई बोली—'आप तो यह कहते हुए फूली न समाती थीं कि राजा मुझसे ही अधिक प्रेम रखते हैं । वह झूठा सिद्ध हो गया है । महाराजा ने अपनी बड़ी रानी के भय से आपको भ्रम में डालकर, भरत को परदेश भेज दिया है और रघुराम का राज-तिलक करने की बात सोच रहे हैं । यदि यही बात हुई, तो आपका जीवन निरर्थक है । राजाओं का विश्वास कभी नहीं करना चाहिए । आप फूली-फूली क्यों फिरती हैं ? ऐसा क्रूर, वंचक और कपटी पुरुष मैंने कहीं देखा नहीं है । वे कैसे आपके पति हैं ? वे तो आपके क्रूर शत्रु हैं । यदि आप अपनी सौत के पुत्र को समस्त पृथ्वी का राजा बनने देंगी, तो आपको, आपके पुत्र को तथा मुझे, दुःख के सिवा

सुख नहीं मिलेगा । आपकी भलाई का विचार करके आपके पिता ने मुझे भेजा, तो स्नेह के कारण मैं यहाँ आई हूँ । आपकी भलाई मेरी भलाई है, आपका अभाव मेरा अभाव है । मैंने आपकी भलाई की बात आपसे कह दी । आप ऐसा कोई यत्न कीजिए जिससे कि आपका पुत्र इस संसार में जीवित रहे ।'

कैकेयी ने ये बातें सुनीं तो अत्यन्त हर्ष से उसकी प्रशंसा करते हुए उसे गले से लगा लिया और कहा—'हे सखी ! राम के राज-तिलक का शुभ समाचार देकर तुमने मेरे कर्णपुटों में सुधावृष्टि-सी कर दी । तुम्हारे साथ मेरी मित्रता आज सफल हुई । अब तुम अपने वक्र वचनों को छोड़ दो । भरत की अपेक्षा उसका अग्रज मेरे प्रति विशेष श्रद्धा रखता है । तुमने यह शुभ-समाचार मुझे देकर बहुत अच्छा किया ।' इस प्रकार कहकर उसने मंथरा को नवरत्न-खचित अपने सोने का कड़ा उपहार के रूप में दिया । किन्तु, उस कपट स्त्री ने उस कड़े को दूर फेंककर अपने पापपूर्ण हृदय का क्रोध एवं जलन प्रकट करते हुए कहा—'हे कैकेयी । आप मन-ही-मन फूली हुई हैं, मानों कोई उत्तम कार्य हो रहा है । आपने यह उपहार मुझे किसलिए दिया ? आपकी भलाई के लिए जो परामर्श मैंने दिया, उसके विषय में विचार किये विना ही आप ऐसा प्रलाप क्यों करती हैं ? मैं आपके स्वभाव के बारे में क्या कहूँ ? क्या अपना अहित करनेवाला धर्म, कोई धर्म है ? आँखों को हानि पहुँचानेवाला काजल किस काम का ? कहीं इस संसार में ऐसे भी लोग हैं, जो सौत के पुत्रों के हित की कामना करते हैं ? यदि आपकी सौत का पुत्र साम्राज्य का स्वामी हुआ, तो सभी राजा, नातेदार, प्रजा तथा मंत्री राम की सेवा में लगे रहेंगे । गज, तुरंग आदि सेना उनके वश में हो जायगी । उसके पश्चात् दशरथ भी स्वतंत्र नहीं रह सकेंगे । तब शशिमुखी कौसल्या समस्त ऐश्वर्य का उपभोग करेंगी और आप उनकी सौत होती हुई एक पगली की तरह कैसे रह पायेंगी । इतना ही नहीं, आपको उनकी आज्ञा का पालन करते हुए उनकी दासी बनकर रहना पड़ेगा । भरत को उस रघुपति से भय खाते हुए एक भृत्य के समान रहना पड़ेगा । आपकी पुत्रवधू को राज-रानी सीता की सेवा करनी पड़ेगी । यदि यही हुआ, तो आपका जन्म निरर्थक हुआ । इसका उपाय यह है कि राम को वनवास के लिए भिजवा दीजिए और भरत का राज-तिलक करवाइए ।'

तब कैकेयी बोली—'हाय, महाराज मुझे इतनी स्वतंत्रता क्यों देने लगे ? मैं उनसे ऐसी प्रार्थना कैसे करूँ ? करूँ भी तो वे मेरी प्रार्थना क्यों मानेंगे ? यह कैसी बात है ? तुम जो भी कहो, यह काम नहीं होने का । मैं राम से कैसे कहूँ कि तुम वन में जाकर निवास करो ।'

तब मंथरा अपनी पाप-बुद्धि को प्रकट करती हुई बोली—"हे सुन्दरी, क्या आप इस बात को भूल गईं कि शंबरासुर और इंद्र के युद्ध में इंद्र की सहायता करने के लिए अपनी सेनाओं के साथ जाते समय राजा आपको भी अपने साथ ले गये थे । महाराजा दशरथ ने रात्रि के समय उस राक्षस का सामना किया था । राक्षस ने क्रोध में आकर विभिन्न प्रकार की मायाओं से राजा का वध करने का प्रयत्न किया था; किन्तु आपने धवलांग नामक मुनि की कृपा से प्राप्त शक्ति की सहायता से उस राक्षस की मायाओं को

दूर कर दिया था और राजा को उस राक्षस के तेज बाणों से आहत होने से बचाया था। राजा ने संतुष्ट होकर आपको दो वर दिये थे। आपने ही खुद यह सारा वृत्तांत मुझे सुनाया था। भले ही आप इसे भूल जायँ, मैं कैसे भूल सकती हूँ ? अतः आप राजा से दो वर माँगिए--एक तो यह कि कौसल्या का पुत्र राज-पाट छोड़कर चौदह वर्ष तक मुनियों का-सा जीवन व्यतीत करते हुए भयंकर वनों में रहे, और दूसरा, आपका पुत्र इस पृथ्वी पर शासन करे। आपके वर माँगने पर राजा बहुत गिड़गिड़ायेंगे। फिर भी, आप मूर्ख के समान मत रहें। सत्य की दुहाई देकर दृढ़ संकल्प से आप इस कार्य को सिद्ध कर लीजिए। आपके पति असत्य से डरते हैं; उसपर भी आपसे उनका अत्यधिक प्रेम है। इसलिए वे आपके वचनों का अतिक्रमण नहीं करेंगे। अवश्य आपकी बात मान लेंगे।"

इन बातों से प्रसन्न होकर कैकेयी ने मंथरा से कहा–'तुम्हारी जैसी सखी, साथिन और गुणवती को मैंने कहीं नहीं देखा है। हे उत्तम नारी, जिन वरों के संबंध में मैंने तुमसे कहा था, उन्हें तो मैं भूल ही गई थी। तुमने जैसे सोचा, वैसे मेरा पुत्र यदि इस समस्त पृथ्वी का राजा बनेगा, तो मैं तुम्हारे कूबड़ को शुद्ध स्वर्ण से अच्छी तरह सजाऊँगी, तुम्हारे मुख-चन्द्र पर कस्तूरी-तिलक करूँगी और तुम्हारे शरीर पर असंख्य आभूषण पहनाकर तुम्हें अलंकृत करूँगी। हे सखी ! इस प्रकार सज-धजकर तुम मन्मथ की स्त्री के समान विचरोगी, तो सभी दासियाँ तुम्हारी आज्ञा का पालन करती रहेंगी। मैं ऐसी व्यवस्था कर दूंगी।'

स प्रकार, मंथरा से प्रिय वचन कहने के पश्चात् कैकेयी अपने कक्ष में चली गई। उसने अपने समस्त आभूषण उतार दिये, माथे पर कस्तूरी का गाढ़ा लेप लगाया, मलिन वस्त्र पहने और अत्यन्त क्रोध धारण किये फर्श पर पड़ी रही। अपनी मंत्रणा की सफलता से संतुष्ट होनेवाली मंथरा को देखकर कैकेयी बोली—'जबतक राजा राम को बुलाकर उसे वन में जाने की आज्ञा देकर नहीं भेजेंगे और भरत का राज-तिलक नहीं करेंगे, तबतक मैं अन्न-जल नहीं ग्रहण करूँगी। जितने भी स्वर्णाभूषण दें, मैं उन्हें नहीं लूंगी और यहाँ से हटूंगी भी नहीं।' यों कहते हुए वह मन-ही-मन बहुत क्रुद्ध होकर पड़ी रही।

३· कैकेयी के महल में दशरथ का आगमन

राघव के राज-तिलक का समाचार कैकेयी को सुनाने के उद्देश्य से दशरथ उस दिन रात को वहाँ (कैकेयी के महल में) आये। स्वर्ण-रत्नजटित किवाड़ों तथा कक्षों, कस्तूरी, चंदन, कर्पूर की सुगंधि से युक्त तथा नाना रत्नों की कान्ति से सुशोभित सौधों को पार करके वे रंग-महल के निकट पहुँचे। कैकेयी को वहाँ न देखकर दशरथ ने सेवक से पूछा। उसने दुःख प्रकट करते हुए हाथ जोड़कर कहा—'देव ! देवी न जाने किस कारण से कोप-भवन में चली गई हैं।'

ये बातें दशरथ के कानों को धनुष की उग्र टंकार की भांति भयंकर लगीं। उनका मुँह पीला पड़ गया। कैकेयी के प्रति उनका प्रेम द्विगुण हो उठा। धीरे-धीरे उन्होंने कोप-भवन में प्रवेश किया और स्वर्ग-लोक से पृथ्वी पर उतरकर वहाँ लेटी हुई अप्सरा

की भाँति, केशों को फैलाये फर्श पर पड़ी हुई कमलमुखी कैकेयी को देखकर राजा सन्न रह गये । उन्हें बड़ी वेदना का अनुभव हुआ । बड़े दीन भाव से वे उसके निकट पहुँचे; उसके शरीर का स्पर्श करके देखा और काम-पीड़ित होकर उससे प्रार्थना करने लगे-- "हे कमलाक्षी, हे चन्द्रवदनी, हे भ्रमरों के-से केशवाली, इतना कोप क्यों ? अत्यंत मृदु पर्यंक पर लेटनेवाली, तुम्हें लेटने के लिए यह कड़ी भूमि क्यों ? कोमल दुकूलों के रहते, तुमने ऐसे मैले वस्त्र क्यों पहने हैं ? कनकशलाका-सी अपनी देह पर तुमने आभूषण धारण क्यों नहीं किये ? उदधि-सुत चंद्रमा की चाँदनी के समान उज्ज्वल तुम्हारे ललाट पर यह लेप क्यों ? तुम्हारे मन में ऐसा विचार क्यों उत्पन्न हुआ ? प्रतिदिन की भाँति तुम अपने घने तथा नीले केशों में माँग काढ़कर उन्हें सजाती क्यों नहीं ? पद्मराग मणि की लालिमा को परास्त करनेवाले अपने अरुणाधरों को तांबूल-चवण स अलंकृत क्यों नहीं करती ? तुम्हारे मुख-चंद्र में स्वर्ण-पुष्पों के समान प्रफुल्लित होनेवाली मुस्कान क्यों नहीं दीखती ? हे प्रिये, किसलिए तुम मन छोटा किये हुए हो ? इतनी संतप्त क्यों हो ? किसने तुम्हें कटुवचन कहे ? किसने तुम्हारी बातों का विरोध किया ? हे कमलनयनी । उनके नाम बताओ । चाहे वे कोई भा हों, मैं उन्हें दण्ड दूँगा ।" इस प्रकार कहते हुए आँखों में उमड़नेवाले आँसुओं को पोंछते हुए वे बोले--"हे सुन्दरी, एक अनाथ की तरह तुम इस प्रकार भूमि पर क्यों लोट रही हो ? बताओ कि यह काम-पीड़ा है अथवा किसी भयंकर रोग का प्रकोप है ? क्यों संकोच कर रही हो। कहो तो वैद्य आकर तुरंत तुम्हें स्वस्थ करेंगे । हे ललितांगी ! तुम्हारी कोई इच्छा हो तो कहो, मैं उसे पूरा करूँगा । तुम्हारे लिए मैं अवध्य पुण्यात्माओं का भी वध करूँगा । वध्य दुर्जनों को दण्ड देकर तुम्हारी बात रखूँगा । यदि तुम चाहो, तो रंक को राजा बनाऊँगा । तुम्हारे क्रोध का पात्र धनी को भी दरिद्र बनाऊँगा । जब मैं और मेरे परिवार के अन्य लोग तुम्हारी इच्छा के अनुसार चलने के लिए तैयार हैं, तब इस प्रकार क्यों रहती हो ? हे सुन्दरी ! मेरी बात सुनो, किंचित् मुँह उठाकर मेरी ओर देखो, ताकि मुझे शांति मिल जाय । तुम चाहो तो मैं अपने प्राण भी देने को प्रस्तुत हूँ ।"

दशरथ की ये बातें सुनकर कैकेयी प्रसन्न हुई । वह अपने पति का प्रेम जानती ही थी. इसलिए उसने क्षीण स्वर में राजा से कहा--'हे देव ! यदि मुझे यह वचन दें कि आप मेरे कथन के अनुसार कार्य करेंगे, तो मैं अपने मन की इच्छा कहूँगी ।'

राजा ने कहा--'जो धनुर्विद्या में असमान है, जो धर्म का पालन करता है, जिसे बिना देखे मैं एक क्षण भी जी नहीं सकता और जिसको मैं निरंतर भक्ति से भजता रहता हूँ, उस राघव की सौगंध खाकर कहता हूँ कि मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा ।'

कैकेयी ने पवन, अग्नि, शशि तथा नभ को साक्षी के रूप में मानते हुए दशरथ के मन की आतुरता का ज्ञान रखते हुए निष्ठुर होकर कहा--'हे राजन् ! आपने देवासुर-युद्ध में मुझे दो वर दिये थे । कदाचित् आप उन्हें भूल गये हैं । मैं अब उन दोनों वरों को माँगना चाहती हूँ ।'

४. दशरथ से कैकेयी का वर माँगना

'आप रविकुल में उत्पन्न महाराज हैं । उस कुल के प्रथम राजाओं की अपेक्षा आप अधिक पुण्यात्मा हैं। आप असत्य नहीं कहेंगे और अपना वचन भी नहीं छोड़ेंगे । अतः, मुझे वे दोनों वर दीजिए । पहले वर से आप भरत का राज-तिलक कर दीजिए, और दूसरे वर से आप राम को चौदह वर्ष तक तपस्वी के रूप में वन में निवास करने के लिए भेज दीजिए ।'

इन वचनों को सुनते ही राजा स्तंभित रह गये । दुःख से वे तुरंत मूर्च्छित हो गये। बहुत समय के बाद उनकी चेतना लौटी तो वे बोले—"हे कोमलांगी, कैकय-वंश में जन्म लेकर इस प्रकार के वचन तुम्हारे मुँह से कैसे निकले ? राम ने तुम्हें क्या हानि पहुँचाई है कि तुम राम को अरण्य-वास देना चाहती हो ? वह कौसल्या की अपेक्षा तुम्हें अधिक मानता है, तुम्हारी सेवा करता है और तुम्हारा आदेश मानता है । ऐसे सद्गुण-संपन्न राम को निष्ठुर होकर वन जाने का आदेश कैसे देती हो ? तुम्हीं कहो, मैं उसे वन जाने का आदेश कैसे दे सकता हूँ ? ऐसे महापुरुष राम को जंगल भेजने के बाद मेरे प्राण कैसे टिके रहेंगे ? तुम राजपुत्री हो, ऐसा समझकर मैंने तुम्हारा पाणिग्रहण किया था । किंतु तुम काली नागिन सिद्ध हो रही हो । तुम चाहो, तो मैं अपना सारा राज्य और अपने प्राण दे दूँगा, किंतु राम को वन जाने का आदेश न दे सकूँगा । इस वृद्ध, दीन, अनाथ तथा दुर्बल को दुःख से बचाओ । मैं तुम्हारे चरणों को प्रणाम करता हूँ । मैं राम के वियोग में जीवित नहीं रहूँगा । इसलिए इस पाप-कल्पना को छोड़ दो ।"

तब कैकेयी क्रोध में आकर कहने लगीं—"हे राजन् ! आप सत्यनिष्ठ, पराक्रमी और ओजस्वी हैं । ऐसे आपको असत्य कहना क्या शोभा देता है ? आपने इतने सारे देवताओं के समक्ष सौगंध खाई है । आप कैसे राजा हैं ? एक कबूतर के लिए शिवि ने अपने शरीर का सारा मांस काटकर बाज को दे दिया था । क्या आप इसे नहीं जानते ? क्या अलर्क नामक राजा ने बड़े प्रेम से क्षोणिदेव को अपने नेत्र नहीं दिये थे ? क्या उत्तुंग लहरों से युक्त समुद्र, वेला की मर्यादा के भीतर आवद्ध नहीं हुआ ? उनको छोड़ दीजिए । आपके पूर्वज कौतुक के लिए भी, स्वप्न में भी, कभी झूठ नहीं बोले । आप इक्ष्वाकु-वंश के होते हुए भी कौसल्या के भय से असत्य-भाषण करते हैं । असत्यभाषी कहीं पुरुष कहलाने योग्य हैं ? आपने असत्य कहा । अब आप मुझे पा नहीं सकते । मैं अब स्वतंत्र होकर विष-पान करूँगी और मर जाऊँगी । उसके पश्चात् आप भरत का वध करा दीजिए और राम का तिलक करके कौसल्या के साथ सुख से रहिए ।"

इस प्रकार के कैकेयी के कटुवचनों से राजा अत्यंत संतप्त हो गये । उनके मुख की कांति जाती रही, उनका विवेक जाता रहा । वे कैकेयी से बोले—"हे कैकेयी ! तुम्हारे मन में ऐसी पाप-कल्पना और ऐसी मन्द बुद्धि कैसे उत्पन्न हुई ! ज्येष्ठ के रहते हुए कहीं कनिष्ठ अविनीत होकर पृथ्वी का पालन करेगा ? इतना क्यों, तुम्हारा धर्म-निरत भरत तुम्हारे इस पाप-पूर्ण वचन को कैसे स्वीकार करेगा ? हमारे कुल की रीति का विचार करो । शोक-पीड़ित मुझे निष्ठुर होकर मत मारो । सतत गृहिणी-धर्म का पालन करते हुए,

भक्ति और हित का विचार करते हुए सखी की तरह, माता के समान, दासी की भाँति, बहन की-सी, भिन्न-भिन्न प्रकार से मेरी सेवा करनेवाली कौसल्या अपने पुत्र के वियोग में कसे जीवित रह सकेंगी ? सौदामिनी तथा लता-सदृश शरीरवाली वैदेही किस प्रकार यह दुःख सह सकेगी ? सौमित्र तथा उसकी माँ इस दुःखद समाचार को कैसे सहन कर सकेंगे ? राम के राज-तिलक की अपेक्षा करनेवाले नागरिक जब उत्सव मनाने में संलग्न हैं, तब यदि मैं राम को वन भेज दूं, तो क्या वे नागरिक मुझे अपशब्द नहीं कहेंगे ? अपनी इस प्रार्थना से समस्त लोगों का अहित करते हुए तुम कौन-सा सुख भोगोगी ? एक बात और है । हे रमणी ! तुम उसे अवश्य सुनो । कमल के-से नेत्रवाले, मधुर मुस्कान से युक्त मुखवाले, बलिष्ठ, आजानुबाहु, चंद्र-सम सौंदर्यवाले, नीलोत्पल की-सी शरीर-कान्तिवाले, शीतल दृष्टियों को विकीर्ण करनेवाले, सुधा-सम वचन बोलनेवाले, सदा बुधजनों का हित ही सोचनेवाले, सतत मेरी सेवा में संलग्न रहनेवाले, धर्म-रूपी, भार्गव राम को जीतनेवाले, सद्गुण-संपन्न, सौंदर्यवान्, शांतधाम, रवि-सम उज्ज्वल, राम को छोड़कर मैं एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकूंगा । हे कमलाक्षी ! ऐसे राम को क्या तुम नहीं जानतीं ? उस उत्तम पुरुष को वन भेजते ही मेरे प्राण निकल जायेंगे । तुम कितनी पापिन हो ? कितनी कठोर हो ? कितनी मूर्खा हो ? कितनी भयंकर राक्षसी हो ? हे क्रूर नारी ! तुम्हारे मन में इतना कलमष क्यों है ? साध्वी होते हुए मूर्खा की तरह क्यों ऐसी इच्छा करती हो ? तुम प्राणापहरण करनेवाली काल-रात्रि हो, स्त्री नहीं । राम कैसे पैदल वन में जायगा ? सबसे विलग होकर वन में कैसे रहेगा ? सुकोमल शय्या पर शयन करनेवाला पुरुष तृण-शय्या पर किस प्रकार सो सकेगा ? बंधुओं के साथ पंक्ति में बैठकर अपना इच्छित भोजन करनेवाला राम, कंद-मूल का आहार कैसे पसंद करेगा ? हे रमणी ! तुम अपने परम भक्त राम का बुरा मत सोचो । उसे क्षमा करो ।"

इस प्रकार प्रार्थना करते हुए दशरथ बड़े दुःख के साथ उसके पैरों पर गिर पड़े । लेकिन उसने अपने पैर हटाते हुए उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की । तब राजा भूमि पर गिर पड़े और लोटने लगे । किन्तु कैकेयी ने उसकी भी परवाह किये बिना ही राजा दशरथ को देखकर कहा—'हे राजन् ! अब इन कपट-वचनों को बंद कीजिए । अब व्यर्थ के छल-कपट से कोई लाभ नहीं होगा । धर्म को त्यागिए, सत्य को छोड़ दीजिए और अपने निर्मल यश को मिट्टी में मिलाकर असत्य वचन कहिए कि मैंने तुम्हें वर नहीं दिये । उसके बाद आप अपने पुत्र तथा पत्नियों के साथ सुख से रहिए । मैं अपने पुत्र भरत के साथ प्राण तजूंगी ।'

तब राजा बिना प्रत्युत्तर दिये, मन-ही-मन दुःखी होते हुए, सिर झुकाये बैठे रहे । इतने में प्रभात हो गया । मंगल-वाद्य बजने लगे । बन्दी-जन के स्तुति-पाठ होने लगे । राम-सीता ने कर्पूर-चन्दन की सुगंधि से सुवासित जल में स्नान किया, दिव्य वस्त्राभरण पहने और शची-समेत इन्द्र के समान पूर्ण तेजस्वी दिखाई देने लगे । अभिषेक-मण्डप में वसिष्ठ आदि मुनि अरुंधती आदि सुमंगलियाँ, धीमान् मंत्री तथा अन्यान्य चक्रवर्ती राजा विराजमान थे । वसिष्ठ ने पंचपल्लव, पंचवल्कल, पंचामृत, भद्रगज (राजा का हाथी),

आठ कन्याएँ, हेम ऋक्ष, औदुम्बर (गूलर) की पीठिका, गंगादि तीर्थों का जल तथा अन्य मंगल-वस्तुओं को मँगाया, श्रेष्ठ रत्नाभूषणों को वेद-विधि से दान कराया, एक लाख कन्याएँ, एक लाख गायें, एक लाख ऊँट मँगाये; जप आदि कराया, शांति-पाठ कराया, हवन आदि संपन्न किया और शुभ मुहूर्त्त को आसन्न देखकर राजा को लिवा लाने के लिए सुमंत्र को भेजा ।

सुमंत्र कैकेयी के अंतःपुर में गया और शयन-कक्ष के किवाड़ के पास खड़े होकर निवेदन किया —'हे देव ! सूर्योदय हो रहा है । श्रीराम के राज-तिलक का मुहूर्त्त निकट आ रहा है । अतः आप शीघ्र पधारें । हे राजन् ! अभिषेक-मण्डप में मुनि, राजा तथा अन्य महात्मा उपस्थित हैं । पुरजन विबुध तथा नातेदार आपके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं ।'

इन बातों को सुनकर राजा सोचने लगे—'अब तुम भी मुझे दुःख पहुँचाने के लिए आये हो, मानों अब तक मुझे कोई दुःख ही नहीं है ।' यों सोचकर वे चुपचाप लेटे रहे । तब कैकेयी ने सुमंत्र से कहा—'तुम शीघ्र जाकर राम को यहाँ ले आओ । यह राजा का आदेश है ।' तुरंत सुमंत्र वहाँ से चला गया ।

सुमंत्र कैकेयी के अंतःपुर से उस राज-मार्ग से जाने लगा, जो शीतल चंदन-जल से सिंचित आँगन, ध्वजाओं से अलंकृत गृहों, चंदन, अगरु तथा धूप से सुगंधित वायु, मंद पवन से डोलनेवाली पुष्प-मालाओं, प्रत्येक गृहद्वार पर स्थापित कदली-वृक्षों, अतुलित मणि-तोरणों और उत्साह-पूर्ण पुरजनों से भरा हुआ, दुर्गम दीख रहा था । उस मार्ग से होकर वह रामचन्द्र के उस अंतःपुर के पास जा पहुँचा, जो इन्द्र-भवन का भी परिहास करता हुआ कुबेर के महल के समान अतुल वैभव-लक्ष्मी से समन्वित था । वहाँ पहुँचकर उसने राम को अपने आने का समाचार कहला भेजा और उनकी अनुमति पाकर भीतर गया । वहाँ उसने तारा से सुशोभित शशि के समान दीखनेवाले, सीता से युक्त रामचंद्र को देखकर उन्हें प्रणाम किया और कहा—'हे देव ! महाराज दशरथ देवी कैकेयी के गृह में आपको लिवा लाने के लिए मुझे भेजा है ।'

राम मुस्कराते हुए जानकी को वहीं छोड़कर लक्ष्मण के साथ रथ पर आरूढ़ होकर कैकेयी के महल की ओर रवाना हुए । उनके पीछे चतुरंगिणी सेना चली । अतुल वाद्य बजने लगे, वन्दीजन स्तुति-पाठ करने लगे और सुमंगलियाँ पुष्प-वर्षा करने लगीं । नगर-निवासी जयजयकार करने लगे । इस प्रकार, वे बड़े वेग से राजा के अंतःपुर के पास जा पहुँचे, और रथ से उतरकर उन्होंने कैकेयी के भवन में प्रवेश किया ।

५. कैकेयी के भवन में राम का दशरथ से भेंट करना

कैकेयी के भवन में जाकर राम ने देखा कि महाराज दशरथ सिर झुकाय, पांडुर-मुख में सूखनेवाले ओठों को आर्द्र करते हुए, सारा तेज खोकर सतत अश्रु-धारा बहाते हुए, शोक-संतप्त बैठे हैं । राम ने उनके निकट पहुँचकर अत्यंत शंकाकुल-चित्त से उन्हें प्रणाम किया और उसके पश्चात् कैकेयी को प्रणाम किया । फिर, अत्यंत संभ्रमित तथा व्याकुल होकर, भय तथा विह्वलता से रामचंद्र बोले—'हे देवी, यह क्या बात है कि महाराज

मेरी ओर देखते भी नहीं हैं । मेरा क्या अपराध है ? यह खिन्नता, यह चिंता और दुःख राजा को किस कारण से हो रहे हैं ?' तब कैकेयी ने कहा—'हे राम, यदि तुम मानोगे, तो मैं राजा की इच्छा तुम्हें बतलाऊँ ।' रघुराम ने कहा—'हे माता, आप कृपया विस्तार से सुनाइए कि वह कौन-सी बात है ? मैं पिता के आदेश से भयंकर अग्नि-ज्वालाओं में या विष के समुद्र में कूद सकता हूँ या विष भी खा सकता हूँ । इसको सत्य मानें और विना संकोच के कहें ।'

तब कैकेयी राम को देखकर किंचित् भी ममता-मोह के विना बोली—'देवासुर-संग्राम में राजा ने दया करके मुझे दो वर दिये थे । अब मैंने उन दोनों वरों को देने की प्रार्थना की । एक वर से मैंने अपने पुत्र भरत के लिए राज्य माँगा और दूसरे से तुम्हें चौदह वर्ष तक वन-वास देने की प्रार्थना की । राजा ने वर देना तो स्वीकार किया; किन्तु तुम्हें अपना आदेश सुनाने में हिचकते हैं । यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारे पिता को असत्य-भाषण का दोष न लगे, तो तुम तुरंत राजकुमार का वेष त्याग दो और वल्कल तथा जटाएँ धारण करके तपस्वी के रूप में वनवास के लिए चले जाओ ।'

इन बातों को सुनकर राम के मुखपर मंद हँसी लास्य करने लगी । उनके वचनों म किसी भी प्रकार का मालिन्य नहीं आया । दया, त्याग और गरिमा दिखाते हुए परम पुण्यात्मा रामचंद्र बोले—'हे माता, इस प्रकार की आज्ञा देनेवाले सूर्यवंश के तिलक मेरे पिता हैं और राज्य का अधिकारी होगा मेरा भाई । फिर, आपकी इच्छा में बाधा क्यों पड़े ? हाय ! आप कितनी भोली हैं ! इस छोटी-सी बात के लिए सूर्यवंशी राजा को मन में चिंतित होने की क्या आवश्यकता है ? अपने पिता की आज्ञा का पालन नहीं करने-वाला कहीं पुत्र कहलाने योग्य है ? वह तो एक ज्ञाति-विरोधी है । मे और मेरे भाई में कोई भेद नहीं है । इस पृथ्वी का भार वहन करने के लिए जिस पुण्यात्मा को आपने नियत किया है, उस भरत के लिए मैं अपने प्राण भी देने के लिए प्रस्तुत हूँ, इस राज्य की क्या गिनती !'

राम की बातों से अत्यंत हर्षित होकर कैकेयी बोली—'हे राजकुमार, तब मैं भरत को बुला भेजूँगी । तुम तुरंत वन के लिए रवाना हो जाओ । यहाँ से तुम्हारे जाने तक महाराज न भोजन करेंगे, न बोलेंगे, न उठेंगे ही । वे इसी प्रकार पड़े रहेंगे ।'

कैकेयी के इस प्रकार कहते ही राजा ने कहा—'हाय, ऐसी कटूक्तियाँ भी क्या उचित हैं ? और वे तुरंत मूर्च्छित हो गये । तब राम ने तुरंत उन्हें पकड़ लिया और शैत्योपचारों के उपरान्त, जब उनकी चेतना लौटी, तब उन्हें अच्छी तरह समझाते हुए कैकेयी की ओर देखकर अत्यंत हर्ष से बोले—'आपको इतनी चिंता क्यों हो रही है ? मेरे लिए यह कौन बड़ा काम है ? आप मन में किसी प्रकार का संदेह मत कीजिए । मैं तो विवेक के साथ धर्म का पालन करूँगा, कभी धर्म का उल्लंघन नहीं करूँगा । राजा की आज्ञा यदि मुझे नहीं मिलेगी, तो मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा । यह सच मानिए । शीघ्रगामी अश्वारोही दूतों को भेजकर इसी शुभ मुहूर्त्त में भरत को बुलवाकर उसका राज-तिलक कर दीजिए । मैं अभी वन के लिए प्रस्थान करता हूँ ।'

इस प्रकार कहने के उपरान्त प्रफुल्ल-मुखचंद्र से राम ने कैकेयी की परिक्रमा की और कहा—'मैं अपनी माता, माता सुमित्रा तथा जानकी को यह समाचार सुनाऊँगा और उन्हें सांत्वना देकर अवश्य वन में चला जाऊँगा । आप मन में संदेह न कीजिए ।' यों कहकर उन्होंने राजा तथा कैकेयी को प्रणाम किया और लक्ष्मण के साथ वहाँ से चल पड़े ।

राम ने राज-तिलक के लिए संचित सभी मंगल-द्रव्यों की परिक्रमा करके उनको प्रणाम किया । अचल तथा विकार-रहित चित्त से वे अपनी माता को यह समाचार सुनाने के लिए चले । तबतक अन्तःपुर में यह समाचार फैल गया कि लोकवंद्य राम राज-पाट छोड़कर वन जा रहे हैं । दशरथ की अन्य स्त्रियाँ आपस में कहने लगीं—'राम अपनी माता कौसल्या के प्रति जो भक्ति दिखाते हैं, वही भक्ति हमारे प्रति भी रखते हैं । ऐसे सद्‌गुणालंकार, महान् उदार-चेता, हिमाचल के समान धीर, उस महान् वीर पुत्र-रत्न को हाय ! राजा ने वनवास की आज्ञा कैसे दी ? पागल की तरह राम को वनवास के दुःखों में भेजना कहाँ तक उचित है ।' इस प्रकार, महाराजा की निंदा करते हुए सभी स्त्रियाँ शोक करने लगीं ।

उसी समय राम ने कौसल्या के अंतःपुर में प्रवेश किया । उससे पूर्व कौसल्या ने अभिषेक के निर्विघ्न संपन्न होने के निमित्त जप, शांति, हवन आदि को एकनिष्ठ होकर पूरा किया था और भक्ति-युक्त हो जनार्दन से प्रार्थना कर रही थीं । राम के आगमन से वे अत्यंत प्रसन्न हुईं । सुमंगलियों के साथ फूल लिये हुए वे सामने आईं और विधिवत् मंगलाचार आदि पूरे किये । रामचंद्र ने उनके चरण छुए। उन्होंने राम को उठाकर गले से लगा लिया और आशीर्वाद दिया—'हे पुत्र, तुम चिरायु, सुयश एवं राज्य-लाभ करो ।'

६. कौसल्या का दुःख

अपनी माता कौसल्या को देखकर राम अत्यंत दीन होकर बोले—'हे माता, आपको, माता सुमित्रा को तथा मैथिली को भय उत्पन्न करनेवाली एक घटना घटी है । मैं उसे आपको सुनाऊँगा । आप धैर्य के साथ सुनिए । किसी समय युद्ध में माता कैकेयी ने महाराज से दो वर प्राप्त किये थे। उन्होंने अभी वे दोनों वर राजा से माँगे हैं । एक वर से उन्होंने अपने पुत्र का राज-तिलक माँगा और दूसरे से मेरा वन-वास चाहा है। इस पर महाराजा अत्यंत शोक-संतप्त हो गये हैं । पिता के वचनों की रक्षा के लिए मैंने चौदह वर्षों तक वन में रहने का निश्चय किया है ।'

इन बातों को सुनकर कौसल्या मन-ही-मन दुःखी होकर, स्तंभित हो गईं । उनके मुख की कान्ति उतर गई और गला रुँध गया । वे काष्ठ की तरह चेष्टाहीन हो गईं और चीत्कार करती हुईं जड़ से उखाड़ी हुई लता के समान मूच्छित होकर गिर पड़ीं । राम ने घबड़ाकर बड़ी भक्ति से उन्हें उठाया, उनके शरीर पर लगी हुई धूल पोंछी और उन्हें एक सुन्दर आसन पर बिठाया । इसके पश्चात् लक्ष्मण और राम ने उनका उचित उपचार किया । जब उनकी चेतना लौट आई, तब वे अपने ओठों को आर्द्र करती हुई कहने लगी—"हे अनघ राघव ! तुम्हें वन में रहने का आदेश देना, मेरे कानों को अत्यंत

विचित्र-सा मालूम होता है। महाराज तुम्हें बुलाकर इस प्रकार का आदेश कैसे दे सके? भले ही भरत का राज-तिलक करके उसे पृथ्वी का स्वामी बना दें; किन्तु काकुत्स्थ-वंशी राजा को तुम्हें वन भेजने की आवश्यकता क्यों हुई? न वे विवेक-शून्य हैं, न अधम हैं। फिर सौत की बातों में आना उन्हें कैसे शोभा देता है? क्या हितैषी मंत्री तथा कुल-गुरु वसिष्ठ ने भी तुम्हारे हित का विचार करके यह नहीं कहा कि अमुक कार्य धर्म-संगत है और अमुक कार्य उचित है? मेरे प्राणनाथ ने इतना बड़ा अपराध कभी नहीं किया था और कैकेयी ने कभी ऐसा पाप नहीं किया। तुम्हें देखकर वन जाने का आदेश देने के के लिए कैकेयी का मुख कैसे खुला? हे राम, प्रेम से प्राण भी माँग लेनेवाली, महाराज की प्रेम-पात्री कैकेयी के गर्भ से जन्म लेकर, पृथ्वी का पालन करने का सौभाग्य प्राप्त न करके तुमने मेरे गर्भ से क्यों जन्म लिया? यदि तुम मेरे गर्भ से जन्म नहीं लेते, तो तुम पर यह विपत्ति क्यों आती? हाय! पुत्रहीन वंध्या की अपेक्षा भी मुझे आज अधिक दुःख मिल रहा है। दीर्घ काल तक संतानहीना होकर रही और उसके पश्चात् ईश्वर की कृपा से तुम्हें पुत्र के रूप में प्राप्त किया, तो मन को बड़ी शांति मिली, किन्तु मेरा सारा तप आज व्यर्थ हो गया है। हे राजकुमार, जिस दिन तुम मुझे छोड़कर साहस के साथ घोर वन में चले जाओगे, उस दिन मेरे लिए मृत्यु को छोड़कर अन्य कोई शरण नहीं दीखती। तुम मुझे छोड़कर कैसे वन में जाओगे? मैं कैसे अपने दुःख को शान्त कर सकूँगी? पच्चीस वर्ष तक मैंने तुम्हें बड़े प्रेम से पाला-पोसा। यह सारा संसार जानता है। तुम मुझे इस दशा में छोड़कर कैसे जाओगे? हे पुत्र, मैंने तुम्हारे लिए जो विविध व्रत रखे तथा विविध दान दिये, वे सब ऊसर भूमि में डाले गये बीजों की तरह निष्फल हो गये। यदि भरत राजा बन जाय, तो परिजन क्रूर कैकेयी के भय से मेरी सेवा करने के लिए कैसे आयेंगे? राजा के प्रेम से वंचित तथा सब प्रकार के राजभोगों तथा वैभवों से रहित होकर मैं अपनी सौतों के मध्य कौन-सा मुँह लेकर रहूँगी? कैकेयी का अधिकार मैं कैसे सहूँगी? मैं नहीं जानती थी कि सारा कार्य इस प्रकार चौपट हो जायगा। इस अशुभ समाचार के सुनने के पहले ही मैं क्यों नहीं मर गई? हे सूर्यवंश-तिलक, भले ही कैकेयी सारा राज्य लेकर अपने पुत्र को उसका अधिकारी बनाकर उसे भोग ले। हे तात, तुम वनों में क्यों जाओगे? तुम मेरे पास वैसे ही रहो। तुम्हारी बाल्यावस्था में वसिष्ठ आदि मुनियों ने तुम्हारे चरण-कमलों में, पद्म, हल, वज्र, ध्वजा, कलश आदि चिह्नों को देखकर कहा था कि यह बालक समस्त विश्व का पालन करेगा। आज कैकेयी ने उनके वचन को असत्य सिद्ध कर दिया।"

७. लक्ष्मण का क्रोध और राम का समझाना

इस प्रकार विविध प्रकार से विलाप करनेवाली कौसल्या को देखकर लक्ष्मण दुःख और क्रोध से व्याकुल हो गये। उनका मुख तमतमाने लगा और उनकी भौहें तन गईं। क्रोधाग्नि में जलते हुए तलवार चमकाते हुए वे राम तथा राम की माता से बोले—"हाय! पौरुष तथा अभिमान को तिलांजलि देकर, क्षत्रिय-धर्म को त्यागकर, तेजोहत हो, ऐसे दीन वचन आप क्यों कह रहे हैं? मंदमति पिता का आदेश आपको ठुकरा देना चाहिए।

कामातुर, पापकर्मी तथा वृद्ध का इतना आदर करने की क्या आवश्यकता है ? जब कैकेयी को दिये हुए वचन का भंग करना वे नहीं चाहते, तो आपको राज्य देने का वचन देकर वे कैसे मुकर रहे हैं ? वसिष्ठ आदि सब सज्जनों के समक्ष ही तो उन्होंने कहा कि मैं राम को राज्य दूंगा । क्या इस वचन का पालन नहीं करना चाहिए । सबसे पहले यह असत्य हुआ कि नहीं ? कहाँ के दशरथ और कहाँ के वर ? कौन भरत और कौन कैकेयी ? यदि मैं हाथ में धनुष लूं, तो मेरा सामना करने की क्षमता किसमें है ? भरत से लेकर मैं सभी शत्रुओं का वध करके इस नगर को मिट्टी में मिला दूंगा। हरि, हर, ब्रह्मा आदि युद्ध में मेरा सामना करें, तो भी मैं उनसे युद्ध करके उनपर विजय प्राप्त करूँगा। सुंदर केयूर-कंकणों से अलंकृत तथा चंदन-चर्चित अपने इन हाथों से मैं आपका राज-तिलक करूँगा और सभी शत्रुओं का वध कर दूंगा । मेरे जैसे सेवक के रहते हुए आपको सारा साम्राज्य त्यागने की क्या आवश्यकता है ? वन जाने का विचार छोड़ दीजिए और अपनी शक्ति के प्रताप से राज्य ग्रहण करके प्रजा का पालन कीजिए और माता कौसल्या को प्रसन्न कीजिए ।"

राघव ने अपने अनुज की बातों पर मन-ही-मन विचार करके बड़े स्नेह से उन्हें देखकर कहा—'हे लक्ष्मण ! शौर्य-प्रदर्शन के लिए यह उचित अवसर नहीं है । इससे हमारा कल्याण नहीं होगा । अब हमें राज्य-पालन करना नहीं है । हमें दूसरे काम करने हैं । शौर्य यहाँ दिखाने की क्या आवश्यकता है ? उसे तो शत्रुओं के प्रति दिखाना चाहिए ।'

तब कौसल्या ने राम से कहा—'हे वत्स ! तुम अपने अनुज की इन विमल वचनों को सुनो । शौर्य का आश्रय लो और आर्य-सम्मत रीति से राज्य का पालन करते हुए प्रजा की प्रशंसा प्राप्त करो । क्या तुम्हें यह उचित है कि मेरी सौत की बातों के कारण राज्य छोड़कर वन में निवास करो । मेरे यहाँ रहो, और मेरी सेवा-शुश्रूषा करो । इससे बढ़कर इस पृथ्वी पर तुम्हारा कौन-सा धर्म है ? तुम पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए उद्यत हो, पर क्या, तुम्हें माता की आज्ञा कम मान्य हो गई है ?'

तब दुःखित होनेवाली माता को ढाढ़स बँधाते हुए राम उनसे बोले—"हे माता ! आप कैसी बातें कर रही हैं ? आप इतनी दुःखी क्यों हो रही हैं ? क्या अपने पिता की आज्ञा मानकर भार्गव ने अपनी माता का वध नहीं किया था ? क्या पिता की आज्ञा पाते ही कुंडिन ने एक गाय का वध नहीं किया था ? पुरूरवा ने अपना यौवन अपने पिता को देकर बुढ़ापा ग्रहण नहीं किया था ? अपने पिता के आदेश से क्या सगर के पुत्रों ने समुद्र-तल को खोद नहीं डाला था ? तब पिता की आज्ञा से वन में निवास करना मेरे लिए कौन बड़ा काम है ? आपके पति के वचन का पालन करना आपके और मेरे लिए परम धर्म है । लक्ष्मण तो अभी बच्चा है, वह वीरों के समान सोचने के सिवा दूसरा कुछ नहीं जानता ।" इस प्रकार कहकर वे हँसते हुए अपने अनुज से बोले—"हे लक्ष्मण, तुम्हारे भुजबल, पराक्रम, धनुर्विद्या, बुद्धि तथा पौरुष ये सब किस काम के हैं ? मेरे प्रति श्रद्धा से प्रेरित होकर तुम कितना दुस्साहस करना चाहते हो ? तुमने मुझे कैसा उपदेश दिया ? माता ने वन जाने का आदेश दिया है और राजा ने ममता त्याग करके वन जाने की आज्ञा

दी है । मेरा भाई इस समस्त राज्य पर शासन करनेवाला है । अब तुम किसपर क्रोध करते हो ? ऐसे समय में अपने बल का घमंड दिखाना क्या तुम्हें उचित है ? पिता की आज्ञा का पालन करने से बढ़कर दूसरा धर्म कौन-सा है ? पिता की आज्ञा का उल्लंघन करने से बढ़कर दूसरा पाप कौन-सा है ? चाहे तुम किसी भी रीति से विचार करो, राजा की आज्ञा का पालन करना मेरे लिए, तुम्हारे लिए और माताओं के लिए धर्म-संगत है । उनकी आज्ञा के अनुसार मुझ वन जानेवाले को मत रोको । परम पवित्र रविकुल के वंशजों के चरित्र का तो तुम्हें विचार करना चाहिए । जो होना है, वह होकर ही रहेगा । विधि का लेख कौन मिटा सकता है ?" इन बातों को सुनकर लक्ष्मण ने अपना क्रोध शान्त कर लिया और रामचंद्र का रुख देखकर भीत हो चुप रह गये ।

८. राम का कौसल्या को धैर्य देना

सती कौसल्या अपने पुत्र का त्याग देखकर अत्यंत दुःखी हुईं और षोडश कलाओं से युक्त, पूर्णचंद्र के सदृश, प्रकाशमान राम का मुख देखकर बोलीं—'हे मेरे कुल-दीपक, हे मेरे प्रिय पुत्र, हे मेरे तात, वत्स (बछड़ा) को खोनेवाली गाय की तरह मैं तुम्हें छोड़कर चौदह साल तक यहाँ नहीं रह सकूँगी । मैं भी तुम्हारे साथ घने वन में आकर रहूँगी ।' इस प्रकार विलाप करती हुई माता को सांत्वना देते हुए बड़े अनुनय-विनय से तथा अत्यंत दीन भाव से राम बोले--

"हे माता, ऐसा कहना क्या आपको उचित है ? विचार करके देखिए । स्त्री के लिए पति ही प्राण है, नातेदार है और देवता है । ऐसे पति को त्यागकर मेरे साथ जाने के लिए जो आप कहती हैं, क्या यह आपको उचित है ? यदि महाराज ने राज-पाट भरत को देने की आज्ञा दी है तो इसमें दोष क्या है ? राजा ने जो वर देने का वचन दिया था, उन्हें माँगना क्या कैकेयी की भूल है ? असत्य कहने से डरकर राजा का वर देना क्या अनुचित है ? अपने पिता की आज्ञा मानकर मेरा इस प्रकार वन जाने के लिए प्रस्तुत होना क्या दोष है ? सत्य तो यह है कि पति के आज्ञा-पालन में बाधा देना आपकी भूल कही जायगी । मेरे वन जाने के पश्चात् आपको दीन तथा दुःखी राजा की सतत सेवा-परिचर्या करते हुए, उनके मन का दुःख दूर करते रहना चाहिए। पाप-रहित तथा बंधु-प्रेमी भरत मुझसे अधिक भक्ति-युक्त होकर आपकी सेवा करेगा । आप शोक न करें । स्वप्न में भी महाराज दशरथ के संबंध में कटु विचार मत लाइए । आप कैकेयी के साथ स्नेहयुक्त होकर रहिए । मेरे कुशल का विचार करके आप मुझे वन जाने की आज्ञा दीजिए ।"

इस प्रकार कहते हुए राम ने माता को प्रणाम किया । कौसल्या ने राम को हृदय से लगा लिया । उनकी आँखों से दुःख के अश्रु उमड़-उमड़कर राम की पीठ पर गिरने लगे । उनकी पीठ पर हाथ फेरते हुए वे गद्गद स्वर से बोलीं—'हाय, तुम वन में जाओगे ?' इसके पश्चात् उन्होंने किंचित् धैर्य धारण करके अपने कपोलों पर झरनेवाले अश्रुओं को पोंछ लिया । पवित्र जल से हाथ तथा मुँह का प्रक्षालन किया और पुण्याह-वाचन कराया और कहा—'सुर, खेचर, यति, गिरि, वृक्ष, वेद, शान्ति, दान्ति, नदी, निधि, समुद्र आकाश, जल,

वायु, पृथ्वी, अग्नि, दिक्पाल, दश दिशाएँ, सूर्य-चन्द्र, तथा ब्रह्मा आदि सभी सदा तुम्हारा कल्याण करते रहें ।' इस प्रकार स्वस्ति-वचन कहकर कौसल्या ने देवताओं की पूजा करके राम के दाहिने हाथ में रक्षा-कंकण बाँधा और कहा—'वृत्रासुर का वध करने के लिए जानेवाले इन्द्र को देवताओं ने जो कल्याणप्रद कामनाएँ की थीं, वे सब तुम्हें प्राप्त हों । स्वर्ग से अमृत लाने के लिए जानेवाले गरुड़ को विनता ने जो शुभ आशीर्वाद दिये थे, हे राम, वे सब तुम्हें प्राप्त हों ।'

इस प्रकार, आशीर्वाद देकर कौसल्या ने राम को हृदय से लगा लिया, सिर सूँघा और उन्हें जाने की अनुमति दी । तब माता का चरण-स्पर्श करके वे अनुज के साथ वहाँ से अपने अंतःपुर के लिए श्वेत छत्र-चामर-रहित हो पैदल रवाना हुए । अभिषेक में विघ्न पड़ा हुआ जानकर राज-सभा के सभासद, सामंत राजा, मंत्री तथा नगर-निवासी अत्यंत दुःखी होने लगे ।

९. राम का अभिषेक-भंग का वृत्तांत सीता को सुनाना

रामचंद्र अपने अंतःपुर में पहुँच गये, तो सीता अपनी सहेलियों के साथ उनकी अगवानी के लिए आईं । सीता को देखकर राम का मुख मलिन हो गया । यह देखकर सीता का मुख भी मलिन पड़ गया । उन्होंने कहा—"हे प्राणनाथ, यह कैसी विचित्र बात है कि आपका मुख-कमल आज मुरझाया हुआ है ? क्या राजा ने पुण्य-योग का मुहूर्त्त बीतता जानकर आपका राज-तिलक कर दिया ? चंद्र-मंडल की समता करनेवाला श्वेत छत्र आपके मुख-कुमुद पर क्यों छाया नहीं कर रहा है ? क्या कारण है कि चामरधारी आपके पार्श्व-भाग में नहीं है ? भद्रगज क्यों नहीं दीख रहा है ? आपके सिर पर मंत्राक्षत क्यों नहीं दीख रहे हैं ? नगर-जन आपकी सेवा में प्रवृत्त हो क्यों नहीं आ रहे हैं ? दुंदुभी तथा पटह-नाद क्यों नहीं सुनाई पड़ रहे हैं ? बंदी-मागधों के स्तुति-पाठ कहाँ ? हे प्रभु ! आज तो राज-तिलक का दिन है । आपमें कोई राज-चिह्न नहीं दीख रहा है ? क्या कारण है कि सौमित्र का वदन प्रफुल्ल नहीं है ? इन सबका क्या कारण है, आप कृपया बतलाइए ।"

सीता के ये भोले वचन सुनकर राम मन-ही-मन दुःखी हुए और उस मानिनी सीता को देखकर बोले—"भला मुनियों को राज-चिह्नों से क्या मतलब ? सुनो, इसका कारण बताता हूँ । माता कैकेयी ने पहले मेरे पिताजी की सेवा करके उनसे जो वर प्राप्त किये थे, उन्हें आज माँग लिया है । एक वर से उन्होंने भरत का राज-तिलक और दूसरे वर से मेरा वन-वास माँगा है । अतः राजा ने राज्य का पालन करने के लिए मेरे अनुज का राज-तिलक करने का वचन दिया है और मुझे पिता की आज्ञा से चौदह साल तक वन में रहना है । माता-पिता की आज्ञा का पालन करनेवाले वीर के हाथ में ही ऐश्वर्य, यश, नाना लोक और नाना पुण्य रहेंगे । इसलिए हे कमललोचनी ! जबतक मैं महाराज की आज्ञा के अनुसार वनवास पूरा करके न लौटूं, तबतक तुम दुःख त्याग कर गुरुजनों की भक्तिपूर्वक परिचर्या करती रहो । मन-ही-मन मेरे कुशल की कामना करती रहो और उत्तम आचरण से अपने धर्म का पालन करती हुई माताओं के पास रहो ।"

इन बातों को सुनकर जानकी संभ्रम-चित्त हो उठीं । प्रचंड वायु से कंपायमान होनेवाली कदली के समान वह थरथर काँपने लगीं और अत्यधिक दुःख से कांतिहीन होकर गद्‌गद स्वर में बोलीं—'हे प्राणेश, यदि यह सच है, तो मैं भी अवश्य इसी क्षण आपके साथ चलूँगी । मैं आपके वियोग में जीवित नहीं रह सकूँगी । मेरे प्राण मुझमें नहीं रहेंगे । आप मुझे अपने साथ अवश्य ले चलिए ।'

राघव बोले—'हे कमलाक्षी, यह कैसे संभव है कि तुम जंगलों में कंद-मूल खाते, पथरीले रास्तों में पैदल चलते, वल्कल पहने, कड़ी धूप तथा प्रचंड वायु को सहते तथा कड़ी भूमि पर शयन करत हुए पर्णशाला में जीवन बिताओ । तुम तो कोमलांगी हो और कष्ट का नाम तक नहीं जानतीं । ऐसी कोमलांगी तुम आश्चर्यजनक हाथी, बाघ, रीछ, भेड़िये, हिरन, साँप तथा लाल चींटियों से पूर्ण गिरि, गुफा, तथा घाटियों में कैसे रह सकोगी ? भयावने लता-मार्गों पर, अत्यंत दुर्गम, लता, कंटक, वृक्षों से भरे हुए पथों से युक्त भयंकर वनों में कैसे चल सकोगी ? हे सीते ! इसलिए तुम माता कौसल्या के पास रहो । उनकी इच्छा के अनुकूल तुम उनकी सेवा करती रहो । गृह-देवताओं की पूजा करती हुई मन में मेरी भक्ति करती रहो । दिन-रात पिता की सेवा में निरत भरत माता के समान तुम्हारी सेवा करता रहेगा । हे अबले, कभी उसे कटु वचन मत कहना । हे मुग्धे, चौदह वर्ष पूरा करके मैं शीघ्र ही लौट आऊँगा । चिंता मत करो ।'

राम के इन वचनों को सुनकर सीता शोक-संतप्त होकर बोली—'हे नाथ, पति का भाग्य ही सती स्त्रियों की रक्षा करने में समर्थ है । आप मेरे प्रभु हैं, मेरे देव हैं तथा मेरी पुण्य गति हैं । श्रेष्ठ स्वर्ग-सुख का उपभोग करने की अपेक्षा निश्चल मन से, अत्यंत भक्ति-युक्त होकर आपके चरणारविन्दों की सेवा करना ही मेरे लिए सुखदायक है । हे राजन्, विष्णु-सदृश जगदेकवीर आपकी रक्षा में रहते हुए, इन्द्र भी मेरी तरफ सिर उठाकर देख नहीं सकेगा । मैं आपके साथ वल्कल धारण करके पैदल चलूँगी और पर्वत तथा नदी-सरोवरों को देखूँगी । चाहे कुछ भी हो, आप मुझे अपने साथ अवश्य ले चलिए ।'

राम बोले—'हे वनजाक्षी, अविरल दुर्गम वनवास की इच्छा तुम क्यों करती हो ? मैं सतत तुम्हारी याद मन में रखते हुए राजा की आज्ञा का पालन करके लौट आऊँगा । कहाँ तुम और कहाँ घोर वन ! कौतुक से विहार करने के लिए सर्वथा अनुपयुक्त घने वन के दुर्गम तथा कुटिल मार्गों में तुम्हें ले जाना कहाँ तक उचित है ? अत्यंत क्रूर भेड़िया, बाघ, रीछ, सिंह आदि मृगों के हुंकार तथा उलूक, कनकौआ एवं झिल्ली की कर्कश झंकार से तुम अवश्य भीत हो जाओगी । इसलिए तुम्हारा वहाँ जाना ठीक नहीं है ।'

इन वचनों को सुनकर सीता बोली—'हे नाथ, आपके रहते मुझे किसी प्रकार का भय नहीं होगा । वेदविदों (ज्योतिषियों) ने कहा है कि मेरे भाग्य में वनवास लिखा है । इसलिए हे भानुकुलाधीश, मैं आपके चरणों की सेवा करती हुई आपके साथ ही रहूँगी । मुझे मत छोड़िए । मेरी भक्ति का विचार कीजिए ।'

यों कहती हुई वे राम के चरणों पर गिरकर विलाप करने लगीं। फिर भी राम को विचलित होते नहीं देख अत्यंत दीन स्वर में वे बोलीं—"हे नाथ यदि जान-बूझकर, या अनजान में मैंने कोई अपराध किया हो, तो आप मुझे क्षमा कर दीजिए। कर्कश शिलाओं से आकीर्ण प्रदेशों में भी आपकी सेवा करते हुए मुझे कोई थकावट नहीं होगी। आप जो कंद-मूल कृपा-पूर्वक देंगे, वे मेरे लिए अमृत-तुल्य होंगे। आप ही मेरे आप्त-बंधु हैं। अतः, मैं आपके साथ अवश्य चलूँगी। न मैं अपने पिता का स्मरण करूँगी न माता का, न इष्ट बंधुजनों का।। हे प्राणेश, आपने अग्नि के समक्ष मेरे पिता से मुझे सह-धर्म-चारिणी के रूप में ग्रहण किया था। आप लोकवंद्य हैं, सत्यनिष्ठ हैं। मुझे यहीं छोड़कर वनवास के लिए आपका चला जाना क्या उचित है? वहाँ जो भी कष्ट हो, वह आपकी कृपा से मेरे लिए सुख ही सिद्ध होगा। आपके विना ये राजभवन, ये बंधु-बांधव, यह ऐश्वर्य और जीवन भी सार-हीन हो जायेंगे। मैं कैसे यहाँ रह सकूँगी? जैसे पुण्य सती सावित्री अपने पति की अनुगामिनी होकर रही, मैं भी आपकी परछाई की तरह आपके पीछे-पीछे चलूँगी। मेरी जैसी साध्वी के लिए यही धर्म है। आपको छोड़कर मैं यहाँ एक क्षण भी नहीं रह सकती। आपके साथ चौदह वर्ष क्या, हजार वर्ष तक जंगलों में रहकर आपकी सेवा करती रहूँगी। आप ऐसे आदर्श का पालन कीजिए, जो संसार में पति-पत्नियों के लिए अनुकरणीय हो। इतना ही क्यों? यदि आप मुझे छोड़कर वन चले जायेंगे, तो मेरे प्राण भी उड़ जायँगे अथवा मैं स्वयं अग्नि, जल या विष से अपने प्राण त्याग दूँगी। मुझे छोड़कर मत जाइए, मेरी मृत्यु देखकर जाइए।" यों अत्यंत शोकार्त्त हो जानकी विलाप करने लगी।'

१०. राम का सीता तथा लक्ष्मण को भी साथ चलन की अनुमति देना

सीता की यह दशा देख राम का हृदय दया से पिघल गया। उन्होंने अपने कर-पल्लवों से उस सुंदरी को उठाकर कहा—'हे सुंदरी, तुम्हें यहाँ छोड़कर अकेले वन में निवास करना मैं भी नहीं चाहता। मैं केवल तुम्हारा हृदय परखना चाहता था। तुम मेरे साथ चलो, तो सब तरह से मेरा कुशल ही होगा। मैं तुम्हें अपने साथ ले चलूँगा। तुम चलने से पूर्व आवश्यक दान आदि कर लो।' कृपालु राम के अनुमति देते ही सीता ने स्वर्ण-रत्नादि आभूषण अपने प्रिय परिजनों को दान कर दिये।

तत्पश्चात् राम ने सौमित्र को अपने पास बुलाकर कहा—'यदि तुम भी मेरे साथ वन में चलोगे, तो मेरे साथ तुम्हें भी खोकर हमारी माताएँ कौसल्या तथा सुमित्रा अत्यंत दुखी होंगी। उनका दुःख कौन दूर करेगा? हम दोनों चले जायँ, तो पिताजी की देख-भाल करनेवाले कौन हैं? पहले से ही माता कैकेयी सौतिया डाह से प्रेरित हैं। अब राज-मद भी उन्हें हो जाय, तो न जाने वे अपनी प्रभुता दिखाती हुई उन्हें दुःख देंगी या धर्म का विचार करके (चुप) रह जायेंगी। अतः मेरे लौटने तक तुम्हारा यहाँ रहना सर्वथा उचित है।

इन बातों से दुःखी होकर लक्ष्मण ने अपने भाई से कहा—'मैं आपके साथ अवश्य वन चलूँगा। यदि आप मना करेंगे, तो यहीं अपने प्राण त्याग दूँगा। यह मेरा दृढ़

निश्चय है ।' अनुज का यह दृढ़ निश्चय सुनकर राम ने उन्हें अपने साथ चलने की अनुमति दे दी ।

११. राम-लक्ष्मण का संपत्ति-दान

फिर राम ने अपने अनुज लक्ष्मण को भेजकर वसिष्ठ के पुत्र उत्तम गुण-संपन्न सुयज्ञ को बुलवाया और उचित रीति से उनका आदर-सत्कार करके उन्हें हार, कुंडल, वलय, अंगद आदि सभी आभूषण, मामा का दिया हुआ मत्त गज, ख्याति, शत्रुंजय आदि नामवाले सहस्र हाथी, सुन्दर वस्त्र आदि दान में दिये । इनके अतिरिक्त राम ने उन्हें दस करोड़ सुवर्ण-मुद्राएँ तथा अन्य अनुपम वस्तुएँ भी बड़ी श्रद्धा से दीं । उन्हें ग्रहण करके सुयज्ञ ने हर्षित होकर आश्चर्य-चकित हृदय से उस राज-दंपती को आशीर्वाद दिये । उसके पश्चात् उन्होंने अपने राज-कोष का समस्त धन मँगाकर, याचकों, निर्धनों तथा दीन-जनों में वितरित कर दिये । अगस्त्य तथा कौशिक मुनियों को रत्न-राशियाँ दान कर दीं । वसिष्ठ आदि मुनियों तथा तपस्वियों को उचित दान दिया । वंदी-मागध आदि, परिजन तथा अन्य निर्धनों को अमित धन दिया । तत्पश्चात् ब्राह्मणों तथा बंधु-मित्रों को भिन्न-भिन्न प्रकार के दान देकर उन्होंने सौमित्र की ओर देखकर कहा—'तुम भी दान करो ।' तब उस राजकुमार ने बड़े आनंद से कौशिक, गार्ग्य तथा शांडिल्य को बुलवाकर उन्हें अमित धन दिया । जिस किसी ने जो कुछ माँगा, उसे उन्होंने दे दिया । सीता ने परम कल्याणी, अरुंधती तथा सुयज्ञ की पत्नी को अपने आभूषण, अपना धन, तथा अपने अंतःपुर के सभी वस्तु-समूह दान में दे दिए । तब अरुंधती ने वसिष्ठ को देखकर कहा—'हाय । इक्ष्वाकु के वंशजों की ऐसी दशा देखकर चुप रह जाना क्या आपको उचित लगता है ?' मुनि ने अच्छी तरह विचार करके कहा—'यह भगवान् की इच्छा है; किसी भी तरह यह टल नहीं सकती । तुम चुप-चाप देखो ।'

१२. त्रिजटाख्य को राम का गायों का दान देना

उस समय त्रिजटाख्य नामक एक विप्र अपनी जीविका चलाने के उद्देश्य से खेत जोतते हुए मन-ही-मन अपने दारिद्र्य का विचार करके दुःखी हो रहा था । उसकी स्त्री अपने बच्चों के साथ अपने पति के पास गई और काम में व्यस्त पति को देखकर कहा—'हे नाथ, अभी आप हल चलाने में क्यों व्यस्त हैं, हल को वहीं छोड़कर आइए, मैं एक बात कहती हूँ । आज रामचंद्र बड़े आनंद से सभी याचकों को असंख्य धन दान कर रहे हैं। जो कोई जो कुछ माँगता है, उसे वे दे रहे हैं । आप अपना कुल तथा अपना नाम बतलाकर उस काकुत्स्थ पति से अपने इच्छानुसार धन प्राप्त कर लीजिए । आप शीघ्र जाइए ।'

यह सुनकर उस विप्र की इच्छाएँ प्रबल हो उठीं । वह तुरंत रामचंद्र के निकट पहुँचकर उन्हें आशीर्वाद देकर बोला—'हे राजन्, मैं निपट दरिद्र हूँ । मेरे कई बाल-बच्चे हैं । मैं अत्यन्त निर्धन हूँ । आप मेरी रक्षा करें । तब रघुराम बोले—'अभी मेरे पास गायों के कई समूह हैं । आप अपनी सारी शक्ति लगाकर कोई ढेला फेंकिए । आपका ढेला जितनी दूर तक जायगा, उतनी दूर तक की भूमि में जितनी गायें हैं, वे सब आपको

मिल जायँगी । मन-ही-मन हर्षित होते हुए उस विप्र ने अपनी धोती तथा शिखा कसकर बाँध ली, सभी नाड़ियों को कस लिया, दाँत पीसे और हाथ में ढेला लिये हुए श्रीरमापति विष्णु तथा श्रीराम का नाम-स्मरण करके अपनी मुट्ठी जोर से घुमाकर ढेला सरयू नदी तक फेंक दिया । सरयू नदी तक की भूमि में जितनी गायें थीं, उन्हें ब्राह्मण ने ले लिया । ब्राह्मण के इस बाहुबल को देख राम को आश्चर्य हुआ । उन्होंने ब्राह्मण से कहा कि यदि आपकी इच्छा हो, तो मैं विना किसी संकोच के आपको और एक हजार गायें तथा वस्त्र आदि दूंगा । तब विप्र ने कहा—'आप मुझे एक यज्ञ के लिए आवश्यक धन दे सकें, तो अच्छा होगा ।' राम नें उसकी इच्छा के अनुसार उसे धन देकर संतुष्ट किया । ब्राह्मण धन आदि लेकर अपनी पत्नी के साथ संतुष्ट मन से घर लौट गया ।

तब रघुराम अपने-आपको कृत-कृत्य मानते हुए अंतःपुर के भीतर आये और गृह-देवताओं की पूजा की, भक्ति के साथ मुनियों को प्रणाम किया और याचकों को मुँह-माँगा दान दिया । उसके पश्चात् उन्होंने अपने गुरु के घर में रखे हुए तथा धनुष-यज्ञ के समय वरुण से प्राप्त कोदंड, तूणीर, खड्ग आदि अपने अनुज के द्वारा मँगाये और उन्हें धारण करके सीता तथा लक्ष्मण के साथ राजा के दर्शन करने चले । नगर की प्रजा उन्नत सौध-शिखरों तथा चौपालों से राजचिह्न-रहित राम को जाते हुए देख अत्यंत शोक-संतप्त होकर कहने लगी—'क्या राम ऐसी दुर्दशा को प्राप्त होने योग्य हैं ? वे जहाँ जायँगे, हम भी वहीं जायेंगे ।' कुछ लोग कहते—'हम सब इस राजकुमार के साथ वन चले जायँ और उजड़े हुए नगर पर कैकेयी राज्य करे ।' इसी तरह कुछ दूसरे लोग कहते—'यह नगर धीरे-धीरे भालू, बाघ, सिंह, लोमड़ी, पिशाच तथा असंख्य भूत-प्रेतों का निवास-स्थान बन जायगा और वन में जहाँ राम रहेंगे, वहीं एक नगर बस जायगा ।' इस प्रकार लोगों के रोने-पीटने से सभी दिशाएँ गूंज उठीं ।

१३. सीता-लक्ष्मण-सहित राम का दशरथ के दर्शनार्थ जाना

लोगों की आर्त्त ध्वनियों को बड़े धैर्य के साथ सुनते हुए राम महाराज के अंतःपुर में पहुँचे । उन्होंने सुमंत्र के द्वारा राजा को अपने आगमन की सूचना भेजी । सुमंत्र ने शोक-संतप्त राजा को देखकर कहा—'महाराज, राम-लक्ष्मण पूज्यशीला सीता के साथ आये हैं ।' यह संवाद सुनते ही राजा मूर्च्छित हो गये। जब उनकी मूर्च्छा दूर हुई, तब वे धीरे-धीरे उठकर आसन पर बैठ गये और धैर्य धरकर गद्गद कंठ से बोले—'मेरी सभी रानियाँ रघुराम को देखने के लिए आवें ।'

सुमंत्र राजा के वचन सुनकर रनवास में गये और राजा की तीन सौ पचास रानियों को अत्यंत विनय के साथ बुला लाये। तत्पश्चात् वे महान् तेजस्वी रामचंद्र को सीता और लक्ष्मण के साथ महाराजा के सामने ले गये। राजा राम को हृदय से लगा लेने के लिए उठे, किन्तु उनके पैर आगे नहीं बढ़ सके । वे वहीं लड़खड़ाकर भूमि पर गिर पड़े । तब राम ने उन्हें उठाया और उनका सिर अपनी गोद में रखकर दुःख प्रकट करने लगे । थोड़ी देर बाद राजा की चेतना लौट आई और वे उठ बैठे । पिता को एकटक अपनी ओर ताकते हुए देखकर लोकवन्द्य राम बोले—'हे अनघ, आपके वचन

की रक्षा करने के हेतु मुझे वन-गमन के लिए उद्यत देखकर साध्वी जानकी तथा सौमित्र, मेरे मना करने पर भी मेरे साथ वन जाने के लिए प्रस्तुत हो गये हैं । उन्हें भी वन जाने की अनुमति प्रदान कीजिए ।'

इन वचनों को सुनकर राजा ने कहा--'मतिभ्रष्ट कैकेयी की बातों में आकर मैंने तुम्हें वन जाने का आदेश देकर बड़ी निर्दयता की है । किन्तु तुम्हें उसका पालन करने की आवश्यकता ही क्या है ? तुम अपने ढंग से राज्य करो ।'

इस पर राम ने हाथ जोड़कर कहा--'हे राजन्, आप मेरे गुरु हैं, पृथ्वीपति हैं, प्रेम से मेरी रक्षा करनेवाले आप्त-बंधु हैं । अतः, आप अपनी आज्ञा का पालन करने की अनुमति मुझे दीजिए और जाने की आज्ञा भी दीजिए । सत्यनिष्ठ होकर आप सदा समस्त लोकों का पालन कीजिए ।'

दशरथ बोले--'हे वत्स ! तुम चिरायु, अमितशुभ, सुयश, पराक्रम, निष्कलंक धर्म-बुद्धि प्राप्त करो । तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट न हो । हे पुत्र, तुम आज रात को यहीं रहकर कल वन के लिए प्रस्थान करो ।' इस पर राम ने कहा--'हे महाराज, हमारा अब यहाँ रहना उचित नहीं है । आज और कल में विशेष अंतर नहीं पड़ता । अतः, आप हमें स्नेह से जाने की अनुमति दीजिए । मेरे अनुज भरत को राज्य-पालन करने दीजिए । अब आप शोक मत कीजिए ।'

राम की त्याग-बुद्धि देखकर महाराज दशरथ को अत्यधिक दुःख हुआ । वे बोले--'तुम्हारे जैसे सुपुत्र को घोर जंगलों में निवास करने की अनुमति मैं किस मुँह से दूँ ? हाय ! कैकेयी की बातों में आकर मैं धोखा खा गया ।' यों कहते हुए वे करुणोत्पादक ढंग से विलाप करने लगे । अंतःपुर की सब नारियाँ भी रोने लगी । इसी समय कौसल्या तथा सुमित्रा दुःख-संतप्त हृदय से वहाँ आई और राजा के साथ विलाप करने लगीं ।

उन रमणियों तथा राजा का विलाप सुनकर सुमंत्र अपार दुःख से पीड़ित हुए और क्रोध से कैकेयी की ओर देखकर कहने लगे—'आपके कारण ही राजा को तथा हम सबको यह संताप हो रहा है । मैं आपको क्या कहूँ ? आप पति के हित का विचार न करनेवाली राक्षसी हैं । आप भी अपनी माता के समान ही पति की हत्यारिन हैं । आपके पिता सभी भाषाओं के ज्ञाता थे । एक दिन वे और आपकी माता शय्या पर लेटे हुए थे । तब उन्होंने किन्हीं कीड़ों को आपस में बोलते हुए सुना और उसका विचार करके हँस दिया । तब तुम्हारी माँ ने अपने पति से कहा--'बतलाइए कि आप क्यों हँस रहे रहे हैं ?' तब उन्होंने कहा--'यदि मैं इसका कारण तुम्हें बतला दूँ, तो मेरी मृत्यु हो जायगी ।' किन्तु आपकी माँ ने कहा कि मैं आपकी मृत्यु से नहीं घबराती, आप अवश्य अपनी हँसी का कारण बतलाइए । तब उन्होंने निर्दय होकर आपकी माता को नगर से निर्वासित कर दिया । भला, ऐसी चंडी की पुत्री, आपको अपने पति के हित का विचार कैसे होगा ?'

कैकेयी सिर झुकाकर थोड़ी देर तक सोचती रही और फिर दशरथ को देखकर बोली—'हे राजन्, प्राचीन काल में आपके वंशज महाराज सगर महान् यशस्वी होकर

राज्य करते थे । क्या उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र असमंजस को बिना किसी झिझक के नगर स बाहर नहीं कर दिया था ? तब आप भी यदि राम को वन में भेज दें, तो इसमें दोष ही क्या है ?'

शोक-समुद्र में डूबे हुए दशरथ इसका प्रत्युत्तर नहीं दे सके । तब सिद्धार्थ नामक मंत्री ने कपटी कैकेयी को देखकर कहा--'असमंजस दर्प से उद्दण्ड होकर नगर के बालकों को बाँध-बाँधकर सरयू नदी में फेंक देता था । जब प्रजा ने राजा से इसकी शिकायत की, तब जन-हित का विचार करके उन्होंने अपने पुत्र को नगर से निर्वासित कर दिया । क्या रामचंद्र में कोई दोष है ? वे तो उत्तम गुण-संपन्न हैं ।'

तब कैकेयी बोली--'राम तो पिता के दिये हुए वचनों का पालन कर रहा है । वह सुकृति है ।' कैकेयी की निष्ठुरता देखकर दशरथ बहुत दुःखी हुए और सुमंत्र को देखकर बोले--'हे सुमंत्र, तुम राज्य के धन, मणियाँ, गोधन, बंधुजन, अंतःपुर के निवासी मित्र, मंत्री तथा विजय-चिह्नों से अलंकृत गज, रथ, तुरग आदि सब को राम के साथ भेज दो । इस शून्य नगर पर ही कैकेयी का पुत्र राज्य करेगा ।'

इन वचनों को सुनते ही कैकेयी क्रोध से जल उठी । वह अपने पति को कोसती हुई बोली--'हे राजन्, आप रामचंद्र को राज्य का ऐश्वर्य देकर उजड़ा हुआ नगर भरत को क्यों देना चाहते हैं ? ऐसी बातें क्यों करते हैं ? यदि राम, सौमित्र तथा जानकी के साथ वल्कल पहनकर संतुष्ट मन से सारे ऐश्वर्य को त्याग कर मेरे देखते हुए वनवास के लिए नहीं जायगा, तो आपका वचन पूरा नहीं होगा । आपका वचन झूठा होगा । हे राजन्, मैं आपके वर नहीं चाहती । निश्चय ही आपका वचन भंग हुआ ।'

कैकेयी की बातें सुनकर दशरथ मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े । उस दशा में पृथ्वी पर पड़े हुए पिता को देखकर घोर परिताप से पीड़ित होकर राघव बोले--'हे माताजी ! आप बार-बार महाराज की निंदा क्यों करती हैं ? मेरे गुरु, महाराज, मेरे पूज्य पिता, मेरे परमदेव, मुझे आज्ञा दें, तो मैं प्रेम से विष-पान भी करूँगा । प्रचंड अग्नि या विष के समुद्र में भी प्रविष्ट होऊँगा । वनों में जाकर मुनियों के साथ रहना कौन-सा बड़ा कार्य है ?'

दशरथ उन वचनों को सुनकर कैकेयी को देखकर बोले--'सुनो, मैं भी राज्य छोड़कर राम के साथ वन में जाऊँगा । तुम समस्त वैभव के साथ भरत को अयोध्या का राजा बनाकर राज्य करो । अब अधिक विवाद क्यों ?' तब राम ने राजा से कहा--'महाराज, निर्जन वन मेरे लिए योग्य रहेगा । मेरे साथ और कोई क्यों आये ? मेरे लिए वल्कल मँगाइए । मैं उन्हें धारण कर चौदह वर्ष तक वन में रहते हुए आपकी आज्ञा का पालन करूँगा । माता, आप शीघ्र हमें वल्कल दीजिए ।'

तब कैकेयी निर्लज्ज होकर मन-ही-मन प्रसन्न होती हुई सबके सामने वल्कल ले आई और उन्हें राम को देकर बोली--'हे राजकुमार ! इन्हें धारण कर लो ।'

राम ने बड़ी प्रसन्नता से माता से वल्कल ले लिये और अपने कपड़े उतारकर वल्कल पहन लिये । राम के समान ही लक्ष्मण ने भी वल्कल पहने । कैकेयी ने सीता को

दो वल्कल दिये । तब सीता ने मन-ही-मन व्याकुल होकर राम से कहा--'वन में रहने-वाले मुनि, न जाने इन वल्कलों को कैसे पहनते होंगे ।' उन्होंने एक वस्त्र को अपने कंधे पर डाल लिया और दूसरे को हाथ में लिये पहनने में असमर्थ हो खड़ी रहीं । राम ने यह ढंग देखा, तो उन्होंने स्वयं सीता को वह वल्कल पहना दिया । सभी रानियों ने राघव को देखकर कहा--'हे राजकुमार ! इस श्रेष्ठ राजकुमारी सीता को इतना निष्ठुर होकर तपस्विनी की तरह घने जंगलों में क्यों ले जा रहे हो ? हमारी बात मानकर तुम सीता को हमारे पास छोड़ दो और लक्ष्मण के साथ तुम वन जाओ।'

१४. कैकेयी पर वसिष्ठ का क्रोध

तब वसिष्ठ कैकेयी को देखकर अत्यंत क्रोध से बोले--"तुम कुलनाशिनी हो । तुमने राजा को धोखा दिया है । तुमने जैसा पाप किया, वैसा पाप कहीं भी किसी ने नहीं किया है । रघुराम की आज्ञा से जानकी को रानियों के साथ रहने दो । तुम इसे स्वीकार क्यों नहीं करती हो ? यदि वैदेही वन में चली जायगी, तो हम भी नगर-निवासियों के साथ वन चले जायेंगे । इतना ही नहीं, भरत तथा शत्रुघ्न अत्यंत प्रसन्न मन से रामचन्द्र की सेवा करने के लिए वन जायेंगे । तब तुम इस निर्जन नगर में रहोगी । राम पुण्यशील है । उसके रहने से इस नगर की शोभा है । उसके चले जाने के बाद यह नगर उजड़ा हुआ दीखेगा । पाप-पूर्ण मन से तुमने पति को धोखा दिया । अधिक लोभ से प्रेरित हो, तुम राम को वन में भेजकर भरत का राज-तिलक करके चिर काल तक राज्य करने की बात सोच रही हो । भरत कभी अपने पिता की आज्ञा नहीं टालेगा । वह अपने भाई रामचंद्र को पितृ-तुल्य मानता है । तुम्हारी बात सुनकर, धर्म-निष्ठा को त्यागकर, रामचन्द्र को ठुकराकर क्या वह राज्य ग्रहण करेगा ? वह दशरथ का पुत्र है । तुम्हारा दोष सिद्ध होने पर, क्या वह तुम्हे मन से माता मानेगा ? क्या राम के वन में रहते हुए वह साम्राज्य का भार वहन करेगा ? तुम भरत का हृदय नहीं जानतीं । अगर उसे यह बात मालूम हो जाय, तो वह तुम पर क्रुद्ध होगा । किसके लिए तुम इतने निष्ठुर बन रही हो ? क्या भरत इसके लिए अपनी स्वीकृति देगा ? कदापि नहीं । इसलिए इसे तुम शुभप्रद मत समझो । इतना ही नहीं, राम तथा सीता को वल्कल देने के लिए तुम्हारे हाथ कैसे आगे आये ? वल्कल छोड़कर नवरत्न-खचित आभूषण तथा चीनाम्बर पहने जानकी परिचारिकाओं के साथ वन में जाय ।"

इस प्रकार कहते हुए उस संयमीश्वर ने सीता को सुन्दर वस्त्र तथा आभूषण दिये । सीता ने उन्हें ग्रहण किया और वल्कल वहीं छोड़ दिये । सब लोग कैकेयी की निंदा करने लगे । राजा सबकी निंदा सुनते रहे और अंत में कैकेयी को देखकर बोले--'तुमने मन में पाप का संकल्प करके राम के लिए वनवास माँगा था । लेकिन क्या तुमने मुझसे यह भी माँगा था कि सीता को वल्कल पहनने चाहिए ? क्या यह मानवती इसके लिए योग्य है ? मैंने क्या पाप किया, जो तुम इतनी क्रूर बनी हुई हो ? विनयाभिराम राम को तपस्वी के रूप में वन भेजने से बढ़कर कोई और पाप है ? उसे यहाँ से भगाकर भी तुम्हें चैन क्यों नहीं मिलता ? ऐसी पापिनी का पति मेरे पापों का अंत ही नहीं है क्या ?'

तब राम ने दशरथ से कहा--'महाराज, मेरे वियोग से शोक-संतप्त मेरी माता कौसल्या को सांत्वना देते हुए आप उनकी रक्षा करते रहें ।'

तब दशरथ ने अत्यत दुःखी होकर कहा--'हे राम, न जाने मैंने पूर्व जन्म में कौन-सा पाप किया था ? उसका फल तो मुझे भोगना ही चाहिए । माताओं से पुत्रों को अलग करके तुम्हारे हृदयों को दुःख देना पड़ रहा है । हाय, कैकेयी के वचनों के कारण तुम्हें वन में कष्टों को सहने के लिए निष्ठुर होकर भेजना पड़ रहा है । हे पुत्र, हे राम, यह कैसा अनर्थ है ।'

यों कहकर दशरथ मूच्छित हो गये । उपचार के उपरांत जब वे कुछ सँभले, तब उन्होंने चौदह वर्ष के लिए आवश्यक श्रेष्ठ वस्त्र तथा आभूषण सीता को दिलवाये । सीता ने उन श्रेष्ठ वस्त्रों तथा आभूषणों को धारण किया ।

१५. राम का दशरथ को सांत्वना देना

तब दशरथ को देखकर राम ने कहा--'महाराज मैं चौदह वर्ष की अवधि चौदह दिन की तरह बिताकर शीघ्र ही लौट आऊँगा । मेरी अपेक्षा भरत आपका प्रिय भक्त हैं । आप दुःख मत कीजिए । भरत का राज-तिलक कर दीजिए । माता कैकेयी के कृत्य को सोचते हुए आप मन-ही-मन क्षुब्ध मत होइए । मेरी माँ आपकी सेवा अच्छी तरह करती रहेगी । उन पर आप भी कृपा-दृष्टि रखिए ।'

यों कहकर उन्होंने सीता तथा लक्ष्मण के साथ उनकी परिक्रमा की और प्रणाम किया । तब राजा ने अपने पुत्रों तथा बहू को आशीर्वाद दिया--'तुम वन जाकर कुशल-पूर्वक लौटो ।' उसके पश्चात् उन तीनों ने कौसल्या के चरण-कमलों का स्पर्श किया । राघव की वेश-भूषा देखकर माता ने क्रूर विधि की निंदा करती हुई विलाप किया और फिर राम तथा लक्ष्मण को आशीर्वाद दिये ।

१६. सीता को सीख देना

फिर जानकी को देखकर कौसल्या अत्यंत दुःखी होकर बोली--'राम को योग्य राज-पुत्र समझकर विना हमारे माँगे ही तुम्हारे पिता ने तुम्हारा विवाह उसके साथ कर दिया । किन्तु आज दैव-योग से तुम्हारी यह दशा हो गई । तुम्हें तापस-वृत्ति ग्रहण कर अपने पति के साथ वनों में निवास करना पड़ रहा है । इसके लिए चिन्ता मत करो । राघव अवश्य बाद को पृथ्वी का पालन करेगा । चाहे पति निर्धन ही क्यों न हो जाय, फिर भी स्त्री को उसे त्यागना नहीं चाहिए। यही सती स्त्रियों का धर्म है । पति की आज्ञा पालन करनेवाली स्त्रियों का दोनों लोकों में शुभ होगा ।'

तब सीता ने कौसल्या को देखकर कहा—'हे माताजी, मैं अवश्य पति के अनुकूल होकर भक्ति के साथ उनकी सेवा करूँगी और धर्म के मार्ग पर चलूंगी । पति की प्रसन्नता जिस रमणी को प्राप्त नहीं है, वह चक्र-हीन रथ के समान और तार-हीन वीणा के समान है । वह पुत्रोंवाली पुण्यवती होने पर भी अत्यंत दुःखी रहेगी । अतः, यदि पति को प्रिय हों, तो मैं अपने प्राणों को भी बड़े हर्ष से निछावर कर दूंगी ।'

तब कौसल्या ने सीता से कहा—'भू-माता की पुत्री होकर तुम्हारे ये गुण तुम्हारे अनुकूल ही हैं । लक्ष्मण, उज्ज्वल गुण-संपन्न तुम्हारे पति का आप्त-बंधु है । उसके प्रति

स्नेह रखना ।' 'आपकी आज्ञा शिरोधार्य है'—सीता ने कहा और उन्हें प्रणाम किया । कौसल्या ने उन्हें हृदय से लगा लिया और आशीर्वाद दिये ।

फिर कौसल्या ने राम को संबोधित करके कहा—'हे राजकुमार, मैथिली तथा सौमित्र का सतत ध्यान रखना ।' राम बोले—'माता, आपकी आज्ञा का पालन अवश्य करूँगा । लक्ष्मण तो मेरा दाहिना हाथ है और सीता मेरी गति के समान है । क्या मैं कभी इनके प्रति असावधान रह सकता हूँ ? यदि मैं धनुष धारण करूँ, तो (इन्हें) कौन-सा भय हो सकता है । चाहे त्रिनयन ही क्यों न आ जायँ । अब आप शोक मत कीजिए । हम तीनों, आपको, पिताजी को और सब माताओं को प्रणाम करते हैं; आप हमें आशीर्वाद दीजिए ।'

इस प्रकार कहते हुए उन्होंने सीता तथा लक्ष्मण के साथ तीन सौ पचास माताओं की प्रदक्षिणा की । यह दृश्य देखकर सभी माताओं का हृदय पिघल गया और वे विलाप करने लगीं ।

जब तीनों ने माता सुमित्रा को प्रणाम किया, तब उन्होंने उन्हें हृदय से लगा लिया और राम तथा सीता को आशीर्वाद दिये । उसके पश्चात् वे महाराज के अनुचित कार्य का विचार करके दुःखी हुईं और लक्ष्मण को पास बुलाकर अत्यंत गंभीर स्वर में बोलीं—'हे वत्स ! तुम राम को ही अपने पिता दशरथ के समान और जानकी को मेरे समान मानना । वन को ही अयोध्या समझना और अत्यंत भक्तियुक्त होकर राम की सेवा करते हुए अत्यधिक विजय तथा उन्नति प्राप्त करो ।' उसके बाद वे राम को देखकर बोलीं—'हे रघुवीर, लक्ष्मण सतत तुम्हारे कल्याण का विचार करनेवाला, कल्मष-रहित सखा तथा अनुज है । वन में तुम इसकी रक्षा करते रहना ।' राम ने माता की आज्ञा को बड़ी नम्रता से स्वीकार किया ।

१७. राम का वन-गमन

तत्पश्चात् राम ने गृह-देवताओं, मुनियों तथा माताओं को प्रणाम किया और सीता तथा लक्ष्मण के साथ शर-चाप-तूणीर से युक्त हो वे वन के लिए रवाना हुए । तब दशरथ ने मन-ही-मन दुःखी होते हुए सुमंत्र को देखकर कहा—'वह देखो, राम वन जा रहा है, उसके लिए रथ ले जाओ ।'

राजा की आज्ञा मानकर सुमंत्र रथ को लिये राम के पास पहुँचे और भक्ति से प्रणाम करके बोले—'हे रघुराम, राजा ने यह रथ भेजा है । इस पर आरूढ़ होकर आप वन के लिए प्रस्थान कीजिए ।' राजा की आज्ञा को मानकर राम ने सीता को पहले रथ पर बिठाया, फिर अपने शस्त्रों को रखने के बाद लक्ष्मण के साथ स्वयं भी उस विशाल रथ पर चढ़कर वन के लिए रवाना हुए ।

नागरिक, वृद्ध, आप्त, मंत्री, स्त्रियाँ, बालक, मित्र, आश्रित, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र अत्यधिक दुःख प्रकट करते हुए रथ के आगे-पीछे तथा दोनों ओर भीड़ लगाकर चलने लगे । कुछ लोग मंथरा को कोस रहे थे कि उसने इक्ष्वाकु-वंश के गौरव को नष्ट कर दिया; कुछ कैकेयी की निंदा करते हुए कह रहे थे कि क्या रघुराम को तपस्वी का

रूप देना उचित था; दूसरे कुछ लोग दशरथ पर क्रोध प्रकट करते हुए कह रहे थे कि राजा का इस प्रकार अपनी पत्नी से भीत होना उचित नहीं था; कुछ लोग दुःखी होकर कह रहे थे कि आज राम तथा सौमित्र अधिकार-रहित होकर कितने अनाथ हो गये ? ऐसे भी लोग थे, जो कह रहे थे कि प्राप्त होनेवाले साम्राज्य का भार वहन किये विना व्यर्थ ही ये लोग वन में जा रहे हैं ? कुछ कह रहे थे, चौदह वर्ष तक ये लोग कैसे विपत्तियों को झेलते रहेंगे ? कुछ मन-ही-मन सोच रहे थे कि न जाने इस राजकुमारी ने किस व्रत का अनुष्ठान किया है ? कुछ कह रहे थे कि अत्यंत दुःखी होकर राम के वन चले जाने के पश्चात् बुद्धिमान् भरत कैसे राज्य करेंगे ? कुछ सीता की प्रशंसा कर रहे थे कि कोमलगात्री, भूमि-सुता को पति ने यहीं (अयोध्या में ही) क्यों नहीं छोड़ दिया ? कुछ आश्चर्य कर रहे थे कि ऐसे पुत्र को वन जाते हुए देखकर न जाने कौसल्या कैसे धैर्य रख सकी ? इस प्रकार, कहते हुए सभी लोग शोक-संतप्त मन से रथ के पीछे-पीछे जाने लगे ।

कौसल्या तथा सुमित्रा अत्यंत दुःख के प्रवाह में डूबी हुई (उनके पीछ) जा रही थीं। उनके हाथों का सहारा लिये हुए, झुके हुए, दुःख से लड़खड़ाते महाराज दशरथ, रनवास की स्त्रियों के साथ अविरल अश्रु-जल से भरे नेत्रों से, 'हे राम ! हे राम !' का आर्त्तनाद करते हुए अंतःपुर से बाहर निकले । तब रवि का प्रकाश मंद पड़ गया और अंधकार चारों ओर से आकाश में व्याप्त होने लगा । अग्नि ने अपना सहज दहन-गुण त्याग दिया । पृथ्वी में दरारें पड़ गई । नक्षत्रों का प्रकाश मंद पड़ गया । आकाश में ग्रह एक दूसरे से टकरा गये । हाथियों का मदजल सूख गया । अश्वों की आँखों से अश्रु टपकने लगे । छोटे, बड़े, बूढ़े, बच्चे, सभी की विलाप-ध्वनि सारे आकाश में व्याप्त हो गई। सुर-लोक की कामिनियों का अत्यधिक आर्त्तनाद नगर-निवासियों को सुनाई पड़ने लगा ।

तब दशरथ ने अश्रुपूरित नेत्रों से रथ की ओर देखा, मगर उन्हें कुछ भी दृष्टि-गोचर नहीं हुआ । तब वे उच्च स्वर में चिल्लाने लगे--'हे सुमंत्र, रथ लौटा लाओ । रामचंद्र का चंद्रबिंब-सदृश मुख एक बार देखने दो ।' इस तरह नगर के बाहर भी शीघ्र गति से आनेवाले महाराज को देखकर रामचंद्र सुमंत्र से बोले—'वह देखो, सूर्यवंशाधिप आ रहे हैं । रथ की गति तीव्र कर दो । शीघ्रता करो ।'

उनकी आज्ञा के अनुसार सुमंत्र ने रथ की गति तीव्र कर दी। तब वसिष्ठ राजा से मन-ही-मन दुःखी होते हुए बोले—'हे अनघ, इस प्रकार दुःखी होकर तुम्हें (अपनी संतान को) भेजना नहीं चाहिए । यहाँ से अब तुम लौट चलो ।' तब दशरथ रुक गये और अपने पुत्र के रथ की ओर अपलक दृष्टि से देखते रहे । जब वे आँखों से ओझल हो गये, तब उस रथ की धूलि की ओर देखते रहे । जब वह भी दिखाई नहीं पड़ी तब वे ऊँचे स्वर में—'हा राम ! हा राम !' का आर्त्तनाद करते हुए पृथ्वी पर गिर-कर लोटने लगे ।

जब उनकी मूर्च्छा छूटी, तब वे अत्यंत क्रोध-भरी दृष्टि से कैकेयी को देखकर बोले—'तुम्हारी पाप-मंत्रणा से अनभिज्ञ होकर मैं अपने पुत्र-रत्न को खो बैठा । तुम्हारे साथ

विवाह करके मैं पतित हो गया । सब बातों में श्रेष्ठ होते हुए भी में अब दीन-हीन हो गया हूँ । मैं सभी की निंदा का पात्र बन गया । जीवन के अंतिम समय में मैंने काकुत्स्थ-वंश की कीर्त्ति को कलंकित किया । हे दुष्टे ! तुम्हारा स्पर्श भी नहीं करना चाहिए, तुमसे वार्त्तालाप तक नहीं करना चाहिए, तुम्हारा मुँह भी नहीं देखना चाहिए ।

इस प्रकार राजा के कहते ही सभी रानियाँ कैकेयी को कोसने लगीं । कैकेयी सब सुनती हुई सिर झुकाये खड़ी रही। दशरथ तब संतप्त-चित्त से अयोध्या नगर में लौट आये । उजड़े हुए-से दीखनेवाले राज-मार्ग में जहाँ-तहाँ ठहरते हुए वे निदान राजभवन में वापस आये । कौसल्या भी रनवास में पहुँच गई और धूलि-धूसरित मुँह से शय्या पर गिरकर लोट-लोटकर विलाप करने लगीं । वे पथराई हुई आँखों से चारों ओर देखती थीं और बार-बार 'हा राम ! हा राम !' का आर्त्तनाद करती थीं । वे इस प्रकार भगवान् को कोसती हुई, अपने-आपको दोष देती हुई असह्य दुःख का अनुभव करने लगीं । वे कह रही थीं--'किंचित् भी दुःख से अनभिज्ञ मेरे पुत्र और पुत्रवधू न जाने अब कितनी दूर पहुँचे होंगे ? न जाने वे कहाँ हैं ? न जाने उन्हें मन-ही-मन कितना दुःख हुआ होगा ? न जाने वे कैसे वन में निवास करेंगे ? कैसे वे कंद-मूल खायेंगे ?' यों मन-ही-मन वे राम तथा सीता के कष्टों की कल्पना करके अत्यंत दुःखी हो रही थीं । सुमित्रा उनको सांत्वना दे रही थीं ।

रामचंद्र थोड़ी दूर जाने के पश्चात्, अपने पीछे आनेवाले नगरवासियों को देखकर बोले--'हे सज्जनो, आप सब लोग अयोध्या लौट जाइए और मेरी विजय की कामना करते रहिए । भरत की आज्ञा का अनुसरण करते हुए आप सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत कीजिए ।' तब सब लोगों ने एक स्वर से कहा--'हे राम, आप का इस प्रकार कहना क्या आपको उचित है ? जब आप वन-वास करने जा रहे हैं तब हमें भरत की क्या आवश्यकता है ? नगर, भवन, वाहन, सौध, स्त्री आदि हमें क्यों चाहिए ? आप जा रहे हैं, तो हम भी आपके साथ वन में चलेंगे । यदि आप हमें मना करेंगे, तो हम प्राण त्याग देंगे । इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ।' इस प्रकार सभी प्रजा राम के रथ के पीछे-पीछे चलने लगी ।

इस प्रकार, चलते-चलते संध्या तक वे तमसा नदी के तट पर पहुँच गये । उन्होंने उस रात को वहीं ठहरने का निश्चय किया और संध्या समय की पूजा-वंदना आदि से निवृत्त हुए ।

राज-प्रासाद में, राजकुमारों के लिए योग्य मृदु शय्या पर शयन करनेवाले मोहनाकार राम ने उस दिन, पेड़ के नीचे, पर्ण-शय्या पर सीता के साथ विश्राम किया । उनके चारों ओर उनकी प्रजा अपने स्त्री-पुत्रों और घर-बार को भूलकर राम के साथ वन जाने का दृढ़ निश्चय करके गाढ़निद्रा में लेट गई । उन्हें नगर लौटाने का कोई और उपाय न देखकर, राम ने अर्द्ध-रात्रि के समय सुमंत्र से प्रजा को भुलावा देकर वहाँ से चल देने की बात उन्हें समझाकर कहा कि रथ तैयार करके ले आओ । रथ के आते ही उन्होंने पहले उसे अयोध्या की तरफ थोड़ी दूर चलाया, फिर उसे लौटाकर तमसा नदी को पार

कराया और तृण तथा शिला-आवृत भूमि पर अत्यंत वेग से उसे चलाने का आदेश दिया। उनका गमन तथा महाराज के आदेश की कथा सुनकर मार्ग के ग्राम-वासी अत्यंत दु:खी हुए और धैर्य तजकर रुदन करने लगे। ऐसे कितने ही ग्रामवासियों का रुदन बार-बार सुनते हुए मार्ग के विविध वन-दृश्यों को सीता को दिखाते हुए, प्राचीन काल में सूर्य-वंश-मणि इक्ष्वाकु को मनु के द्वारा दी हुई भूमि का अवलोकन करते हुए अत्यंत शीघ्र गति से उन्होंने सरयू नदी[1] को पार किया और दूसरे दिन संध्या तक गंगा नदी के तट पर पहुँच गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने एक इंगुदी-वृक्ष के नीचे बड़ी शान्ति के साथ विश्राम किया।

वहाँ, तमसा नदी के तट पर अयोध्या की प्रजा ने प्रभात के समय उठकर चारों ओर देखा, तो वे संभ्रमित तथा आश्चर्य-चकित रह गये। वहाँ न राम-लक्ष्मण थे, न रथ का कहीं पता था। उनके शोक की सीमा नहीं रही। रथ के पहियों के चिह्न देखकर उन्होंने सोचा कि कदाचित् महाराज की आज्ञा पाकर राम राज्य-भार को वहन करने अयोध्या लौट गये हैं। वे अयोध्या को लौट आये, किन्तु वहाँ भी राम को न देखकर वे शोकाग्नि में तपने लगे और कहने लगे--'हाय ! राम हमें भुलावा देकर चले गये !' वे राम की दयालुता, उनकी सत्यनिष्ठा तथा सद्व्यवहार की प्रशंसा करते हुए उनके वियोग में दुःख का अनुभव करने लगे।

१८. गुह से राम की भेंट

निषादराज गुह को जब यह समाचार मिला कि राघव गंगा-तट पर ठहरे हुए हैं, तब वह राम-लक्ष्मण की सेवा में कंदमूल-फल आदि खाद्य पदार्थ, सुनहले वस्त्र तथा विविध उपहार लेकर आया और बड़ी भक्ति से उन्हें प्रणाम करके सब वस्तुओं को उनके चरणों में अर्पित करके कहा--'हे देव, क्या कारण है कि आप राज-पाट छोड़कर वनवास के लिए पधारे हैं ? हे सूर्य-वंश-तिलक, मेरे जैसे सेवक के रहते हुए आपकी ऐसी दशा क्यों ? जिस दुष्ट ने आपकी यह दशा कर दी है, उस नीच का मैं युद्ध में बध कर डालूँगा।'

उसकी सद्भक्ति, शक्ति तथा धीर वचनों को सुनकर राघव अत्यंत प्रसन्न हुए और उसे गले से लगाकर अपना सारा वृत्तांत कह सुनाया। सारी कथा सुनने के पश्चात् गुह मन-ही-मन चिंतित हुआ और कैकेयी की करतूत पर दुःख प्रकट करने लगा। उसने दशरथ की सरलता पर खेद प्रकट किया और दशरथात्मजों की दुर्दशा का विचार करके शोक-पीड़ित हुआ। राम अत्यंत स्नेहातुर हुए और आप तथा लक्ष्मण दोनों ने उचित रीति से गुह के दुःख का शमन किया।

इतने में सूर्यास्त हो गया। राजकुमारों ने संध्या-वंदन आदि से निवृत्त होकर गंगा-जल से अपनी क्षुधा शांत की। उसके पश्चात् राम, जानकी तथा लक्ष्मण तृण-शय्या पर विश्राम करने लगे। सूत (सुमंत्र) तथा शृंगवेरपुर का स्वामी गुह उनकी सेवा में लगे रहे।

---

१. सरयू नदी तो अयोध्या से उत्तर होकर बहती है और फिर बिहार में प्रवेश करती है। राम दक्षिण की ओर चले थे, उन्हें सरयू नदी कैसे मिलती ? वाल्मीकि ने गंगा के निकट पहुँचने के पहले राम को वेदश्रुति और गोमती नदी को पार उतरवाया है।—सम्पादक

लक्ष्मण ने चौदह वर्ष तक अपने भाई की रक्षा में संलग्न रहने के उद्देश्य से दिन-रात कभी नहीं सोने की प्रतिज्ञा की और धनुष-बाण धारण किये अपने भाई की शय्या से थोड़ी दूर पर खड़े हो गये। उस रात को निद्रा देवी स्त्री का रूप धारण करके आई और लक्ष्मण से बोली—'हे मानधनी, मैं निद्रादेवी हूँ। विधि के निर्देश का पालन तो मुझे करना ही होगा। आप मेरे लिए क्या व्यवस्था देते हैं, जिससे मैं आपको छोड़कर चली जाऊँ ?'

तब लक्ष्मण बोले—'तुम दिन-रात ऊर्मिला पर हावी होकर रहो। अवधि पूरा करके मैं तुम्हें ग्रहण करूँगा।' उनका आदेश शिरोधार्य करके निद्रा चली गई और लक्ष्मण भी निद्रा देवी की कृपा प्राप्त करके संतुष्ट हो गये।

उसके पश्चात् लक्ष्मण ने सुकुमार यौवन-शोभा-संपन्न तथा धीरचेता राम एवं सीता के दुःख का वृत्तांत गुह को कह सुनाया और कहा—'हंस-तूलिका-तल्प (हंसों के पंखों से बनाई हुई कोमल गद्दी) पर शयन करनेवाले (भोगी) आज खुरदरे पत्थरों पर बिछी पल्लव-शय्या पर पत्थरों के चुभते रहने से परेशान होते हुए किसी तरह गाढ़ निद्रा में खर्राटे भर रहे हैं।' इसके पश्चात् उन्होंने गुह को माता कौसल्या और सुमित्रा के शोक का वृत्तांत सुनाया और दोनों अत्यंत शोकमग्न हो गये।

इतने में अरुणोदय हुआ। राघव ने निष्ठा से प्रातःकाल के सब विधि-विधान पूरा किये। उसके पश्चात् उन्होंने गुह के द्वारा वट का दूध मँगाया, लक्ष्मण तथा अपने कोमल तथा दीर्घ केश खोलकर उन्हें उस दूध से जहाँ-तहाँ भिगोकर उनकी जटाएँ बनाईं। वैदेही विवश तथा क्षुब्ध हो देखती रहीं। फिर अनुज के साथ राम ने बड़ी निष्ठा से वैखानस-वृत्ति (वानप्रस्थ की एक शाखा) ग्रहण की।

तत्पश्चात् राम ने सुमंत्र को पास बुलाकर कहा—'हे सुमंत्र अब हमें रथ पर चढ़ना नहीं चाहिए। अतः, तुम रथ को लेकर अयोध्या को लौट जाओ और राजा की सेवा में प्रवृत्त हो जाओ। महाराज को तथा माताओं को हमारे प्रणाम कहना। तब सौमित्र ने क्रोध से कहा—'अब भी ऐसी बातें क्यों ? (शांतिपूर्ण वचन क्यों ?) उनसे मेरी ओर से कहना कि अपनी स्त्री की प्रेरणा से उन्होंने नीति-भ्रष्ट होकर, किसी बात का विचार किये बिना ही हमारी ऐसी दशा कर दी। अब वे अपनी स्त्री तथा प्रिय पुत्र के साथ राज-भोग का अनुभव करें। अब तुम ज़ा सकते हो।' लक्ष्मण की बातों से अप्रसन्न होकर राम ने कहा—'सौमित्र, तुम अपनी बातें बन्द करो।' और, सुमंत्र को संबोधित करके कहा—'तुम ये बातें राजा से मत कहना। यदि वे ये बातें सुनेंगे, तो और अधिक दुःख से पीड़ित होंगे।' तब सुमंत्र ने अत्यधिक शोक-संतप्त तथा अत्यंत भीत होकर कहा—'हे देव, आपको वन में छोड़कर मैं दीन की तरह अयोध्या कैसे जाऊँ ? मैं प्रजा से यह समाचार कैसे कहूँ ? मैं यह रिक्त रथ किस मुँह से ले जाऊँ ? कौसल्या को मैं कैसे सांत्वना दूं ? कैकेयी का मुँह मैं कैसे देखूं ? नहीं, यह मुझसे नहीं हो सकता। मैं भी आपके साथ चलूँगा।'

तब राम हँसकर बोले—'हमने गंगा पार करके वन में प्रवेश किया है, यह समाचार तुम जब जाकर कैकेयी से कहोगे, तभी वे उसे सत्य मानेंगी। इसलिए तुम शोक न

करके लौट जाओ। मेरे बदले तुम राजा को बार-बार धैर्य देते हुए, उनकी सेवा करते रहना।' तब अत्यंत दीन होकर सुमंत्र साकेत नगर के लिए रवाना हुए।

१९. राम का गंगा पार करके वन में प्रवेश करना

राघव ने बड़ी भक्ति के साथ मन-ही-मन अयोध्या नगर को प्रणाम किया और गुह की लाई हुई नाव में बैठकर गंगा पार करने लगे। बीच धारा में पहुँचने पर सीता ने गंगा नदी को भक्ति के साथ हाथ जोड़कर प्रणाम किया और अत्यंत विनीत भाव से प्रार्थना करने लगीं—'हे माता गंगे! दशरथ नृप की आज्ञा से राज त्यागकर दुर्दशा को प्राप्त मेरे पति घोर कानन में चौदह वर्ष तक निवास करने जा रहे हैं। मैं उनके साथ भ्रमण करती हुई (अवधि-समाप्ति पर) यदि राम-लक्ष्मण के साथ सकुशल लौट आऊँगी, तो आपकी सेवा में असंख्य गायें, वस्त्र, मिष्टान्न आदि विविध चढ़ावें समर्पित करूँगी और भूसुरों को दान दूँगी।' इस प्रकार उन्होंने भव-भंग (संसार के पापों का नाश करनेवाली) धवलांग (धवल शरीरवाली) भवमौलिसंग (शिव के जटाजूट में निवास करनेवाली) गंगा की प्रार्थना की।

गंगा नदी पार करने के पश्चात् राम ने गुह का आभार मानकर उसे विदा किया और उसके बताये हुए मार्ग से सीता को बीच में करके आगे-आगे लक्ष्मण तथा पीछे-पीछ स्वयं चलने लगे। इस प्रकार तीन योजन का मार्ग तय करके सुधर्मद नामक सरोवर के निकट पहुँचकर उस दिन वहीं ठहर गये। उस भयंकर कानन में अकेली सीता को सोती हुई देखकर, अपनी दशा, अपनी माताओं का शोक, कैकेयी की इच्छा की पूर्त्ति, महाराज की सत्य-निष्ठा, प्रजा का दुःख—इन सब के बारे में अपने अनुज से कहते हुए रामचन्द्र की आँखों से अश्रु बहने लगे।

रात्रि व्यतीत हुई। प्रभात होते ही राघव वहाँ से रवाना हुए और तीन योजन चलकर पवित्र गंगा तथा यमुना के संगम-स्थल पर प्रयाग पहुँचे। वहाँ निवास करनेवाले मुनिलोक-वंद्य भरद्वाज मुनि को देखकर राम ने उन्हें प्रणाम किया और सारा समाचार उनसे निवेदन किया। उस तपोधन ने रघुवंशज उन दोनों भाइयों को आशीर्वाद दिये, रघुराम की सुशीलता पर आश्चर्य प्रकट किया और तथ्य को जान गये। उन्होंने कंद-मूल-फल आदि से उन्हें संतुष्ट करके बड़े प्रेम से उनका सत्कार किया। वहाँ उन्होंने बड़े आराम से रात बिताई और प्रातःकाल ही बड़ी निष्ठा से संध्योपासना करके मुनियों के आशीर्वाद प्राप्त किये। इसके पश्चात् पुण्यात्मा भरद्वाज से अनुपम चित्रकूट पर्वत का मार्ग जानकर वे वहाँ से विदा हुए। वन के बीच राम अपने धनुष की टंकार-मात्र सुनकर भागनेवाले मृग-समूहों को सीता को दिखाते हुए उनका मनोरंजन करते जाते थे। जब वे थक जाते या सीता थक जाती थीं, तो थोड़ी देर के लिए ठहर जाते और फिर चल पड़ते। इस प्रकार कई दुर्गम स्थलों को पार करके वे यमुना के तट पर पहुँच गये। यमुना को पार करत ही उन्होंने सिद्ध-वटवृक्ष (अक्षय वट) को देखा। सीता ने बड़ी भक्ति से अपनी कायसिद्धि-हेतु हाथ जोड़कर उस वृक्ष की प्रार्थना की। वे उस रात को वहीं ठहर गये। और, दूसरे दिन घोर जंगलों में सुरक्षित मार्ग से होते हुए उन्होंने माल्यवती से घिरकर,

श्रेष्ठ संयमी मुनियों के निवास-स्थान से होते हुए सुललित तरु-लताओं के समूह से भरे चित्रकूट को देखा । उस पर्वत पर निवास करनेवाले तपोधन मुनियों को देखकर उन्होंने प्रणाम किया और उनसे उचित आदर-सत्कार प्राप्त किया । फिर, उनकी आज्ञा प्राप्त करके राम और उनके अनुज दोनों ने एक स्थान पर बड़े उत्साह से पेड़ों की शाखाओं को काटकर अनोखी पर्णशाला बनाई । एक काले हिरन का वध करके गृह-शान्ति तथा हवन-आदि विधिवत् पूरा किये । उसके पश्चात् राम और सीता ने उस पर्णशाला की प्रशंसा करते हुए उसमें प्रवेश किया और मुनियों की प्रशंसा प्राप्त करते हुए उनकी चरित्र-चर्चाओं में आनंद लेते हुए वहाँ रहने लगे ।

२०. काकासुर-वृत्तांत

एक दिन सीता की जाँघ पर सिर रखे राम सोये हुए थे । सीता भोजन के लिए कंद-मूल-फल आदि तैयार कर रही थीं । तब निर्भय गति से एक दुष्ट कौआ पर्णशाला में प्रवेश करके उसका नाश करने लगा । सीता ने उसे भगाने का प्रयत्न किया, फिर भी वह भागा नहीं । वह इधर-उधर देखकर अंत में सीता के स्तन पर बैठकर चोंच मारने लगा । जब रक्त की धारा बहने लगी, तब राम जाग पड़े । उस दुष्ट कौए की करतूत पर क्रुद्ध होकर राम ने उस पर एक बाण चलाया । उसने कौए का पीछा किया । कौआ काँव-काँव करता हुआ (उस बाण से बचने के लिए) तीनों लोकों का चक्कर काटने लगा । मगर कहीं कोई रक्षक नहीं मिला । उसने दिक्पाल, ब्रह्मा तथा शिव की शरण माँगी । किन्तु उन्होंने कहा—'यह श्रीराम का शर है । इसे हम रोक नहीं सकते ।' तब वह कौआ फिर राम की शरण में आया । तब अत्यंत कृपा से उस कौए को देखकर राम ने कहा—'मेरा बाण कभी खाली नहीं जायगा । अतः तुम अपना कोई अंग उसे देकर अपनी जान बचाओ । तब कौए ने बड़ी भक्ति से अपनी एक आँख उस अस्त्र को भेंट की और वहाँ से चला गया । तब राम ने देवताओं को सीता के तैयार किये हुए फल आदि का भोग चढ़ाया और उसके पश्चात् सब लोगों ने उन फलों को ग्रहण किया ।

२१. सुमंत्र का अयोध्या पहुँचना

वहाँ सुमंत्र राम की गति-विधि जानने के लिए तीन दिन तक गुह के साथ रहे । फिर दूसरे दिन उन्होंने घोर दुःख से पीड़ित होते हुए अयोध्या नगर में प्रवेश किया । सहज श्री से हीन उस राज-मार्ग में जब वह जाने लगा, तब नगरवासी रथ की ध्वनि सुनकर यह कहते हुए सुमंत्र के पास आये कि देखो, रामभद्र आ गये हैं । किन्तु रथ में रघुराम को न देखकर वे सुमंत्र से कहने लगे—'हे क्रूरकर्मी, राम के बिना यह रिक्त रथ यहाँ क्यों लाये हो ?' इस प्रकार लोगों की भीड़ एकत्रित होकर उनकी निंदा करने लगी । सुमंत्र उन्हें रामचन्द्र का वृत्तांत सुनाते हुए राजा के अंतःपुर के निकट आ पहुँचे । वहाँ रथ से उतरकर वे राजा के निवास की ओर गये । उन्होंने धूलि-धूसरित शरीर तथा अश्रु-पूरित नयनों से, मन-ही-मन कुढ़नेवाले राजा को अविरत दुःख से अभिभूत होकर कौसल्या के घर में पड़े और विलाप करते हुए देखा । उन्होंने राजा को प्रणाम

करके कहा—'हे राजन्, आपके पुत्र-रत्न सत्यनिष्ठ राम तथा लक्ष्मण, दोनों ने जटाएँ धारण किये, गंगा को पार किया और पैदल चित्रकूट पर्वत की ओर चले गये हैं।'

इन वचनों को सुनकर राजा अत्यधिक शोक करने लगे। उन्होंने सुमंत्र को अपने निकट बुलाकर अपने पुत्र का समाचार विस्तार-पूर्वक जान लिया और उसके पश्चात् बोले—'हे अनघ, सुमंत्र, हे मतिमान्, तुम्हारे कारण मैं अपने रामभद्र का कुशल-समाचार जान पाया। नेत्रों का दुःख तथा मन का शोक दूर करनेवाले उसे (राम को) जी भरकर देखे विना मेरे ये प्राण शरीर में रहते नहीं दीखते। तुम मुझे राम के पास ले चलो।' तब सुमंत्र बोले—'राजन्, यदि आप श्रीराम के पीछे जायेंगे, तो प्रजा को दुःख होगा और कैकेयी आपकी निंदा करेंगी। अतः यह आपके लिए उचित नहीं है।' हे मानवेंद्र, आप इतना दुःख मत कीजिए, धैर्य धारण कर धर्म का पालन करते हुए पुण्यवान् बनिए। समस्त दुःख भूलकर विना किसी अभाव का अनुभव किये आपके पुत्र कानन में सुख-पूर्वक रहते हैं।'

इसके पश्चात् सुमंत्र ने लक्ष्मण के वचन राजा को सुनाये, तो राजा अत्यधिक ग्लानि का अनुभव करते हुए बोले—'सौमित्र के वचन सत्य हैं। मैं वैसा ही कामांध हूँ। क्रूर-कर्मी तथा पापी हूँ।' इस प्रकार कहते हुए राजा ने सुमंत्र को भेज दिया और स्वयं मन-ही-मन कुढ़ने लगे। उन्हें देखकर कौसल्या बोलीं—'हे राजन्, अब 'हे राम, हे राम, का आर्त्तनाद करते हुए चिंतित क्यों हो रहे हैं? क्यों ऐसा स्वांग भरते हैं? इस तरह शोक का अभिनय क्यों कर रहे हैं? क्या मैं सब बातें नहीं जानती? लोक-निंदा के भय से आपने स्वयं कैकेयी को सारी बातें सिखा दी थीं। फिर अपने राम का राज-तिलक करके उसे समस्त पृथ्वी का पालन कराऊँगा, ऐसी घोषणा करके आपने उसे वन भेज दिया है। आप महादुष्ट हैं। आप का भी कोई धर्म है? निंदा के भय से आपने मेरे पुत्र का राज-तिलक रोकने के लिए उसे वन भेज दिया है। निस्संकोच होकर यदि कैकेयी राम का वध करने के लिए भी कहे, तो आप उसका वध भी कर देंगे। बहुत समय तक संतानहीन होकर मैं दुःखी रहती थी। निदान कितने ही जप-तप और व्रतों के उपरांत मैंने इस इकलौते पुत्र को प्राप्त किया था और इससे मेरा चित्त कुछ शांत हुआ था। आपने मुझे शांत रहने भी नहीं दिया।'

इस प्रकार निंदा करनेवाली कौसल्या को देखकर राजा अपनी पूर्व-कथा उन्हें सुनाने का विचार करके बोले—'हे कौसल्ये! तुम जो कुछ कह रही हो वह सत्य ही है। मैं निश्चय ही पापकर्मी हूँ। अब बहुत समय तक मेरे शरीर में प्राण नहीं रहेंगे, इसलिए चिढ़ा-चिढ़ाकर मुझे मत मारो। मैंने जो पाप-कर्म पहले किये थे, वे वैसे ही नहीं टलेंगे। देवताओं को भी अपने कर्म का फल अवश्य भोगना ही पड़ता है। मैं अपनी एक कथा सुनाऊँगा। तुम उसे सुनो।'

२२. दशरथ का कौसल्या को अपने शाप का वृत्तांत सुनाना

"यह मेरी युवावस्था की बात है। मैं सारे राज्य पर शासन करता था। एक दिन अर्द्धरात्रि के समय में मृगया की इच्छा से धनुष-बाण लिये सरयू नदी के किसी अनुपम

घाट के निकट झाड़ियों में छिपा बैठा था । विविध मृग-समूहों के पानी पीने का शब्द मुझे सुनाई पड़ने लगा । जैसे-जैसे शब्द सुनाई पड़ने लगा, वैसे-वैसे मैंने शब्दवेधी बाण चलाकर उनका वध कर डाला । मैं इससे संतुष्ट न होकर वहीं ताक में बैठा रहा । उस समय यज्ञदत्त नामक एक मुनि-पुत्र वहाँ आया और अपना जल-कलश पानी में डुबोया । कलश के डूबने से जो 'गट्‌गट्' की ध्वनि सुनाई पड़ी, उसे सुनकर मुझे भ्रम हुआ कि वह कोई मत्त गज है । तुरन्त मैंने (शब्दवेधी) बाण चलाया । उस तीव्र शर के लगते ही—'हे पिता, हे माता, का आर्त्तनाद मेरे हृदय को चीरकर निकल गया । वह मुनि-पुत्र पृथ्वी पर गिरकर कहने लगा—'हाय, मैं वनों में कन्द-मूल-फल खाते हुए तपस्वी का जीवन व्यतीत करने, अपने माता-पिता की सेवा करता रहता हूँ । मैंने किसी का अहित नहीं चाहा । मुझे ऐसी घोर मृत्यु क्योंकर प्राप्त हुई ? कोई पापी रात के समय, रति-केलि में प्रवृत्त मृगों का वध नहीं करता । कौन है वह मदांध, जिसने अर्द्ध-रात्रि के समय मुझपर वाण चलाया है । न जाने उसकी क्या दुर्गति होगी ? अब मेरी मृत्यु को वह कैसे रोक सकेगा ? हाय मेरे अंधे, दीन तथा वृद्ध माता-पिता इस पुत्र-शोक को कैसे सह सकेंगे ? 'रात अधिक बीत गई है, अकेले गया हुआ है, उसके आने में इतना विलंब क्यों हो रहा है'—ऐसे सोचती हुई न जाने मेरी माता कितना दुःख करती रहेगी ? मेरे पिता मेरे नहीं लौटने का समाचार मेरी माता से कहकर न जाने शंकाकुल मन से कितने व्याकुल होते होंगे ? वे सोचते होंगे कि बाल-सुलभ-कौतुक में व्यस्त, हमारा पुत्र अभी तक लौटा नहीं है । या सोचते होंगे कि शायद जल लाने में असमर्थ होकर वह वहीं रह गया है । यदि वे मेरी मृत्यु का समाचार सुन लें, तो न जाने उनकी क्या दशा होगी ? उन्हें कौन जल ले जाकर देगा ? उनकी रक्षा आगे कौन करेगा ? हाय, इस एक शर से हम तीनों की मृत्यु एक साथ हो गई । विधि के क्रूर विधान को मैं क्या दोष दूँ ?'

"उस मुनि-पुत्र का आर्त्तनाद सुनकर मैं अत्यंत क्षोभ-युक्त हो, उस महापुरुष को देखने की तीव्र उत्कंठा लिये हुए अंधकार के दूर होने की प्रतीक्षा करने लगा। इतने में उस वनधि (वन) में मेरी शोक-वनधि (शोक-समुद्र) उमड़ाते हुए चंद्रोदय हुआ । तब मैंने सरयू नदी को पार किया और उत्तर की दिशा में ढूँढ़ने लगा । वहाँ मैंने एक स्थान पर मुनि-कुमार को अपने हाथ में जल-कलश को नीचे रखकर अपना कपोल कलश के मुँह पर टेककर पड़े हुए पाया । उसके वक्ष तथा पीठ से बहनेवाली रक्त-धाराओं से सारा शरीर भींग गया था । उसकी शिखा खुल गई थी और अत्यधिक पीड़ा से उसका मुख कांति-हीन हो गया था । शर के भीतर प्रवेश करने से वह इस प्रकार पड़ा हुआ था, जैसे कोई योगी आत्मचिंतन में लीन हो और वह दैहिक व्यापारों को रोक, इंद्रियों की गति का दमन करके अंतिम योग-क्रिया में विस्मृत होकर पड़ा हो ।

"उस सुंदर आकृतिवाले मुनि-कुमार को तथा अपने बाण को देखकर मैं घबड़ा गया । तुरंत मैंने नदी से जल लाकर उस मुनि-कुमार की आँखें पोंछीं तथा उसका सारा शरीर पोंछ डाला और फिर कहने लगा—'हाय मुनिनाथ ! प्रमादवश मेरे शर ने आपका वध कर डाला। इस नदी में जल के लिए आप क्यों आये ? मैं अब इस पाप से कैसे मुक्त होऊँगा ?'

"इस प्रकार मैं अपना दुःख प्रकट कर रहा था कि मुनि-कुमार ने आँखें खोलीं। उसने अपनी ओर, फिर मेरी ओर देखा, और मेरे भय को देखकर कहा—'हे राजन् ! आप क्या करेंगे ? आप क्यों दुःखी होते हैं ? मुझे मारने की शक्ति आपमें कहाँ है ? दैवयोग से ही मेरी ऐसी गति हुई है। इसके लिए आप क्यों शोक करते हैं ? आपने तो हाथी समझकर बाण चलाया था। जान-बूझकर तो नहीं चलाया। ब्रह्म-हत्या का दोष भी आपको नहीं लगेगा; क्योंकि मैं ब्राह्मण नहीं हूँ। मैं वैश्य-पिता और शूद्र-माता से उत्पन्न हुआ हूँ। मेरी मृत्यु देखकर आप विचलित मत होइए। आप मेरे माता-पिता को मेरी मृत्यु का संवाद न भी दें, तो भी वे योग-दृष्टि से सभी बातें जान लेंगे। तब यदि वे क्रुद्ध होकर आपको शाप देंगे, तो उससे रघुकुल का क्षय हो सकता है। हे राजेन्द्र, इस पहाड़ के निकट, पश्चिमी कोने में एक वटवृक्ष है। उसी वटवृक्ष के पास मैं एक काँवर में बिठाकर बड़ी श्रद्धा से उनकी सेवा-शुश्रूषा में लगा रहता हूँ। आज रात भी मैं उन्हें उस वृक्ष के कोटर में बिठाकर आया हूँ। आप शीघ्र इस कलश का जल लेकर वहाँ जाइए और उन्हें सावधानी से नीचे उतारकर निर्भय होकर उन्हें सारा वृत्तांत सुनाइए। हे राजन् ! इस अस्त्र के साथ मेरी मृत्यु अनुचित है। इसलिए धीरे-धीरे यह बाण निकाल दीजिए। शरीर की पीड़ा अब मुझसे सही नहीं जाती। मेरे प्राण अब नहीं रहेंगे।'

"मुनि कुमार के इन वचनों को सुनकर मैं धीरे-धीरे उनके निकट पहुँचा। अत्यधिक आत्म-ग्लानि से पीड़ित होते हुए मैंने उस शर को निकालने के लिए हाथ बढ़ाया, किन्तु भय से मेरा हाथ रुक गया। फिर साहस बटोरकर काँपते तथा दुःखी होते हुए मैंने उस शर को निकाल दिया। उसी क्षण मुनिकुमार की मृत्यु हो गई।

"मन-ही-मन दुःखी होते हुए मैं जल-कलश लेकर मुनि के आश्रम में पहुँच गया और वहाँ अपने सुत की प्रतीक्षा करते हुए पर-कटे पक्षियों की तरह पड़े हुए वृद्ध तथा अंधे पुण्यात्माओं को देखा। निकट सुनाई पड़नेवाली आहट सुनकर मुनि कहने लगे—'हे पुत्र, इस प्रकार कहीं विलम्ब किया जाता है ? मैं तुम्हारी माता के साथ यही सोच रहा था कि इतना विलंब करने का क्या कारण है ? क्या तुम एक ही स्थान में इतने समय तक ठहर सकते हो ? तुमने कहाँ इतनी देर लगाई ? तुम्हीं तो हमारी आँखें हो। हम अत्यंत वृद्धों के लिए तुम्हीं आधार हो। हम गतिहीनों के लिए तुम्हीं सद्गति हो। भला, तुम बोलते क्यों नहीं ? मैंने तुम्हें कहा ही क्या है ? हे पुत्र, मैं तो केवल जल माँग रहा हूँ।'

"मुनि के ये वचन मेरे मन के भय और शोक को बढ़ाने लगे। मैंने शीघ्र वृक्ष पर चढ़कर काँवर नीचे उतारा और अत्यंत दीन होकर थर-थर काँपते हुए, एक क्षण तक इस दुविधा में पड़ा रहा कि सारा समाचार कहूँ या न कहूँ। फिर यह सोचकर कि किसी भी तरह मुझे कहना ही पड़ेगा, मैंने गद्गद स्वर से कहा—'हे उत्तम तपस्वी, मैं राजा दशरथ हूँ। मैं आपका पालक हूँ, पुत्र नहीं हूँ। मैंने आज एक ऐसा नीच कर्म किया है, जिसे सुनकर नीच व्यक्ति भी मेरी निंदा करेंगे। किसी भी युग में किसी और ने जो पाप नहीं किया होगा, वैसा पाप करके मैं आज आपके पास आया हूँ। मैं कैसे कहूँ ? विधि ने

ही मुझसे ऐसा दुस्साहस करने के लिए प्रेरित किया है । सरयू नदी के तट पर मैं अँधेरी निशा में मृगया के लिए गया था और मृगों के आने के स्थान के पास छिपकर उनकी आहट सुनकर उनपर शब्दवेधी बाण चलाकर उनका शिकार करता था । संयोग की बात, उसी समय आपके पुत्र ने नदी के प्रवाह में जल के लिए कलश डुबोया । उसकी ध्वनि सुनकर मुझे हाथी का भ्रम हुआ और मैंने बाण चला दिया । हे अनघ, मेरे उस शक्ति-शाली बाण ने आपके पुत्र के प्राण हर लिये ।'

"इतना सुनना था कि मुनि का हृदय धक् से रह गया और वे मूर्च्छित हो गये । मुनि-पत्नी 'हाय पुत्र !' कहकर भूमि पर निश्चेष्ट हो गिर पड़ी । थोड़ी देर के बाद मेरा विलाप सुनकर उनकी मूर्च्छा छूटी, तो उन्होंने मुझे देखकर कहा—'हे दशरथ ! तुमने हमको शोकाग्नि में जलाने के लिए हमारे पुत्र को कहाँ छिपा रखा है ? वन में तपस्या करते हुए हम अंधे तथा वृद्ध को मारकर तुमने घोर पाप किया है । तुम्हारा बाण लगते ही न जाने हमारे पुत्र ने क्या कहा होगा ? कौन जाने कि उस हृदय-पीड़ा से उसके प्राण निकल गये या अभी तक वह तड़प रहा है । क्या मृत्यु का कोई कारण नहीं होना चाहिए क्या बाण विना कारण ही मुनि-पुत्र के प्राण हर सकता है ? वानप्रस्थ-आश्रम में जीवन व्यतीत करनेवालों का वध, चाहे इन्द्र भी करें, तो उसका भी नाश हो जाता है, तो राजा की क्या गिनती ? हे राजन्, तुमने अनजान में हमारे पुत्र का वध किया है, इसलिए तुम पर क्रोध करना उचित नहीं है । अपने पुत्र को देखे विना हमारी शोकाग्नि शांत नहीं होगी । हमें अपने पुत्र के पास ले चलो ।'

"इस प्रकार शोक-विह्वल उन वृद्ध तपस्वियों को ले जाकर उन्हें उनके पुत्र को दिखाकर मैंने कहा—'यही आपका पुत्र है । मुनि-पत्नी हाथों से टटोलते हुए कहने लगी, 'कहाँ है वह दयालु, उदार और विमलचेता ? कहाँ है वह तपोधन तथा पुण्यवान् ? कहाँ है वह विद्वानों की प्रशंसा के योग्य आचरणवाला ? कहाँ है वह सतत वेदाध्ययन में तत्पर ?' यों कहती हुई वह अपने पुत्र पर गिरकर विलाप करने लगी । फिर उन्होंने उसे अपनी गोद में लिटाकर उसके भींगे हुए केशों पर सिर रखकर रोती हुई कहने लगी—'हे विमलात्मा, हे यज्ञदत्त, हे सदाचरणवाले, हे धर्म-निपुण, तुम हमसे कहे विना कभी कहीं नहीं जाते थे । आज तुमने ऐसा क्यों किया ? आज स्वर्गलोक की यात्रा के लिए जाते समय तुमने मुझसे क्यों नहीं कहा ? हे मेरे वंश-तिलक ! मैं बड़ी पापिनी हूँ । अर्द्ध-रात्रि के समय मैंने तुमसे (जल के लिए) जाने को कहा । गुरुजनों की भक्ति में संसार में अद्वितीय पुत्र को मैंने खो दिया । मेरे लिए अब तपस्या किसलिए ? तुम्हारे साथ परलोक जाने में ही मेरी सद्गति है । कहाँ तीक्ष्ण बाण और कहाँ तुम्हारे प्राण ? कहाँ राजा दशरथ और कहाँ तुम ? हाय ! अन्त में तुम्हारे कर्म-फल ने इन सबका संयोग करके तुम्हारे प्राण ले लिये हैं ।'

"शोक-संतप्त माता के इस तरह के आर्त्तनाद को सुनकर मुनि अपने पुत्र पर गिरकर कहने लगे—'हाय पुत्र ! तुम तो मेरे पास आकर मेरी सेवा करते थे । आज मैं तुम्हारे पास आया हूँ, तो भी तुम मेरी सेवा-शुश्रूषा नहीं करते हो, क्या तुम्हें यह उचित है ?

इस बाण से जो घाव तुम्हें लगा, उसके द्वारा क्या तुम्हारा सारा निर्मल गुण-समूह निकल गया ? मैं अब किसे वेद पढ़ाऊँगा ? किसे अब शास्त्र समझाऊँगा ? किसे धर्म सुनाऊँगा ? काव्य किसे समझाऊँगा ? हमारी आवश्यकता पहचानकर हमें कौन फल तथा जल लाकर देगा ? मैंने सदा तुम्हें चिरायु रहने का ही तो आशीर्वाद दिया है ? कब मैंने वज्रसम शक्तिशाली बाण से तुम्हारी मृत्यु की कल्पना की थी ? हे पुत्र, तुम मुझे भी अपने साथ ले चलो, तो मैं यम से भी पुत्र-भिक्षा देने की प्रार्थना करूँगा । संसार की यही रीति है कि पुत्र अपने माता-पिता के परलोक-संबंधी क्रिया-कर्म करते हैं । आज विधि ने उस क्रम को उलट दिया और तुम्हारे क्रिया-कर्म करने के लिए हमें नियोजित किया । जबतक तुम रहे, तुमने बड़ी भक्ति से हमारी सेवा करके हमारी रक्षा की । हे पुण्यचरित्र ! मैं किस युग में तुम्हारे जैसा पुत्र प्राप्त करूँगा ? तुम पाप-रहित हो, श्रेष्ठ तपोनिधि हो, गुरुभक्त, परमार्थी, आर्य, धर्मनिष्ठ, दानी, पर-दुःखनिवारण करनेवाले, अन्न आदि महादान करनेवाले जो पुण्य लोक प्राप्त करते हैं, वही तुम भी प्राप्त करो ।'

"इस प्रकार शोक करते हुए उन्होंने अपने पुत्र का यथाविधि अग्नि-संस्कार किया । यज्ञदत्त ने देवताओं के विमान में आरूढ़ हो आकाश की ओर प्रस्थान करते हुए कहा—'हे गुरुजनो, मैंने स्वर्गलोक का भोग प्राप्त किया है, आपकी सतत सेवा करते हुए पुण्यवान् हुआ हूँ । अब मेरी मृत्यु का आप शोक मत कीजिए । जिस समय जो होना चाहिए, वह हुए विना नहीं रहता । होनहार होकर ही रहता है । आप इन पर (राजा पर) क्रोध न कीजिए ।' इस प्रकार कह उसके स्वर्गलोक चले जाने के बाद, उन्होंने पुत्र-प्रेमजन्य दुःख से प्रेरित होकर मुझे शाप दिया—'हे राजन् ! लो, हम पुत्र-शोक से मर रहे हैं, तुम भी हमारे समान ही पुत्र-शोक के कारण मृत्यु को प्राप्त करोगे ।' इस प्रकार, कहकर उन्होंने वहीं अपने प्राण छोड़ दिये ।"

२३. दशरथ का स्वर्गवास

'यही मेरा कर्म-फल है, जिसे भोगने का समय आसन्न है । अग्निसम पवित्र उन तपस्वियों का अग्नि-संस्कार करके मैं नगर में लौट आया । मेरा धैर्य छूट गया है । मेरी बुद्धि भ्रमित हो रही है, कंठ सूख रहा है, आँखें देखने में असमर्थ हो रही हैं, दूसरे के शब्द सुनाई नहीं पड़ रहे हैं, अब मेरे प्राण रोकने पर भी इस शरीर में नहीं रुकेंगे । मेरे लिए कल्पतरु, बुद्धिमान्, पराक्रमी, गुणवान्, मेरा भाग्य-प्रद, शुभ-गुण-संयुक्त राम को इस समय मैं नहीं देख पा रहा हूँ । आज सात दिन हुए, मैंने राम को नहीं देखा । राम को छोड़कर मैं कैसे रह सकता हूँ ?' इस प्रकार 'हा राम ! हा राम !' का आर्त्तनाद करते हुए दशरथ का स्वर्गवास हो गया ।

शोक से अत्यधिक पीड़ित होकर राजा सो गये हैं, ऐसा सोचकर कौसल्या भी सो गई । प्रभात होते ही वंदी तथा मागध स्तुति-पाठ करने लगे, मंगल-वाद्य बजने लगे और नगर-निवासी एकत्रित होकर राजा के दर्शनार्थ उत्कंठा से प्रतीक्षा करने लगे । प्रतिदिन की तरह राजा अबतक जगे क्यों नहीं, यह सोचते हुए परिचारक राजा की शय्या के निकट गये और राजा को सोई हुई दशा में देख उन्हें कुछ भय हुआ । लंबी साँस भरते हुए

उन्होंने राजा के हाथ-पैर छूकर देखे । उन्हें अब ज्ञात हो गया कि राजा के शरीर में प्राण नहीं हैं । तब वे रुदन करने लगे । कौसल्या हड़बड़ाकर उठी, सुमित्रा भी जागकर आई। उन दोनों ने राजा को देखा और ऊँचे स्वर में विलाप करने लगीं--'हाय प्राणनाथ, हाय महाराज ! आप हमें छोड़कर चले गये।' यह विलाप सुनकर कैकेयी दौड़ी हुई आई। दोनों ने सर पीटते हुए कैकेयी को देखकर कहा--'हाय कैकेयी ! आज तुम्हारी इच्छाएँ पूरी हुईं । तुमने काकुत्स्थ-वंश का सर्वनाश किया । राम को वन में भेजकर अपयश का सहन करते हुए तुमने दशरथ के प्राण ले लिये । आज से तुम अपने पुत्र के साथ समस्त पृथ्वी का उपभोग करो ।'

इस प्रकार, कौसल्या आदि रानियाँ कैकेयी को घेरकर रोने-कलपने लगीं । वह सर झुकाये अत्यधिक शोक से अपने पति के शरीर पर गिरकर कई प्रकार से विलाप करने लगी। कौसल्या की चेतना जब लौट आई, तब उन्होंने कहा--'हे राजन् ! क्या आप जैसे धर्मात्मा की ऐसी मृत्यु होनी चाहिए ? आपके आदेश का उल्लंघन न करके मैं धोखा खा गई । आपकी सत्यनिष्ठा ने आपकी यह दशा कर दी । अत्यंत क्रूर स्त्री कैकेयी को देखकर और राम के वनवास के दुःख से अभिभूत होकर मैं आपकी उचित परिचर्या न कर सकी । आपकी इच्छा का पालन करते हुए वन में निवास करके राघव महायश का भागी बना । सत्य का पालन करके आपने स्वर्ग-सुख को प्राप्त किया । अब मुझे केवल आप जैसे उत्तम पति को कटुवचन सुनाने का पाप मिला ।'

इस प्रकार, कौसल्या को विलाप करते देख सुमित्रा आदि रानियाँ ऊँचे स्वर में रुदन करने लगीं । बात-की-बात में यह समाचार सारे नगर में फैल गया । स्त्रियों के विलाप से सारा आकाश गूँजने लगा । सूर्योदय के होते ही अत्यंत भीत हो राजा के मित्र, नातेदार, सामंत-राजा, वसिष्ठ आदि मुनि, ब्राह्मण तथा नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति, आकर शोक व्यक्त करने लगे । वसिष्ठ मुनि मंत्रियों के परामर्श के पश्चात् महाराज दशरथ के शरीर को तेल में डुबोकर मणिमय सिंहासन पर उसे बैठा दिया, मानों वे दरबार में बैठे हुए हों । उसके पश्चात् उन्होंने सामंत राजाओं को तथा मंत्री और राजनीतिज्ञों को संबोधित करते हुए कहा--'महाराज साम्राज्य का पालन करके सुरधाम चले गये । पिता का वचन पालन करने के लिए राम अपनी स्त्री के साथ वन-वास करने गये। उससे पूर्व ही शत्रुघ्न के साथ भरत अपने मामा के नगर गये हैं । यदि हम रामचन्द्र को बुला भेजें, तो वे नहीं आयेंगे । वे अपने प्रण के पालन में पटु हैं । इसलिए हमें राजकाज को सँभालने के लिए भरत को शीघ्र बुलाना चाहिए । राजा के बिना कोई भी देश, नगर या राष्ट्र शोभा नहीं देता । दण्डनीति, दान-धर्म आदि की व्यवस्था बिगड़ जायगी । शत्रु प्रबल हो जायेंगे । जार-चोर आदि की वृद्धि होगी । दुर्जन सज्जनों को दुःख देने लगेंगे । सामंत, दुर्ग-रक्षक आदि कर नहीं देंगे ।'

ऐसा निश्चय करके उन्होंने धीमान्, जयन्त आदि चार मंत्रियों को बुलाकर कहा-- 'तुम लोग भिन्न-भिन्न वस्त्राभरण लिये हुए वज्रपुर जाओ और भरत को यहाँ की घटनाओं का पता दिये बिना सिर्फ इतना कहो कि गुरु वसिष्ठ ने आपको लिवा लाने के लिए हमें

भेजा है । तुम उन्हें अपने साथ अवश्य लिवा लाना, शीघ्र जाओ । वे मंत्री घोड़ों पर सवार हो रथ की गति से चलते हुए विभिन्न नगरों, जनपदों, नदियों, काननों, पहाड़ों तथा झाड़ियों को पार करते हुए केकयराज के नगर में जा पहुँचे । दशरथ की मृत्यु के सातवें दिन रात को वहाँ उन्होंने (भरत और शत्रुघ्न) स्वप्न में देखा कि उनके पिता गोबर तथा कीचड़ से भरे विशाल गढ़े में गिर पड़े हैं । समुद्र सूख गया है, चन्द्र पृथ्वी पर गिर गया है; भद्रगज का एक दाँत टूट गया है । ऐसे दुःस्वप्न देखकर वे जाग पड़े और अत्यंत भीत होकर अपने इष्ट-मित्रों को स्वप्न का वृत्तांत सुनाकर, उसका फल जानना चाहा । इसी समय अयोध्या के दूत वहाँ पहुँचे और भरत को प्रणाम करके साथ लाई हुई भेंट उन्हें देकर अत्यंत विनीत भाव से बोले—'हे देव, किसी कार्यवश वसिष्ठजी ने आपको शीघ्र लिवा लाने के लिए हमें भेजा है । अतः आप शीघ्र प्रस्थान कीजिए ।'

दूतों के कृत्रिम हाव-भाव देखकर वे और भी भीत हो गए । उन्होंने अपने मामा से सारा वृत्तांत कह सुनाया और सादर उनकी आज्ञा प्राप्त करके रथ पर आरूढ़ हो, मंत्री तथा चतुरंगिणी सेना के साथ चल पड़े । अत्यंत वेग से यात्रा करते हुए वे सात दिनों में अयोध्या पहुँच गये ।

२४. भरत का अयोध्या में प्रवेश

अयोध्या में प्रवेश करते ही उन्होंने देखा कि सारा नगर पतिहीना पत्नी के समान तथा चन्द्रहीन रात्रि के समान श्रीहीन होकर उजड़ा हुआ दीख रहा है । यह ढंग देखकर वे मन-ही-मन व्याकुल होकर सोचने लगे कि आज सारा नगर शून्य-सा लग रहा है । नगर-निवासी मुझे देखकर आँखों से आँसू बहा रहे हैं । मुझसे कतराते हुए जा रहे हैं । क्या कारण है कि दूकानों में कोई भी चीज सजाकर नहीं रखी गई है ? यों सोचते हुए अंतःपुर के फाटक पर वे रथ से उतर गये और आप और शत्रुघ्न शून्य-से दीखनेवाले अंतःपुर में पहुँचे । उनको देखते ही कैकेयी बड़े प्रेम से उनके सामने आई और उन्हें हृदय से लगा लिया । तब उन्होंने बड़ी भक्ति से उनको प्रणाम किया और अपने मामा की दी हुई भेंट उन्हें देकर उनका कुशल-समाचार कह सुनाया । उसके उपरांत भरत ने माता से पूछा—'हे माता, यह कैसा आश्चर्य है कि सारा अंतःपुर वैभवहीन होकर शून्य-सा लग रहा है । राम-लक्ष्मण और महाराज सकुशल तो हैं ?' तब बहुत चिंतित होती हुई कैकेयी ने भरत के संभ्रम को बढ़ाती हुई मंद हास के साथ कहा—'हे वत्स, किसी दिन तुम्हारे पिताजी ने बड़े प्रेम से मुझे दो वर दिये थे । मैंने एक वर से भरत का राज-तिलक और दूसरे वर से राम के वनवास की प्रार्थना की । पिता की आज्ञा के अनुसार राम, जानकी-लक्ष्मण-समेत वन-वास के लिए चला गया । पुत्र के वियोग से महाराज स्वर्ग सिधारे । ईर्ष्यावश मैंने तुम्हारे लिए यह व्यवस्था कर ली । अब राज्य सँभालो, प्रजा का पालन करो, ऐश्वर्य प्राप्त करो और अपने बाहुबल से राज्य की रक्षा करो । इसके विपरीत कुछ मत कहो ।'

इन बातों को सुनते ही भरत मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े । थोड़ी देर के बाद सँभलकर उन्होंने अत्यंत क्रोध से कैकेयी को देखकर कहा—"हे माता ! मेरी माता

होती हुई तुम निर्दयता से ऐसा कठोर आचरण कैसे कर सकी ? राम को मुनि-वेष में वनवास की आज्ञा तुम कैसे दे सकी ? निर्मल धर्माचरण करनेवाले रघुवंशियों की रीति तुम्हें क्या मालूम नहीं है ? मैं अपने पिता की मृत्यु पर कैसे शोक कर सकता हूँ ? कौन-सा मुँह लेकर राम को देख सकता हूँ ? हाय ! न जाने मन-ही-मन राम कितने व्याकुल हुए होंगे ? न जाने लक्ष्मण को कितना क्रोध आया होगा ? वन के लिए जाते समय सीता ने न जाने मुझे कितने अपशब्द कहे होंगे ? कौन जाने, माता कौसल्या की क्या दशा हुई ? माता सुमित्रा तथा अन्य रानियाँ न जाने कितनी दुःखी होती होंगी ? इनके सामने विलाप करने के लिए मैं कहाँ योग्य रहा ? मैं उनके मन की व्यथा दूर कैसे कर सकूँगा ? मुझे अब यह नगर किसलिए ? मुझे राजभोग किसलिए ? निश्चय, वन ही अब मेरे लिए शरण है । घोर पापिनी तुम्हारी माता ने एक राक्षस से तुम्हें जन्म दिया होगा । तुम महाराज केकय से उत्पन्न पुत्री नहीं हो । अब मैं तुमसे क्या कहूँ ?" इन सब बातों को आड़ में खड़ी छिपकर सुननेवाली मंथरा को देखकर लोगों ने कहा--'इसीने इतने सारे पाप कराये' यह सुनते ही शत्रुघ्न ने उस वृद्ध स्त्री की टाँग पकड़कर एकदम उसे उठाया और बड़े जोर से उसे घुमाकर इस तरह नीचे फेंक दिया कि उसकी कूबड़ जाती रही, केश बिखर गये और सभी भूषण तितर-बितर होकर गिर पड़े । सभी स्त्रियाँ देखती रह गईं । कैकेयी आदि अन्य रानियाँ भागने लगीं । कैकेयी का वध करने के लिए शत्रुघ्न को जाते हुए देख भरत ने कहा—'इस पापिन को मारकर हम पाप क्यों कमायें ? रामचन्द्रजी सुनेंगे, तो मातृहंता कहकर हमसे घृणा करेंगे । इसलिए तुम यह काम मत करो ।'

२५. भरत का कौसल्या के घर जाना

वहाँ से निकलकर भरत अनुज के साथ कौसल्या के यहाँ गये और उनके चरणों में सर नवाकर शोक-संतप्त हृदय से दोनों भाई उच्च स्वर से विलाप करने लगे । तब भरत को देखकर कौसल्या बड़े क्रोध से इस प्रकार बोलने लगीं--'पति को खोकर, सुत से अलग रहते हुए अत्यंत दुःख से पीड़ित मैं रोती हूँ, तो वह स्वाभाविक ही है । तुम क्यों रो रहे हो ? तुमने जैसा चाहा, तुम्हारी माता ने कर दिया । हे वत्स, अब तुम राज्य सँभालो । यह सुनकर अत्यंत भीत हो, हाथ जोड़े कौसल्या के पीछे चलते हुए भरत कहने लगे— 'माताजी—यदि मैंने मन, वचन तथा कर्म से श्रीराम का अहित किया हो या पृथ्वी का पालन करना चाहा हो, कैकेयी के मन की इच्छा मुझे मालूम रही हो, एक भी अहित मैंने सोचा हो, तो मैं उस पापी की गति प्राप्त करूँ, जिसने मद्य पिया हो, निर्धन ब्राह्मण का वध किया हो, गुरु-पत्नी से व्यभिचार किया हो, युद्ध में अपजय प्राप्त की हो, दुष्टता से सोना चुराया हो, गाय की हत्या की हो, न्याय-रहित होकर राज्य-पालन किया हो, बराबर चुगली खाई हो, शरणार्थी को शरण नहीं दी हो, माता-पिता को अपशब्द कहे हों, श्रेष्ठ धर्म को बेचा हो, स्वामी से द्रोह किया हो, गुरुजनों को अपशब्द कहे हों, सतत पापी होकर असत्य कहा हो, दूसरों के धन की इच्छा की हो और पर-स्त्री गमन किया हो । मैं रामचन्द्रजी का अहित क्यों करूँगा ? मैं कहाँ और ये नीच कर्म कहाँ ?' इस प्रकार विलाप करनेवाले भरत के शोक का आधिक्य समझकर कौसल्या आत्म-ग्लानि का

अनुभव करती हुई सोचने लगी--'हाय ! मैंने ऐसे पुण्य-चरित को क्यों कोसा ?' फिर उन्होंने भरत तथा शत्रुघ्न को हृदय से लगा लिया और परिताप से विलाप करने लगी ।

तब संयमी वसिष्ठ उन्हें लेकर राजा के अंतःपुर में गये । वहाँ रत्न-पीठ पर राजा का शव रखा था । राजा की आँखें बन्द थीं, मानो राजा ने यह विचार कर लिया हो कि यह पापिन कैकेयी का पुत्र है, इसे नहीं देखना चाहिए । पिता का शव देखकर भरत मूर्च्छित हो गये । थोड़ी देर में सँभलकर अत्यधिक पीड़ित हो आर्त्तनाद करने लगे--'हे राजन्, मैं कैकेयराज के यहाँ से अनुपम मणि-भूषण आपके लिए ले आया हूँ । इन्हें स्वीकार क्यों नहीं करते ? आप मेरी ओर देखते क्यों नहीं हैं ? मेरा दोष क्या है ? पापिन कैकेयी का पुत्र हूँ, क्या इसलिए आप मुझे देखना नहीं चाहते ? हे महाराज ! इस सुमित्रा-पुत्र को तो देखिए । वह दुःख से कैसे तड़प रहा है । शत्रुघ्न को उठाकर उसके शरीर पर लगी धूल को आप पोंछते क्यों नहीं ? इस पर कृपा कीजिए । इससे बोलिए । इसने क्या किया है ? इसे अपने हृदय से लगा लीजिए । आपके सद्‌गुण, आपकी दया और आपका स्नेह कहाँ छिप गये हैं । हे पिता, क्या कैकेयी ने आपकी बुद्धि को कलुषित कर दिया है ? क्या ऐसी मृत्यु ही आपके भाग्य में लिखी थी ? राजाओं की मृत्यु तो होती ही है, किन्तु ऐसी मृत्यु कहीं नहीं होती । मैं इन कष्टों से कैसे पार पाऊँगा ? हाय, मैं क्या करूँ ?'

इस प्रकार विलपते हुए भरत को देखकर वसिष्ठ ने कहा--'तुम्हारे पिता ने साठ सहस्र वर्ष तक पृथ्वी पर शासन किया और मनु के धर्म-पथ पर चलते हुए समस्त धर्मों का पालन किया । अंत में तुम जैसे पुत्रों को प्राप्त किया । इसलिए तुम शोक मत करो। इनकी देह का अग्नि-संस्कार करो ?'

मुनि की आज्ञा शिरोधारण कर भरत ने दूसरे दिन, मुनियों, राजाओं तथा अन्य महात्माओं को बुलाया । दशरथ के शव को तीर्थ-जलों से स्नान कराया और श्रेष्ठ वस्त्र, तथा भूषणों से उसे सजाया । वेदोक्त विधि से दान आदि देने के पश्चात् उस शव को अरथी पर रखा । इसके उपरान्त मंत्र-पूत अग्नि को लिये हुए वे (भरत) अनुज तथा मुनिजनों के साथ अरथी के आगे-आगे चलने लगे । अरथी के अगल-बगल में उच्च स्वर में रुदन करती हुई कौसल्या आदि रानियाँ लड़खड़ाती हुई चलने लगीं । सरयू के निकट श्मशान में चिता सजाई गई । उसमें त्रेताग्नियों को प्रतिष्ठित करके वेद-विधि से (भरत ने) महाराज दशरथ के शव का अग्नि-संस्कार किया, तिलोदक दिया, पिंडदान किया और फिर अंतःपुर में लौट आये । उन्होंने बारह दिन तक विधि-युक्त क्रिया करते हुए ब्राह्मणों को दान आदि देकर संतुष्ट किया ।

अंत्येष्टि-क्रियाओं की समाप्ति के पश्चात् इक्ष्वाकुओं के कुलगुरु मुनि वसिष्ठ आगे होने योग्य कार्यों का विचार करके, सामंत राजाओं तथा मंत्रियों को साथ लिये भानु-सम उज्ज्वल भरत के निकट पहुँचकर बोले--'हे वत्स, तुम्हारे पिता परलोक सिधार गये हैं । और तुम्हारे भाई राम वनवास के लिए गये हैं । राज्य में कोई राजा नहीं रहे, तो राज-काज चल नहीं सकते । प्रजा उच्छृंखल हो जायगी; पृथ्वी विचलित होगी और समस्त

धर्मों का पतन हो जायगा, शत्रु प्रबल होंगे और वर्णसंकर पैदा होंगे । राज्य को राजा-रहित नहीं रहना चाहिए । तुम विमलमतिमान् हो; तुम राज्य का भार सँभालो ।'

मुनि के उपदेश सुनकर भरत ने हाथ जोड़कर कहा—'हे मुनिनाथ, क्या मैं इतना मूर्ख हूँ कि अपने कुल की रीति न जानूँ ? मेरी माता ने मेरे अग्रज को वन भेजकर मेरे पिता के प्राण ले लिये हैं । क्या यह (दंड) मेरे लिए पर्याप्त नहीं है ? क्या अब राज्य करने की बात भी मैं सोचूँ ? आप आगे कुछ मत कहिए । मैं कैकेयी का पुत्र हूँ, इसीलिए तो आप मुझसे ऐसी बातें कहते हैं । अन्यथा आप मेरे संबंध में ऐसे विचार मन में नहीं लाते । मैं तुरंत अपने भाई राम के पास जाऊँगा । उनसे प्रार्थना करके उन्हें लौटा लाऊँगा और उनका राज-तिलक कराऊँगा । यदि मैं ऐसा नहीं कर सका, तो जैसे मेरे भाई ने मुनि-वृत्ति ग्रहण की, वैसे मैं भी मुनि-वृत्ति लूँगा । इसके सिवा मेरे लिए और कोई मार्ग नहीं है ।'

२६. भरत का राम के पास जाना

इस प्रकार निश्चय करके भरत ने मंत्रियों को देखकर कहा—'हमें अपने बड़े भाई के दर्शनार्थ जाना है । मार्गों को ठीक करो और सभी नगरवासियों को मार्ग में जहाँ-तहाँ ठहरने के लिए उचित व्यवस्था करके आवश्यक वस्तुओं का संग्रह करो ।' मंत्रियों ने उनकी आज्ञा का पालन किया । दूसरे दिन वंदी-मागध, मंत्री, सुकुमार नर्त्तकी, नट, नौ सहस्र हाथी, एक लाख अश्व, साठ सहस्र रथ और असंख्य पदचर सेना, सभी नगरवासी तथा धन एवं रत्नराशियों को साथ लिये वसिष्ठ आदि मुनि, राजा, मंत्री और प्रतिष्ठित जनों के संग, भरत, शत्रुघ्न तथा उनकी माताएँ विविध वाहनों पर सवार होकर चले । इस प्रकार, चलकर सब गंगातट पर पहुँचे और वहाँ पड़ाव डाला । अत्यंत बाहुबली गुह को यह मालूम हुआ कि कैकेयी-पुत्र सेना के साथ राम पर आक्रमण करने के लिए जा रहे हैं, तो वह अत्यंत क्रुद्ध हुआ और अपने दल-बल-सहित भरत के पास पहुँचकर बोला—'हे भरत, जब रामचन्द्र आपको अपना सारा राज्य देकर वन में रहते हैं, तब क्या आपको यह उचित है कि आप अपनी सेना के साथ उनपर आक्रमण करने चलें ? मैं राम का सेवक हूँ । मैं आपको जाने नहीं दूँगा । मैं आपकी सेना का संहार कर डालूँगा । आपसे युद्ध करते हुए मैं मर जाऊँगा । तभी आप राम पर आक्रमण कर सकेंगे ।'

गुह के इन रोषपूर्ण वचनों को सुनकर भरत विमल मन से हँसते हुए बोले—'हे गुह, मैं परमात्मा रामचन्द्र से प्रार्थना करके उन्हें अयोध्या लौटाकर उनका राज-तिलक संपन्न कराने के उद्देश्य से ही उनकी सेवा में जा रहा हूँ । तुम अपने मन में अन्यथा समझकर ऐसे वचन मत कहो ।' इस प्रकार कहकर भरत ने गुह को हृदय से लगाया और उसके मन की राम-भक्ति समझ गये । गुह ने भरत के चरणों पर मस्तक नवाकर अनुपम वन-वस्तुओं की भेंट की । फिर वह भरत को उस स्थल पर ले गया, जहाँ पहले राम गंगातट पर ठहरे थे । भरत ने अपना पड़ाव वहीं डाल दिया । उसके पश्चात् गुह उन्हें उस स्थल पर ले गया, जहाँ राम ने जटाएँ धारण की थीं । उस स्थल को देखकर सभी नगरवासी, मुनि, मंत्री तथा भरत अत्यंत दुःखी हुए । तब भरत ने अत्यंत दीन होकर वट का दूध मँगवाकर अपने भाई शत्रुघ्न के साथ जटाएँ धारण कर लीं ।

दूसर दिन नित्यकर्मों से निवृत्त होकर भरत ने गुह के द्वारा मँगाई गई पाँच सौ विशाल नावों में चढ़कर माताओं, मुनियों, मंत्रियों तथा सेना के साथ गंगा नदी पार की। वहाँ से गुह को साथ लिये हुए, उसके बताये मार्ग पर चलते हुए भरद्वाज के उस आश्रम के पास पहुँचे, जहाँ से निकलनेवाले यज्ञ-धूम से सारा आकाश व्याप्त होकर बादलों का भ्रम उत्पन्न कर रहा था तथा जिन्हें देखकर मोर अपने पंखों को फैलाकर आनंदोन्मत्त हो नाच रहे थे। उनके पंखों के समूह से सारा आश्रम-स्थल ऐसा दीख रहा था, मानों विचित्र रत्न-तोरणों से सारा आश्रम अलंकृत किया गया हो।

२७. भरत का भरद्वाज के आश्रम में पहुँचना

भरत ने अपनी सारी सेना आश्रम से बहुत दूर पर ठहराकर आप स्वयं उस पुण्यात्मा भरद्वाज मुनि के दर्शनार्थ गये और मुनि को देखकर प्रणाम किया। भरद्वाज बड़े रुष्ट होकर बोले—'हे भरत, जब राम-राघव वन में निवास कर रहे हैं, तब तुम अपनी चतुरंगिणी सेना लेकर उनपर आक्रमण करने क्यों जा रहे हो ?' मुनि का क्रोध समझकर भरत भय तथा विनय के साथ बोले—'हे मुनीश्वर, मैं तो रामचन्द्रजी से राज्य ग्रहण करने की प्रार्थना करने जा रहा हूँ। दूसरे किसी उद्देश्य से नहीं। आप अन्यथा न समझें।'

भरत की बातों से हर्षित होकर भरद्वाज बोले—'हे अनघ, तुम अपनी समस्त सेना के साथ आज हमारे आश्रम में ठहरकर हमारा सत्कार स्वीकार करो।' इसके पश्चात् मुनि ने विश्वकर्मा को बुलाकर कहा—'तुम तुरत एक सुंदर नगर का निर्माण करो, जिसमें सभी लोगों के लिए उनकी योग्यता के अनुसार निवास रहें। विश्वकर्मा ने तुरत पाँच योजन विस्तार में एक विशाल नगर बनाया, जो भूमि-देवता के चरण के आभूषण-सा विराज रहा था। उसमें एक स्वर्णमय राजभवन भी था। उस भवन में श्वेत छत्र-संपन्न सिंहासन रखा हुआ था और एक रमणीय सभा-भवन भी था। मुनि की आज्ञा से भरत ने उस राजभवन में प्रवेश किया। वहाँ सिंहासन को देखकर भरत ने उसे राम का सिंहासन कहकर उसका नमस्कार किया और उसके निकट ही एक पीठ पर आसीन हुए। मुनि की आज्ञा से किन्नर, गंधर्व तथा खेचर रमणियों ने भरत के सामने आकर नृत्य-गान किया। इस प्रकार, मुनि की आज्ञा से सभी निवासों में नृत्य-गीत आदि, पृथ्वी पर जितने मनोरंजन हो सकते थे, वे सब वहाँ संपन्न हुए। (अयोध्या की) प्रजा ने स्नान आदि से निवृत्त होकर स्वच्छ वस्त्र पहने, मंदार-पुष्प-मालाएँ पहनीं, चंदन का लेप किया और विविध आभूषण पहने। इसके पश्चात् कामधेनु द्वारा प्रस्तुत किये गये चार प्रकार के भोजन ग्रहण करके परितृप्त हुए। तब सुरांगनाओं के साथ रति-क्रीड़ाओं में मग्न होते हुए वे अपने जन्म को सफल मानने लगे। इस प्रकार, मुनि का आश्रम स्वर्ग का भी तिरस्कार करता हुआ-सा दीखने लगा।

भरत तथा उनकी सेना ने मुनि भरद्वाज की प्रशंसा करते हुए रात वहीं बिताई। प्रातःकाल होते ही उन्होंने देखा कि वहाँ न कोई नगर था, न भवन, न सुरांगनाएँ। भरत के आश्चर्य की सीमा न रही। वे श्रेष्ठ तपस्वी भरद्वाज के सम्मुख जाकर बोले—

'हे महात्मा, आपके तपोबल की महिमा की प्रशंसा करना ब्रह्मा के लिए भी कठिन है । अब हम सूर्यवंश-तिलक रघुराम की सेवा में जायेंगे । हमें आज्ञा दें।' यों कहकर भरत ने अपनी माताओं से मुनि को प्रणाम करवाया । मुनि बोले--'ये कौन-कौन हैं ? अलग-अलग इनका परिचय मुझे दो ।' तब भरत ने कहा--'हे महात्मा, ये राजा की ज्येष्ठ रानी सफलजन्मा कौसल्या हैं, जिन्होंने सब लोगों में कीर्त्ति तथा प्रशंसा पाई है । राम को पुत्र-रूप में प्राप्त कर अपनी कोख को सफल बनाया है; पर उनके (राम के) वियोग की अग्नि में तप्त हो रही हैं । ये लक्ष्मण को जन्म देनेवाली पुण्यशीला सुमित्रा हैं, जो कौसल्या के बायें हाथ की तरह रहती हैं । पुष्प-रहित कर्णिकार की शाखा के समान अलंकारहीना होकर राम के वियोग-दुःख से दुःखी हैं । ये हतपुण्या मेरी माता कैकेयी हैं, जिनके कारण मेरे अग्रज वनवास के लिए गये हैं, जिनके कारण मेरे पिता का देहांत हुआ और जिनकी इच्छा ने मेरी ऐसी दुर्गति कर दी है ।' इतना कहकर उमड़ते हुए शोक से विह्वल तथा गद्गद हो वे चुप हो रहे । मुनि ने उन्हें सांत्वना देते हुए आगे के कार्य का विचार करके कहा--'कैकेयी ने लोकहित किया है । यह तुम लोगों को आगे स्पष्ट होगा ।' इतना कहकर उन्होंने भरत को राम के निवास-स्थान का मार्ग बताया और उन्हें आशीर्वाद देकर विदा किया ।

भरत ने अत्यंत श्रद्धा से युक्त हो सेना के साथ चित्रकूट पर्वत की ओर प्रस्थान किया । हाथियों के चिंघाड़ने, अश्वों के हिनहिनाने, सेना के वार्त्तालाप करने, तथा रथों के चलने से जो विपुल रव होता था, उससे भीत होकर जंगली मृग चारों दिशाओं में भागने लगे। विशाल सेना के चलने से उठी हुई धूलि से आवृत होकर सूर्यमंडल भी मलिन दीखने लगा ।

वहाँ चित्रकूट में कुटिल-कुंतला सीता के साथ राम बड़े आनंद से वार्त्तालाप कर रहे थे। सीता का ध्यान पर्वत की शोभा की ओर आकृष्ट करते हुए वे कह रहे थे--'हे बिंबाधरवाली, देखा तुमने पर्वत की शोभा, हमारे नेत्रों को कितना अपूर्व आनंद पहुँचा रही है । इस पर्वत की महिमा का वर्णन करना क्या शेषनाग के लिए भी संभव है ? निर्झरों की घन गंभीर ध्वनियों को मेघ-गर्जन समझकर अत्यंत आनंद से तुम्हारे केश की समता रखनेवाले अपनी पंखों को फैलाकर नाचनेवाले उन मयूरों को देखो । क्या, इन भीलनियों को तुमने देखा, जो अपने कुच-कुंभों को गज-कुंभों की समता प्रदान करने के लिए, गजों के कुंभस्थल को चीरकर उसमें से निकले हुए मणियों को धारण कर रखा है। देवताओं का संकेत-स्थान होने के कारण इस घाटी में दिव्य सुगंधि फैल रही है । वहाँ देखो, वह गंधर्वों का क्रीड़ा-स्थल उनके पदतलों के महावर-वर्ण से प्रकाशमान दीख रहा है । हे किन्नर-कंठवाली, यह गिरि-गुफा देखो, जो किन्नर-किन्नरियों के संगीत से मुखरित है । हे कोकिलकंठी, इस सहकार-वृक्ष को देखो, जो कोयल की कलध्वनि तथा पल्लवों से युक्त है । हे कोमालांगी, मलयानिल विभिन्न प्रकार के फूलों की सुगंधि को एकत्रित करते हुए मंद-मंद गति से चलकर हम पर अपना प्रभाव डाल रहा है । वहाँ उस मंदाकिनी को देखो, जो लाल तथा सफेद कमलों के समूह से अलंकृत है, जिसके कूल

पर तमाल, रसाल, कपिला, ताल, हिंताल, लसोड़ा आदि वृक्ष सुशोभित हैं, जिसके पवित्र तट पर मुनियों का समूह विराज रहा है और जिसका प्रवाह हंसों के मंद गमन से हिल-सा रहा है ।' इस प्रकार कहते हुए वे विभिन्न प्रकार के वृक्षों के नीचे, लता-कुंजों, पर्वत के शिखरों पर, तराइयों में तथा गुफाओं में अत्यन्त प्रसन्नता से विचरण कर रहे थे ।

इसी समय उन्होंने भरत की सेना का कोलाहल सुना । भयभीत होकर चारों ओर भागनेवाले हाथी, वराह आदि मृगों को तथा उड़ती हुई अत्यधिक धूल को देखा । तब उन्होंने लक्ष्मण से कहा कि तुम पता लगाओ कि इस प्रकार धूल क्यों उड़ रही है ? लक्ष्मण ने तुरत एक ऊँचे वृक्ष के शिखर पर चढ़कर देखा कि उत्तर की दिशा से सूर्यवंश के चिह्नों से युक्त पताकाएँ फहराती हुई एक विशाल सेना आ रही है । उन्होंने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि भरत राम पर आक्रमण करने के लिए आ रहे हैं । पर्वत पर वज्रपात होने के समान तुरंत वे पेड़ से उतर पड़े और दौड़ते हुए राम के पास पहुँचकर अत्यधिक रोष से बोले--'हे देव, आपको वन भेजकर समस्त राज्य को हस्तगत करने से तृप्त न होकर, आज कैकेयी का पुत्र सारी सेना लेकर आप पर आक्रमण करने आ रहा है। वह देखिए, कचनार (जैसी लाल) ध्वजाएँ ! वह सुनिए सैनिकों के वीर वचन ! आप शर, चाप तथा कवच धारण करके भरत का सामना कीजिए । नहीं, नहीं, आप और सीता यहाँ से हट जाइए । आपकी सज्जनता ने ही इतना (अनर्थ) किया है । मैं अब सहन नहीं करूँगा । यदि भरत यहाँ आया, तो मैं उसका वध कर डालूँगा ।'

राम बोले--'हे लक्ष्मण, मेरा अनुज होकर जन्म लेने पर भी तुम ऐसे अविनीत क्यों हो रहे हो ! भ्रातृ-प्रेम की मूर्त्ति, परम पवित्र, नीति-कोविद तथा धर्म-तत्पर भरत, तुमसे भी अधिक मेरा भक्त है । भरत के मन में कोई पाप नहीं है । मुझसे अयोध्या लौट चलने की प्रार्थना करने के लिए वह आ रहा है । तुम शंका छोड़ दो । राम के आदेश का उल्लंघन न कर सकने के कारण लक्ष्मण चुप हो रहे ।

२८. भरत की राम से भेंट

भरत ने नगरवासियों मित्रों, तथा सेना को एक जगह ठहरा दिया, माताओं के साथ आने के लिए वसिष्ठ मुनि से प्रार्थना करके, स्वयं शत्रुघ्न, सुमंत्र और गुह के साथ उस पर्वत पर चढ़ने लगे । जंगल में मार्ग को पहचानने के लिए लक्ष्मण ने जो संकेत बना रखे थे, उन्हें पहचानते हुए, चारों ओर दृष्टि डालते हुए (उन्होंने) समस्त शस्त्रास्त्र-समूह से युक्त विशाल आँगनवाली सुंदर पर्णशाला को देखा । वहाँ पर मुनि-वेष धारण किये हुए अत्यंत हर्ष से विलसित होनेवाले राम को देखकर भरत मन-ही-मन अत्यंत दुःखी हुए और शत्रुघ्न से कहने लगे--'हे शत्रुघ्न, देखा तुमने ? स्वर्ण-सौधों में रहनेवाले राम आज एक पर्णशाला में निवास कर रहे हैं । पुष्प-शय्या पर विराजनेवाले आज धूलि-युक्त पर्णशाला में रह रहे हैं । मुकुट धारण करनेवाले, प्रेम से जटाएँ धारण किये हुए हैं । राजाओं की सेवाएँ प्राप्त करते हुए रहनेवाले आज मृगों के मध्य रहते हैं । दिव्य वस्त्र धारण करनेवाले आज मुनियों के वल्कल पहने हुए हैं । सुस्वादु भोजन करनेवाले, आज कच्चे फलों पर दिन व्यतीत कर रहे हैं । हाय, शुभप्रद मूर्त्तिवाले राम आज इस

प्रकार का दुःख का अनुभव कर रहे हैं । कैकेयी के पापी गर्भ से जन्म लेने के कारण ही मुझे उनकी यह दुर्दशा देखनी पड़ रही है ।'

इसके पश्चात् उन दोनों ने (राम के निकट पहुँचकर) उनको प्रणाम किया । राम ने उन्हें गले से लगा लिया और नेत्रों से आनंदाश्रु बहाते हुए बड़े स्नेह के साथ उनकी पीठों पर हाथ फेरा और उन्हें आशीर्वाद दिये । तब सुमंत्र तथा गुह ने उस सूर्यवंशी को बड़ी भक्ति के साथ प्रणाम किया । भरत तथा शत्रुघ्न ने तब जानकी तथा लक्ष्मण को प्रणाम किया । उसके पश्चात् उन्हें कुशासन पर बैठने का आदेश देकर राघव बार-बार पिता तथा माता का कुशल समाचार पूछते हुए बोले—"हे भरत, तुम क्यों इतनी दूर चलकर आये ? राजा की आज्ञा से राज्य-भार ग्रहण करके नीति के साथ राज-काज चला रहे हो न ? सत्यनिष्ठ महाराज दशरथ की सेवा नित्य प्रति करते हो न ? माताओं को सांत्वना देते हुए बड़े आदर के साथ उनकी देखभाल करते हो न ? हमारे कुलगुरु तपोनिष्ठ वसिष्ठ की पूजा करके संध्या के समय अग्निहोत्र की विधि का नियमपूर्वक पालन करते हो न ? सज्जन मंत्रियों का परामर्श लेकर विजय-साधक मार्ग को समझ रहे हो न ? प्रतिदिन रात्रि के पिछले पहर में जागकर तुम अर्थ-सिद्धि का चिंतन करते हो न ? उत्तम, मध्यम और अधम, जनों का विचार करके उनकी योग्यता के अनुसार उन्हें काम में लगाते हो न ? अपराध का विचार करके अपने लोगों के संबंध में भी न्यायदंड का पालन ठीक तरह से करते हो न ? मतिमान्, लोकप्रिय, स्वामिभक्त तथा पराक्रमी को तुमने अपना सेनापति बनाया है कि नहीं ? सेवकों के वेतन बिना विलंब के उन्हें देते हो न ? दूतों के द्वारा राज्य का समाचार तथा शत्रुओं की गति-विधि का ज्ञान रखते हो न ? गर्व त्यागकर दीन तथा निर्धन व्यक्तियों की पुकार सुनते हो न ? वर्णाश्रम-धर्म में किसी प्रकार का व्यतिक्रम लाये बिना आवश्यक व्यवस्था करते हो न ? चोरों और जारों की बढ़ती को रोककर उन्हें कारावास में रखकर उचित दंड देते हो न ? समय-समय पर चतुरंगिणी सेना की पटुता का निरीक्षण करते हो कि नहीं ? दुर्गों को धन-धान्य तथा सेना से युक्त रखते हुए उनका बल बढ़ाते रहते हो न ? अन्याय से (पर) धन-संचय न करके, किसानों की प्रेम से साथ रक्षा करते हो न ? धन-लोभ में पड़कर विप्रों की जागीरों का किंचित् भाग भी अपहरण नहीं करते हो न ? सतत गो-ब्राह्मणों के हित की कामना करते हुए धर्म-निष्ठा में तत्पर रहते हो कि नहीं ? जो राजा (इच्छा, क्रिया, ज्ञान) शक्तित्रय का, चार उपायों (साम, दाम, भेद, दंड), पंचांगों, षड्गुणों तथा राजा के चौदह दोषों का ज्ञान रखते हुए, दयालु होते हुए, मनु-धर्मशास्त्र के अनुसार देवताओं, पितरों तथा ब्राह्मणों की पूजा करते हुए अपना जीवन व्यतीत करता है, वही स्वर्ग प्राप्त करता है । तुम भी उसी प्रकार राज्य करते हो न ?"

२९. भरत का राम को दशरथ की मृत्यु का समाचार देना

तब भरत गद्गद कंठ से हाथ जोड़कर बोले—'हे राजकुलाधीश, मैं यह धर्म-मार्ग कुछ नहीं जानता । हे धर्मनिपुण, और एक समाचार सुनिए । कैकेयी ने निर्दयतापूर्वक आपको बुला भेजा और आपको वन जाने का आदेश दिया । आप बिना विलंब किये

यहाँ चले आये। आपके दुःख में तड़पते हुए सातवें दिन महाराज दशरथ ने अपन प्राण छोड़ दिये। मैं पितृ-कर्मों को पूरा करके आपके दर्शनार्थ यहाँ आया हूँ।'

यह समाचार राम को वज्र के समान लगा, और वे तुरंत मूच्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। सीता तथा लक्ष्मण भी मूच्छित होकर पृथ्वी पर गिर गये। थोड़ी देर के पश्चात् राम कुछ सँभले और बार-बार विलाप करने लगे। तब उन्हें देखकर भरत ने कहा--'हे देव, धीर होते हुए भी जड़ के समान इस प्रकार विलाप करना आपको शोभा नहीं देता। आप, लक्ष्मण तथा सीता महाराज की परलोक-क्रिया विधिवत् पूरा कीजिए। यही उचित है।'

तब राम मंदाकिनी नदी के तट पर पहुँचकर, स्नान आदि से निवृत्त होकर बड़ी निष्ठा से अपने पिता की तिलोदक-क्रिया की; पिंड-दान किया और अत्यधिक शोकाकुल चित्त से पर्णशाला में लौट आये। उस समय वसिष्ठ, कौसल्या आदि अवरोध-जन (रनवास की स्त्रियाँ), नगरवासी, नातेदार, सुशील मंत्री आदि के साथ पर्णशाला में पहुँच गये। शोकाग्नि से संतप्त होनेवाले राम, सीता तथा लक्ष्मण के साथ उनके चरणों में गिरे और रोने लगे। यह देखकर वे सब भी रोने लगे। तब वसिष्ठ ने सांत्वना के शब्दों से उन्हें शांत किया।

तब वनवास के कारण विवर्ण दीखनेवाली सीता को देखकर कौसल्या मन-ही-मन विधि को कोसती हुई अत्यंत दुःखी होने लगी। उसी समय उस पर्वत पर रहनेवाली किन्नर, यक्ष, गरुड़, उरग तथा अमर-कामिनियाँ वहाँ आ पहुँचीं और कौसल्या से कहने लगीं—'राम की पत्नी, दशरथ की बहू, महाराज जनक की पुत्री (यहाँ) विविध संकटों का अनुभव कर रही है। विधि-विधान के लिए कोई बात असंभव नहीं है।'

उसके पश्चात् राम ने सीता के साथ अनघ वसिष्ठ के चरणों की वंदना की; मुनियों माताओं, नातेदारों, मित्रों तथा मंत्रियों को कुशासनों पर बिठाया और आप भी कुशासन पर बैठ गये। तब भरत की वेश-भूषा देखकर राम बोले—'हे वत्स, तुम जटाएँ तथा वल्कल क्यों धारण किये हुए हो? राजा की आज्ञा का पालन करते हुए तुम शीघ्र जाकर राज्य-भार ग्रहण करो।' इन वचनों को सुनकर भरत ने राम के मुख-कमल को देखते हुए हाथ जोड़कर कहा—'हे देव, हे राघव, कैकेयी ने असहनशीला हो, आपके महत्त्व से अनभिज्ञ हो, आपको वन जाने का आदेश देकर महान् पाप किया, तो क्या आपको यह उचित था कि आप तुरंत यहाँ चले आये? आपके वियोग से दुःखी हो, महाराज दशरथ भी स्वर्ग सिधारे। मेरी माता ने ऐसे घोर पाप किये हैं। क्या इसके कारण वे नरक-कूप में नहीं गिरेंगी? राज्य आपका है। मैं उसे सँभालने में असमर्थ हूँ। आज ही आप अयोध्या को लौट चलिए और शुद्ध मन से राज्य-भार ग्रहण कीजिए। पति को खोकर अत्यधिक शोक से पीड़ित होनेवाली माताओं को सांत्वना दीजिए। मित्रों, मंत्रियों, बंधुओं तथा प्रजा-जन पर कृपा दृष्टि रखते हुए उनको अपनाइए। हे दयामय, मैं आपका दास हूँ, मुझे अपनाकर मेरी विनती को स्वीकार कीजिए।' इस प्रकार कहते हुए भरत राम के चरणों पर गिर पड़े।

राम अपने भाई को उठाकर हृदय से लगाते हुए बोले--"हे भरत, यह कैसी बात है कि तुम बालकों की तरह धर्म-मार्ग को छोड़ने की सलाह दे रहो हो ? माता कैकेयी को अपशब्द क्यों कह रहे हो ? अब तुम स्वयं पिता की मृत्यु के लिए क्यों दुःख कर रहे हो ? मिट्टी, मिट्टी में मिल गई है । ऋणानुबंध (पूर्वजन्म का ऋण) रूप में पुत्र, मित्र, कलत्र प्राप्त होते तथा बिछुड़ते रहते हैं । मनुष्य के लिए पृथ्वी पर जन्म लेते ही मृत्यु निश्चित है । यह जानकर जो नर अपने कुलोचित धर्म के मार्ग में प्रवृत्त रहता है, वह परम भव्य होता है । हमारे पिता ने सत्यनिष्ठा से नीतिनय-संपन्न होकर महान् यज्ञ-दान आदि कितने ही सत्कार्य किये, राजभोग का प्रचुर अनुभव किया, हमें जैसे पुत्रों का मुँह जी भरकर देखा, और तब वे प्रजा की प्रशंसा प्राप्त करते हुए स्वर्ग सिधारे हैं। उनके लिए शोक करना उचित नहीं है । उनके आदेश को ठुकराना ठीक नहीं है । पितृ-वचन का पालन करना पुत्र का प्रिय धर्म होना चाहिए । जो पुत्र ऐसा करता है, वही विख्यात होता है । पिताजी ने मुझे चौदह वर्ष तक वन में रहने तथा तुम्हें राजसुख का भोग करने का आदेश दिया है । अतः, हम वैसे ही रहें । इसके विरुद्ध तुम और कुछ भी न कहो ।"

तबतक सूर्यास्त हो चला था । रात्रि अत्यंत प्रीति से कटी । दूसरे दिन प्रातःकाल ही संध्या आदि से निवृत्त होकर रघुराम कुशासन पर विराजमान हुए । वसिष्ठ आदि मुनि तथा अन्य मंत्री चारों ओर बैठे । सभा में भरत उठे और हाथ जोड़कर बोले--"हे देव, आपकी आज्ञा को शिरोधारण कर पिता के वचन के अनुसार सारा राज्य-भार मैंने ग्रहण कर लिया है । मैं अपना वह राज्य आपको दे रहा हूँ । अब आप और कुछ न कहें । समस्त पृथ्वी का भार अपने सिर पर धारण करने की क्षमता आदिशेष को हो सकता है, किन्तु जल-सर्प का बच्चा उसे कैसे वहन कर सकता है ? मैं वैसा ही एक बालक हूँ। इतनी विशाल पृथ्वी का भार कहाँ और मैं कहाँ ? क्या सत्पुरुषों की रक्षा का भार मैं सँभाल सकता हूँ ? बालारुण से सुशोभित होनेवाले उदयाचल पर जुगनू का प्रकाश जैसा दिखाई देगा, आप श्रीनिधि के सिंहासन पर मेरा बैठना भी वैसा ही दिखाई देगा । इसलिए, आप मुनि-वेश को त्यागकर अयोध्या लौट चलिए और अपने शील से राज्य करते हुए सारी प्रजा की इच्छा पूर्ण कीजिए । आप इसके विरुद्ध कुछ मत कहिए । यदि आप इसे स्वीकार नहीं करेंगे, तो मैं आपके सम्मुख ही प्राण-त्याग कर दूँगा या सौमित्र की तरह आपकी सेवा करते हुए यहीं रह जाऊँगा ।" इस प्रकार कहते हुए भरत दर्भासन पर (प्राण त्याग करने को) लौट गये ।

राघव ने अपने अनुज को उठाकर कहा—"भरत, यह कैसी बात है ? ऐसा कहना क्या तुम्हारे लिए उचित है ? अपने पिताजी की आज्ञा का विचार तुम बिलकुल करना नहीं चाहते हो ? महाराज दशरथ के साथ तुम्हारी माता का विवाह करते समय तुम्हारे नाना ने महाराज से यह वचन माँगा था कि आप मेरी पुत्री द्वारा उत्पन्न संतान को ही राजा बनायेंगे । राजा के वचन देने पर ही विवाह संपन्न हुआ था । उस वचन को दृष्टि में रखकर ही कैकेयी ने देवासुर-युद्ध में राजा के द्वारा दिये गये वरों को माँगा । तुम्हें

पृथ्वी और मुझे वनवास देनेवाले राजा ने अपनी सत्यनिष्ठा की रक्षा करने के लिए ही ऐसी व्यवस्था दी है । इससे उनकी कीर्त्ति शाश्वत हो गई । इसलिए हम भी महाराज की आज्ञा का पालन करते हुए महान् यश को प्राप्त करें । सभी पिता इसीलिए पुत्र प्राप्त करते हैं कि वह गया की यात्रा करे, कन्यादान करे और वृषभ छोड़े । पुन्नाम नरक से (पितरों की) रक्षा करनेवाला होने से ही वह पुत्र कहलाता है । यदि मैं ही अपने पिता के वचन का पालन नहीं करूँगा, तो इस पृथ्वी पर पिता के आदेश का पालन कौन करेगा ? 'यथा राजा तथा प्रजा' वाली उक्ति के अनुसार प्रजा भी हमारे समान ही आचरण करेगी । मैंने जो व्रत लिया है, उसको पूरा करके लौटूँगा । तुम हठ का त्याग करो । मेरी बातें मानो और मेरे कथन के अनुसार राजा बनो । अब तुम नगर को लौट जाओ ।"

तब सभा म उपस्थित मुनि, सुर तथा ब्राह्मणों ने (मन-ही-मन) निश्चय कर लिया कि अब युद्ध में रावण की मृत्यु निश्चित है । ऐसा सोचकर उन्होंने भरत से कहा—'हे उज्ज्वल धर्म-निरत भरत, तुम राम के आदेश का पालन करो ।'

३०. श्रीराम को जाबालि का उपदेश

तब मुनि जाबालि ने राम को देखकर कहा—'यह तुम्हारा कैसा व्यर्थ विचार है ? तुमने मुनि-वेश धारण किये, नृप-वेश छोड़ दिया, राजभोग त्याग दिया और नियमों का पालन करते हुए इस ढंग से जीवन व्यतीत करते हो ? कहाँ के माँ-बाप और कहाँ के पुत्र ? कहाँ का सत्य और कहाँ का पुत्र-धर्म ? यह सब मिथ्या है । माता-पिता अपने सुख के लिए आपस में मिलते हैं । शुक्र तथा रक्त के संयोग से मनुष्य का जन्म होता है । पिता केवल बीज का दान देता है । बहुत क्यों, बुझे हुए दीप में तेल देना जितना निरर्थक है, वेद-विधि से परलोक-क्रियाएँ करना भी उतना ही निरर्थक है । इसलिए मेरी बात मानकर तुम अयोध्या लौट जाओ और राज्य ग्रहण करो ।'

जाबालि के इन वचनों को सुनकर रघुवीर ने क्रोध में आकर कहा—'हे मुनींद्र, ऐसे नास्तिकतापूर्ण विचार आप किसी दूसरे को समझावें । हमारे लिए वही आचरणीय है, जिसे हमारे पूर्वजों ने किया है । सब धर्म सत्य के आधार पर निर्भर हैं । सत्य से बढ़कर दूसरा धर्म और क्या हो सकता है ? ऐसे सत्य का पालन करने के लिए मेरे पिताजी ने मुझे वन में भेजा है । यदि उनके आदेश का तिरस्कार करूँ तो मुझसे बढ़कर नीच और कौन हो सकता है ? ज्ञानियों का कहना है कि सत्य, धर्म, शम, दम, भूत-दया, नीति, विक्रम, प्रिय वचन तथा देव-पितृ-पूजन स्वर्ग के साधन हैं । इन सब को मिथ्या घोषित करनेवाले आप अग्रजन्मा कैसे कहला सकते हैं ? आपको क्यों दोष दूँ ? आप जैसे नास्तिक का आदर करनेवाले मेरे पिता ही दोषी थे ।

राम के वचनों को सुनकर जाबालि ने बड़े स्नेह से कहा—'हे राजन्, मैंने आपको नास्तिक मानकर ऐसा विचार इसलिए प्रकट किया है, कि आप किसी प्रकार भी अयोध्या लौट चलिए । इसलिए आप धैर्य धारण करें ।'

३१. पादुका-दान

तब संयमी वसिष्ठ ने इक्ष्वाकु से सूर्यवंश तक के सभी राजाओं की चर्चा

करते हुए कहा--'हे अनघ, तुम्हारे वंश में ऐसा कभी नहीं हुआ कि अग्रज के रहते हुए अनुज राजा बने । पूर्वजों की परंपरा के अनुसार तुम्हारा राज्य ग्रहण करना ही उचित है । किन्तु पिता के आदेश का उल्लंघन न करने का तुम्हारा दृढ़ संकल्प है, तो जैसे भरत प्रेम से तुम्हारी सेवा करता रहा है, वैसे वह तुम्हारी पादुकाओं की पूजा करते हुए शांति से रह सकेगा. । अतः, तुम अपनी पादुकाएँ उसे प्रदान करो ।'

तब माता, मित्र, आश्रित, मंत्री, प्रजा आदि सबने कहा--'हे राम, ऐसा करना ही उचित है ।' तुरंत भरत ने स्वर्ण-विलसित पादुकाएँ राम के सामने रख दीं । तब राम ने उत्फुल्ल अरुण कमल के गर्भ के वैभव को भी परास्त करनेवाले मुनि-बधू के शाप का मोचन करनेवाले, सृति-शिरोभाग पर विलसित होनेवाले, सतत सनकादि मुनिजनों के विवाद के कारणभूत, अपने चरण उन पादुकाओं पर रखकर उन्हें भरत को दे दिया । उन दोनों को सिर पर धारण किये हुए भरत राघव से बोले--'हे देव, नृप-वेश त्याग करके, मुनि-वेश धारण किये हुए, राज्य का भार इन पादुकाओं पर रखकर, मैं चौदह वर्ष तक राज्य की रक्षा करूँगा । आपके चरणों की सौगंध खाकर कहता हूँ कि यदि अवधि के समाप्त होते ही आप अयोध्या नहीं लौटेंगे, तो मैं अग्नि में प्रवेश करूँगा ।' यों कहकर उन्होंने अत्यंत भक्ति से अपने अग्रज को प्रणाम किया । राम ने उन्हें हृदय से लगाकर आशीर्वाद दिया । उसके पश्चात् उन्होंने अपनी माताओं को सांत्वना दी और पुण्यात्मा मुनि-पुंगवों, मित्रों, मंत्रियों, बंधु-बांधवों तथा सभी प्रजा को बड़े प्रेम से विदा किया । अत्यधिक उमड़ते हुए शोकाकुल हृदय से भरत ने पादुकाओं की परिक्रमा की, उन्हें भद्रगज पर प्रतिष्ठित किया और आप तथा शत्रुघ्न छत्र-चामर लिये हुए उसके पार्श्व में खड़े हो गये । सब लोग वहाँ से रवाना हुए । भद्रगज के चारों ओर सेना चलने लगी ।

भरत इस प्रकार चित्रकूट से चलकर भरद्वाज मुनि के आश्रम में पहुँचे । वहाँ उन्होंने भरद्वाज मुनि को प्रणाम करके सारा वृत्तांत उन्हें कह सुनाया । उनकी आज्ञा लेकर आगे चले और गंगा नदी पार करके श्रृंगवेरपुर पहुँचे । बड़े आदर से वहाँ गुह को विदा करके, वे अयोध्या नगर पहुँच गये । रनवास में माताओं को छोड़कर उन्होंने अंतःपुर की रक्षा के लिए सेना रख दी । मणि-रहित रत्न-मंजूषा की तरह तथा सूर्य-रहित दिन की तरह रामचन्द्र-रहित शून्य अयोध्या को देखकर उन्हें उस नगर में रहने की किंचित् भी इच्छा नहीं रह गई थी । इसलिए वे नंदीग्राम में जाकर निवास करने लगे । रघुराम की पादुकाओं पर समस्त राज्य-भार रखे हुए, राम के समान ही उनकी सतत सेवा करते हुए, वल्कल तथा जटाएँ धारण किये हुए, राघव के पुनरागमन की कामना करते हुए और उनके सद्गुणों की प्रशंसा करते हुए सरस सज्जन मंत्रियों के परामर्श से भरत राज-काज सँभालने लगे ।

यह अयोध्याकांड समस्त लोक में विख्यात होते हुए विद्वज्जनों की प्रशंसा का पात्र बन जाय । आंध्र-भाषा के अधीश्वर, विमलचेता, आचारवान्, अनुपम धीमान्, भूलोकनिधि गोनबुद्ध राजा ने, कमनीय गुण तथा धैर्य में मेरुपर्वत, शत्रु के लिए भैरव-रूप, महात्मा, अपने पिता विट्ठल-नरेश के नाम पर आचंद्रार्क संसार में पूज्य रहने योग्य रीति से, असमान भाव तथा ललित शब्दार्थों से युक्त रामायण के अयोध्या-कांड की रचना की ।

ऋषि-आदिकाव्य और रसिकजनों के लिए आनंददायक होकर पृथ्वी पर विलसित इस पुण्य-चरित्र को जो पढ़ते हैं, या सुनते हैं, उन्हें साम आदि बहुवेदों का धाम, रामनाम-रूपी चिंतामणि की महिमा से समस्त भोग, परहित बुद्धि, उदार विचार, परिपूर्ण शक्ति, साम्राज्य, विमल यश, नित्य सुख, धर्मनिष्ठा, दान में प्रेम, चिरायु, ऐश्वर्य तथा स्वास्थ्य, अक्षय कल्याण, पापों का क्षय, श्रेष्ठ पुत्रों की प्राप्ति, शत्रु-नाश और धन-धान्य-समृद्धि आदि प्राप्त होंगे। उन्हें बिना किसी विघ्न-बाधा के लावण्यवती स्त्रियों का प्रेम तथा पुत्रों के साथ जीवन प्राप्त होगा। उनके सब संकट दूर होंगे। नातेदारों से उनका प्रेमपूर्ण मिलन होता रहेगा और उनकी सब कामनाएँ पूर्ण होंगी। उनके गृहों में देवता तथा पितृ-देवताओं की तृप्ति होती रहेगी। यह (रामायण) मोक्षसाधक है, पापनाशक है, दिव्य है, भव्य है, श्रीकर है। इसके रचयिता की श्रेष्ठ तथा शुभ उन्नति होगी और वे इंद्र-भोगादि को प्राप्त करेंगे। जबतक कुल-पर्वत, नक्षत्र, रवि, चन्द्र तथा दिशाएँ रहेंगी, जबतक वेद रहेंगे, पृथ्वी तथा समस्त लोक रहेंगे, तबतक यह कथा अक्षय आनंद-समूह को देने में समर्थ होगी।

: अयोध्याकांड समाप्त :

श्रीरंगनाथ रामायण

(अरण्यकांड)

१. चित्रकूट से प्रस्थान

चित्र-विचित्र वस्तुओं के आगार 'चित्रकूट' में निवास करते हुए और मुनियों की प्रशंसा प्राप्त करते हुए राम ने भरत के आगमन की बात सोचकर निश्चय किया कि अब मुझे यहाँ निवास नहीं करना चाहिए। वे सोचने लगे कि अगर मैं यहाँ रहूँ, तो अयोध्या-वासी यहाँ पर अक्सर आते रहेंगे। अब भी गज, रथ तथा अश्वों के आने से वन का बहुत-सा भाग नष्ट हो गया है। इसके अतिरिक्त परम संयमी मुनि मुझसे अनुरोध कर रहे हैं कि मैं खर-दूषण आदि राक्षस-समूह के अत्याचार दूर करूँ। (इसलिए मेरा यहाँ से चला जाना आवश्यक है।)

इस प्रकार सोचकर दूसरे दिन उन्होंने चित्रकूट के मुनियों की आज्ञा प्राप्त की और वहाँ से चलकर अत्रि मुनि के आश्रम में पहुँच गये। मुनि ने अपने शिष्यों के साथ बड़े स्नेह से राम की अगवानी की और उन्हें आश्रम में ले जाकर कई प्रकार से उनका आदर-सत्कार किया। मुनि-पत्नी अनसूया ने बड़े प्रेम से सीता का आतिथ्य किया। उन्होंने सीता को पातिव्रत्य-धर्म का उपदेश किया; अपने सगे-संबंधियों को छोड़कर पति के साथ वन में रहने के उनके निश्चय की प्रशंसा की। इसके पश्चात् अनसूया ने सीता को विभिन्न प्रकार के अंगराग, कभी न मुरझानेवाले फूल और कभी मैले न होनेवाले वस्त्र दिये।

फिर उन्होंने सीता से कहा—'हे रमणी, तुम मुझे यह बताओ कि स्वयंवर में राघव ने तुम्हें कैसे प्राप्त किया।' तब (सीता) अपने पति की ओर देखकर व्रीड़ा से अभिभूत हुई और मंद-मंद मुस्कुराती हुई बोलीं—'हे माता, सुनिए। मिथिला के अधिपति जनक के, यज्ञ-शाला के लिए भूमि जोतते समय मेरा जन्म हुआ। इस कारण मेरा नाम सीता पड़ा। संतानहीन होने के कारण राजा ने बड़े स्नेह से मेरा पालन-पोषण किया। युवावस्था को प्राप्त होनेवाली मुझे देखकर उन्होंने सोच-विचारकर घोषित किया कि हमारे घर में स्थित शिव-धनुष का जो संधान करेगा, उसी के साथ मैं इस कन्या-रत्न का विवाह करूँगा। इस समाचार के पाते ही अनेक राजा वहाँ आये, किन्तु वे शिव-धनुष को उठाकर उसका संधान न कर सकने के कारण वापस चले गये। कुछ दिनों के पश्चात् विश्वामित्र की सेवा करने के उपरान्त राघव वहाँ आये। उन्होंने शिव-धनु को इस प्रकार तोड़ दिया, जैसे हाथी ईख को तोड़ डालता है। तब उन्होंने मेरा पाणि-ग्रहण किया।'

इस प्रकार सीता के अपने विवाह का वृत्तांत सुनाने पर अनसूया हर्षित हुई। तबतक रवि पश्चिम समुद्र में डूबने लगा। राम ने संध्या आदि नित्य-कर्मों को पूरा किया और अत्रि का सत्कार ग्रहण किया तथा उनकी सत्संगति में रात वहीं बिताई।

२. राम का दण्डक-वन की यात्रा करना

दूसरे दिन प्रातःकाल ही संध्या आदि कर्मों से निवृत्त हो अत्रि की आज्ञा लेकर राम ने उस दण्डक-वन में प्रवेश किया, जो सरल ताल, तमाल, साल, कपिला, कुरबक, अगरु, कुटज आदि वृक्षों से भरा हुआ था, जो सूर्य के समान तेजस्वी मुनियों का निवास-स्थान था और जो गैंड़ा, सिंह, हाथी, नीलगाय जैसे मृगों तथा 'गंड भेरुण्ड' (दो शिरोंवाला एक पक्षी) जैसे पक्षियों से पूर्ण था। ऐसे वन में प्रवेश करके वेद-घोष से प्रतिध्वनित होनेवाली तथा हवनकुंडों से पवित्र पर्णशालाओं में पवन, जल तथा सूखे पत्तों का आहार करते हुए तपश्चर्या में लीन मुनियों के निवासों तथा तपस्वियों के आश्रमों के दर्शन करते हुए, राम अपने अनुज के साथ मुनियों का आतिथ्य ग्रहण करते हुए यात्रा करते रहे।

३. विराध का वध

इस प्रकार उस दण्डक-वन में जाते समय, पर्वत के समान आकार, भयंकर आँखें, बड़ा मुँह और नासिका तथा दीर्घकाय विराध नामक भयंकर राक्षस, अपने अट्टहास से सारे आकाश को कँपाते हुए और वन को चीरते हुए आया और अपनी बलिष्ठ तथा पैनी चोंच तथा बाहुओं से कुंचित केशोंवाली सीता को इस प्रकार आकाश की ओर उड़ा ले गया, जैसे गरुड़ पक्षी सँपोले को उड़ा ले जाता है। फिर, जानकी की दशा देखकर दुःखी होनेवाले राम तथा लक्ष्मण को संबोधित करके उसने कहा—'क्यों रे, तुम्हारा कितना साहस है कि तुम वीरों की तरह निर्भय होकर धनुष-बाण धारण किये इस वन में विचर रहे हो, जिसमें मैं रहता हूँ। आखिर तुम्हारा भुजबल कितना है? मेरी माता शतह्रद हैं और मेरे पिता जय हैं। किसी भी आयुध से न मरने का वर मैंने पहले ही ब्रह्मा से प्राप्त किया है।

में ब्राह्मणों को खानेवाला हूँ । मेरा नाम विराध है । मैं क्रोध में आता हूँ, तो इन्द्र आदि देवताओं को भी निगल जाता हूँ; फिर मनुष्यों की क्या बात ? अब तुम्हारा कुशल इसी में है कि इस रमणी को मुझे सौंपकर, तुम यह वन छोड़कर चले जाओ । अन्यथा मेरे हाथ के शूल के वार की प्रतीक्षा करो ।'

सौमित्र ने सीता की भीति, तथा राक्षस का गर्व देखकर कहा--'हे राक्षस, ये पृथ्वी की पुत्री, पुण्यवती, साध्वी, राम की पत्नी हैं, उन्हें ले जाना तुम्हारे लिए उचित नहीं है । अब तुम ले भी कहाँ जा सकते हो ? मैं अभी तुम्हें पकड़कर तुम्हारा वध कर डालूँगा ।'

इस प्रकार कहते हुए उन्होंने क्रोध से धनुष पर बाण-संधान करके उसके वक्षःस्थल पर चलाया । तब विचित्र ढंग से अट्टहास करते हुए बड़े क्रोध से उसने शूल को घुमाकर उनपर फेंका । घने बादलों से छूटकर नीचे गिरनेवाली बिजली के समान आनेवाले उस शूल को राम ने अपने दो बाणों से काट दिया । इसपर और भी क्रुद्ध होकर उसने सीता को पृथ्वी पर गिरा दिया । उस राक्षस के हाथों से मुक्त होकर बादलों से निकलकर आकाश-मार्ग से पृथ्वी की ओर बिजली की तरह आनेवाली छटपटाती हुई सीता को राम ने गरुड़-अस्त्र की सहायता से पृथ्वी पर उतार लिया ।

इसके पश्चात् राम ने उस राक्षस पर कई बाण चलाये, किन्तु वह उनकी जरा भी परवाह न करके अट्टहास करने लगा । वह बड़े वेग से आया और अपने हाथों से राम और लक्ष्मण को उठाकर अपनी पीठ पर लादकर वहाँ से शीघ्रता से जाने लगा । जानकी यह देखकर विलाप करने लगीं । राम और लक्ष्मण ने अत्यंत क्रोध से बिजली के समान चमकनेवाले अपने खड्गों को म्यान से निकालकर उसके दोनों हाथों को काट डाला । तब धराशायी होनेवाले पहाड़ की तरह वह राक्षस पृथ्वी पर लोटने लगा । फिर भी उसे जीवित देखकर राम-लक्ष्मण ने अपने पदाघात तथा मुष्टियों के प्रहार से उस राक्षस को चूर-चूर कर दिया । (यह देखकर) सभी मुनि साधुवाद देते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे ।

इसके पश्चात् राक्षस गंधर्व का रूप धारण किये हुए विमान में बैठकर राम से बोला--'मैं गंधर्व हूँ, मेरा नाम तुंबुर है । रंभा के साथ रति-क्रीड़ा में तल्लीन रहते हुए, कुबेर की सभा में उपस्थित न हो सकने के कारण कुबेर ने मुझे राक्षस का जन्म लेने का शाप दिया था । आपके बाहुबल के प्रताप से मेरा शाप-मोचन हुआ । अब मैं जा रहा हूँ । आप मेरे शरीर को यहीं गाड़कर शरभंग मुनि के आश्रम में जाइए ।'

इस प्रकार कहकर प्रणाम करके वह वहाँ से चला गया । उसके शरीर को वहीं गाड़कर श्रीराम ने सीता को बड़े स्नेह से गले लगा लिया और उनका भय दूर किया । उसके पश्चात् उन्होंने अपने अनुज से कहा---'क्या इस पृथ्वी में ऐसे दुर्गम वन कहीं हो सकते हैं ? हमें शीघ्र ही सीता को लिये हुए इस वन को पार कर जाना चाहिए ।

४. श्रीराम का शरभंग के आश्रम में पहुँचना

इस प्रकार सोचकर, शरभंग के दर्शन करने की अभिलाषा से राम उनके आश्रम की ओर चले । उस समय उन्होंने उस आश्रम के ऊपर से उदित सूर्य की भाँति प्रकाशमान

अश्वों से युक्त, श्वेत छत्र से आवेष्टित, देवताओं से भरे एक विमान को चारों ओर उज्ज्वल मणियों की आभा विकीर्ण करते जाते हुए देखा। उस विमान में विराजमान कल्याणगुण-संपन्न व्यक्ति को देखने की इच्छा से राम तेजी से आगे बढ़े; किन्तु इतने में वह विमान आँखों से ओझल हो गया।

राम ने मुनि के आश्रम में पहुँचकर, मुनि को प्रणाम किया और मुनि का सत्कार ग्रहण करने के पश्चात् बड़े प्रेम से मुनि को देखकर पूछा—'हे मुनीश्वर, आपके दर्शनार्थ हमारे आते समय एक विमान अपना प्रखर तेज विकीर्ण करते हुए यहाँ से निकल गया था। वह यहाँ क्यों आया था और कहाँ चला गया है ? उस विमान में कौन विराजमान थे ? आप कृपया बतावें।'

तब मुनि बोले—'हे देवेन्द्र-बंधु। वह देवेन्द्र था। हे देव, ब्रह्मलोक जाने का आमंत्रण देने के लिए वह देवताओं के साथ देवलोक से यहाँ आया था। हे रामचंद्र, मुझे मालूम था कि आप यहाँ पधारेंगे। आपका पूजा-सत्कार करने के पश्चात् जाने का निश्चय करके मैंने उससे कह दिया कि मैं अभी नहीं आऊँगा। तुम चाहो तो जा सकते हो। इन्द्र भी बहुत दुःखी होकर, वनवास (के दुःख) से खिन्न आपको न देख सकने के कारण, यहाँ से चला गया है। इतने में आप भी यहाँ आ पहुँचे। हे राजन्, आपके प्रसाद से मैंने बड़ी निष्ठा से, अपना तप निर्विघ्न समाप्त किया है। यज्ञ भी सफल हुआ। मैं आपके दर्शन कर सका। आप अब संयमी सुतीक्ष्ण के दर्शन करके उनके यहाँ रहिए। मैं अब ब्रह्मलोक में जाऊँगा।' इस प्रकार कहने के पश्चात् उस मुनीश्वर ने राम के सम्मुख ही अपने शरीर को मंत्र-रत करके, अग्नि में दहन कर दिया और इन्द्र आदि देवताओं की सेवाएँ प्राप्त करते हुए ब्रह्मलोक को चले गये।

तब उस आश्रम के निवासी संयमी, वायुसेवी, वैखानस, मौनव्रती, पर्णशाला-विहीन, भूमिशायी, मननशील, उदात्त मुनि, एकांतवासी, अनशनव्रती और पंचाग्नियों के मध्य तपस्या करनेवाले, सभी तपस्वी झुंड-के-झुंड दयालु रामचंद्र के पास आये और बोले—'हे राम, आप पिता की आज्ञा का पालन करने में अत्यंत तत्पर हैं; सत्यव्रती हैं और निर्मल यश के आगार हैं। आप जैसे राजा के रहते हुए क्या हमें रक्षसों के उपद्रवों से पीड़ित होना चाहिए ? व्रत की रक्षा करनेवाले राजा को भी उस व्रती के पुण्य का एक चौथाई भाग मिलता है। अब आप सभी दैत्यों का संहार करके हमारे तपोव्रत को सफल बनाइए। हम आपकी शरण में आये हैं।' शरणागत के रक्षक होने के कारण राम ने उन आश्रमवासी मुनियों को अभयदान दिया और कहा—'आपकी कृपा से बलवान् राक्षसों के उपद्रवों को मैं दूर करूँगा। आप दुःखी मत होइए।'

५. श्रीराम का सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में पहुँचना

इसके पश्चात् वे भयंकर वन-प्रांत में से होते हुए महान् मतिमान् सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में पहुँचे। उस मुनि की परिक्रमा की और अपना नाम कहकर उन्हें प्रणाम किया। सुतीक्ष्ण मुनि ने राम को आशीर्वाद देकर उनका उचित आदर-सत्कार किया और उसके पश्चात् बोले—"हे अनघ, जबसे आपके मुनि-वेश धारणकर चित्रकूट में पहुँचने का समाचार

हमने सुना, तबसे हम आपके आगमन की उत्कट इच्छा लिये हुए थे। आखिर आप यहाँ आ ही गये हैं। आपके दर्शन कर सके, इससे हम अपने को धन्य मानते हैं। दुरात्मा, अत्यधिक बाहुबली राक्षस गर्वोन्मत्त होकर हमारे आश्रम में आये, और हवन-वेदियों का नाश किया, यूप-काष्ठों को उखाड़कर फेंक दिया, पेड़ों को उखाड़ डाला, जप-मालाओं को तोड़ दिया, हमारे वस्त्र फाड़ डाले, फलों को चुन लिया, फूलों को गिरा दिया, सरोवरों का पानी गंदा कर दिया, कई प्रकार के दुःख दिये और कई मुनियों को मार भी डाला। हमारी रक्षा करनेवाला कोई नहीं है। हे देव! आप हमारी रक्षा कीजिए। हमें दुःख देनेवाले इन राक्षसों को हम अपनी क्रोधपूर्ण दृष्टि से देखकर, चाहें तो भस्म कर सकते हैं। किन्तु पृथ्वी पर आपके जैसे राजा के रहते हुए हम क्रोध नहीं करते हैं। अतः, आप इन दुष्ट राक्षसों का संहार करके हमारे तप की रक्षा कीजिए।" तब राम ने उन्हें सांत्वना दी कि मैं युद्ध में इन राक्षसों का वध करूँगा, आप खिन्न मत होइए। इसके पश्चात् उन्होंने शरभंग के आश्रम के निवासी मुनियों को अपने अभयदान का वृत्तांत सुनाया, राक्षसों का वध करने की प्रतिज्ञा की और उनकी संगति में वहीं रात बिताई।

दूसरे दिन बहुत-से मुनि वहाँ आये और राम से अपने-अपने आश्रमों में आने की प्रार्थना की। तब राम सुतीक्ष्ण मुनि से आज्ञा लेकर अन्य मुनियों के पुण्याश्रमों को देखने की अभिलाषा से वहाँ से रवाना हुए। मार्ग में जानकी ने राम को देखकर कहा—"हे अनघ, (हम) राज्य छोड़कर वन में आये हैं, जटाएँ तथा वल्कल धारण किये मुनियों की तरह जीवन बिता रहे हैं, ऐसी दशा में आप राक्षसों पर क्यों क्रोध करते हैं? विचार करने पर यह संगत नहीं मालूम होता है। हे काकुत्स्थ-तिलक, जबसे आपने मुनियों को राक्षसों का वध करने का आश्वासन दिया है, तबसे मेरा मन बहुत ही खिन्न हो रहा है। यह कार्य ठीक नहीं है, इसलिए आप यह कर्म छोड़ दीजिए। हे प्राणेश्वर, क्या प्राणियों को मारने से पाप नहीं लगेगा? किसी समय एक मुनि अत्यंत तपोनिष्ठा से जीवन-यापन करते थे। इन्द्र ने उन्हें एक खड्ग देकर कहा—'इसे आप रखिए, मैं फिर आकर इसे ले जाऊँगा।' तदनंतर उस मुनि ने उस खड्ग से लता, वृक्षों को काटते हुए, हिंसा में प्रवृत्त हो, जड़मति बनकर तपश्चर्या त्याग दी और अंत को दुर्गति को प्राप्त हुआ। इसलिए हे देव, कहाँ तप और कहाँ राजधर्म तथा अस्त्र-शस्त्र? आप ऐसा कार्य न कीजिए।"

तब रामचंद्र ने हँसकर सीता से कहा—'हे साध्वी, तुम्हारा बताया हुआ मार्ग ब्राह्मणों का है, क्षत्रियों का नहीं। मेरा हृदय जानते हुए भी मुझपर अत्यधिक अनुराग रखने के कारण तुम ऐसा कह रही हो। हे तरुणी, उत्तम राजधर्म का पालन करनेवाले इसीलिए तो धनुष-बाण धारण करके विचरण करते हैं कि शरणागतों की रक्षा कर सकें। तुम इस परम धर्म का विचार क्यों नहीं करती हो? मैं उन महामुनियों को दिये गये वचन का अवश्य ही पालन करूँगा। यही मेरा दृढ़ संकल्प है। मैं अपने प्राण भले ही छोड़ दूँ, तुम्हें भी त्याग दूँ, या लक्ष्मण को भी छोड़ दूँ, किंतु अपना प्रण नहीं टाल सकता।' इन बातों को सुनकर जानकी चुप रह गई और लक्ष्मण विस्मित हो गये।

६. मंदकर्णी का वृत्तांत

इसके पश्चात् रामचंद्र प्रत्येक आश्रम में, कहीं तीन महीने, कहीं चार महीने, आराम से रहते हुए, पुण्याश्रमों के दर्शन करते हुए आगे बढ़े। मार्ग में उन्होंने एक स्थान पर एक तड़ाग देखा, जिसके जल के मध्य से संगीत का निनाद अत्यधिक सुनाई पड़ रहा था। अत्यंत विस्मय-चकित होकर वे उस तड़ाग के किनारे पहुँचे और उसके निकट निवास करने-वाले धर्ममृत नामक मुनि को देखकर बोले--'हे मुनिनाथ, यह कैसी विचित्र बात है कि इस तड़ाग के जल में से ऐसा शब्द सुनाई दे रहा है? 'तब धर्ममृत ने अत्यंत उत्साह से रामचंद्र से कहा--'किसी समय मंदकर्णी नामक मुनि इस तड़ाग के जल के बीच खड़े होकर बड़ी निष्ठा से अनेक वर्ष तक अत्युग्र तपस्या करते रहे। उस तप को देखकर इन्द्रादि देवता भयभीत हो गये। उस मुनि के महत्त्व को क्षीण करने के लिए उन्होंने पाँच अप्सराओं को भेजा। वे अप्सराएँ मुनि की परिणीता वधुएँ बन गईं और वे जल के मध्य मुनि के द्वारा निर्मित स्वर्ण-सौधों में, मुनि के सम्मुख बड़े मोद-मग्न हो नृत्य कर रही हैं। इसी कारण से यह सरोवर पंचाप्सर के नाम से विख्यात है। जो मधुर ध्वनि अब सुनाई पड़ रही है, वह उनके वाद्यों की ध्वनि है।

इन वचनों को सुनकर राम ने अत्यंत भक्ति से पुण्यात्मा मंदकर्णी को प्रणाम किया और उस घोर वन के मार्ग से आगे बढ़े। मार्ग में उन्होंने कई मुनियों का दर्शन करके उनको प्रणाम किया। बहुत-से पुण्य तपोवनों को देखकर मुग्ध हुए, कमल और कमलिनियों से भरे सरोवरों में स्नान किया; मंद-मंद गति से चलनेवाले पवन की प्रशंसा और झिल्लियों की झंकार की निंदा की। शुक, मयूर आदि पक्षियों को पकड़ते हुए, वे हाथी, वराह आदि मृगों का शिकार करते जाते थे। कभी मेघास्त्र का प्रयोग करके गर्मी को दूर करते और कभी अपने दर्शन करनेवाले के पाप मिटाते। कभी यौवन को प्राप्त लताओं से फूल चुनते, कभी झंकार करनेवाले भ्रमरों को दूर भगाकर गगनचुंबी पर्वत-शिखरों पर चढ़ जाते। जब जानकी थक जाती थी, तब उनका परिहास करते हुए बड़ी मृदुल गति से गुफाओं को पार करते हुए, चढ़ाव पर चढ़ने की क्रिया (जानकी को) सिखाते। वहाँ की भीलनियों के साहस की प्रशंसा करते हुए, अभेद्य झाड़ियों में प्रवेश करते हुए ऐसी घाटियों में भ्रमण करने लगे, जहाँ सूर्य की किरणें भी नहीं पहुँच पाती थीं। इस तरह राम, लक्ष्मण तथा जानकी के साथ पुण्य तीर्थों, पुण्य नदियों तथा पुण्य तपोवनों में भ्रमण करते हुए दस वर्ष के उपरान्त फिर से सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में लौट आये और उस मुनि के यहाँ बड़े आराम से कुछ वर्ष तक रहे।

७. अगस्त्य से भेंट

एक दिन रामचंद्र ने अगस्त्य के दर्शन की इच्छा से प्रेरित होकर (सुतीक्ष्ण) मुनि को देखकर पवित्र भक्ति से साथ कहा—'हे महात्मा, मुनिश्रेष्ठ, अगस्त्य कहाँ रहते हैं? उनका आश्रम कहाँ है? कृपया बतलाइए।' सुतीक्ष्ण ने उन्हें उस आश्रम के मार्ग की दिशा तथा चिह्न बताये और आशीर्वाद देकर उन्हें विदा किया। अपने प्रिय अनुज तथा पत्नी के साथ दक्षिण की ओर चार योजन का रास्ता तय करके, बहुत-से जंगलों, पहाड़ों

तथा नदियों को पार करते हुए वे अगस्त्य के भ्राता के आश्रम में पहुँचे । वहाँ बड़ी श्रद्धा से उस यतीश्वर के चरणों में सिर झुकाकर वे उस रात को वहीं ठहरे । मुनि के सत्संग में रहते हुए राम ने उनसे प्रश्न किया—'हे यतीश्वर, पहले इस स्थान पर अगस्त्य ने वातापि का संहार कैसे किया ?' तब वह मुनींद्र रामचंद्र को देखकर उस पुण्य-कथा को इस प्रकार कहने लगे—"किसी समय वातापि और इल्वल नामक दो प्रचंड राक्षस इस पृथ्वी पर रहते थे । उनमें वातापि मेष का रूप धारण कर लेता था और इल्वल ऋषि के रूप में मार्ग में अड़ा रहता था । वह मार्ग में जानेवाले ब्राह्मणों को श्राद्ध के बहाने अपने घर में आमंत्रित करता था और बड़े प्रेम से घर बुला लाता था । उसके पश्चात् उस मेष को मारकर बड़े प्रेम से उसका भोजन बनाकर उसे अतिथियों को खिलाता था । भोजन के पश्चात् वह वातापि का नाम लेकर पुकारता था—'हे वातापि । जल्दी चले आओ ।' तब वह ब्राह्मणों का पेट चीरकर बाहर निकल पड़ता था । इस प्रकार, उन्होंने कितने ही मुनियों को मार डाला । एक दिन कुंभसंभव (अगस्त्य) उस मार्ग से आये, तो उसने कपट से उन्हें भी भोजन कराया और भोजन के पश्चात् वातापि को पुकारा । तब अगस्त्य ने कहा—'अब वातापि कहाँ से निकलेगा । वह तो कभी का पच गया है ।' इस पर क्रुद्ध होकर इल्वल ने राक्षस का रूप धरकर उनपर आक्रमण करने के लिए निकला, तो कुंभसंभव ने अपने हुंकार-मात्र से देखते-देखते उसको भस्म कर दिया और सब मुनियों को हर्षित किया । इतना ही नहीं, उन्होंने विंध्याचल को दबा दिया, अद्वितीय ढंग से समस्त सागर को पी गये और नहुष को साँप बन जाने का शाप दिया । ऐसे पुण्यमूर्त्ति अगस्त्य केवल मुनि नहीं हैं । वे मुनि के रूप में (रहनेवाले) शिवजी हैं ।"

इन बातों को सुनकर रघुराम हर्षित हुए । दूसरे दिन मुनि ने रामचन्द्र का उचित आदर-सत्कार करने के बाद उन्हें आशीर्वाद देकर अगस्त्य मुनि के आश्रम का मार्ग बताया उस मार्ग से एक योजन तक जाने के पश्चात् उन्होंने अगस्त्य के उस रमणीय आश्रम को देखा, जो कटहल, दाड़िम, शमी, बेर, अश्वत्थ, साल, द्राक्षा (किशमिश), रसाल, तमाल, बेल, खर्जूर, मंदार आदि वृक्षों से और उन वृक्षों पर लदे हुए सुगंधित फूल, और उन फूलों के मकरंद पर आसक्त भ्रमर, सुन्दर पुष्पों के पौधे, और उन पौधों के मध्य मित्रता के साथ विचरण करनेवाले मृगों, कोकिलों का कल-कूजन, शास्त्र तथा वेद-ध्वनि, तथा विविध तपोविनोदों से दीप्तिमान् था ।

आश्रम में पहुँचकर राम ने एक मुनि के द्वारा अपने आगमन का समाचार अगस्त्य मुनि को जनाया, और उसके पश्चात् उनके सम्मुख उपस्थित होकर उनके चरण-कमलों में बड़ी भक्ति से वंदना की । अगस्त्य ने उन्हें हृदय से लगाया, आशीर्वाद दिये और विविध प्रकार से संतुष्ट किया । तदुपरान्त मुनि बोले—'हे शुभ नामवाले राम, हे उत्पल-श्याम, हे गुणधाम, तुम क्रूर दानवों में भय उत्पन्न करनेवाले हो । मुनियों का सौभाग्य है कि तुमने मुनि-वेश में तपस्वी की तरह वन में निवास करते हुए, मुनियों को अभयदान दिया है कि तुम राक्षसों का संहार करोगे, अतः वे दुःखी न हों । तुम्हारे इन दयापूर्ण वचनों को सुनकर मुझे परम हर्ष हुआ ।'

इस प्रकार कहने के पश्चात् उन्होंने बड़े प्रेम से उनका अतिथि-सत्कार किया और असमान दिव्यास्त्र, शस्त्र, कोदंड तथा कवच आदि प्रदान किये। उन सबको ग्रहण करके रामचंद्र ने वहीं उनके सत्संग में रात्रि बिताई।

दूसरे दिन संध्या आदि से निवृत्त होने के पश्चात् परमात्मा राम ने उस मुनिश्रेष्ठ को प्रणाम किया। तब उनको आशीर्वाद देकर भविष्य के कार्य की संभावना करके उस धीमान् कुंभसंभव ने अत्यंत आदर के साथ रामचंद्र को संबोधित करके कहा--'हे राम! तुम उस पंचवटी में जाकर रहो, जिसके प्रांगण में गोदावरी नदी के पुण्य जल से शीतल बनाये गये तथा मंद-मंद चलनेवाले पवन के प्रभाव से लता-रूपी नर्त्तकियाँ नृत्य करती रहती हैं, और जो जटाधारी धूर्जटि के लिए पूज्य है। कुंभसंभव की आज्ञा लेकर रघुवर उस स्थान के लिए रवाना हुए।

८. जटायु से मित्रता

मार्ग के मध्य में उन्होंने एक खगराज को देखा, जो पंखों से युक्त कुल-पर्वत के समान था। राम ने सोचा कि यह भी कोई राक्षस होगा, इसलिए उससे प्रश्न किया कि तुम कौन हो? तब वह पक्षी बड़े हर्ष से कहने लगा--'हे राम, मेरे पिता, गरुड़ के अग्रज, कश्यप के पुत्र तथा सूर्य के सारथी महात्मा अरुण हैं। संपाति मेरे अग्रज हैं। मैं आपके पिता का मित्र हूँ; आपका हितैषी हूँ, पराया नहीं हूँ और मैं महान् साहसी हूँ। मेरा नाम जटायु है। यह वन असुर-राजा के अधीन है, इसलिए (आप) सीता की रक्षा सावधानी से करते रहिएगा।' तब राम ने उसे अपने पिता दशरथ के समान मन में मानकर बड़े स्नेह से उसकी पूजा की और वहाँ से चलकर पंचवटी में जा पहुँचे। वहाँ के श्रेष्ठ तपस्वी तथा मुनियों को बड़ी भक्ति से प्रणाम करके राम ने उनका सत्कार ग्रहण किया और फिर लक्ष्मण तथा सीता को देखकर बोले—'हमने कई प्रकार के पुण्य आश्रमों को देखा है; किन्तु ऐसी गौतमी गंगा (गोदावरी), ऐसे सरोवर, ऐसे वृक्ष और ऐसे आश्रम कहीं नहीं देखे। हम आज से यहीं रहेंगे।'

इस प्रकार वे अत्यंत हर्षित हुए और वहाँ के मुनियों की अनुमति प्राप्त करने के पश्चात् स्वयं तथा लक्ष्मण ने उसी दिन बड़ी तत्परता से एक सुंदर पर्णशाला बनाई। तत्पश्चात् आप और लक्ष्मण ने उसकी पूजा की और भूसुता (सीता) के साथ उस पर्ण-शाला में प्रवेश किया। इस प्रकार वे छह मास तक बड़े सुख से वहाँ रहे।

९. हेमंत-वर्णन

तब समस्त पृथ्वी को तथा दसों दिशाओं को कुहरे से आच्छादित करते हुए हेमंत ऋतु का आगमन हुआ। एक दिन प्रातःकाल ही सीता के साथ स्नान करने के लिए जाते समय राम ने लक्ष्मण को देखकर कहा--"हे लक्ष्मण, तुमने शीतकाल की महिमा देखी है? चारों ओर हिम इस प्रकार आच्छादित हो गया है, मानों सभी दिशाएँ ठंड से भीत होकर श्वेत कौशेय धारण किये हों। सारी पृथ्वी पर गिरी हुई ओस की बूँदें जमकर ऐसी दिखाई दे रही हैं, मानों हेमंत ऋतु-रूपी बादल ने समस्त आकाश में व्याप्त होकर

अत्यधिक ओले बरसाये हों । कहीं-कहीं ओस-कण दूर्वांकुरों के सिरों पर ऐसे दिखाई पड़ रहे हैं, मानों मरकत की शलाकाओं की पंक्तियों पर सुंदर ढंग से पिरोये गये मोतियों की लड़ियाँ हों । उस पुष्प-लताओं को देखो, जो कामदेव के सम्मोहनास्त्र के समान, स्पर्श करनेवाले पवन से भयभीत होकर, मानों विरहिणियों की तरह चंचल गति से डोल रही हैं । ओस में रहनेवाले कमल, आँसुओं में निमग्न विरहिणियों के मुखों का उपहास कर रहे हैं । वहाँ देखो, पानी के ऊपर तैरनेवाले कमलों के पराग पर मँडरानेवाले भ्रमर और लाल कमल, ठंड से पीड़ित सरोवर के देवताओं के लिए धुएँ से युक्त अंगीठियों के समान दीख रहे हैं । हे अनुज, वहाँ देखो, जंगली हाथी प्यास से व्याकुल होकर मंद गति से दौड़ते हुए इस नदी में आते हैं; नदी के जल को अपनी सूँड़ों में भरकर चिंघाड़ते हुए अपनी सूँड़ों को समेटे हुए भाग रहे हैं । अब भरत भी मेरे प्रति भक्ति रखने के कारण राज-भोग छोड़कर, वल्कल तथा जटाएँ धारण करके, मेरे आगमन की प्रतीक्षा करते हुए तड़प रहा होगा । न जानें, वह महान् व्यक्ति, परम पावन भ्रातृ-प्रेमी, अपने पिता तथा अग्रज की आज्ञा का पालन करनेवाला परम यशस्वी, आश्रितों का रक्षक भरत, उषःकाल में कैसे सरयू-नदी में स्नान करता होगा ? न जाने, वह मुनि की तरह कैसे पृथ्वी पर सोता होगा ? मेरे पिता के सत्य वचन तथा मेरा दृढ़ संकल्प उनके कारण ही सभी लोकों में इतने प्रख्यात हुए । जिस माता की आज्ञा के कारण मैं सभी संयमी मुनियों के आशीर्वाद प्राप्त कर सका, ऐसी माता को न जाने कटु वचनों से वह कितना दुःख देता होगा । नहीं, भला वह पुण्यात्मा ऐसा क्यों करने लगा ? राज्य के अधिकार से अलग होकर मैं तपस्वी हुआ, किंतु राज्य का अधिकारी होते हुए भी वह तपस्वी हुआ । उस पुण्यात्मा को देखकर दूसरों को सीखना चाहिए कि भाइयों में परस्पर कैसा व्यवहार उचित है । ऐसे भरत तथा स्नेहपूर्ण माताओं, तथा अन्य नातेदारों को न जाने हम कब देख पायेंगे ।" इस प्रकार उनके संबंध में सोचते हुए बड़ी श्रद्धा से उन्होंने गौतमी नदी में जी भरकर स्नान किया, सूर्य को अर्घ्य दिया, गायत्री-मंत्र का जप करने के पश्चात् ब्रह्म-यज्ञ किया और पर्णशाला को लौटकर बड़ी प्रसन्नता से रहने लगे ।

१०. जंबुमालि का वृत्तांत

एक दिन लक्ष्मण प्रातःकाल ही उठे और बड़े पवित्र चित्त से अपने भाई को प्रणाम किया और कंद, मूल, फल आदि लाने वन में चले गये । वनों में घूमते-घामते उन्होंने एक ऊँचे पहाड़ को देखा और उसके निकट विचरण करने लगे । इसी समय समस्त पृथ्वी को देदीप्यमान करते हुए सूर्य से उत्पन्न एक खड्ग आकर भीषण जलद के गंभीर गर्जन की-सी वाणी में कहने लगा—'हे राक्षस-कुमार, तुम्हारे तप से प्रसन्न होकर सूर्य ने शत्रुओं का नाश करने के लिए मुझे तुम्हारे पास भेजा है । तुम मुझे ग्रहण करो ।' तब उस राक्षस-कुमार ने कहा—'सूर्य ने स्वयं तुम्हें मुझे न देकर, मेरा अनादर किया है । मैं तुम्हें ग्रहण नहीं करूँगा । मेरे सारे तप पर पानी फिर गया है । हे सूर्य के खड्ग, तुम जहाँ चाहो, जा सकते हो ।' यों कहकर वह पूर्ववत् अचल समाधि में लीन हो गया ।

(यह देखकर) लक्ष्मण विस्मित हुए और उस खड्ग की ओर देखकर बड़ी कुशलता से उसके निकट पहुँचे और उसे हाथ में लेकर देखने लगे। फिर यह सोचकर कि तपस्वियों के आधार इन फल-वृक्षों को काटना नहीं चाहिए। वे जहाँ-तहाँ भटकते हुए एक विशाल बाँस की झाड़ी के निकट पहुँचे और उस झाड़ी पर खड्ग चलाया। खड्ग चलाते ही उस झाड़ी के मध्य में तपस्या में लीन एक मुनि कटकर भूमि पर लोटने लगा। यह देखकर लक्ष्मण मूर्च्छित-से हो गये। कुछ समय के उपरान्त वे सँभले और विलाप करने लगे--'हाय, यह मैंने क्या कर डाला ? अनजान में मैंने एक ब्राह्मण का वध किया और समस्त लोकों की निंदा का पात्र बना। ब्रह्म-हत्या का पाप मुझे प्राप्त हुआ है। हाय, मैं इतनी दूर क्यों आया ? मैंने यह खड्ग लिया ही क्यों ? अनुपम धर्मात्मा रामचंद्र के अनुज मुझे ऐसा घोर पाप लग गया है। यह मुनि न जाने कौन है ? (अनजान में) मैंने उनका वध कर डाला। जानकीनाथ सुनेंगे, तो न जाने मुझे क्या कहकर तज देंगे। क्या जाने मुनिजन कैसा शाप देंगे। मैं यह वृत्तांत (राम से) कह भी नहीं सकता, कहे बिना रह भी नहीं सकता। हाय भगवान् ! सर्वनाश हो गया है।' इस प्रकार भय-विह्वल हो, दुःख करते हुए धीरे-धीरे पैर घसीटते हुए वे चले। मन-ही-मन सोचते जाते थे कि महाराज दशरथ को पितृ-भक्त (श्रवणकुमार) के वध का पाप लगा था। पृथ्वी के लोग कहेंगे कि पिता के समान पुत्र को भी पाप लगा।

इस प्रकार चिंतित होते हुए वे अपने अग्रज के सम्मुख पहुँचे और थर-थर काँपते हुए गद्गद कंठ से युक्त हो उन्हें प्रणाम किया। राघव ने अपने अनुज को उठाकर गले से लगाया, (उनके) अश्रुओं को पोंछा, और दयार्द्रचित्त से कहा--'हे अनघ, मेरे रहते तुम क्यों भयभीत हो रहे हो ? तुम धर्म के अनुसार आचरण करनेवाले हो, उदार हो निर्मल आत्मा हो, नीतिवान् हो, महाराज दशरथ के मान्य पुत्र हो, शिव के समान पराक्रमी तथा शूर हो। भाई, तुम्हारा मुँह ऐसा क्यों उतरा हुआ है ? स्पष्ट रूप से सारा हाल कह सुनाओ।'

तब जयशील लक्ष्मण ने कहा--'हे भयत्राता, आपकी आज्ञा लेकर मैं वन से कंद-मूल, फल लिये आ रहा था। तब एक क्रूर खड्ग को आकाश से आता हुआ देखकर मैंने उसे हाथ में ले लिया और एक बाँस की घनी झाड़ी पर उसे चलाया। उस झाड़ी में (तपस्या में लीन) एक श्रेष्ठ मुनि तुरंत भूमि पर लोट गये। अपने अपराध के लिए चिंतित होते हुए, आपके सामने आने का साहस न रहते हुए भी मुझे आना ही पड़ा।'

यह सुनकर राघव अत्यधिक आश्चर्य में पड़कर आगे के कर्त्तव्य के संबंध में सोचते हुए चुप हो रहे। उसी समय वहाँ के सब मुनि सारा वृत्तांत (राम को) सुनाने का निश्चय करके आये और रामचंद्र को आशीर्वाद देकर अत्यंत कोमल स्वर में यों बोले--

'हे अखिलेश, आपके अनुज ने अभी अखिललोक-शत्रु रावण के भानजे, जंत्रु नामक एक दुष्ट का संहार किया है। इसमें कोई दोष नहीं है। हे राजन्, उनके इस कृत्य से सभी मुनि संतुष्ट हो गये हैं।'

तब राघव ने उन मुनियों से पूछा—'हे महात्मा, कृपया बतलाइए कि उसने किस देवता के प्रति इतना घोर तप किया और वह खड्ग कहाँ से आया ?' तब मुनियों ने राम से कहा—"पूर्वकाल में अपने बल-विक्रम से सभी दिशाओं को जीतने के लिए जाते समय दशकंठ ने किसी दूसरे पर विश्वास न करके, अपने बहनोई, पराक्रमी विद्युज्जिह्व को बुलाकर कहा था—'सावधान होकर लंका की रखवाली करते रहना ।' इस प्रकार उसे लंका की रखवाली करने के लिए नियुक्त करके वह चला गया ।

"इसके पश्चात् विद्युज्जिह्व ने मन-ही-मन सोचा—मैं सभी मायाओं को जानकर दशकंठ को लंकापुर में प्रवेश नहीं करने दूंगा और खुद लंका को हस्तगत कर लूंगा । यों सोचकर वह पाताल-लोक में चला गया और वहाँ प्रमुख राक्षसों के पास रहते हुए महान् माया-युक्त मंत्र-तंत्र, ग्रहवाद, अखिलवाद, गारुड़ क्रियाएँ, विषवाद, रसवाद आदि विद्याएँ सीखीं और वहीं रहते हुए तरह-तरह की मायाओं को सीखने में तत्पर रहा । इधर रावण सभी दिक्पालों को जीतकर लंका लौट आया । विद्युज्जिह्व का सारा हाल जानकर वह अत्यंत क्रुद्ध हुआ और आँखों से अग्नि-वर्षा करते हुए कहने लगा—'मेरी आज्ञा का पालन किये बिना ही यह (विद्युज्जिह्व) मायाओं के जानने गया है । मैं भी देखूंगा; उसकी समस्त मायाओं को आज मैं मटियामेट कर दूंगा ।' यों कहते हुए वह पाताल-लोक में गया तो 'अस्मय' नगरवासी सभी राक्षस भयाकुल हो गये । रावण ने अत्यधिक क्रोध से अपनी तलवार को म्यान से निकालकर, इसका विचार भी नहीं करके कि यह मेरा बहनोई है, मेरी बहन का पति है, विद्युज्जिह्वा का पीछा करके उसका वध कर डाला ।

"इसके बाद वह लंका लौट आया और अपनी बहन शूर्पणखा को बुलवाकर उसे सांत्वना दी और कहा—'तुम अपनी स्वेच्छा से विचरण करती हुई, अपनी इच्छा के अनुकूल किसी भी पति का वरण करके निर्भय संसार में रहो ।' उस समय शूर्पणखा को छह मास का गर्भ था । यथासमय उसने जंबुकुमार नामक एक भयंकर तथा बलशाली पुत्र को जन्म दिया । वह जब बड़ा हुआ, तब उसने अपनी माता से अपने पिता की मृत्यु का समाचार जान लिया और अपने पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने का निश्चय किया । उसने सोचा—यदि मैं ब्रह्मा की तपस्या करूँ, तो वे मेरी इच्छा पूरी नहीं करेंगे; शिव की तपस्या करूँ, तो रावण शिवभक्त होने के कारण वे उस पर क्रोध नहीं करेंगे; यदि विष्णु की तपस्या करूँ, तो न जाने कब वे प्रसन्न होंगे और कब मैं प्रतिशोध ले सकूँगा । कहते हैं कि हरि, हर तथा ब्रह्मा ये तीनों सूर्य के रूप में रहते हैं । इसलिए मैं सूर्य के प्रति तपस्या करके उनकी कृपा प्राप्त करूँगा तथा दनुजों के नेता दशकंठ का वध करूँगा । यों सोचकर वह सूर्य की तपस्या करने लगा ।

"सूर्य ने उसकी तपस्या से संतुष्ट होकर प्रतिशोध लेने के लिए उस राक्षस के पास एक खड्ग भेजा । किन्तु गर्वान्ध होकर उसने वह खड्ग नहीं लिया । इस तरह वह खड्ग आपके अनुज को मिल गया । ऐसा न होकर यदि वह राक्षस के हाथ में पड़ जाता, तो वह सभी लोगों को त्रास देता । दैवयोग से वह राक्षस नष्ट हुआ । हे सूर्यवंश-तिलक, अब इसके बारे में चिंता क्यों करते हैं ? युद्ध में कार्त्तवीर्य ने रावण को जीता था ।

भार्गव ने उसे मार डाला । ऐसे भार्गव राम को आपने युद्ध में हराकर उनका मद चूर्ण किया । ऐसे (शक्ति-संपन्न) आपके द्वारा राक्षस युद्ध में अवश्य ही मारे जायँगे ।" इन बातों को सुनकर रघुराम आश्चर्य-चकित हुए और विनम्र होकर मुनियों को प्रणाम करके उन्हें बिदा किया ।

११. शूर्पणखा का वृत्तांत

शूर्पणखा प्रतिदिन के जैसे बढ़िया भोजन, विविध मिष्टान्न आदि से भरा हुआ टोकरा लिये हुए आई और कटी हुई बाँस की झाड़ी के बीच खंड-खंड होकर गिरे अपने पुत्र को देखकर मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी । सँभलने के बाद वह उन खंडों को एकत्र करके बड़ी देर तक विलाप करती रही । उसके पश्चात् वह कहने लगी—'हे कुमार, तुम्हारे लिए क्या यह उचित है कि तुम अपनी आँखें खोलकर मेरी ओर न देखो और मुझे न अपनाओ । रावण तुम्हारे मामा हैं, इसका भी विचार किये विना तुम उस प्रतापी (रावण) का वध करना चाहते थे; किन्तु वह तुम से नहीं हो सका । क्या तुम ऐसा कर सकोगे ? क्या वे (रावण) कार्त्तवीर्य से पराजित हुए थे ? क्या अनरण्य की शापाग्नि से वे नष्ट हुए ? क्या ब्रह्मा के धनुष की अग्नि से उनका अंत हुआ ? क्या नलकूबर से वे पराजित हुए ? क्या वे शिव के वाहन नंदीश्वर के क्रोध का शिकार बने ? क्या शाण्डिल्य मुनि का क्रोध उनका नाश कर सका ? इतना क्यों, क्या कुबेर लंका में रह सका ? तुमने बात पर ध्यान नहीं दिया कि बलवान् से विरोध करना उचित नहीं । उनकी मृत्यु अब नहीं होने की । क्या पापी चिरायु की लोकोक्ति झूठी होगी ? (अर्थात् पापी चिरायु होता है, यह लोकोक्ति प्रचलित है) ? मैंने तुम्हें कितना समझाया कि (उन से) वैर मत ठानो; किन्तु तुमने मेरी बातों की परवाह न की, और इस प्रकार नष्ट हो गये । भला, रावण तुम्हारे हाथ क्योंकर मरने लगे ? कहते हैं कि माता का वचन धर्म-देवता का वचन होता है । हे निर्मलात्मा, तुमने उसकी (माता के वचन की) परवाह न की । गंधर्व, सुर, सिद्ध आदि (रावण के) कारागार में रहते-रहते अंधे हो गये हैं । क्या कहीं राक्षसों को जीता जा सकता है ? हे विद्युज्जिह्व के कुल-दीपक, हे महातपस्वी, हे पुण्यवान्, तप के सिद्ध होते समय तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी । अब भगवान् की निंदा क्यों करूँ ? मैं तो पतिहीना पापिनी हूँ । यदि सुत का मुँह देखती रहती, तो शोक कुछ कम हो जाता । स्त्रियों के लिए कुल का उद्धार करनेवाली संतान बहुत ही आवश्यक है ।"

इस प्रकार विलाप करती हुई उसने अपने पुत्र के शरीर का अग्नि-संस्कार किया । उसके पश्चात् थोड़ी दूर पर तप करते रहनेवाले महात्माओं के पास जाकर बोली—'हे नीच तपस्वियो, तुम शिर पर जटाएँ धारण किये, शरीर पर विभूति मले हुए, जनेऊ धारण करके, आँखें बंद किये, घोर निष्ठा-युक्त तपस्या का बहाना करते हो । सबलोग मिलकर बकरों का सिर काटते हो, उन्हें अच्छी तरह पकाकर पेट भर खा लेते हो और उनकी सूखी खालों को पहनकर कपट-वेष धारण किये निरपराधों की तरह रहते हो । हे गर्व से अंधे, तुमलोगों ने पाप-बुद्धि से प्रेरित होकर मेरे पुत्र को किस प्रकार और क्यों मारा ?

यदि यह नहीं बताओगे, तो मैं तुम्हें अवश्य निगल जाऊँगी और अपना क्रोध शान्त करूँगी। आज मैं तुम्हें छोड़नेवाली नहीं हूँ।'

इस प्रकार गरजती हुई वह उन मुनियों के निकट पहुँची। मुनि भयभीत होकर उससे बोले—'हे शूर्पणखा, सुनो। मुनि-वेष धारण किये हुए एक मानव, तुम्हारे पुत्र का वध करके, फल आदि इकट्ठा करके, उस पर्णशाला में जाकर अविचलित मन से रहता है। वहाँ जाओ, तो तुम्हें सभी बातों का पता चल जायगा।'

तब वह दुर्मति राक्षसी क्रोध से लक्ष्मण के चरण-चिह्न का अनुसरण करती हुई (राम की पर्णशाला की ओर) चली। इधर मुनि लोग हर्षित होने लगे कि यह बाघ को छेड़ेगी और अवश्य ही रघुवंशी इसे उचित दंड देकर भेजेंगे। सभी दैत्यों के नाश का यह मूल कारण बनेगी।

तब राक्षस राजा की बहन शूर्पणखा ने समय का विचार करके ऊँची नाक, उग्र भाव, बड़ी-बड़ी आँखें, दाढ़ों से युक्त जबड़े, विशाल उदर, बिखरे केश, खुला हुआ मुँह, काला शरीर, लंबी जीभ, विशाल काया और क्रूर दृष्टि आदि धारण किये और स्त्री-रूप में राम के निकट इस प्रकार पहुँची, मानों वह अत्यंत भयंकर गति से आनेवाला विष हो या समस्त लोकों को निगलने के निमित्त आनेवाला भूत हो, या दैत्य-वंश के नाश का समय आसन्न जानकर पृथ्वी पर उतर आई हुई मृत्यु ही हो।

उसने जब इंदीवरश्याम, सूर्य-प्रभा-सम तेजस्वी, सौंदर्य में काम को भी लजानेवाले, जगदभिराम, दैत्यों का नाश करनेवाले, राम को देखा, तो तुरंत वह काम-पीड़ित हो गई। वह अपने-आपको भूल गई और तमोगुण से प्रेरित होकर अपने को समस्त लोक की सुंदरी मानने लगी। उस राक्षसी ने अपने चौड़े मुख से उनके (राम के) मनोज्ञ मुख की, अपने विशाल उदर से उनके क्षीण उदर की, और अपनी तिरछी आँखों से उनके विशाल नेत्रों की तुलना करके अपने में और रामचन्द्र में बिलकुल समानता देखने लगी। तब उसने निश्चय कर लिया कि यही मेरे लिए उचित पति है। तदुपरान्त उसने सूप-जैसे अपने मुख पर हँसी प्रकट करते हुए कहा—'धनुष-बाण धारण किये, पत्नी के साथ तुम इन अगम्य वनों में क्यों भ्रमण कर रहे हो? इस वेश में तुम क्यों रहते हो? तुम कौन हो और तुम्हारा नाम क्या है?

इन वचनों को सुनकर राम ने मंद-मंद हँसकर उस राक्षस-रमणी से कहा—हे मनोहर सुंदरी, मेरा नाम राम है। मेरे पिता महाराज दशरथ हैं। इस पर्णकुटी में रहने-वाला मेरा अनुज है। यह पद्माक्षी मेरी पत्नी सीता है। पिता की आज्ञा से मैं इस वन में तपस्वियों की तरह रहता हूँ। हे युवती, तुम कौन हो? तुम्हारा नाम क्या है? आज हमारे यहाँ तुम क्यों आई हो? तुम्हारे हाव-भाव, तुम्हारा यौवन-रूप तथा तुम्हारी सुंदरता, क्या अन्य किसी रमणी में है?'

इन बातों को सुनकर शूर्पणखा ने राम को संबोधित करके कहा—'मैं विश्रवसु के पुत्र, समस्त संसार का शत्रु, विक्रम-यशोधन, अमित शक्तिशाली रावण की बहन हूँ। मेरा नाम शूर्पणखा है। मैंने तुम्हारे रूप की अपने रूप के साथ तुलना की है और मुझे

विश्वास हो गया है कि मेरा और तुम्हारा प्रेम उचित होगा । इसलिए मैं तुम पर आसक्त हूँ । मैं अपनी इच्छा से कोई भी रूप धारण कर सकती हूँ, कहीं भी जाने की क्षमता रखती हूँ, किसी भी वस्तु को प्राप्त कर सकती हूँ; कोई भी सुख पहुँचा सकती हूँ । अब तुम्हारे साथ जो (स्त्री) है, वह किस काम की है ? मेरा सौंदर्य देखो और मेरा पाणि-ग्रहण करो । यह (सीता) कुल तथा गुण से हीन है, विकृतरूपिणी है, यह तुम्हारे लिए कहाँ योग्य है ? हे राम, मैं अभी इसे निगल जाऊँगी और तुम्हारी इच्छा के अनुसार तुम्हारे साथ रति-क्रीड़ा में प्रवृत्त हो जाऊँगी ।'

इस प्रकार कहते हुए जब वह राम के पास आने लगी, तब राम ने सीता को अपने निकट बुला लिया । तरुणी की इच्छा को सुनकर, उसका परिहास करने के उद्देश्य से उसके रूप को देखकर हँसते हुए बोले—'हे सुंदरी, मैं पत्नी के साथ रहता हूँ । यह मेरा विश्वास करके मेरे साथ वन में आई है, इसलिए इसे तुमको सौंपना उचित नहीं है । इतना ही नहीं, तुम सौत के साथ सुख से कैसे रह सकोगी ? अगर यह नहीं होती, तो मैं पहले ही तुम्हें ग्रहण करता । अब भी कुछ बिगड़ा नहीं है । वह देखो, मेरा भाई है; श्रेष्ठ तपोधन है, वह मुझसे भी अधिक सुंदर है । वह सदा अपने लिए अनुकूल, चंचल तथा विशाल नेत्रवाली स्त्री की अभिलाषा करता रहता है । इसलिए वही तुम्हें ग्रहण करने में समर्थ है ।'

इस पर शूर्पणखा लक्ष्मण के पास गई और कहने लगी—'हे लक्ष्मण, मैं तुम पर आसक्त होकर तुम्हारे साथ विवाह करने के लिए आई हूँ । मुझे तुम ग्रहण करो ।' लक्ष्मण समझ गये कि राम के भेजने पर यह मेरे पास आई है । इसलिए वे बोले— 'हे सुंदरी, पहले तुमने अपने मन से मेरे भाई से प्रेम किया था । अतः, तुम्हें ग्रहण करना मेरे लिए उचित नहीं है । सौंदर्य में सीता तुम्हारी समता नहीं कर सकती । तुम्हारा प्रेम और तुम्हारे हाव-भाव आदि यदि एक बार और राघव देखेंगे, तो वे सीता को छोड़कर तुम्हें ग्रहण करेंगे । हे रमणी, इसलिए तुम राम से ही प्रार्थना करो ।'

सौमित्र की बातों पर विश्वास करके वह तमोगुण-संपन्न स्त्री, अपने भद्देपन का विचार न करके पुनः राम के पास गई और रति-क्रीड़ा के लिए प्रार्थना करने लगी । तब राम ने कहा—'हे सुंदरी, तुम उसी (लक्ष्मण) के पास जाओ ।' तब युवती पुनः लक्ष्मण के पास जाकर प्रार्थना करने लगी । इस प्रकार अनुज अग्रज को, अग्रज अनुज को दिखाने लगे । वह युवती विकल मन के साथ बड़ी अनुचित आशा लिये मन्मथ के सूत्र के द्वारा नचाई जानेवाली कठपुतली की तरह, यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ, आने-जाने लगी । अंत में वह उन दोनों की रसहीन बातों से तंग आकर क्रुद्ध होकर बोली— 'हे मानव, एक अकिंचन स्त्री के समान मुझे तंग करना क्या तुम्हारे लिए उचित है ? अगर मैं क्रोध करूँ, तो मानवों की कौन कहे, इंद्रादि देवताओं को भी खा जाऊँगी । अब मैं इस स्त्री के साथ समस्त संसार को पीसकर खा जाऊँगी ।' यों कहती हुई उसने बड़ा भयंकर रूप धारण कर लिया और मृत्यु के समान अट्टहास करती हुई वह (सीता के) निकट जाने लगी । तब राघव बोले—'हे सौमित्र, यह जानकी के ऊपर आक्रमण करने

आ रही है । अब इससे परिहास छोड़कर, इसे दण्ड दो ।' तब लक्ष्मण ने बाँबी से निकलनेवाले विष-ज्वालाओं से युक्त साँप-सा अपना खड्ग म्यान से निकाला और उस राक्षसी की नाक और कान काट लिये । तब वह रोती-कलपती, विवश हो, टूटे हुए शृंगवाले लाल पर्वत के सदृश (नाक-कान से) रक्त बहाती हुई, वहाँ से भाग गई । वहाँ से भागकर वह चतुर्दश सहस्र श्रेष्ठ निशाचरों के निलय, खर के निवास-स्थान में पहुँची ।

१२. खर-दूषण का वध

खर ने जब उस (शूर्पणखा)का रूप देखा, तब वह डर गया और पूछा—'किसने निर्भय होकर तुम्हारा रूप ऐसा विकृत कर दिया है ? काले नाग को जानकर भी किसने उसे पैर से कुचला है ? किसने मृत्यु को इस प्रकार छेड़ा है ? मुझे उसका नाम बताओ । मैं शीघ्र उसका रक्त और मांस तुम्हें ला दूँगा । इस प्रकार प्रश्नों की वर्षा करनेवाले खर को देखकर वह स्त्री भर्राई हुई विकृत आवाज में रोती हुई, अत्यधिक लज्जा से सर झुकाये हुए, इस प्रकार कहने लगी—'वन में जहाँ मैं रहती हूँ, मेरा पुत्र सूर्य के प्रति अत्यंत निष्ठा से तप कर रहा था । तब मुनि-वेशधारी अत्यंत साहसी, मोहनाकार राम-लक्ष्मण नाम के राजकुमारों ने बिना भय के उसका वध कर डाला । मैंने अपने पुत्र की अंत्येष्टि-क्रियाएँ की और वन में रहनेवाले उन सुन्दर आकारवाले राजकुमारों के पास गई और उनपर मोहित हो गई । उन्होंने अपनी अमित शक्ति के प्रताप से मेरी ऐसी दुर्गति कर दी है । मैं दुःखी होती हुई तुम्हारे पास आई हूँ । तुम तुरंत उनके पास जाओ और अपनी पूरी शक्ति लगाकर उनका वध करके उनका मांस ला दो । इस तरह मेरे हृदय को शांति पहुँचाओ ।'

इन बातों को सुनकर खर ने कहा—'इस छोटी-सी बात के लिए मेरे आने की आवश्यकता ही क्या है ? उनकी शक्ति ही कितनी है ? मैं अपने अनुचरों को (तुम्हारे साथ) भेजूँगा । उन्हें ले जाओ । इस प्रकार कहकर उसने यम के-से उग्र तेजवाले (भटों) को बुलाकर कहा—'तुम इस शूर्पणखा के साथ जाओ और उन मानवों का वध करके मेरी बहन शूर्पणखा को उनका रक्त पिला दो ।'

वे राक्षस वायु के साथ आनेवाले दुर्वार मेघों के समान, बिजलियों के-से शूल घुमाते हुए राम और लक्ष्मण-रूपी सूर्य-चंद्रों पर आक्रमण करने लगे, और घोर गर्जन करने लगे । तब राम ने अपने दीप्तिमान् धनुष तथा अन्य आयुधों से युक्त हो उनका सामना किया । उन्होंने राक्षसों से फेंकी हुई बिजली तथा शूलों को अपने शस्त्रों से काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया । उसके पश्चात् (राम ने) भयंकर वज्र-से बाणों से उनके कंठों को काट डाला और तब उनके सिर पके हुए फलों के समान गिर पड़े और वे अनुपम बाणों के आघात से सीधी शिलाओं के समान पृथ्वी पर लुढ़क पड़े ।

तब शूर्पणखा अत्यंत वेग से भागकर सभी लोकों को भयभीत करनेवाले खर से उन राक्षसों की मृत्यु का तथा रघुराम की महिमा-समन्वित युद्ध का समाचार कहा । आहुति के पड़ने से उत्तेजित होकर भभक उठनेवाली अग्नि के समान क्रुद्ध होकर खर अत्यधिक आवेश से भरे दूषण, त्रिशिर आदि चौदह सहस्र बलशाली राक्षस वीरों को साथ

लेकर चला । यह देखकर देवताओं के साथ सारा स्वर्ग काँप गया और सभी पहाड़ों से युक्त पृथ्वी हिल उठी । खर ने रण-भेरी बजाई और सुमेरु-पर्वत की आभा के समान दीखनेवाले चितकबरे रंग के अश्वों से युक्त, मणिमय कूबर तथा दस स्वर्णमय चक्रों से समन्वित, रण में विजय प्रदान करनेवाले, धनुष-बाण और खड्गों से भरे, किंकिणि-ध्वनि से मुखरित होनेवाले रथ पर चढ़कर वह रण-विद्या-विशारद राम पर आक्रमण के लिए निकल पड़ा। (उसके पीछे-पीछे) बाज के पंखों के समान बाणवाला, बिजली की समता रखनेवाला, त्रिशिर (नामक राक्षस) सभी दिशाओं की कांति को मलिन करता हुआ, सूर्य की कांति के समान उज्ज्वल, श्रेष्ठ गधों के समूह से खींचे जानेवाले स्वर्ण से आच्छादित रथ पर बैठकर बड़े गर्व के साथ उस महायुद्ध के लिए रवाना हुआ । उसके आगे-आगे मयूर की छटा को मात करनेवाले, पवन की गति का भी तिरस्कार करनेवाले, कांति-युक्त शीघ्र-गामी अश्व-समूह के द्वारा खींचे जानेवाले उत्तम रथ पर बैठकर, अत्यधिक उत्साह से बड़े ठाट-बाट के साथ (खर) जा रहा था । पृथुग्रीव, श्येनगामी, विहंगमुख, मेघमाली, महामाली प्रलयकाल की कालाग्नि की समता करनेवाला सर्पमुखी, कालकार्मुक, दुर्जय, यज्ञ-शत्रु, परुष, करुणा-रहित, करवीरनेत्र और रुधिराशन नामक बारह प्रतापी राक्षस वीर, बारह आदित्यों के समान, बड़ी श्रद्धा से खर के पीछे जा रहे थे । त्रिशिर, प्रमाथी, रणकुशल, महाकपाल और स्थूलाक्ष, (आदि राक्षस) उस रण-मदमत्त सेना के साथ चारों ओर सावधान होकर चल रहे थे ।

(इस प्रकार जब राक्षस-सेना निकली), तब भयंकर गज-समूहों के चिंघाड़ने, घोड़ों के हिनहिनाने, रथों के चलने तथा पदचरों के हुँकारने की ध्वनि तथा पताकाओं के फड़फड़ाने की ध्वनि से पृथ्वी धँस गई, दिशाएँ चूर-चूर हो गईं, समुद्र उमड़ने लगे और सभी भूत थर-थर काँपने लगे । सेना के चलने से जो धूल उड़ी, उसने आकाश को ऐसा ढक दिया कि संदेह होने लगा कि रवि-मंडल है या नहीं । इसी समय खर की पताका पर चील बैठने लगे । घोड़े घुटने टेकने लगे, रक्त की वर्षा होने लगी, सियार रोते हुए सेना के बीच से दौड़ने लगे, नक्षत्र टूटने लगे, पक्षियों की ध्वनि चारों ओर सुनाई पड़ने लगी । इसी प्रकार के कितने ही उत्पात पृथ्वी और आकाश में होने लगे । फिर भी खर विना भयभीत हुए आगे बढ़ता गया और दण्डक-वन में पहुँच गया । अनुपम आकारवाले राम उस कोलाहल को सुनकर पर्णशाला के बाहर आकर खड़े हुए और पृथ्वी तथा आकाश में दीखने-वाले अपशकुन को देखकर, शीघ्र अपने अनुज को बुलाया और कहा—'सौमित्र, युद्ध-सूचक चिह्न कितने ही दिखाई पड़ रहे हैं । कदाचित् वह निंद्य और नकटी राक्षसी अपने साथ और सेना ला रही है । वह सुनो, सेना का रणघोष सुनाई पड़ रहा है । वहाँ देखो, सेनाओं के चलने से धूल आसमान में छा रही है । जानकी का अब यहाँ रहना ठीक नहीं । इसलिए सावधान होकर तुम शीघ्र ही उसे अपने साथ ले जाकर पर्वत की गुफा में ठहरो ।

तब लक्ष्मण ने कहा—'हे सूर्यवंश-तिलक, आपको यहाँ छोड़कर मैं कैसे जा सकता हूँ ? आप ही सीताजी के साथ पर्वत की गुफा में जाकर देखते रहिए । मैं आपकी कृपा से इन दुर्वार राक्षसों का वध करूँगा ।' ये बातें सुनकर राम ने कहा—'इनसे युद्ध करना

मेरे लिए कौतुक का विषय होगा। इसलिए तुम यहाँ मत रहो। जानकी को साथ लेकर जाओ।' (इन बातों को सुनकर) लक्ष्मण सीता को साथ लेकर पर्वत-गुफा में चले गये।

तब राम प्रलयकाल के रुद्र के समान क्रुद्ध होकर अपना प्रताप प्रकट करते हुए, कृपाण, कवच, धनुष-बाण धारणकर, श्रेष्ठ तूणीर-युगल (पीठ पर) बाँधकर और पर्वत को भी धनुष के आकार में झुकानेवाले शिव की तरह, अपने धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर, उस प्रत्यंचा की टंकार करने लगे। उस धनुष की टंकार की ध्वनि सारे आकाश में गूँजने लगी। इन्द्र, दिक्पाल और अन्य देवता अपने रत्न-खचित विमानों पर आसीन हो यह देखने की उत्सुकता प्रकट करने लगे कि राम अकेले खर तथा दूषण आदि अत्यन्त पराक्रमी चौदह सहस्र राक्षसों का वध कैसे करते हैं? सभी देवर्षि स्वर्ग से कई बार आशीर्वाद देने लगे कि महात्मा राम इन मायावी राक्षसों का वध करने में सफल हों। राम का तेज सभी वन, वृक्ष, पृथ्वी तथा आकाश में ऐसा व्याप्त हुआ, मानों दस सहस्र कोटि सूर्यों का तेज समस्त लोकों में व्याप्त हो गया हो।

इस प्रखर तेज के कारण जड़वत् हो, सभी उत्साह को खोकर, आँखें चौंधिया जाने के कारण अत्यंत दीन दीखनेवाले राक्षस-समूह को देखकर, खर ने दूषण से कहा—'(हे भाई), क्या कारण है कि हमारी सेना की गति मंद पड़ गई है। क्या शत्रु-सेना ने उसका सामना किया है? या कोई नदी बीच में पड़ गई है?'

तब दूषण ने सारा समाचार जानकर कहा—'हे दनुजेश्वर, राम का उद्दण्ड तेज सारे संसार में व्याप्त हो गया है। इसलिए हमारी सेना की गति मंद पड़ गई है।'

यह बात सुनकर खर अत्यंत क्रुद्ध हुआ और सेना को डाँट-फटकार बताते हुए, भयंकर रीति से सारी सेना का संचालन करते हुए वह आगे बढ़ा। अत्यधिक भुजबल, आटोप तथा पराक्रम से समन्वित उस राक्षस-सेना ने गज, रथ, तुरंग आदि से युक्त हो, अत्यंत वेग से काकुत्स्थ-वंशज राम को इस तरह घेर लिया, जैसे अग्नि-समूह एक साथ प्रचंड दावानल पर आक्रमण कर दे। (इस प्रकार राम को चारों ओर से घेरकर) वे उन पर, शर, खड्ग, त्रिशूल, करवाल, भाले, मुद्गर, परशु, गँड़ासा, गदा, पाश, चक्र आदि विविध आयुधों की वर्षा करने लगे। देवता भयभीत हो उठे। मेघों से आच्छादित भास्कर के समान थोड़ी देर के लिए राम दिखाई भी नहीं पड़े। किन्तु तुरन्त उन्होंने ऐन्द्रजालिक की तरह राक्षसों के द्वारा चलाये गये सभी विविध शस्त्रास्त्रों को नष्ट कर दिया। इससे हर्षित होकर सभी देवता उनकी प्रशंसा करने लगे। अविरल गति से राक्षसों के द्वारा बरसाये जानेवाले शस्त्रास्त्रों को बीच में ही नष्ट करते हुए (राम ने) परिवेश (मंडल) से घिरे हुए मध्याह्न-सूर्य के समान अपने चारों ओर अपने प्रखर तेज का घेरा बनाये हुए, कोदंड को कुंडलाकार में झुकाकर, युद्ध के उत्साह से फड़कनेवाली भुजाओं से युक्त हो, अपने तूणीर के अनगिनत बाणों का एक साथ संधान करके, अपने आगे-पीछे तथा दोनों पार्श्व-भागों में व्याप्त राक्षस-सेना पर उनका प्रयोग किया। उनके इस शर-प्रयोग से मत्त हाथी और योद्धा कट मरे, अश्व और घुड़सवारों के टुकड़े-टुकड़े हो गये; पदचर सैनिक और उनके आयुध नष्ट-भ्रष्ट हो गये। शिर और शर उनके सामने कट-कटकर

गिरने लगे, योद्धाओं के अग और रथों के भाग पृथ्वी पर गिरने लगे, गुण-सहित धनुष तथा कवच चूर-चूर हो गये, रथी और सूत पृथ्वी पर लोटने लगे, श्वेत छत्र और पताकाएँ टूटने लगीं, और मांस-खंड छिन्न-भिन्न होकर गिरने लगे। इस प्रकार, युद्ध ने भयंकर रूप धारण किया।

सूर्य के प्रकाश से जिस प्रकार अंधकार तितर-बितर हो जाता है, वैसे ही राम के असमान पराक्रम से नष्ट होने के बाद बची हुई राक्षस-सेना दर्प खोकर खर की शरण में पहुँची। खर ने उनको प्रोत्साहित किया और दूषण को युद्ध करने के लिए भेजा। बची हुई सेना के साथ वह अपनी शक्ति दरसाते हुए, शीघ्र ही राम के निकट आ पहुँचा और उनपर ताल, साल (आदि वृक्ष), शिलाएँ तथा विविध अस्त्रों की वर्षा करने लगा। (इन अस्त्रों के लगने से) राम के शरीर से रक्त-प्रवाह होने लगा। तब क्रोध से आँखें लाल किये हुए राम ने उन राक्षसों पर गांधर्व-अस्त्र चलाया। उस शक्ति-संपन्न अस्त्र के तेज के आगे गज, रथ, तुरग, पदाति राक्षस-सेना टिक न सकी। वह अस्त्र अपने भयंकर तेज से दनुज-वर्ग को नष्ट-भ्रष्ट करके, उनका संहार करने लगा। रण-भूमि में जहाँ देखो, अश्व तथा गज के धड़, मुंड, आँत, भेजा तथा रक्त का प्रवाह दिखाई पड़ने लगा। शाकिनी, भूत, पिशाच, वैताल आदि झुंड-के-झुंड वहाँ पहुँचकर कहने लगे—'यह लो, राम के युद्ध-रूपी धर्मशाला में हाथियों के शिर-रूपी घट में मोती-रूपी चावल का भात पकाया गया है। चलो हम सब खायें।'

वे सब भूत-प्रेत अत्यंत हर्ष से पंक्तियों में बैठ गये; रक्त-चंदन, नवरक्त-अक्षत रक्त-संकल्पपूर्वक धारण किया; चमड़ा-रूपी केले के पत्ते बिछाये, खोपड़ी-रूपी दोने सजाये; शर की अग्नि में पकाये गये मांस को भात, मस्तिष्क को दाल, चर्बी को घृत, विभिन्न अंगों के मांस को शाक, छोटी आँतों को पायस, हृदय-पिंड को मिठाई, नये रक्त को मीठा जल मानते हुए, उसे सब प्रकार से विप्रोचित भोजन समझकर छककर खाया। भोजनोपरांत सब एकत्रित हुए कुछ ने आशीर्वाद दिये कि—'श्रीरामचन्द्र ! ते विजयोऽस्तु।' तो कुछ ने पीछे से कहा—'तथास्तु।' कुछ भूतों ने हाथियों के दाँत छड़ी की तरह हाथ में धारण कर लिया, तो कुछ ने अस्थियों की मालाएँ कंठाभरणों के रूप में धारण कर लीं और हाथियों की घंटिकाओं का ताल देते हुए बड़े आनंद से अपना निंदनीय रूप प्रकट करना शुरू किया।

तब मदमत्त वैरियों के लिए भयंकर रूपवाला दूषण अत्यंत दुःखी होकर अपने समान बलशाली पाँच सहस्र योद्धाओं को राम पर आक्रमण करने के लिए भेजा। उन्होंने तीनों लोकों को कँपाते हुए, राम पर आक्रमण किया, तो राम ने अपनी धनुर्विद्या की कुशलता प्रदर्शित करते हुए, अत्यंत क्रुद्ध दृष्टि धारण किये हुए एक-एक राक्षस पर एक-एक बाण का प्रयोग कर उन सब का वध कर दिया। कुछ लोगों को एक साथ इकट्ठा करके भी उनका संहार किया। यह देखकर दूषण अत्यंत क्रोध से राम को कटु वचन कहते हुए, अपना रथ राम के सम्मुख ले गया और उनपर वज्र तथा काल-नाग की समता करनेवाले बाणों की वर्षा करने लगा। राम ने उन बाणों को बीच ही में तोड़ दिया, उसके

धनुष के टुकड़े-टुकड़े कर दिये । रथ से विहीन होन से दूषण क्रोधोन्मत्त होकर भयंकर, प्राणांतक, विजयशील यम की गदा की समता रखनेवाले मुद्गर को घुमाते हुए राम पर दौड़ा । तब राम ने दो तेज बाणों को चलाकर उसके दोनों हाथ काट डाले और एक घातक तीर उसके हृदय में मारा । तब वह राक्षस पृथ्वी पर ऐसे गिर पड़ा, जैसे मत्तगज दाँतों के टूटने से ढेर होकर पृथ्वी पर गिरता है । उसको गिरा देखकर प्रमाथी, महा-कपाल तथा स्थूलाक्ष नामक तीन दण्ड-नायकों ने परशु, कृपाण तथा भाला उनपर चलाये, तो राम ने उनके अस्त्रों तथा उनके मस्तकों को एक-एक करके गिरा दिया ।

तब खर ने अपने बारह सेनापतियों को उत्तेजित किया । उन बारहों सेनापतियों ने अपने दुर्वार शौर्य से वीर राघव पर आक्रमण किया और अलग-अलग उनसे युद्ध करने लगे । तब राम ने वज्र की धार के समान पैने तथा भयंकर बाणों के प्रयोग से अपनी शक्ति दरसाते हुए श्येनगामी का अंत कर डाला; कालकार्मुक का वध किया; करवीरनेत्र को गिरा दिया; सर्पास्य का गर्व-भंग किया; विहंगम का संहार किया; यज्ञशात्रव की शक्ति को नष्ट करके उसे दण्ड दिया; दुर्जय तथा महामाली का वध किया; मेघमाली का संहार किया; रुधिराशन का अंत किया और खर तथा त्रिशिर को छोड़कर अन्य सभी राक्षसों का संहार कर डाला ।

इस प्रकार पवन के चलने से गिरनेवाले पके पत्तों के समान सारी सेना नष्ट हुई देखकर त्रिशिर ने अत्यंत क्रोध से राम के निकट अपना रथ चलाया और सिंह-गर्जन करते हुए, राम पर ऐसे आक्रमण किया, जैसे मत्त हाथी सिंह पर आक्रमण करता है । धनुष की टंकार करते हुए उसने एक साथ असंख्य बाण राम पर चलाये । राम ने बड़े क्रोध से प्रतिरोधक बाण चलाकर उसके बाणों को बीच में ही नष्ट कर दिया । तब उसने अपने नाम के प्रताप के अनुरूप राम के ललाट पर तीन बाण छोड़े । जब वे तेज बाण राम के ललाट पर लगे, राम हंसने लगे और त्रिशिर के वे तीनों बाण कुसुमों की दशा को प्राप्त हो गये । तब राघव बोले--'अब मैं ऐसे चौदह दारुण बाण तुम पर छोड़ूंगा, जो चतुर्दश भुवनों में प्रवेश करने पर भी तुम्हें पकड़कर तुम्हारा वध कर देंगे । अब तुम उनका सामना करो । इस प्रकार कहते हुए राम ने चौदह बाण छोड़े । वे बाण उस राक्षस के हृदय को पार करके पृथ्वी में जा गड़े । तब राघव ने चार और बाणों का प्रयोग करके उसके रथ को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और तत्क्षण ही दस अस्त्र उस राक्षस के उर पर चलाये । उस सुरवैरी (त्रिशिर) ने क्रोधोन्मत्त हो राम पर शूल चलाया, किन्तु राम ने चार बाणों से शूल को काट दिया । इसके पश्चात् उन्होंने तीन अस्त्र चलाकर उस राक्षस के तीनों सिर काट डाले । त्रिशिर पृथ्वी पर ऐसे गिरा, जैसे कोई वृक्ष तीन शाखाओं के साथ समूल कटकर, शोभा-रहित हो, पृथ्वी पर गिर पड़ता है ।

त्रिशिर को गिरते हुए देखकर, खर राम के प्रताप का विचार करके विस्मित हो गया । वह तुरंत अत्यधिक क्रोध से अपना रथ राम के सामने ले गया और राम पर भयंकर बाण-वर्षा करने लगा । राम भी अस्त्र चलाने में अपना कौशल दिखाते हुए खर पर प्रतिबाण चलाने लगे । खर के तथा राघव के बाणों से पृथ्वी तथा आकाश भर गये।

सूर्य की दीप्ति मंद-सी हो गई और दिशाओं में अंधकार व्याप्त हो गया। न खर राघव से भीत था, न राघव ही खर से भीत थे। दोनों विजय की आकांक्षा से दो हाथियों के समान, दो सिंहों के समान और महिष-द्वय के समान आपस में जूझ गये और अपने बाहुबल को प्रदर्शित करने लगे। तब खर ने एक अर्द्धचंद्राकार बाण से राम के हाथ के धनुष को काट डाला, उनके कवच को छिन्न-भिन्न कर दिया, और उनके शरीर को शर-वर्षा से भर दिया। उन बाणों की परवाह किये विना ही सूर्यवंशी राम ने अगस्त्य से प्राप्त वैष्णव-चाप का तुरंत संधान किया; धनुष की टंकार की और तेज बाण चलाकर उस राक्षस की पताका को काट डाला। तब उस राक्षस ने राम के हृदय का विदारण कर सकने की शक्ति रखनेवाले चार बाण चलाये। रक्त-सिक्त अंगों से राम ने उस राक्षस को विविध बाणों से पीड़ित करते हुए एक प्रबल अस्त्र से उसका धनुष तोड़ दिया; चार बाणों से घोड़ों को मार गिराया और सारथी को मार डाला। उनका धनुष ऐसा दीखने लगा, मानों वह अपनी बाणाग्नि में रथ की पूर्णाहुति देना चाहता हो। तब रथ से वंचित हो खर प्रलयकाल के रुद्र की भाँति हाथ में गदा लिये हुए राम की ओर आने लगा तो पहाड़ों के साथ पृथ्वी काँप गई। उस दुष्ट दैत्य को देखकर रघुराम ने बड़े दर्प के साथ कहा—'हे राक्षस, हे नीच, अब भी तुम्हारी शूरता किस काम की? तुम्हारी सेना नष्ट हो गई; तुम्हारे बंधु कट मरे; तुम्हारी अस्त्र-संपत्ति समाप्त हो चली; इस दण्डक वन में अपने अद्वितीय शौर्य से बढ़ते हुए, यहाँ के पुण्यात्मा मुनियों को मारने के पाप-फल को भोगने का (तुम्हारा) समय आ गया है। उसे अब भोगो, मैं अभी तुम्हारा वध करता हूँ।'

इन वचनों को सुनकर खर क्रोध से जलते हुए बड़े घमंड के साथ बोला—'हे राघव, ऐसा गर्व क्यों करते हो? युद्ध में कुछ क्षुद्र राक्षसों को मारने से (गर्व से) फूलकर अपनी प्रशंसा आप क्यों कर लेते हो? कुलीन जन कहीं अपनी प्रशंसा आप करते हैं? यह लो, मैं गदा लिये हुए आया। मुझसे भिड़ो और मेरी शक्ति देखो। देवता तथा असुर मेरी ओर दृष्टि तक नहीं उठा सकते, तब क्या तुम मेरे आगे खड़े रहने योग्य शूर हो? मैं एक-एक करके तुम्हारी मांस-पेशियों को काटकर अपनी बहन को दे दूँगा।'

इस प्रकार कहकर उसने अपनी गदा घुमाकर उसे राम पर फेंका। पवन की शीघ्र गति, सूर्य का तेज, अग्नि का ताप, और बिजली की कठोरता मानों उस गदा के रूप में आ रही हो। उस गदा को, अत्यन्त प्रचंड वेग से अपनी तरफ आते देखकर राम ने उस गदा के लंबे कांड (भाग) को खंड-खंड कर दिया और बोले—'क्यों रे, तुम्हारी गर्वोक्तियाँ तथा घमंड चूर हुए कि नहीं?' तब उसने (खर) गर्जन करते हुए एक वृक्ष को उखाड़कर अपने बाहुबल से उसे घुमाकर 'लो, मरो'—कहते हुए राम पर फेंका। राघव ने तुरंत उस वृक्ष को काटकर सूर्य की सहस्र किरणों की आभा के समान उज्ज्वल सहस्र शरों को उस पर छोड़ा, जिससे वह अत्यंत व्याकुल हो उठा। उसके शरीर से रक्त की धाराएँ बहने लगीं। फिर भी वह अपना समस्त साहस एकत्रित करके राम के आगे आया। उसे देखकर राम ने, दया त्यागकर, समस्त भुवनों को व्याकुल करते हुए, ऐन्द्रास्त्र का संधान करके

उस पर चलाया। तब वह राक्षस (खर) अपना सारा अकड़ खोकर वज्रपात से चूर-चूर होकर पृथ्वी पर गिरनेवाले पर्वत के समान गिर पड़ा। डेढ़ मुहूर्त्त के अंतर (तीन घड़ियों) में अपने ऊपर आक्रमण करनेवाले खर-दूषणादि चौदह सहस्र राक्षसों का (राम ने) इस प्रकार वध किया, यह देखकर सुरों ने राम की भूरि-भूरि प्रशंसा की। मुनियों ने आशीर्वाद दिये; देवताओं ने पुष्प-वृष्टि की। पर्वत की गुफा से शीघ्र जानकी को साथ लिये हुए लक्ष्मण बाहर आये, राम को प्रणाम किया और उनकी प्रशंसा करते हुए, उनके हाथ में शोभायमान होनेवाले धनुष को ले लिया। हर्ष से भरे हृदय से जानकीरमण पर्णशाला में गये और युद्ध में मरे हुए राक्षसों का वृत्तांत सीता को सुनाते हुए बड़ी प्रसन्नता से रहने लगे।

१३. लंका में अकंपन तथा रावण का वार्त्तालाप

तब अकंपन नामक राक्षस प्रकंपित हो आर्त्तनाद करते हुए, बड़े वेग से लंका गया और रावण को देखकर कहा—'हे असुराधिपति, चौदह सहस्र राक्षस वीर तथा खर-दूषण आदि काकुत्स्थ राम के शरों की अग्नि में भस्म हो गये हैं। यह सत्य है।' यह सुनकर रावण आश्चर्य-चकित हुआ और उस अकंपन को रोषपूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—'क्यों रे, कैसी बात कर रहा है? कौन है वह राम? क्या वह कोई कुबेर है, या इंद्र है, या यम धर्मराज है? वे तीनों मिलकर भी तो हमारे खर-दूषण को जीत नहीं सकते। ऐसी दशा में वह अकेले उन प्रतापी वीरों को किस प्रकार जीत सका, स्पष्ट रूप से समझाओ। हम तुम्हें अभय-दान देते हैं।' तब अकंपन निर्भय होकर राघव का वृत्तांत, उनके साहस और शौर्य; खर-दूषण आदि राक्षसों का वध, सौमित्र और जानकी का वृत्तांत आदि से अंत तक कह सुनाया।

तब रावण अत्यंत क्रुद्ध हुआ और युद्ध करने के लिए उद्यत होने लगा। उससे घनिष्ठ मित्रता रखने के कारण अकंपन ने रावण से कहा—'हे राक्षसराज, रघुराम को जीतना क्या पक्षिवाहन (विष्णु) या शूलपाणि (शिव) के लिए भी संभव हो सकता है? वह निपुण (व्यक्ति) बात-की-बात में आकाश तथा पृथ्वी को जोड़ने अथवा तोड़ने की शक्ति रखता है; दावाग्नि का या पवन का अवरोध करने तथा मुक्त करने में वही समर्थ है। सभी लोकों का नाश करने या उनका पोषण करने की शक्ति उसी में है; समस्त ब्रह्माण्ड की रक्षा करने की क्षमता उसी में है; इसलिए मैं आपको एक उपाय बताता हूँ। युद्ध की कोई आवश्यकता नहीं है। उस काकुत्स्थ राम की देवी, लावण्य का समुद्र (सीता) को यदि आप ला सकें, तो राम उसके वियोग की अग्नि में भस्म हो जाएगा।

यह सुनकर उस राक्षसराज ने उसी को उचित समझकर अकंपन की भूरि-भूरि प्रशंसा की और स्वर्ण-रथ पर आरूढ़ होकर समुद्र पार किया और धुरंधर मंत्री ताड़का-पुत्र मारीच के पास पहुँचा। उसने उसे खर-दूषण आदि राक्षसों के वध का वृत्तांत सुनाया और कहा—'मैं राम की स्त्री सीता को हरकर ले जाने के उद्देश्य से तुम्हारे पास आया हूँ।'

तब मारीच ने कहा—'हे रावण, यह कैसी इच्छा है? किसी अभाव के बिना, समस्त भोगों का अनुभव करके भी ऐसी दुष्ट बुद्धि तुम में कैसे उत्पन्न हुई? किस दुष्ट-बुद्धि

मंत्री ने तुम्हें ऐसा परामर्श दिया है ? तुम उसे अपना शत्रु जानो । मैं तुम्हारा हित चाहनेवाला मंत्री हूँ, अन्य नहीं हूँ । यह तुम्हारे लिए उचित नहीं है । इस पृथ्वी पर किसी भी पतिव्रता स्त्री को प्राप्त करने की इच्छा अनुचित ही है । ऐसी इच्छा तुम करोगे, तो तुम्हारे वंश का सर्वनाश हो जायगा । इसलिए हे दानवनाथ, तुम लंका को लौट जाओ और प्रसन्नता से रहो । अपनी स्त्रियों के साथ सुख-भोग प्राप्त करो ।' मारीच की इन बातों को सुनकर रावण लंका लौट गया ।

१४· शूर्पणखा का रावण से दीनालाप

खर, दूषण आदि राक्षसों को राम की शर-वह्नि में भस्म हुए देखकर शूर्पणखा अत्यंत संतप्त होती हुई लंका पहुँची । देव-सभा के बीच चिंतामणि से निर्मित सिंहासन पर विराजनेवाले इंद्र के समान, सम्माननीय सभा-मंडप के बीच सिंहासन पर आसीन, गरुड़, उरग, अमर तथा गंधर्व-युवतियों की सेवाएँ प्राप्त करनेवाले, ऐरावत के भयंकर दाँतों के अग्रभाग से रगड़ खाये हुए उर को श्रेष्ठ आभूषणों से आच्छादित रखनेवाले, सारे संसार में एकमात्र भीषण आकारवाले, संग्राम में भयंकर रूप से गर्जन करनेवाले, शत्रुओं का सर्वनाश करनेवाले रावण को देखकर शूर्पणखा रोती हुई हाथ जोड़कर अपने हृदय के विषाद को प्रकट करती हुई बोली—'हे असुरेन्द्र, तुम समझते हो कि मैं समस्त लोकों में अद्वितीय शक्तिशाली हूँ; तुम गर्व करते रहते हो कि मैंने तीनों लोकों के शत्रुओं का सर्वनाश किया है । तुम प्रसन्नता से फूले रहते हो कि मेरा राज्य अकंटक है । वही समस्त लोकों का स्वामी कहला सकता है, जो गुप्तचरों के द्वारा (अन्य) राजाओं का, (उनके) राजकोषों का, उनकी इच्छाओं का, तथा रहस्यों का पता लगाकर कार्य करता रहता है । तुम्हारी भयंकर मायाओं की शक्ति, तुम्हारा प्रताप, तुम्हारा बाहुबल और तुम्हारा वैभव—ये सब इसके पहले सफल होते थे, अब नहीं । इसका कारण भी सुन लो । भानुकुल का पावन व्यक्ति राम तपस्वी के रूप में अपने पिता महाराज दशरथ की आज्ञा से अपने प्रिय अनुज लक्ष्मण तथा पत्नी सीता के साथ दंडक वन में आया है और मुनियों पर दया करके उन्हें अभय-दान देकर पंचवटी में बड़े आनंद के साथ रहता है । मैं उस पर आसक्त होकर उसके निकट पहुँची, तो क्रोध में आकर उसने मेरी ऐसी दुर्गति कर दी । मैंने खर से सारा वृत्तांत कहा, तो उसने अत्यंत क्रुद्ध होकर प्रलयकाल के रुद्र के समान भयंकर रूप धारण कर, दूषण तथा त्रिशिरों के साथ चौदह सहस्र मानव-भक्षक वीर राक्षस-सैनिकों के सहित राम पर आक्रमण किया और रघुराम के बाण-रूपी अग्नि-शिखाओं में भस्मीभूत हो गये । इसलिए अब मेरे अपमान को दूर करनेवाले तुम्हारे सिवा और कौन है ? मेरे मुख की विकृति देखो और मेरा दुःख तुम अपना दुःख मानो ।'

उसकी बातें सुनकर दानवनाथ विस्मित हुआ और (थोड़ी देर तक) सोचने के बाद उस राक्षसी से कहा—'मैंने अपने ज्ञातियों का वध तथा तुम्हारे वहाँ पहुँचने आदि का समाचार सुना है । उसे रहने दो । तुम तो मुझे यह बताओ कि उस राम की शक्ति कैसी है ? उसका कैसा रूप है ? उसकी क्या अवस्था है ? उसका आकार कैसा है ? उसके

भाई का रूप कैसा है ? उसकी स्त्री सीता का रूप कैसा है ? तुम अपनी देखी हुई बातों का पूरा विवरण दो, तो मैं उनको रक्त-धाराओं से तुम्हारी प्यास बुझाऊँगा ।'

तब शूर्पणखा बड़ी प्रसन्नता से यों कहने लगी—'रामचंद्र उन्नत वक्षवाला, श्यामालोत्पल वर्णवाला, सभी लोकों में श्रेष्ठ रूपवान्, सूर्य-मंडल के तेज को परास्त करनेवाला तेजस्वी, धीर, आजानुबाहु, महान् पराक्रमी और कमलों के समान नेत्रवाला है । उसी योद्धा ने अकेले खर, दूषण आदि राक्षसों को परास्त किया था । सौमित्र हेमवर्णवाला है और दूसरी बातों में अपने भाई के समान ही सभी गुणों से संपन्न है । उसी ने मेरी ऐसी गति कर दी है । अब सीता की सुंदरता के संबंध में भी जान लो । मैंने देवताओं की स्त्रियों को, राक्षस-स्त्रियों को, किन्नर-अंगनाओं को, भोगिनी कामिनियों को, गंधर्व-पत्नियों को, यक्ष-कांताओं को अच्छी तरह देखा है । मैंने पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती तथा रति को भी देखा है । मैंने रंभा, शची तथा त्रिभुवनों में रहनेवाली सभी स्त्रियों को देखा है; मुनि-पत्नियों को देखा है और ब्राह्मण-स्त्रियों को भी देखा है । किन्तु वैसे कुच, वैसी आँखें, वैसी मधुर बोली, वैसे कपोल, वैसी नाक, वैसा सौंदर्य, वैसे चिकुर, वैसे कटाक्ष, वैसे उरु, वैसे हाव-भाव, वैसी मंद हँसी, वह मंद-गमन, और वह विवेक किसी भी स्त्री में नहीं देखा । मैं कैसे सीता की प्रशंसा करूँ ? वह स्त्री सभी लोकों पर राज्य करनेवाले तुम्हारे जैसे पति के लिए ही योग्य है, अन्यों के लिए योग्य नहीं है । वह चंद्रमुखी, वह चकोराक्षी, वह नवयुवती, वह कुंद-सम दाँतवाली, वह गजगामिनी, वह नवल-लतिका, वह मानिनीमणि, वह पुष्पगंधि, वह स्त्री, तुम्हारी स्त्री होकर रहे, तो हे दनुजेश, तुम्हारे राज्य की शोभा बढ़ेगी ।'

१५. रावण का पुनः मारीच के पास जाना

कामातुर रावण ने जब देखा कि इस स्त्री की बातों तथा अकंपन की बातों में कितनी समानता है, तो वह अत्यंत विस्मित हुआ । उसने राजसभा स्थगित कर दी और भाग्य से प्रेरित होकर एकान्त में चला गया और सारथी को बुलाकर रथ लाने की आज्ञा दी । सारथी के रथ लाते ही वह सूर्य-किरणों के सदृश अनुपम आयुधों से परिपूर्ण उस रथ पर आरूढ होकर करोड़ सूर्यों की दीप्ति से विलसित होते हुए आकाश-मार्ग से समुद्र के मध्यभाग से जाते, विविध वस्तुओं को देखते समुद्र पार कर गया और पूगीफल, मिर्च, अगरु, नारिकेल, साल, हरेणु, रसाल, विशाल आदि वनों को बड़े कौतुक के साथ देखता हुआ चला । पहले, गरुड़ के सुधा-कलश को लाने के लिए जाते समय, गज-कच्छपों को खाने के लिए, जिस वृक्ष पर अपना पैर रखा था, उस वृक्ष को, तथा उस पर पक्षींद्र के द्वारा कृत चिह्न को और शत योजनों तक फैली हुई शाखाओं से विलसित, मुनियों से घिरे हुए सुभद्र नामक वटवृक्ष को बड़ी प्रसन्नता से देखा और महान् महिमा-समन्वित आसुचंद्र आश्रम में जटा-वल्कल धारण किये हुए, शांत चित्त तथा सौम्य भाव से अत्यधिक तपोनिष्ठा से रहनवाले मारीच के पास पहुँचा और उससे आदर-सत्कार प्राप्त करने के पश्चात्, अत्यंत दीन होकर उससे अपने आगमन का कारण यों कहने लगा—"हे मारीच, तुम मेरे अंतरंग मंत्री हो, इसलिए मैं यहाँ आया हूँ । सूर्यवंशी रामचन्द्र अपने पिता की

आज्ञा से अपने अनुज तथा पत्नी के साथ तपस्वी की तरह जीवन बिताने के लिए दंडक-वन में आया है और अपने सहज स्वभाव के कारण यहाँ के मुनियों को अभय-दान देकर यहीं रहने लगा है । उसने निर्भय होकर अकारण ही हमारी शूर्पणखा की नाक और कान काट लिये हैं तथा खर-दूषण आदि राक्षसों का वध किया है । उस युद्ध में मरे हुए चौदह सहस्र राक्षस-बंधुओं का प्रतिशोध लिये विना मेरे मन की पीड़ा दूर नहीं होगी । तुमने इसके पहले मुझे अच्छा उपदेश तो दिया था, किन्तु उसका अनुसरण करने से मेरा मान-भंग होगा । इसलिए मैं उस रामचंद्र की स्त्री का माया से अपहरण करके ले जाने के लिए जा रहा हूँ । मैंने एक उपाय सोचा है । यदि तुम चाहो, तो वह सिद्ध होगा । तुम अत्यधिक प्रयत्न से उस आश्रम के पास जाना और माया-मृग का रूप धारण करके विचरण करते रहना । सीता तुम्हें देखकर तुम्हारे प्रति आकृष्ट होगी और राम तथा लक्ष्मण से तुम्हें लाकर देने की प्रार्थना करेगी । तुम मृग-सुलभ कौशल से उन्हें भुलाते हुए घने वन के मध्यभाग में ले जाकर अंतर्धान होकर अपने आश्रम में पहुँच जाना । मैं यहाँ सीता को बड़े हर्ष से लंका ले जाऊँगा । मैं चाहता हूँ कि राम सीताजी की विरहाग्नि में ही भस्म हो जाय । इसलिए तुम ऐसा करो; मैं अपना आधा राज्य तुम्हें दे दूंगा ।"

१६. मारीच का पुनः उद्बोधन

उस नीच के वचनों को सुनकर मारीच अत्यंत भयभीत हुआ और दुःख-सागर की लहरों में डूबते-उतराते सौजन्य छोड़कर कहा--"हे दनुजेश्वर, ऐसा विचार तुम्हें कैसे उत्पन्न हुआ ? ऐसा अनुचित मार्ग तुम्हें कैसे शोभा देगा ? किसने तुम्हें ऐसा उपदेश दिया ? सुख-चैन से रहनेवाले तुम, अपने सभी बंधु-मित्रों के साथ क्यों मरना चाहते हो ? न जाने तुमने कुटिल राक्षस-वंश का नाश करनेवाले राम को क्या समझ रखा है ? मैं उनकी बाल्यावस्था का थोड़ा-सा हाल जानता हूँ । वे नित्य कल्याणगुण-संपन्न हैं; असमान साहसी हैं । विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करने के लिए जब वे आये और यज्ञ की रक्षा कर रहे थे, तब मैं और सुबाहु ने अपनी समस्त शक्ति के साथ उनसे युद्ध किया था । तब उन्होंने क्रुद्ध होकर एक ही शर से सुबाहु का वध कर दिया और दूसरे बाण से मुझे समुद्र के मध्य में फेंक दिया । अस्त्रहीन होते हुए भी, बालक होते हुए भी बाल्यावस्था में ही उस अकलंक साहसी ने वैसा शौर्य दिखाया था । आज वे प्रबल अस्त्रों से सुसज्जित शौर्यनिधि हैं । आज उनके प्रताप के आगे कौन टिक सकता है ? उनके वर्त्तमान शौर्य का भी थोड़ा-सा हाल मैं जानता हूँ, तुम अवश्य सुनो । पहले की शत्रुता से प्रेरित होकर मैं दो और भयंकर राक्षसों के साथ बाघ का रूप धारण किये हुए, उनके तप में अपने-आपको नष्ट करने के उद्देश्य से गया । तब की बात कैसे कहूँ ? उन्होंने तीन बाणों से हम तीनों को गिरा दिया । किन्तु हममें से दो ही मरे । न जाने मेरी शेष आयु की कितनी शक्ति है ? मैं यहाँ आकर गिरा और अपने-आपको सजीव पाया । तब से राम के अतुल पराक्रम का विचार करके मैंने अपना समस्त पौरुष त्याग दिया और 'रकार' ('र' ध्वनि) से प्रारंभ होनेवाले—रव, रथ, रमणीय, रवि, रति, रत्न आदि शब्दमात्र के सुनने से उनका स्मरण करके भयभीत होता हुआ इस प्रकार तपस्वी

का जीवन व्यतीत कर रहा हूँ । हे रावण, तुम राम की शक्ति को नहीं जानते । हमारी शूर्पणखा अपने भद्दे रूप का विचार नहीं करती; अपनी दशा के बारे में नहीं सोचती । उन अनुपम गुणधाम, अभिराम, रामचंद्र पर यों फूली-फूली आसक्त होना क्या उचित था ? उसने स्वयं ही (अपने अपराध से ही) अपना रूप ऐसा विकृत करवा लिया । इसपर क्रुद्ध होकर खर और दूषण रघुराम पर आक्रमण करने गये और उनकी बाणाग्नि की ज्वालाओं में दग्ध हो गये । उनके कारण तुम क्यों मतिभ्रष्ट हो राम का शत्रु बनकर अपने को नष्ट करना चाहते हो । यह न उचित है, न नीतिसंगत है । इसलिए तुम अपना विचार छोड़ दो और लंका लौटकर प्रसन्नता से रहो । किसी भी प्रकार तुम विचार करो, यह अनुचित कार्य ही है । यदि मैं प्रयत्न करके जाऊँ भी, तो राम के बाण से मेरे प्राण नहीं बचेंगे । मैं तुम्हारा अपकार कभी नहीं करूँगा । मैं अपने मन में कभी तुम्हारे अहित की इच्छा नहीं करता । इसलिए तुम अवश्य मेरी बात मानो । मैं जो कहता हूँ, उसे हित-वचन मानो । तुमने तो कहा था कि यदि तुम यह कार्य करोगे, तो मैं अपना आधा राज्य दूंगा । किन्तु कौन कह सकता है कि रघुराम को छेड़कर मैं जीवित लौट आ सकूंगा ?"

मारीच के इन वचनों को सुनकर रावण क्रोध-विवश होकर बोला—'एक साधारण मानव को तुम लोकरक्षक, तीनों लोकों को भयभीत करनेवाला, तथा मुझसे श्रेष्ठ बतलाते हो। तुम अपने प्राणों के भय से ऐसा प्रलाप कर रहे हो और मुझे भयभीत करने के लिए बातें बना रहे हो । तुम नहीं सोचते कि मैं राजा हूँ । मेरी आज्ञा की तुम अवहेलना करते हो । अब मुझे तुम्हारी आवश्यकता ही क्या है । साथ कर लेने के लिए तुम्हें बुलाया भी, तो मेरी ऐसी दशा हुई ।'

इस प्रकार कहकर रावण मारीच का वध करने के लिए उद्यत हुआ । उसका क्रोध देखकर मारीच ने मन-ही-मन सोचा—'इस नीच के हाथ से मरने की अपेक्षा उस राम के हाथों से मरना ही भला है ।' इसके पश्चात् उसने राक्षसराज को देखकर कहा—'उचित बात कहने पर तुम ऐसा क्रोध क्यों करते हो ? अच्छा उपदेश देनेवाले मंत्रियों का वध करनेवाले राजा कहीं हो सकते हैं ? ठीक है, तुम जो कहो, मैं उसके अनुसार करूँगा ।' तब रावण ने बड़े स्नेह से उसको क्षमा कर दिया और उसे अपने रथ पर बैठाकर अत्यंत वेग से उसके साथ पंचवटी में पहुँच गया । कामातुर की बुद्धि ऐसी ही होती है । बुरे मार्ग को वह क्यों त्यागने लगा ?

१७. मारीच का माया-मृग के रूप में आना

मारीच रथ से उतर गया और उस राक्षसराज की प्रार्थना के अनुसार, (स्वयं मायावी होने के कारण) अच्छी तरह सोच-विचारकर राक्षस-शक्ति के प्रभाव से सुंदर माया-मृग का रूप धारण किया । उस माया-मृग का शरीर सुनहला था, उसका विशाल नेत्रयुग्म इन्द्रनील मणि के समान था, उसकी भौंहें प्रवाल की-सी और कान उज्ज्वल वज्र के-से थे; नीले खड्ग के समान उसके मरकत के सींग थे; मोतियों का-सा उसका पृष्ठ-भाग था, रत्न-बिंदुओं के समान (उसके शरीर पर) धब्बे थे; नव पद्मराग के समान उसका उदर था; और उसके खुर रजत के समान चमकते थे । वह मृग ऐसा प्रतीत होता था

मानों रोहणाचल का समस्त सौंदर्य मृग का रूप धारण किये हुए पृथ्वी पर विचर रहा हो, अथवा अकेले राहु से भीत होकर चंद्रमंडल पृथ्वी पर घूम रहा हो, अथवा राक्षस-क्षय करने के हेतु ब्रह्मा ने समस्त सौंदर्य को एकत्रित करके मृग का निर्माण किया हो और उसे कपट (मन) से भेजने पर यहाँ वह आ गया हो; अथवा जानकी ने अपनी कुटिल वेणी से इन्द्रनील मणियों का, दाँतों से मोतियों का, अरुण ओष्ठों से प्रवालों का, कपोलों से वज्रों का, शरीर की कांति से वैडूर्य का, उदर के ऊपर की रोम-राजि से मरकत-मणियों का, पाणि-द्युति से पद्मरागों का, और नख-द्युति से गोमेदकों का परिहास किया था। इसलिए सभी रत्न, रत्नगर्भा की पुत्री-रूपी रत्न को सताने के लिए मृग का रूप धारण करके आये हों, अथवा रघुराम ने सीता के लिए मेरा धनुष तोड़ा था। अब मैं उन्हें व्याकुल करूँगा--यों सोचकर हर के भेजने पर उनके हाथ का हिरन इस प्रकार आया हो, अथवा सीता के मुख की कांति से पराजित होकर, चंद्र के भेजने पर आया हुआ माया-मृग हो। इस प्रकार का वह हिरण चित्र-विचित्र वर्णों की कांति से समन्वित हो, कपट-रूप धारण किये हुए, अनुपम सौंदर्य को प्रकट करते हुए, ढूंढ़-ढूंढ़-कर तृण चरने लगा। कभी वह अपनी पूँछ की रमणीय कांति से वन के मयूरों को नचाता; कभी अपने शरीर की कान्ति को विकीर्ण करके सारे वन को सुनहला बना देता था, तो कभी चौकड़ी भरकर इन्द्रधनुष का-सा दृश्य प्रस्तुत करता था; कभी तो आकाश की ओर उछलकर विद्युल्लता की-सी ज्योति उत्पन्न कर देता, तो कभी अपने पार्श्वभाग की कांति से चंद्रकांत मणि को लज्जित कर देता; कभी मृगों के झुंडों के साथ मिलकर चरने लगता, तो कभी उन्हें डराता; कभी छिप जाता, तो कभी प्रकट हो जाता; कभी अति निकट पहुँच जाता, फिर इतने में डरकर चौकड़ी भरकर दूर निकल जाता; कभी पेड़ों की छाया में चला जाता; कभी पर्णशालाओं में घुस जाता; कभी सिकुड़ता, फिर तुरंत ही छलाँग मारकर निकल जाता; कभी वह पृथ्वी को सूँघने लगता, पूँछ हिलाता, कान खड़े करके कुछ सुनता और तुरंत अत्यंत वेग से दौड़ने लगता। कभी निकट पहुँचता, सिकुड़े हुए अपने शरीर को हिलाता, घास पर लेट जाता, और बड़े स्नेह से मुनियों के निकट चला जाता; कभी अपने खुरों से अपने कानों को खुजलाता और सींगों से पुष्प-लताओं को हिलाकर उनके सभी फूलों को गिरा देता। इस प्रकार वह हिरण उस सुन्दर पर्णशाला के आगे बड़े आनंद से विविध कौतुक करने लगा।

उसी समय सीता फूल चुनने के लिए आई और उस पर्णशाला की सुंदर भूमि को अपने मंजुल नूपुरों की मृदु ध्वनि से भरती हुई, सौरभ से महकनेवाली पुष्प-लताओं की झाड़ियों के निकट पहुँचकर फूल चुनने लगी। तब वह मन को आश्चर्यचकित कर देनेवाले उस हिरन को देखकर विस्मित हुई और सूर्यवंशाधिप राम को देखकर बोली-- 'हे नाथ, यह देखिए, निकट ही एक अद्भुत मृग दीख रहा है। हमने इतने वर्णों का, ऐसा सुंदर मृग अबतक किसी भी वन में नहीं देखा। इसके चर्म पर सुख से शयन करने की बड़ी इच्छा हो रही है। इसलिए हे प्राणेश, इसका पीछा कीजिए और इसे मारकर मुझे इसका चर्म ला दीजिए। नहीं, नहीं, किसी भी उपाय से इसे जीवित ही पकड़कर

ला सकें, तो और भी अच्छा होगा । हमारा वनवास तो समाप्त होनेवाला है । हम इस स्वर्ण-मृग को अपने नगर में ले जायँगे और सासों तथा भरत आदि को इसे दिखाकर उन्हें आनंद दे सकते हैं ।'

सीता के इन वचनों को सुनकर लक्ष्मण रामचंद्र को देखकर बोले—'हे प्रभु, जब पृथ्वी पर मृगराज का भी ऐसा (सुन्दर) शरीर नहीं है, तो भला मृग का ऐसा शरीर कहाँ हो सकता है ? यह माया-मृग है; इसका विश्वास मत कीजिए । राक्षस मायावी होते हैं और कदाचित् यह उनकी माया ही है । यही नहीं, क्या आपने मुनियों के वे वचन नहीं सुने कि क्रूर मायावी मारीच इस प्रांत में घूमता रहता है । प्रायः वही हमें भ्रम में डालने के लिए इस प्रकार आ गया है । इस पर आसक्त होकर, उतावले हो आप इसे पकड़ने का विचार मत कीजिए । वैदेही तो भोली-भाली है । हे प्रभु, आप भी वैसे थोड़े ही हैं ?'

यह सुनकर रामने सीता का मुख-कमल देखा और हँसते हुए लक्ष्मण को देखकर बोले—'हे लक्ष्मण, ऐसे विचलित क्यों होते हो ? क्या पृथ्वी पर राक्षसों की माया मेरा सामना कर सकेगी ? मैं या तो इस मृग को पकड़कर ले आऊँगा या इस प्रचंड राक्षस का वध करूँगा ? इन दो बातों को अच्छी तरह जानकर ही मैं इसका पीछा करूँगा और इसे मारकर, इसका चर्म लाकर जनकजा को दूंगा । इतने दिनों के बाद सीता ने यह छोटी-सी इच्छा प्रकट की है, तो क्या मैं इसे भी पूरा न करूँ ? तुम सावधान होकर इस पर्णशाला का तथा सीता की रक्षा करते रहो ।'

१८. राम का माया-मृग का पीछा करना

इस प्रकार उन्हें यह भार सौंपकर, रघुराम ने उनके हाथ में स्थित धनुष को लिया और उस पर डोरी चढ़ाकर, ऐसे चल पड़े, जैसे पूर्वकाल में यज्ञ-मृग का पीछा करने-वाला गजासुर-वैरी गया था । वे कहीं धीरे-धीरे किसी झाड़ी के पीछे छिपते, कहीं झुकते, कहीं दौड़ते, फिर खड़े होकर देखते, किसी आड़ में छिपते (मृग का) पीछा करते, उसे पकड़ने के लिए आतुर होते और धनुष-बाण को पीछे छिपाकर दबे पाँव चलने लगते ।

वे उस मृग को पकड़ने के लिए, अवसर देखकर, उसके निकट पहुँचते; 'अब पकड़ा, लो, यह आया; अब हाथ में आ गया'—ऐसा सोचते हुए उसका पीछा करते जाते । वह हिरन भी कभी निकट ही दिखाई पड़ता, उनके पास पहुँच भी जाता, किन्तु पकड़ने का यत्न करते ही भाग निकलता । कभी राम को क्रोध में आया जान (वह) खड़ा हो जाता, फिर चारों दिशाओं में मनोहर ढंग से चौकड़ियाँ भरने लगता । लार के साथ घास के टुकड़ों को (वह अपने मुँह से) गिराता, एक छलाँग में निकट पहुँच जाता, तो दूसरी छलाँग में दूर निकल जाता; (जहाँ-तहाँ) सूँघ-सूँघकर चौकड़ी भरता और बिजली की तरह अपनी जीभ को (एक क्षण के लिए) बाहर निकालकर घुमाता, मानों कोई मशाल घुमा रहा हो । (वह) कभी कुम्हार के चाक के समान चक्कर काटता, कभी थके हुए की भाँति, घुटनों के बल खड़ा रहता, किन्तु निकट पहुँचते ही बाज की तरह आकाश की ओर छलाँग मारकर निकल जाता । थके-माँदे जब राम आश्चर्यचकित होकर

खड़े हो जाते, तब उनके पार्श्वभाग में ही दिखाई पड़ता और तुरंत छल करके दूर हो जाता । जब राम तंग आकर उसपर बाण चलाने के लिए सन्नद्ध हो जाते, तब वह अदृश्य हो जाता । इस प्रकार वह माया-मृग राम को थकाते हुए, वहाँ से दूर घने वन में जा पहुँचा और उनकी आँखों से ओझल होने का यत्न करने लगा । अब राम समझ गये कि वह माया-मृग है और मन-ही-मन कहने लगे--'दिखाई देकर अब कैसे बचोगे ?' उन्होंने ब्रह्मास्त्र का संधान किया, और पर्वतों को कँपाते हुए, समुद्र को आंदोलित करते हुए, सभी लोकों को भयभीत करते हुए और दिशाओं को थर्राते हुए, उस अस्त्र को मृग पर चलाया । वह माया-मृग अपना कपटरूप छोड़कर, असुर का दीर्घ आकार धारण किये हुए 'हाय लक्ष्मण' का आर्त्तनाद से दिशाओं को गुँजाते हुए, प्राण छोड़कर पृथ्वी पर ऐसे गिरा, मानों राक्षसों की लक्ष्मी ही नष्ट हो गई हो, रावण का ही सर्वनाश हुआ हो, अथवा लंकापुरी ही विध्वस्त हो गई हो । उस माया-मृग को पृथ्वी पर गिरते देख, जानकीनाथ ने अत्यंत हर्षित होकर उस राक्षस को देखा और निश्चय कर लिया कि वह मारीच ही है । उन्हें अपने भाई के वचन याद आये और वे अपने भाई की प्रशंसा करने लगे । वे मन-ही-मन सोचने लगे--इस मायावी राक्षस का आर्त्तनाद सुनकर न जाने सौमित्र और सीता कितना भयभीत होते होंगे ।

(राक्षस के) उस आर्त्तनाद को सुनकर सीता भयभीत हो गई और मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ी । चेतना लौटते ही फटी-फटी आँखों से चारों ओर देखती हुई धैर्य खोकर तड़पने लगीं और ऊँचे स्वर में लक्ष्मण को देखकर बोली—'हे सौमित्र, यह कैसी बात है कि राम तुम्हें आर्त्तध्वनि में पुकार रहे हैं ? हे अनघ, क्या तुम उनकी आवाज नहीं सुन रहे हो, या सुनना नहीं चाहते हो, या तुम्हें सुनाई नहीं पड़ती ? तुम तो किंचित् भी विचलित नहीं हो, भयभीत नहीं हो, दुःखी नहीं हो ? यह कैसी बात है ? मेरा हृदय विविध प्रकार के दुःखों से उबल रहा है । वे वन में अकेले चले गये हैं । बहुत विलंब हो चुका है, फिर भी नहीं आये हैं । कहीं राक्षसों के साथ युद्ध करते-करते उनके हाथों में फँस तो नहीं गये ? इसीलिए हे लक्ष्मण, तुम अपने भाई के पास विना विलंब किये चले जाओ ।'

इस प्रकार कहती हुई और आँखों से आँसू बहाती हुई जानकी को देखकर लक्ष्मण बोले—'हे माता, आप क्यों विचलित होती हैं ? क्या, प्रभु राम पर कहीं भी कोई विपत्ति आ सकती है ? क्या आप अपने प्रिय हृदयेश्वर के प्रताप को नहीं जानतीं ? जानती हुई भी आप ऐसा क्यों कहती हैं ? किसी दैत्य ने आपको इस प्रकार से व्याकुल करने के लिए ऐसा आर्त्तनाद किया है । जगदीश राम ऐसी छोटी बातों के लिए कहीं भयभीत हो सकते हैं ? आपको इतना दैन्य क्यों हो रहा है ? यदि रघुराम युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जायँ, तो क्या राक्षस उनके सामने टिक सकते हैं ? गर्व से फूलकर दावानल पर आक्रमण करनेवाला शलभ-समूह क्या भस्म हुए विना रह सकता है ? इसलिए राम की आज्ञा का उल्लंघन करके आपको यहाँ छोड़कर जाना मेरे लिए उचित नहीं है । इसे घने वन में आपको छोड़ जाऊँ, तो न जाने आप पर कैसी विपत्ति आ पड़ेगी । इसलिए, मैं जाने से डरता हूँ । मेरी बातों का विश्वास करके आप व्याकुल हुए विना रहें ।

तब धरणिजा (जानकी) ने रोषाग्नि से जलते हुए सौमित्र की निंदा करते हुए कहा—"हे लक्ष्मण, तुम तो रामचंद्र के परम भक्त हो; आज तुम इतने नीच कैसे हो गये ? श्रीराम के पुकारते रहने पर भी भयंकर शत्रु के समान तुम चुप क्यों हो ? क्या यह तुम्हारे लिए उचित है ? 'मेरा अनुज बुद्धिमान् है, उत्तम है', यों सोचकर, तुम्हारा विश्वास करके, जब तुम्हारे भाई यहाँ से गये हैं, तुम ऐसा पापमय व्यवहार क्यों करते हो ? हाँ, मैं जानती हूँ, असुरों की माया से राम का वध होगा, इसे अच्छी तरह जानकर अनुचित बुद्धि से, निःशंक हो, अपने भाई को दिये हुए वचन की अवहेलना करते हुए मुझे प्राप्त करने का विचार कर रहे हो; या कदाचित् यह सोचते हो कि मैं इसको कैकेयी-सुत को सौंप दूँगा । अपने इस शरीर में मुझे अब प्राणों को रखना उचित नहीं प्रतीत होता । मैं तुरंत गोदावरी में डूबकर अपना प्राण-त्याग करूँगी । अब अन्य बातों से कोई प्रयोजन नहीं है ।"

सीता के ऐसे कठोर वचन कहने पर लक्ष्मण अत्यंत क्षुब्ध हो गये । उन्होंने राम का नाम लेते हुए अपने कर्णपुटों पर हाथ रखे तथा चारों ओर देखते हुए बोले—'हे वन-देवताओ, क्या तुम लोग सुन रहे हो ? सीता कठोर होकर मुझे कैसे पापपूर्ण कटु वचन सुना रही हैं ।' इस प्रकार कहकर उन्होंने आँखों में आँसू भरे हुए, अब यहाँ रहना अनुचित समझकर, सीता से कहा—'माता, मैं अभी जा रहा हूँ । मैं आपके पति को शीघ्र ही लिवा लाऊँगा । आप दुःखी मत होइए ।'

इसके पश्चात् उन्होंने पर्णशाला के चारों ओर सात रेखाएँ खींच दीं और कहा—'माता, इन रेखाओं को पार करके बाहर मत जाइए । यदि कोई इन रेखाओं को पार करेगा, तो उसका सिर उसी क्षण चूर-चूर हो जायगा ।' तब उन्होंने अनल से प्रार्थना की और उन्हें सीता की रक्षा का भार सौंपकर, जानकी को बड़ी भक्ति से प्रणाम करके वहाँ से राम की खोज में चल पड़े ।

१९. भिक्षुक के वेश में रावण का सीता के पास आना

उसी अवसर की प्रतीक्षा में, अत्यंत उद्विग्न होकर रहनेवाला रावण कपट संन्यासी का वेश धारण करके वहाँ आया । उसके हाथ में दंड और कमंडल थे । विशाल ललाट पर तिलक था; उंगलियों में कुश की पवित्री थी; विशाल उर पर जनेऊ था; दायें हाथ में रुद्राक्ष की माला थी, और वह गेरुए रंग के वस्त्र पहने हुए था । कई प्रकार की जपमालाएँ धारण करने से उसकी गरदन एक ओर झुकी हुई थी । उसका गात्र कृश था और उसके हाथ में एक जीर्ण छत्र था । उसकी बँधी हुई शिखा पीछे की ओर लटक रही थी । संन्यासी का ऐसा छद्म-वेश धरकर वह उंगलियों को गिनता हुआ, कुछ मंत्रों को गुन-गुनाता हुआ, कहीं मुनि उसे पहचान न जायँ, ऐसा मन-ही-मन भयभीत होता हुआ, जरा-पीड़ित वृद्ध के समान सिर को किंचित् हिलाता हुआ, थके हुए के समान जहाँ-तहाँ ठहरता हुआ 'हरि-हरि' शब्द का उच्चारण करके मानों शांति प्राप्त करता हुआ-सा, धीरे-धीरे पर्णशाला के निकट पहुँचा । वनदेवताओं ने जब देखा कि जगद्रोही वहाँ पहुँच गया है, तब वे अत्यंत भयभीत होकर एक ओर सटककर रह गईं ।

पर्णशाला के सम्मुख खड़े हुए उस कपटवेशधारी को देखकर सीता ने उसे एक संयमी मुनि समझा । तुरंत अत्यंत भक्ति-युक्त हो, कर-कमलों को जोड़कर उसे प्रणाम किया और सौमित्र की खींची हुई रेखाओं को पारकर बड़ी भक्ति के साथ उस अभ्यागत का पूजन-सत्कार किया । तब उस कल्याणी सीता को देखकर उसने कहा—'हे सुंदरी, तुम ऐसे दुर्गम कानन में किस प्रकार अकेली रहती हो ? पता नहीं, तुम रति हो, या लक्ष्मी हो, या भारती हो ? नहीं तो पृथ्वी तथा स्वर्गलोक की स्त्रियों में ऐसा सौंदर्य कहाँ ? तुम्हारा मुख पूर्ण चंद्र की राका का उपहास कर रहा है; तुम्हारे अधर पद्मराग मणियों को परास्त कर रहे हैं; तुम्हारा शरीर विद्युल्लता को लज्जित कर रहा है; तुम्हारी वाणी सुधा से भी अधिक पवित्र है; तुम्हारी वेणी जलद की वेणी को परास्त कर रही है; तुम्हारे सौंदर्य का वर्णन करना मेरे लिए असंभव है । हे तरुणी, तुम्हारे आलिंगन-पाश में बंधकर सुख-भोग करनेवाला व्यक्ति ही पुरुषों में श्रेष्ठ है । तुम्हारा साहचर्य्य प्राप्त करनेवाला व्यक्ति ही पूर्णकामी तथा नित्यकल्याणसंपन्न है । हे कमलाक्षी, तुमको यहाँ रहते देखकर, हमें आश्चर्य तथा दुःख हो रहा है । हे सुंदरी, तुम कौन हो ? इस कानन में किस लिए तुम रहती हो ? हमें सारा समाचार कहो ।'

तब सीता ने बड़ी भक्ति से कहा—"हे अनघ, मैं रघुराम की पत्नी हूँ । मेरे पिता महाराज जनक हैं । महाराज दशरथ मेरे ससुर हैं । मेरा नाम सीता है । उन्नत कीर्तिवान् रामचंद्रजी अपने पिता की आज्ञा के अनुसार गृह त्यागकर वनवास के लिए आये, तो मैं और लक्ष्मण उनके साथ चले आये हैं । इस आश्रम में हम तीनों तपस्वियों का-सा जीवन व्यतीत करते हैं । आज हमने अपने आश्रम के सामने एक स्वर्ण-मृग को चौकड़ी भरते देखा, तो मैंने अपने पति से उसे किसी तरह ला देने के लिए कहा । इसी हेतु वे गये हैं । उसके पश्चात्, 'हाय लक्ष्मण' का आर्त्तनाद शूल की तरह मेरे कानों को चुभाते हुए सुनाई पड़ा । भयभीत हो मैंने लक्ष्मण को भेजा । वह गया हुआ है, किन्तु न जाने अब तक वह क्यों नहीं लौटा ।"

इतना कहकर, उन्होंने उस कपट मुनि को संबोधित करके कहा—'हे अनघ, आपका शुभ नाम क्या है ? और आप यहाँ क्यों आये हैं ?' तब लंकाधिपति ने अपना कपट तजकर उनसे कहा—'हे वनजाक्षी, मैं समुद्र के मध्य में स्थित लंका का राजा हूँ । राक्षसों में श्रेष्ठ हूँ; विश्रवसु का पुत्र हूँ, यक्षेश का अनुज हूँ; दिग्विजयी हूँ । मेरा नाम रावण है; युद्ध में देवता तथा राक्षसों में किसी को भी मारने की क्षमता रखता हूँ । हे सुन्दरी, मैंने तुम्हारे रूप-सौंदर्य की प्रशंसा सुनी थी; इसलिए बड़े हर्ष से तुम्हें देखने आया हूँ । इस अकिंचन मानव के साथ तुम इन घोर वनों में क्यों रहती हो ? हे विशालाक्षी, तुम अपनी इच्छा से शासन करती हुई अपनी मनोज्ञता को प्रकट करती हुई, अत्यधिक आदर के साथ, पुष्पक आदि विमानों तथा ऊँची अट्टालिकाओं में सुर, गरुड़, उरग, असुर तथा सिद्धों की श्रेष्ठ कन्याओं की सेवाएँ प्राप्त करती हुई निवास करो । तुम्हारे चरणों की कांति मेरे महलों का मणिमय कुट्टिम (फर्श) बन जाय । हे सुंदरी, तुम्हारे कटाक्ष की शोभा मेरे अंतःपुर की कुमुदिनियों के साथ होड़ लगावे । तुम्हारा मंद हास प्रतिदिन मेरे प्रेम-सागर के लिए चंद्रिका बन जाय । तुम मेरी लंकापुरी को चलो ।'

इन बातों को सुनकर सीता अत्यंत भयभीत हुई। किन्तु वे धीरमना थीं; इसलिए एक तृण हाथ में लिये हुए वे उसे संबोधित करके उसकी बातों का उत्तर देने लगीं, मानों वे उस रावण को तृणवत् मानती हों। वे कहने लगीं--'क्यों रे, मुझे श्रेष्ठ पतिव्रता न मानकर, इस प्रकार कहना, क्या तुम्हें उचित है? तुम्हारी इच्छा ऐसी दुर्लभ है, जैसे देवताओं को प्राप्त करने योग्य पूर्णाहुति किसी कुत्ते के लिए दुर्लभ है। तुम श्रीरामचंद्र को प्राप्त मुझ पर आसक्त होने का साहस करते हो? चुपचाप तुम अपने नगर को लौट जाओ। यदि ऐसा न करके तुम कोई दुराचरण करने का विचार करोगे, तो मेरे पति राघव, जो विविध शस्त्रास्त्रों के प्रयोग में निपुण हैं, जो अनायास ही, देखते-देखते शिव-धनुष को भंग करने में सफल हुए, और खर-दूषण आदि राक्षसों के शिरच्छेदन करनेवाले हैं, तुम्हें तथा तुम्हारे वंश को नष्ट-भ्रष्ट कर देंगे। तुम्हारे और उन सूर्यवंशी में उतना ही अंतर है, जितना सियार और सिंह में, मशक तथा दिग्गज में, नाले और समुद्र में, कौआ और गरुड़ में अंतर होता है। इसलिए अब तुम सुबुद्धि के साथ लंका लौट जाओ।'

इन बातों को सुनकर रावण ने अत्यंत क्रोधावेश से अभिभूत हो, भयंकर दृष्टि से जानकी को देखा--और कपट रूप तजकर निज रूप धारण किया। उसके मन में मन्मथ दीप्त हो रहा था और उसकी दस अवस्थाएँ मानों रावण के दस मणिमय जटा-जूटों से युक्त सिरों के रूप में दिखाई देने लगीं। उसकी बीस भुजाएँ ऐसी दीखने लगीं, मानों मन्मथ की दस अवस्थाओं की इच्छाएँ दुगुनी होकर प्रकट हो रही हों। उसके कमल के-से बीस हाथ ऐसे दीख रहे थे, मानों उसकी (मदन-प्रेरित) इच्छाएँ पल्लवित हो गई हों। इच्छा के उन पल्लवों में फूलों के समान शस्त्रास्त्र दिखाई देने लगे। उसके शरीर के विविध आभूषणों की कांति मदनाग्नि की ज्वालाओं के समान दीखने लगी। इस प्रकार भयंकर आकार धारण करके खड़े हुए रावण को देख सीता का धैर्य छूट गया और वे भयभीत हो मूर्च्छित हो गईं। तेज आंधी के प्रहार से (पेड़ से अलग हो) नीचे पड़ी हुई वनलता के समान पृथ्वी पर पड़ी हुई चारुलोचनी सीता को, निर्दयी हो दशकंठ ने, अपने रथ पर ला रखा। सीता की आँखों से अश्रु-धारा बह रही थी; बाहु-लताएँ भय से काँप रही थीं; उनकी वेणी खुल गई थी; कुच हिल रहे थे; रत्न-हार जहाँ-तहाँ टूटकर उसके रत्न बिखर रहे थे, और भय तथा शोक से उनका सारा शरीर काँप रहा था। ऐसी स्थिति में वह राक्षस सीता को अपने रथ पर बिठाकर आकाश-मार्ग से यों जाने लगा, मानों दैव-प्रेरित हो मृत्यु-देवता को साथ लिये जा रहा हो। रास्ते में सीता की चेतना लौट आई, तो उन्होंने आँखें खोलकर देखा और (सूखे हुए) होंठों को आर्द्र करती हुई, अपने बिखरे हुए आँचल को ठीक कर लिया और ऊँचे स्वर में शिशु-कोयल की-सी वाणी में विधि को कोसती हुई, अपने प्राणेश्वर को पुकारती हुई क्रोध तथा विषाद से संतप्त होकर विलाप करने लगीं।

२०. जानकी का शोक

सीता कहने लगीं--'हे राघवेश्वर, हे रामचंद्र, हे सूर्यवंशी, हाय! आपकी पत्नी--मुझे एक अनाथा बनाकर यह कुटिल राक्षस उठाकर ले जा रहा है। आप शीघ्र आकर

इसका नाश कीजिए और मेरी लाज बचाइए और मेरी रक्षा कीजिए । अरे राक्षस, यह निंदा तुम अपने ऊपर क्यों लेते हो ? तुम स्वयं अपनी लंका को क्यों भस्म कर देना चाहते हो ? तुम्हारे लिए यह भयंकर अन्याय उचित नहीं है । क्रोध में राघव तुम्हारा वध कर डालेंगे । हाय, मैंने स्वर्ण-मृग देखा ही क्यों ? मैंने अपने प्राणेश को क्यों जाने के लिए कहा ? (लक्ष्मण के) मना करने पर मैंने उसकी बात क्यों नहीं मानी ? प्रभु मृग लाने के लिए क्यों गये ? मैंने उनकी शक्ति का विचार क्यों नहीं किया ? लक्ष्मण को कोसकर जाने के लिए मैंने उससे क्यों कहा ? हाय ! होनहार मुझे क्यों चुप रहने देगा ? इन बातों से क्या प्रयोजन है ? हे भाई लक्ष्मण, तुम अभिमान-धनी हो, मुझे माता के समान माननेवाले उन्नत गुणवान् हो । सौजन्य की मूर्त्ति हो । ऐसे तुम्हें जो अपशब्द मैंने कहे, उनका फल मैं अब भोग रही हूँ । क्रोध तज दो और शीघ्र आकर मेरी रक्षा करो । हाय कैकेयी ! आपने जो वर माँगे, वे आगे चलकर सफल होंगे । आप अपने पुत्र के हाथ एकच्छत्राधिकार का अनुभव करते हुए राजभोग कीजिए ।'

इस प्रकार सीता उस राक्षसराज की निंदा करती हुई, रामचंद्र को पुकारती हुई, भगवान् को कोसने लगी । वह काकुत्स्थवंशी लक्ष्मण की प्रशंसा करती और कैकेयी की निंदा करती हुई अत्यधिक शोक से कहने लगी—'मैं मिथिलेश्वर की पुत्री, दशरथ की पुत्र-वधू और राम की पत्नी हूँ; ऐसी मुझे रक्षा करनेवाले जहाँ अनुपस्थित हैं—उस स्थान से एक राक्षस मुझे उठाकर ले जा रहा है । हे वृक्षो, हे मेरे सहोदरो, आप धरणीश्वर (राम) से सारा वृत्तांत कह सुनाइए । हे सुरो, आप सुरवैरी का सामना करके किसी उपाय से मुझे कैद से छुड़ाइए । हे गोदावरी, बड़ी भक्ति के साथ मैं आपके आश्रय में रहती थी; अब आपको मेरी रक्षा करना उचित है । कम-से-कम आप जाकर भूपति से यह वृत्तांत सुनाइए । मैं दुष्ट के हाथों में फँसकर विपत्ति में पड़ी हूँ । हे माता, क्या आपको मेरी रक्षा नहीं करनी चाहिए ? हे भूमाता, आप रघुराम भूपालमणि से मेरी इस दुरवस्था का समाचार बतलाइए । सब प्रकार के लोगों को पुकारते हुए मेरा कंठ सूख रहा है; धैर्य छूट रहा है; प्राण दुःखी हो रहे हैं । हे किन्नरो, हे पुण्यात्माओ, हे महात्माओ, हे तपस्वियो, हे खेचरो, हे व्रतियो, हे यतियो, हे वन-पक्षियो, हे सिंहो, हे गंधर्वो, हे नरो, हे सुरो, हे नागेंद्रो, आप (सब) मेरी रक्षा कीजिए ।'

भूसुता विविध प्रकार से व्यर्थ ही शोक करने लगी । पृथ्वी भी काँप उठी, गौतमी (गोदावरी) ने अपनी गति रोक दी । समस्त प्राणी शोकाकुल हुए । मुनि लोग 'यह अन्याय है, अन्याय है,' कहते हुए, कपट संन्यासी रावण का स्वभाव जानकर, परिताप करने लगे और शोकाश्रु बहाने लगे । मृग उनका (आर्त्तनाद) सुनते हुए चरना भूल गये; पक्षी क्रन्दन करने लगे; पवन की गति मंद पड़ गई; वृक्ष सूखने लगे; सारा आकाश क्षुब्ध हो उठा; धर्म-देवता यह सोचकर कि अब मेरी रक्षा कौन करेगा, दुःखी हुए; वन-देवता शोक-संतप्त हुए, साधुजन जानकी को देख रोने लगे ।

२१. जटायु और रावण का युद्ध

उस समय अरुण का पुत्र, पक्षिराज तथा महान् साहसी जटायु ने एक पहाड़ पर से

'हाय रघुराम' का आर्त्तनाद स्पष्ट रूप से सुना। यह आर्त्तध्वनि सुनकर उसने भय तथा आश्चर्यचकित हो, सिर उठाकर सारे आकाश तथा सभी दिशाओं में अपनी दृष्टि दौड़ाई और मन-ही-मन कहने लगा—'दया-रहित हो रावण उस राम की पत्नी को अपने यहाँ ले जा रहा है। उस दिन जब से मुझे राम ने देखा, तब से वे मेरे साथ घनिष्ठ मित्रता का व्यवहार कर रहे हैं। अब इस राक्षस के दुष्कर्मों को सहना ठीक नहीं है। अपना शौर्य दिखाकर मैं अकेले ही इस राक्षस का वध करूँगा और वैदेही को छुड़ा लाऊँगा या सूर्यवंशाधिप राघव के लिए युद्ध में अपने प्राण छोड़ दूँगा।'

ऐसा निश्चय करके, उसने अपने सुदृढ़ शरीर को बढ़ाकर आकाश की तरफ ऐसे उछल पड़ा, जैसे वज्र के वार का सहन न कर सकने के कारण महापर्वत आकाश में उड़ रहा हो। (उसके उड़ते समय) पर्वत-शृंग (उसके पैरों का टक्कर खाने से) चूर-चूर हो गये। उसने अपने मुँह में रखे हुए मांस-खंडों को पृथ्वी पर थूक दिया। भयंकर रूप से उसके नखों में फँसे हुए करि, सिंह, शरभ आदि मृगों के सिर (उसके पैरों से छूटकर पृथ्वी पर) लुढ़कने लगे। उसकी बलिष्ठ चोंच की दीप्ति तथा पंखों की आभा (चारों ओर) विकीर्ण होने लगी। अत्यधिक क्रोध से उसकी आँखें प्रचंड दीखने लगीं; पंखों के द्वारा उत्पन्न पवन से पर्वत-शिखरों पर रहनेवाले वृक्ष टूटकर दिशाओं को भरने लगे। वह रावण की ओर इस प्रकार आने लगा, मानों रावण के (मन के) तम को दूर करने के लिए आनेवाला मध्याह्न का सूर्य हो, या बली रावण-रूपी सूर्य को निगलने के लिए बड़े भयंकर रूप से आनेवाला राहु हो, या रावण-रूपी राहु को निगलने के लिए अत्यधिक वेग से आनेवाला तार्क्ष्य (एक मुनि) हो। जटायु कहने लगा—'हे कुटिल राक्षस, ठहर, ठहर, आगे मत बढ़। तू रघुराम नृपचंद्र की देवी को कहाँ लिये जा रहा है? अब कहाँ ले जा सकेगा? कहाँ जायगा? किस ओर जायगा? यदि तू जाना भी चाहे, तो जाने न दूँगा; तुझे मैं मारूँगा, काटूँगा, खंड-खंड कर दूँगा, दंड दूँगा और पोली लकड़ी के समान (तेरे) सिरों को काट दूँगा।' इसके पश्चात् वह सीता को देखकर कहने लगा—'हे देवी, दुःखी मत होइए। इस भयंकर राक्षस का वध करके मैं आपको इसके हाथों से छुड़ाऊँगा।'

भयंकर निदाघ के मध्य बादलों का गर्जन जैसे मयूरों को प्रसन्नता पहुँचाता है, वैसे ही इन वचनों से सीता को कुछ सांत्वना मिली। कुम्हलाये हुए मुँह से, अत्यंत दुःख से कुढ़ती हुई सीता बोली—'हे जटायु! हे भाई! देखो यह सुरवैरी राम-लक्ष्मण को वंचित करके घमंड से मुझे उठाकर ले जा रहा है।' इन बातों को सुनकर अरुणनंदन (गरुड़) क्रोधोन्मत्त होकर रथ के आगे आकर खड़ा हो गया और प्रलय-काल के बादलों के निर्घोष की भाँति कठोर वचनों से बार-बार दशकंठ को डाँटते हुए अत्यधिक साहस के साथ कहने लगा—'हे रावण, तू परम पवित्र ब्रह्मा का पोता है; पुण्यात्मा विश्रवसु का पुत्र है; कुबेर का भाई है और दानवश्रेष्ठ है, क्या तेरे लिये ऐसा काम उचित है? तू जगदेकपति नृप राम की पत्नी को बलात् लिये जा रहा है, यह उचित नहीं है। तुझे तो राम से लड़कर उसके पश्चात् उनकी स्त्री को लाना चाहिए था। उनको धोखा देकर, उनकी स्त्री को इस प्रकार लाया है। क्या यह कोई शूरता है? अरे, राम की क्रोधाग्नि तुझे

तेरे बंधुजनों तथा तेरी लंका को भस्मीभूत कर देगी । जान-बूझकर क्यों विष पी रहा है ? क्रोधी सर्प के ऊपर पैर क्यों रखता है ? साठ सहस्र वर्ष की आयुवाले मुझे जानता है या नहीं ? मैं जटायु हूँ । इस पुण्य साध्वी को मुझे सौंपकर चला जा, अन्यथा मैं तेरा वध कर दूंगा; अपनी चोंच से तेरे धनुष के टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा और वर्म तथा मर्म को भेदकर तेरे प्राण ले लूंगा और साथ ही जानकी को मुक्त करूँगा ।'

तब उस भयंकर राक्षसश्रेष्ठ ने अपना रथ रोका, क्रोधोन्मत्त हो धनुष की टंकार की और लक्ष्य साधकर जटायु पर घोर अस्त्र चलाये । किन्तु उस वीर विहग ने रुष्ट होकर उसके बाणों को तोड़ दिया और अपने पंखों से उसके वक्ष पर आघात किया, ललाट पर चोंच मारी, कंधों पर पद-प्रहार किया और अपने तेज नखों से उसे अत्यधिक पीड़ा पहुँचाई । तब उस राक्षसकुलेश्वर ने उस खगराज के पंखों का लक्ष्य करके दस उग्र बाण चलाये । जटायु ने अपनी चोंच से रावण के धनुष के टुकड़े-टुकड़े कर दिये, उसकी ध्वजाओं को नीचे गिराकर उसके मुकुट को भी पृथ्वी पर गिरा दिया, सारथी से जूझकर उसका पेट चीर दिया; आगे बढ़कर उस राक्षस के रथ के अश्वों को मार डाला और अत्यधिक क्रोध से उसके रथ को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया । तब राक्षसराज कंपित होकर पृथ्वी पर गिरकर फिर उठा और धरणिजा (सीता) को उठाये हुए अपनी माया की शक्ति से आकाश में और भी ऊँचा उड़ गया । उसे जाते हुए देखकर जटायु ने उसको रोका और आकाश-मार्ग में महान् वेग से उस पर आक्रमण किया और कहने लगा—'हे पापी, तू लुक-छिपकर भले ही किसी भी लोक में चला जा, मैं तुझे तिनके की तरह पकड़कर तेरा वध कर दूंगा ।'

तब अत्यंत रोष से दैत्यराज ने अति भयंकर मुद्गर उस पर फेंका । जटायु ने उसे अपनी चोंच से तोड़ दिया और उसके सिर पर चलते हुए उसे कुचल-सा दिया और उसके सर के केशों को चुनने लगा । रावण ने क्रोध से, विना भय या संकोच के, उस पक्षीराज को दृढ़ता से पकड़कर नीचे अपने सामने रखा, और अपनी भयंकर शक्ति को प्रकट करते हुए अपनी मुष्टियों के प्रहार से उसे पीड़ित करने लगा । दनुजेन्द्र और विहगेन्द्र के बीच के उस युद्ध को देख देवता आश्चर्यचकित हुए । तब रावण अपने अद्वितीय पराक्रम को प्रकट करते हुए अपने अति भयंकर खड्ग को खींचकर जटायु के पंखों और पैरों को काट दिया । तुरंत खगपति धरती पर गिर पड़ा ।

उसे इस प्रकार गिरते देख वैदेही दुःखी हो किसी वृक्ष के नीचे खड़ी होकर राम का नाम ले-लेकर विलाप करने लगीं । रावण उस परम पतिव्रता को उठाकर बड़े हर्ष से आकाश के मार्ग से अत्यंत शीघ्र जाने लगा । ब्रह्मादि देवता तथा मुनि आपस में यह कह-कर हर्षित होने लगे कि अब दशकंठ अवश्य ही राम के हाथों मारा जायगा और हमारे मनोरथ सफल होंगे ।

आकाश-मार्ग से जब रावण अत्यधिक वेग से जाने लगा, तब सीता के चरण का नूपुर इस प्रकार पृथ्वी पर गिरा, मानों सुरवैरी के लिए उत्पात की सूचना देनेवाली उल्का हो । उस रमणी के कुचों पर विहार करनेवाले हार टूटकर इस प्रकार जहाँ-तहाँ

पृथ्वी पर गिरने लगे, मानों जाह्नवी की जल-धारा हो । सीता हाहाकार करती हुई मन-ही-मन कुढ़ती जाती थी । ऋष्यमूक पर्वत पर सीता ने पाँच बलिष्ठ वानरों को देखा, तो तुरंत अपने वस्त्र का थोड़ा सा भाग फाड़ा, उसमें अपने आभूषणों को बाँधा और सोचने लगीं कि कम-से-कम ये मेरे आभूषण राम भूपाल को मेरे हरण का समाचार देंगे, तो राम के द्वारा दशकंठ का वध शीघ्र होगा । इस प्रकार सोचकर उन्होंने उस पोटली को उनके बीच गिरा दिया । उन (वानरों) ने उस पोटली को तुरंत छिपा दिया ।

दनुजाधिपति (यह सोचकर) भय से व्याकुल हो रहा था कि दशरथात्मज उसका पीछा करेंगे । इसलिए वह पीछे की ओर देखते हुए, भय-विह्वल होते हुए, शीघ्र ही समुद्र पार कर गया और लंका में जा पहुँचा । उस समय कितने ही मृत्युसूचक अपशकुन दिखाई पड़ने लगे । वह लंका पहुँचकर अनुपम तथा विविध भोगों का आगार अपने महल में गया और बड़े गर्व के साथ जानकी को अपनी सारी संपत्ति दिखाई ।

२२. जानकी को अशोक-वन में रखना

तत्पश्चात् रावण ने बड़े हर्ष से सीता से कहा--'हे कमललोचनी, ये मेरे भवन हैं; यह मेरा धन है; ये मेरे तुरग हैं; ये मेरे गज हैं । यह वे मेरे दिव्य आभूषण हैं, जिन्हें मैंने सभी देवताओं को परास्त करके प्राप्त किया था; यह पुष्पक-विमान है, जिसे मैंने कुबेर को जीतकर प्राप्त किया था; ये चारण, अमर, सिद्ध तथा साधकों की पत्नियाँ हैं, जो अलग-अलग मेरी सेवा करती रहती हैं । ये स्त्रियाँ वे हैं, जो घमंडी होकर मेरी बात स्वीकार नहीं करने के कारण कारागार में तड़प रही हैं । वह देखो, नाट्यशाला है; वह क्रीड़ा-वन है; ये चन्द्रशालाएँ हैं । तुम इन सब की स्वामिनी होकर अनुपम गति से समस्त वैभवों का उपभोग करो ।'

तब सीता एक तृण-खंड को हाथ में लेकर, रावण की उपेक्षा करती हुई कहने लगी--'अरे मूर्ख, तुम्हारा यह पाप तुम्हें यों ही नहीं छोड़ेगा । वह भयंकर अग्नि बनकर तुम्हें दग्ध कर देगा । तुम और तुम्हारे बंधु-बांधव अब बहुत दिनों तक जीवित नहीं रह सकेंगे । अवश्य ही नष्ट हो जायँगे । यह सत्य है । जबतक राम की बाणाग्नि की राशि में गिरकर तुम्हारा शरीर जल नहीं जायगा, तबतक तुम्हारे ये पाप कैसे कटेंगे ?' फिर सीता बार-बार परिताप करती हुई बोली--'तुमने आज मुझे ऐसे कलुषित वाक्य सुनाये, जिनसे मेरा सारा महत्त्व जाता रहा । मेरे गर्व ने मुझे ऐसा कर दिया; मैं अपने भाग्य को कैसे रोऊँ ?' यों कहती हुई वह उच्च स्वर में रुदन करने लगीं । (यह देखकर) राक्षस-वल्लभ मन-ही-मन बहुत क्रुद्ध हुआ और त्रिजटा आदि स्त्रियों को बुलाकर उन्हें सीता को दिखाते हुए कहा--'तुम लोग बड़ी सावधानी से इसकी रक्षा करती रहो और मुझसे विवाह कर लेने का उपदेश देती रहो । उचित यत्न के साथ इस रमणी को अशोक-वन में रखो ।' यों कहकर उसने उन्हें भेज दिया और काम-पीड़ित मन से व्याकुल रहने लगा ।

२३. श्रीराम का दुःख

माया-मृग का वध करने के पश्चात् राम ने और एक हिरन का वध किया और उसके मांस तथा चर्म को लेकर बड़े हर्ष से लौट रहे थे । सियारों का चिल्लाना सुनकर,

(मन-ही-मन) वे व्याकुल होते हुए बड़ी तेजी के साथ निःश्वास भरते हुए आ रहे थे कि वन के मध्य में उन्होंने लक्ष्मण को देखा । लक्ष्मण को देखते ही वे अत्यंत भय-विह्वल हुए और बोले—'हाय लक्ष्मण, अत्यंत धीर तथा विवेकी होकर भी मेरी आज्ञा के बिना, सीता को वन में अकेली छोड़कर तुम कैसे आये ? तुम इस तरह क्यों आये ? क्या, तुम नहीं जानते कि इस पृथ्वी पर रहनेवाले सभी राक्षस हमारे शत्रु हैं ? भाई, क्या तुम्हें वंश-मर्यादा, धर्म तथा गुरुजनों की हानि का विचार नहीं करना चाहिए था ?'

इन बातों को सुनकर लक्ष्मण अत्यंत भयभीत हुए । काँपते हुए उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—'हे प्रभो, त्रिलोकीनाथ, मैं जानता हूँ कि मेरा इस प्रकार चला आना उचित नहीं है । जिस कुटिल राक्षस ने माया-मृग के रूप में आपको भटकाकर निदान आपके दिव्य बाणों की अग्नि-शिखाओं से प्राणत्याग किये, उसने मरते समय 'हाय लक्ष्मण' कहकर आर्त्तनाद किया । वह आर्त्तनाद जब सीताजी के कानों में पड़ा, तब वे अत्यंत भयभीत हुई और आपकी श्रेष्ठता को सर्वथा भुलाकर कहने लगीं—'भाई लक्ष्मण, क्या बात है ? कुछ पता लगाओ । हे सौमित्र, तुम्हारे भाई कभी ऐसा दीन आलाप नहीं करते ।' तब मैंने उनसे कहा—'माताजी, हमारे मन में भय उत्पन्न करने के निमित्त ही क्रूर राक्षस ने ऐसी पुकार मचाई होगी । कहाँ सूर्य-वंश के अधीश्वर और कहाँ दीन वचन, माताजी आप विचलित मत होइए ।' तब देवी मुझे अपशब्द सुनाती हुई कोसने लगीं और मैं मन ही मन दुःखी हुआ और वन-देवताओं के संरक्षण में उन्हें छोड़कर यहाँ चला आया । इसलिए प्रभो, आप इसे मेरी त्रुटि न मानें ।'

इस प्रकार कहते हुए अश्रुपूरित नयनों से लक्ष्मण ने अपने भाई को प्रणाम किया । राम ने अपने अनुज को बड़े स्नेह से उठाया, आँखों से गिरनेवाले अश्रुजल को पोंछा, और अत्यंत दुःखी होते हुए बोले—'हे तात, आजन्म पवित्र, सर्वज्ञ जनक महाराज की पुत्री होती हुई, उस प्रख्यात पुण्यशीला सीता का ऐसे वचन कहना ही सभी विपत्तियों का कारण है—ऐसा विचार करके तुम्हें तो वहीं ठहर जाना चाहिए था । तुम्हारे जैसे व्यक्ति को विचलित नहीं होना चाहिए था ।'

इस प्रकार, सौमित्र को सांत्वना देकर राम ने अपनी आश्रम-भूमि में प्रवेश किया और (उसे सर्वथा निःस्तब्ध पाकर) बोले—'हे लक्ष्मण, यह कैसी बात है कि यह आश्रम सर्वथा शून्य दीख रहा है । वन-देवताओं के हर्ष भरे वचनों की ध्वनि सुनाई नहीं पड़ रही हैं ? पक्षियों का कलरव नहीं सुनाई पड़ रहा है । मुनिजनों का संचार यहाँ नहीं दीख रहा है ? सीता (मेरे स्वागतार्थ) आगे आती नहीं दीख रही है ? मेरा मन अत्यंत दीन तथा व्याकुल हो रहा है । आज मेरी बाईं आँख न जाने क्यों फड़क रही है । हाय, इस वन में न जाने हम दोनों कैसा दुःख भोगेंगे ?'

इस प्रकार कहते हुए वे पर्णशाला के पास पहुँचे और दिनकर-रहित दिन-लक्ष्मी के समान, निशाकर-विहीन रात्रि के समान, सारिका-रहित पिंजड़े के समान, कोयल-रहित आम्र-वृक्ष के समान, देखने में विवर्ण तथा कांतिहीन दीखनेवाले उस पर्णशाला को देखकर वे मन-ही-मन बहुत अधीर हुए । व्याकुलता के कारण उनका मुख विवर्ण हो गया;

आँखों से अश्रु ऐसे बहने लगे, मानों शोक-रस ही प्रवाहित हो रहा है । वे अपने सूखे ओठों को आर्द्र करते हुए भग्न हृदय से अपने अनुज को देखकर बोले—'हे लक्ष्मण, मैंने अच्छी तरह देख लिया; पर्णशाला में कहीं भी भूमिसुता का पता नहीं है । कदाचित् पुष्प-चयन के लिए गई हो अथवा हमें ढूंढ़ती हुई किसी दूसरे मार्ग से चली गई हो । पता नहीं, सरोवर में जल-क्रीड़ा करने गई हो या अत्यंत भयभीत हो कहीं संतप्त हो रही हो, निकट पहुँचनेवाले बाघों के भय से कहीं छिप गई हो अथवा क्रोध से कहीं अकेली चली गई हो । मुझे तो कुछ भी मालूम नहीं हो रहा है कि वह कहाँ गई; जो भी हो यहाँ तो नहीं है ।'

इस प्रकार तर्क-वितर्क करते हुए उन्होंने पर्णशाला के भीतर प्रवेश करके सब स्थानों में ढूंढ़ा । किन्तु कहीं भी जानकी को न पाकर उनका मन अत्यधिक संतप्त होने लगा; शरीर निश्चेष्ट हो गया; ज्ञान-रूपी रवि-शोक-समुद्र में अस्त होने से भ्रांति-रूपी अंधकार ने व्याप्त होकर उनके अंतरंग तथा नेत्रों को ढक लिया, धैर्य को आवृत कर लिया और अभिमान को घेर लिया । वे व्याकुल होकर भूमि पर लोट गये । उन्होंने यह भी नहीं सोचा कि मैं पहले ही सीता के (वनवास) दुःख से चिंतित हूँ, अब मुझे यह दुःख भी सहना पड़ा । यह दुःख मुझे कैसे प्राप्त हुआ ? कैसे मैं इस दुःख को पार करूँगा ? हम क्यों इस वन में आये ? अब मैं इससे (लक्ष्मण से) क्या बात कर सकता हूँ ? मैं इसका अग्रज हूँ; यह मेरा अनुज है; हम दोनों इस दुःख का भार कैसे वहन करेंगे ?' इन बातों का विचार किये विना वे मन-ही-मन क्षुब्ध होकर मदन-पीड़ित उन्मत्त की तरह चारों ओर निरुद्देश्य दृष्टि से देखते हुए, अपने महत्त्व को भी भूलकर प्रलाप करने लगे। वे कभी चिल्लाते—'हे तनुमध्ये (पतली कमरवाली) । इतनी देर तक तुम कहाँ हो ? शीघ्र आओ ।' फिर ऐसी चेष्टाएँ करते, मानों वे आ गई हों और उनका आलिंगन कर रहे हों । तुरन्त दुःखी होते; फिर धीरे-धीरे उनको सांत्वना देते । थोड़ी देर में जब किंचित् चेतना लौट आती तो कहते—'हाय सौमित्र, अवनिसुता न जाने कहाँ चली गई ? क्या हो गया उसे, उसके पद-चिह्नों के अनुसार चलकर ढूँढ़ने पर भी वह दिखाई नहीं देतीं; वह पर्णशाला में भी नहीं हैं । वह कमललोचनी न जाने किस दिशा में गई है ? क्या यह दण्डकवन नहीं है ? क्या यह (हमारा) निवास-स्थान नहीं है ? क्या यह (हमारी) पर्णशाला नहीं है ? क्या मैं राम नहीं हूँ ? तब तो उस चंचलाक्षी से बिछुड़कर मेरे प्राण अभी क्यों टिके हुए हैं ? उसके वियोग-दुःख से यदि मैं प्राणों का मोह त्यागकर मर जाऊँ, तो महाराज दशरथ तो यही सोचेंगे कि यह कैसा पुत्र है, जो व्रत को पूर्ण किये विना ही चला आया है ? ऐसी दशा में क्या वे मेरा आदर करेंगे ? ऐसा नहीं करके यदि मैं व्रत को पूर्ण करके, राज्य करने के लिए राजधानी को लौट जाऊँ और मिथिलेश्वर वहाँ आयें तो, उन्हें देखकर क्या मैं लज्जित नहीं होऊँगा ? इसलिए तुम मुझे इस कानन में ही छोड़कर राजधानी को लौट जाओ और भरत से कहो कि वह अपनी इच्छा से समस्त पृथ्वी का शासन करे और माता कैकेयी, सुमित्रा तथा कौशल्या को जानकी के खो जाने का तथा मेरा समाचार कहो । मेरी बात मानो ।'

इस प्रकार कहते हुए राघव ने अपनी आँखें ऐसे बंद कर लीं, मानों वे इस समाचार को मन से बाहर जाने नहीं देना चाहते थे कि सीता पर्णशाला से अदृश्य हो गई हैं।

तब लक्ष्मण सारी स्थिति देखकर अत्यधिक शोक से विलाप करने लगे--'मैं अब किस माता की सेवा करूँगा ? किस माता की आज्ञा का पालन करूँगा ? किसे मैं अपनी माता के समान मानूँगा ? सूर्यवंश-तिलक के शोक को कैसे शान्त करूँगा ? सभी माताओं तथा भाइयों के लिए, इनके साथ का जीवन ही जीवन है (ये यदि न रहें, तो दूसरे कैसे रह सकेंगे)। हाय! अब तो मनुवंश का ही अंत हो गया।'

इतने में राम की चेतना लौट आई। उन्होंने उमड़ते हुए शोक से दण्डकवन के चारों ओर एक बार दृष्टि दौड़ाई, और आँखों में आँसू भर लिये। सीता का स्मरण करते ही उनका दुःख दुगुना हो गया; धैर्य के छूट जाने से मन और भी शोकाकुल हुआ। वे बोले--"हाय सीता, तुम चली गई। तुम अपने शरीर को मेरे इस शरीर से अलग करके इसे यहीं छोड़कर चली गई ? सुर तथा असुरों के लिए पूजनीय है, इसका भी बिचार नहीं करके मैंने तुम्हारे लिए शिव-धनुष को भंग कर दिया था। परशुराम ब्राह्मण हैं इसका भी विचार नहीं करके मैंने उन्हें शत्रु समझकर उनका गर्व भंग किया था। हे कमलाक्षी, तुम्हारे लिए मैंने इन दोनों निंदाओं को अपने ऊपर ले लिया है। अंत में क्रूर दैव ने तुम्हें मुझसे अलग किया है। मैं तो केवल निंदा प्राप्त करने के लिए रह गया। तुम्हारे मन की अभिलाषा देखकर, उसे पूर्ण करके तुम्हें आनन्दित करने के लिए मैं गया, उस माया-मृग का वध करके उसका चर्म लाया हूँ। अब मैं प्रेम से वह (चर्म) किसको दूँ ? सब सुखों को भुलाकर, मेरा विश्वास करके मेरे साथ वन में आई हुई तुम्हारी रक्षा मैं नहीं कर सका। तुम्हारे जाने का मार्ग जानकर, तुमसे शीघ्र आकर मिल न सका। समस्त जगत् का शासन करने की महान् शक्ति रखनेवाले के समान शर-चाप धारण करके इस घोर वन में रहने आया और मूर्ख मति से अपने पूर्वजों की महत्ता को भी भुलाकर, आज तुम्हें खो बैठा हूँ। हे मृगलोचनी, तुमसे बिछुड़कर मैं इस शरीर में अपने प्राण कैसे रोक सकूँगा ? हे भूमिसुते ! इस भूमि को छोड़कर मैं और किस स्थान पर इस शरीर को धारण कर सकूँगा ? हे सुंदरी, तुम्हारी विरहाग्नि तुम्हारे सौंदर्य-सागर में डूबे विना बुझेगी नहीं। तुम्हारे शरीर-रूपी नौका के विना, इस शोक-समुद्र को कैसे तर सकूँगा ? तुम्हारे कुचों की आड़ के विना मैं कामदेव की शर-वृष्टि को कैसे सह सकूँगा ? भगवान् मुझे उस तरफ ले गया और तुम्हें इस तरफ। हम दोनों को अलग करनेवाले भगवान् के लिए क्या असंभव है ? हे कोमलांगी, तुम्हें उठाकर ले जाते समय, तुमने क्या कहकर विलाप किया था ? तुमने मुझे क्या कहा था ? तुम किस देश में चली गई हो ? कहाँ रहती हो ? कैसा दुःख भोग रही हो ? क्या कर रही हो ? कौन तुम्हें ले गया है ? किस मार्ग से गई हो ? हाय, हमारी कैसी दशा हो गई है। तुम्हारी जैसी निपुणा, तुम्हारी जैसी मुग्धा, तुम्हारी जैसी सौंदर्य-निधि कहाँ है ? तुम्हारे साथ रहते एक दिन जी भरकर सुख भोगने का सौभाग्य (अब) मिलेगा क्या ? हे जलजनयनी, तुम्हारे साथ रहने पर मैं यही अनुभव करता था कि साकेतपुरी में ही रह रहा हूँ।

हे पिकवयनी, तुम्हारे संग रहने पर मैं अपने को स्वर्ण-महलों में रहनेवाले के समान ही समझता था । हे सुंदरी, मैं तुम्हारे सहवास में अपने को समस्त भोगों को प्राप्त करता हुआ-सा अनुभव करता था । तुम्हारे साथ रहते हुए सब प्रकार के सुख-भोगों को भोगता हुआ-सा मानता था । आज ही मुझे ज्ञात हो रहा है कि यह महाकानन है; यह पर्ण-शाला है; यह तपस्या है, यह दुःखमय जीवन है । हे राजकुमारी, हे मृगनयनी, हे कमलाक्षी, हे लतांगी, मैं कैसे संतप्त हो रहा हूँ । फिर भी तुम सहानुभूति का एक शब्द भी नहीं कहती हो ? आज दैव ने तुम्हारे मंद गमन की शोभा हंसों को, ललित चरणों की कांति प्रवालों को, उन्नत कुचों की शोभा चक्रवालों को, करों का अरुण राग पद्मों को, तन की कान्ति नये जलद की बिजली को, आँखों का वैभव मछलियों को, शीतल मुख की शोभा चंद्र को, उज्ज्वल हँसी चंद्रिका को, मधुर भाषण तोते को, केशों की कान्ति भ्रमरों को, कटि की कृशता आकाश को, देकर तुम्हें निगल लिया है । हे वामलोचनी ! हे पद्मगंधी ! हे कमलमुखी ! हे सीते !" कहते हुए दुःख-विवश हो राम भूपाल अत्यधिक व्याकुल हुए । उसके पश्चात् अत्यंत दीन होकर वे अपने अनुज को देखकर बोले—'हे लक्ष्मण, वह इंदीवराक्षी न जाने किस ओर गई है । क्या हम उसे खोजते हुए चलें ? वह इन लता-समूहों में न जाने कहाँ लीन हो गई है; क्या हम उसे पुकारें ? वह पृथ्वी की कुमारी न जाने किन पेड़ों की आड़ में छिप गई है; क्या हम चलकर देखें ? वह शुक-जुवाणी न जाने किन सरोवरों में (स्नान करने) गई है; क्या हम उसका पता लगाने जायँ ?' इस प्रकार बार-बार अत्यंत दीनालाप करते हुए, मन-ही-मन खिन्न होते हुए वे असह्य वेदना से पीड़ित होने लगे ।

(तत्पश्चात्) वे गौतमी के किनारे पहुँचे और उसे संबोधित करके कहने लगे—'हे लोकपावनी, हे लोकमाता, लोकपावनी सीता का पता क्या आप जानती हैं ? हे लोक-बंधु, हे कर्मसाक्षी (सूर्य), क्या आप जानते हैं कि सीता कहाँ है ? हे जगत्प्राण, हे सब स्थानों में संचार करनेवाले (पवन) क्या आप भी नहीं जानते कि सीता कहाँ है ? हे लताकुमारी, क्या तुम नहीं जानतीं कि वह लतांगी कहाँ है ? हे जलज, क्या तुमने उस जलजातगंधी को नहीं देखा ? हे सिंह, क्या, तुमने उस सिंहमध्या (क्षीण कटिवाली) को नहीं देखा ? हे गजराज, क्या तुमने उस गजगामिनी को नहीं देखा ? हे हरिण, क्या तुमने उस हरिणाक्षी को नहीं देखा ? हे पिक, क्या तुमने उस पिकवयनी को नहीं देखा ? हे भ्रमर, क्या तुमने उस नीलवेणी को नहीं देखा ? हे तिलकवृक्ष, क्या तुमने उस तिलक से अलंकृत मुखवाली को नहीं देखा ?' इस प्रकार भ्रांत हो, राघव जहाँ-तहाँ जाकर सीता को ढूँढ़ने लगे, पर कहीं भी वैदेही का पता न मिलने से, बिरहाकुल तथा विवश होकर रह गये ।

२४. लक्ष्मण का राम को सांत्वना देना

ऐसे दुःखी होनेवाले अपने भाई को देखकर लक्ष्मण ने उनसे कहा—'हे भाई, आप समस्त लोकों के लिए आराध्य हैं, उदात्त चित्तवाले हैं; महान् बलशाली हैं; अपनी स्त्री के लिए इस प्रकार आप शोक करें, यह उचित नहीं । हे सूर्यवंशाधिप, इस प्रकार का मोह

तथा शोक आपको क्यों ? यह संसार तो तमोगुण से आवृत है । आप यदि धनुष अपने हाथ में लें, तो देवता भी आपको देखकर दूर जायँगे । हे अखिलेश, आप अद्वितीय शक्तिशाली हैं । मेरे जैसा व्यक्ति आपका सेवक है । आपके लिए असाध्य क्या हो सकता है ? आप अपने महत्त्व का विचार क्यों नहीं करते ?'

तब राम ने अपने आपको सँभाल, शोक तज दिया और अपने भाई को देखकर बोले--'अब मैं जानकी का वियोग किसी भी प्रकार सहन नहीं कर सकता । मैं अपने दुर्वार बाणों के सतत प्रयोग से सारी पृथ्वी को चीरकर, पातालवासियों को पीड़ित करके, चंद्रमुखी सीता को प्राप्त करूँगा या सप्त समुद्रों को आलोड़ित करके भूधरों को चूर-चूर करके, दिग्गजों के कुंभ-स्थलों को फाड़कर भूमिसुता को प्राप्त करूँगा । या सभी दिक्पालों के हृदयों को चीरकर, सूर्यबिम्ब को तोड़कर, नक्षत्रों को चूर-चूर करके सारी पृथ्वी को अंधकार में डुबोकर अपनी स्त्री को प्राप्त करूँगा या अपने दिव्यास्त्रों का प्रयोग करके सभी राक्षसों को भस्म कर दूँगा, पृथ्वी को राक्षस-रहित कर दूँगा और वैदेही को साध लूँगा (प्राप्त कर लूँगा) । या समस्त ब्रह्मलोक को छानकर, आदि ब्रह्मा का संहार करके, सभी प्राणियों में भय उत्पन्न करके, अपने पराक्रम से अपनी स्त्री को प्राप्त करूँगा । यदि मैं अपने बाहुबल का प्रदर्शन नहीं करूँ, तो क्या, यों ही सुरगण सीता का पता बतायेंगे ? यह देखो, सभी भुवनों को कँपाती हुई मेरे बाणों की अग्नि-ज्वाला दीप्त हो रही है । लो, सीता को देखो, मैं अभी सीता को ऐसे प्राप्त करूँगा कि सभी देवता मेरी प्रशंसा करने लगेंगे ।'

इस प्रकार कहते हुए उनकी भौंहें ऐसी तन गईं, मानों वे सभी लोकों के लिए उत्पात की सूचना दे रही हों । सभी जीवों के साथ समस्त ब्रह्माण्ड को चूर-चूर करनेवाला संकर्षण रूप उन्होंने धारण किया और प्रलयकाल के रुद्र की भाँति क्रुद्ध होकर धनुष हाथ में ले लिया । तभी सभी जीव भयभीत हुए, सारी पृथ्वी थरथराने लगी; सभी लोक व्याकुल हुए; आकाश हिलने लगा; ब्रह्माण्ड मानों टूटने लगा; ब्रह्मा का मंत्र मिट गया; रवि पथ-भ्रष्ट हो गया; नक्षत्र टूटने लगे; शिव भी भयभीत हुए और यक्ष, देव तथा असुर विचलित हुए ।

तब लक्ष्मण राम के निकट पहुँचकर अत्यधिक भय से, हाथ जोड़कर बोले--'हे प्रभो, आप करुणानिधि हैं; लोक रक्षण-कला में प्रवीण हैं । जनकजा के लिए सभी लोकों का समूल नाश कर देना, क्या आपके लिए उचित है ? एक-एक वन में, सभी समुद्रों में, जनाकीर्ण नगरों में तथा समस्त देशों में वैदेही को विना थके ढूँढ़न के उपरान्त भी यदि वे नहीं मिली, तब आप अपने क्रोध तथा पराक्रम से उनको प्राप्त कर सकते हैं ।'

इस प्रकार लक्ष्मण के कहने पर राम ने उनकी बातें बड़े स्नेह से मान लीं, क्रोध तजा और धनुष को रख दिया । उसके पश्चात् अखिलेश राम अपने अनुज के साथ दक्षिण दिशा की ओर चल पड़े । उस समय मार्ग में जहाँ-तहाँ सीता की वेणी से गिरे हुए फूल, उस तन्वी के वक्षोजों पर विलसित हारों के रत्न, उनके मणिमय चरण-नूपुर पृथ्वी पर

पड़े हुए देखकर राम अत्यधिक शोक से अभिभूत हुए। उन्होंने विचार करके निश्चय कर लिया—हाय, निश्चय ही कोई क्रूर दानव उस कुटिल-कुंतला सीता को उठाकर ले गया है।

यों चिंतित होते हुए वे मार्ग में अन्वेषण करते हुए थोड़ी दूर आगे बढ़े। मार्ग में जहाँ-तहाँ राक्षस के चरण-चिह्नों को देखते तथा उनका अनुसरण करते हुए वे कुछ दूर गये। वहाँ उन सूर्यवंशजों ने एक स्थान पर कटे हुए पंख, रक्त के कीचड़ में मृत पड़े हुए सारथी, उसपर टूटकर गिरे हुए रथ, रथ के पास कटकर गिरे हुए अश्व, पृथ्वी पर बिखरे हुए पताका के खंड, उनके सामने ही गिरे हुए धनुष के खंड, छितराये हुए अस्त्र-शस्त्र देखे। (इन सब वस्तुओं को) लक्ष्मण के दिखाने पर राम विस्मित हुए और सोचने लगे कि किन्हीं ने यहाँ पर युद्ध के आनन्द का उपभोग किया है।

२५. जटायु का अग्नि-संस्कार करना

उक्त योद्धा का पता लगाने के उद्देश्य से रघुराम उस मार्ग में जहाँ-तहाँ ध्यान से देखते हुए आगे बढ़े। उस स्थान के निकट ही पंख और पैर कटे हुए, रक्त में डूबे, वज्र के आघात से गिरेहुए मैनाक पर्वत की भाँति विवश पड़े हुए विहगेन्द्र (पक्षिराज) को देखकर राम ने कहा—'हे लक्ष्मण, देखा तुमने ? चपलराक्षस सीता को निगलकर, अपना निज रूप दिखाने से डरकर पक्षी के रूप में यहाँ पड़ा हुआ है। भय से तड़पनेवाले इसका वध मैं कर डालूंगा।' यों कहते हुए वे धनुष हाथ में लिये उस पक्षी पर आक्रमण करने को उद्यत हुए। उन्हें देखकर पक्षिराज ने रक्त का वमन करते हुए, लंबी साँस भरते हुए, गद्‌गद कंठ से कहा—'हे राजन्, मैं आपके पिता का मित्र हूँ; कश्यप ब्रह्म का पौत्र हूँ; अरुण का पुत्र हूँ तथा जटायु नामधारी हूँ। मैं इन घने वन तथा शैल-शृंगों पर निवास करता हूँ। मैंने अपना सारा वृत्तांत आपको इसके पहले स्पष्ट रूप से निवेदन कर ही दिया था। हे पुण्यात्मा, ऐसे मुझे यह विपत्ति क्यों कर आई, उसका भी विवरण सुन लीजिए। आज रावण आपकी देवी को चुराकर लिये जा रहा था, तो मैंने उसको रोका और अपनी अमित शक्ति के साथ उससे युद्ध करके बुरी तरह घायल होकर पृथ्वी पर पड़ा हूँ। यह उसका केतु, सूत तथा अश्वों से युक्त रथ है। युद्ध में मेरे द्वारा ये नष्ट हुए हैं। तब क्रोध से वह क्रूर राक्षस सीता को उठाकर आकाश-मार्ग से चला गया। आप तो आये नहीं। (अब) मैं आपको यह समाचार सुना सका; आपकी शुभ मूर्त्ति के दर्शन कर सका। मैं पुण्यवान् हुआ।'

तब राघव का शोक द्विगुण हो उठा। उन्होंने धनुष को फेंक दिया और मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पड़े। सौमित्र की परिचर्या के उपरान्त उनकी चेतना लौटी, तो वे बोले—'हाय, महात्मा जटायु! मेरे कारण आप पर यह विपत्ति आई है।' उन्होंने जटायु के शरीर पर हाथ फेरा, और सारा रक्त स्वयं पोंछा और अपने अनुज को देखकर बोले—'लक्ष्मण, इन्होंने हमारे लिए रावण का सामना करके इस प्रकार युद्ध किया है। ऐसे पुण्यात्मा कहाँ मिल सकते हैं ? इनके स्वर्ग सिधारने के पहले ही तुम इनसे पूछ लो कि रावण की राजधानी को जाने का क्या मार्ग है, उसकी शक्ति आदि कितनी है।' तुरन्त लक्ष्मण ने रघुराम के कार्य में सहायक जटायु से उस सुरवैरी की शक्ति आदि

के संबंध में कई उचित प्रश्न किये । तब जटायु ने कुछ बातें बताईं, किन्तु कंठ से फिर से रक्त बहने के कारण आगे बोल न सके । तब उन्होंने अतुल पुण्यात्मा राम को देखा और मन में उनका सतत स्मरण करते हुए बड़े आनन्द से मोक्ष-मार्ग को सामने देख पुलकित होकर प्राण त्याग दिये । राजकुमार उनकी मृत्यु पर, महाराज दशरथ की मृत्यु से भी अधिक दुःखी हुए और वेद-विधि से उस पक्षिराज का दाह-संस्कार किया ।

२६. कबंध का वध

वहाँ से वे दोनों क्रौंचवन की ओर बढ़े और वहाँ नाना लता, वृक्ष, नग तथा मृग से भरी एक घाटी में से होकर जाने लगे । वहाँ एक स्थान पर 'अयोमुखी' नामक एक राक्षसी को देखा । उसके केश पके हुए थे, दाढ़ें लंबी थीं, उदर विशाल था, मुँह बहुत बड़ा था, आँखें उभरी हुई थीं और कुच घुटनों तक लटक रहे थे । उसकी चेष्टाएँ पागलों की-सी थीं । उसने सुंदर आकार तथा शुभ लक्षणों से समन्वित लक्ष्मण को देखा, तो उनपर आसक्त हो गई और उनका हाथ पकड़कर रति-क्रीड़ा के लिए उनसे आग्रह करने लगी । उन्होंने उस राक्षसी को तलवार की सहायता से वही सुख दिया, जो उन्होंने शूर्पणखा को दिया था ।

इसके पश्चात् उन्होंने दुंदुभि, पटह तथा तूर्य आदि की ध्वनि से भी अधिक ध्वनि अपने आगे सुनी । उसके संबंध में जानने के लिए दोनों राजकुमार आगे बढ़े । वहाँ उन्होंने एक ऐसे राक्षस को देखा, जिसकी बाँहें एक योजन लंबी थीं । वह अपनी बाँहों को फैलाकर उनके बीच फँसनेवाले किसी भी जंतु को पकड़कर तुरंत ही निगल जाता था और डकार लेता था । उसका सिर बहुत छोटा था और उसका पेट ही उसका मुँह था । इस प्रकार का आकारवाला, बहुत से जीव-जंतुओं का नाश करनेवाला, देवताओं को कष्ट पहुँचानेवाला मदांध कबंध नामक राक्षस को देखकर राम-लक्ष्मण आश्चर्यचकित हुए । उसने भी अपने दोनों करों से उन दोनों को पकड़ लिया और अपनी ओर खींचने लगा । उस समय अपने अग्रज को देखकर लक्ष्मण ने कहा—'हे भाई, आप मुझे इस राक्षस का आहार बनाकर सीता के अन्वेषण में चले जाइए और उन्हें प्राप्त करके समस्त संसार का शासन करने के लिए (अयोध्या) लौट जाइए ।'

लक्ष्मण की बातों पर विचार करते हुए राम उस राक्षस के हाथों के साथ थोड़ी दूर गये । उसके पश्चात् राम तथा उनके भाई दोनों ने खूब सोच-विचार करके अपनी म्यानों से खड्ग खींचे और उन तेज खड्गों से उस राक्षस के दोनों हाथ काट डाले ।

राक्षस का सारा गर्व चूर-चूर हो गया । वह धरती पर लोट गया और थोड़ी देर के बाद सँभलकर उसने उन लोगों से पूछा कि आप कौन हैं ? तब लक्ष्मण ने श्रीराम का सारा वृत्तांत कह सुनाया, तो उसे (अपने पूर्व जन्म का) ज्ञान हो आया और वह अपना वृत्तांत सुनाने लगा । (उसने कहा)—"महाराज, मैं दनु नामक स्वर्ग का निवासी हूँ । एक महात्मा मुनि के शाप के कारण मैं ऐसा हो गया हूँ । मैंने ब्रह्मा से कामरूपत्व (इच्छानुसार रूप बदलने की शक्ति) तथा चिरायु प्राप्त की और उस गर्व से ऐसा रूप धारण करके सभी संयमी जनों को दुःख देने लगा । इस सिलसिले में स्थूलशिर नामक

मुनि का अपकार करके मैंने यह भयंकर रूप प्राप्त किया। फिर मेरे प्रार्थना करने पर उस मुनि ने कहा कि आपके द्वारा मेरी शाप-मुक्ति होगी। मैंने उस वचन को स्मरण रखा और इस रूप को धारण करके इन्द्र को युद्ध के लिए न्योता दिया। उसने अपने वज्र के प्रहार से कंठ-सहित मेरे सिर को मेरे पेट में दबा दिया।"

तब रामचंद्र ने उससे पूछा, 'हे अनघ! क्या तुम रावण की शक्ति के बारे में जानते हो?' तब उसने कहा—'मैं तो जानता हूँ, लेकिन मुनींद्र के शाप के कारण मेरा ज्ञान कुंठित हो गया। आप मेरे शरीर को अग्नि में जलाइए, तो उसके पश्चात् मैं सब कुछ आपको सुना सकता हूँ।'

उन्होंने अपने धनुष की सहायता से ही उसके शरीर का अग्नि-संस्कार किया। तब वह देवता का रूप धारण करके आकाश-मार्ग में एक सुन्दर विमान पर बैठे हुए इस प्रकार कहने लगा—"हे रघुराम, हे युद्धप्रवीण, हे करुणानिलय, हे गंभीर, हे काकुत्स्थ-श्रेष्ठ, आपकी करुणा-पूरित दृष्टि के प्रताप से मैंने अपनी पूर्व दशा प्राप्त की है। मैं अब आपसे रावण के संबंध में स्पष्ट रूप से कहूँगा; सुनिए—'रावण कुबेर का भाई है। पुलस्त्य ब्रह्मा का प्रिय पोता है। उसने अपनी तपस्या की महिमा से ब्रह्मा को प्रसन्न करके श्रेष्ठ वरदान तथा औन्नत्य प्राप्त किया है। उसने दिग्विजय किया है। वह दानवों का स्वामी, देवों का शत्रु, दस बड़े शिरोंवाला, बीस भुजाओंवाला, लवण-सागर से परि-वृत, लंकापुर का राजा है। उसने गर्व से रजत-पर्वत को भी उखाड़ दिया था।" इतना कहकर उसने वह मार्ग भी बताया जिससे होकर रावण सीता को ले गया था, उस मार्ग के चिह्न बताये और रास्ते में पड़नेवाली सभी वस्तुओं के नाम बताये। उसने यह भी कहा कि पंपा के आस-पास श्रेष्ठ ज्ञानी मतंग मुनि का आश्रम है, उनकी शिष्या शबरी आपका आदर-सत्कार करेगी। उस स्त्री के निवास के पास यदि आप जायँ, तो सूर्यपुत्र से आपकी मित्रता होगी, जिसकी सहायता से आप जानकी को प्राप्त कर सकेंगे और निदान साम्राज्य का लाभ भी करेंगे। इस प्रकार कहकर वह स्वर्ग चला गया।

२७. राम-लक्ष्मण की शबरी से भेंट

दूसरे दिन मनुवंश-तिलक वहाँ से निकले और पंपा सरोवर के पश्चिम भाग में स्थित तरु-लता-समूह से विलसित, प्रबल पुण्यों का आवास, शबरी के आश्रम-स्थल में पहुँचे। शबरी उनके स्वागतार्थ सामने आई और बड़ी भक्ति के साथ रामचंद्र के चरणों पर गिरकर साष्टांग प्रणाम किया। उसके पश्चात् वह श्रीरामचंद्र की स्तुति यों करने लगी—'हे दशरथ के वरपुत्र, ताड़काविजयी, कौशिक के यज्ञ के रक्षक, मुनियों के ध्येय, ताड़का के पुत्रों को दंड देनेवाले, परम पवित्र गंगानदी के तट पर पैदल चलनेवाले, निर्मल पद-रजवाले, अहल्या के उद्धारक, हर के प्रचंड तथा विशाल कोदंड को भंग करनेवाले, भयंकर भार्गव राम का गर्व तोड़नेवाले, अभिराम नामवाले, पितृ-वचन का पालन करने-वाले, सत्कीर्त्तिवाले, विराध के कुकर्मों को रोकनेवाले, सफल मुनित्राता, सत्यसंपन्न, खर-दूषणादि राक्षसों का शिरच्छेदन करनेवाले, मरणार्थी मारीच का वध करनेवाले, सीता-वियोग-जनित मोह से अभिभूत होनेवाले, खगेन्द्र को मोक्ष प्रदान करनेवाले, महान् विक्रम के

धाम, अति पुण्यप्रद नामवाले, हे रघुराम, मैं आज आपके दर्शन कर सकी । मेरी तपस्या आज सफल हुई । मैंने अद्वितीय पुण्यों को प्राप्त किया । हे काकुत्स्थ, मार्ग के श्रम से आप बहुत क्लांत हुए होंगे; कहीं और न जाकर आज हमारे आश्रम में ठहर जाइए। हे अनघात्म, मैंने अपने गुरु मतंग मुनि के द्वारा आपका वृत्तांत सुना है। आप आदिदेव हैं; सर्वनिगम-वेद्य हैं; अतः, आपकी स्तुति करना असंभव है । यह मतंग मुनींद्र का आश्रम है; तपश्चर्या से परिपूर्ण तथा विश्रामदायक है ।

इस प्रकार (उस आश्रम का) महत्त्व बताकर उसने बड़े प्रेम से वन के कंद, मूल, फल ले आकर उन्हें दिये और राम ने उन फलों को खाया । राम उस रात को वहीं ठहर गये और दूसरे दिन घनी जटा-जूट की कबरी धारण करनेवाली शबरी को देखकर बोले—'सीता की वियोगाग्नि से मैं अत्यंत व्याकुल हूँ; अतः, एक स्थान पर ठहर नहीं पा रहा हूँ; अब मुझे उस उत्फुल्लकमलमुखी सीता को ढूँढ़ने के निमित्त जाना है। आप कृपया मुझे आज्ञा दें ।'

तब शबरी अत्यंत संतुष्ट होकर बोली—'दनु नामक देवता ने आपको भविष्य में करने योग्य सभी विषयों के संबंध में कहा ही है । फिर भी मैं कहूँगी । हे राजन्, आप अवश्य ही रावण का वध करेंगे और सीता को प्राप्त करेंगे । इसमें संदेह करने की कोई आवश्यकता नहीं है । फिर भी आप अकेले मत जाइए । हे भानुकुलाधिप, यहाँ से आप ऋष्यमूक पर्वत के निकट जाइए । उस पर्वत पर तीक्ष्ण बुद्धिवाले, सूर्य-पुत्र सुग्रीव नामक वानर राजा रहता है । वह अपने अग्रज के हाथों अपना राज्य तथा अपनी स्त्री को खो चुका है । वह शोकातुर है । उसकी वानर-सेना अनंत है । इसलिए आप उसका उपकार कीजिए जिससे कि उसके मन में आपके प्रति विश्वास उत्पन्न हो जाय । उसके पश्चात् आप उसके साथ लंका जाइए और अति शक्तिशाली रावण को युद्ध में मारकर अपने बल-विक्रम की ख्याति चारों ओर फैलाते हुए अपनी स्त्री सीता को प्राप्त कीजिए ।

इस प्रकार शबरी ने उन्हें भविष्य में करने योग्य सभी कार्य बतलाकर अपने गुरु के वचनों का स्मरण किया और तुरंत अग्नि प्रज्ज्वलित करके उसमें अपना शरीर भस्म कर देने के लिए तैयार हो गई । उस समय आकाश में इन्द्रादि देवता मणियों के प्रकाश से देदीप्यमान होनेवाले विमानों पर आरूढ होकर इस दृश्य को देखने लगे । नारद, सनक सनंदन आदि प्रमुख मुनींद्र अत्यंत हर्षित हुए । तब शबरी ने परमधाम, परमकल्याण-गुण-संपन्न, पूर्णस्वरूप, अव्यय, अविकार, अखिल अंतरात्मा, अव्यक्त अखिलेश, आघात-रहित, ब्रह्मा से भी स्तुत्य, संसार के रोगों के वैद्य, और रघुकुल-रूपी समुद्र के लिए चंद्र के समान शोभित होनेवाले, रघुराम चन्द्र को अपने मन में प्रतिष्ठित करके, बड़ी भक्ति से उनकी स्तुति की और उस प्रभु के समक्ष ही रामार्पण के रूप में अपने शरीर को अग्नि में भस्म कर दिया । उसके पश्चात् वह देवताओं के लिए मान्य दिव्य विमान पर आरूढ़ होकर देवताओं की विविध सेवाओं को प्राप्त करती हुई बड़े हर्ष से देवलोक को चली गई।

२८. श्रीराम का ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचना

इस प्रकार शबरी अग्नि-मुख के द्वारा स्वर्ग-सुख को प्राप्त हुई । यह देखकर रमणीय

आकारवाले महाबलशाली राम-लक्ष्मण उस स्थान को छोड़कर आगे बढ़े और उस ऋष्यमूक पर्वत के निकट पहुँच गये, जो सतत आलोकमय, तथा श्रेष्ठसंपन्न मुनियों का निवास था ।

उस पर्वत के झरने ऐसे दीख रहे थे, मानों त्रिलोकीनाथ के आगमन के कारण आनंद से उमड़कर, वह पर्वत आनंदाश्रु बहा रहा हो । उस पर्वत की तराइयों में अत्यधिक संख्या में देदीप्यमान चंद्रकांत मणियों की कांति ऐसी दीख रही थी, मानों मेरु, मंदर तथा हिमाचलों का उपहास करनेवाली उस पर्वत की हँसी हो । उस पर्वत की ऊँची चोटियों पर चमकनेवाले नक्षत्र इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे, मानों ब्रह्मा ने इस पृथ्वी के पर्वत-राज्य का अभिषेक करके उसके सिर पर मंत्राक्षत छींट दिये हों ।

उस पर्वत पर उज्ज्वल रूप से दीप्त होनेवाली सूर्यकांत मणियों की दीप्ति ऐसी दीख रही थी, मानों उस पर्वत की शरण में आये हुए सुग्रीव पर अत्याचार करनेवाले वालि पर क्रुद्ध होकर वह अपने प्रताप की अग्नि दिखा रही हो । उस पर्वत पर विचरण करनेवाले दंतों से युक्त मत्त गज ऐसी शोभा दे रहे थे, मानों नील मेघ उस पर्वत पर विचरण करते हुए अपनी बिजलियों को चमका रहे हों । उस पर्वत के शिखर के निकट ही बहनेवाली आकाश-गंगा, (मन्मथवैरी) शिव के जटा-जूटों पर शोभायमान गंगा के समान थी, उसके आस-पास क्रीड़ा करनेवाले हंसों की पंक्ति शिव का शिरोभूषण चंद्र के समान थी। उस पर्वत पर रहनेवाले अत्यधिक शृंग, वृक्ष तथा पल्लव-समूह शिव के बिखरे जटा-जूट के समान सुशोभित थे और वह पर्वत सिद्धों की सेवाएँ प्राप्त करते रहनेवाले शिव के सदृश ही दीख रहा था । उस पर्वत पर रहनेवाले कल्प-वृक्ष, कामधेनुएँ, देव-कन्याएँ, विविध औषधियाँ, चिंतामणि जैसी श्रेष्ठ मणियों का समूह, कभी नष्ट न होनेवाली निधियाँ और संतान-वृक्ष (एक प्रकार का कल्प-वृक्ष) आदि ऐसे दीख रहे थे, मानों इंद्रादि देवता, समुद्र-मंथन से प्राप्त वस्तुओं को (उनके वितरण के समय इंद्रादि देवताओं के बीच झगड़ा उत्पन्न होने के कारण लाकर यहाँ पर रख दिया हो) ; या अमृत-पान से बेसुध होकर भूल से यहीं छोड़ दिया हो; या योग्य स्थान होने के कारण उन्हें यहाँ छिपा रखा हो ।

इस पर्वत को देखकर राघव अत्यंत विस्मित हुए और उसकी प्रशंसा करने लगे । अपने अनुज की अकलंक भक्ति-युक्त सेवा प्राप्त करते हुए वे उस शैल के निकटवर्त्ती पंपा सरोवर के पास पहुँचे और उस सरोवर में नियमानुसार स्नान किया । उसके पश्चात् वे उस सरोवर के चारों ओर की शोभा का अवलोकन करके अत्यंत मुग्ध-से हो गये । अपनी क्लान्ति मिटाने के निमित्त वे एक आम के वृक्ष की छाया में बैठे, तो लक्ष्मण उनका शीतलोपचार करने में प्रवृत्त हुए ।

कुछ समय के पश्चात् राघव ने उस आम के वृक्ष को ध्यान से देखा और लक्ष्मण से बोले—'हे अनुज, जबसे हमने बन के लिए प्रस्थान किया, तबसे कितने ही ऊँचे पर्वत और पुण्य नदियाँ देखीं, किन्तु हमने इस वृक्ष के जोड़ का वृक्ष कहीं नहीं देखा । कदाचित् सुरपति आदि देवताओं ने मिलकर इस वृक्ष का निर्माण किया हो; ब्रह्मा ने स्वयं प्राण देकर इसे यहाँ पर प्रतिष्ठित किया हो, या रविसुत (सुग्रीव) की तपस्या से संतुष्ट होकर ब्रह्मा ने इस वृक्ष को यहाँ उत्पन्न किया हो, या अमृत को प्राप्त करने के बाद सुरों ने सूर्य-

पुत्र का पक्ष लेकर अमृत से सींचकर इस वृक्ष को वर्द्धित किया हो । सूर्य के साथ प्रेम बढ़ाने के निमित्त इस वृक्ष ने आठों दिशाओं में अपनी उन्नत शाखाओं को फैलाया है । इच्छित फल प्रदान करने के निमित्त मानों इसने अपनी शाखाओं की कांति चारों ओर फैला रखी है । यह अपने पत्तों को फैलाकर, उसकी कान्ति को विकीर्ण करते हुए, सूर्य की रश्मि भी नीचे आने नहीं देता; रात्रि के समय यह शशि के प्रेम से अनुरक्त हो उनकी चाँदनी को पृथ्वी पर पड़ने नहीं देता । इसके फल अमृत-फलों की अपेक्षा सौगुने अधिक स्वादिष्ट हैं। ऐसा लगता है कि देवताओं ने इस पृथ्वी के वृक्षों के राजा के रूप में इसका अभिषेक कर दिया है ।

लक्ष्मण ने अपने अग्रज के चित्त का भाव जानकर उनके कथन का अनुमोदन किया और उनके लिए पत्रों की मृदु शय्या का प्रबंध किया । तब राम ने उस शय्या पर शयन किया, तो लक्ष्मण रघुराम के चरण दबाने लगे । इस प्रकार अत्यंत शोभा-समन्वित हो उनके वहाँ रहते हुए कुछ समय व्यतीत हुआ। तब अनघ रघुराम को संबोधित करके लक्ष्मण ऊँचे स्वर में बोले—'हे देव, अभी-अभी छिपकली की बोली मुझे सुनाई पड़ी है कि आप युद्ध में शत्रु-सेना को जीतकर अवश्य अपनी देवी को प्राप्त करेंगे । सर्वत्र आपकी विजय ही होगी ।'

तब राम ने कहा—'अब वानरेश्वर बड़ी श्रद्धा के साथ यहाँ आकर हम से मिलेगा और हम शीघ्र ही लंका जायेंगे । युद्ध में रावण मरेगा और सीता हमें मिल जायगी और उसके पश्चात् मैं राज्य-भार ग्रहण करूँगा ।' इस प्रकार राम के कहने के पश्चात् राम तथा लक्ष्मण बड़ी प्रसन्नता से वहाँ रहने लगे ।

आंध्र-भाषा के सम्राट्, श्रेष्ठ काव्य तथा आगम आदि के ज्ञाता, आचारवान्, अपार धैर्य-सागर, भूलोक-निधि गोन बुद्ध राजा ने अपने पिता महनीय गुणसंपन्न, मेरु पर्वत के समान धीर, विट्ठल राजा के नाम पर, आचंद्रार्क पृथ्वी पर स्थायी रहनेवाली, असमान तथा ललित शब्द तथा अर्थों से विलसित रामायण के, अलंकार तथा भावों से भरे अरण्य-काण्ड की रचना इस प्रकार की कि वह इस पृथ्वी पर आचंद्रार्क लोगों की प्रशंसा प्राप्त करती रहे । रसिकजनों को सतत आनंद देनेवाले, श्रेष्ठ, आर्ष, आदि काव्य-रूपी इस पुण्य चरित को जो पढ़ेंगे, या सुनेंगे, उन्हें सामादि वेद-समूहों का आधार, रामनाम-रूपी चिंता-मणि, नव-भोग, परहित-बुद्धि, उन्नत विचार, परिपूर्ण शक्ति, राज्य-सुख, निर्मल कीर्त्ति, नित्य सुख, धर्म में निष्ठा, दान में आसक्ति, चिरायु, आरोग्य तथा ऐश्वर्य सतत संप्राप्त होंगे । इसे सुनते रहने से पाप-क्षय, पुत्र-प्राप्ति, शत्रुओं का नाश, धन-धान्य की समृद्धि, विघ्न-बाधारहित सुन्दर स्त्रियों के साथ जीवन और पुत्रों के साथ सहजीवन सिद्ध होंगे । सब विपत्तियाँ दूर होंगी, बंधु-बांधवों का सहवास रहेगा; अभिलषित वस्तुओं का वियोग न होगा; (घरों में) देवता-तर्पण तथा पितरों की तृप्ति होती रहेगी । इस पुण्य चरित के लिखनेवालों को श्रेष्ठ तथा शुभ उन्नति तथा इंद्रलोक का निवास प्राप्त होगा । जब-तक कुलपर्वत, नक्षत्र, रवि तथा चंद्र, दिशाएँ, वेद, पृथ्वी तथा समस्त लोक स्थित रहेंगे, तबतक यह कथा अक्षय आनंद-समूह का आधार रहेगी ।

: अरण्यकांड समाप्त :

श्रीरंगनाथ रामायण

(किष्किंधाकांड)

१. पंपासर-दर्शन

श्रीराम ने तब शीतल जल तथा कमल, उत्पल एवं कुमुदों से सुशोभित पंपा सरोवर को और उसके तटवर्त्ती, वसंत ऋतु के कारण, फूल और फल के भार से युक्त चंपक तथा सहकार वृक्षों की शोभा को देखकर जानकी के विरह से कंपित होते हुए लक्ष्मण से कहा—"हे सौमित्र, यह पंपा सरोवर इतना मनोहर है कि यह देवताओं की कामिनियों के लिए भी जल-क्रीड़ा करने की इच्छा करने योग्य है। इस सरोवर की समता करनेवाला कोई दूसरा सरोवर बताना, क्या शेषनाग के लिए भी संभव हो सकता है? इसका महत्त्व जानने के पश्चात् क्या मानसरोवर भी तुच्छ नहीं प्रतीत होगा? पवित्र जीवन का आधार इस सरोवर की समता, क्या स्वर्गलोक का कोई भी जलाशय कर सकता है? (जल के) बाहर निकले हुए मृणालों के ऊपर दीखनेवाली कर्णिकाओं पर (बीजकोष) विकसित श्वेत कमल, मरकत के स्तंभों पर स्थित स्वर्ण-कलशों पर आधारित छत्रों की भाँति दीखते हैं। दोनों पार्श्वभागों में भ्रमरों के पंखों से उत्पन्न शीतल वायु के कारण तरंगायमान होनेवाली लहरों पर डोलनेवाले राजहंसों के फैलाये हुए पंख चामरों की भाँति सुशोभित हैं। इनके कारण यह सरोवर शोभा-रूपी साम्राज्य के लिए अभिषिक्त सा अत्यंत मनोहर दीख रहा है। वसंतकाल के समान यौवन की कांति से परिपूर्ण हो, छोटे-छोटे पल्लव-रूपी

माणिक्य के आभूषण पहने हुए ये पेड़ों की फैली हुई शाखाएँ इस स्निग्ध सरोवर रूपी दर्पण में उझक-उझककर (अपना मुंह) देख रही हैं। उनकी शिखाएँ मंद पवन में इस तरह हिल रही हैं, मानों वे अपने सौंदर्य को देखकर प्रसन्नता से अपना सिर हिला रही हैं। यहाँ की शुक-सारिकाएँ इस प्रकार बोल रही हैं, मानों एक दूसरे की प्रशंसा कर रही है। इस सरोवर के तीर की वन-स्थली को देखकर मेरा संताप, मन्मथ के प्रताप के समान, उद्दीप्त हो उठा है। मेरी धृति भी नष्ट हो गई है।

"हे सौमित्र, विचार करने पर ऐसा लगता है कि यह वन-भूमि नहीं है, बल्कि कामदेव का शस्त्रागार है; वे आम्र-पल्लव नहीं हैं, बल्कि मन्मथ के तेज खड्ग हैं; यह भ्रमरों का गुंजार नहीं है, बल्कि निकट पहुँचनेवाले मन्मथ के धनुष्टंकार है; वे फूलों के गुच्छ नहीं हैं, बल्कि मन्मथ के तीक्ष्ण बाण हैं; यह कोयल की मीठी बोली नहीं हैं, बल्कि उसके (कामदेव के) कर्णकटु हुंकार हैं। मेरे जैसे स्त्री-विरही इस कानन में कैसे रात्रि बितायेंगे? इस वन में सुनाई पड़नेवाला कोयल का कल-कूजन वर्षा ऋतु के बादलों के घोर गर्जन के समान लगता है; वृक्षों से गिरनेवाले पुष्प-रज का प्रकाश, नये बादलों की बिजली के समान लगता है; पल्लव-युक्त शाखाएँ इन्द्र-धनुष के समान लगती हैं; पृथ्वी पर गिरनेवाले फूल ओले के समान लगते हैं; सतत झरनेवाला मकरंद वर्षा के समान दीखता है। (इन कारणों से) यह वसंत ऋतु भी वर्षा ऋतु के समान दिखाई पड़ती है। इस पर भी पल्लव-रूपी अग्नि-ज्वालाओं से, भ्रमर रूपी धुएँ से, वकुल के पुष्परज-रूपी राख से, सेमर के फूल-रूपी अंगारों से प्रकट होकर, यह ऋतु विरहियों के लिए अग्नि के समान दीखती है और मन्मथ के प्रताप की अग्नि का भी तिरस्कार करती हुई, मेरे मन को जला रही है। हाय! अब मैं क्या करूँ? कैसे मैं इसे सहन करूँ? कामिनी-कुल-भूषणा सीता को मैं कब देखूंगा? क्या कभी मैं सीता के साथ उस प्रकार मिलकर रह सकूंगा, जैसे पंपा सरोवर के तटवर्त्ती वन की शोभा के साथ वसंत रहता है। इस पंपा के कमलों के समान दीखनेवाले सीता के मुख का मैं कब अवलोकन कर सकूँगा? यहाँ की मछलियों की आँखों के समान उस इंदुवदनी की आँखें मैं कब देख सकूँगा? भ्रमर यहाँ के पद्मों का मकरंद जैसे पान करते हैं, वैसे ही मैं कब उस सुंदरी का अधर-पान करूँगा? यहाँ के जलपक्षी जैसे जोड़ों में रहते हैं, वैसे ही उस कमलाक्षी के संग मैं कब रह सकूँगा? हाय, यह कैसा विचार है! अब वह सीता कहाँ? कहाँ यह विरह? इन दोनों का मेल कैसे संभव है? हे अनुज, अब तुम अयोध्या लौट जाओ। मैं अब अपने प्राणों को रख नहीं सकूँगा।",

इस प्रकार अनाथ की तरह शोक करनेवाले राम को देखकर लक्ष्मण बोले—'हे रघुराम, आप समस्त लोकों का सामना करने की क्षमता रखनेवाले पुरुषोत्तम हैं। ऐसे मोहजन्य शोक से आप क्यों पीड़ित हो रहे हैं? सीता को छल से ले जानेवाले रावण के संहार का उपक्रम कीजिए।' तभी भासंत नामक पक्षी (शकुन-पक्षी) बोल उठा।

इतने में उस ऋष्यमूक पर्वत की तराइयों में विचरण करते हुए सुग्रीव ने निकट ही राम तथा लक्ष्मण को देखा। वह अत्यधिक भयभीत होकर, चीत्कार करते हुए, अपने

मार्ग में पड़नेवाले झाड़-झंखाड़ की परवाह किये बिना अंधाधुंध पर्वत पर चढ़ने लगा। उसने वानरों को एकांत में बुलाकर उन्हें राम और लक्ष्मण को दिखाते हुए कहा-- 'वह देखो, पंपा के पास दो व्यक्ति धनुष धारण किये हुए, विविध शस्त्रास्त्रों से सज्जित होकर ठहरे हुए हैं। ये प्रच्छन्न वेशधारी, वालि के भेजने पर, हमारा संहार करने आये हैं। अन्यथा, मुनियों को खड्ग, तूणीर, धनुष-बाण आदि की क्या आवश्यकता है? इनके पवित्र मुनिवेश देखकर मेरा चित्त व्याकुल हो रहा है। अब हमें यहाँ से कहीं चला जाना चाहिए; यहाँ रहना उचित नहीं है।'

जब सुग्रीव ने मंत्रियों से इस प्रकार के वचन कहे, तब उसे सुनकर विमल विचारों से भरे हनुमान् बोले--'इन्हें देखने पर ऐसा लगता है कि ये कोई पुण्यात्मा हैं, ये कपट-वेशधारी नहीं हैं। रवि-चंद्र के समान दीखनेवाले, ये दयालु व्यक्ति ही हैं। पता नहीं कि इस रूप में वे यहाँ क्यों आकर रहते हैं? उनका महत्त्व जाने बिना हमें भयभीत होने की क्या आवश्यकता है?' तब सुग्रीव ने हनुमान् से कहा--'हमें शंका होती है कि ये वालि के भेजने पर यहाँ आये हैं, पता नहीं कि क्रोध से भरा हुआ वालि हमें कब कैसी हानि पहुँचायेगा। हमें कभी अपने शत्रु का विश्वास नहीं करना चाहिए। अतः हे पवन-पुत्र, तुम किसी कौशल से उनसे जाकर मिलो और इस बात का पता लगाओ कि ये क्यों आये हैं। उनके मन की बात जानकर मेरे मन के भय का निवारण करो। शीघ्र जाओ।'

२. हनुमान् की राम से भेंट

इस प्रकार हनुमान् को विदा करके सुग्रीव अपने मंत्रियों के साथ वहाँ रहने से डरकर मलयाद्रि पर चला गया। तब अत्यंत शूर, उत्तम गुणवान्, शीलवान्, बाहुबली, तेजस्वी, कमनीय रूपवाले, वानरों के रक्षक, धर्मार्थमोक्ष के इच्छुक, अतुल गुरु-भक्त, अत्यंत कुशल, तथा कीर्तिवान्, अंजन-सुत हनुमान् उस पर्वत से धीरे-धीरे ऐसे उतरा, मानों वालि को अमरलोक भेजकर सुग्रीव को राज्य पर प्रतिष्ठित करने, सुरों की रक्षा करने, रावण की विजय-लक्ष्मी राम को देने, सीता के दुःख को दूर करने तथा रवि-पुत्र (सुग्रीव) के चित्त को मोद-मग्न करने के लिए जा रहा हो। इस प्रकार वह वानरेश्वर पर्वत से उतरकर आया और वटु का वेश धारण करके पंपा सरोवर के निकट पहुँचा। महात्माओं के दर्शनार्थ जाते हुए रिक्त हस्तों से जाना उचित नहीं है, इसलिए राम के देने योग्य एक फल हाथ में लिये हुए, वह उनके निकट जाने लगा। इस प्रकार आते हुए अनिल-कुमार को देखकर राम अपने अनुज से बोले--'हे लक्ष्मण, सुनहला रंग, मुंज की सुंदर करधनी, रत्न-कुंडलों से विलसित कर्ण, श्रेष्ठ हार, यज्ञोपवीत, कौपीन, तथा हस्त-कंकण धारण किये हुए किसी मनुष्य ने क्या अनुपम कपि का रूप धारण किया है? इस रूप को धारण करने की इच्छा से स्वयं रुद्र ने इस रूप में जन्म तो नहीं लिया है? अन्यथा इस पृथ्वी पर कपिमात्र को ऐसी प्रभा कैसे प्राप्त हो सकती है?'

इस प्रकार प्रशंसा करनेवाले राजकुमार को देखकर पुलकित गात्र से हनुमान् उनके निकट पहुँचा और बड़ी प्रीति के साथ फल उनको भेंट किया, मानों कह रहा हो कि मैं साध्वी सीता का शिरोरत्न आप को शीघ्र ही ला दूँगा। इसके पश्चात् वह बोला--'हे प्रभो,

आप ही शरण हैं । आपकी दृष्टि ने मेरा स्पर्श किया । मैं विभूषित हुआ । मैं कृतार्थ हुआ । धन्य हुआ । मैं आपका प्रिय सेवक हूँ । मेरा नाम हनुमान् है; मैं वायु-पुत्र हूँ, और सूर्य-पुत्र का मंत्री हूँ । अंजना-सुत हूँ । मैं भय तजकर भिक्षुक के रूप में आपके विषय में जानने के लिए आपके पास आया हूँ । आप सुनिए। यशस्वी सुग्रीव वानरों के राजा हैं। और परम बलवान् हैं । वे सूर्य-पुत्र हैं और सूर्य-सम तेजस्वी हैं; वे अभिमानी तथा असमान पराक्रमी हैं । अपने भाई वालि के द्वारा अपना सारा राज्य खोकर, अत्यंत व्याकुल हो, वे इस पर्वत पर रहते हैं । वे दुःखी हैं और आपके सखा बनकर रहने योग्य हैं ।'

इस प्रकार कहकर उसने हाथ जोड़कर राम-लक्ष्मण को प्रणाम किया और बड़ी भक्ति के साथ आगे कहा—'हे महात्माओ ! इस पृथ्वी के इन्द्र तथा उपेन्द्र के समान, अश्विनीकुमारों के समान, रवि-चंद्रों के समान मनोहर रूप, उन्नत स्कंध, चंद्र के समान मंद हास से युक्त मुख, कमल-दलों को भी परास्त करनेवाले नेत्र, स्वर्ग के निवासियों की भी प्रशंसा प्राप्त करने योग्य बाहुबलवाले, दुर्लभ राजचिह्नों से सुशोभित, धनुष धारण करनेवाले, आपने यह मुनिवेश क्यों धारण किया है ? आप कौन हैं ? यहाँ क्यों आये हैं ?'

इस प्रकार के सुधा-मधुर वाक्यों से अत्यंत नम्र होकर जब हनुमान् ने उनसे प्रश्न किया, तब राम उसकी वाक्-पटुता, बुद्धि-चातुरी, आकृति, मन की प्रीति तथा नीति से प्रसन्न होकर अपने भाई से बोले—'हे लक्ष्मण, ऐसे वचन कहना ब्रह्मा के लिए या उनकी पत्नी के लिए ही संभव है, अन्यों के लिए नहीं । कदाचित् यह (वानर) व्याकरण, निगम, शास्त्रादि का ज्ञाता है । इसके संभाषण तथा रूप अतुल शुभ लक्षणों से समन्वित है । ऐसा दूत यदि हमें मिल जाय, तो हमारे सभी कार्य सफल होने में कोई संदेह नहीं रहेगा । इसलिए तुम इसे मेरे सभी कार्यों का विवरण क्रमशः सुना दो ।'

तब रामानुज ने अत्यंत प्रसन्न होकर हनुमान् को संबोधित करके कहा—'हे अनघ, हम इक्ष्वाकु-वंश में उत्पन्न दोनों भाई हैं । ये मेरे भाई राम हैं और मैं लक्ष्मण हूँ । हम दोनों महाराज दशरथ के पुत्र हैं । राजा दशरथ की आज्ञा से तपस्वियों का-सा जीवन व्यतीत कर रहे हैं । दुर्मति रावण हमें धोखा देकर राम की स्त्री, भूमिसुता को ले गया है। उसके मार्ग का अन्वेषण करते हुए हम वन में फिर रहे थे तो एक स्थान पर शबरी ने हमें सुग्रीव का समाचार सुनाया था । वह महाबली हमारा मित्र बन जाय, ऐसी कामना करके हम यहाँ आये हैं । अब तुम हमें स्पष्ट रूप से बताओ कि तुम कौन हो और तुम्हारा क्या परिचय है ?'

३. हनुमान् का अपने जन्म का वृत्तांत सुनाना

तब हनुमान् ने उन रघुवंशियों को प्रणाम करके निवेदन किया—"हे महात्माओ, अपनी प्रिय माता के गर्भ से जन्म लेने के कुछ वर्षों के पश्चात् मैंने किसी उद्देश्य से ब्रह्मा की तपस्या की थी । तब मेरी तपस्या से प्रसन्न होकर सरसिजभव ने मुझे दर्शन दिये और बोले—'कोई इच्छा हो तो कहो ।' तब मैंने उनकी परिक्रमा करके उन्हें प्रणाम किया, सहस्रों प्रकार से उनकी स्तुति की और फिर कहा—'हे विमलात्मा, इस पृथ्वी पर मेरे मोक्ष तथा इच्छित कार्यों की सिद्धि का आधार तथा मेरा आराध्य कौन है ? मैं किसकी

प्रार्थना तथा सेवा करूँ ?' तब कमलसंभव ने अपने मन में विचार करके कहा—'जो तुम्हारे शरीर के आभूषणों को देख सकेगा, वही तुम्हारा स्वामी और प्रभु होगा । (भाव यह है कि हनुमान् के आभूषण दूसरों के लिए अदृश्य थे।) वही हम सब के इष्टदेव, समस्त प्राणियों तथा इस संसार के कर्त्ता हैं; वे ही विष्णु हैं । जान लो, वे ही तुम्हारे त्राता तथा प्रभु हैं ।'

'इस प्रकार आदेश देकर ब्रह्मा चले गये । तब से मैं समस्त लोक में विचरण करता रहता हूँ । हे राजन् ! मेरे आभूषणों की दीप्ति स्वर्ग के निवासी भी नहीं देख सकते ।'

तब सौमित्र ने मारुति को देखकर कहा—'हे अनघ, सुनो, राघव की शक्ति लोक-विख्यात है । वे अनुपम दिव्यास्त्र के ज्ञाता तथा अतुल साहसी हैं; वे करुणा के समुद्र हैं और गंभीर प्रकृति के हैं; वे शरणागत-त्राता तथा सद्धर्म में तत्पर हैं । वे जगन्नाथ हैं, अशरणशरण हैं, अगणित गुणों से विभूषित हैं; तेजस्वी, दिव्य पराक्रमी तथा सत्यवादी हैं । ऐसे महान् व्यक्ति का सेवक तथा हितेच्छु होकर मैं रहता हूँ । राघव के लिए कोई कार्य असाध्य नहीं है । कुटिल राक्षस का पता लगाकर हम स्वयं सीता को ला सकते हैं ; किन्तु परिश्रम उठाकर अकेले जाना उचित नहीं है और वह राजनीति भी नहीं है । इसलिए मेरे प्रभु का विचार है कि तुम्हारे सुग्रीव को अपना मित्र बनाया जाय । अब तुम इस कार्य को किसी तरह संपन्न करो ।'

तब पवन-पुत्र ने अत्यंत प्रसन्न होकर अपना निज रूप दिखाया । राम-लक्ष्मण ने उसे अपनाया; इससे उसने अपने को कृतार्थ समझा । तब उसने अपनी आँखों में आनंदाश्रु भरकर उनकी अत्यधिक स्तुति की । तत्पश्चात् राम और लक्ष्मण ने अत्यंत हर्ष से अनिल-कुमार को विदा किया । हनुमान् अत्यधिक आनंद तथा उत्साह से सुग्रीव के पास पहुँचा और उसे रघुवंश के राजकुमारों का वृत्तांत इस प्रकार कहने लगा—'हे सुग्रीव, रमणीय रूपवाले राम-लक्ष्मण, महनीय गुणों से अलंकृत होते हुए इस जगत् में विद्यमान हैं । शोक-सागर में निमग्न होनेवाले तुम्हें, रघुराम एक नौका के रूप में मिल गये हैं । हे सुग्रीव, अब तुम सुरक्षित हो गये । तुम्हारा प्रतिशोध पूर्ण होगा । तुम्हें पूर्ण संतोष होगा । मैं तुम्हारे पुण्य की प्रशंसा कैसे करूँ ? सच्चरित्रवान्, दयामूर्त्ति, सत्यवादी, आजानुबाहु, महा-विष्णु, श्रीनिवास और पुण्यनिधि, दशरथात्मज राम ही तुम्हारे प्रभु हैं । वे महात्मा जब अपने पिता की आज्ञा से दंडकवन में रहते थे, तब दशानन उनकी पत्नी को चुराकर ले गया । उससे युद्ध करके उसका संहार करने के उद्देश्य से वे तुमसे मित्रता करने यहाँ आये हैं ।

इन बातों को सुनकर सुग्रीव हर्षित हुआ । उसने अनिलकुमार को देखकर कहा—'हे पवनसुत, मेरा सारा भय दूर हो गया । मेरी तपस्या सफल हुई । तुम्हारे जैसे अंजन के प्राप्त होने से मैं राघव-रूपी निधि को देख सका । तुम्हारे जैसे कर्णधार के रहने से मैं इस शोक-सागर को पार करने में समर्थ हुआ । तुम उन्हें ऋष्यमूक पर्वत पर लिवा लाओ और मेरे मन का संताप दूर करो । अब तुम जाओ ।'

वायु-पुत्र तुरंत रघुराम के पास गया और प्रणाम करके उनसे निवेदन किया—'हे देव, श्रीमान् का मित्र सुग्रीव, आपके दर्शनों का अभिलाषी है, अतः आप पधारें ।' राम

मन-ही-मन हर्षित हुए और हनुमान् की प्रशंसा करने लगे । तत्पश्चात् एक पुण्य मुहूर्त्त म अपने अनुज के साथ वे हनुमान् के कंधों पर बैठकर ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचकर अत्यंत हर्षित हुए । हनुमान ने उन्हें किसी निर्जन स्थान में ठहरा दिया और मलयाद्रि पर पहुँचकर, श्रीराम के दर्शनों के लिए उत्कंठित सुग्रीव को देखकर कहा—'हे देव, तुम्हारी इच्छा पूर्ण हुई । राम और लक्ष्मण ऋष्यमूक पर आ गये । तुम अब चलो । तब सूर्यपुत्र ने आनंद से फूलकर मनुष्य-रूप धारण किया । मुकुट, केयूर आदि आभूषणों से सुसज्जित होकर अपने मंत्रियों के साथ शीघ्र ही ऋष्यमूक पर जा पहुँचा । वह बड़ी भक्ति के साथ राम के सामने पहुँचा और साष्टांग प्रणाम करके संतुष्ट होकर, हाथ जोड़कर उनके सम्मुख खड़ा रहा ।

तब राम ने सुग्रीव को गले से लगाया और मंद हास की अमृत-वृष्टि करते हुए वे सुग्रीव से बोले—'हे सूर्यपुत्र, मैं वायु-पुत्र के मुख से तुम्हारे पराक्रम, बाहुबल आदि को सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुआ । अब तुम भयभीत मत होओ । तुम पर आक्रमण करनेवाले तुम्हारे शत्रु का संहार मैं करूँगा । अब तुम्हारे सिवा मेरा आप्तबंधु और विश्वास-पात्र मित्र दूसरा कौन है ?'

इस प्रकार सांत्वना देने पर सूर्यनंदन ने कहा—'हे देव, आपने मुझे अपना प्रिय सेवक स्वीकार किया है; आपकी करुणापूर्ण दृष्टिमात्र से मैं धन्य हुआ । हे सूर्य-कुल-नाथ, मेरे जैसा सेवक आपको मिल गया है, अब आप निश्चय जानिए कि आपने रावण का वध करके सीता को प्राप्त कर लिया । तब राम तथा सुग्रीव अग्नि के समक्ष परस्पर (एक दूसरे की सहायता करने का) वचन देकर संतुष्ट हुए ।

उस समय अंगद ने, जो क्रीड़ा करने योग्य आयु का था, और जो विनोदार्थ वहीं पर विचरण करते हुए खेल रहा था, राम तथा सुग्रीव के अग्नि-समक्ष दिये हुए वचनों को सुन लिया । उसने घर जाकर अपनी माता तारा से सभी बातें कह सुनाईं । वह मन-ही-मन अत्यंत दुःखी होती हुई कितनी ही दुःशंकाओं से पीड़ित हो उठी ।

४. सुग्रीव का सीता के आभूषणों को देना

तब वायुपुत्र ने एक विशाल वृक्ष की शाखा को तोड़कर, सुग्रीव तथा राघव के लिए एक आसन बनाया । उस पर बैठकर वे दोनों वार्त्तालाप करने लगे । कुछ समय के पश्चात् सूर्यपुत्र दोनों राजकुमारों को गुफा के भीतर ले गया और बड़े प्रेम से उन सभी आभूषणों को लाकर दिखाया, जिन्हें सीता ने फेंका था । उसने कहा—'हे देव, जिस समय राक्षस दण्डकवन में आपको धोखा देकर, आपकी देवी को आकाश-मार्ग से उठाकर लिये जा रहा था, उन्होंने (सीता ने) हमें इस पहाड़ पर देखकर, ऊँचे स्वर में आपका नाम लेकर पुकारा और अपने झीने अंचल का एक भाग फाड़कर इन आभूषणों को बाँधा और उन्हें यहाँ गिरा दिया ।'

इतना कहते ही राम शोक-सागर में डूब गये और अश्रुधारा बहाकर उन आभूषणों का सारा मैल धो दिया । उन्होंने उन आभरणों को अपने वक्ष पर जहाँ-तहाँ रखकर देखा। सीता का स्मरण आते ही उनक सभी अंग शिथिल-से हो गये । उन्होंने लड़खड़ाते हुए

स्वर में लक्ष्मण को बुलाकर कहा--'लक्ष्मण, देखा तुमने ? सीता के सभी शृंगार इस प्रकार मिट्टी में मिल गये हैं । भला, आभूषणों को गिरा देने का क्या अर्थ है ? इनको साथ रखने में उसे क्या कष्ट होता ? सीता तो मेरी प्राणेश्वरी है । हाय, इस अंचल की दशा को तो देखो ! जो झीना अंचल उसके सुडौल कुचों पर सतत रहता था, उसकी ऐसी दशा हुई ! मेरे चरणों को गुलाबजल से धोकर, उन्हें इसी से वह पोंछती थी । इसे विजन बनाकर, अत्यंत सुंदर ढंग से मेरे श्रम-बिंदुओं को सुखा देती थी । अपनी प्रभा-समन्वित तनुलता की कांति बिखेरती हुई वह इसी के पाँवड़े बिछा देती थी ।' इस प्रकार शोक करते हुए राम अश्रु बहाने तथा बार-बार मूच्छित होने लगे । फिर सँभलकर भक्ति के साथ सिर झुकाये खड़े सुग्रीव को देखकर रघुनाथ बोले--'हे सुग्रीव, बतलाओ कि मेरी देवी को लेकर आनेवाला वह इन्द्र का शत्रु किस देश में रहता है ? उसका नगर कौन-सा है ? मैं अभी उस राक्षस का संहार करके सीता को छुड़ा लाऊँगा ।'

यह सुनकर सुग्रीव बोला—'हे देव, मैं उस द्रोही का निवास नहीं जानता । फिर भी कोई चिंता नहीं । अब मैं सब बातें जानने का प्रयत्न करूँगा । आप शोक त्यागकर धैर्य धारण कीजिए । अत्यंत पराक्रमी वालि के द्वारा अपनी पत्नी के हरे जाने पर भी मैं इतना दुःखी नहीं हूँ । हे देव, विपत्ति-रूपी सागर को आत्मधैर्य-रूपी नौका से ही पार किया जा सकता है । हे प्रभो, हम जैसे साधारण मानवों की तरह आप भी शोक करें, यह कहाँ उचित है ?'

सुग्रीव के आप्त वचन सुनकर रघुवीर धैर्य धारण करते हुए सोचने लगे—'सीता के खो जाने का ढंग जानने के पश्चात् मन-ही-मन दुःखी होते रहना शूरता नहीं है । यों सोचकर उन्होंने संताप त्याग कर सीता को किसी भी प्रकार प्राप्त करने के कार्य में प्रवृत्त होने का निश्चय किया । किन्तु उसके पूर्व उन्होंने सुग्रीव के शत्रु का अंत करने का निश्चय किया । सीता के आभूषण लक्ष्मण को सौंपकर वे सुग्रीव को देखकर बोले--'हे मित्र, विद्वानों का कहना है कि विपत्ति के समय मित्र के समान कोई सहायक नहीं होते । चाहे मित्र गुणवान् हो, या गुणहीन, विपत्ति के समय वही सहायक होता है । तुम्हारी मित्रता प्राप्त करके मुझे किसी भी वस्तु के अभाव की चिंता नहीं रही, यह तो निश्चित है । अब मैं उस पापी वालि का वध करूँगा, जो तुम्हारी स्त्री का अपहरण करके तुम्हारा वध करना चाहता है । भाइयों में स्नेह का भाव हो, तो उससे श्रेष्ठ सुख और कुछ नहीं है । किन्तु ऐसा स्नेह तुम में क्यों नहीं रह पाया ? तुम्हारे और तुम्हारे अग्रज में शत्रुता क्यों हुई ? इसका वृत्तांत मुझे सुनाओ ।'

तब सुग्रीव ने कहा--'हे राम, मैं अपने और वालि की शत्रुता का वृत्तांत सुनाता हूँ, सुनिए । (समुद्र-मंथन के समय) मंद्राचल को मथानी बनाकर, वासुकि को नेती बनाकर जब देवताओं ने हमारे बाहुबल को जानकर हमसे प्रार्थना की, तब मैं और वालि, दोनों मंथन के लिए एक ओर खड़े हो गये और दूसरी ओर देवता, गरुड़, उरग, असुर, सिद्ध आदि थे । इस प्रकार जब हम क्षीरसागर का मंथन करने लगे, तब उसमें से हलाहल निकलकर समस्त लोक को जलाने लगा, तो महादेव ने सबको आश्चर्यचकित करते हुए

उसे पी गये । उसके पश्चात् उसमें से ज्योष्टा देवी का जन्म हुआ, तो उसे कलि महाराज ने बड़े प्रेम से अपनाया । इसके उपरान्त कितनी ही वस्तुएं उसमें से उत्पन्न हुई । सब ने अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार उन वस्तुओं को बड़े हर्ष से ग्रहण किया । आगे चलकर ऐरावत, मेष, महिष, मकर, करेणु (हथिनी), हय, वृषभ आदि उस सागर से उत्पन्न हुए, तो इन्द्रादि दिक्पालों ने बड़े हर्ष से उन्हें अपने-अपने वाहनों के रूप में ग्रहण किया । महनीय सौभाग्यवती तथा महिमामयी लक्ष्मी का जब जन्म हुआ, तब लक्ष्मीनारायण ने उन पर आसक्त होकर अपनी पत्नी के रूप में उन्हें ग्रहण किया । तत्पश्चात् चंद्र तथा देव-कामिनियों का जन्म हुआ । देवताओं ने उन सुंदरियों में से 'तारा' नामक सुंदरी को हमें दिया, तो हमने उसे ग्रहण किया । उसके उपरान्त हमारे मथने पर अमृत का जन्म हुआ । देवताओं ने बड़ प्रेम से उस सुधारस को कामधेनु और कल्पवृक्ष के साथ चंद्र को भी लेकर अपने निवास-स्थानों में चले गये । हम भी वहाँ से विदा हुए ।

हम अपने निवास को लौटकर बड़े आनन्दपूर्वक उस सुंदरी के साथ रहने लगे । कुछ दिनों के पश्चात् सुषेण की प्रिय पुत्री रुमा के साथ विवाह करके बड़े उत्साह से मैं जीवन व्यतीत करने लगा । मेरे पिता तथा अन्य मंत्रियों ने ज्यष्ठ पुत्र होने के कारण वालि को वानर-राज्य का अधिपति बना दिया । वालि भी मेरा बड़ा आदर करते हुए, राज्य करने लगा और मैं भी उसका सेवक बनकर उसे पिता के समान मानते हुए दिन-रात उसकी सेवा में लगा रहा । इस प्रकार हम परस्पर प्रेम-भाव रखते हुए जीवन व्यतीत करने लगे ।

एक दिन की बात है कि पुरानी शत्रुता से प्रेरित होकर दुंदुभि का पुत्र मायावी नामक भयंकर राक्षस अर्द्ध-रात्रि के समय किष्किधा नगर को भयभीत करते हुए आया, और दुर्वार गर्व से उसने हमें युद्ध के लिए चुनौती दी । अनुपम शील-संपन्न वालि ने क्रुद्ध होकर मुझे साथ लेकर युद्ध के लिए निकला । हम दोनों को आक्रमण करने के लिए आते देखकर वह राक्षस भयभीत होकर भागा और अपनी गुफा में छिप गया । तब वालि ने मुझसे कहा—'मैं इस गर्वोद्धत राक्षस को पकड़कर उसका वध करके लौटूँगा; मेरे आने तक तुम सावधान होकर यहाँ रहो, जिससे अन्य कोई यहाँ प्रवेश न कर पाये । इस प्रकार, मुझे गुफा के द्वार पर नियुक्त करके वालि ने गुफा में प्रवेश किया । एक वर्ष पर्यन्त गुफा में घोर युद्ध होता रहा । रक्त उमड़कर गुफा के द्वार तक बहने लगा और राक्षस के हुंकार मुझे सुनाई पड़ने लगे । तब मैंने निश्चय कर लिया कि वालि राक्षस के हाथों से मारा गया है । यदि वह जान जाय कि मैं यहाँ हूँ, तो वह बाहर आकर मेरा भी वध कर डालेगा । इस प्रकार सोचकर मैं एक पहाड़ी से उस गुफा का द्वार बंद कर दिया और वालि की तिलोदक-क्रिया करके किष्किधा लौट आया । मंत्रियों ने यह कहकर कि वालि की मृत्यु के बाद इस राज्य के अधिकारी तुम ही हो, विवश करके मुझे वानर-राज्य का राजा अभिषिक्त किया । तब से मैं वानरों का चक्रवर्त्ती होकर राज्य करता रहा ।

'हे राजन्, वहाँ वालि मायावी (राक्षस) का संहार करके, मुझे पुकार-पुकार कर, हार गया । उसके पश्चात् वह द्वार पर मेरे द्वारा स्थापित पहाड़ी को पदाघातों से चूर-चूर

करके बाहर निकल आया । मुझे वहाँ न देखकर वह अत्यंत क्रुद्ध हुआ और किष्किंधा में प्रवेश किया । मेरे प्रणाम को भी स्वीकार किये बिना वह गरज उठा—'क्यों रे, तुम्हें अपना अनुज समझकर तुम पर विश्वास करके मैं शत्रुओं से युद्ध करने गया, तो तुम इस प्रकार मुझे धोखा देकर मेरे राज्य का अपहरण करके, उसका शासन करने लगे ? क्या तुम्हारे लिए यह उचित है ? तुम महा पापात्मा हो । तुम्हें मारने से भी कोई दोष नहीं लगेगा ।'

तब मैंने उसके चरणों पर गिरकर भक्ति तथा विनय के साथ निवेदन किया—'हे भाई, एक वर्ष तक आप और मायावी युद्ध करते रहे । तब (एक दिन) मैंने गुफा से रक्त का प्रवाह उसके द्वार तक आते देखा, तो भयभीत तथा मतिभ्रष्ट हो भागकर यहाँ आया । मुझे देखकर मंत्रियों ने विवश करके मेरा राज्याभिषेक कर दिया । इसके अतिरिक्त मैं कोई कपट नहीं जानता । आपका आगमन मेरे लिए शुभप्रद है । यह वानर-राज्य आप पुनः ग्रहण कीजिए । मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि नाते से मैं आपका भाई हूँ; किन्तु वस्तुतः मैं आपका सेवक तथा पुत्र हूँ । हे करुणानिधि, मुझसे कोई भूल हो गई हो, तो उसे क्षमा कीजिए ।'

इस प्रकार के वचनों से मैंने वालि की बहुत विनती की ; किन्तु उसका क्रोध पग-पग पर बढ़ता ही गया । मंत्रियों ने भी उसे बहुत समझाया कि अनुज के प्रति इतना क्रोध उचित नहीं है; किन्तु उसने उनकी बातों पर ध्यान नहीं दिया । उसने मेरी पत्नी रुमा को मुझसे छीन लिया, मेरा राज्य ले लिया और मेरा वध करने के लिए तैयार हो गया । मैं भयभीत होकर भागने लगा, तो वह मेरा पीछा करने लगा । मैं सारे भूलोक में शरण ढूँढ़ते हुए भागा और अंत में इस पर्वत पर रहने लगा; क्योंकि वालि इस पर्वत पर चढ़ नहीं सकता ।'

तब राम ने आश्चर्य से पूछा—'हे सूर्यपुत्र, इस पर्वत पर वालि क्यों नहीं चढ़ सकता ? इसकी कथा मुझे सुनाओ ।" तब सुग्रीव विनम्र भाव से यों कहने लगा—'पूर्वकाल में दुंदुभि नामक दुष्ट राक्षस, वरदानों के प्रताप से प्रबल होकर तीन लोकों को भयभीत करने लगा था । वह जंगली भैंसे का रूप धारण करके समुद्र के पीछे पड़ गया और उसे युद्ध के लिए चुनौती दी । तब समुद्र व्याकुल हो उठा और करोड़ों रत्नों की भेंट देकर कहा—'तुम्हारे साथ युद्ध करके श्रेष्ठ हिमाद्रि ही जीवित रह सकता है । मैं तुम से युद्ध नहीं कर सकता ।' तब वह उस हिमाद्रि से युद्ध करने चला गया, जिसके शृंगों ने इंद्र के बाहुस्तंभ से सम्मानित वज्रायुध के तेज को भंग किया था । तब उस पर्वतेश्वर ने कहा—'क्या मैं तुम्हारी बराबरी कर सकता हूँ ? इस संसार में तुम्हारा सामना करके, तुम्हारे साथ युद्ध करने का बाहुबल केवल वालि में है । वह अपनी प्रबल शक्ति के साथ किष्किंधा पर राज्य कर रहा है । यदि तुम युद्ध करने की इच्छा रखते हो, तो हे महाबली, वहीं जाओ ।'

तब वह राक्षस बड़े उत्साह से किष्किंधा आया और प्रलय-काल के बादल के समान गर्जन करके अपने साथ युद्ध करने के लिए वालि को चुनौती दी । तब वालि क्रुद्ध होकर

बाहर आया और गर्जन करते हुए दुंदुभि के समान ध्वनि करनेवाले उस दुंदुभि का सामना करके बोला—'रुको अब तुम कहाँ जाते हो ?' इस प्रकार कहकर वालि ने शिलाओं तथा वृक्षों को उखाड़-उखाड़कर फेंका और मुष्टि के प्रहारों से उसे व्याकुल कर दिया । जब उसने अपने तीक्ष्ण शृंगों से वालि पर आक्रमण करना आरंभ किया, तब वालि ने क्रुद्ध होकर, भयंकर रूप धारण करके एक पर्वत उठाकर उस पर फेंका । राक्षस ने उसे बचाकर, स्वयं एक और पहाड़ उठाकर वालि पर फेंका । तब कपिराज ने एक बहुत बड़ा पर्वत उस पर फेंका । राक्षस ने अपने सींगों से उन पहाड़ों को हटाते हुए, वालि के कंठ को पकड़कर ऐसा धक्का दिया कि वालि विचलित हो उठा । तब वालि ने उसका पीछा किया और एक वृक्ष उखाड़कर उस राक्षस पर फेंका । राक्षस उससे भी बच गया और छिपकर वालि पर आक्रमण करने लगा । तब वालि ने एक मोटे ताड़ के वृक्ष से उस पर प्रहार किया । राक्षस ने अपने सींगों से उसे भी उठाकर फेंक दिया, तो कपिराज ने अपनी कठोर मुष्टिसे उस पर प्रहार करना आरंभ किया । राक्षस भी अपने सींगों से वालि को मारने लगा। इस प्रकार एक दूसरे पर प्रहार करते हुए एक सौ वर्ष तक दोनों घोर युद्ध करने लगे। तब वालि ने उसके दोनों सींगों को पकड़ कर नीचे गिरा दिया और उसका वध कर डाला। उसके पश्चात् उसने अपना सारा बल लगाकर लात मारी, तो उसका शव मुँह तथा नाक से रक्त बहाते हुए वज्राघात से गिरनेवाले पर्वत की तरह, एक योजन दूर पर जा गिरा । गेरू रंग के झरने के समान गिरनेवाली उस रक्त-धारा की कुछ बूँदें, इस पर्वत पर भी गिरीं । तब इस पर्वत पर तपस्या में निरत भयंकर शक्तिशाली मतंग मुनि ने क्रोध में आकर शाप दिया कि वालि इस पर्वत पर न चढ़ सकेगा । हे जगन्नाथ, मैं इसी कारण से निर्भय हो सतत इस ऋष्यमूक पर ही निवास करता हूँ । हे राजन्, दुंदुभि के उस शरीर को एक योजन तक फेंक सकने की शक्ति वालि के सिवा और किसी में नहीं है। यदि आप उस शव को, उससे भी दूर, न फेंक सकें, तो मैं आपकी शक्ति पर विश्वास नहीं कर सकता ।'

तब राम ने मंद-मंद हँसकर कहा—'हे सूर्यपुत्र, मैं उस दुंदुभि के शरीर को वैसे ही फेंककर तुम्हारा संदेह दूर करूँगा । मुझे वह शव दिखाओ । मेरु-मंदराकारवाले उस शव को सुग्रीव के दिखाने पर, राम उसके पास पहुँचे और उसकी परवाह किये विना ही, केवल अपने अंगूठे से उठाकर उसे दस योजन दूर फेंक दिया । तब भी सुग्रीव को रघुराम की शक्ति के महत्व पर विश्वास नहीं हुआ । उसने कहा—'हे देव, जब वालि ने इसे फेंका था तब यह बहुत से रक्त-मांस से भरा था; आज तो केवल इसकी अस्थियाँ रह गईं हैं। इसलिए आप इसे बड़े वेग से फेंक सके, इसलिए विश्वास नहीं होता कि आपका बल वालि से भी अधिक है । इतना ही नहीं, विना थके वालि पहाड़ों को गेंदों की तरह उछाल सकता है; चारों समुद्रों में संध्या-वंदन करता है और शिवजी के चरणों को अपने सिर पर धारण करता है । वायु से भी अधिक वेग से वह सभी समुद्रों को पार कर सकता है । ऐसे वालि की, जिसे इन्द्र ने स्वर्ण-माला प्रदान की थी, कौन समता कर सकता है ? हे राजन्, और एक बात सुनिए । यहाँ जो सात ताल-वृक्ष खड़े हैं, इन सभी

को वालि अपनी वर-शक्ति से एक साथ अपने हाथों में पकड़कर उनके सभी पत्तों को तोड़ सकता है । इन्द्रादि देवता इन में से किसी एक ताल को भी हिला नहीं सकते । हे वसुधेश, यदि आप एक बाण से इस सातों ताल-वृक्षों को गिरा सकते हैं, तो हम विश्वास कर सकते हैं कि आपकी शक्ति वालि की शक्ति स भी अधिक है । मातंग मुनि ने मुझसे कहा था कि जो इन सातों ताल-वृक्षों को एक ही बाण से गिराने की शक्ति रखता है, उस व्यक्ति के हाथों से वालि का नाश होगा ।'

तब राम ने मंदहास करके कहा—'हे वनेचरेश्वर, उन ताल-वृक्षों को तुम अवश्य मुझे दिखाओ । तब निपुण राम ने वज्र-सम अद्वितीय तथा निशित बाण संधान करके चलाया, तो वह बाण, पृथ्वी पर टेढ़े-मेढ़े ढंग से खड़े उन ताल-वृक्षों को एक साथ ऐसे काटकर गिरा दिया, मानों रावण की नाड़ियों को ही काट दिया हो । उसके पश्चात् वह शर निकट के पर्वत को भी पार करके पृथ्वी में प्रवेश किया और पाताल तक पहुँचकर किंचित भी अपनी गति मंद किये बिना, बड़े वेग से रघुराम के तूणीर में वापस आ गया । यह देखकर सुग्रीव आश्चर्यचकित हो अत्यधिक आनंद में डूब गया और मन-ही-मन यह सोचकर फूल उठा कि जिन ताल-वृक्षों के मूल सप्त पातालों तक गये थे, जिनके पत्र सप्त वायुमंडलों तक फैले थे, ऐसे तालों को इन्होंने एक ही शर सें गिरा दिया । अब मेरा संदेह दूर हो गया । अब अवश्य ही राघव के हाथों वालि का वध होगा । मैं अब वानर-राज्य पर शासन कर सकूँगा । तब सूर्यवंश के प्रभु राम को देखकर सूर्यपुत्र ने हाथ जोड़कर कहा—'हे देव, आपका रूप देखकर मैंने आपकी शक्ति की कल्पना नहीं करके पशु-बुद्धि का परिचय दिया । मैं सूर्यपुत्र हूँ और आप सूर्य-वंश-संभव हैं । अतः मैंने आपकी समानता करने का विचार करने का अपराध किया । आप त्रिलोकीनाथ हैं । मुझ मूर्ख को अपना सेवक मानकर मेरे शत्रु का संहार कीजिए और मुझे मेरा राज्य दिलाकर मेरा दुःख दूर कीजिए ।'

५· वालि-सुग्रीव का द्वंद्व-युद्ध

तब राम ने अत्यधिक कृपा-दृष्टि से सुग्रीव को देखकर कहा—'हे सुग्रीव, तुम शीघ्र ही किष्किंधा को जाओ और वहाँ वालि से युद्ध करते रहो । मैं एक ही बाण से (वालि का वध करके) सहज ही तुम्हें राज्य दिला दूँगा । तुम निर्भय होकर जाओ । तब बिना किसी संकोच के तथा अत्यंत उत्साह से सुग्रीव ने, नल, नील, हनुमान् तथा बलवान् तार आदि को साथ लिये युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर किष्किंधा के लिए प्रस्थान किया । राम तथा लक्ष्मण उसके पीछे-पीछे चले । किष्किंधा के निकट एक वन में प्रवेश करके उन्होंने वहाँ से सुग्रीव को वालि पर आक्रमण करने के लिए भेजा । सुग्रीव शीघ्र किष्किधा पहुँचा और नगर के बाहर खड़े होकर भंयकर गर्जन किया और अपने साथ युद्ध करने के लिए वालि को चुनौती दी । हाथी का चिंघाड़ना सुनकर जिस प्रकार सिंह क्रोध में आ जाता है, वैसे क्रुद्ध होकर, शिवजी के चरण-कमलों को प्रणाम करके, रावण के कंठों को अपनी बगल में दबानेवाले वालि ने आकर सुग्रीव का सामना किया । अप्रतिहत पराक्रमी, समान रूप, समान क्रोध, समान शक्ति तथा समान पराक्रम रखनेवाले दोनों वानर जूझ गये और

एक दूसरे के घुटनों, जांघों, वक्षों, नाभियों तथा कटि-प्रदेशों को विचित्र ढंग से झुकाकर इस प्रकार युद्ध करने लगे, जैसे पूर्व तथा पश्चिम के समुद्र आपस में युद्ध करते हों। उसी समय राम ने अपने धनुष पर बाण का संधान करके, उसे चलाने के विचार से, उन दोनों को देखा। किंतु उनके वदन तथा रदन, पूँछ तथा बाहु, उदर तथा अधर, उरु तथा पार्श्व, कक्ष तथा वक्ष, पैर तथा उँगली, वीक्षण तथा शिक्षण, वेष तथा भाषा, नाक तथा गाल, सिर तथा स्कंध, पिंडली तथा चरणयुग्म, कर्ण तथा वर्ण, कंठ तथा अंग, इन सब को एक समान देखकर, यह निर्णय नहीं कर सके कि इन दोनों में वालि कौन है और सुग्रीव कौन ? तब राम ने मन-ही-मन आश्चर्यचकित होकर सोचा कि यदि मैं बाण चलाऊँ, तो न जाने इनमें से कौन मृत्यु-मुख को प्राप्त हो जायँ। यों सोचकर वे विना बाण चलाये ही रह गये।

युद्ध करते-करते अत्यधिक थक जाने पर भी सुग्रीव ने अपनी सारी शक्ति तथा निपुणता लगाकर युद्ध किया, किन्तु वालि से परास्त हो गया। वालि की बलिष्ठ मुष्टियों के आघातों के कारण वह घोंघों की थैली के समान हो गया और लंबी साँसें लेता हुआ सोचने लगा—'हाय रे, राम का विश्वास करके मैं क्यों आया ? इसका मुझे अच्छा पुरस्कार मिला। बस, बस, अब अपना रास्ता नापने में ही मेरा कल्याण है।' यों सोचते हुए वह सुध-बुध खोकर, अपनी पूँछ को कंठ में लपेटे हुए, चारों ओर देखते तथा झूलते हुए ऋष्यमूक पर्वत पर भागा और मन-ही-मन दुःखी होने लगा।

ठीक इसी समय राम वहाँ पहुँचे। अनन्त विक्रमधाम राम को देखकर सूर्यपुत्र ने सिर झुकाकर कहा—'हे राजन्, मैंने आपका विश्वास करके अपना असमान बल-विक्रम दिखाकर वालि से युद्ध किया। किन्तु आपने मेरी उपेक्षा की; मेरी रक्षा नहीं की; चुपचाप देखते ही रह गये। सूर्य-वंश में जन्म लेकर ऐसा अधर्म करना, क्या, आपको शोभा देता है ? हे देव, आपके सत्य तथा तेज का विश्वास करके मैंने वालि को छेड़ा। नहीं तो मैं कहाँ और वालि कहाँ ? वालि को चुनौती देकर फिर बचकर आना असंभव था। शायद किसी पूर्व-पुण्य के फल से बचकर मैं पूर्ववत् इस पर्वत पर पहुँच सका। आपका विश्वास करने के कारण शत्रु के हाथों से पराजय और जग-हँसाई मुझे प्राप्त हुई। आपमें दया, साहस और शक्ति की अधिकता देखकर मैंने आपका विश्वास किया था।'

इन वचनों को सुनकर राम बोले—'हे सुग्रीव, तुम अपने मन में इतना संदेह क्यों करते हो ? इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। क्या मैं तुम्हें शत्रु के हाथ में सौंप दूँगा ? एक बात सुनो। विश्व-विमोहक आकारवाले विख्यात अश्विनीकुमारों के समान तुम्हारी और वालि की रूप-रेखा समान होने के कारण मैं तुम दोनों में भेद नहीं कर सका और बाण चलाने में मुझे भय हुआ; क्योंकि यह अस्त्र अमोघ है। इसलिए तुम इसे बुरा मत समझो। इस बार तुम इन गज-पुष्पों की माला पहनकर वालि से युद्ध करो। मैं अवश्य ही वालि का वध करूँगा। संदेह मत करो; दृढ़ निश्चय से युद्ध के लिए किष्किंधा के लिए प्रस्थान करो।' यों कहकर उन्होंने अपने प्रिय अनुज से गज-पुष्पों की माला मँगवाकर उसे सुग्रीव के कंठ में पहनाया। तब सुग्रीव नक्षत्रों से घिरे हुए चन्द्र के समान,

बक-पंक्तियों से अलंकृत संध्या-गगन के समान, शरत्काल के बादलों के साथ विलसित मेरु-पर्वत के समान सुशोभित दीखने लगा ।

तब राम तथा उनके अनुज बड़े हर्ष से युद्ध के लिए सन्नद्ध हुए । उसके पश्चात् वे नल, नील, तारा तथा हनुमान् के साथ सुग्रीव को साथ लिये हुए नदियों, पुष्पों से युक्त लता-समूहों, पुन्नाग, नारंगी, कदली तथा सहकार-वृक्षों से भरे वनों को देखते हुए उज्ज्वल कैरव, पद्म तथा कह्लारों से शोभायमान, बहु सरोवरों का दर्शन करते हुए, गज, सिंह, वराह तथा जंगली भैंसों को देखते हुए, बहुत दूर तक चल और वहाँ अग्नि-सम तेजस्वी 'सप्त जनाह्व' नामक मुनि के आश्रम का दर्शन किया । सुग्रीव के मुँह से उस आश्रम का महत्त्व सुना । उसके पश्चात् वालि के शासन में रहते हुए ऐश्वर्य से संपन्न किष्किधा-नगर को देखकर सुग्रीव सं बोले—'तुम पूर्ववत् जाकर वालि के साथ युद्ध करो; मैं अवश्य वालि का संहार करूँगा ।' यों कहकर उस पुण्यात्मा सुग्रीव को आदर के साथ भेजकर राम समीप ही एक पेड़ की आड़ में खड़े हो गये ।

६. तारा का वालि को रोकना

तब सूर्यनंदन ने किष्किधा की सभी गुफाओं को विदीर्ण करते हुए घोर गर्जन किया और इन्द्र-सुत वालि को अपने साथ युद्ध के लिए ललकारा । वालि अत्यंत क्रोधावेश में आकर सोचने लगा—'यह एक मर्द की तरह अपने बाहुबल का गर्व कर रहा है । अब इसका सहन करना उचित नहीं है; अब मैं इसका वध कर डालूँगा ।"

इस प्रकार निश्चय करके वह शक्तिशाली तथा जयशील वालि युद्ध के लिए निकला, तो अपने पति का मार्ग रोककर तारा कहने लगी,—"हे देवेन्द्रनंदन, बिना सोचे-विचारे आप सूर्य-पुत्र पर आक्रमण करने क्यों जा रहे हैं ? अभी-अभी आपसे युद्ध करके वह घायल होकर भाग गया था । फिर इतना शीघ्र वह कैसे आ गया ? यदि आपसे कहीं अधिक बलवान् की सहायता उसे नहीं मिलती, तो वह कदापि यहाँ नहीं आता । हे इन्द्र-पुत्र, यही नहीं, मैंने अंगद से और एक बात सुनी है । अपने पिता की आज्ञा क अनुसार दशरथ-राम वनवास के लिए आये थे । वहाँ दशकंधर (रावण) ने उनकी पत्नी को हर लिया । वे और उनके भाई मुनि-वेश में सीता की खोज में ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचे और सुग्रीव को अपना सेवक स्वीकार करके तुम्हें मारना चाहते हैं । राघव स्वयं विष्णु हैं, कमलनाभ हैं, वैरियों के लिए भयंकर रूप हैं, दयालु हैं, धीर हैं और धनुर्विद्या के गुरु ह । उनका शत्रु बनकर उनको जीतना असंभव है । आप प्रेम से सूर्य-पुत्र को अपना राज्य देकर, फिर राम से संधि कर लीजिए । यदि ऐसा नहीं हो सकता, तो मुनि-वृत्ति ग्रहण करके अपने प्राणों की रक्षा कीजिए ।"

तारा के इन वचनों को सुनकर वालि अत्यंत क्रुद्ध होकर बोला—'मेरी पत्नी होकर तुम इतनी भयभीत क्यों होती हो ? मैं अपने बाहुबल से किसी भी बलवान् पुरुष को युद्ध में जीतकर विजय प्राप्त कर सकता हूँ । मैं कभी किसी से पराजित नहीं होऊँगा । जब शत्रु आकर युद्ध के लिए ललकारे, तब अधीर होकर उससे संधि कर लेना वीरों का धर्म नहीं है । हे कमलाक्षी, मेरे-जैसे बलवान् के रहते, मुझे स्वीकार नहीं करके, राम ने

सुग्रीव को अपनाया है । इसलिए जान पड़ता है कि राम नीतिवान् नहीं हैं । ऐसी दशा में राम की मित्रता स्वीकार करना मेरे लिए उचित नहीं है । सुग्रीव अनाथ होकर राम का सेवक बन गया है । मुझे राम की क्या आवश्यकता है । संधि की क्या आवश्यकता है ? मैं किसी की प्रार्थना क्यों करूँ ? वह महान् पुरुष तथा धर्मात्मा राम, अकारण ही मेरा वध क्यों करेंगे ? (तुम्हारी) ये बातें सर्वथा असंगत हैं । मैं अभी जाकर अपने भयंकर वज्र की समता करनेवाली अपने मुष्टि-प्रहारों से सुग्रीव का वध करके आता हूँ। तुम निश्चिंत रहो ।'

इस प्रकार के वचनों से तारा को संतुष्ट कर इन्द्र-पुत्र वालि अपने पराक्रम, शक्ति तथा साहस के साथ इस ढंग से (युद्ध के लिए) निकला, मानों कर्मपाश के आकर्षण को टालने की शक्ति उसमें नहीं रही हो । उसने अपने गर्जन से सभी समुद्रों को क्षुब्ध कर दिया; भू-वलय को कँपा दिया । उसके बाद वह सुग्रीव को डाँटते हुए भयंकर स्वर में बोला--'मेरे साथ युद्ध में हारकर, लज्जाहीन हो, फिर युद्ध करने आया है ? कोई बात नहीं । मैं अभी तुझे यम के मुँह की बरी बनाऊँगा । डींगें मारना छोड़कर तू थोड़ी देर अटल खड़ा रह । मैं युद्ध में अपने मुष्टि-प्रहारों से तेरे प्राण हरण करूँगा ।'

इस प्रकार कहकर वालि ने वज्र का परिहास करनेवाली, अपनी मुष्टि बाँधकर उससे ऐसा प्रहार किया कि सुग्रीव नीचे गिरकर रक्त उगलने लगा । तुरंत वह सँभल उठा और साहस के साथ खड़े होकर गर्जन किया और तिरस्कारपूर्ण वचनों से इन्द्र-सुत की निंदा करते हुए कहा--'मैं अब तक तुम्हारी उद्दण्डता केवल इसलिए सहता आ रहा था कि तुम मेरे भाई हो और पूज्य हो । ऐसी बात नहीं कि मैं तुमसे युद्ध करने से डरता हूँ । मैं पहले का सुग्रीव नहीं हूँ । सोच-विचार कर मेरे साथ युद्ध करना । हे वालि, मैं अवश्य अभी तुम्हारा वध कर दूँगा और कपि-राज्य पर अधिकार करूँगा ।'

इतना कहकर सुग्रीव ने अत्यधिक क्रोध से एक साल-वृक्ष को उखाड़कर तेजी से वालि पर फेंका । उसके लगते ही वालि कंपित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और मूर्च्छित हो गया । थोड़ी देर के बाद वालि सचेत होकर दुर्वार गर्व और बड़े शौर्य तथा धैर्य के साथ एक पर्वत उठाकर उस रवि-पुत्र पर इस प्रकार फेंका कि देवता भी आश्चर्यचकित रह गये । सुग्रीव ने उस पर्वत को अपनी पूँछ से रोक दिया । तब वालि ने सुग्रीव के पैरों पर प्रहार किया । सुग्रीव ने अपने तेज नखों से वालि का शरीर नोंच डाला । वालि ने उग्र रूप धरकर सुग्रीव पर मुष्टि का प्रहार किया । क्रमशः दोनों अपनी अमित शक्ति का प्रदर्शन करते हुए एक-दूसरे की शिखाओं को पकड़कर पदाघातों से, नखों से, मुष्टियों से, एक-दूसरे पर प्रहार करते हुए, गर्जन करते हुए, हुंकार भरते हुए, घोर युद्ध करने लगे । उनके अंगों से रक्त की धारा बहने लगी । वे अपनी बाहुओं तथा पूँछों को दूसरों की बाहुओं तथा पूँछों से फँसाकर, परस्पर धक्का देते हुए, फिर दूर हटते हुए, अपना सारा बल लगाकर परस्पर प्रहार करने लगे । इस प्रकार अत्यंत भयंकर रीति से जब वे लड़ रहे थे, तब इन्द्र-सुत वालि के आघातों से रवि-पुत्र सुग्रीव बहुत घायल हुआ । वह गर्व खोकर, व्याकुल और भयभीत हो, अपने ओठों को आर्द्र करते हुए, दीन दृष्टि से चारों ओर देखने लगा ।

७. वालि का संहार

निग्रह तथा अनुग्रह के निधि राम ने जब देखा कि सुग्रीव अब क्लांत तथा खिन्न हो गया है, तब सोचने लगे कि यदि मैं अब वालि का वध नहीं करूँ, तो वह अवश्य ही सुग्रीव को मार डालेगा। तब राम ने सप्त समुद्रों तथा सप्त लोकों को क्षुब्ध करते और समस्त भूतों को कँपाते हुए, अपने धनुष का टंकार किया, वालि को तृणवत् मानकर, लक्ष्य को साधा, और एक अमोघ अस्त्र का संधान करके उसे उस असमान बलशाली वालि पर चलाया। तब वह बाण अपनी सूर्य-तेज सदृश कांति को सारे आकाश-मंडल में विकीर्ण करते तथा भयंकर अग्नि-शिखाओं को फैलाते हुए, गरुड़, उरग, अमर, गंधर्वों को भयभीत करते हुए ऐसे वेग से चला, मानों अपने पुत्र की रक्षा करने तथा शत्रु को दण्ड देने के लिए सूर्य ही अस्त्र के रूप में जा रहा हो, अथवा सूर्य-पुत्र होने के कारण यम धर्मराज ने ही अपने अनुज सुग्रीव की रक्षा करने के लिए, अपना काल-दंड वालि पर चलाया हो। वह वाण सीधे जाकर वालि के उर में लगा। वालि पृथ्वी पर ऐसे गिरा कि दिग्गजों, पर्वतों तथा वृक्षों के साथ पृथ्वी काँप उठी। वह बाण वालि के उर के पार निकलकर पृथ्वी में धँस गया। अविरल बहनेवाली रक्त की धाराओं से वानरेश्वर का सारा शरीर भींग गया और वह इस प्रकार पृथ्वी पर गिरा, मानों पुष्पित अशोक-वृक्ष आँधी में गिर गया हो, अथवा प्रलय-काल में कांतिहीन होकर पृथ्वी पर गिरा हुआ सूर्य हो। तब पृथ्वी पर विवश पड़े हुए उस वालि के पास राम आये।

अपने समीप पहुँचे हुए रघुराम को देखकर मन-ही-मन कुपित होता हुआ वालि कहने लगा—'हे राघवेश्वर, हे रामचंद्र, इस पृथ्वी पर लोग आपको धर्मात्मा कहते हैं। आप दम-शम, दया, सत्य, सम-बुद्धि, नीति, सौजन्य आदि सद्गुणों के भाण्डार हैं। ऐसे होते हुए भी आपने अपनी महत्ता को त्यागकर मेरे और सुग्रीव के युद्ध करते समय हमारे बीच में आये और मेरे ऊपर वाण चलाया, क्या यह आपके लिए उचित है? मैंने आपका कोई अपकार नहीं किया है। मैंने कभी आपकी बुराई नहीं सोची। मैं आपका शत्रु भी नहीं हूँ। मैं जानता भी नहीं हूँ कि आपके शत्रुओं ने आपका क्या अहित किया है। उन बातों को जानकर मैंने आपकी उपेक्षा की हो, सो भी नहीं। फिर भी आपका ऐसा करना, क्या उचित है? हे सूर्य-कुल-तिलक, आप जानते हुए भी अनजान बनकर रहे। संसार में राजा लोग, शरभ, सिंह, शार्दूल, कोला, गज, हिरण आदि का संहार करने के लिए मृगया खेलते हैं। भला, कहीं कोई वानरों का वध भी करता है? सूर्य-पुत्र तथा मैं, दोनों भाई-भाई हैं। गर्वांध हो, क्रूर बनकर, हम चाहें जैसा भी आचरण करें, आपका इस प्रकार मेरा संहार करने का क्या कारण है? खरगोश, नेवला, कछुआ, जंगली सूअर आदि जानवर खाद्य होते हैं; किन्तु वानर को कोई खाता नहीं है। फिर आपने आड़ में छिपकर क्यों मेरा वध किया? हे राजन्, अब आप अपने अनुज के साथ मेरे रक्त-मांस का भोग लगाइए। उज्ज्वल कीर्तिवान्, जगद्विख्यात दशरथ की आज्ञा से वन में तपस्वियों का-सा जीवन व्यतीत करने के लिए आप आये; फिर भी जीव-हिंसा का त्याग नहीं किया। यदि इस पृथ्वी पर रहते हुए हम कोई अपराध करते हैं, तो उसके लिए दण्ड देने का कार्य

भरत का है। आपका इससे क्या संबंध है ? क्या आप राजा हैं ? आपने मुझे नहीं अपनाकर मेरा वध कर डाला। अपनी पत्नी को हरकर ले जानेवाले नीच रावण को जीतने के उद्देश्य से आप आये हैं। आपने मेरी अवहेलना की और सूर्य-पुत्र को अपनाया। इस प्रकार आप इस लोक में नीति-रहित-से हो गये। यदि यह समाचार आप मुझे देते, तो क्या मैं आपकी पत्नी को छुड़ाकर नहीं ला देता ? जो महाबलवान् की तरह आकर सीताजी को चुराकर ले गया, उसे मैंने अपनी पूँछ की रोमावली से बाँधकर सभी समुद्रों में डुबोया था और अंत में उसपर कृपा करके उसे छोड़ दिया था। मेरा बाहुबल सारा संसार जानता है और सुग्रीव भी जानता है। हाय! मुझे भयभीत करके मार डालने की शक्ति रखनेवाले आप, मेरे सामने खड़े होकर, मुझे ललकार कर, मुझपर आक्रमण करके मार न सके। भय से आड़ में छिपकर आपने मुझे मारा। क्या यही राजधर्म है ?'

वालि के इन वचनों को सुनकर राम ने कहा—'हे वालि, ये बातें तुम्हें शोभा नहीं देतीं। तुम कपि के वंश में पैदा हुए और कपियों के बीच में पले हो। धर्मशास्त्र की नीति न जानते हुए भी वाचाल के समान मेरे दोष गिना रहे हो। यह न्यायसंगत नहीं है। तुमने जो वचन कहे, उनके प्रत्युत्तर में मेरी कुछ बातें ध्यान देकर सुनो। संसार के धर्माचार्यों की सम्मति है कि अग्रज को चाहिए कि वह अपने अनुज को अपने तनुजवत् (पुत्रवत्) पाले। तुमने उस नियम का उल्लंघन किया। निरपराध सूर्य-पुत्र को तुमने नगर से निर्वासित किया। ऐसा कामान्ध, तुम्हारे सिवा इन तीनों लोकों में और कौन हो सकता है। दूसरी बात यह है कि जब हम दोनों (मैं और सुग्रीव) मित्र हैं, तो तुम मेरे मित्र के शत्रु होने के कारण तुम्हारा वध करना मेरे लिए उचित ही था। मृगया खेलने-वाले निष्कलंक राजा, सजातीय पशु-पक्षियों की सहायता से मृगों का शिकार करते हैं; या एक मृग को किसी दूसरे के साथ लड़ते समय उसको मारते हैं, या झाड़ी में छिपकर उसका शिकार करते हैं या जाल फैलाकर मारते हैं, या अकारण ही मारते हैं; या आड़ में खड़े होकर शिकार खेलते हैं; या कटघरा सजाकर शिकार खेलते हैं। इसलिए मुझे किसी भी प्रकार से इसका दोष नहीं लगेगा। तुम तो शाखा-मृग ठहरे। तुम्हारा वध मैं किसी भी प्रकार करूँ, तो उसका दोष मुझे क्यों लगेगा ? अपने श्रेष्ठ बाहुबल से समस्त जगत् के स्वामी (बने हुए) भरत की आज्ञा से हम दुष्ट मृग तथा राक्षसों का वध करते रहते हैं। तुम अपने अनुज की पत्नी को बलात् छीननेवाले पापात्मा हो। इसलिए हमने तुम्हारा वध किया। राजाज्ञा से दण्डित व्यक्ति नरक के संकटों को प्राप्त नहीं होते। इसलिए तुम दुःखी न होओ और स्वर्ग-सुख को प्राप्त करो।'

रघुराम के इन वचनों को सुनकर वालि थोड़ी देर तक आँखें बंद किये हुए विवश पड़ा रहा और उसके पश्चात् कांतियुक्त पूर्णचंद्र रामचन्द्र को देखकर कहा—'हे शुभ नाम-वाले राम, हे भयंकर किरणवाले, हे चंद्रसम मुखवाले, मेरी पत्नी तारा ने आप प्रभु के शौर्य का परिचय देकर मुझसे अनुरोध किया था कि आप युद्ध में मत जाइए। मैंने अपनी दुर्बुद्धि के कारण, विधि की प्रेरणा से, उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया और आपसे शत्रुता

करके इस प्रकार पृथ्वी पर पड़ा हुआ हूँ । क्रोध के आवेश में मैंने मूर्ख हो, आपको अप-शब्द कहे हैं । आप मुझे क्षमा कीजिए । हे राजन्, मैं अपनी दुर्दशा की चिन्ता नहीं करता; तारा के लिए भी चिन्ता नहीं करता, किन्तु अपने पुत्र अंगद के लिए मैं व्याकुल हो रहा हूँ । मेरी पत्नी और पुत्र की न जाने क्या दशा होगी । मैंने नहीं सोचा था कि मेरी ऐसी दुर्दशा होगी ।' इस प्रकार कहते और शोक तथा मोह-रूपी समुद्र में डूबे हुए (मूक की तरह) मूर्च्छित हो पड़ा रहा ।

यह समाचार जब (वालि के) रनवास में पहुँचा, तब तारा आदि स्त्रियाँ वालि के वध का हाल जानकर अधीर हो उठीं और उनके हृदयों पर वज्र के समान आघात हुआ । वे सब पछाड़ खाकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं । वे एक क्षण होश में आतीं, फिर दूसरे ही क्षण मूर्च्छित हो जातीं । वे अत्यधिक संतप्त हो, वालि का नाम ले-लेकर पुकारती हुई चिल्ला-चिल्लाकर विलाप करने लगीं—'हे अंगद, हाय, आज वालि का स्वर्गवास हो गया है ।' फिर वे अत्यधिक शोक में डूबी हुई उच्च स्वर में रोती हुई अंगद को साथ लेकर किष्किंधा नगर से बाहर निकलीं । चलते समय उनके पैर लड़खड़ाने लगे, उनके अंचल खिसक गये; उनकी वेणियाँ खुल गईं, होठ कंपित होने लगे, आँखों से अश्रु-धारा बहने लगी और उनकी क्षीण कटियाँ इधर-उधर हिलने लगीं । इस प्रकार जब वे आ रही थीं, तब मार्ग में ही वानरों ने उन्हें सूचना दी कि राघव के हाथों से वालि का वध हो गया है । अब तुमलोग क्यों जा रही हो ? यदि वहाँ जाओगी, तो अवश्य कोई-न-कोई विपत्ति आयगी । क्या तुम नहीं जानतीं कि राम तथा सुग्रीव मिल गये हैं । न जाने, वे इस अंगद को पकड़कर क्या करेंगे ? हमें शत्रुओं के मन का विश्वास नहीं करना चाहिए । अतः हम अब अंगद को ही अपना राजा बनायेंगे । वैसे तो हमारे यहाँ अनेक बुद्धिमान् मंत्री हैं । तुम वहाँ मत जाओ ।'

८. तारा का शोक

तब तारा, औचित्य का विचार करके, उन कपियों की बार-बार निंदा करती हुई बोली—'यदि मैं अपने प्राणनाथ वालि को न देख सकूँ तो मुझे यह अंगद किस लिए और यह राज्य ही किस लिए है ?' इस प्रकार उनकी बातों की परवाह न करके, वह चंद्रमुखी तारा मन-ही-मन वालि का स्मरण करती हुई अपने कुचों को देखकर अत्यंत शोक-संतप्त होकर कहने लगी—'दूर से ही अमरेन्द्र-पुत्र का आगमन देखकर, यत्न करके, उनके निकट पहुँचकर, रति-क्रीड़ा की अभिलाषा करके उनसे टकराते रहने के कारण ही तो आज तुम उस सुरराज के पुत्र को खो बैठे । अपने किये का फल तुम अब भोगो ।' यों कहकर अत्यधिक क्रोध से वह अपनी छाती पीटने लगी । उमड़ते हुए शोक से जब वह चलने लगी, तब उसके हार छिन्न-भिन्न होकर गिरने लगे । वेणी खुल गई । जैसे कमल से मकरंद झरता है, वैसे ही उसकी आँखों से अश्रु गिरने लगे । वह पवन के वेग से वालि के निकट पहुँच गई और तरु से टूटकर गिरनेवाली पुष्प-लता के समान वालि पर जा गिरी और बार-बार परितप्त होती हुई इस प्रकार विलाप करने लगी—'हे कपिकुलाधीश, हे कपि-राजचंद्र, हे कपिराजशेखर, हे कपिसार्वभौम, समस्त सुरासुर-समूहों में तुम अकलंक शक्ति-शाली हो;

तुम विंध्याद्रि को उखाड़कर फेंकने तथा उन्हें व्याकुल करने में समर्थ हो; तुम महाबलशाली, त्रिभुवनों के पालन करनेवाले, कुल-पर्वतों को भेदनेवाले (इन्द्र) के पुत्र हो । कोलंबु नामक क्रूर गंधर्व का संहार करनेवाले युद्ध-वीर तुम ही तो हो । ऐसे तुम, एक मानव के हाथों से ऐसी नीच मृत्यु को प्राप्त हुए । अब मैं क्या कहूँ ? सूर्य-पुत्र तुम्हारा सामना करने की शक्ति नहीं रख सकने के कारण तुम्हें युद्ध में मारने के लिए राम को साथ लेकर आया था । मैंने तुम से कहा था कि राम को जीतना असंभव है; तुम युद्ध में मत जाओ । मेरी बात तुमने नहीं मानी; मेरा सर्वस्व तुमने हर लिया । मैंने कहा कि वह महात्मा विष्णु ही हैं; उनके निकट मत जाओ । यह भी कहा कि वह महान् शूर है, तुम अपना प्रताप त्याग दो । तुमने नहीं जाना कि राम तुम्हारा संहार करने आया हुआ यम ही है । तुमने उनसे दुःख पाया । जब समुद्र का मंथन करते-करते देवासुरों की सारी शक्ति शिथिल हो गई थी और वे क्लान्त होकर पड़े हुए थे, तब तुम्हारी जिन भुजाओं ने वासुकि को मंदर पर्वत से लपेटकर, समुद्र का मंथन करके तीनों लोकों में अपनी श्रेष्ठ शक्ति का परिचय दिया था, वे ही आज धूलि से सनी हुई हैं । महान् शक्तिशाली राक्षसराज (रावण) को अपनी दृढ़ मुष्टि में पकड़कर उसको व्याकुल करते हुए सभी समुद्रों में डुबोनेवाली तुम्हारी पूँछ आज मिट्टी में लोट रही है । नीलकंठ के श्रीचरण-कमलों में भ्रमर के समान झुकनेवाला तुम्हारा सिर आज निरी पृथ्वी पर पड़ा है । हे हृदयेश्वर, मैं तुम्हें छोड़कर जीवित नहीं रह सकती; जहाँ तुम जाओगे, वहीं मैं भी जाऊँगी । इस वेदना को सहना मेरे भाग्य में लिखा था । मैं अपनी अनाथ अवस्था के कारण दुःखी नहीं होती । हे इन्द्र-नंदन, मैं आपके प्रिय पुत्र के लिए शोक करती हूँ । हे स्वामिन्, तुम्हारा पुत्र धूल में सने हुए तुम्हारी गोद में लोट रहा है । उसे क्यों नहीं अपनाते ? हे राजन्, अपने पुत्र अंगद को अपनी जाँघों पर बैठाकर, प्रेम से उसका सिर सूँघकर, उसके गालों पर हाथ फेरकर, उसे चूमते हुए, उसको रोने से क्यों नहीं रोकते ?'

इस प्रकार विलाप करती हुई और उमड़ते हुए शोक से उसने सुग्रीव को संबोधित करके कहा—'वालि के सामने खड़े रहने की क्षमता न रखने के कारण, कई बार कायर के समान तुम भाग गये और अनाथ की तरह जाकर राघव को साथ ले आकर कपट-विजय के बाद तुमने किष्किंधा को जीता । तुमने जो चाहा, वही हुआ । तुम्हारा प्रतिशोध पूरा हुआ । अब कपियों का राज्य लेकर उसका पालन करो । संधि की बातें (मित्रता की बातें) करके राघव को यहाँ लाने के लिए हनुमान् तो तुम्हारे साथ हैं ही । मंत्रणा के लिए तुम्हारे पास नल, नील तथा तार भी हैं । (अब तुम्हें किस बात की कमी है ?)'

इसके पश्चात् उस कमलाक्षी ने रघुराम को देखकर कहा—'हे राजन्, आपने वालि का संहार क्यों किया ? हे रघुराम, क्या वालि ने आपकी ऐसी दशा कर देने के लिए (वनवास की आज्ञा देने के लिए) आपके पिता को परामर्श दिया था ? हे रघुराम, क्या वालि आपके राज्य-सुख को छीननेवाला भरत था ? क्या वालि दुष्टता करके आपकी पत्नी को चुराकर ले जानेवाला रावण था ? आपने वालि से अकारण वैर ठानकर इस प्रकार उसका संहार क्यों किया ? आप-जैसे पुण्यात्मा, आप-जैसे प्रभु और, आप-जैसे करुणानिधि को

क्या ऐसा करना उचित है ? क्या जानकी के साथ आपका विवेक भी चला गया ? क्या घोर विरहाग्नि में आपका ज्ञान भी जल गया ? हे राजन्, मेरा भाग्य ही आज ऐसा हो गया है । अब मैं क्या करूँ ? होनहार को मैं कैसे दोष दूँ ? मैं वालि को छोड़कर नहीं रह सकती । हे देव, आप मेरा भी वध कर डालिए ।'

इस प्रकार विलाप करती हुई वह अपनी छाती और मुँह को पीटती हुई रुदन करती रही । तब हनुमान् ने तारा को देखकर कहा—'क्या ऐसी कोई धर्म-नीति है, जिसे तुम नहीं जानती ? युद्ध में स्वर्ग को प्राप्त होनेवाले वीर वालि के लिए इस प्रकार तुम शोक क्यों करती हो ? ये सब कार्य भगवान् की इच्छा के अनुसार चलते हैं ।' इस प्रकार वह नीति-विलक्षण (हनुमान्) बार-बार तारा को समझाता रहा ।

९. वालि का सुग्रीव को उपदेश देना

इतने में अमरेन्द्र-पुत्र ने आँखें खोलकर अपनी पत्नी का अवर्णनीय शोक तथा अंगद के उससे भी अधिक कठोर दुःख को देखा और फिर सूर्य-नंदन को संबोधित करके कहा—'हे भानु-पुत्र, राम के द्वारा आज समस्त संसार के समक्ष तुम्हारा प्रतिशोध पूर्ण हुआ । इस पृथ्वी पर राजाओं की कृपा का कभी विश्वास मत करना । अपनी बुद्धि का विश्वास करके सावधान होकर व्यवहार करना । तुमने राम को जो वचन दिया था, अब उसका पालन करने का प्रयत्न करो । मायावी पुरूहुत जब लगातार अपनी सारी शक्ति लगाकर, अनवरत युद्ध करके हार गया था, तब मुझसे संतुष्ट होकर उसने यह हेम-मालिका दी थी । इसे तुम धारण करो । यही कपि-राज्य का राज-चिह्न होगा । अब इस अंगद के शोक को दूर करो । तुम मेरे समान ही उसकी रक्षा इस प्रकार करो कि वह मुझे भूल जाय । सुषेण की पुत्री यह तारा बुद्धिमती है । इसके परामर्श के अनुसार तुम आचरण करो और मेरे सब अपराधों को भूल जाओ । अब मेरे प्राण नहीं बचेंगे; लो, इस रत्न-मालिका को भी ले लो ।' यह कहकर उसने शोक से सिर झुकाये खड़े रहनेवाले सुग्रीव को बुलाया। तब सुग्रीव ने रघुराम की अनुमति प्राप्त करके उस हेम-मालिका को बड़ी भक्ति के साथ धारण किया ।

इसके पश्चात् वालि ने बड़े प्रेम से अंगद को देखकर कहा—'हे पुत्र, अब तुम शोक त्यागो । सुग्रीव के रहते हुए तुम्हें शोक करने की क्या आवश्यकता है ? सूर्य-पुत्र मुझसे भी अधिक प्रेम से तुम्हारा लालन-पालन करेगा । सुग्रीव जो पद तुम्हें दे, उसी में संतुष्ट रहना । तुम्हारी कीर्ति अमर रहेगी और तुम्हें श्रेष्ठ सुख प्राप्त होंगे । तुम्हें किष्किंधा का राजा बनाकर उसे देखकर आनन्द पाने के योग्य पुण्य मैंने नहीं किया था । अब मैं स्वर्ग को जा रहा हूँ ।'

इसके उपरान्त बालि ने रघुराम को अत्यंत प्रेम से देखकर कहा—'हे राम, अत्यधिक गर्व करके, मेरा सुग्रीव से जूझना ही मेरे लिए अंतिम पथ्य सिद्ध हुआ । वही मेरी मृत्यु का कारण सिद्ध हुआ । यह अंगद निर्बल है । यदि वह कोई अपराध करे, तो उसे सहन कीजिएगा । हे सूर्य-वंश-तिलक, सूर्य-पुत्र के बाद इसको राजा बनाइए । वेद-शास्त्रों के अध्ययन-मात्र से किसी को तुम्हारे दर्शन नहीं प्राप्त हो सकते । आपका आदि, मध्य तथा

अंत नहीं है । प्राणों के जाते समय आपने यहाँ पधारकर मुझे दर्शन दिये । परलोक में जाने पर ही जिसके दर्शन संभव होते हैं, (उसके दर्शन) मैंने अभी प्राप्त कर लिये हैं । मैं कृतार्थ हुआ । हे सूर्य-वंश-तिलक, हे परमकल्याण-रूप, अब मेरे प्राण नहीं बचेंगे। कृपया यह बाण (मेरे शरीर से) निकालिए ।' राम की आज्ञा पाकर नील ने उस दिव्य बाण को वालि के शरीर से बाहर निकाला । तब वालि ने पवन की गति को अपने शरीर में रोककर, उस रुद्ध पवन की सहायता से अपनी चित्त-वृत्ति को निश्चल बनाकर, उस सुंदरमूर्त्ति श्रीराम को मन में धारण करके, ब्रह्मानंद का अनुभव करते हुए ब्रह्मरंध्र के द्वारा अपने प्राण छोड़ दिये ।

तब तारा आदि स्त्रियाँ वालि के शरीर पर गिरकर बार-बार हाहाकार करती हुई विलाप करने लगीं। अंगद, सुग्रीव तथा वहाँ के सभी कपि-पुंगव 'हाय, वालि तुम हमें छोड़कर चले गये !' कहते हुए विलाप करने लगे । तब सौमित्र ने सुग्रीव तथा अन्य कपियों को सांत्वना देते हुए कहा--'हे हनुमान्, तुम तुरंत वस्त्र, माला, कर्पूर, चंदन आदि मँगवाओ । हे तारे, स्वर्ण तथा रत्नों से निर्मित शिविका शीघ्र मँगवाओ ।' उन्होंने वैसा ही किया । सभी वनचर वहाँ पहुँच गये । सूर्य-पुत्र ने तारा आदि स्त्रियों का दुःख शान्त किया । रामचन्द्र की आज्ञा प्राप्त करके सुग्रीव, अंगद, हनुमान् आदि ने वालि की उत्तर-क्रियाएँ यथाविधि समाप्त कीं । दस रात्रियों तक शेष क्रिया-कर्म पूरे किये और परिशुद्ध होकर रामचंद्र के सम्मुख उपस्थित हुए ।

१०. सुग्रीव को किष्किंधा का राजा बनाना

तब राम ने अत्यंत हर्ष से उन कपि-नायकों को देखकर कहा—'अब तुमलोग मेरा आदेश मानकर किष्किंधा नगर को सजाओ और कपिराज के सिंहासन पर सुग्रीव का राज-तिलक करो तथा अंगद को युवराज के पद से अभिषिक्त करो ।' तुरन्त सभी वानर-दण्ड-नायक एकत्र होकर किष्किंधा चले आय । उन्होंने सारा नगर सुंदर ढंग से सजाया । सारा नगर, नूतन श्रृंगारों से सुसज्जित भवन, रत्नों की वेदियाँ, रमणीय हीरों के चौकों से अलंकृत द्वार, सुरम्य ध्वजाएँ, विशाल तथा सुगंधित जल से सिक्त राज-मार्ग तथा उनमें संचार करनेवाले निरुपम सुंदराकार पुरजनों से परिपूर्ण दीखने लगा । उन्होंने राजसभा का भी अलंकार किया, मानों वह अत्यधिक ऐश्वर्य-रूपी समुद्र का आवास हो । नद तथा नदियों का जल मँगाया और विविध मंगल-द्रव्यों को एकत्र किया । इसके पश्चात् उन्होंने सुंदर पुण्य मुहूर्त्त में पुण्याह वचन का उच्चारण करते हुए कपिसिंह (सुग्रीव) को सिंह के चर्म से अलंकृत सिंहासन पर विठाया और जिस प्रकार देवता इन्द्र का अभिषेक करते हैं, वैसे ही उज्ज्वल तथा पवित्र ढंग से श्रेष्ठ वानरों ने सुग्रीव का राज्याभिषेक किया। पुण्य-स्त्रियाँ रत्नों की वर्षा करने लगीं । तदनंतर उन्होंने अंगद को युवराज के पद पर प्रतिष्ठित किया । तब सारे अंतःपुर तथा नगर में अत्यधिक आनंद छा गया । नल, नील, तार, हनुमान् तथा सगे-संबंधी सुग्रीव से बड़े प्रेम से मिले । अन्य वानर-राजाओं ने हाथ जोड़कर बड़े हर्ष से उसकी प्रशंसा की । तब सुग्रीव ने अपनी विशाल संपत्ति को प्राप्त करके, बड़ी प्रसन्नता से रत्न-राशि वानरों को भेंट की । तत्पश्चात् सुग्रीव ने अपनी वानर-सेना के

साथ रामचंद्र के निकट पहुँचकर बड़ी भक्ति से उनके चरणों में प्रणाम किया और हाथ जोड़कर बड़े प्रेम तथा आनंद से कहने लगा--'हे विश्वेश, अब आपको यहाँ ठहरने की क्या आवश्यकता है ? आप कृपया मेरे नगर में पधारें ।'

११. राम का माल्यवंत पर पहुँचना

तब राम ने सुग्रीव को देखकर बड़े प्रेम से कहा--'हे सूर्य-पुत्र, तपस्वियों को नगरों में निवास नहीं करना चाहिए; इसलिए किष्किंधा नगर हमारे रहने योग्य नहीं है । आषाढ़ का महीना आ गया है, अतः शत्रुओं पर आक्रमण करने के लिए यह समय अनुकूल नहीं है । मैं वर्षाऋतु में किसी तरह माल्यवंत पर अपने दिन व्यतीत करूँगा । तुम किष्किंधा में जाकर रहो । शरत्काल के आते ही हम शत्रुओं पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान करेंगे ।' इन वचनों को कहकर राम ने उसे बड़े आदर के साथ विदा किया और उस स्थान को छोड़कर वे अपने अनुज के साथ माल्यवंत पर्वत पर जा पहुँचे ।

पर्वत पर पहुँचकर राम कुसुम सदृश कोमल सीता के गुण, वय तथा असमान रूप-विलास को मन-ही-मन सोचते हुए अत्यधिक दुःख में मग्न हो रहे ।

उस समय आकाश में, सूर्य के प्रकाश को ढँकते हुए बादल इस प्रकार घिर आये, जैसे सीता के वियोग से दुःखी होनेवाले राम को घेरकर दुःख बार-बार आता था । बादलों में से निकलकर बिजली इस प्रकार जहाँ-तहाँ अपनी चंचलता दिखाने लगी, मानों वह बता रही हो कि रावण का राज्य राम के द्वारा विचलित हो जायगा । वायु के साथ धूल इस प्रकार आकाश की तरफ उड़ने लगी, मानों पृथ्वी देवताओं को इस बात की सूचना देने जा रही हो कि इक्ष्वाकु-वल्लभ (राम) देवलोक के शत्रु (रावण) पर आक्रमण करने जा रहे हैं । आकाश में इंद्र-धनुष इस प्रकार सुशोभित हो रहा था, मानों युद्ध में राक्षसों का वध करने के लिए यम ने अपने हाथ का काल-पाश भेज दिया हो । आकाश में जहाँ-तहाँ मँडराते हुए मेघ ऐसे गर्जन कर रहे थे, मानों राम की सहायता के लिए देवताओं की भेजी हुई सेना, भेरी-निनाद कर रही हो । प्रथम वर्षा की बूँदें जहाँ-तहाँ इस तरह गिरने लगीं, मानों वर्षाकाल-रूपी पुरुष के, आकाश-लक्ष्मी से बड़े प्रेम से भेंट होने पर, उसके (मोतियों के) हार टूटकर उसके मोती पृथ्वी पर गिर रहे हों । जहाँ-तहाँ धरती के भीतर से भाँप इस प्रकार निकलने लगी, मानों (राक्षस के हाथों में) फँसकर कैद में पड़ी हुई अपनी पुत्री का स्मरण करके धरती माता दुःख से पीड़ित होकर निःश्वास छोड़ रही हो। आकाश में उमड़-घुमड़कर दौड़नेवाले बादलों को देखकर चातक पक्षी ऐसे फूल उठे, मानों राम-लक्ष्मण-रूपी मेघों को देखकर सुर-लोक के चातक आनंद से फूल उठे हों । मेघ के 'घर-घर' गर्जन के साथ लय मिलाकर मयूर केका करते हुए इस प्रकार नृत्य करने लगे, मानों मर्दल की 'धीं-धीं-धप' की ध्वनि से लय मिलाकर नर्त्तकियाँ संगीत के साथ नृत्य कर रही हों । भयंकर घोष करते हुए वज्र पर्वत के शिखरों पर इस प्रकार गिरने लगे, मानों वे यह प्रकट कर रहे हों कि राक्षसों के अंगों पर राम के बाण इसी प्रकार गिरेंगे । अत्यधिक अरुण वर्ण धारण करके इंद्रगोप (वीरबहूटी) पृथ्वी पर इस प्रकार बिखर गये, मानों वे यह प्रकट करते हों कि राक्षसराज के शरीर के मांस के टुकड़े इसी प्रकार रण-भूमि में बिखर जायेंगे ।

ओले इस प्रकार पृथ्वी पर गिरने लगे, मानों रावण का संहार करते समय देवता हर्षित होकर दिव्य पुष्पों की वृष्टि करेंगे। राजहंसों का झुंड इस प्रकार धीरे-धीरे वहाँ से क्रौंच-गिरि पर चले गये, मानों राम के प्रताप के कारण रावण की कीर्त्ति-परंपरा लुप्त हो जायगी। सूर्य के चारों ओर का परिवेश ऐसा दीखने लगा, मानों उसने इस विचार से अपने चारों ओर एक सुदृढ़ प्राचीर बना लिया हो कि मेरे पुत्र सुग्रीव ने युद्ध में इन्द्र के पुत्र को मरवा डाला है; इसलिए इन्द्र मेरे ऊपर क्रोध न करे। वर्षा की धारा ऐसी दीखने लगी, मानों अघट उत्साह से आकाश-गंगा में स्नानार्थ गई हुई नाग-कन्याएँ फिर से रसातल को लौट रही हों। मेढ़क जहाँ-तहाँ ऐसे अद्भुत ढंग से स्वर-भेद दिखाते हुए टर-टराने लगे, मानों वे उस महान् व्यक्ति की भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे हों, जिसने उन्हें प्रचुर मात्रा में जीवन-दान किया है। सारी धरती पर नीला पंक ऐसा दीख रहा था, मानों मेघों ने वर्षाऋतु-रूपी वधू के शरीर पर कस्तूरी लपेट दी हो। जल-प्रवाह जहाँ-तहाँ के तालाबों में इस कारण से ठहर गया, मानों वह यह सोचकर डर रहा हो कि समुद्र में मिल जाने से श्रीराम के बाणों की अग्नि से तप्त होना पड़ेगा। बड़ी-बड़ी नदियों का जल इस प्रकार भँवरों में चक्कर काटता हुआ घोर शब्द करता हुआ, समुद्र में प्रवेश कर रहा था, मानों वह भयभीत हो कह रहा हो कि लोक-कंटक राक्षस को मैंने अपनी गोद में स्थान दिया है; काकुत्स्थ-वंशज राम मुझे बंधन में डालेंगे।

कुछ दिनों में वर्षा समाप्त हुई; आकाश में दीखनेवाले मेघ विलीन हो गये। अपनी किरणों को सारे लोकों में फैलाते हुए सूर्य सर्वत्र प्रकाशमान होने लगा। पृथ्वी कीचड़ से रहित हो गई। सरोवरों में कमल सुंदर रूप से दीखने लगे। मत्त गज अपने दाँतों से टीलों को खोद-खोदकर मिट्टी उछालने लगे। रात्रि चंद्रिका तथा नक्षत्रों से सुशोभित हो उठी। हंस सरोवरों में निवास करने के लिए लौट आये और मृणालों का भक्षण कर संतुष्ट हुए। ईख, लाल-लाल धान तथा पकी फसलें प्रचुर हो गईं। वृषभ-समूह गर्जन करने लगा। जल का गँदलापन दूर हो गया और वह स्वच्छ दीखने लगा तथा यात्रियों को (इससे) सुख मिलने लगा। आकाश में मेघ निर्मल दीखने लगे। जल कम हो जाने से नदियाँ पार करने योग्य हो गईं।

इसके कुछ दिन पूर्व हनुमान सूर्य-पुत्र से मिलकर कहने लगा--'शरत्काल आ गया है; अब श्रीराम का कार्य संपन्न करना चाहिए। अतः सब वानर-राजाओं को बुला भेजो।' तब रवि-पुत्र ने अपने सेनापति नील को बुलाकर कहा--'विविध पर्वत, नदी तथा द्वीपों के राजाओं, वानर, लंगूर तथा रीछ-राजाओं को बुला भेजो। जो नहीं आवे, उसे भी आदेश भेजकर बुला लेना।'

यहाँ राम ने अनुज की सहायता तथा सांत्वना प्राप्त करते हुए, दुख से पीड़ित होते हुए जैसे-तैसे वर्षाकाल को समाप्त किया। शरत्काल का आगमन होते ही कोमलांगी सीता का स्मरण-मात्र से उनके मन में विविध इच्छाएँ उत्पन्न हुईं। मदनातुर हो वे भ्रमित मन से उदयाद्रि पर स्थित उडुपति को देखकर कहने लगे--'यह कैसा उत्पात है? यह कैसी रीति है? रात्रि के समय सूर्योदय क्यों हुआ? मेरे शरीर का ताप दुगुना हो

गया है । हे सौमित्र, मुझे पेड़ की छाया में ले चलो ।' तब लक्ष्मण ने कहा--'हे देव, यह चंद्र है, सूर्य नहीं । वह देखिए, उसमें हिरण का चिह्न दिखाई दे रहा है ।' लक्ष्मण की बातें सुनकर वे व्याकुल हो कह उठे--'हाय ! हिरण की-सी आँखोंवाली (हमसे) बिछुड़ गई है', और मूर्च्छित हो गये ।

लक्ष्मण ने दाशरथि का शीतलोपचार किया और उनकी मूर्च्छा दूर की । तब राम संभलकर बोले--'अब हमें तुरंत लंका पर आक्रमण कर देना चाहिए । हे सौमित्र, देखा तुमने ? सूर्य-पुत्र हमसे क्या कहकर गया था ? वर्षाकाल के समाप्त होते ही आने का वचन दिया था । वर्षाकाल तो समाप्त हो गया; किन्तु वह आया नहीं है । कदाचित् वह मेरे किये उपकार को भूलकर तारा के साथ रति-क्रीड़ा में मग्न रहता हो या राज्य-मद में अपने आपको भूलकर पड़ा हो । अन्यथा मेरे कार्य के संबंध में वह अपने मन में सोचता क्यों नहीं है ? हम इस कृतघ्नता को सहते हुए विलंब क्यों करें ? विबुध जनों का कहना है कि उपकार को भूल जानेवाले, वचन भंग करनेवाले और अपने मित्र का कार्य नहीं करनेवाले अधम पुरुष होते हैं । तुम शीघ्र जाकर सुग्रीव को बुलाओ। यदि वह आने से इनकार करे और अकड़ता हो, तो उससे कह देना कि जिस शर ने वालि का संहार किया था, वह कहीं गया नहीं है । अच्छा, अब तुम जाओ ।'

१२. लक्ष्मण का किष्किंधा में जाना

तब लक्ष्मण ने अपने अग्रज को प्रणाम किया और आँखों से अग्नि-कण उगलते हुए अपने श्रेष्ठ धनुष-बाण लेकर, लंबे-लंबे डग भरते हुए चले । वे एसे लंबे डग भरते हुए जा रहे थे कि पृथ्वी थर-थर काँपने लगी और उनके पवन-सम वेग के कारण सभी वृक्ष टूटकर गिरने लगे । वे पुण्यात्मा जब किष्किंधा पहुँचे, तब सभी कपि भयभीत हो जहाँ-तहाँ भागने लगे । किले के फाटक पर रहनेवाले वानरों ने यह सोचकर कि न जाने यह कौन है, तुरंत किले के किवाड़ बंद कर दिये और वानर-समूह को फाटक की रक्षा के लिए नियुक्त करके, उसका समाचार अपने राजा को सुनाने के लिए भयभीत होकर दौड़े । राजमहल में पहुँचकर उन्होंने हाथ जोड़कर तारा की परिचारिकाओं से सारा समाचार कह सुनाया । परिचारिकाओं ने, यह सोचकर कि राजा को समाचार देने के लिए यह उचित समय नहीं है, अंगद के पास जाकर हाथ जोड़कर कहा--'हे विख्यात तेजस्वी युवराज, हमारे किले के फाटक पर कोई महाबलशाली मुनि-वेश में जटा-वल्कल धारण किये, हाथ में धनुष-बाण लिये हुए यम के समान आकर खड़ा हुआ है ।' तब अंगद ने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि अवश्य राम के भाई होंगे । उसने तुरंत फाटक पर आकर लक्ष्मण को देखा । तब लक्ष्मण ने उसे देखकर कहा--'हे अंगद, मेरे आगमन का समाचार सूर्यपुत्र को (सुग्रीव को) सुना दो ।'

अंगद तुरंत उस सुग्रीव के पास पहुँचा , जो मन्मथ के विकार-सागर में निमग्न पड़ा था । रुमा अपने कर-पल्लवों से उसके चरणों को दबा रही थी । तारा तथा मृदूर उसके तकिये के समान बैठी थी । इस प्रकार के सुख-भोग में निमग्न सुग्रीव को देखकर अंगद ने कहा--'लक्ष्मण हमारे किले के फाटक पर, क्रोधाग्नि में जलते हुए खड़े हैं ।'

सुग्रीव ने शंकाकुल चित्त से अपने मंत्रियों को बुलाकर कहा—'क्या कारण है कि सौमित्र मित्रता छोड़कर इस प्रकार आ गये हैं ? मेरे जाने, मेरे द्वारा कोई अपराध नहीं हुआ है।' इस प्रकार दुविधा में पड़े सुग्रीव को देखकर हनुमान् ने कहा—"राम ने उस महेन्द्रसुत वालि का युद्ध में संहार करके तुम्हें कपियों का राज्य दिया था। ऐसे राम के कार्य को भुलाकर तुम इस प्रकार भोग-विलास में निमग्न रहते हो ? क्या यह उचित है ? इसमें कोई संदेह नहीं कि इसी कारण से सौमित्र यहाँ उग्र रूप धारण करके आये होंगे। ऐसे वीर को द्वार पर ही खड़ा रखना उचित नहीं। लोकवंद्य उस महात्मा का स्वागत करो; उनकी सेवा करो; राम के कार्य का विचार करो और अपना वचन पूरा करो।"

इन बातों को सुनकर सूर्य-पुत्र ने रामानुज को लिवा लाने का आदेश दिया। तब लक्ष्मण ने स्वर्ण-गोपुरों के हर्म्य-समूह, विश्वकर्मा के द्वारा निर्मित चित्रों का कला-कौशल, कैलास पर्वत के समान दीखनेवाले सौध, मध्यभाग में निर्मित क्रीड़ा-सरोवरों से युक्त उपवन देव-गंधर्व के अवतार, वानरों के आवास आदि से पूर्ण उस नगर में प्रवेश किया और वहाँ की अनुपम वस्तुओं की उत्कृष्टता पर आश्चर्य प्रकट करते हुए, इन्द्र के गृह की समता रखनेवाले वानरराज के प्रासाद में प्रवेश किया। वहाँ पहुँचकर उन्होंने उमड़ते हुए क्रोध से, अप्सराओं का सौंदर्य देखा और सुंदर स्त्रियों का स्निग्ध संगीत, उनकी वीणा, वेणु एवं मृदंगों की ध्वनि, तथा उनके गहनों की मधुर ध्वनि सुनी। वे यम के समान अत्यधिक क्रुद्ध होकर अंतःपुर के द्वार पर आकर खड़े हुए।

उनके आगमन का वृत्तांत सुनकर, सुग्रीव अकेले ही न आकर, तारा को भी अपने साथ लिये हुए शीघ्र वहाँ आया। अत्यधिक भय के साथ उनका क्रोध तथा उनका रूप देखकर बड़ी भक्ति से उनके चरणों पर गिरकर उचित अर्घ्य-पाद्य देने का उपक्रम किया। इतने में ही उसे देखकर लक्ष्मण गरज उठे—'हे रामद्रोही, हे कृतघ्न, क्या यह उचित है कि तुम मेरी पूजा-अर्चना करो। तुमने सत्यात्मा जानकीनाथ को वचन दिया था कि वर्षा-काल के समाप्त होते ही आऊँगा। किन्तु तुम नहीं आये। तुमने अपने वचन का भंग किया। रघुराम की आज्ञा का तुमने विचार नहीं किया। तुम पशुबुद्धिवाले हो। राम के जिस शर ने वालि का वध किया था, वह कालाग्नि उगल रहा है। वह तुम्हारा सर्वनाश किये बिना नहीं रहेगा। हे नीच वनचर, मूर्ख बनकर तुम स्वयं अपना नाश कर रहे हो।'

तब तारा ने अत्यंत भयभीत होकर कहा—'हे अनघ, यह सूर्य-पुत्र आपका दास है। यह राज्य-संपत्ति, यह ऐश्वर्य आप ही के दिये हुए हैं। ये रविसुत आपके ही लगाये हुए पौधे के समान हैं। ये सूर्य-पुत्र, रण-विशारद राम की आज्ञा का पालन नहीं कर रहे हैं, सो बात नहीं है। इस कार्त्तिक-पूर्णिमा तक सारी कपि-सेना को एकत्र करने के लिए उन्होंने सेनापति नील को भेज दिया है और स्वयं युद्ध में जाने के लिए सन्नद्ध होकर बैठे हैं। ये न राम-द्रोही हैं, न असत्यभाषी, न कृतघ्न ही हैं। अतः आप इनपर कृपा कीजिए।'

इन बातों को सुनकर लक्ष्मण का क्रोध शान्त हुआ और उन्होंने सुग्रीव की पूजा-अर्चना स्वीकार की। उसके पश्चात् सुग्रीव ने राजकुमार को एक स्वर्ण-पीठ पर आसीन

कराया और उनकी आज्ञा लेकर मृदु-मधुर वचन कहने लगा—'हे सौमित्र, क्या मैं प्रभु राघव के कार्य का विस्मरण करूँगा। मैं अभी सभी वानरों को एकत्र करूँगा और वैदेही के अन्वेषण के लिए सभी दिशाओं में आदमी भेजूँगा। चलिए, मैं अभी आपके पीछे-पीछे चलता हूँ। जिस शर से वालि पृथ्वी पर गिरा, जिस शर से सातों ताल-वृक्ष पृथ्वी पर गिरे, वही शर सभी दानवों का नाश करने के लिए तथा साध्वी को मुक्त करने के लिए पर्याप्त है। फिर भी मैं अत्यंत भक्ति के साथ प्रभु राम की सेवा करूँगा और यश प्राप्त करूँगा।'

१३. सुग्रीव का माल्यवंत पर पहुँचना

इतना कहकर सुग्रीव ने नीतिवान् हनुमान् को देखकर कहा—'अब विलंब करना उचित नहीं है। वचन-पालन के निमित्त यत्न करो। हमारे राज्य के सभी वानरों को सूचित करके, उनको रवाना करने का प्रयत्न करो। अब हमें प्रभु राम के दर्शनार्थ जाना है।' यों कहकर अत्यधिक उत्साह से सूर्यनंदन ने तारा आदि पत्नियों को विदा किया और सब दिशाओं में रहनेवाले वानर-सेनापतियों को बुलाकर, उन्हें प्रस्थान करने की आज्ञा दी।

उस समय प्रस्थान की भेरी की जो ध्वनि हुई, वह पृथ्वी, आकाश तथा दिशाओं को विदीर्ण करने लगी। सुग्रीव ने स्वर्ण तथा रत्नों से निर्मित एक रम्य शिविका में लक्ष्मण को बड़े आदर के साथ बिठाया, श्वेत छत्र तथा चामर उस महात्मा के निकट सजाये, और स्वयं एक शिविका पर आरूढ़ होकर लक्ष्मण के पीछे-पीछे चला। (लक्ष्मण के) आगे मंगल-वाद्य बज रहे थे और वंदी-मागधों की स्तुतियों की गंभीर ध्वनि हो रही थी। कपियों के नेता आ-आकर सुग्रीव के दर्शन कर रहे थे। नक्षत्रों के मध्य में विलसित होनेवाले चन्द्र के समान वह सुग्रीव, सभी वानर-वीरों की सेना को साथ लिये हुए, समस्त पृथ्वी को कँपाते हुए, लक्ष्मण की सेवा में निरत होकर वहाँ से चला।

माल्यवंत पर रामचन्द्र ने जब सेना का कोलाहल सुना, तब मन-ही-मन कहने लगे—'लो कपि-सेना आ गई।' अब उनका क्रोध शान्त हुआ और रवि-पुत्र के प्रति उनका हृदय कोमल बन गया। सुग्रीव कुछ दूर पर ही सुंदर तथा स्वर्ण-मणिमय शिविका से उतरकर, सौमित्र के साथ राम के पास आया और बड़ी भक्ति के साथ हाथ जोड़कर राम से कहा—'हे देव, सेनाओं को एकत्र करने में मैंने अपने वीरों को भेजा था। उनके एकत्र होते-होते इतना समय लग गया है। इसलिए आपके यहाँ आने में विलंब हुआ; अन्य किसी कारण से नहीं।' तब राम ने सुग्रीव को कृपा की दृष्टि से देखकर उसको आदर से अपनाया।

तब कैलास-पर्वत, मेरु-पर्वत, नीलाचल, निषधाद्रि, द्रोणाचल, ऋक्षाद्रि, पारियात्र, उदयाद्रि, रत्नगिरि, अस्ताद्रि, मलयाचल, मंथाद्रि आदि पर्वतों पर रहनेवाले महान् बाहुबली (वानर), पवनसुत (हनुमान्), पनस, अंगद, गवय, नील, गंधमादन, पावकाक्ष, कालपाश, ग्रधन, वेगदर्शी, गवाक्ष, नल, मैन्द, महानाथ, धूम्र, जंघ, गिरिभेदी, सुमुख, केसरी, ज्योतिर्मुख, विमुख, तार, विनत, गज, जांबवान्, संपाति, रंभ, समुद्र-पुत्र सुषेण, शतवली, शरभ, सन्नाथ

आदि श्रेष्ठ वीर अपने पुत्र, मित्र, सहोदर, तथा सगे-संबंधी सब एकत्र होकर क्रमशः दस, सौ, सहस्र, लाख, करोड़, सौ करोड़, पद्म, महापद्म और अंत में शंख की संख्या में ऐसे आ जुटे, मानों धरती ने ही इन सबको उत्पन्न कर दिया हो। जिस दिशा में देखें, कपि-ही-कपि दीखते थे। उन कपियों का समूह पृथ्वी से लेकर आकाश तक व्याप्त था। अति-भयंकर काल-दंड के समान दीखनेवाले भुज-दंड, सब दिशाओं में व्याप्त होनेवाली बडवानल की अग्नि-शिखाओं के समान आकाश से टकरानेवाले लांगूल, प्रलयकाल के मेघों की कांति (बिजली) के सदृश दीखनेवाले भयंकर दंष्ट्र, प्रलय-काल के सूर्यबिंब की समता करनेवाले मुँह के गह्वर, चंचल समुद्र के विपुल कल्लोलों के घोष के समान सुनाई पड़नेवाले गर्जन आदि से युक्त वानर-सेना को लिये हुए आनेवाले वानर-राजाओं को देखकर राम मन-ही-मन आश्चर्य करते हुए प्रसन्न हुए।

तब सुग्रीव ने राम को देखकर कहा—'हे देव, मेरी सेना के आगमन की रीति आपने देखी ? इनमें प्रत्येक बड़े यत्न से आपका कार्य साधने की क्षमता रखता है।' यों कहकर उसने उनकी शक्ति, उनके नाम, उनके जन्म-वृत्तांत, उनकी जाति, उनका सामर्थ्य, उनके रंग-ढंग, उनके भोजन तथा निवास आदि का समग्र वर्णन करके कहा—'हे देव, इन वानर-राजाओं में प्रत्येक आपकी पत्नी वैदेही को लाने की क्षमता रखता है। आप आज्ञा दें।' तब राम ने सूर्य-पुत्र को बड़े आदर से गले लगाया और कहा—'हे भानु-पुत्र, बल-संपत्ति में तुम्हारे लिए कोई भी अलभ्य नहीं है। तुम्हारे पौरुष को देखकर ही तो मैंने तुम्हें अपनाया था ? अब तुम वैदेही का पता लगाने के लिए (अपने वीरों को) भेजो।'

१४. सीता के अन्वेषण के लिए सुग्रीव का वानरों को भेजना

एक शुभ मुहूर्त्त में सुग्रीव ने 'विनत' नामक एक वानर वीर को देखकर कहा—'तुम अपनी सेना को साथ लेकर बड़ी सावधानी के साथ, पूर्व दिशा की ओर सीता की खोज में जाओ। तुम पहले यमुना नदी के तट पर तथा यमुना गिरि में उनको ढूँढ़ो और उसके पश्चात् गंगा नदी तथा शोण नदी के आसपास ढूँढ़ो। वहाँ से निकलकर कौशिकी, और सरस्वती नदियों में देखो। फिर समुद्र में ढूँढ़ो और पौण्ड्र तथा विदेह के प्रदेशों में सीता का अन्वेषण करो। वहाँ से तुम मालव, कोसल, मगध, ब्रह्म देश, आदि में भी मैथिली की खोज करना। तदनंतर समुद्र के तटों पर देखते हुए मंदर पर्वत पर चले जाना और वहाँ के किरातों के निवास-स्थानों में उनकी खोज करते हुए तत्परता के साथ यव-द्वीप तथा जंबूद्वीप को पार करके शिशिराद्रि पर पहुँच जाना। वहाँ कालोद नामक सरोवर के तट पर ढूँढ़ना। तदनंतर लोहित समुद्र पार करके शाल्मलि वृक्ष की छाया में उन्हें ढूँढ़ना। वहाँ से गरुड़ाश्रम में जाना। फिर गोशृंग पर्वत पर ढूँढ़कर, उस पर्वत के शिखरों पर रहनेवाले मदमत्त राक्षसों के मध्य सीताजी का अन्वेषण करना। उसके पश्चात् क्षीर सागर को सहज ही पार करके सुदर्शन नामक पर्वत पर उन्हें ढूँढ़ना। वहाँ से निकलकर शुद्धार्णव पार करना और महानुजात-रूप शिलाद्रि में सीताजी का अन्वेषण करना। वहाँ तुम सहस्र सिरोंवाले, इंदुवर्ण (आदि शेष को) बैठे हुए देखोगे। उनको प्रणाम करना और

वहाँ से चौदह योजन से अधिक की दूरी पर स्थित मेरु पर्वत पर ढूँढ़ना । उस मेरु पर्वत के चारों ओर चक्कर काटनेवाले सूर्य के चरणों में वन्दना करना और उसी प्रकार बालखिल्य आदि को भी प्रणाम करना। उसके पश्चात् उदयाद्रि में भी सीताजी का अन्वेषण करके रावण के निवास का पता लगाकर हमें समाचार देना । (उदयाद्रि के) उस पार की भूमि पर रवि का प्रकाश न पड़ने के कारण, वहाँ सदा अंधकार व्याप्त रहता है । अतः मैं वहाँ के प्रदेशों के संबंध में नहीं जानता । तुम तुरन्त यहाँ से प्रस्थान करो और एक मास के भीतर वापस लौट आओ । ऐसा न करने से तुम्हें अपमानित होना पड़ेगा ।'

तब विनत ने वालि के भाई सूर्य-पुत्र को अत्यन्त विनम्र होकर प्रणाम किया और एक लाख वानरों को साथ लेकर पूर्व की दिशा में प्रस्थान कर गया । इसके पश्चात् सूर्य-पुत्र ने सुशीर, नील, हनुमान्, अंगद, जांबवान्, गज, गंधमादन, गवाक्ष, विजय, मैन्द, द्विविद और तार आदि वानरों को बुलाकर कहा--'अब तुम योग्य वानरों को साथ लेकर शीघ्र दक्षिण दिशा में चल पड़ो । विंध्याचल से प्रारंभ करके तुम नर्मदा तथा दशार्ण नगर में ढूँढ़ना । फिर दण्डकवन में अवश्य उनकी खोज करना । वहाँ से चलकर गोदावरी के तट पर ढूंढ़ना; फिर वेत्रवती के निकट देखना । तदनंतर तुम कलिंग तथा निषध देशों में अन्वेषण करना । फिर कर्णाटक, आंध्र, चोल, चेर, केरल, तथा पाण्ड्य देशों में ढूंढ़ना । तत्पश्चात् मलय-पर्वत तथा कावेरी के किनारे देखना; फिर अगस्त्य के आश्रम में जाना और उस महात्मा की आज्ञा प्राप्त करके ताम्रपर्णी नदी को पार करना । उसके बाद समुद्र के तट पर स्थित वनों में ढूँढ़ना, और फिर स्वर्णपुरी में उनकी खोज करना । वहाँ से बड़ी तत्परता से महेन्द्र पर्वत पर जाकर देखना; उसके उस पार रहनेवाले विषमाद्रि में ढूँढ़ना; फिर पुष्पाद्रि में देखना और क्रैव कुंजर नामक पहाड़ पर अन्वेषण करना । वहाँ विश्वकर्मा द्वारा निर्मित अगस्त्य का आश्रम है । वहाँ भी सीता को ढूँढ़ना । उसके पश्चात् अंजना नदी को पार करना । अंजना नदी के उस पार भोगवती नामक नगर है, जो मणियों से पूर्ण तथा फणियों से रक्षित है । तुम अवश्य उस नगर में प्रवेश करके वहाँ सीता का अन्वेषण करना । वहाँ से चलकर तुम वृषभाद्रि पर जाना । उस पर्वत पर गंधर्व, अप्सराएँ तथा सुर रहते हैं । वहाँ भी तुम सीताजी को ढूँढ़ना और विना विचलित हुए वैतरणी पार करके वैवस्वत नगर में चले जाना । वहाँ यम की अनुमति प्राप्त करके समस्त पितृलोक में सीताजी की खोज करना और उनका समाचार जानकर एक महीने के भीतर अवश्य लौट आना । वैवस्वत नगर के उस पार का प्रदेश अंधकारावृत हैं । वहाँ देवता भी नहीं जा सकते ।

१५. हनुमान् को मुद्रिका देना

तब वे सब कपिश्रेष्ठ, आनंद के समुद्र में गोते लगाते हुए, सूर्य के तेज से भी अधिक दीप्तिमान् राम-भूपति को अपनी शक्ति का परिचय देते हुए कहने लगे—"हे राजन्, किसी भी प्रकार से क्यों न हो, हम जानकी का पता लगाये विना वापस नहीं लौटेंगे । तब राम, भावी कार्यों का निश्चय करते हुए बड़ी कृपापूर्ण दृष्टि से हनुमान् की ओर देखकर तथा उन्हें अपने निकट बुलाकर कहा--हे पवनसुत, तुम मेरे निकट आओ । तुम

आदि श्रेष्ठ वीर अपने पुत्र, मित्र, सहोदर, तथा सगे-संबंधी सब एकत्र होकर क्रमशः दस, सौ, सहस्र, लाख, करोड़, सौ करोड़, पद्म, महापद्म और अंत में शंख की संख्या में ऐसे आ जुटे, मानों धरती ने ही इन सबको उत्पन्न कर दिया हो । जिस दिशा में देखें, कपि-ही-कपि दीखते थे । उन कपियों का समूह पृथ्वी से लेकर आकाश तक व्याप्त था । अति-भयंकर काल-दंड के समान दीखनेवाले भुज-दंड, सब दिशाओं में व्याप्त होनेवाली बडवानल की अग्नि-शिखाओं के समान आकाश से टकरानेवाले लांगूल, प्रलयकाल के मेघों की कांति (बिजली) के सदृश दीखनेवाले भयंकर दंष्ट्र, प्रलय-काल के सूर्यबिंब की समता करनेवाले मुँह के गह्वर, चंचल समुद्र के विपुल कल्लोलों के घोष के समान सुनाई पड़नेवाले गर्जन आदि से युक्त वानर-सेना को लिये हुए आनेवाले वानर-राजाओं को देखकर राम मन-ही-मन आश्चर्य करते हुए प्रसन्न हुए ।

तब सुग्रीव ने राम को देखकर कहा--'हे देव, मेरी सेना के आगमन की रीति आपने देखी ? इनमें प्रत्येक बड़े यत्न से आपका कार्य साधने की क्षमता रखता है ।' यों कहकर उसने उनकी शक्ति, उनके नाम, उनके जन्म-वृत्तांत, उनकी जाति, उनका सामर्थ्य, उनके रंग-ढंग, उनके भोजन तथा निवास आदि का समग्र वर्णन करके कहा—'हे देव, इन वानर-राजाओं में प्रत्येक आपकी पत्नी वैदेही को लाने की क्षमता रखता है । आप आज्ञा दें ।' तब राम ने सूर्य-पुत्र को बड़े आदर से गले लगाया और कहा--'हे भानु-पुत्र, बल-संपत्ति में तुम्हारे लिए कोई भी अलभ्य नहीं है । तुम्हारे पौरुष को देखकर ही तो मैंने तुम्हें अपनाया था ? अब तुम वैदेही का पता लगाने के लिए (अपने वीरों को) भेजो ।'

१४. सीता के अन्वेषण के लिए सुग्रीव का वानरों को भेजना

एक शुभ मुहूर्त में सुग्रीव ने 'विनत' नामक एक वानर वीर को देखकर कहा-- 'तुम अपनी सेना को साथ लेकर बड़ी सावधानी के साथ, पूर्व दिशा की ओर सीता की खोज में जाओ । तुम पहले यमुना नदी के तट पर तथा यमुना गिरि में उनको ढूँढ़ो और उसके पश्चात् गंगा नदी तथा शोण नदी के आसपास ढूँढ़ो। वहाँ से निकलकर कौशिकी, और सरस्वती नदियों में देखो । फिर समुद्र में ढूँढ़ो और पौण्ड्र तथा विदेह के प्रदेशों में सीता का अन्वेषण करो । वहाँ से तुम मालव, कोसल, मगध, ब्रह्म देश, आदि में भी मैथिली की खोज करना । तदनंतर समुद्र के तटों पर देखते हुए मंदर पर्वत पर चले जाना और वहाँ के किरातों के निवास-स्थानों में उनकी खोज करते हुए तत्परता के साथ यव-द्वीप तथा जंबूद्वीप को पार करके शिशिराद्रि पर पहुँच जाना । वहाँ कालोद नामक सरोवर के तट पर ढूँढ़ना। तदनंतर लोहित समुद्र पार करके शाल्मलि वृक्ष की छाया में उन्हें ढूँढ़ना। वहाँ से गरुडाश्रम में जाना । फिर गोशृंग पर्वत पर ढूँढ़कर, उस पर्वत के शिखरों पर रहनेवाले मदमत्त राक्षसों के मध्य सीताजी का अन्वेषण करना । उसके पश्चात् क्षीर सागर को सहज ही पार करके सुदर्शन नामक पर्वत पर उन्हें ढूँढ़ना। वहाँ से निकलकर शुद्धार्णव पार करना और महानुजात-रूप शिलाद्रि में सीताजी का अन्वेषण करना । वहाँ तुम सहस्र सिरोंवाले, इंदुवर्ण (आदि शेष को) बैठे हुए देखोगे । उनको प्रणाम करना और

वहाँ से चौदह योजन से अधिक की दूरी पर स्थित मेरु पर्वत पर ढूँढ़ना । उस मेरु पर्वत के चारों ओर चक्कर काटनेवाले सूर्य के चरणों में वन्दना करना और उसी प्रकार बालखिल्य आदि को भी प्रणाम करना। उसके पश्चात् उदयाद्रि में भी सीताजी का अन्वेषण करके रावण के निवास का पता लगाकर हमें समाचार देना । (उदयाद्रि के) उस पार की भूमि पर रवि का प्रकाश न पड़ने के कारण, वहाँ सदा अंधकार व्याप्त रहता है । अतः मैं वहाँ के प्रदेशों के संबंध में नहीं जानता । तुम तुरन्त यहाँ से प्रस्थान करो और एक मास के भीतर वापस लौट आओ । ऐसा न करने से तुम्हें अपमानित होना पड़ेगा ।'

तब विनत ने वालि के भाई सूर्य-पुत्र को अत्यन्त विनम्र होकर प्रणाम किया और एक लाख वानरों को साथ लेकर पूर्व की दिशा में प्रस्थान कर गया । इसके पश्चात् सूर्य-पुत्र ने सुशीर, नील, हनुमान्, अंगद, जांबवान्, गज, गंधमादन, गवाक्ष, विजय, मैन्द, द्विविद और तार आदि वानरों को बुलाकर कहा—'अब तुम योग्य वानरों को साथ लेकर शीघ्र दक्षिण दिशा में चल पड़ो । विंध्याचल से प्रारंभ करके तुम नर्मदा तथा दशार्ण नगर में ढूँढ़ना । फिर दण्डकवन में अवश्य उनकी खोज करना । वहाँ से चलकर गोदावरी के तट पर ढूँढ़ना; फिर वेत्रवती के निकट देखना । तदनंतर तुम कलिंग तथा निषध देशों में अन्वेषण करना । फिर कर्णाटक, आंध्र, चोल, चेर, केरल, तथा पाण्ड्य देशों में ढूँढ़ना । तत्पश्चात् मलय-पर्वत तथा कावेरी के किनारे देखना; फिर अगस्त्य के आश्रम में जाना और उस महात्मा की आज्ञा प्राप्त करके ताम्रपर्णी नदी को पार करना । उसके बाद समुद्र के तट पर स्थित वनों में ढूँढ़ना, और फिर स्वर्णपुरी में उनकी खोज करना । वहाँ से बड़ी तत्परता से महेन्द्र पर्वत पर जाकर देखना; उसके उस पार रहनेवाले विषमाद्रि में ढूँढ़ना; फिर पुष्पाद्रि में देखना और क्रौंच कुंजर नामक पहाड़ पर अन्वेषण करना । वहाँ विश्वकर्मा द्वारा निर्मित अगस्त्य का आश्रम है । वहाँ भी सीता को ढूँढ़ना । उसके पश्चात् अंजना नदी को पार करना । अंजना नदी के उस पार भोगवती नामक नगर है, जो मणियों से पूर्ण तथा फणियों से रक्षित है । तुम अवश्य उस नगर में प्रवेश करके वहाँ सीता का अन्वेषण करना । वहाँ से चलकर तुम वृषभाद्रि पर जाना । उस पर्वत पर गंधर्व, अप्सराएँ तथा सुर रहते हैं । वहाँ भी तुम सीताजी को ढूँढ़ना और विना विचलित हुए वैतरणी पार करके वैवस्वत नगर में चले जाना । वहाँ यम की अनुमति प्राप्त करके समस्त पितृलोक में सीताजी की खोज करना और उनका समाचार जानकर एक महीने के भीतर अवश्य लौट आना । वैवस्वत नगर के उस पार का प्रदेश अंधकारावृत हैं । वहाँ देवता भी नहीं जा सकते ।

१५. हनुमान् को मुद्रिका देना

तब वे सब कपिश्रेष्ठ, आनंद के समुद्र में गोते लगाते हुए, सूर्य के तेज से भी अधिक दीप्तिमान् राम-भूपति को अपनी शक्ति का परिचय देते हुए कहने लगे—"हे राजन्, किसी भी प्रकार से क्यों न हो, हम जानकी का पता लगाये विना वापस नहीं लौटेंगे । तब राम, भावी कार्यों का निश्चय करते हुए बड़ी कृपापूर्ण दृष्टि से हनुमान् की ओर देखकर तथा उन्हें अपने निकट बुलाकर कहा—'हे पवनसुत, तुम मेरे निकट आओ । तुम

अवश्य ही जानकी को देख सकोगे । हे अनघ, तुम्हारे द्वारा कार्य की सिद्धि होगी । तुम कार्य करने की शक्ति रखते हो । तुम्हारा बाहुबल भी वैसा है । यह मेरी मुद्रिका लो । इसे सीता को देना और उस रमणी के चित्त का दुःख दूर करना । सीता से हमारे कुशल-समाचार कहना और उसका कुशल सुनाने के लिए तुम शीघ्र यहाँ लौट आना ।' इस प्रकार कहकर राम ने अंगूठी हनुमान् को दी, तो उसने उसे अपने सिर पर इस प्रकार रख लिया, मानों उदयाचल ने अपने शिखर पर सूर्य को धारण कर लिया हो ।

तब हनुमान् अत्यधिक हर्ष से उछल पड़ा और हाथ जोड़कर बोला--'हे सूर्य-कुल के अधीश्वर, चाहे जितनी भी दूर जाना पड़े, मैं अवश्य जाकर सीताजी का पता लगाकर आऊँगा । आवश्यकता हुई तो सूर्य तथा चंद्र को भी रोककर पृथ्वी, समुद्र तथा आकाश में भी प्रवेश करके सीता की खोज करूँगा । रावण के निवास में इस प्रकार प्रविष्ट होऊँगा कि मेरी अनुपम शक्ति की सब लोग प्रशंसा करेंगे । अब मैं जाता हूँ ।' ऐसा कहकर वायु-पुत्र ने अंगद आदि के साथ दक्षिण की ओर प्रस्थान किया ।

उसके पश्चात् वानरेश्वर ने सुषेण से कहा--'तुम एक लाख वानरों को साथ लेकर सौराष्ट्र में जाकर वहाँ सीताजी का अन्वेषण करो । वहाँ से निकलकर धैर्य के साथ वाह्लीक देश में प्रवेश करो और वहाँ ढूँढ़ने के पश्चात् श्रीसंपन्न सिंधु, सौवीर, तथा कैकय देश में जाकर देखो । तत्पश्चात् अच्छी तरह पुन्नाग वन में ढूँढ़ो और पश्चिमी सागर में ढूँढ़ो । तदनंतर ललित नारिकेल वनों में देखो और विना क्लान्त हुए वज्राद्रि पर पहुँच जाओ । वहाँ से निकलकर पारियात्रक (पर्वत के) वन में पहुँचो और वहाँ रहनेवाले गंधर्वों का परिचय प्राप्त करके सीताजी का अन्वेषण करो । उसके पश्चात् तुम उस चक्रवन्त पर्वत पर चले जाओ, जहाँ विष्णु ने हयग्रीव तथा पंचजन्य नामक राक्षसों का वध करके शंख तथा चक्र प्राप्त किये थे । वहाँ से तुम मेघाद्रि पर चले जाना और वहाँ पर स्थित साठ कंचनाद्रियों में सीताजी को ढूँढ़ना । फिर जिस स्थान पर सूर्य अस्त होता है, उस अस्ताद्रि में जाकर सौवर्ण नामक पर्वत पर ढूँढ़ो और फिर वरुण की राजधानी में देखो । तदनंतर वहाँ पर रहनेवाले मेरु सावर्णि नामक मुनि के दर्शन करके एक महीने के अंदर सीताजी का समाचार लेकर वापस आओ । उसके बाद की पृथ्वी सूर्य-रहित तथा सीमाहीन होने के कारण, मैं उसके संबंध में कुछ नहीं जानता ।' इस आदेश को मानकर सुषेण पश्चिम की ओर चल पड़ा ।

फिर सूर्य-पुत्र ने शतबली को बुलाकर कहा--"तुम एक लाख सैनिकों को लेकर पुलिंदों के देश में प्रवेश कर वहाँ सीताजी को ढूँढ़ो । फिर शौरसेन प्रदेश में देखो और वहाँ से समस्त भरत भूमि मे ढूँढ़ते हुए यवनराजा के देशों में जाओ । वहाँ ढूंढ़कर, कांभोज तथा कोंकण प्रदेशों को देखते हुए हेमंत पर्वत पर चले जाओ । वहाँ के सोमाश्रमों में ढूँढ़कर, श्रीसमन्वित कालाख्य शिखर पर पहुँच जाओ । वहाँ देखने के पश्चात् तुम सुदर्शन नामक पर्वत पर ढूँढ़ो और फिर कनकाद्रि पर पहुँच जाओ । वहाँ से कैलास पर्वत पर चले जाओ और कौबेर वन में देखो । फिर कुबेर के नगर में तथा उसके सरोवर के तट पर देखो । उसके पश्चात् कुबेर की आज्ञा प्राप्त करके क्रौंचाद्रि में जाकर सीताजी का अन्वेषण करो ।

वहाँ से मैनाक पर्वत पर पहुँच जाओ और वहाँ वैखानस नामक सरोवर में ढूंढ़ो। उस सरोवर के पार जो शैलोदया नामक नदी बहती है, उसे लाँघकर उत्तर कुरुभूमि में अन्वेषण करो। उन प्रदेशों में गंधर्व तथा अप्सराएँ अपनी इच्छा स विचरण करती रहती हैं। उन प्रदेशों में तुम सीताजी का अन्वेषण करो और वहाँ न ठहरकर उत्तर समुद्र को पार करके सोमाद्रि पर पहुँच जाओ। वहाँ ब्रह्मा तथा शिव अविचल समाधि में रहते हैं। तब तुम वहाँ से लौटकर एक महीने में समाचार ले आओ।' इस आदेश के अनुसार शतबली रामचन्द्र की आज्ञा लेकर उत्तर दिशा की ओर चल पड़ा।

उसके पश्चात् रघुराम ने सूर्य-पुत्र को देखकर कहा—'हे सुग्रीव, तुमने इन सब प्रदेशों को कब देखा?' तब सुग्रीव ने कहा—'हे देव, जिस दिन मैं वालि से भयभीत होकर भागा था और वालि मेरा पीछा करने लगा था, उस दिन मैंने पृथ्वी के चारों ओर चक्कर काटकर इन सब प्रदेशों को देखा था।'

इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए। राम की आज्ञा के अनुसार पूर्व तथा पश्चिम दिशाओं में गये हुए वानर सीता का अन्वेषण करते हुए पृथ्वी के उस भाग तक गये, जहाँ तक सूर्य की किरणें पहुँचती हैं और वहाँ से लौटकर राम से निवेदन किया कि हम कहीं भी सीताजी का पता नहीं लगा सके। तब राम तथा सुग्रीव बड़ी उत्कंठा से प्रतीक्षा करते हुए सोचते रहे कि न जाने अंगद आदि वानर-वीर क्या समाचार लायेंगे।

अंगद आदि वानर-वीर एक दूसरे से स्पर्धा करते हुए बड़े हर्ष के साथ अपनी शक्ति तथा प्रताप का प्रदर्शन करते हुए, सुग्रीव के आदेश का अक्षरशः पालन करते हुए, पहले विंध्याचल पर गये। वहाँ की गुफाओं तथा वनों में उन्होंने सीताजी को ढूंढ़ा। वहाँ से वे दक्षिण की ओर चले। मार्ग में पड़नेवाली पुष्प-लता-समूहों में, पेड़ों में, नदियों में, पहाड़ों में, तथा नगरों में सीताजी को ढूँढ़ते हुए, वे आगे बढ़ते जाते थे। किन्तु कहीं भी सीता का पता न लगने से वे बहुत चिंतित थे। वे उस वन में से होकर जाने लगे, जो महामुनि कंडु की शापाग्नि से निर्जन, छायाहीन तथा जल-रहित हो गया था। अपने दस वर्ष की अवस्था के पुत्र की मृत्यु के तीव्र दुःख से अभिभूत होकर कंडु मुनि ने अपने शाप से उस वन को ऐसा बना दिया था।

१६. महर्षि कंडु के आश्रम में

वानर अत्यंत क्लांत हो, पानी ढूँढ़ते हुए उस वन में फिर रहे थे। तब एक राक्षस ने उनका मार्ग रोककर भयंकर गर्जन करके कहा—'मेरे हाथों मरे विना अब तुम कहाँ जाओगे? तब अंगद ने क्रुद्ध होकर उस पर ऐसा प्रहार किया कि वह राक्षस मुँह से रक्त उगलते हुए पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब सब वानर थककर एक महान् वृक्ष की छाया में बैठ गये और प्यास से व्याकुल होते हुए सोचने लगे कि यहाँ जल कहाँ मिलेगा? वहाँ उन्होंने एक गुफा के द्वार से कुछ जल-पक्षियों को उड़ते हुए देखा और निश्चय किया कि अवश्य वहाँ जल मिल सकता है। यों सोचकर उन्होंने उस गुफा में प्रवेश किया। गुफा में अंधकार व्याप्त रहने के कारण उन्हें मार्ग न दीखता था। फिर भी धैर्य के साथ, एक दूसरे का आधार लेते हुए वे आगे बढ़ते गये। कुछ दूर जाने पर मार्ग का अंधकार

दूर हो गया और वहाँ उन्होंने संसार-भर में अद्भुत तथा अनुपम नगर देखा । वे खड़े होकर उस नगर के स्वर्ण-गोपुरों, स्वर्ण-सौधों, स्वर्ण-अट्टालिकाओं, स्वर्ण-दुर्गों, स्वर्ण-वृक्षों तथा स्वर्ण के पुष्प-लता-समूहों के देखकर आश्चर्यचकित हो गये । वे सोचने लगे—'यह कितने आश्चर्य की बात है । ऐसे ऐश्वर्य से परिपूर्ण यह नगर जन-रहित क्यों है ? यह नगर ऐसा क्यों बन गया ? उनकी समझ में नहीं आता था कि उस नगर से बाहर कैसे निकला जाय । चिंता में पड़े हुए वे कुछ देर तक वहीं भटकते रहे । एक दिन उन्होंने उस नगर के मध्य में स्थित सब सौधों में श्रेष्ठ, एक गगनचुंबी सौध को देखा । तुरंत सभी वानर उस सौध पर चढ़ गये और वहाँ मृगछाला पहनी हुई, तरुण इंदु की कांति के समान दीप्त एक पुण्यात्मा स्त्री को तपस्या में निरत देखा । हनुमान् ने उसे प्रणाम किया और अकलंक मन से कहा—'हे साध्वी, तुम कौन हो ? अकेली यहाँ किस कारण से तपस्या में लीन रहती हो ? यह पुण्य नगर किस महात्मा का है ? हमने तो ऐसा अनोखा नगर कहीं भी नहीं देखा ।'

१७. स्वयंप्रभा का सत्कार

तब वह कोमलांगी, हनुमान् को देखकर अपना पूर्व वृत्तांत यों कहने लगी—'पूर्व-काल में मय नामक राक्षस राजा ने ब्रह्मा की बड़ी तपस्या की और वास्तु-कला में अद्भुत कुशलता प्राप्त की । तत्पश्चात् उसने यह नगर बनाया और हेमा नामक एक दिव्य रमणी के साथ बहुत वर्ष तक अबाध गति से यहाँ जीवन व्यतीत करता रहा । अमरवल्लभ (इन्द्र) वज्रायुध से उस राक्षस राजा का वध करके उसकी स्त्री को उठा ले गया । उसी चंचल नेत्रवाली (देव-स्त्री) की मैं सखी हूँ । मेरे पति महान् आत्मा सौवर्णी हैं । मेरा नाम स्वयंप्रभा है और उस देव-स्त्री की आज्ञा से तप में निरत होकर मैं यहाँ रहती हूँ ।' इतना कहकर उसने कंद-मूल-फल दकर सब वानरों का सत्कार किया, जल देकर उनकी प्यास बुझाई और फिर पूछने लगी—'हे अनघ, तुम कौन हो और यहाँ क्यों आये हो ? यहाँ पहुँचना देवताओं के लिए भी कठिन है । तुम लोग यहाँ किस प्रकार आये ?'

तब हनुमान् ने उस स्त्री से कहा—'हे साध्वी, अपने पिता की आज्ञा से जब राम मुनि-वेश धारण कर दण्डक-वन में निवास करते थे, तब उनकी पत्नी कमलाक्षी सीता को (रावण) चुरा ले गया । राम की आज्ञा से हम उनके (सीता के) अन्वेषण में निकले हैं । मार्ग में प्यास के कारण अत्यंत क्लांत हो हमने एक गुफा में प्रवेश किया और उस गुफा के अंधकार से विचलित न होकर हम आगे बढ़ते गये और संयोग से तुम्हारे इस आश्रम में आ पहुँचे । यहाँ से निकलकर जाने का मार्ग न जानकर विवश हो हम कई दिनों से यहीं भटक रहे हैं ।'

तब उसने बड़ी भक्ति से उन्हें देखकर कहा—'तुम लोग राम के कार्य के लिए आये हो । तुम पुण्यात्मा हो । तुम लोग जो चाहो, सो मुझ से माँगो ।' तब उन्होंने कहा—'तुम हमें यहाँ से बाहर जाने का मार्ग बताओ । हम शीघ्र यहाँ से सीता के अन्वेषण में जाना चाहते हैं ।' तब उस स्त्री ने अत्यंत आनंद से कहा—'तुम सब अपनी आँखें बंद कर लो ।' उसके पश्चात् वह अपनी तपस्या की शक्ति से सहज ही एक क्षण-मात्र में उन्हें

गुफा के बाहर पहुँचा दिया और स्वयं फिर उस गुफा में चली गई। सभी वानर-पुंगव उस स्त्री की प्रशंसा करते हुए आगे बढ़े। वे श्रेष्ठ वीर-वानर, मार्ग में पड़नेवाले एक विशाल सरोवर में जल पीकर फिर महेन्द्राद्रि पर पहुँचे।

१८. वानरों की व्याकुलता

तब अंगद इस प्रकार दुःख करने लगा—'सूर्य-पुत्र की दी हुई अवधि समाप्त हो गई', किन्तु अबतक सूर्यवंशी (राम) की पत्नी का पता हम नहीं लगा सके। आज्ञा-पालन को विशेष महत्त्व देनेवाले सुग्रीव, यह कहकर हमारा वध कर देंगे कि इन्होंने मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया। इसलिए कपिराज के दर्शनार्थ हमारा जाना उचित नहीं है। हम जिस गुफा से अभी बाहर आये, उसी में प्रवेश करके, वहीं सुख से रहेंगे। वहाँ का मार्ग अष्ट-दिक्पालों के लिए भी अभेद्य है। वहाँ के वन विविध प्रकार के पके हुए फलों से भरे हुए हैं। वहाँ कोई भी प्रवेश नहीं कर पायेगा।' कुछ वानरों ने अंगद की बातों का समर्थन किया।

तब मारुति ने क्रुद्ध होकर कहा—'तुम बड़े बुद्धिमान् हो! काका की आज्ञा से बड़े वीर के समान राम का कार्य करने चले। अब चंचल-चित्त हो कपियों के साथ उस गुफा में प्रवेश करने का जो प्रस्ताव तुम करते हो, क्या यह सूर्य-पुत्र की आज्ञा का तिरस्कार नहीं हुआ? मैं, नील, तार और नल— चारों इसके लिए किसी भी प्रकार सहमत नहीं हो सकते। अन्य वानर भी अपने सगे-संबंधियों को छोड़कर तुम्हारी सेवा में नहीं रह सकेंगे। इतना ही नहीं, पूर्वकाल में इन्द्र ने अपने वज्र के आघात से उस गुफा का निर्माण किया था। लक्ष्मण के पास उनके वज्र की समता करनेवाले पैने अस्त्रों की कमी नहीं है। क्या वे बात-की-बात में तुम्हें और तुम्हारे सैनिक-बल का सर्वनाश नहीं कर देंगे? इसलिए यह दुर्बुद्धि छोड़ दो। हम सूर्य-पुत्र की सेवा में पहुँचकर कहेंगे कि हम सीता को नहीं देख सके। वे तुम्हें और हमें अवश्य ही क्षमा करेंगे। सौजन्य के कारण मुझ पर, और तुम्हारी माता पर अनुरक्त होने के कारण तुम पर, वे क्रोध नहीं करेंगे। तुम उनके पुत्र हो, इसलिए वे तुमको ही राज्य देंगे।'

तब वालि-पुत्र ने कहा—'मेरे काका पितृ-तुल्य वालि का वध कराके, उनकी स्त्री के साथ विवाह करके, उपकार करनेवाले राम के कार्य को भूलकर, भोग-विलास में निमग्न रहे। लक्ष्मण के क्रोध करने पर ही तो वे राम के पास आये। क्या, तुम उनका नीच व्यवहार नहीं जानते? ऐसे कृतघ्न तथा कामांध का विश्वास कैसे किया जाय? इतना ही क्यों? श्रीराम का कार्य किये बिना वहाँ पहुँचकर उस रवि-पुत्र के हाथों मरने की अपेक्षा यहीं मर जाना अच्छा है। अब प्रायोपवेश के लिए तत्पर हो जाओ।'

ऐसा कहकर अंगद तथा अन्य कपि दर्भ-शय्या पर लेट गये। अपना प्रयत्न विफल होने से वे मन-ही-मन दुःखी होने लगे। प्रायोपवेश करते रहने से तथा मानसिक पीड़ा से परितप्त होते रहने से वे बहुत ही निर्बल हो गये। कभी वे उठकर बैठते, कभी लेट जाते, कभी चारों दिशाओं में शून्य दृष्टियों से देखते, कभी अपने पुत्र तथा सगे-संबंधियों का स्मरण करते और कहते—'हे भगवान्, आप इस प्रकार हमारे प्राण क्यों लेना चाहते हैं?

फिर सभी वानर अलग-अलग समूहों में एकत्र होकर आपस में कहते—'हाय ! सूर्यकुलसंभव (राम) वन में आये ही क्यों ? अपनी पत्नी को राक्षसों के हाथ में खोया ही क्यों ? उस राक्षस ने जटायु का वध ही क्यों किया ? राम ने उसको देखा ही क्यों ? उस जटायु ने सीता का समाचार उनसे कहा ही क्यों ? राम पंपा सरोवर के तट पर आये ही क्यों ? वहाँ उन्होंने सुग्रीव से भेंट ही क्यों की ? सुग्रीव उनके मित्र ही क्यों बने ? राजकुमार ने वालि का वध की क्यों किया ? इतनी बड़ी कपि-सेना एकत्र ही क्यों हुई ? सूर्य-पुत्र ने हमें यहाँ भेजा ही क्यों ? हमारी ऐसी दुर्गति ही क्यों हुई ? हमारे प्राण व्यर्थ क्यों जायँ ? हाय, कैकेयी के वर ने सूर्यवंश के साथ ही हमारे वंश का भी सर्वनाश कर दिया ।' इस प्रकार सभी वानर विलाप करने लगे ।

१९. संपाति से भेंट

तब एक विशालकाय, यौवन तथा पंखों से हीन एवं अत्यंत वृद्ध संपाति नामक पक्षिराज उस पहाड़ की गुफा से बाहर निकला और मृत्यु की इच्छा करते हुए धरती पर पड़े हुए वानर-समूह को देखकर धीरे-धीरे उनके समीप आया । वह सोचने लगा कि भगवान् ने बड़ी कृपा करके मुझे आहार भेजा है । उसे देखकर सभी चपल वानर अपने निश्चय पर पश्चात्ताप करने लगे । तब अंगद ने हनुमान् से कहा—'यह पक्षी नहीं है । स्वयं यम निर्दयी होकर हमारे प्राण लेने के लिए इस रूप में आया है । उस दिन जटायु ने, राम की पत्नी को चुराकर ले जानेवाले रावण के साथ युद्ध करके उसके प्रखर खड्ग के प्रहार से मृत्यु प्राप्त की और फलतः सहज ही स्वर्ग का लाभ कर लिया । अब राम के कार्य के लिए आये हुए हम भी इस महापक्षी के हाथों में अपने प्राण खो दें, तो अच्छा ही होगा ।' उनकी बातों को सुनते ही अरुण-पुत्र (संपाति) का कंठ शोक से गद्गद हो गया । वह उन कपि-वीरों के निकट जाकर पूछने लगा—'हे वानरो, तुम कहाँ से आये हो ? वह जटायु मेरा प्रिय अनुज है । हम दोनों अरुण के पुत्र हैं । वह पैने तथा भयंकर नखवाला, गुफा के समान मुखवाला, दशरथ का मित्र, सतत सुखी मृत्यु को कैसे प्राप्त हुआ ?' तब वालि-पुत्र ने उसे सारा समाचार कह सुनाया । उस समाचार को सुनकर संपाति अत्यधिक शोक से संतप्त हुआ । दुःखी होनेवाले उस पक्षी को वानरों ने उठाकर समीप ही रहनेवाले समुद्र के पास पहुँचा दिया, तो उसने समुद्र में स्नान किया और उसके पश्चात् बड़े दुःख से पीड़ित होते हुए अपनी पूर्व-कथा उन वानरों से कहने लगा ।

उसने कहा—'मैं और जटायु, हम दोनों किसी समय कैलास पर्वत पर एक साथ रहते थे । अपने यौवन तथा शक्ति के गर्व से प्रेरित होकर एक दिन प्रभात के समय हम दोनों साथ-साथ आकाश में उड़ते-उड़ते बहुत दूर चले गये । मध्याह्न के समय हम सूर्य-मंडल के समीप पहुँचे । जटायु सूर्य की किरणों के लगने से जलने लगा । तब मैंने उसे अपने पंखों के नीचे छिपा लिया । तब मेरे पंख भी जल गये । पंखों के जल जाने से, अपनी सारी शक्ति खोकर, मैं इस आश्रम-भूमि में गिर पड़ा । पता नहीं, जटायु कहाँ चला गया । तुम लोगों से यह समाचार सुनकर भी मैं आज चुप बैठा हुआ हूँ । यदि पहले की तरह मेरे पंख होते, तो मैं अपनी शक्ति से अपने भाई का प्रतिशोध लेता और राम

के पास पहुँचकर उनसे अपने पौरुष की प्रशंसा प्राप्त करता । लेकिन अब उन बातों से क्या प्रयोजन है ?'

तब जांबवान् ने हनुमान् तथा अंगद को अत्यंत हर्षित करते हुए उस पक्षी से कहा–'ऐसे शक्तिशाली जटायु के अग्रज तुम्हारा इस संसार में कौन सामना कर सकता है ? कोई ऐसा स्थान नहीं होगा, जिसे तुमने नहीं देखा हो । तुम कृपया हमें बताओ कि रावण ने रघुराम की पत्नी को कहाँ छिपा रखा है ?'

२०. सीता का पता बताना

संपाति का संदेह दूर हुआ । उसने कहा—'मेरा पुत्र सुपार्श्व, दुर्दम पराक्रमी तथा महान् पितृभक्त है । पंखों के जलने से असमर्थ हो यहाँ पर पड़े हुए मुझे वह प्रति दिन बड़ी भक्ति के साथ भोजन लाकर दिया करता है । एक दिन की बात है कि वह बहुत विलंब से, बिना भोजन लाये ही यहाँ आया । जब मैंने उससे विलंब का कारण पूछा, तब उसने उत्तर दिया—'पिताजी, आपके लिए आहार प्राप्त करने के उद्देश्य से मैं हेमेन्द्र गिरि के समीप समुद्र-तट पर बैठा था । उसी समय काजल के पर्वत के सदृश एक राक्षस, सूर्य-प्रभा के समान एक रमणी को साथ लिये हुए आया और मुझसे मीठी-मीठी बातें करने लगा । मेरे मार्ग देने पर वह शीघ्र वहाँ से चला गया । तब वहाँ रहनेवाले मुनि मुझे देखकर हर्ष से कहने लगे कि आज तुम मृत्यु के मुख से बच गये । वह (काला पुरुष) यम रूपी रावण था । श्रीराम की पत्नी को चुराकर वह लंका को ले जा रहा था । इसी कारण से मुझे यहाँ आने में विलंब हुआ है । अब इसमें कोई संदेह नहीं है कि जानकी, बादलों से घिरी हुई चंद्रिका की तरह, राक्षस-रमणियों से परिवृत हो लंका में रहती है । मेरी दृष्टि इस पृथ्वी पर शत योजन तक देख सकती है । सभी पक्षियों की अपेक्षा मेरी दृष्टि तथा गमन-शक्ति अधिक है ।'

संपाति ने आगे कहा—'जब मेरे दोनों पंख जल गये और मैं मृत्यु से बचकर, मूर्च्छित होकर यहाँ गिर पड़ा, तब कई वर्ष तक प्यास से व्याकुल हो, कराहते हुए यहाँ पड़ा रहा । एक दिन मेरे सौभाग्य से सकल जनों का ताप हरण करनेवाले, साक्षात् निशाकर (चंद्रमा) के समान गुणवाले निशाकर (नामक मुनि) को मैंने देखा । सूर्य-तेज से दग्ध अपने पंखों का वृत्तांत मैंने उनसे कहा । वे मुनि-शिरोमणि पहले से ही मुझे जानते थे । इसलिए दयार्द्र होकर बोले—'आश्रितवत्सल, परात्पर विष्णु महाराज दशरथ के यहाँ जन्म लेंगे । वह सूर्य-वंश-तिलक वनवास के लिए भयंकर वनों में आयेंगे; उनकी पत्नी को रावण चुराकर ले जायगा । उस रमणी को अमृतांशु (चन्द्र) अमृतान्न देंगे, जिससे वह क्षुधा तथा तृषा से मुक्त होकर रहेगी । तब राम शीघ्र आकर इन्द्र-पुत्र (बालि) का संहार करके सूर्य-पुत्र की रक्षा करेंगे और सीता के अन्वेषणार्थ वानरों को चारों दिशाओं में भेजेंगे । जिस दिन तुम राम के उन भटों को यह वृत्तांत सुनाओगे, उसी दिन तुम्हारे पंख तुम्हें मिल जायेंगे । उनके आदेशानुसार मैंने तुम लोगों से यह वृत्तांत सुनाया । लो, देखो, मुझे अपने पंख भी मिल गये ।' इतना कहकर वह एकदम उछलकर आकाश में उड़ा और कहने लगा—'देखा मैंने सीता को । लंका के समीप एक वन में मैंने सीता को देखा ।

वह लो, यहाँ से शतयोजन की दूरी पर, लंका में, वह पवित्र साध्वी बैठी है। तुम प्रायोपवेश छोड़ो। अब उठो। पौलस्त्यपति (रावण) की लंका में जाकर सीता के दर्शन करो।'

इतना कहकर वह वानरों को लंका का मार्ग बताकर बड़े हर्ष से महेन्द्र गिरि पर चला गया। तब सभी वानर-वीर प्रसन्नचित्त हो, शीघ्र गति से महासागर के पास पहुँचे। उस सागर की शब्दमयी तरंगें, प्रचंड वायु के आघात से, अत्यधिक उद्धत होकर विहार कर रही थीं। उनसे उत्पन्न झाग दिगंतों तक फैल गया था और ऐसा लग रहा था, मानों वह समुद्र का गंडूष (कुल्ली) हो; उस समुद्र में भयंकर मगर अपनी पूँछ-रूपी तलवारों से बड़े आवेश से लड़ रहे थे। ऐसे समुद्र के निकट पहुँचकर सभी वानर (मन-ही-मन) अत्यंत व्याकुल हो, थोड़ी देर तक निश्चेष्ट बैठे रहे और चिन्ता करने लगे कि इस समुद्र को कौन पार कर सकता है ? ऐसी शक्ति किसमें है ?'

२१. वानरों का अपनी शक्ति का परिचय देना

अंगद ने वह रात उस समुद्र-तट पर बिताई और दूसरे दिन अलग-अलग सभी वानरों को संबोधित करके कहा--'यदि तुम वीर वानर अपने पौरुष को खोकर, सौ योजन की जलराशि को पार करने के लिए इतना झिझकते हो, तो अपयश-रूपी विशाल समुद्र को किस प्रकार पार कर सकोगे ? तुम सब अलग-अलग अपनी-अपनी शक्ति का परिचय मुझे दो।'

तब व्याकुल-चित्त सभी वानर सावधान हो गये और अपनी शक्ति का विचार कर अपने-अपने बल का परिचय देने लगे। गज ने कहा-'मैं दस योजन लाँघ सकता हूँ।' गवाक्ष ने कहा--'मैं बीस योजन विना किसी कठिनाई के लाँघ सकता हूँ।' शरभ ने कहा--'अपनी शक्ति के प्रताप स मैं चालीस योजन पार कर सकता हूँ।' गंधमादन ने अपना पराक्रम प्रकट करते हुए कहा--'मैं पचास योजन की दूरी लाँघ सकता हूँ।' मैन्द ने कहा--'मैं अपनी शक्ति को हानि पहुँचाये बिना साठ योजन पार कर सकता हूँ। द्विविद ने कहा--'विना विशेष प्रयत्न के मैं सत्तर योजन की दूरी लाँघकर जा सकता हूँ।' तार ने अपनी शक्ति को प्रकट करते हुए कहा--'मैं अस्सी योजन लाँघ सकता हूँ।' इस प्रकार सभी वानर निःशंक होकर अपनी-अपनी शक्ति का सही-सही परिचय देने लगे।

तब अत्यंत वृद्ध तथा समस्त संसार में पराक्रमी, भल्लूकनाथ (जांबवान्) ने कहा- "यदि मैं अपने लड़कपन (या यौवन) की बात कहूँ, तो वह उपहास का विषय होगा, फिर भी कहता हूँ, सुनो। पहले जब अमृत के लिए सुर तथा दानवों ने युद्ध किया था, तब मैंने सुरों की सहायता की थी और बड़े प्रेम से उनका दिया हुआ अमृत पान किया था। मैं सप्त समुद्रों को पार करने की क्षमता रखता हूँ। उदयाचल पर खड़े होकर अपना दूसरा चरण अस्ताचल पर रख सकता हूँ। सभी लोकों में मेरी समता कर सकनेवाला कोई नहीं है। जब त्रिविक्रम ने महाबली बलि महाराज का दर्प तोड़ा था, उस दिन मैंने समस्त पृथ्वी की इक्कीस बार परिक्रमा की और त्रिविक्रम की प्रार्थना की। उस समय मेरी टाँग टूट गई; मेरा दर्प तथा शक्ति नष्ट हो गई। ऊपर से वृद्धावस्था ने भी मुझे आ घेरा।

अब मैं बहुत वृद्ध हो चला हूँ। मेरी अवस्था नब्बे वर्ष की है। अब मैं ऐसा कार्य करने योग्य नहीं रहा। तब नील ने कहा--'मैं नब्बे योजन की जलधि को पार कर सकता हूँ। मारुति अपनी शक्ति का परिचय दिये बिना चुपचाप बैठा रहा। तब अंगद ने कहा--'मैं अत्यधिक प्रयत्न से शत योजन पार कर सकता हूँ, किन्तु कदाचित् लौटकर आ नहीं सकता।'

तब जांबवान् ने अंगद से कहा--'हे अनघ, तुम हमारे नेता हो। तुम इस समुद्र को पार भी कर सकते हो और लौट भी सकते हो। तुम सुग्रीव के समान इस वानर-सेना के राजा हो। अतः तुम्हारे लिए उचित यही है कि तुम हम से काम लो। इतनी दीनता क्यों व्यक्त करते हो ? राम के कार्य में सतत तत्पर रहनेवाले, रवि-पुत्र के मंत्री, इस वानर-समूह के लिए प्राण-सम, पवन-कुमार के रहते, भला तुम्हारे लिए कौन-सा कार्य असाध्य है ? तुम निश्चिंत रहो।"

२२. समुद्र लाँघने के लिए हनुमान् को प्रेरित करना

इसके पश्चात् जांबवान् ने हनुमान् को बुलाकर बड़े स्नेह से कहा--"हे पवन-सुत, यह क्या उचित है कि अपना काम हम पर छोड़कर स्वयं चुपचाप बैठे रहो ? ललित लावण्य-विलास से परिपूर्ण अप्सरा स्त्रियों में श्रेष्ठ 'पुंजिक-स्थल' नाम से विख्यात तुम्हारी माता ने अग्निदेव के शाप से अंजना के नाम से वानर-युवती होकर जन्म लिया और इस पृथ्वी पर केसरी की पत्नी होकर रही। एक दिन जब वह वन में विचरण कर रही थी, तब वायुदेव उस युवती के मंद गमन, सुडौल जंघा, भारी नितंब, चंद्र-मुख, सुंदर अधर, क्षीण कटि, उन्नत कुच और विशाल आँखें देखकर उस पर मोहित हो गया। मन्मथ के बाणों से आहत होकर उसने अंजना के वस्त्रों को उड़ा दिया और उसके समीप पहुँचकर उसका आलिंगन किया। तब अंजना ने क्रुद्ध होकर कहा--'किस दुर्मति ने मेरा शील बिगाड़ने का यह साहस किया है ?' तब वायुदेव ने कहा--'हे सुंदरी, क्रुद्ध मत होओ। मैं पवन हूँ। हे कमलाक्षी, मैंने तुम्हारे साथ केवल हृदय-संगम किया है, जिससे तुम्हारा शील खंडित न हो। इससे तुम्हें ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा, जो बल, तेज, विक्रम, पौरुष तथा धैर्य से संपन्न होगा।' इतना कहकर वायुदेव चले गये। उस नारी-रत्न ने वायुदेव की विमल कृपा से अत्यन्त हर्ष से तुम्हें जन्म दिया। तुम इस पृथ्वी पर वायु के समान शक्ति-शाली हो। यही नहीं, किसी भी आयुध से तुम्हारी मृत्यु नहीं हो सकती। सभी लोकों में तुम्हारी समता करनेवाला कोई नहीं है। मैं तुम्हारी शक्ति से भली भाँति परिचित हूँ। अतः, तुम समुद्र को पार करो, सीता के दर्शन करो और यत्नपूर्वक राम का कार्य संपन्न करके, कपियों के, दशरथ-पुत्रों के तथा वानर-राजा के प्राणों की रक्षा करो। हे जगत्प्राण-नंदन, तुम इस प्रकार उत्तम लोकों की गति प्राप्त करो।"

तब हनुमान् ने कहा--"ऐसा ही हो। मैं तुम्हारी आज्ञा का पालन करूँगा। हे वानरो, आज तुम मेरी शक्ति देखो। मैं समस्त लोक के हितार्थ समुद्र को पार करूँगा। भले ही देवता भी मुझे रोकें; मैं उन्हें भी जीत लूँगा। (आवश्यकता पड़े तो) समस्त लोकों का नाश भी कर दूँगा। सब को आश्चर्यचकित करनेवाली अपनी शक्ति से

लंका में प्रविष्ट होऊँगा । अथक परिश्रम करके ढूँढूँगा और भूमि-सुता को देखकर ही वापस आऊँगा । अथवा उस लंका को भी उखाड़कर यहाँ ले आऊँगा तथा सीता को अवश्य ही राम के चरणों में पहुँचा दूँगा । नहीं तो सभी समुद्रों का मंथन करूँगा, उद्धत गति से अमराद्रि को नष्ट-भ्रष्ट करूँगा, पृथ्वी को चूर-चूर कर दूँगा, मृत्यु का भी संहार करूँगा, समस्त द्वीपों को छान डालूँगा, देवेन्द्र को त्रास दूँगा, सभी दुष्ट राक्षसों का संहार करूँगा, और समस्त संसार में अंधकार फैला दूँगा, किन्तु बिना कार्य संपन्न किये तुम्हारे निकट नहीं आऊँगा ।'

२३. समुद्र पार करना--मैनाक से भेंट

इतना कहकर हनुमान् महेन्द्रगिरि पर चढ़ गया और त्रिविक्रम विष्णु के समान ऐसा अद्वितीय शरीर धारण किया, मानों प्रलयकालीन काल सभी समुद्रों के साथ सारी सृष्टि को निगलने के लिए प्रस्तुत हुआ हो। उसके पश्चात् उसने अंगद आदि वानरों की अनुमति ली। मन-ही-मन अपने पिता वायुदेव का स्मरण किया, श्रीराम के चरण-कमलों को अपने हृदय में प्रतिष्ठित किया । दृढ़ता के साथ अपने पैरों को पहाड़ पर जमाया, कंठ ऊपर को उठाया; देह को झुकाया और भौंहें उठाकर विशाल जल-राशि को चारों ओर से देखा । उसके उपरान्त उसने रावण की नगरी पर दृष्टि डाली, अपना लांगूल जोर से घुमाया, दोनों कान खड़े किये, शिलाओं पर अपने हाथ टेके और आकाश की ओर बड़े वेग से ऐसे उछला, जैसे पूर्वकाल में अमृत को छीनने के उद्देश्य से गरुड़ पृथ्वी से आकाश की ओर उड़ा था । उस वेग के प्रभाव से पर्वत-शृंग चूर-चूर हो गये, मानों रावण ने अबतक जो अत्यधिक महत्त्व और यश प्राप्त किया था, वे सब चूर-चूर हो गये हों । (उस पर्वत पर के) वृक्ष उसके वेग के कारण उसके साथ ही आकाश की ओर उड़ चले और खंड-खंड होकर उस सागर में ऐसे गिरे, मानों पवन-पुत्र ने स्वयं ही भावी सेतु का शंकु-स्थापन किया हो ।

उस समय उत्पन्न प्रचंड वायु के कारण बादल चारों ओर ऐसे भागे, मानों वे पवन-पुत्र के लंका में आगमन की सूचना इंद्र आदि देवताओं को देने के लिए जा रहे हों। समुद्र का सारा जल एक ओर हट गया और जल के भीतर पाताल-लोक ऐसा दीखने लगा, मानों समुद्र हनुमान् को यह दिखा रहा हो कि रावण ने मेरे जल में जानकी को नहीं छिपाया है । हनुमान् की स्वामिभक्ति, धैर्य, साहस, तेज, चातुर्य, और उदात्त शक्ति को देखकर इन्द्रादि देवता उनकी प्रशंसा करने लगे ।

इस प्रकार जानेवाले हनुमान् को देखकर समुद्र मन-ही-मन सोचने लगा—'यह पुण्यात्मा, जगत् के कल्याण के लिए बहुत दूर जा रहा है । उसका श्रम दूर करने के निमित्त, मैं मैनाक को भेजूँगा।' यों सोचकर उसने मैनाक को बुलाकर कहा—'अभी हनुमान् यहाँ आया है । उचित रीति से उसके अतिथि-सत्कार की व्यवस्था करो ।'

शोभा-समन्वित, स्वर्ण-शिखरों से विलसित, स्वर्ग-सम सुंदर वह मैनाक पर्वत तुरन्त अपने विशाल पंखों को फैलाते हुए उड़ा और समुद्र के मध्य भाग से ऊपर आया और हनुमान् के सामने आ पहुँचा । हनुमान् ने अपने सामने उस विशाल पर्वत को देखकर

सोचा--'यह दैत्यों की माया है । यह कदाचित् मेरे कार्य में विघ्न डालना चाहता है । पर कोई चिंता की बात नहीं है । मैं अपनी शक्ति से इसका नाश करूँगा । यों सोचकर हनुमान् ने वज्र के समान कठोर अपने वक्षःस्थल से उस पर्वत को धक्का दिया । तुरंत वह पर्वत, बवंडर में फँसे हुए सूखे पत्ते की तरह शक्तिहीन होकर चक्कर खाने लगा । फिर वह मनुष्य का रूप धारण करके हनुमान् से बोला--'हे अनिलकुमार, मैं तुम्हारा शत्रु नहीं हूँ । समुद्र की आज्ञा से मैं तुम्हारे पास आया हूँ । उस महानुभाव ने तुम्हें आतिथ्य देने के निमित्त, मुझे तुम्हारे पास भेजा है । इसलिए मैं तुम्हारे पास आया हूँ । प्राचीन काल में सभी पर्वतों के पंख थे । अपने इन पंखों के कारण जब वे गर्व करने लगे, तब इन्द्र क्रोध में आकर वज्रायुध से सभी पर्वतों के पंख एक-एक करके काटने लगा । तब यह देखकर तुम्हारे पिता पवन सहज ही मुझे इस लवण-समुद्र में ले आये और मेरे पंखों की तथा मेरी रक्षा की । इसलिए मैं तुम्हारा अपना ही व्यक्ति हूँ; पराया नहीं हूँ । मैं पर्वतश्रेष्ठ शीताचल का पुत्र हूँ । मेरा नाम मैनाक है । मेरे पेड़ों पर जो फल लगे हैं, उनको ग्रहण करके, अपनी क्षुधा तथा क्लान्ति दूर करो । हे पवन-पुत्र, उसके पश्चात् तुम लंकापुर को जा सकते हो ।' तब उस महाबली हनुमान् ने कहा--'अब विश्राम करना उचित नहीं है । मैंने प्रतिज्ञा की है कि मैं समुद्र के मध्य में कहीं नहीं ठहरूँगा । अतः, हे पर्वतराज, मुझे यहाँ कहीं ठहरना नहीं चाहिए ।' इस प्रकार कहकर उसने अपने करतल से उस पर्वत की मूर्धा का स्पर्श किया और कहा--'हे अनघ, तुम्हारी पूजा फलवती हुई । अब तुम जाओ ।'

इस प्रकार कहकर शीघ्र गति से जानेवाले अनिलकुमार की शक्ति को देखकर देवता आश्चर्य तथा हर्ष से भर गये । देवेन्द्र ने भी मैनाक पर्वत को देखकर बड़े प्रेम से कहा--'श्रीराम के कार्य के लिए जानेवाले हनुमान् के प्रति तुमने उचित व्यवहार किया । अतः, मैं तुम्हें अभय-दान देता हूँ । तुम सुख से यहीं रहो ।'

तब गंधर्व, अमर तथा मुनियों ने हनुमान् की शक्ति की परीक्षा लेने का विचार करके सुरसा नामक नाग-माता को हनुमान् का मार्ग रोकने के लिए भेजा । तब वह एक राक्षसी का रूप धारण करके हनुमान् के मार्ग में आ खड़ी हुई और बोली--'इस समुद्र के ऊपर से होकर जानेवाले तुम्हें मैंने देखा; दैवयोग से अब मेरे प्राण बच गये, मैं बहुत भूखी हूँ । अतः, तुम अब मुझसे बचने की चेष्टा न करके, मेरे मुँह में प्रवेश करो । तब हनुमान् ने कहा--हे नारी, तुम मेरा मार्ग मत रोको । मैं राम का कार्य पूरा करके लौटते समय तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा । अब मैं जाता हूँ । मैं असत्य वचन नहीं कहता ।'

तब वह स्त्री क्रुद्ध होकर हनुमान् का मार्ग रोककर खड़ी हो गई और बोली,--'मैं तुम्हें जाने नहीं दूँगी; मैं अवश्य तुम्हारा वध करूँगी ।' यों कहती हुई उसने अपना मुँह खोल दिया । तब अनिलकुमार ने अपना शरीर दस योजन तक बढ़ा लिया । तब उस स्त्री ने अपना मुँह उसके दुगुना चौड़ा कर लिया । हनुमान् ने अपना शरीर तीस योजन तक बढ़ाया, तो उस स्त्री ने अपना मुँह चालीस योजन विशाल बना लिया । इस प्रकार एक-दूसरे से स्पर्धा करते हुए क्रमशः अपने शरीर तथा मुँह को शत यो[illegible]

बढ़ा दिया । तब हनुमान् ने बड़ी चतुरता से एक अंगुष्ठ प्रमाण-मात्र का अपना शरीर बनाकर, सूक्ष्म रूप से उस स्त्री के मुँह में प्रवेश करके सहज ही इस प्रकार बाहर निकल आया जैसे कोई ज्ञानी संसार के जटिल बंधनों से अपने-आपको मुक्त करके निकल आता है । उसके पश्चात् उसने उस स्त्री को देखकर कहा--'हे नारी, मैंने तुम्हारी इच्छा पूरी कर दी; अब मैं समुद्र पार जाऊँगा ।' उस स्त्री ने भी उस कपिकुलोत्तम हनुमान् की बुद्धि की प्रशंसा करती हुई दिव्य रूप धारण करके बड़े स्नेह से आशीर्वाद दिया और कहा–'शीघ्र ही तुम्हारा कार्य सिद्ध हो ।'

तब हनुमान् समझ गया कि यह छायाग्राहिणी है और बिना भय के तुरंत सूक्ष्म रूप धारण करके उसके उदर में प्रवेश किया । फिर उसने उसका उदर चीरकर उस दुष्ट राक्षसी को समुद्र में फेंक दिया । इन्द्रादि देवता इसे देखकर अत्यंत हर्षित हुए और पुष्प-वृष्टि करने लगे । इस प्रकार हनुमान् सहज ही समुद्र पार करके सुवेल (त्रिकूट) पर्वत पर पहुँच गया ।

इस प्रकार, आंध्र-भाषा का सम्राट्, श्रेष्ठ काव्यागमों के ज्ञाता, पवित्रात्मा, आचारवान्, अपार धीमान्, तथा भूलोक का निधि, गोन बुद्ध नरेश ने, गुणवान, धीर, शत्रुओं में भय उत्पन्न करनेवाले, महात्मा, श्रेष्ठ वीर, अपने पिता विट्ठलनरेश के नाम पर समस्त संसार में पूज्य, अनुपम शब्दार्थों से परिपूर्ण तथा लोकप्रिय रामायण के किष्किंधाकांड की रचना इस प्रकार की कि वह अलंकार तथा भावों से युक्त हो और जबतक सूर्य तथा चंद्र इस संसार में रहें, तबतक इसकी प्रशंसा होती रहे ।

किष्किंधाकांड समाप्त

श्रीरंगनाथ रामायण

(सुन्दरकांड)

१. हनुमान् का लंका में प्रवेश

श्रीराम का कार्य संपन्न करने का निश्चय करके हनुमान् ने विशाल सागर को ऐसा पार किया, मानों वह एक छोटी-सी नहर हो और उस सुबेल पर्वत पर चढ़ गया, जो लंकापुरी के निकट था। वह लंकापुरी सुंदर शृंगों से, पहाड़ी तराइयों से, प्रचुर वृक्षों तथा लता-समूहों से, कैरव, बंधूक, कल्हार एवं कुमुद आदि पुष्पों से, सारस आदि जलचर पक्षियों से, विलास गति से विहरण करनेवाले हंसों के कलरव से, क्रौंच पक्षियों के निनादों से तथा कमल का मकरंद पान करने से मत्त होकर झंकार करनेवाले भ्रमरों की पंक्तियों सं युक्त तड़ागों से परिपूर्ण था।

उस पर्वत पर चढ़कर हनुमान् ने दक्षिण दिशा में दृष्टि दौड़ाई और लंका नगरी को देखा। वह नगरी त्रिकूटाद्रि पर सुशोभित थी, और धर्म, अर्थ तथा काम इन तीनों को एकत्र किये बैठी लक्ष्मी के समान सुशोभित थी। अपनी उज्ज्वल कान्ति के कारण वह ताराद्रि की समता करती थी और आकाश-मार्ग से स्पर्धा करती हुई दिखाई पड़ती थी। वह अपने रत्नों की कान्ति से सुशोभित होकर ऐसी दीखती थी, मानों देवताओं से युक्त अमरावती ही समुद्र के मध्य में सुंदर ढंग से शोभायमान हो रही हो। अथवा सुंदर

मकर, कच्छप तथा पद्मनिधियों से युक्त अलकापुरी ही मानों कुबेर से रूठकर वहाँ आ गई हो; या चिरकाल से समुद्र के नीचे रहने के कारण ऊबकर भोगवती नगरी ही समुद्र-तल से ऊपर उठकर त्रिकूट पर्वत पर आ गई हो । उस नगरी का प्रभा-समन्वित स्वर्ण-दुर्ग, समुद्र को ही अपनी परिखा बनाकर, ब्रह्माण्ड के समान सुशोभित था और ब्रह्मादि देवताओं को भी अभेद्य दीखता था । वह लंकापुरी दुर्वार गज, रथ, तुरंग तथा भयंकर एवं श्रेष्ठ वीरों से युक्त थी और अलौकिक ऐश्वर्य से संपन्न हो बहुत सुंदर दीखती थी । ऐसी लंका नगरी को देखकर हनुमान् आश्चर्य-चकित हो गया और निर्निमेष नेत्रों से जहाँ-तहाँ देखता ही रह गया । वह सोचने लगा--'अकेले समस्त लोकों को जीतकर, अपने पराक्रम से सभी लोकों में अपनी श्रेष्ठता स्थापित करनेवाला दशकंधर ऐसे ऐश्वर्य से संपन्न लंका का राजा बना हुआ है । फिर भी, उसके भाग्य में जीवित रहना नहीं लिखा है । सर्वेश्वर रामचंद्र की पत्नी को ले आकर इस मूर्ख ने क्यों मृत्यु को आमंत्रित किया है ?' इस प्रकार रावण की निंदा करते हुए वह शक्तिशाली हनुमान् लंका में प्रवेश करने का उपाय सोचने लगा । वह नगर के उत्तर द्वार पर पहुँचा और सारी परिस्थिति तथा अपने कर्त्तव्य का विचार किया । उसके पश्चात् वह सोचने लगा—'भला, इस विशाल सागर को वानर कैसे पार कर सकेंगे ? यदि पार भी करेंगे, तो इन्द्रादि देवताओं के लिए भी दुर्भेद्य इस लंका को जीतना क्या किसी भी रीति से उनके लिए संभव होगा ? युद्ध-भूमि में भयंकर साहसी रावण को राम कैसे जीत सकेंगे ?'

एक मुहूर्त्त काल तक इस प्रकार सोचने के पश्चात् हनुमान् ने मन-ही-मन विचार किया—यदि मैं अपने इस विशालकाय के साथ, दिन को ही इस नगर में प्रवेश करूँगा, तो राक्षस भटों से मेरा सामना हो जायगा । उस प्रकार मैं सीताजी का पता नहीं लगा सकूँगा । अतः मैं सूक्ष्म रूप धारण करके इस नगर में प्रवेश करूँगा और दैत्यों की आँखों में धूल झोंककर अवश्य ही सीताजी के दर्शन करूँगा । इस प्रकार मन में विचार करके वह सूर्यास्त की प्रतीक्षा में बैठा रहा । निदान सूर्य-बिंब इस तरह तिरोहित होने लगा, मानों सूर्य यह सोच रहा हो कि विशाल शक्तिशाली राम की पत्नी सीता देवी का पता लगाने के लिए जो यह (हनुमान्) आया है, मेरे आकाश में रहते समय उसके लिए लंका में प्रवेश करना कठिन होगा । दिशाओं में घोर अंधकार ऐसा व्याप्त हो गया, मानों अनिल-पुत्र के आगमन से भयभीत हो राक्षस (रावण) के घोर पाप चारों ओर भाग रहे हों । क्रमशः दैत्यों की कलकल ध्वनि मंद पड़ने लगी । यह देखकर पवन-पुत्र ने सारी बातें मन-ही-मन विचार करके एक बिल्ली के समान छोटा रूप धारण किया और फिर राघवों का स्मरण करके लंका में प्रवेश करने का उपक्रम करने लगे ।

२. लंकिणी का हनुमान् को रोकना

उस समय भयंकर आकारवाली लंकिणी हनुमान् के मार्ग को रोककर ऐसे खड़ी हो गई, जैसे किसी निधि को बाहर लाते समय उस प्रयत्न में बाधा डालने के लिए कोई भूत उत्पन्न होकर खड़ा हो जाता है । उसने अट्टहास करके पवनकुमार को डाँटते हुए कहा--'तुम कौन हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? इस नगर में तुम क्यों प्रवेश कर रहे हो ? किसने तुम्हें यहाँ भेजा है ?'

तब हनुमान् अविचल खड़ा होकर बोला—'तुम कौन हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? तुम क्यों मेरे मार्ग को रोककर खड़ी हो ? पहले तुम अपना परिचय दो, तो फिर मैं अपने बारे में कहूँगा ।' तब वह बोली—'मैं दशकंठ की आज्ञा से, बड़े यत्न से इस नगर की रक्षा करती रहती हूँ । मेरा नाम लंकिणी है । जब मैं पराये व्यक्तियों को देखती हूँ, तब उन्हें नगर के भीतर प्रवेश करने नहीं देती और उन्हें तुरंत मार डालती हूँ । तब हनुमान् ने उस स्त्री से कहा—'हे नारी, मैं इस नगर को देखने के उद्देश्य से आया हूँ; मुझे जाने दो ।' तब वह राक्षसी आँखों से क्रोध प्रकट करती हुई बोली—'अब तुम कहाँ जाओगे ? अब तो तुम मेरे हाथ में पड़ गये हो । तुम्हें पकड़कर तुम्हारे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दूँगी और तुम्हारा रक्त पी जाऊँगी ।' यों कहती हुई उसने बड़े क्रोध से उस श्रेष्ठ वानर के वक्ष पर एक घूँसा मारा । हनुमान् ने सोचा कि स्त्री का वध करना पाप है। इसलिए उसने लंकिणी के वक्ष पर ऐसा घूँसा जमाया कि वह अपनी सारी शक्ति खोकर पृथ्वी पर गिर पड़ी और हनुमान् को देखकर क्षीण स्वर में प्रार्थना करने लगी—'हे कपि-कुलोत्तम, मुझपर कृपा करो । जिस दिन इस नगर का निर्माण हुआ, उस दिन निपुण ब्रह्मा ने कहा था कि जिस दिन एक वानर यहाँ आकर तुम्हें दुःख पहुँचायेगा, उसी दिन से राक्षसों का नाश प्रारंभ हो जायगा । इसलिए मुझे विश्वास है कि तुम्हारी मनस्कामना सफल होगी ।' इस प्रकार कहती हुई वह स्त्री चली गई । उस स्त्री की बातों से हनुमान् अत्यंत हर्षित हुआ और मन-ही-मन यह निश्चय करके कि अब राक्षसों का नाश निश्चित है, पहली बार लंका की धरती पर अपना वाम चरण प्रतिष्ठित किया ।

३. हनुमान् का लंका में सीता का अन्वेषण

फिर हनुमान् ने सूक्ष्म रूप धारण किया और किले की भित्तियों पर चढ़कर इस प्रकार लंका में प्रवेश किया कि किले के द्वार-रक्षक तथा सैनिक उनको देख न सके । फिर गुप्त रूप से मार्गों, बाजारों तथा चौपालों को देखते हुए वह आगे बढ़ा । उसके पश्चात् बड़े-बड़े गोपुरों पर चढ़ा और गज-शालाओं से लेकर श्रेष्ठ सौधों के सभी स्थान देखे। फिर उसने मंदिरों में देखा, घर-घर में ढूँढ़ा, तथा अंतःपुरों में ढूँढ़ा; मंडपों और सौधों में देखा । फिर अश्वशालाओं, रथशालाओं तथा शस्त्रागारों में देखा और मणिमय भवनों में सीता का अन्वेषण किया । तत्पश्चात् विभीषण, अतिकाय, देवांतक और त्रिशिर के घरों में, कुंभकर्ण के विशाल भवन में, कुंभ के घर में, निकुंभ के निवास में, शोभा-समन्वित इन्द्रजीत के अंतःपुर में, महोदर के भवन में और सभी दनुज-नायकों के घरों में क्रमशः सीता की खोज की । दैत्यों के इन निवासों को देखकर हनुमान् आश्चर्य-चकित हो गया । फिर उसने सभी अंतःपुरों में सीता को ढूँढ़ा; सभी स्त्री-जनों में देखा, और एक-एक करके राक्षसों के सभी घर देख डाले । किसी-किसी स्थान पर एक आँख, एक कान, एक हाथ-वाले विकृत रूपों को देखकर वह चकित रह गया । कहीं-कहीं उसने बहुत-से चरण, अनेक भुजाओं तथा कई शिरोंवाले राक्षसों को देखा । फिर वह जप-तप तथा स्वाध्याय में तत्पर, सत्कर्मी तथा निष्ठावान् तपस्वीश्रेष्ठ दानवों को देखते हुए आगे बढ़ गया ।

उसके पश्चात् हनुमान् रावण के अंतःपुर के निकट पहुँचा । वह (अंतःपुर) मकर-तोरणों (मकर के आकार में बँधा हुआ बंदनवार) पुष्प-मालिकाओं, विविध धूपों की सुगंधि, रत्न तथा मोतियों से पूरे गये चौकों, चंद्रकांत-शिलाओं से निर्मित चबूतरों, स्वर्ण तथा मणियों से बनाये गये कपाटों, प्रशंसा के योग्य मंडपों, प्रवाल के बने ऊँचे स्तंभों, अनेक अट्टालिकाओं तथा सौधों की पंक्तियों से अलंकृत था तथा सशस्त्र राक्षसों के द्वारा सतत रक्षित था । उस अंतःपुर के पास पहुँचकर हनुमान् ने अंतःपुर के पहरेदारों के निकट जाकर देखा, फिर कई द्वारों को निर्भय गति से पार करता हुआ आगे बढ़ा और सभा-मंडपों में सीता को ढूंढ़ा । वह रनिवास के निकट पहुँचा ही था कि इतने में, समुद्र में ज्वार उत्पन्न करते हुए, कमल-समूह की कांति को मलिन करके उन्हें मुकुलित करते हुए, मदमत्त चक्रवाल पक्षियों को विरहाग्नि से पीड़ित करते हुए, मन्मथ के प्रताप को बढ़ाते हुए, मुरझाई हुई कमलिनियों के समूह को विकसित करते हुए, मुग्धा-जारिणियों के चित्तों में चंचलता उत्पन्न करते हुए, घने अंधकार के प्रताप को नष्ट करते हुए, चंद्रकांत-शिलाओं को गलाते हुए, चकोर पक्षियों को प्रेम से अघाते हुए, प्रेमी-प्रेमिकाओं का मिलन संपन्न करते हुए, अपनी संपूर्ण राका से दिशाओं को भी उज्ज्वल बनाते हुए, मन्मथ का ससुर, उत्तम शोभा की सीमा, कुमुदिनियों का प्रेमी, नक्षत्रों के अधिपति चंद्र का उदय आकाश में ऐसे हुआ, मानों लंकापुरी में सीताजी का अन्वेषण करनेवाले हनुमान की सहायता करने के हेतु देवताओं ने मशाल जला दी हो ।

४. हनुमान् का रावण के अंतःपुर में प्रवेश करना

ऐसे चन्द्र को देखकर हनुमान् मन-ही-मन हर्षित हुआ और सारे अंतःपुर में देखते हुए जाने लगा । एक स्थान पर उसने कांतिमान्, विश्वकर्मा से रचित, अपनी इच्छा से चलने की शक्ति रखनेवाला, विचित्र कला-कौशल से संपन्न सूर्य-चंद्र के समान प्रकाशमान मणि-पुष्पक नामक विमान को देखा, जिसे देवलोक के शत्रु (रावण) ने युद्ध में कुबेर को पराजित करके छीन लिया था ।

उस विमान में पवन-पुत्र ने उन सुंदरियों को देखा, जिन्होंने रावण को सुख के समुद्र में उतराकर, मद्यपान तथा भोग-विलास के मधुर रसास्वादन के कारण शिथिल हो सोई पड़ी थी । उनकी शरीर-रूपी लताएँ अवश हो पड़ी हुई थीं; उनकी स्निग्ध जाँघों का सौंदर्य प्रकट दीख रहा था; उनकी नीवियों की गाँठें ढीली हो गई थीं; उनके मुख मुरझाये हुए थे; उनकी सुगंधित साँसें चल रही थीं; अधर एक विचित्र सुंदरता के साथ एक ओर झुके हुए थे और उनपर मंद हास नृत्य कर रहा था; उनके अर्द्ध-निमीलित नयन उनकी रति-क्रीड़ा की मुग्ध परवशता प्रकट कर रहे थे; उनके नूपुर निःशब्द होकर उनके चरणों में लिपटे हुए थे; उनका चंदन-तिलक श्रम-जल से गल रहा था; उनकी वेणियाँ खुली हुई थीं; पुष्प-मालाएँ टूटी पड़ी थीं; श्रेष्ठ मुक्ताओं की मालाएँ उनके दोनों कठोर कुच-पर्वतों के बीच दबी हुई थीं और उनके चित्त मदिरा-पान से मत्त थे । अपने कटि-रूपी सैकत, केश-रूपी शैवाल, नाभि-रूपी सरोवर, भ्रू-रूपी तरंगों, कुच-रूपी भँवर तथा नयन-रूपी मीनों से युक्त वे सुंदरियाँ सुख-निद्रा में सोनेवाली नदियों के समान दीख रही थीं ।

परस्त्रियों के शरीर के विविध अंगों को देखने से पुण्यात्मा हनुमान् मन-ही-मन अत्यंत दुःखी था। वह सोचने लगा कि स्वामी के कार्य में निरत रहने के कारण मुझे इस प्रकार परस्त्रियों के शरीर के अंगों को देखना पड़ा है। पाप-बुद्धि से मैंने ऐसा नहीं किया है। इन स्त्रियों के झुंड में ही सीताजी को ढूँढ़ना है; अन्य स्त्रियों में नहीं।

इस प्रकार मन में सोचते हुए दबे पाँव वह आगे बढ़ा। वहाँ उसने एक विशाल रत्न-वेदी पर पुष्प-शय्या पर सोनेवाले इन्द्र के भोग-विलास को भी मात करनेवाले, सांध्य-राग से युक्त जलद की भाँति चंदन तथा अंगराग से दीप्त शरीरवाले सुंदर झरनों से युक्त नीलाद्रि के समान मोतियों की मालाओं से सुशोभित देहवाले, पंचशिरवाले भयंकर सर्पों की भाँति सुपोषित उँगलियों से युक्त भुजाओंवाले, स्वच्छ चाँदनी के साथ रहनेवाले अंधकार के समान अपने शरीर को स्वच्छ चादर से ढककर सोनेवाले, अपने विशाल वक्ष पर ऐरावत के दाँतों के आघातों को बड़े साहस के साथ वहन करनेवाले, अपने दोनों पार्श्वों में रखे मणिमय दीपों की शिखाओं को अपनी उसाँसों से हिलानेवाले, मुकुट तथा कुंडलों की दीप्ति से सुशोभित रूपवाले, तथा सभी शत्रुओं का गर्व निचोड़नेवाले रावण को देखा और अनुमान कर लिया कि यही राक्षस राजा है। उसके पार्श्वों में गंधर्व, देव तथा दैत्य कामिनियों को देखा। उनमें से कुछ पानदान, कुछ पीकदान और कुछ अपने हाथों में पंखे लिये हुई थीं। कुछ कामिनियाँ अपने कर-कंकणों से शब्द करती हुई चामर डुलाने, कुछ मधुर-मधुर गीत गाने, कुछ नृत्य करने, कुछ वीणा बजाने और कुछ मृदंग बजाने के पश्चात् अब थककर अपने-अपने उपकरणों से लिपटी हुई सोई पड़ी थीं।

उसके पश्चात् परम पावन हनुमान् ने रावण की शय्या पर सोई हुई, नव यौवनवती देव-स्त्रियों के सदृश दीखनेवाली और गगन-मंडल के मध्य रहनेवाली चंद्रकला के समान प्रकाशित होनेवाली, मंदोदरी को देखा। हनुमान् ने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि मैंने सीताजी को देख लिया और वह आनंदविभोर हो उठा। उस आनंद में कभी उछलता, कभी कूदता, कभी वहाँ के स्तंभों पर चढ़ता और कभी अपने लांगूल का चुंबन करता। इस प्रकार वह थोड़ी देर तक अपनी जाति-सहज विकृत चेष्टाएँ करता रहा। फिर वह मन-ही-मन अपने विवेक को जाग्रत करके सोचने लगा,—'मनुकुलेश्वर की पत्नी, पति-व्रताओं में शिरोमणि, परमपावनी, तथा महाराज जनक की पुत्री, भला, देवाधिदेव राम को छोड़कर, रावण के साथ रहने की इच्छा करेंगी? कहीं आसक्त हो मधुपान करेंगी? हाय, मेरी बुद्धि को ऐसा भ्रम क्यों हुआ? कैसे भी विचार करूँ, यह चंचलाक्षी अवश्य ही कोई दानवी है, सीता नहीं हैं।'

इस प्रकार निश्चय करके वह उस स्थान को छोड़कर आगे बढ़ा और आसव, रक्त, मधु एवं मांस-युक्त मधुशालाओं को देखकर उन भवनों में सीता को ढूँढ़ा, जिनमें गरुड़, उरग, अमर, गंधर्व तथा सिद्धों की स्त्रियाँ बंदी थीं। फिर उसने जहाँ-तहाँ छाया में खड़े होकर, एकांत में वार्त्तालाप करनेवालों का संभाषण ध्यान से सुना। बिना इस बात का विचार किये ही कि मैं अमुक स्थान में प्रवेश कर सकता हूँ, अमुक स्थान में नहीं, अमुक स्थान में जाना मेरे लिए उचित है,- अमुक स्थान में नहीं, हनुमान् ने सारी लंकापुरी में

ढूंढ़ डाला; किन्तु मानव-रूप में रहनेवाली सीता को कहीं भी और किसी भी प्रकार से देख न पाने के कारण अत्यंत दुःखी हुआ ।

५. हनुमान् का रावण के उद्यान में जाना

इसके पश्चात् हनुमान् ने नगर के समीप रहनेवाले और सोने की चहारदीवारी से घिरे हुए एक उद्यान को देखा । धीरे-धीरे वह उस उद्यान के निकट पहुँचा । चारों ओर भली भाँति देखकर वह उसकी दीवार पर चढ़ गया और उस सुंदर उद्यान के भीतर देखने लगा । वह उद्यान चंदन, पुन्नाग, सहकार, मंदार, खर्जूर, कटहल, पीपल, नींबू, बिजौरा, पाटली, बकुल, घनसार, सौवीर, कर्णिकार, कुरबक, जंबीर, ताल, तमाल, हिंताल, साल, नारिकेल, अशोक, सप्तपर्णी, दाड़िम, नारंगी, केतकी और पुंगीफल, आदि के वृक्षों से, मल्लिका, मालती, माधवी, नागवल्ली, एला, लवंग आदि लताओं से, पके हुए द्राक्षाफल के गुच्छों से और पके हुए फलों तथा पुष्पों की सुगंधि से युक्त वायु से परिपूर्ण था । वह (उपवन) पिक, शुक, नीलकंठ एवं सारिकाओं तथा भ्रमरों से शोभायमान था । वह सुंदर सरोवरों से, कुमुद-समूहों से, चंद्रकांत-मणियों की वेदिकाओं से, स्वच्छ चाँदनी से तथा सैकत स्थलों से अत्यंत मनोहर था । वह सभी ऋतुओं में विहार करने योग्य था और उसकी शोभा चैत्ररथ (कुबेर का उपवन) को भी मात करती थी । अमरेन्द्र के नंदन-वन की समता करनेवाली रावण की उस उद्यान-वाटिका को देखकर हनुमान् आश्चर्यचकित हो गया और उस उपवन में प्रवेश करके दबे पाँव सरोवरों में, खड्डों में, उनके तटों पर, निकुंजों में, पेड़ों के नीचे तथा सुरक्षित स्थानों में बड़ी सावधानी से सीताजी की खोज करने लगा । उसके पश्चात् उस उपवन के मध्य भाग में स्थित, रात-दिन पहरा देनेवाले राक्षस-वीरों से रक्षित, गगनचुंबी अट्टालिकाओं से सुशोभित मेरु पर्वत के शिखरों के समान स्वर्ण-कलशों से शोभायमान, स्वर्ण-स्तंभों तथा श्रेष्ठ रत्नों के बंदनवारों से भासमान एक विशाल भवन को हनुमान् ने देखा । हनुमान् ने उस भवन में भी सीता को ढूँढ़ा, किन्तु वहाँ भी उनका पता नहीं चला ।

तब हनुमान् मन-ही-मन अत्यंत दुःखी हुआ और सोचने लगा--'हाय, सूर्यकुल-तिलक राम ने मुझे एकांत में बुलाकर, बड़े प्रेम से कहा था कि 'तुम अवश्य सीता का पता लगा सकोगे और मेरे हाथ में अपनी मुद्रिका दी थी । उनका आदेश स्वीकार करके मैं यहाँ आया हूँ । किन्तु उस कमललोचनी का पता कहीं नहीं मिल रहा है । उस दुरात्मा रावण के ले आते समय कदाचित् उस साध्वी ने अपने प्राण त्याग दिये हों या आकाश-मार्ग से अत्यधिक वेग से आते समय भयभीत हो सीताजी, राक्षस के हाथों से मुक्त होकर समुद्र में गिर गई हों, अथवा यहाँ के राक्षसों को देखकर भय से प्राण छोड़ दिये हों, अथवा विरहाग्नि में जलकर भस्म हो गई हों, या राक्षस ने किसी ऐसी माया की रचना की हो, जिससे सीता किसी को दीख नहीं पड़ती हों, या रावण ने उन्हें विदेशों में रख दिया हो, या उस राक्षस ने उस चंचलाक्षी को दण्ड देकर उसके प्राण ले लिये हों । हाय, मैं किस मुँह से लौट जाऊँगा और राम से क्या कहूँगा ? अब मैं क्या करूँ ? ज्यों ही मैं यह कहूँगा कि मैंने सीता को नहीं देखा, त्यों ही राम अपने प्राण त्याग देंगे । अपने भाई

के लिए लक्ष्मण भी शरीर छोड़ देंगे । यह समाचार सुनकर भरत भी अपने प्राण-त्याग करेंगे; उनके लिए शत्रुघ्न तथा अन्य सगे-संबंधी अपने-अपने प्राण तज देंगे । इस प्रकार समस्त सूर्य-वंश का नाश हो जायगा । यह देख सुग्रीव, अंगद आदि सभी वानरों के वंश भी नष्ट हो जायेंगे । इसलिए मैं एक वानप्रस्थ की भाँति वनों में ही निवास करूँगा, या चिता रचकर अग्नि में प्रवेश करूँगा, या प्राणों का मोह छोड़कर समुद्र में डूब मरूँगा। हाय, संपाति के वचनों को सत्य मानकर, अकेले मेरा यहाँ आना व्यर्थ हुआ । ठीक है, चिंता की कोई बात नहीं है । मैं साहस करके देवताओं से भिड़ जाऊँगा और देवेन्द्र को पकड़कर उसे त्रास दूँगा, अथवा ज्वालाओं से युक्त अग्नि को पानी में डुबोकर उसे पृथ्वी पर रगड़ दूँगा और उसकी प्रभा को नष्ट कर दूँगा; अथवा यम को उसके भटों के साथ ऐसा दण्ड दूँगा कि उसका हृदय फट जाय; अथवा नैऋत को सभी राक्षसों के साथ भय से तड़पाकर उसे अत्यधिक दुःख दूँगा; अथवा जल-राशियों के साथ वरुण को परास्त करके उसे जीत लूँगा या वायु के सप्त पवनों को घेरकर उन्हें दण्ड दूँगा; या कुबेर को किन्नरियों के साथ कैद करके उन्हें इस तरह तड़पाऊँगा कि उनकी सारी सुंदरता नष्ट हो जायगी या अपने अतुल पराक्रम से ईशान को उसके सेनापति के साथ पकड़कर उनके साथ युद्ध करके उन्हें जीत लूँगा; पृथ्वी को सभी पहाड़ों के साथ, कुम्हार के चक्र के समान घुमाकर उसके गर्भ की सभी चीजों को उगलवा दूँगा या इस लंका के राक्षसों को समुद्र में डुबोकर सबका नाश करके सारी लंका को छान डालूँगा । जब मैं इतना सब करूँगा, तभी सभी देवता (मेरे सामने) झुककर, सीताजी को दिखायेंगे; या राघव स्वयं दया करके संसार का नाश करने से मुझे रोकेंगे ।

६. हनुमान् की सीता से भेंट

इस प्रकार निश्चय करके हनुमान् उस भवन के शिखर पर चढ़ गया । उसने निकट ही स्थित वायु तथा सूर्य-किरणों के लिए भी अभेद्य अशोकवन के एक प्रांतर भाग में अत्यंत समृद्ध हेम-वर्ण के अशोक-वृक्ष के नीचे एक स्त्री को देखा । वह व्रतों के अनुष्ठान के कारण क्लान्त हो गई थी; शोक से कृश हो गई थीं, अत्यधिक दुःख से दबी हुई थी; वेदना से दग्ध थी; अनवरत झरनेवाले अश्रुजल में डूबी हुई थी; विरहाग्नि में तप्त थी; कपट आचरण का शिकार बनने से मर्माहत होकर सूख-सी गई थी; जीवन के प्रति विरक्त-सी हो गई थी और उसके चीर मैले हो गये थे । वह भगवान् को मन-ही-मन कोसती हुई, दुःखों का सहन करती हुई, अपने को असहाय समझकर धैर्य त्यागी हुई, सूर्य की प्रचंड रश्मि से सूखी नव-लता के समान, धुएँ से घिरी हुई दीप-शिखा के समान, बादलों की पंक्ति के मध्य दीखनेवाली चंद्र-रेखा के समान, पाले से आहत पद्मिनी के समान, मार्जारों के मध्य रहनेवाले तोता पक्षी के समान और व्याघ्रों के मध्य फँसी हुई गाय के समान, दुर्वार घोर राक्षसों के मध्य बड़े उदास भाव से एक हथेली पर कपोल रखे बैठी हुई थी। ऐसी मुद्रा में बैठी हुई आभूषणों से युक्त वेणी से आच्छादित जंघावाली, मलिन अंगोंवाली, गद्गद कंठवाली, उष्ण निश्वास छोड़ती रहनेवाली, सतत उपवास करनेवाली विशालाक्षी, जनक की पुत्री तथा जगन्माता सीता को हनुमान् ने देखा । उसने तुरंत सोचा कि ये कदाचित् सीता ही हों ।

इस प्रकार सोचकर उसने मन-ही-मन राम तथा लक्ष्मण को बड़ी भक्ति के साथ प्रणाम किया; बड़े उत्साह से देवताओं की प्रार्थना की और बड़े हर्ष से उस भवन से नीचे उतर आया। उसके पश्चात् उसने एक अंगुष्ठ-मात्र का आकार ग्रहण किया और उस अशोक-वृक्ष के पास पहुँचकर उसपर चढ़ गया। बालक के रूप में वट-वृक्ष के पत्रों में शयन करनेवाले विष्णु के समान, वह श्रेष्ठ वानर उस वृक्ष की घनी शाखाओं में बड़ी कुशलता के साथ छिपकर बैठ गया और (उस पुण्यात्मा ने) बड़े ध्यान से उस विशालाक्षी को बार-बार देखने और सोचने लगा—'ऋष्यमूक पर्वत पर जिन आभूषणों को मैंने देखा था, उनमें और इनके शरीर पर दीखनेवाले आभूषणों में समानता दीखती है। अतः, यह पद्मगंधी, काकुत्स्थवंशी राम की पत्नी ही होगी।' इस प्रकार सोचकर वायु-नंदन ने और एक बार सीता को ध्यानपूर्वक देखा और पाया कि उस रमणी के अंग, कर्ण-भूषण, मणिमय कंकण तथा सुनहले वस्त्र, ठीक उसी प्रकार के थे, जैसे कि राम ने बताया था। उसके अतिरिक्त उसने उस नारी-रत्न में विरह-व्यथा से पीड़ित होनेवाली स्त्रियों के लक्षण, पतिव्रता नारियों के शुभ चिह्न और निपुण मानव-स्त्रियों के सभी चिह्न देखे। साथ-ही-साथ उसने यह भी देखा कि वह साध्वी राम का नाम लेकर कुछ प्रलाप कर रही है। इन सब बातों पर कुछ समय तक विचार करने के पश्चात् उसने निश्चय किया कि ये सीता ही हैं। फिर उनका विवर्ण मुख, कृश गात्र, बिखरे हुए केश, उनकी दुर्दशा, उनका विलाप तथा उनकी दीनता देखकर वह मन-ही-मन बहुत दुःखी हुआ और विचार करने लगा—'चंद्र से बिछुड़ी हुई चंद्रिका की भाँति यह चंद्रमुखी रामचंद्र से विलग होकर क्या रह सकती है? क्या इस रमणी से बिछुड़कर राम रह सकते हैं? यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि इन दोनों के कुल, शील, दाक्षिण्य, गुण, वय, धर्म, तथा सुंदर रूप एक समान हैं। अतः राम के लिए यह रमणी तथा इस युवती के लिए राजा राम सर्वथा उपयुक्त हैं। इस कांता के लिए ही तो सूर्यकुलाधिप ने शिव का धनुष ईख की तरह तोड़ा था। जब ये पीड़ित हुई, तब बड़ी कठोरता के साथ उन्होंने उस कपटी कौए को दण्ड दिया था। जिस विराघ ने पहले इनपर आक्रमण किया था, उसका वध किया था। इन्हीं के लिए उन्होंने शूर्पणखा के नाक और कान कटवाये; खर और दूषण आदि राक्षसों का संहार किया; मारीच को मृत्यु के मुँह में भेजा; वालि को एक ही शर से मार डाला और कपियों को चारों दिशाओं में भिजवा दिया। मैं उन कपियों में अपने को बड़ा बलवान् समझकर, उस पुण्यात्मा काकुत्स्थवंशी राम के सामने यह कार्य-भार अपने ऊपर लेकर, अंगद आदि वानरों के साथ मैं यहाँ आया। अपने पुण्य-फल के प्रताप से और अपनी इच्छा के अनुसार ही इस पुण्य सती को मैं यहाँ आकर देख सका। भयंकर असुर-स्त्रियों के मध्य, यातनाओं में पड़ी हुई इस स्त्री-रत्न को मैं अपना रूप किस प्रकार दिखाऊँ? किस प्रकार मैं इससे वार्त्तालाप करूँ? इस पुण्य साध्वी को कैसे सांत्वना दूँ? किस प्रकार प्रभु को यहाँ की दशा सुनाऊँ?'

७. सीता से रावण का प्रलाप

हनुमान् मन-ही-मन इस प्रकार की चिंताओं से व्याकुल होता रहा। वहाँ रावण जानकी

के संबंध में सोचते-सोचते संतप्त हो उठा। वह बड़े तड़के ही उठा, तो उसका चित्त काम-देव के प्रभाव से उद्विग्न होने लगा। उसने सुन्दर ढंग से दिव्य मालाएँ धारण कीं, शरीर पर दिव्य गंध का लेप किया। दिव्य आभूषणों से अपने शरीर को सजाया। चारों दिशाओं में अपनी शोभा को विकीर्ण करनेवाला मुकुट मस्तक पर रखा और चन्द्रहास (खड्ग) को भी साथ लेकर वह अशोक-वन की ओर चल पड़ा। उसके पार्श्व-भाग में अप्सराएँ, अपने मणिमय कंकणों को क्वणित करती हुई चामर डुला रही थीं; गंधर्व-युवतियाँ अपने घन-कुचों पर के हारों को चंचल करती हुई पंखे झल रही थीं; किन्नर-रमणियाँ छत्र पकड़े हुए अपने कुच-मूलों की शोभा प्रकट कर रही थीं; यक्ष-युवतियाँ अपनी बाहुओं तथा पार्श्व-भागों को प्रकट करती हुई हस्त-वाहिकाओं के रूप में जा रही थीं। दोनों ओर गरुड़ की स्त्रियाँ परिमल जल तथा मद्य के पात्र लिये हुए चल रही थीं। भीड़ में कुचल न जायँ, इस भय से नाग-कन्याएँ आगे-आगे जा रही थीं। विद्याधरों की स्त्रियाँ वीणा आदि वाद्यों के साथ कर्णमधुर स्वर में गान कर रही थीं। रावण के गुण तथा औन्नत्य के अनुसार सिद्धों तथा साध्यों की रमणियाँ एकत्र होकर उसका गुणगान कर रही थीं; खड्गपाणि राक्षस-स्त्रियाँ बड़े उत्साह से उसके पीछे-पीछे चल रही थीं। इस प्रकार परिजनों को साथ लेकर सहस्रों मशालों के प्रकाश में बादलों के पीछे चलनेवाली विद्युल्लता के समान मंदो-दरी को साथ लिये हुए रावण चला। उसकी अन्य स्त्रियाँ भी उसकी सेवा में लगी हुई, उसके पीछे-पीछे जाने लगीं। उसके बलिष्ठ पदाघात से पृथ्वी काँपने लगी। भीड़ के परि-हास की ध्वनि से आकाश गूँजने लगा। स्त्रियों की मेखलाओं, नूपुरों तथा मणिमय आभूषणों का कलनाद कर्णपुटों को मधुर लग रहा था। इस प्रकार, उनींदी दृष्टि से, कनक-केयूरों से अलंकृत बाहुओं से, पृथ्वी पर लोटनेवाले वस्त्रों से, अत्यधिक मुरझाये हुए वदन से तथा अत्यंत भीषण आकार में रावण सीता के सामने आकर खड़ा हुआ। उसे देखते ही सीता दिग्भ्रान्त-सी हो गई। अपने मन में उन्होंने रघुराम का स्मरण किया और अपनी जाँघें, उदर, कुच-द्वय, और सुंदर हाथों को अपने वस्त्रों से अच्छी तरह ढक लिया और बाघ द्वारा देखी हुई हिरणी की भाँति सिकुड़कर बैठ गईं। ऐसी साध्वी को देखकर अपने मद के प्रभाव में आकर रावण बोला—'हे सुंदरी, तुम अपनी क्षीण कटि को क्यों छिपा रही हो? अपना सुंदर मुख क्यों नीचे झुका रही हो? हे अबले, मन्मथ की पीड़ा से त्रस्त हुए मुझे तुम अपने कृपा-कटाक्ष से बचाओ। परस्त्रियों को बलात् अपने वश में कर लेना हमारी जाति के धर्म के अनुकूल ही है। फिर भी मैं केवल तुम्हारी कृपा-दृष्टि का आकांक्षी हूँ। मेरी बातें ध्यान से सुनो। इस हीन दशा में तुम क्यों रहती हो? कदाचित् तुम सोचती हो कि राम अपने भाई के साथ भयंकर वन को पार करके यहाँ आयगा और समुद्र पर पुल बाँधकर अपने अतुल पराक्रम से मुझे जीतकर, तुम्हें छुड़ा-कर ले जायगा। यह असंभव है। इन्द्र, यम, वरुण आदि देवताओं के लिए भी युद्ध में मुझपर विजय पाना असंभव है। हे कमललोचनी, अब तुम इस पागलपन को छोड़ो। मेरी भुज-शक्ति के सामने मनुष्य की शक्ति ही क्या है? अनाथों की भाँति पर्वतों तथा जंगलों में भटकते हुए, कष्ट सहनेवाले एक शक्तिहीन मानव का सहवास क्यों चाहती हो?

हे सुंदरी, तुम मुझे अपनाकर राज्य-सुख क्यों नहीं भोगती ? चाहे इन्द्र हो, यम हो, वरुण हो या कुबेर हो; अग्नि, नैऋत, वायु या ईशान ही क्यों न हों, कोई भी मेरी लंका को जीत नहीं सकता। क्या किसी मानव के लिए लंका की ओर दृष्टि डालना भी संभव है ? अब राम कहाँ है ? वह यहाँ कैसे आयगा ? आकर लंका में प्रवेश करेगा किस ढंग से ? प्रवेश करके भी विना भयकंपित हुए मेरा सामना करेगा कैसे ? सामना करके भी मेरे साथ लड़ेगा कैसे ? लड़ेगा भी, तो मेरी शक्ति को किस प्रकार सहन कर सकेगा ? सहन करेगा भी, तो कबतक कर सकेगा ? इसलिए, ये सब बातें असंभव हैं। उन बातों को छोड़ दो।' रावण इस प्रकार राम की निंदा करते हुए कर्णकटु शब्द कहता रहा।

८. सीता का रावण की निंदा करना

तब सीता ने अत्यंत क्रुद्ध होकर एक तिनका ऐसा तोड़ा, मानों वे इसकी घोषणा कर रही हों कि तुम अवश्य राम के हाथों से नाश को प्राप्त होगे। फिर वे उस तृण को हाथ में लेकर उसे संबोधित करके कहने लगीं—'हे पापी, मेरे पति को धोखा देकर तुम मुझे अपनी लंका नगरी में ले आये हो। इसे बहुत बड़ा पराक्रम मानकर तुम क्यों गर्व कर रहे हो ? इसे महान् कार्य समझकर क्यों प्रलाप कर रहे हो ? पराई स्त्रियों के साथ समागम चाहनेवालों का ऐश्वर्य नष्ट हो जाता है और उनकी आयु भी क्षीण होती है। यदि तुम जीवित रहना चाहते हो, तो औचित्य तथा धर्म का विचार करके मुझे राम के पास पहुँचा दो। इसके विपरीत यदि दुर्बुद्धि के वश में पड़कर तुम मुझे ग्रहण करना चाहोगे, तो कोदण्ड-दीक्षा-गुरु राजा राम के हाथों से मारे जाओगे। यह निश्चित है। तुम अपने मन में यह मत समझो कि वे वनवास के कारण कृश-गात्र, दुर्बल, अनाथ, राज्यहीन, असहाय हो गये हैं और वे मनुज-मात्र हैं। क्या उन्होंने दंडकवन में चौदह सहस्र भयंकर राक्षसों को नहीं मारा ? दण्डधर के उद्दण्ड दण्ड के प्रताप को मात करनेवाले तथा सूर्य-किरणों के भयंकर गर्व को भी परास्त करनेवाले राम के असंख्य रण-भीषण-बाण जिस दिन तुम्हारी लंका में व्याप्त होंगे, जिस दिन वे बाण तुम्हारे वक्षःस्थल में गड़ेंगे, उसी दिन तुम अपनी तथा राम की शक्ति का अनुभव कर सकोगे। मैं अब उसके संबंध में क्यों कहूँ ? जैसे कुहरा सूर्य का सामना करने पर नष्ट हो जाता है, जैसे भेड़ा पहाड़ से टक्कर लेने से नष्ट हो जाता है, जैसे मच्छर मत्त गज का सामना करने से पिस जाता है, जैसे नाला समुद्र का सामना करके अपना अस्तित्व खो देता है, वैसे ही तुम भी यदि अपनी और उनकी शक्ति की तुलना किये विना ही राजा राम के साथ भिड़ जाओगे तो तुम भस्म हो जाओगे। भला, तुम क्या देखकर इठला रहे हो ? सूर्यवंश के तिलक (राम) इस प्रकार तुम्हें इस पृथ्वी पर थोड़े ही रहने देंगे ?'

इन बातों को सुनकर रावण अत्यंत रोष से जानकी को देखकर बोला—'मैंने तपस्या से ब्रह्मा को प्रसन्न करके उनसे श्रेष्ठ शक्ति का वर प्राप्त किया है, इन्द्र से लेकर सभी देवताओं को परास्त किया है; शिवजी के साथ समस्त कैलास पर्वत को उठाया है; बड़े साहस के साथ सभी ऊर्ध्व लोकों को जीता है; पाताल के निवासियों को परास्त किया है

और संसार में महान् उन्नति प्राप्त की है । अपने पिताजी द्वारा निर्वासित एक मूर्ख, निरुपाय तथा तपस्वी का जीवन व्यतीत करनेवाला एक साधारण मानव क्या मेरे-जैसे व्यवित के सामने टिक सकता है ?'

इस प्रकार जब रावण राम की निंदा करने लगा, तब सीता उमड़ते हुए क्षेम से, व्याकुल एवं दु:खी होकर, गद्गद कंठ से विलाप करने लगीं। जानकी का दु:ख देखकर देव तथा गंधर्व-स्त्रियों का भी धैर्य जाता रहा और वे भी रोने लगीं । रावण का घमंड तथा सीता का दु:ख देख अनिलकुमार हनुमान् क्रोधाग्नि में संतप्त होने लगा और तुरंत मन-ही-मन उस दुष्ट राक्षस पर झपटने का विचार करने लगा । उसने सोचा—'यदि मैं इसका वध करन में समर्थ होऊँ तो मैं अपने प्रभु को भूमिसुता (सीता) का कुशल-समाचार सुना सकता हूँ । किन्तु यदि मैं अपनी समस्त शक्ति खोकर, युद्ध में, देवताओं के शत्रु (रावण) के हाथों मारा जाऊँ, तो राम को किस प्रकार लंका का पता लगेगा ? लंका का पता न जानने से वे स्त्री के वियोग में अत्यधिक पीड़ित होंगे; लंका में सीता की उपस्थिति तथा मेरी मृत्यु, इन दोनों का समाचार वे जान नहीं पायेंगे, तो वे निदान अपने प्राण-त्याग कर देंगे । मेरे सारे किये-कराये पर पानी फिर जायगा । साथ-ही-साथ इससे मेरे प्रभु के कार्य की हानि ही होगी । इसलिए ऐसा कार्य मुझ अब नहीं करना चाहिए ।' यों सोचकर धैर्य के साथ हनुमान् उसी पेड़ पर बैठा रहा । रावण ने काम, क्रोध, भय तथा दृढ़ता के साथ जो बातें कहीं, उनसे भयभीत न होकर सीता ने सब स्त्रियों के सामने ही अत्यंत कठोर वचनों से रावण की निंदा की । उनकी बातें सुनकर दनुजेश्वर दुष्ट भावनाओं से अभिभूत-सा हो गया । उसकी भृकुटियाँ कुटिल हो गईं; उसके चंचल नेत्र रक्तवर्ण के हो गये । प्रज्वलित, चंचल एवं भयंकर प्रलयकालीन लोक-संहारक अग्नि की भाँति वह क्रोध से भभक उठा । उसने भयंकर हुंकार किया और क्रूर तथा नीति-रहित हो साध्वी सीता को त्रास देने के लिए सन्नद्ध हो गया ।

९. मन्दोदरी का रावण को उपदेश

तब धन्यात्मा मंदोदरी रावण के पास पहुँचकर बोली—'हे नाथ, ऐसा अन्यायपूर्ण कार्य आप क्यों करते हैं ? सीता अबला है; मानिनी है; मानव की स्त्री है; इसके ऊपर मोहित होकर ऐसा क्रोध क्यों करते हैं ? हमारे अंतःपुर में जो सुंदरियाँ हैं, उनमें से यह किसकी बराबरी कर सकती है ? आप मेरे साथ सुख भोगिए। आपका यह कार्य आप-जैसे व्यवित के लिए नीतिसंगत नहीं है ।'

मंदोदरी की बातें सुनकर रावण लज्जित तथा क्षुब्ध हो गया । फिर भी उसने सीता के निकट रहनेवाली दीर्घकाया, भयंकर आकृतिवाली, निष्ठुर वचन कहनेवाली, सतत झगड़ा करनेवाली, क्रूर स्वभाववाली और विकृत शरीरवाली भयंकर हयास्या, हरिजटा, त्रिजटा तथा महोदरी नामक राक्षसियों को बुलाया और उनसे निर्लज्ज होकर कहा—'दो महीनों के भीतर तुम इसे प्रिय वचनों से, या धमकियों से, या भयभीत करके अथवा त्रास देकर ऐसा बनाओ कि यह मेरी बात मान ले । यदि यह न माने, तो तुम सब इसका वध करके प्रीतिपूर्वक इसका मांस खा लेना ।' यह कहकर वह राक्षसराज अशोक-वन से अपने अंतःपुर को चला गया ।

१०. राक्षसियों का सीता को दुःख देना

इसके पश्चात् दानव-स्त्रियाँ अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों से जानकी को समझाने लगीं—'हे सीते, तुम रावण को अपना लो।' एक राक्षसी हाथ में शूल लिये उन्हें धमकी देने लगी—'राम इस लंका की ओर ताक भी नहीं सकेगा; इसलिए तुम उसकी आशा छोड़ दो।' एक नीचबुद्धिवाली कहने लगी – 'इस प्रकार क्यों कष्ट भोग रही हो ? दानवेश्वर को वर लो; अन्यथा मैं तुम्हारा वध कर डालूँगी।' एक राक्षसी बीच ही में रोककर बोली—'खड्ग लाओ, हम अभी इसका सिर काट डालें और इसका मांस मधु में डुबोकर चखें।' उसका समर्थन करती हुई एक दूसरी राक्षसी ने कहा—'ठीक है, यही करो।'

इस प्रकार धमकी देनेवाली राक्षसियों को देखकर भूमिसुता, कुमुदनयनी सीता मन-ही-मन क्रोधित एवं दुःखी हुई और आँसू बहाती हुई गद्गद कंठ से धमकानेवाली उन स्त्रियों को देखकर बोलीं—'क्या दानव और मानव में कहीं दांपत्य निभ सकता है, तुम सब मिलकर ऐसे अपशब्द कह रही हो, क्या यह तुम्हारे लिए उचित है ? जैसे चंद्रिका, चंद्र से बिछुड़कर नहीं रह सकती, जैसे प्रभा सूर्य से बिछुड़कर नहीं रह सकती, वैसे ही मैं राम से बिछुड़कर नहीं रह सकती। मेरे प्रभु भले ही दीन रहें, राज्यहीन रहें तो भी वे मेरे इष्ट देवता हैं। मैं भी जलधि (लक्ष्मी) के समान, पार्वती के समान, वाणी के के समान, पौलोमी के समान, सावित्री के समान तथा रति के समान पतिव्रता की निष्ठा से अपने पति राम की ही आराधना करूँगी। तुम चाहो, तो मेरा वध कर डालो, तेज खड्ग से मेरा सिर काटना चाहो, तो काट दो। मैं केवल राम के सिवा और किसी को स्वीकार नहीं कर सकती। मैं भ्रम में डालनेवाली तुम्हारी बातों में कभी नहीं आऊँगी। अब तुम इन बातों को छोड़ दो।'

सीता की बातें सुनकर सभी राक्षसियाँ क्रोध से भभक उठीं और मदमत्त हो सीता को विविध प्रकार से पीड़ा देने लगीं। तब सीता धूलि-धूसरित हो पृथ्वी पर लोट गई और उनकी काली नागिन की-सी वेणी बिखर गई। वह उत्तम स्त्री पृथ्वी पर पड़ी हुई, उसासें भरने लगीं। वे ऊँचे स्वर में बार-बार, 'हाय लक्ष्मण', 'हाय राम', 'हाय माता कौसल्या', कहकर रोने लगीं।

११. त्रिजटा का स्वप्न

त्रिजटा सीता का संताप न देख सकने के कारण वहाँ से उठकर चली गई और किसी एकांत स्थान में जाकर सो गई। सोते-सोते एक स्वप्न देखकर वह जाग पड़ी। उसने सभी राक्षस-स्त्रियों को देखकर कहा—'हे नारियो, मैंने एक स्वप्न देखा है, उसे मैं तुम लोगों को सुनाऊँगी; ध्यान से सुनो। मैंने स्वप्न में देखा कि राम एक हाथी पर चढ़कर आ रहे हैं; उनके पीछे-पीछे लक्ष्मण, उनके सेवक के रूप में आ रहे हैं। फिर मैंने देखा कि वह पृथ्वीपति इस कोमलांगी को उस गज पर बैठाकर ले जा रहे हैं। फिर मैंने देखा कि रामचंद्र का राजतिलक हो रहा है और ब्रह्मा आदि देवता उनकी सेवा कर रहे हैं। इतना ही नहीं, मैंने यह भी देखा कि रावण सुंदर पुष्पक विमान से चकराकर पृथ्वी पर गिर गये हैं। तब नीलांबर धारण किये हुई एक युवती एक भयंकर खड्ग लेकर

गिरे हुए रावण के निकट पहुँची और उसने उनके सिर काट डाले हैं। फिर उसने बड़े बड़े गधे जुते हुए रथ में उन्हें रख दिया और उस रथ को दक्षिण दिशा की ओर ले गई। उसके पश्चात् मैंने देखा कि कुंभकर्ण एक ऊँट पर चढ़कर दक्षिण की ओर जा रहा है। सुंदर ढग से विलसित होनेवाले अपने तोरणों के साथ, लंका समुद्र में डूब गई है। सभी राक्षस तैल-धाराओं में डूबे हुए पड़े हैं। विभीषण धवल छत्र धारण करके एक हाथी पर विनय से बैठा हुआ है। इसलिए हे दानवियो, अब रावण का मरण, और रघुराम की विजय निश्चित ही समझो। अतः, तुम इस भूमिसुता को न अपशब्द कहो, न उन्हें सताओ ही। तुम सब अब यहाँ से हट जाओ।" उसकी बातें सुनकर सभी दानवियाँ वहाँ से हट गईं और थकी रहने कारण जाकर सो गईं।

उस समय सीता भय तथा दुःख से काँपती हुई, दो मास में उन्हें मार डालने की जो आज्ञा रावण ने दी थी, उसके बार-बार स्मरण से ही भयभीत हो उठी। वे अशोक-वृक्ष की शाखा के सहारे उठकर खड़ी हुई, और अपनी चंचलता के कारण वन में मार्ग खोई हुई बालिका के समान विलाप करने लगीं। वे कहने लगीं—'हाय भगवान्, क्रूरता के साथ यहाँ बंदी बनाकर मुझे इस प्रकार दुःखी बनाना, क्या तुम्हारे लिए उचित है? क्या ब्रह्मा ने मेरे भाग्य में यही लिखा है कि मैं इस पापी दैत्य के हाथों मरूँ? ऐसा न होता, तो राम दण्डक वन में क्यों आते? स्वर्ण-मृग मुझे भ्रम में क्यों डालता? यह रावण मुझे बंदी बनाकर दुःख ही क्यों देता? किन्तु मैं अपने बारे में क्यों सोचूँ? चंद्र के समान मुख-वाले, लोक-रक्षण-कार्य में तत्पर रहनेवाले, मेरे प्रभु रामचंद्र न जाने घोर वन में सौमित्र के साथ किस प्रकार दुःख से पीड़ित होते होंगे और कैसी दुरवस्था भोग रहे होंगे? पता नहीं, उनकी क्या दशा होगी? न जाने, वे शूर यहाँ कब आयेंगे, कब इस नीच राक्षस का गर्व चूर करेंगे, और कब मुझे अपने साथ ले जायेंगे। ये सब कार्य कब सिद्ध होंगे? और कैसे सिद्ध होंगे? इस दुरात्मा के हाथों मरने से स्वयं मर जाना मैं अच्छा समझती हूँ; किन्तु मुझ पर दया करके विष लाकर देनेवाला भी यहाँ कोई नहीं है। हे राम, हे धर्म-निरत, मेरा पातिव्रत्य आज खिन्न हो गया है। मैं अब आत्मघात कर लूँगी।' इस प्रकार कहती हुई वे अपने केशों को कंठ में बाँधकर अपने प्राण देने का उपक्रम करने लगीं। इतने में उनका वाम-नेत्र मछलियों के स्पर्श से हिलनेवाले कमलों के समान फड़कने लगा। मलयानिल से चंचल होनेवाली वन-लता के समान उनकी वाम भुजा फड़क उठी। मत्त गज की सूँड़ की भाँति उस रमणी की बाईं जाँघ भी फड़क गई। भयंकर राहु से मुक्त कुमुद-बंधु (चंद्र) के समान उनका मुखचंद्र दीप्त हो उठा। जब इस प्रकार शुभ शकुन दीखने लगे, तब गजगामिनी सीता ने अपने दुःसाहसपूर्ण निश्चय का त्याग कर दिया। वे रामचंद्र का, उनके भाइयों का, तथा अपनी सासों का स्मरण करने लगीं। राक्षसों के द्वारा दिये गये कष्टों से बहुत ही क्लान्त होकर वे अपनी दयनीय स्थिति का विचार करके दुःखी होने लगीं।

१२. हनुमान् का सीता को राघवों का वृत्तांत सुनाना

हनुमान् ने सोचा कि इस साध्वी का दुःख शांत करने का यही अच्छा अवसर है।

यों सोचकर वह वृक्ष पर बैठे-बैठे ही रविकुल की रीति तथा राम के पौरुष की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगा। उसके पश्चात्, यह सोचकर कि यह साध्वी वानरों की भाषा तथा गीर्वाण (संस्कृत)-भाषा कदाचित् जानती न हो, उसने मानवों की भाषा में उनको संबोधित करके कहा—'हे भूमिसुते, हे पुण्यसाध्वी, इस प्रकार आप दुःख क्यों कर रही हैं? आपके प्रभु सकुशल हैं। जगदीश्वर, राजा राम समुद्र पार करेंगे और रावण का संहार करके अपने साथ आपको ले जायेंगे। यह सत्य है। अपने अनुज लक्ष्मण के साथ अपनी महान् महिमा प्रकट करते हुए रामचंद्र माल्यवंत में रहते हैं और अनेक वानर-सेनाएँ उनकी सेवा में लगी हैं।'

इन वचनों को सुनकर सीता ने सोचा कि यह कोई आकाशवाणी है। उन्होंने तुरन्त अशोक-वृक्ष की ओर सिर उठाकर देखा। तब उन्होंने सुन्दर नील मेघों के भीतर दीखनेवाले बालचंद्र के समान तथा विद्युत् के समान, उस वृक्ष की शाखाओं के मध्य, लघुरूप धारण किये बैठे एक वानर को देखा। तुरंत वे दुःखी होकर कहने लगीं—'हाय मैंने स्वप्न में एक बंदर को देखा है। भगवान् करे कि इस स्वप्न का अशुभ फल काकुत्स्थ-वंशजों को न मिले।' फिर, उन्होंने इन्द्र आदि सभी देवताओं, बृहस्पति, अग्नि तथा सभी लोक-पालकों की बड़ी भक्ति से प्रार्थना की।

इसके बाद वे सोचने लगीं—'हम जिसके संबंध में बार-बार सोचते रहते हैं, या जिसके विषय में प्रायः सुनते रहते हैं, वे ही स्वप्न में हमें दिखाई देते हैं। मैं अपने मन में राघव के सिवा और किसी विषय के संबंध में सोचती ही नहीं हूँ। पुण्यात्मा मेरे प्रिय प्रभु, सूर्यवंशज, विमल चरित्रवान् राम से बिछुड़कर विरहाग्नि में तप्त रहने तथा भयंकर राक्षसियों के द्वारा प्राप्त दुःखों से पीड़ित होने के कारण मैं दिन-रात निद्रा से वंचित रहती हूँ। किन्तु विना निद्रा के यह स्वप्न कैसे हुआ? मैं और एक बार ध्यान से अशोक-वृक्ष की ओर देखूँ।'

इस प्रकार, विचार करके उन्होंने अपने मुख-कमल को धीरे से ऊपर उठाया और बार-बार हनुमान् को देखा। फिर सोचने लगी—'यह कैसे आश्चर्य की बात है कि कोई बंदर इस वृक्ष पर कहीं से आकर बैठा है। मानव के समान सुंदर ढंग से इसने मेरे पतिदेव का कुशल-समाचार सुनाया है और बार-बार प्रिय वचन बोल रहा है। भला, कहीं वानरों में ऐसी बातें संभव हैं। कई प्रकार से विचार करने पर ऐसा लगता है कि यह कदाचित् राक्षस की माया ही है। ऐसा सोचकर वे प्रत्युत्तर दिये विना चुप रहीं।

१३. हनुमान् का सीता को राम की अँगूठी देना

तब पवनकुमार समझ गया कि सीता मेरा विश्वास नहीं कर रही हैं। इसलिए वह पेड़ से उतर आया और बड़ी भक्ति के साथ सीता को प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहने लगा—'हे कल्याणी, आप मेरा विश्वास कीजिए। मैं आपको आपके पति से मिलाने के लिए आया हुआ सेवक हूँ। आपको मुझ पर विश्वास हो जाय, इसी उद्देश्य से राम ने यह अँगूठी देकर मुझे भेजा है।' इतना कहकर हनुमान् ने राम की अँगूठी उन्हें दिखाकर प्रणाम किया। तब सीता हनुमान् को देखकर बोलीं—'हे अनघ, निशाचरों की मायाओं से

सदा संतप्त रहने के कारण रघुराम की अँगूठी देखकर भी मुझे विश्वास नहीं हो रहा है। तुम कौन हो ? सूर्यकुलाधिप का रूप कैसा है ? उनके अनुज सौमित्र का रूप कैसा है ? मेरे प्रभु अब कहाँ रहते हैं ? उन्होंने तुम्हें कौन-सा संदेश सुनाने के लिए भेजा है ? तुम किस प्रकार समुद्र पार करके यहाँ आये ? तुम इन सब बातों का उत्तर दो, ताकि मुझे विश्वास हो जाय ।'

तब हनुमान् सीता से इस प्रकार कहने लगा—'हे देवी, वायुदेव के वर-प्रसाद से केसरी नामक एक कपि-श्रेष्ठ तथा अंजना देवी के पुत्र के रूप में मेरा जन्म हुआ । मेरा नाम हनुमान् है । इस पृथ्वी पर सुग्रीव नामक वानर-राजा का मैं विश्वस्त मंत्री हूँ । उनके भाई वालि ने उनके राज्य तथा पत्नी को उनसे छीन लिया था । तब से वे अपने चार मंत्रियों के साथ ऋष्यमूक पर्वत पर रहते थे। दशकंठ जब कपट रूप से आपको लिये जा रहा था, तब मैंने आपका विलाप सुना और सिर उठाकर आपकी ओर देखते रहे । आपने भी हमें देखा और एक वस्त्र में बाँधकर अपने कुछ आभूषण पृथ्वी पर गिरा दिये । उन आभूषणों को सुग्रीव ने सुरक्षित रखा। उसके पश्चात् रघुराम आपका अन्वेषण करते हुए अपने भाई के साथ पंपा सरोवर के तट पर पहुँचे । उनको वहाँ देखकर सूर्य-पुत्र ने उनका समाचार जानने के लिए मुझे भेजा । मैंने जाकर उनकी सभी बातें जान लीं और सुग्रीव की राम से भेंट करा दी । तब सूर्य-पुत्र ने राम को बड़ी भक्ति से आपके आभूषण दिखाये । उन्हें देख राम बहुत प्रसन्न हुए । उसके पश्चात् उन्होंने सुग्रीव के शत्रु वालि का संहार किया, और उपकार के भार से दबे सुग्रीव को कपियों का राजा अभिषिक्त किया । सुग्रीव राम को अपना प्रभु मानते हुए बड़ी भक्ति के साथ एक सेवक की भाँति रहने लगे। उन्होंने अनुपम बली दो लाख वानरों की सेना एकत्रित की और उनसे कहा—'तुम लोग जाकर सीताजी का पता लगाकर आओ और साथ-साथ घमंडी राक्षसों के सैन्य-बल का भी पता लगाकर एक महीने के भीतर लौट आओ ।' उनका आदेश मानकर सभी कपि सब दिशाओं में निकल पड़े । आपका अन्वेषण करने के लिए अंगद आदि कुछ लोग दक्षिण दिशा में आये । हमने बहुत देशों में आपको ढूँढ़ा; पर कहीं आपका पता नहीं चला । तब हम अत्यंत दुःखी हुए । उस समय अरुण-पुत्र संपाति ने हमें लंकापुरी का मार्ग बताया। आपके दर्शनार्थ मैंने अपने पराक्रम से समुद्र को पार किया और आज सूर्यास्त के समय दूसरों की आँखें बचाकर इस नगर में प्रवेश किया । मैंने अपना विशाल रूप छोड़कर लघु रूप धारण करके सब स्थानों में आपको ढूँढ़ा; पर कहीं भी आपको मैं देख न सका । निदान मैं यहाँ आ पहुँचा, जहाँ आपके दर्शन हुए । फिर भी, मुझे संदेह था कि आप रविकुलाधिप की पत्नी हैं या नहीं । किन्तु जगदीश राम ने आपकी जो आकृति मुझे बतलाई थी, वह आपसे मिलती-जुलती है; इसलिए मेरा संदेह दूर हो गया । अभी-अभी जब रावण यहाँ आकर आपसे वार्त्तालाप कर रहा था, तब मैं यहीं था । मैंने यह भी सोचा कि मैं अपनी अपार शक्ति से उससे युद्ध करूँ और उसका वध कर डालूँ । किन्तु, मैंने यही उचित समझा कि पहले आपसे भेंट कर लूँ, और आपके प्राणनाथ का कुशल-समाचार आपको सुना दूँ । उसके बाद रावण से भिड़ूँ । मुझे अपने प्राणों का मोह तिल-भर भी नहीं है।

इतना कहने के पश्चात् हनुमान् ने राम का कद, उनकी अवस्था, उनकी आँखों का सौंदर्य, कंठ का माधुर्य, मंद हँसी से युक्त मुख की शोभा, नखों की आकृति, उन्नत स्कंधों की सुंदरता, कसी हुई कमर की मनोज्ञता, विशाल वक्ष की शोभा, कानों का रंग, चलने का ढंग, नाभि की सुघड़ता, जाँघों की विशालता, करों की लालिमा आदि शरीरके सभी लक्षणों का वर्णन किया। तत्पश्चात् उसने उनके शौर्य, धैर्य, ब्रह्मचर्य, उनकी शक्ति दांति, संयम और क्षांति (क्षमा) उनकी शक्ति, युक्ति, और पितृ-भक्ति तथा उनके शील और बर्त्ताव आदि का वर्णन किया। फिर उस पुण्यात्मा ने लक्ष्मण के रूप का भी वर्णन किया और तब राम की अँगूठी सीता को दी।

सीता ने अँगूठी ली और उसे देखकर ऐसी आश्वस्त हुई, मानों उनके खोये हुए प्राण लौट आये हों। राम के दर्शनों से भी अधिक उस अँगूठी को देखकर वह रमणी आनंदित हुई। उन्होंने उसे अपने वक्ष से ऐसे लगाया, मानों उसे अपने हृदय-रूपी सिंहासन पर बिठा रही हो; उनकी आँखों से आनंद के अश्रु ऐसे बहने लगे, मानों वे उस अँगूठी को अर्घ्य-पाद्य आदि दे रही हों। वे पुलकित गात्र से उसे देखकर ऐसी मूच्छित हो गई, मानों धूप-दीप आदि दिखाने के पश्चात् वे उसके (उस अँगूठी के) सामने साष्टांग प्रणाम कर रही हों।

कुछ समय के पश्चात् वे सँभल गई और हनुमान् को देखकर कहने लगीं— 'हे कपिकुलोत्तम, हे राम-कार्य-तत्पर, हे उपकार-निरत, हे लोकोन्नत-चरित्रवान्, हे पवनकुमार, तुमने मुझे प्राण-दान किया है। मैं तुम्हारा प्रत्युपकार कर नहीं सकती। काकुत्स्थतिलक की कृपा से तुम कल्पांत तक जीवित रहो।' इस प्रकार आशीर्वाद देनेवाली जानकी को देखकर, महान् पराक्रमी वायुपुत्र ने हाथ जोड़कर कहा—'हे देवी, मैंने आपकी वह कृपा प्राप्त की है, जो ब्रह्मा, शिव तथा इन्द्र आदि देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। मैंने आपके दर्शन भी कर लिये। मेरे लिए यही क्या कम है?'

तब सीता अपने प्राणनाथ तथा देवर का कुशल-समाचार पूछती हुई बोलीं— 'हे अनघ, अनुपम बलशाली रघुराम मुझसे बिछुड़कर क्या धैर्य के साथ रह रहे हैं? वे तथा उनके अनुज क्या कभी मेरा स्मरण करते हैं? क्या वे युद्ध करने के लिए शीघ्र यहाँ आनेवाले हैं? तब हनुमान् ने कहा—"हे माता, अपने प्राणनाथ का वृत्तांत सुनिए। जिस दिन से वे आपसे जुदा हुए हैं, वे सतत वेदना से पीड़ित रहते हैं; धरती पर सोते हैं; निद्रा को तो वे जानते ही नहीं। मांसाहार भी उन्होंने छोड़ दिया है। वे सदा दण्डक-वन में आपके खो जाने की बात सोचते रहते हैं। सिर किंचित् झुका लेते हैं, लंबी साँस खींचते हैं, आँखों में आँसू भर लेते हैं, मूच्छित हो जाते हैं, धरती पर गिर पड़ते हैं और चेतना लौटते ही उठकर चारों ओर शून्य दृष्टियों से देखने लगते हैं और व्यथा से पीड़ित तथा व्याकुल होते हैं। कभी-कभी हाय सीता! हाय सीता! कहकर पुकारते हैं। सुमित्रा-नंदन जब उनकी यह दशा देखते हैं, तब वे भी दुःखी हो जाते हैं। जब वे दोनों आपके यहाँ रहने का समाचार सुनेंगे, तब तुरंत वहाँ से चल पड़ेंगे। वे मुझसे भी श्रेष्ठ, भयंकर आकारवाले; अभेद्य पराक्रमवाले; नग, शृंग, तरु, नख तथा दाँतों को आयुधों के रूप में प्रयोग करनेवाले; सुग्रीव, नल, अंगद आदि भयंकर वीरों को साथ लेकर, समुद्र को लाँघकर

किसी भी प्रकार यहाँ आयेंगे और आपको साथ लेकर अयोध्या जायेंगे। रावण रामके द्वारा युद्ध में मारा जायगा। आपकी इच्छा पूर्ण होगी। पर हे माता, इतना विलंब क्यों? चलिए, स्वयं आपको अपनी पीठ पर लेकर, बड़े यत्न से समुद्र को लाँघकर प्रातःकाल होते-होते प्रभु के पास पहुँच जाऊँगा।"

वायु-पुत्र के सद्गुणों से प्रसन्न होकर सीता बोलीं—"हे पवनसुत, तुम अवश्य ही इस प्रकार करने की क्षमता रखते हो। सचमुच तुम्हारी शक्ति वैसी ही है। किन्तु, हे अनघ, विवाह के दिन से अबतक लोकप्रभु, रामचंद्र के सिवा अन्य पुरुष का स्पर्श स्वप्न में भी मैंने नहीं किया। यह नीच रावण मुझे यहाँ उठा लाया है; उसके स्पर्श का दुःख ही मुझे सतत सालता रहता है। उसने दुस्साहस के साथ बलात् मेरा स्पर्श किया। मैं अन्य किसी पुरुषों के स्पर्श की कल्पना भी नहीं करती। तुम मेरे प्राणनाथ के विश्वास-पात्र अनुचर हो। फिर भी, मैं तुम्हारी पीठ पर बैठकर चलना नहीं चाहती। लोग कहेंगे कि राम की पत्नी को धोखे से दैत्य उठा ले गया था और राम भी उसी प्रकार उसे वापस ले आये, इसलिए यह उचित नहीं है। पहले एक बार चित्रकूट में रहते समय राम मेरी गोद में सिर रखकर सो रहे थे। उस समय आरे के जैसे तीक्ष्ण नखोंवाला एक कौआ वहाँ आया और अवसर देखकर मेरे कुच के मध्य में चोंच मारी। जब (मेरे शरीर से) रक्त प्रवाहित होने लगा, तब सूर्यवंश-तिलक की निद्रा खुल गई। उन्होंने कौए पर एक बाण चला दिया। वह बाण ब्रह्मास्त्र बनकर बड़ी भयंकर शक्ति के साथ उस कौए का पीछा करने लगा। तब वह कौआ दुहाई देते हुए सारे संसार में चक्कर काटने लगा। किन्तु कहीं, कोई भी उसे शरण देनेवाला नहीं मिला। तब वह फिर रामचंद्र की शरण में आया, तो शरणागतवत्सल होने के कारण उन्होंने उसे शरण दी और उसकी एक आँख अपने चलाये अस्त्र के लिए दिला दी। उस सूर्यवंश-तिलक ने मेरे लिए यह सब किया।"

१४. सीता का संदेह

"हे पवनकुमार, मेरा प्राणनाथ को स्मरण दिलाना कि उस दिन का वह प्रेम और उस दिन का वह अस्त्र, वे क्यों भूल गये हैं? आज पति से बिछुड़कर दस सहस्र प्रकार के कष्टों का सहन करते हुए मुझे दस महीने व्यतीत हो गये हैं। तुमने मेरी दशा देखी, मेरे कष्ट देखे। किसी भी प्रकार अब ये सहे नहीं जाते। कभी कम न होने-वाले दुःखों को सहते हुए एक दिन बिताना मेरे लिए एक समुद्र को पार करने के समान है। तुम मेरे प्राणनाथ से ऐसी नम्रता के साथ मेरी ओर से यह निवेदन करना कि उनके मन में मेरे प्रति दया उत्पन्न हो। तुम उनसे कहना कि मेरे पिता जनक ने यह विश्वास करके कि आप (राम) अपने वचन का भंग नहीं करेंगे, मुझे उनके हाथों में सौंपा था। अब मेरा हाथ छोड़ना उनके लिए उचित नहीं है। विवाह की वेदी पर, अग्नि-देवता को साक्षी बनाकर सदा मेरी रक्षा करने का वचन देकर वे मुझे ले आये। किन्तु, अब मेरी उपेक्षा करके उन्होंने मुझे असहाय बना दिया है। अपनी स्त्री को दूसरे के हाथ में खोकर चुप बैठे रहना पौरुष नहीं कहलाता। इससे उनकी कीर्ति में कलंक लगेगा। इसका मुझे बड़ा दुःख है। मेरे मन और प्राण उन्हीं पर केन्द्रित हैं।

"हे हनुमान्, तुम सौमित्र से मेरी ओर से ये बातें कहना—'तुम मुझे अपनी माता के समान मानते थे । अब मुझको इस प्रकार भूल जाना और मेरी दशा का विचार नहीं करना क्या तुम्हारे लिए उचित है ? मैंने तुम्हारे जैसे पुण्यात्मा को दण्डक वन में अपशब्द कहे थे, उसका फल मैं अब भुगत रही हूँ । अब विलंब मत करो; दया दिखाओ ।' हे पवनकुमार, तुम अंगद, रविपुत्र तथा अन्य वानरनायकों से अवसर के अनुकूल मेरे विनीत वचन कहना, और किसी भी प्रकार उन्हें रामचंद्र तथा लक्ष्मण के साथ यहाँ ले आना । मैं बड़े साहस के साथ एक मास तक तुम्हारे, आगमन की प्रतीक्षा करूँगी । उसके पश्चात् मैं जीवित नहीं रह सकूँगी । इस अवधि के भीतर तुम अवश्य रघुराम को किसी भी प्रकार से यहाँ ले आना । अब तुम शीघ्र यहाँ से जाओ ।"

सीता के इन वचनों को सुनकर हनुमान् विनम्र होकर बोले—'हे माता, ऐसा ही होगा । मैं आपकी सभी बातें उनसे कह दूँगा । अब आप आश्वस्त हो जाँय । हे देवी, मैंने आपको रघुराम की अँगूठी ला दी थी । अब मैं रिक्त हाथों यहाँ से जाऊँ, यह दूत के लिए उचित नहीं है । अतः, आप अपने चिह्न के स्वरूप में कोई रत्न दीजिए ।' तब सीता बोली—'तुम देखने में इतने छोटे हो, तब इस विशाल समुद्र को किस प्रकार पार कर सकोगे ? महान् बल तथा पराक्रम से पूर्ण अपना सच्चा रूप तुम मुझे दिखाओ। तुम्हारा निज रूप देखे बिना मैं तुम्हें अपनी चूड़ामणि नहीं दूँगी ।'

तब हनुमान् ने अपना रूप इतना ऊँचा बनाया कि सारा आकाश उनके शरीर पर व्याप्त हो गया । चमकनेवाले नक्षत्रों का समूह पहले उनके कंठ का मालती-मल्लिका का हार बना, फिर वक्षःस्थल पर शोभित होनेवाले रजत का हार बना और उसके पश्चात् उसके कटि-प्रदेश को अलंकृत करनेवाली चाँदी की क्षुद्र घंटिकाओं की मेखला बन गया । ऐसा अत्यंत भयंकर रूप धारण करके जब हनुमान् सीताजी के समक्ष खड़ा हुआ, तब वे मन ही मन भयभीत हो गईं और कहने लगीं—'हे अनुपम गात्रवाले, हे अंजनासुत, तुम्हारा यह रूप आश्चर्यजनक है । शीघ्र ही इस रूप का उपसंहार करो ।' यों कहकर उन्होंने हनुमान् की प्रशंसा की और उसे आशीर्वाद दिया । उसका विश्व-रूप देखकर देवता भी उसकी प्रशंसा करने लगे । फिर पवनपुत्र ने विष्णु के समान, उस विशाल आकार को छोड़कर लघु रूप धारण कर लिया । तब सीता ने बड़े स्नेह से हनुमान् को अपने निकट बुलाया, अपनी साड़ी के छोर में बँधी हुई चूड़ामणि निकाली और बड़ी प्रीति से उसे हनुमान् के हाथों में रखा । हनुमान् ने बड़ी भक्ति के साथ उसे ग्रहण किया और प्रणाम करके, उनकी आज्ञा लेकर वहाँ से विदा हुआ ।

१५. अशोक-वन का ध्वंस

हनुमान् ने सोचा—मैं अब रावण को अपने आगमन का समाचार बताता हूँ । फिर, थोड़ी देर तक सोचने के पश्चात् वन का नाश करने के उद्देश्य से उसने शरीर बढ़ाया और अपने उरु से उत्पन्न बवंडर (प्रचंड वायु) के धक्कों से उस वन के वृक्षों को तोड़कर इस प्रकार गिरा दिया, मानों वे (कपड़े के) ताने-बाने हों । फिर, नित्य अलंकृत उस अशोक-वन में रहनेवाली रमणीय अट्टालिकाओं को पृथ्वी पर गिरा दिया; क्रीड़ा-गृहों को चूर-चूर

कर दिया; वृक्ष की शाखाओं को तोड़ दिया; फूलों को झाड़ दिया और उनके सुगंधित मकरंद को बिखेर दिया; नालों को नष्ट कर दिया; पुष्प-लताओं को तोड़ दिया; निकुंजों को छिन्न-भिन्न कर दिया और तालाबों के जल को आलोड़ित करते हुए उसमें अच्छी तरह तैरने लगा । हनुमान् के इस भयंकर कृत्य के कारण पिक, बक, सारस, क्रौंच, कलहंस, शुक, शारिका, मयूर आदि सभी पक्षी आर्त्तध्वनि करते हुए उड़ने लगे । तब वन के माली जाग पड़े और हनुमान् से युद्ध करने के लिए तैयार हुए । आकाश तथा दिगंतों को अपने गर्जनों से गुंजायमान करते हुए वे हाथ में अनुपम करवाल लेकर हनुमान् पर झपटे । हनुमान् अपने नाम, अपने आगमन-कारण तथा अपनी शक्ति का परिचय देकर बड़ी भयंकर गति से एक-एक राक्षस का संहार करने लगा । इस प्रकार, अनिलकुमार ने प्रथम युद्ध का प्रारंभ किया और अत्यधिक शक्ति से संपन्न आठ सहस्र घोर राक्षसों का सहज ही वध कर दिया तथा पृथ्वी पर शवों का ढेर लगा दिया । उसके पश्चात् जब हनुमान् ने गर्जन किया, तब सीता की रखवाली में नियुक्त राक्षसियाँ भी भयभीत हो गईं । उनका धैर्य जाता रहा । वे भागती हुई लोक-कंटक रावण के पास गईं और कहने लगीं—'हे देव, आज एक वानर बड़े साहस के साथ अशोक-वन में आया है । उसने कुछ समय तक वैदेही से बातचीत की और उसके पश्चात् वह सारे वन को उजाड़ने लगा । उसने उद्यान की रक्षा करनेवाले आठ सहस्र राक्षसों का वध कर दिया है । वह राघव का भेजा हुआ लगता है । अन्यथा, जिस वृक्ष के नीचे सीता बैठी हुई है, केवल उस वृक्ष को छोड़कर सारे वन को उखाड़ फेंकने का दूसरा कारण क्या हो सकता है ? उसके संबंध में वैदेही से हमने पूछा भी, किन्तु उन्होंने अपनी अनभिज्ञता प्रकट करके सत्य को छिपा रखा । इसमें कोई संदेह नहीं है कि वह वानर राघव का दूत ही है । अब आप अवश्य अपनी शक्ति तथा पराक्रम से उसे पकड़कर दण्ड दीजिए।'

१६. हनुमान् का राक्षसों का वध करना

इन बातों को सुनकर दानव-लोक-प्रभु रावण आग-बबूला हो गया । उसकी दृष्टि भयंकर हो गई । उसकी आँखों से दीपशिखा-सी, दीप्त लौ की भाँति अग्नि-ज्वाला निकलने लगी । उसने तुरन्त अपने अस्सी हजार अत्यंत पराक्रमी राक्षस-वीरों को भेजा । वे बड़े उत्साह से, अपना प्रताप दिखाते हुए धनुष, अस्त्र, शूल, मुद्गर, गदा, तलवार आदि आयुधों से युक्त हो, युद्ध के लिए सन्नद्ध हो, गर्जन करते हुए निकले ।

इतने में सूर्योदय हुआ । पर्वताकार हनुमान् का उत्साह और भी बढ़ गया । वह मकर-तोरण पर चढ़ गया और चारों ओर से घेरकर आनेवाले तथा शस्त्रों के प्रहार से कष्ट पहुँचानेवाले राक्षस-वीरों को देखकर बड़े दर्प के साथ बोला—'हे राक्षसो, मैं महान् शूर सुग्रीव का अनुचर हूँ । राम का दूत हूँ । रामचंद्र का कुशल-समाचार, सीताजी से कहकर वापस जा रहा हूँ । मेरा नाम हनुमान् है । मैं अत्यधिक बलवान् हूँ । प्रशंसनीय पराक्रम तथा चातुर्य के वैभव से संपन्न वीर हूँ । लंकापुरी में रहनेवाले पुरुषों के लिए मैं काल बनकर आया हूँ । अब तुम लोग मुझे छेड़कर क्यों मरना चाहते हो ?'

इतना कहकर वह अपने रण-कौशल तथा शौर्य को प्रकट करते हुए सहस्रों राक्षस-सैनिकों को अपने भयंकर लांगूल में बाँधकर उन्हें तोरण के स्तंभों से मारने लगा ।

इस प्रकार, उसने एक भी राक्षस को जीवित लौटने नहीं दिया और युद्ध में आये हुए वीरों को निःशेष कर दिया। उद्यान के रक्षक भयभीत होकर भागे-भागे रावण के निकट पहुँचे और कहने लगे—'हे दनुजेश, अपना भीषण रण-कौशल प्रदर्शित करते हुए उस वानर ने अपनी पूँछ से अस्सी सहस्र राक्षस वीरों का नाश कर दिया और अब मकर-तोरण पर इठलाता हुआ बैठा है।

रावण कालांतक (शिव) की भांति क्रोध से अभिभूत हुआ और पिंगलाक्ष, दीर्घ-जिह्व, वक्रनास, अश्मवक्ष, तथा शत्रुओं के लिए भयंकर रूपवाले शार्दूलमुख को बुलाकर कहा—'तुम शीघ्र जाकर उस वानर का वध करके आओ।' रावण की आज्ञा सिर पर रखकर वे प्रबल सेना के साथ रथों पर बैठकर चल पड़े और भयंकर गर्जन करते हुए पवनपुत्र के निकट पहुँचकर उस पर आक्रमण करने लगे। उनकी बाण-वृष्टि से विचलित न होकर अपनी सारी शक्ति एकत्रित करके हनुमान् ने अपनी पूँछ घुमाकर उन राक्षसों के रथों को तोड़ डाला, सारथियों को मार डाला; रथ के घोड़ों को मार डाला, हाथियों को मार गिराया और तुरंगों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। इस प्रकार, सारी राक्षस-सेना को धूल में मिलाकर हनुमान् तोरण से नीचे पृथ्वी पर कूद पड़ा और अपनी पूँछ को फंदे के समान बनाकर वक्रनास के कंठ में लपेट दिया और उसका गला घोंटकर उसे मार डाला। इससे संतुष्ट न होकर हनुमान् ने बढ़ते हुए क्रोध, साहस तथा शौर्य से दीप्त होते हुए, भयंकर गर्जन करते हुए, वज्र से भी कठोर दीखनेवाली अपनी मुट्ठी से अश्मवक्ष पर ऐसा प्रहार किया कि वह रक्त उगलते हुए पृथ्वी पर लुढ़क गया। तब अनुपम भुज-बल से झूमनेवाले उस हनुमान् को घेरकर अन्य राक्षस-वीर युद्ध करने लगे, तो हनुमान् ने उन सब का भी संहार कर दिया। फिर, शार्दूलमुख को वेग से घुमाकर पृथ्वी पर ऐसा पटका कि उसका सिर चूर-चूर हो गया। उसके पश्चात् उमड़ते हुए क्रोध से समस्त राक्षसों को व्याकुल करते हुए हनुमान् ने अत्यंत क्रूरता के साथ अपनी पूँछ से बाँधकर पिंगलाक्ष को ऐसा घुमाया, जैसे बवंडर सूखे पत्ते को घुमाता है, और फिर उसको तोरण के स्तंभ से दे मारा।

इस प्रकार, अपने अद्वितीय पराक्रम से उसका वध करके, हनुमान् ने दानव-सेना में प्रवेश किया। उसने बड़े वेग से दीर्घजिह्व पर आक्रमण किया और अपनी कठोर मुष्टि के आघात से उसे पृथ्वी पर गिरा दिया। फिर हनुमान् ने उसकी जीभ खींचकर उसका संहार कर डाला और फिर तोरण पर जा बैठा। हनुमान् के इस घोर कृत्य को देखकर बचे हुए दैत्य भयभीत होकर भाग गये और सारा वृत्तांत दनुजेंद्र को जा सुनाया। तब दशकंठ ने क्रोधावेश में आकर अपने मंत्री के पुत्र रक्तरोम, शतजिह्व, रुधिरलोचन, स्तनित-हास, शूलद्रंष्ट्र, दुर्मुख तथा महान् शक्तिशाली व्याघ्रकवल नामक राक्षसों को बुलाया और कहा—'एक वानर उद्दण्ड होकर राक्षसों का संहार कर रहा है। तुम जाकर उसका वध कर डालो।'

तब वे महाबली राक्षस गर्जन करते हुए, अनुपम रथों पर बैठकर, चतुरंगिणी सेना को साथ लेकर चल पड़े। मकर-तोरण पर अप्रतिहत शौर्य के साथ उपस्थित हनुमान् को

उन्होंने घेर लिया और उस पर श्रेष्ठ तथा दिव्य अस्त्रोंकी वर्षा करने लगे । तब पवन-कुमार ने बड़े साहस के साथ, बादलों से घिरे हुए इन्द्र के समान सुशोभित होते हुए अपने अघटित पराक्रम से उन दैत्यों के अस्त्रों से अपने-आपको बचाते हुए, अपने नखाग्र, पैने दाँत, चरण, कुहनी तथा करों से प्रहार करके तथा बड़ी-बड़ी शिलाओं तथा वृक्षों को चारों ओर से बड़े वेग से उन पर फेंककर उनको चूर चूर कर डाला । हाथियों पर सिंह के समान उछलकर चढ़ गया और अपने कुटिल तथा भयंकर नखाग्रों से उनके कुंभस्थलों को चीरकर मांस तथा गजमुक्ताओं को बिखेर दिया । फिर छलाँग मारनेवाले हिरणों की भाँति शीघ्रगति से दौड़नेवाले अश्वों को देखते-देखते निःशेष कर दिया । जीव-जंतुओं का पारण करनेवाले यमराज की भाँति बड़े मनोयोग से पदचर सेना को मटियामेट कर दिया । कुलपर्वतों पर आघात करके भयंकर ध्वनि के साथ उनको भेदनेवाले वज्र के समान वह रथों पर उछलकर चढ़ गया और रथों तथा रथों में जुते हुए अश्वों को मिट्टी में मिला दिया । फिर, रथिकों तथा सारथियों को टुकड़े-टुकड़े कर दिया । इसके पश्चात् अनुपम शक्ति को प्रदर्शित करते हुए सबसे पहले रक्तरोम का वध किया; फिर स्तनितहास को मृत्यु के मुँह में भेज दिया, उसके पश्चात् शतजिह्व को मार डाला, रुधिराक्ष का संहार किया, दुर्मुख को चीर डाला और तत्पश्चात् महान् पराक्रमी व्याघ्रकबल को छिन्न-भिन्न कर दिया और शूलदंष्ट्र को निहत कर दिया । तनन्तर अपनी पूँछ को कालपाश के समान दीर्घ तथा भयंकर बनाते हुए बड़े साहस के साथ बचे हुए उद्दण्ड राक्षसों को, उनकी सेना के साथ नष्ट कर दिया ।

हनुमान् के इस अखंड प्रताप के आगे, जो जो राक्षस नहीं टिक सके, उन्होंने रावण के सम्मुख जाकर सेना के नाश होने का समाचार कह सुनाया । अब रावण के क्रोध की सीमा नहीं रही । उसने प्रहस्त के पुत्र जंबुमाली को भेजा, जिसके प्रताप से सूर्य भी काँप उठता था, जो शत्रु-रूपी पर्वतों के लिए वज्रायुध के समान भयंकर था, तथा बाहुबल में अद्वितीय था । जंबुमाली ने दानवेन्द्र को प्रणाम किया और बड़े उत्साह से रक्त फूलों की माला रक्त वर्ण के वस्त्र तथा युद्ध के लिए आवश्यक भयंकर शस्त्रास्त्र धारण किये और अनुपम रथ पर आरूढ़ होकर युद्ध के लिए चल पड़ा । उसने धनुष का टंकार तथा भयंकर गर्जन करते हुए, सिंह से भिड़ जानेवाले मदमत्त हाथी के समान अतुलनीय पराक्रम के साथ हनुमान् पर आक्रमण किया और महान् पर्वत पर मूसलाधार वर्षा करनेवाले मेघ के समान शर-वृष्टि की । किन्तु हनुमान् किंचित् भी विचलित हुए विना ही, एक बहुत बड़ी चट्टान उखाड़कर उस राक्षस पर फेंका । तब उस राक्षस ने दस शरों से उस चट्टान के खंड-खंड कर दिये । फिर, उसने हनुमान् के मुख पर अर्द्धचन्द्रास्त्र चलाया, बाहु तथा वक्ष पर दस वाण छोड़े तथा कपाल पर ऐसा शक्तिबाण फेंका कि उसके लगते ही हनुमान् का सिर फूट जाता । किन्तु, हनुमान् ने बड़े रोष के साथ एक सालवृक्ष को सहज ही उखाड़कर उस राक्षस पर फेंका । किन्तु राक्षस ने बीच में ही उसे काट डाला और उस वानरश्रेष्ठ के सिर पर एक भयंकर तथा तेज बाण चलाया, उसके वक्ष पर दस बाण चलाये और बाहुओं पर पाँच भाले फेंके । इस प्रकार, वह राक्षस हनुमान् को अत्यधिक पीड़ा पहुँचाकर

यम के समान आँखों से अग्निवर्षा करते हुए (हनुमान् के प्रत्याघात की प्रतीक्षा में) खड़ा रहा । इतने में हनुमान् ने उस दैत्य के रथ को अपने पदाघात से पृथ्वी पर गिरा दिया, अपने दाँतों से उसे पकड़कर उसके खंड-खंड कर दिये । फिर एक विशाल सालवृक्ष के प्रहार से उसके रथ के अश्वों तथा सारथी को चूर-चूर कर दिया और सिंहसम गर्जन किया । तब जंबुमाली रथ-हीन हो ढाल तथा खड्ग हाथ में लिये, अपनी प्रचंड शक्ति प्रदर्शित करते हुए, पवनसुत के भालपर प्रहार किया, तो वह मूर्च्छित हो गया; किन्तु शीघ्र ही वह सँभलकर उठा और अपनी वज्रसम मुष्टि के आघात से उसके ढाल के टुकड़े-टुकड़े कर दिये । फिर, उस दैत्य को पकड़कर हनुमान् ने बलात् उसका खड्ग छीन लिया और भयंकर गति से उस राक्षस के सिर पर ऐसा प्रहार किया कि वह राक्षस पृथ्वी पर गिर पड़ा । उसके पश्चात् हनुमान् ने बची हुई सेना पर आक्रमण करके उसे छिन्न-भिन्न कर दिया । इस प्रकार, हनुमान् बड़ी चतुरता तथा पराक्रम से विजय प्राप्त करके तोरण पर जा बैठा । अपने प्राण बचाकर जो लोग भाग गये थे, उन्होंने हनुमान् के पराक्रम का सारा वृत्तांत रावण को जाकर सुनाया ।

उनकी बातें सुनकर रावण को महान् आश्चर्य हुआ । उसने अपने मंत्रियों को बुला भेजा और कुछ समय तक उनके साथ परामर्श करने के पश्चात् इन्द्र को भी युद्ध में परास्त करनेवाले, घोर पराक्रमी तथा क्रूर, विरूपाक्ष, उपाक्ष, कलहदुर्दर, भासवर्ण तथा प्रघस नामक पांच प्रचंड योद्धा तथा अग्र-सेनापतियों को देखकर कहा—'किसी भी लोक में वानरों की ऐसी शक्ति हमने न देखी, न सुनी है । हमें पता नहीं कि यह कौन है । तुम पाँचों वीर, अगणित सेना को साथ लेकर जाओ और अपना भीषण बल तथा युद्ध-कौशल प्रकट करते हुए, सावधान होकर उस वानर को बंदी बनाकर मेरे सामने उपस्थित करो ।'

रावण की आज्ञा को सिर पर धारण करके, अग्नि तथा सूर्य की-सी प्रभा से दीप्त होते हुए, वे पाँचों राक्षसवीर, असंख्य रथ, गज, तुरंग, तथा पदचर सेना को साथ लेकर शीघ्र चल पड़े और उदयाद्रि पर प्रकाशमान होनेवाले सूर्य के समान, तोरण पर विराजमान होकर दिगंतों तक अपने तेज को व्याप्त करनेवाले तथा दैत्य-वीरों के साथ रण करने के लिए उद्यत पवनसुत को घेर लिया । फिर, उन्होंने पृथ्वी तथा आकाश को अपने भयंकर सिंहनादों से विदीर्ण करते हुए हनुमान् पर दिव्य शस्त्रों की घोर वृष्टि आरंभ की । उन राक्षसवीरों में दुर्दर नामक राक्षस हनुमान् का शिरच्छेदन करने के उद्देश्य से उस पर एक साथ पाँच बाण चलाये । तब हनुमान् भयंकर क्रोध के साथ गर्जन करके आकाश की ओर उड़ा । दुर्दर भी उसके साथ उड़ा और धनुष पर तीर चढ़ाकर प्रलयकाल के भयंकर मेघ की भाँति शरवृष्टि करने लगा । पवनकुमार ने उस भयंकर शर-वृष्टि को असफल करते हुए, आकाश में और भी ऊँचा उड़कर बड़े वेग के साथ दुर्दर के ऊपर कूदा, जिससे वह राक्षस चूर-चूर होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा ।

इसे देखकर, विरूपाक्ष तथा उपाक्ष नामक राक्षस अति भयंकर ढंग से मुद्गरों से सज्जित होकर आकाश में उड़कर खड़े हुए और सिंहनाद करने लगे । तब हनुमान् भी उनकी ओर लपका और उनसे भिड़ गया । उन्होंने हनुमान् पर अपने घोर मुद्गरों का

प्रहार किया, तो हनुमान् पृथ्वी पर गिर पड़ा। फिर तुरंत वह उठा और एक विशाल साल-वृक्ष को उखाड़कर हुंकार करते हुए उनकी ओर लपका और बड़े वेग से उस वृक्ष को घुमाकर उन राक्षसों पर प्रहार किया और एक ही प्रहार से उन्हें पृथ्वी पर गिरा दिया।

तब भासकर्ण तथा प्रघस नामक राक्षसों ने अनिलपुत्र पर आक्रमण किया और अपने शूल तथा मुद्गरों की चोट से उसे व्याकुल कर दिया। उनके प्रहारों से हनुमान् घायल हो गया और उसके अंगों से रक्त बहने लगा। तब वायुपुत्र अत्यधिक क्रोधावेश में आकर कुलपर्वत-सदृश एक विशाल पर्वत को उखाड़कर उन राक्षसों पर फेंका कि राक्षस ऐसे चूर-चूर होकर गिर गये, जैसे घूस के द्वारा भीतर से खोखला बना दिये जाने पर, ऊपर की धरती गिर जाती है।

इसके पश्चात् वायुपुत्र यमराज की भाँति राक्षस-सेना का सर्वनाश करने लगा। हाथियों का हनन हुआ, तुरंग तहस-नहस हुए, पदाति-सेना परास्त हुई, रथ ध्वस्त हुए, शूर गिरे, महारथी मरे, सारथी दब गये, शस्त्रास्त्र चूर-चूर हो गये, महावत मारे गये, घुड़-सवार गिर गये, छत्र झुक गये, ध्वजाएँ ध्वस्त हुईं और रक्त की नदियाँ बह चलीं तथा मांस-खंडों से आकृष्ट हो बहुत-से भूत वहाँ एकत्रित हो गये। इस प्रकार पवन-कुमार ने एक ही क्षण में सारी सेना का ध्वंस किया और रण की आकांक्षा करते हुए तोरण पर जा बैठा।

१७. अक्षयकुमार का हनुमान् पर आक्रमण करना

हतशेष राक्षस भागते हुए रावण के पास पहुँचे और उसे पाँचों अग्र सेनापतियों की मृत्यु का समाचार सुनाया। तब राक्षसराज ने, रण-कौशल में निपुण, मन्मथाकार, परिष्कृत विचारवाले, अक्षीण शौर्यवाले, भयंकर शूर तथा महावीर अक्षयकुमार को बुलाकर कहा—'तुम जाकर बड़े यत्न के साथ उस वानर को युद्ध में मार डालो और उसका सिर काटकर तोरण के स्तंभ पर लटका दो।'

पिता का आदेश मानकर अक्षयकुमार, शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित तथा अपनी पताका से अलंकृत हो, उदित होनेवाले सूर्य की-सी कांति से शोभायमान होते हुए, आठ घोड़े जुते हुए रथ पर बैठकर शीघ्र गति से चला। उसके चलते समय पृथ्वी काँपने लगी, रथ के चलने से उत्पन्न ध्वनि, घोड़ों की हिनहिनाहट, हाथियों की चिंघाड़, राक्षसों के हुंकार, तथा उस (अक्षयकुमार) के धनुष के टंकार, इन सबकी सम्मिलित ध्वनियों से समस्त आकाश गूँजने लगा। वहाँ पहुँचकर अक्षयकुमार ने तोरण पर आरूढ़ पवनपुत्र को घेर लिया, और तीनों लोकों को, कँपाते हुए, दिशाओं को हिलाते हुए, अपने बाहुबल को प्रकट करते हुए, हनुमान् पर असंख्य बाणों की ऐसी वर्षा की कि दर्शकों को आश्चर्य होने लगा। हनुमान् ने निश्चय किया कि मुझे यह नहीं सोचना चाहिए कि यह बालक है। यह शौर्यनिधि दिखाई देता है। यों सोचकर उन्होंने अविचलित भाव से उन बाणों को अपने लांगूल से तोड़ डाला। अक्षयकुमार ने भी हनुमान् की प्रशंसा करते हुए उसके सिर पर तीन बाण ऐसे चलाये कि उसके सिर से रक्त की धाराएँ बह चलीं। रक्त की धाराओं से युक्त हनुमान् लाल किरणों से युक्त बालसूर्य की तरह दीखने लगा। राक्षसकुमार के बाणों से आहत होते ही

हनुमान् क्रोध से प्रलयकालाग्नि की भाँति भभक उठा और एक ताल-वृक्ष लेकर उससे उसके रथ के अश्वों को मार डाला। तब वह (राक्षसकुमार) पृथ्वी पर खड़े होकर हनुमान् के भाल पर दस शर ऐसे चलाये कि हनुमान् मूच्छित होकर गिर पड़ा। किंतु वह शीघ्र ही सँभल गया और अपनी पूँछ से अक्षयकुमार पर ऐसा प्रहार किया कि वह विचलित हो उठा। तब उसने अपनी गदा को अनिलकुमार के वक्ष पर ऐसा चलाया कि वह मूच्छित हो गया। किन्तु, शीघ्र ही उसकी चेतना लौट आई और वह अक्षयकुमार पर झपटकर उसकी गदा छीन ली और उसी को उस पर पूरी शक्ति से चलाया। तब अक्षय-कुमार ने एक बाण चलाकर उस गदा को रोक लिया और अपने को बचा लिया। फिर, वह करवाल तथा ढाल लेकर आकाश की ओर उड़ा। वायुपुत्र भी उसके साथ-साथ आकाश में उड़ा। हनुमान् ने तब अपने शत्रु पर गदा चलाई। लेकिन, अक्षयकुमार ने अपने खड्ग से उस गदा के दो टुकड़े कर दिये और तुरंत अपने खड्ग से हनुमान् की जाँघों पर प्रहार किया। उस खड्ग की चोट खाकर वायुनंदन पृथ्वी पर गिर पड़ा। लेकिन, वह तुरंत ऊपर की ओर उछला और अक्षयकुमार की दोनों टाँगें पकड़कर उसे ऐसे खींच लिया, जैसे गरुड़ सर्प को अपने वश में कर लेता है। फिर, उसने अक्षयकुमार को कुम्हार के चाक के समान बड़े वेग से चारों ओर घुमाकर पृथ्वी पर पटक दिया, तो उसका सारा प्रताप जाता रहा। उसके सिर का मुकुट छिन्न-भिन्न हो गया और उस मुकुट के सभी रत्न बिखर गये; उसका हृदय-पिंड फट गया; आँतें निकल आईं; मांस-पेशियाँ छिन्न-भिन्न होकर गिर पड़ीं। आँख की पुतलियाँ कुचल गईं; सारा शरीर विदीर्ण हो गया और रक्त की धारा उगलते हुए उस राक्षस ने अपने प्राण छोड़ दिये। उसकी वैसी मृत्यु देखकर इन्द्र आदि देवता आनंद से फूल उठे और वायुपुत्र की प्रशंसा करने लगे। ऐसी अनुपम विजय को साधकर हनुमान् हर्षध्वनि करने लगा।

भयभीत होकर भागे हुए राक्षस-सैनिकों ने देवताओं के शत्रु रावण की सभा में पहुँचकर निवेदन किया—'हे दानवेन्द्र, उस वानराधिप का बाहुबल आश्चर्यजनक है। अशोक-वन के रक्षक समाप्त हुए; अत्यंत पराक्रमी राक्षस-सैनिक मृत्यु का ग्रास बने; शतजिह्व नष्ट हो गया; शार्दूलमुख प्राण खो बैठा; पिंगलनेत्र की मृत्यु हुई; स्तनितहास मर गया; शार्दूलकवल युद्ध में मारा गया, जंबुमाली नष्ट हुआ; वक्रनास समाप्त हो गया; रक्तरोम की मृत्यु हो गई; रुधिराक्ष की जीवन-लीला समाप्त हो गई; सेना के साथ शूलदंष्ट्र कुचल दिया गया; प्रतापी दीर्घजिह्व कट मरा; दुर्मुख का नाम ही शेष रह गया; दुर्धर मृत्यु को प्राप्त हुआ; प्रघस गिर गया; भासकर्ण चूर-चूर हो गया; उपाक्ष का नाश हुआ; विरूपाक्ष ने अपने प्राण गँवा दिये; अश्मवक्ष का वध हो गया और अक्षयकुमार भी मारा गया। हमारी दुर्वार सेना भी नष्ट हो गई। निस्संदेह उस वानर को इन्द्र आदि देवता भी युद्ध में परास्त नहीं कर सकेंगे। ऐसा लगता है कि वह प्रलयांतक (रुद्र) को भी परास्त करने की क्षमता रखता है। सच पूछा जाय, तो वह राक्षसों को निगल जाने के निमित्त वानर-रूप धारण करके आया हुआ मृत्यु-देवता ही है।' इन बातों को सुनकर स्वर्गलोक का शत्रु रावण अक्षयकुमार की मृत्यु के लिए विलाप करने लगा—

'हे कुमार, हे प्रिय अक्ष, हे वीर, एक कपि के हाथों तुम्हें मरना पड़ा ! हाय, यह कैसी विपरीत बात हुई !'

१८. इन्द्रजीत का हनुमान् को बन्दी बनाना

इस प्रकार, शोक-संतप्त होनेवाले पिता को देखकर इन्द्रजीत ने कहा—'हे देव, आप इस प्रकार धैर्य खोकर दुःखी क्यों होते हैं । मैं अभी उस नीच वानर पर आक्रमण करता हूँ। या तो उसे युद्ध में अवश्य मार ही डालूँगा, या बड़े पराक्रम के साथ उसे बंदी बनाकर आपके समक्ष उपस्थित करूँगा । आप शोक मत कीजिए ।'

अपने ज्येष्ठ पुत्र की इन बातों को सुनकर रावण को धीरज हुआ और वह कहने लगा—'हे पुत्र, तुमने चिरकाल तक इन्द्र को बंदी बनाकर रखा था । माया तथा शक्ति में तुम प्रौढ़ हो, तुम्हारा पराक्रम मुझसे भी श्रेष्ठ है । इस पृथ्वी पर तुम्हारी समता कौन कर सकता है ? फिर भी, उस वानरश्रेष्ठ को साधारण वीर मत समझो । सतत सावधान रहते हुए अपने दिव्य बाणों के प्रभाव से तथा अपनी सहज शक्ति के प्रताप से विजय प्राप्त करके लौटो ।'

पिता की आज्ञा पाकर मेघनाद अग्नि तथा सूर्य के समान दीप्तिमान् रथ पर आरूढ़ होकर चला । उसके धनुष के अगणित टंकारों से दिग्गजों के कर्णपुट विदीर्ण हो गये । अपने गर्जन से सभी लोकों को भयभीत करते हुए दिगंतों की संधियों को शिथिल बनाते हुए, उसने हनुमान् पर आक्रमण किया । उस समय देवता, मुनि, इन्द्र आदि दिक्पाल, तथा किन्नर स्वर्ग से बड़े कौतूहल से यह दृश्य देखने लगे । इन्द्रजीत ने हनुमान् पर अद्भुत तथा तीक्ष्ण बाणों की ऐसी वृष्टि की कि हनुमान् के शरीर पर तिल धरने के लिए भी स्थान न रहा ; किन्तु पवनपुत्र ने उन शरों को अपनी पूँछ से छिन्न-भिन्न करके अपने को बचा लिया और अपने विशाल बाहु-बल तथा पराक्रम का परिचय दिया । ऐरावत को जीतनेवाला इन्द्रजीत पवनपुत्र के इस अनुपम बल पराक्रम को देखकर आश्चर्य-चकित हो गया और कई दिव्यास्त्र उस पर चलाये । पवनपुत्र ने उस शस्त्रों को नष्ट-भ्रष्ट करके विशाल वृक्ष तथा पर्वतों को उठाकर इंद्रजीत पर फेंका । मेघनाद ने अपने तीक्ष्ण शरों से से उन्हें छिन्न-भिन्न कर डाला । इस पर पवनपुत्र क्रोध से इन्द्रजीत पर झपटा और उसके रथ तथा उसके घोड़ों को अपने पदाघात से चूर-चूर कर दिया । इंद्रजीत रथ से वंचित हो गया । हनुमान् के शौर्य को देखकर आश्चर्यचकित होते हुए उसने उस पर वायव्यास्त्र चलाया । हनुमान् तो वायुपुत्र ही था; इसलिए उस अस्त्र का कोई प्रभाव उस पर नहीं हुआ और वह अविचल खड़ा रहा । तब मेघनाद ने उस पर रौद्रास्त्र चलाया । हनुमान् में रुद्र का अंश भी था, इसलिए उसका भी कोई प्रभाव हनुमान् पर नहीं हुआ और वह अटल खड़ा रहा । यह देखकर इन्द्रजीत के क्रोध की सीमा नहीं रही । उसने अत्यधिक क्रोध से पवनकुमार पर दुर्जय ब्रह्मास्त्र चलाया । इसे देखकर सभी सुर, सिद्ध तथा साधक काँप उठे । वह अस्त्र पृथ्वी तथा आकाश का स्पर्श करते हुए बड़े वेग से हनुमान् की ओर आने लगा । हनुमान को ब्रह्मा से यह वर प्राप्त था कि ब्रह्मास्त्र से उसके प्राणों की हानि नहीं होगी । अतः, वह उस अस्त्र को देखकर बिना विचलित हुए, ब्रह्मा-मंत्र का उच्चारण करते हुए

खड़ा रहा । ब्रह्मास्त्र उसके प्राण नहीं ले सकता था, इसलिए उसने हनुमान् को बाँधकर पृथ्वी पर गिरा दिया । मारुति को गिरा हुआ देखकर समस्त राक्षसों ने, 'मारो, मारो, पकड़ो, बाँधो,' कहकर चिल्लाते हुए उसे घेर लिया और उमड़ते हुए क्रोध से हनुमान् को मजबूत रस्सियों से बाँध दिया । अवश होकर गिरे हुए हनुमान् के पास पहुँचकर इन्द्रजीत ने सोचा कि यह महाबली ब्रह्मास्त्र के लगने पर भी प्राण खोये बिना, बँधा हुआ पड़ा है । न जाने यह वानर कौन है ? इसका वध नहीं करना चाहिए ।

इस प्रकार निश्चय करके वह शक्तिशाली शीघ्र ही हनुमान् को अपने पिता के समक्ष उपस्थित किया । रावण तथा उसके मंत्री इंद्रजीत की शक्ति तथा निपुणता को देखकर अत्यधिक हर्षित हुए । हनुमान् को देखकर रावण अपनी आँखों से अग्निवर्षा करते हुए बोला—'हे वानर, तुम मेरे नगर में अकेले कैसे प्रविष्ट हो सके ? तुम कौन हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? तुम किस उपाय से समुद्र पार करके यहाँ आये ? तुम्हें किसने भेजा ? शिव ने ? हरि ने या ब्रह्मा ने ? सुर, गरुड़, उरग, सिद्ध, साध्य, नर तथा खेचर मेरा नाम सुनते ही भय से काँप उठते हैं । ऐसी दशा में तुम निर्भय होकर मेरे ऐसे नगर में कैसे आये, जिसमें आने से इन्द्र भी डरता है ? तुमने धोखे से इस नगर में प्रवेश किया और मेरे उपवन का सर्वनाश करके अपने पराक्रम का परिचय दिया । बड़ी वीरता दिखाकर कुछ बूढ़े तथा दुर्बल राक्षसों का वध किया । तुम्हारे दीप्तिमान् तेज को देखने से अनुमान होता है कि तुम साधारण कपि नहीं हो । यदि तुम अपने आगमन का सही-सही कारण बताओ, तो मैं तुम्हारे सभी अपराध क्षमा कर दूँ ।'

१९. हनुमान् का रावण को अपने आगमन का कारण बताना

तब हनुमान् ने उस दशकंठ को देखकर बड़े क्रोध से कहा—"हे राक्षस, हे नीचात्मा, हे पापकर्मी, हे दुष्ट, मैं उस राक्षसकुलांतक, जगदीश्वर राम का दूत हूँ, जिनकी कीर्ति समस्त संसार में व्याप्त है, और जिन्होंने दशरथ के पुत्र के रूप में जन्म लेकर विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा की, शिव-धनुष को तोड़ा, अपनी महान् शक्ति से परशुराम का गर्वभंग किया, खर-दूषण आदि राक्षसों का नाश किया, तुम्हें अपनी पूँछ से बाँधकर समुद्रों में डुबोनेवाले वालि का एक ही बाण से संहार किया, सुग्रीव का राजतिलक किया, और जो अपनी अक्षय शक्ति के कारण कोदण्ड-दीक्षा-गुरु के नाम से विख्यात हैं । मेरा नाम हनुमान् है; मैं सुग्रीव का मंत्री हूँ । सूर्यकुल-निधि राम के भेजने पर मैं बड़े हर्ष से उनकी अँगूठी लेकर, सीताजी का अन्वेषण करते हुए समुद्र पार करके तुम्हारे नगर में आया । सब स्थानों में ढूंढ़ने पर भी सीताजी का पता नहीं पा सका । इससे मैं अत्यंत दुःखी हुआ, आखिर उन्हें उस उपवन में देखा और अपने प्रभु की अँगूठी देकर उन्हें राम का कुशल-समाचार सुना दिया । फिर, उनकी दशा का वृत्तांत राम को सुनाने के लिए मैं लौटने लगा । जाने से पहले मैं अपने आगमन का समाचार तुम्हें बता देना चाहता था, इसलिए मैंने तुम्हारे वन को उजाड़ा, उसके रक्षकों का वध किया, अस्सी सहस्र राक्षसों का नाश किया, तुम्हारे मंत्रिकुमारों तथा अक्षयकुमार का संहार किया और तुम्हारा रूप-रंग देखकर यहाँ से लौटने के विचार से बंदी बना । राम के अनुयायी सुग्रीव की सेना में मुझसे भी

अधिक पराक्रमी तथा बाहु-बल में श्रेष्ठ करोड़ों वीर हैं। ऐसे बलवान् भी हैं, जो ब्रह्मादि देवताओं को भी जीत सकते हैं और जो तुम्हारे नाम से ही जलते हैं। ऐसे करोड़ों वीरों के साथ राम समुद्र को पार करके लंका पर आक्रमण करेंगे, हठ तथा क्रोध से राक्षसों का संहार करने के पश्चात् तुम्हारे सिर काटकर तुम्हारा अंत कर देंगे और सीता को साथ लेकर वापस जायेंगे। यह सत्य है। यदि तुम बुद्धिमान् हो और नीति के पथ पर चलना चाहते हो, तो सुनो। तुम शीघ्र सीताजी को उन्हें सौंप दो और उस आश्रित लोक-रक्षक रघुराम की शरण में जाओ। शत्रुता करने से कोई लाभ नहीं; इसलिए तुम उसे (शत्रुता को) तज दो। मृत्यु का शिकार न बनकर अपने प्राणों की रक्षा करो।"

ऐसे हित वचन कहनेवाले हनुमान् को देखकर क्रोध, गर्व और मात्सर्य से अभिभूत होकर घनघोर बादलों के समान गरजते हुए दशकंठ ने प्रहस्त को आज्ञा दी— 'यह नीच निर्भय होकर मेरे सामने ऐसे अपशब्द कह रहा है। इस नीच कपि को ले जाकर तुरन्त इसका वध कर दो।' तब विनय-भाषण तथा विवेक-भूषण से संपन्न अनघों का पोषण करनेवाले, शत्रुओं के लिए भीषण दीखनेवाले विभीषण ने, रावण की आज्ञा के परिणाम के संबंध में सोच-विचार करके बड़ी नम्रता के साथ रावण से निवेदन किया— 'अपने प्रभु के द्वारा भेजे गये दूत, सदा कोई-न-कोई ऐसी बात कहते ही हैं। यह उनका सहज गुण होता है; इसलिए आप अपना क्रोध शांत कीजिए। इतना ही नहीं, दूत अवध्य होता है। अतः, इस कपि को मारना उचित नहीं है। आप अपने हठ और क्रोध राम तथा लक्ष्मण पर दिखाइए। इसे मुक्त कर दीजिए। यदि आपका क्रोध शांत नहीं होता हो, तो इसे कोई छोटा दंड देकर भज दीजिए।'

२०. लंका-दहन

उसके नीति-वचन सुनकर रावण ने दैत्य-वीरों को देखकर कहा--'कपियों को अपनी पूँछ बहुत प्रिय होती है; और वह उसका चिह्न भी होता है। इसलिए सब लोगों के समक्ष तुम इसकी पूँछ जला दो और नगर-मार्ग में घुमाकर इसे छोड़ दो। तब राक्षसों ने मोटे-मोटे रस्सों से पवनपुत्र के हाथ और पैर बाँध दिये और कहने लगे--'अच्छा हुआ कि हमारे कितने ही बंधुओं को मारनेवाला यह दुष्ट कीड़ा हमारे हाथों में फँस गया है। फिर वे तूर्य-घोष के साथ उसे नगर के मार्ग में घुमाने लगे। तब वायुपुत्र ऐसा बहाना किये बैठा रहा, मानों वह इन राक्षसों के अत्याचारों से पीड़ित तथा निर्बल बन गया हो और उन दुष्ट राक्षसों को तथा लंका नगर को अपनी कनखियों से देखने लगा। सभी दानव-वृन्द आबाल-वृद्ध उसके पीछे हँसते हुए और उसका उपहास करते हुए चलने लगे। उन दुश्चर्याओं को देखकर सज्जन पुरुष मन-ही-मन दुःखी होते थे। कुछ दानव जिद करके असंख्य वस्त्र ले आये; उन्हें कालरूपों के आकार में बँटा और तेल में डुबोकर कहने लगे— 'इसने सारा अशोक-वन नष्ट किया है; कितने ही दानव-वीरों का संहार किया है, दानवेश्वर ने इसको उचित दंड दिया है। चलो, हम इसे 'जला डालें।' यों कहते हुए उन्होंने तेल में भीगे हुए कपड़े उसकी पूँछ में लपेट दिये और उसमें आग लगा दी। कपड़े आश्चर्य-जनक ढंग से जलने लगे। ऐसा लगता था, मानों लंका में कोई उत्पात-सूचक चिह्न दिखाई पड़ रहा हो। राक्षस सिंहनाद करते हुए हनुमान् के पीछे-पीछे जाने लगे।

राक्षस-स्त्रियों ने यह दृश्य देखा, तो जाकर सीता से सारी बातें कहीं । सीता यह समाचार सुनकर बहुत दुःखी हुई और कहने लगी—'हे तात, कितने दुःख की बात है कि तुम्हारे जैसे पुण्यात्मा को ऐसे संकट भोगने पड़ रहे हैं ।' फिर, उन्होंने जल का स्पर्श करके एक पवित्र स्थान में खड़ी हुई और हाथ जोड़कर अग्निदेव से प्रार्थना करने लगी—'हे पवनमित्र, हे परम पवित्र, हे वैश्वानर, हे वरद, यदि मेरे प्रभु राम धर्मात्मा हैं, यदि वे मेरे लिए समुद्र पार करनेवाले हैं, यदि वे रावण का वध करनेवाले हैं, यदि मैं पतिव्रता हूँ, यदि महाराज जनक सब प्राणियों के प्रति समान भाव रखते हैं, और यदि वेद सत्य है, तो आप परम शीतल होकर उस श्रेष्ठ वानर की रक्षा कीजिए।'

इस प्रकार, जब सीता ने प्रार्थना की, तब अनल 'धलवाल' नामक कालसर्प के सिर पर रहनेवाले माणिक्य की ज्वाला के समान दीप्त होते हुए भी शीतल हो गया । इस विचित्र बात को देखकर हनुमान् आश्चर्यचकित होकर सोचने लगा – 'यह कैसा आश्चर्य है कि अग्नि आज शीतल लग रही है । कदाचित् मेरे पिता अग्नि के मित्र हैं, इसलिए उन्होंने मुझ पर दया की है, अथवा सभी देवताओं ने प्रार्थना की होगी, या राम के प्रताप के कारण ही ऐसा हुआ होगा । नहीं नहीं, यह तो सीताजी के आशीर्वाद का ही पुण्य-प्रभाव है ।' उसके पश्चात् हनुमान् के सतत ब्रह्ममंत्रों का उच्चारण करने के फलस्वरूप ब्रह्म-पाश ऐसे छूट गये, जैसे परमात्मा का एकनिष्ठ हो ध्यान लगानेवाले नरों के भव-बंधन छूट जाते हैं ।

तब हनुमान् उस असुरेश की लंका का दहन करने के उचित अवसर की प्रतीक्षा करने लगा । इतने में पश्चिम समुद्र में सूर्यास्त हुआ, मानों सूर्य समुद्र में स्नान करके 'अग्नि-सूक्त' का जप करने के उद्देश्य से चला गया हो । तब हनुमान् ने मेरु पर्वत के समान अपने शरीर को छोटा बना लिया । सभी बंधनों को तोड़ दिया और दुःख देते, तथा उपहास करते हुए बड़े कौतुक के साथ अपने पीछे-पीछे आनेवाले राक्षसों को अपनी पूँछ से मार डाला । फिर, एक ऊँचे सौध पर उछलकर, अपनी पूँछ की अग्नि चारों ओर लगा दी । देखते-देखते भयंकर धुआँ तीव्र गति से चारों ओर व्याप्त हो गया । धुएँ के व्याप्त होने के पहले ही अग्नि-ज्वालाएँ आकाश में फैल गईं । आकाश में ज्वालाओं के व्याप्त होने के पहले जहाँ-तहाँ उल्काएँ गिरने लगीं । उससे भी पहले (देवताओं के) श्रेष्ठ विमान सब दिशाओं में बिखर गये ।

तब हनुमान् बड़े वेग से एक स्थान से दूसरे स्थान पर उछलते हुए नगर में आग लगाने लगा । उसने राजसभा-भवनों को जला दिया, शस्त्रागारों को ध्वस्त कर दिया, भंडार-घरों की पंक्तियों को नष्ट कर दिया और बड़े-बड़े सौधों को भस्मसात् कर दिया । फिर क्रम से मंडपों को जला डाला, मणिमय चंद्र-शालाओं को राख कर दिया, प्रशंसनीय शयनागारों की श्रेणियों का दहन कर डाला, और रमणीय गज, तुरग तथा रथ-शालाओं को अग्निसात् कर दिया ।

तब लाल-लाल अग्निशिखाएँ अविरल गति से आकाश में व्याप्त होने लगीं । खेचर, उरग, तथा अमर-गणों के विमान वेग से (आकाश में) ऐसे चक्कर काटने लगे, मानों

रावणासुर के नाश की सूचना देने के निमित्त उल्कापात होने लगा हो। अग्नि अपनी प्रचंड गति से समस्त ब्रह्माण्ड में ऐसे व्याप्त होने लगी, मानों राजाओं में श्रेष्ठ रामचंद्र के लंका पर आक्रमण करने का उपक्रम करते ही उनका प्रताप-रूपी अग्नि पहले ही सर्वत्र व्याप्त हो गई हो। रावण ने इसके पूर्व अपना भयंकर रण-कौशल दिखाकर समस्त दिक्-पालों को युद्ध में परास्त कर दिया था। उस पराजय को भूले विना आज अग्नि ने, अपनी समस्त शक्ति को दिखाते हुए, एक ही क्षण में एक मात्र विभीषण के भवन को छोड़कर, सारे नगर को जलाकर भस्म कर दिया। उस समय राक्षसों की ऐसी दुर्गति हुई कि कुछ राक्षस भय से काँपने लगे, वस्त्र तथा केशों में आग लग जाने से कुछ राक्षस हाहाकार करते हुए चारों ओर भागने लगे; कुछ अपने सगे-संबंधियों को नष्ट होते देख कुछ राक्षस शोक करने लगे; कुछ हाहाकार करने लगे, कुछ हनुमान् पर क्रोध दिखाने लगे। ऐसे भी राक्षस थे, जो कह रहे थे कि इस पापी रावण ने उस महाविष्णु के अवतार राम का अहित किया है; ऐसा अहित करनेवाले रावण के लिए इस प्रकार ही विपत्ति का आना कोई अनहोनी बात नहीं है।

तब वानरवीर हनुमान् अत्यंत भयंकर रूप धारण करके नगर का कोई भी स्थान विना छोड़े, समस्त लंका में आग लगा दी। उस कपिश्रेष्ठ की पूँछ के स्पर्श से उत्पन्न भीषण अग्नि-ज्वालाएँ जहाँ-तहाँ फैलने लगीं। सुरापान से सुप्त कुछ राक्षस विना जाने ही जलने लगे। मृदुल शय्याओं पर सोनेवाले राक्षस तीव्र अग्नि-ज्वालाओं के मध्य फँसकर, छटपटाते हुए मरने लगे। कुछ राक्षस अपने सगे-संबंधियों, स्त्री तथा बच्चों, प्राणाधिक मित्रों को एकत्र करके भागते समय, बीच ही में अग्नि में फँसकर जलने लगे। अपने घर की वस्तुओं को बाहर निकालने के लिए गये हुए लोग फिर लौटकर नहीं आ सके और वहीं जल गये। कुछ राक्षस अपनी-अपनी पत्नियों को छाती से लगाये बाहर आने लगे, तो देहली के पास आते-आते जल गये। इस प्रकार, वायु-पुत्र की पूँछ से निकली हुई अग्नि भयंकर गति से समस्त लंका नगर में व्याप्त होने लगी और श्रेष्ठ सिंहों की भाँति उग्र रूप धारण करके, हाथियों के कुंभ-स्थलों को विदीर्ण करने लगी। तेज से युक्त घुड़सवारों के समान वह अश्वों पर आक्रमण करने लगी; लम्पटों की भाँति, कामिनियों के कुचों पर हाथ रखने लगी; दूसरों की निंदा करनेवालों की भाँति अपनी जिह्वा को चारों ओर फैलाने लगी; अत्यधिक आनंद से फूल उठनेवाले की भाँति आकाश तक बढ़ने लगी और भयभीत होकर भागनेवाले कायरों की भाँति वह गलियों में प्रवेश करने लगी। इस प्रकार, वह अग्नि लंका को चारों ओर से घेरकर शीघ्रता से उसका ध्वंस करने लगी। सभी देवता आनंद से फूल उठे और हनुमान् को अपने आप्त बंधु मानकर उसकी प्रशंसा करने लगे।

तब हनुमान् मन-ही-मन जानकी की मृत्यु की आशंका से पीड़ित होकर सोचने लगा—'हाय ! यह मैंने क्या कर डाला ! मदान्ध होकर मैंने लंका के साथ-साथ राम की पत्नी को भी जला डाला। अब मैं किस मुँह से राम के पास जाऊँगा ? जानकी का कुशल-समाचार मैं राम को कैसे सुनाऊँगा ? हाय ! मेरे सारे प्रयत्नों पर पानी फिर गया !' इस प्रकार, थोड़ी देर तक चिंतित रहने के पश्चात् उसका विवेक जागा और वह सोचने

लगा—'मैं भी कैसा मूर्ख हूँ ? इसी माता के आशीर्वाद का फल था कि यह भयंकर अग्नि मेरी पूँछ को जलाने का साहस नहीं कर सकी । भला, अग्नि साध्वी का क्या बिगाड़ सकती है ?' यों सोचकर उसने अपनी पूँछ समुद्र में ऐसे बुझा दी, मानों वह सीताजी की दुःखाग्नि को ही बुझा रहा हो । फिर, वह सीता के दर्शनार्थ अशोक-वन में गया । सीता पहले ही राक्षस-स्त्रियों के मुँह से हनुमान् के कुशल का समाचार सुनकर आनन्द से गद्‌गद होकर बैठी थीं । हनुमान् ने उन्हें प्रणाम किया, अपने साहसपूर्ण कृत्यों का सारा वृत्तांत उन्हें कह सुनाया और फिर कहा—'हे माता, मैं अभी जाकर रामचंद्रजी को साथ लेकर आता हूँ, जिससे आपके मन का दुःख दूर हो जाय ।' इतना कहकर उसने सीता को भक्ति से प्रणाम किया और उनकी आज्ञा लेकर वहाँ से चल पड़ा । वहाँ से चलकर वह नगर के पश्चिम द्वार के पास आया और उसके किवाड़ों पर इस जोर से पदाघात किया कि वे टूटकर पृथ्वी पर गिर गये । यह देखकर सभी राक्षस भय-विह्वल हो गये ।

२१. अंगद आदि वानरों से हनुमान् की भेंट

वहाँ से चलकर, फिर एक बार अपना पराक्रम दिखाते हुए, हनुमान् ने साहस के साथ परकोटे के ऊपर के महलों को अपने पदाघात से गिरा दिया और सहज ही सुवेलाद्रि पर चढ़ गया । वह आकाश की ओर ऐसा उछला कि लंकापुरी में रहनेवाले समस्त दैत्य झोंका खाकर भयभीत हो उठे; पहाड़ के शिखर भग्न होकर समुद्र में गिरने लगे; बड़ी-बड़ी चट्टानें लुढ़कने लगीं; दक्षिण दिशा को वहन करनेवाली अंगद नामक हथिनी का शरीर दब गया; पहाड़ों के शृङ्ग गिर गये और पृथ्वी नीचे को धँस गई । फिर, उसने अपने अनुपम भुजबल की सहायता से आकाश-मार्ग से जाते हुए समुद्र के मध्य भाग में स्थित मैनाक पर्वत पर उतरकर अपनी थकावट दूर की । फिर, उस पर्वत की आज्ञा लेकर अपने असमान वेग तथा प्रताप का प्रदर्शन करते हुए समुद्र के उत्तरी किनारे पर उतर पड़ा ।

हनुमान् के मुख पर स्पष्ट रूप से दीखनेवाले हर्ष के चिह्नों को देखकर अंगद आदि श्रेष्ठ वानर उसकी अगवानी करने गये और उसे गले से लगा लिया । फिर, वे सब एक स्थान पर बैठ गये और हनुमान् से उसके कार्य के परिणाम के संबंध में प्रश्न किये । तब हनुमान् ने कहा—'हे वानरो, आपकी कृपा से मैंने अनुपम समुद्र को पार किया, अगणित वैभवों से संपन्न लंका में प्रवेश किया, और बहुत समय तक अन्वेषण करने के बाद सीताजी के दर्शन भी कर लिये । फिर, मैंने राम की आज्ञा के अनुसार जानकी से उनका सारा वृत्तांत कह सुनाया और उनकी दी हुई अंगूठी भी सीताजी को दे दी । फिर, उनकी चूड़ामणि लेकर यहाँ लौट आया हूँ ।'

हनुमान् की बातें सुनकर सभी वानर अत्यंत हर्षित हुए और हनुमान् की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे । तब अत्यधिक उत्साह से भरे हुए श्रेष्ठ वीर अंगद कहने लगा—अब यही उचित होगा कि किसी भी प्रकार हम जानकी को लंका से जीतकर ले आवें और उन्हें रघुराम के पास पहुँचा दें । चलो, हम अभी समुद्र पार करें और पुत्र, मित्र तथा परिवार-सहित दशकंठ का वध करके सीताजी को छुड़ा लायें ।'

तब जांबवान् ने वालिपुत्र को देखकर कहा—'सुग्रीव ने हमें जानकी के अन्वेषणार्थ भेजा है; उस परम पवित्र सीता की कृपा से हमारा प्रयत्न सफल हुआ। अब हमारे लिए उचित यही है कि हम जाकर रामचंद्रजी से यह समाचार कह दें।, तब सबने परस्पर परामर्श कर, वैसा ही करने का निश्चय किया। उस दिन वायुपुत्र तथा दूसरे वानर समुद्र के किनारे ही कंद-मूल-फलों से अपनी क्षुधा शांत करके रहे। वे परम शक्ति-शाली वानर दूसरे दिन वहाँ से रवाना हुए और मेरु, मंदर-पर्वतों से भी विशाल दर्दुर नामक पर्वत के निकट पहुँच गये। उस पर्वत की तराइयों में विचरण करते हुए उन्होंने फल, मूल, आदि खाकर वहीं रात्रि बिताई।

२२. वानरों का मधुवन में विचरण करना

प्रातःकाल होते ही उन बाहुबली वानरवीरों ने सोचा—'हमें जब सुग्रीव के मधुवन में जाकर, वहाँ जी भरकर मधु (शहद) का पान करना चाहिए, अन्यथा हमारी प्यास शांत नहीं होगी। हमने रामचंद्र का कार्य संपन्न किया है। अतः, सुग्रीव क्रुद्ध होकर हमें दंड नहीं देंगे।' यों निश्चय करके सभी वानरों ने अंगद तथा हनुमान् से प्रार्थना करके उनकी भी सम्मति प्राप्त कर ली और मधुवन के लिए रवाना हो गये। मध्याह्न होते-होते वे मधुवन में पहुँच गये। चारों दिशाओं में झरनेवाली मधु-धाराओं को देखकर उनके मुँह में पानी भर आया। विभिन्न प्रकार के हाव-भाव करते हुए, वे अपने कान खड़े करके, एक दूसरे को अपने दाँत दिखाते हुए, एक दूसरे से तर्क-वितर्क करते हुए, बड़े कौतुक के साथ अपने इष्टानुसार उस वन के विभिन्न दिशाओं में विचरण करने और पुष्पों से झरनेवाला मकरंद, छत्तों में एकत्रित मधु आदि का पान करने लगे। फिर, उन्होंने कई प्रकार के फल खाये। कच्चे फलों तथा फूलों को तोड़कर नीचे गिरा दिया। अत्यधिक उल्लास के आवेश में आकर उन्होंने पेड़ की शाखाओं को तोड़ दिया और पेड़ों को झुका-कर एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर छलाँग मारकर जाने लगे। फिर, वे पुष्प-लताओं को झूला बनाकर झूलने लगे तथा सरोवरों में स्नान करते हुए नाना प्रकार की क्रीड़ाएँ करने लगे।

जब मधुवन की रक्षा करनेवाले वानर (दधिमुख) ने इन वानरों की करतूत देखी, तब क्रोध में आकर उसने सभी वानरों को डाँटकर उन्हें तुरंत वहाँ से निकल जाने का आदेश दिया। जब उसके अनुचर सभी वानरों को धक्का देकर बाहर निकालने लगे, तब अंगद तथा हनुमान् ने भागनेवाले अपने साथी वानरों को रोका और वन-रक्षक दधिमुख को मुँह के बल नीचे गिराकर, उसे पृथ्वी पर घसीटकर, मुष्टियों का प्रहार करके भगा दिया। बेचारा दधिमुख क्रोध तथा दुःख से व्याकुल होकर भगवान् की दुहाई देते हुए भागा और राजा राम तथा लक्ष्मण के श्रीचरणों में बड़ी भक्ति के साथ प्रणाम करके, फिर सूर्य-पुत्र के चरणों में सिर झुकाकर कहने लगा—'हे देव, आपका मधुवन देव-दानवों के लिए भी अभेद्य है। आज वायु-पुत्र तथा वालि-पुत्र, दोनों ने अपने बहुत-से साथियों को लेकर ऐसे मधुवन में प्रवेश किया है और वृक्षों पर चढ़कर शाखाओं पर विचरण करते हुए अपने इच्छानुसार फल खाये हैं और जी भरकर मधु पिया है। इसका किंचित्

भी विचार न करके कि यह उपवन राजा का है, वे मनमानी कर रहे हैं। मैंने उन्हें डाँट-डपटकर बाहर निकालने का प्रयत्न किया, तो उन्होंने मुझे मुष्टियों से मारकर भगा दिया है।'

दधिमुख का विलाप सुनकर सुग्रीव अत्यंत क्रुद्ध हो गया और उन वानरों को उचित दंड देने का विचार करने लगा। तब सारी परिस्थिति समझकर सतत-विजयी लक्ष्मण ने सुग्रीव से कहा—'यदि अंगद आदि महावीर तुम्हारी आज्ञा बिना प्राप्त किये ही, निर्भय होकर तुम्हारे वन में प्रवेश करके शहद पी रहे हैं, तो कदाचित् उन बाहुबलियों के द्वारा रामचंद्रजी का कार्य संपन्न हुआ होगा। अन्यथा, वे इस प्रकार तुम्हारी आज्ञा की अवहेलना करने का साहस कभी नहीं करेंगे। इसलिए तुम उन्हें शीघ्र यहाँ बुलाओ।'

तब सूर्यपुत्र ने दधिमुख को देखकर कहा—'वे रामचंद्रजी का कार्य संपन्न करके आये दीखते हैं, इसलिए उनके सभी अपराध क्षम्य हैं। तुम अपना दुःख सहन कर जाओ और उन्हें यहाँ बुला लाओ।' सुग्रीव का आदेश पाकर वह उन वानरों के समीप पहुँचा और हनुमान्, अंगद तथा जांबवान् आदि वानर-वीरों को प्रणाम करके कहा—'हे श्रेष्ठ वानरो, मेरा अपराध क्षमा करो और शीघ्र यहाँ से प्रस्थान करो। तुम्हें लिवा लाने के लिये सूर्यपुत्र ने मुझे भेजा है।

यह समाचार सुनकर सब वानर बहुत हर्षित हुए। वे रविपुत्र के आदेश को सिर आँखों पर धारण करके, सुग्रीव के दंड की कल्पना करके भयभीत होनेवाले अंगद को धैर्य बँधाकर, बड़े उत्साह के साथ वहाँ से चले। उनकी हर्ष-ध्वनि बादलों की ध्वनि के समान सुनाई पड़ने लगी। बहुत अधिक मोद-मग्न हो जानेवाले उन वानरों को दूर से ही देखकर सुग्रीव ने उनकी अगवानी के लिए कपि-सेना भेजी और बड़ी प्रीति से उनका स्वागत किया।

२३. राम को सीता का कुशल-समाचार सुनाना

तब सभी वानरों ने जगदीश्वर रामचंद्र के चरणों में दण्ड-प्रणाम किया; और फिर सुमित्रानंदन तथा सूर्यपुत्र को बड़े प्रेम से प्रणाम किया और हनुमान् को आगे करके रामचंद्र के आसन के समीप एक झुंड में बैठ गये। तब हनुमान् अपनी यात्रा का वृत्तांत सुनने की रामचंद्र की उत्सुकता को समझ गया और अत्यधिक भक्ति स हाथ जोड़कर कहने लगा—"हे सूर्यवंश के नाथ, देखा मैंने उस वैदेही को, जो स्त्रियों में शिरोमणि, तथा परम कल्याणी हैं। हे राजन्, मैंने उनका अन्वेषण किया और फिर संपाति के द्वारा मार्ग जानकर (दक्षिण दिशा में) गया, सहज ही समुद्र को पार किया, और दक्षिण समुद्र के तट पर अपार शोभा से विलसित त्रिकूट पर्वत पर स्थित दानव-समूहों से रक्षित लंका में अकेले प्रवेश किया। वहाँ सब स्थानों में ढूंढ़ने पर भी सीता को न देख सकने के कारण मैं अत्यंत दुःखी हुआ, फिर मैंने रावण के उद्यान में प्रवेश किया और वहाँ मैंने आपकी धर्म-पत्नी को राक्षस-स्त्रियों से घिरे हुए देखा। वे कई दिनों के उपवास के कारण बहुत ही क्लांत हो गई थीं। वे एक वृक्ष के नीचे विपुल दुःख की बाढ़ में डूबी हुई अपने हाथ पर कपोल टेककर चिताक्रांत हृदय से आपका ही स्मरण करती हुई बैठी थीं। उस समय राक्षस रावण वहाँ आया और उन्हें विभिन्न प्रकार से भय दिखाने लगा। तब वे अपनी विवशता

तथा दीन दशा का विचार करती हुई अविरल गति से अश्रुधारा बहाने तथा आहें भरने लगीं। मलिन वस्त्र तथा धूलि-धूसरित शरीर से युक्त वे, उमड़ते हुए शोक से बार-बार विलाप करने लगीं। आपने अपनी पत्नी की जो रूप-रेखा मुझे बताई थी, वह उनकी रूप-रेखा से सर्वथा मिलती थी; इसलिए मैंने निश्चय किया कि वे ही सीता हैं। फिर, मैंने उनके समीप जाकर प्रणाम किया, उनसे उचित वार्तालाप करके आपकी अंगूठी उन्हें दी। फिर, उनकी चूड़ामणि लेकर मैं समुद्र लाँघकर यहाँ पहुँच गया हूँ।" इतना कहकर हनुमान् ने राम को सीता की चूड़ामणि दी, जो उनके वियोग की अग्निशिखाओं के प्रतीक के समान दीप्तिमान् थी।

राम ने उस शिरोरत्न को बड़े अनुराग से लिया और उसे अपने हृदय से लगाकर थोड़ी देर तक मूर्च्छित-से हो रहे। फिर, अपने धैर्य को संचित करके वे सँभल गये और बाष्पपूरित नयनों से वानर-राजा को देखकर बोले—'हे सूर्यनंदन, मेरे प्राण-समान देवी की शिरोमणि को देखकर मेरा हृदय लाख के समान पिघल रहा है। इन्द्र ने यज्ञ से संतुष्ट होकर यह रत्न मेरे श्वशुर को दिया था। उस गुणनिधि जनक महाराज ने इसे सीता के सिर में पहनाकर बड़े सम्मान के साथ सीता का विवाह मेरे साथ किया। यह रत्न लतांगी सीता से तथा मुझसे कभी अलग नहीं रहता। आज मेरी तथा सीता की भेंट कराने के हेतु यह रत्न आया है।' इस प्रकार कहते हुए राम उस मणि को बार-बार अपने हृदय से लगाने लगे।

उसके पश्चात् राम हनुमान् को देखकर बोले—'हे पुण्यात्मा, तुम्हारे लौटते समय सीता ने तुम से क्या कहा था? सुनाओ।' तब शक्तिसंपन्न हनुमान् राम को देखकर कहने लगा—"हे देव, उन्होंने कहा, 'सूर्यवंशतिलक के वियोग में गत दस महीने मैंने असंख्य दुःखों को झेलते हुए विताये हैं। दो महीने के पश्चात् रावण मुझे मार डालने का निश्चय कर चुका है। इसलिए तुम राम भूपाल से निवेदन करो कि मेरे प्राण अब नहीं बचेंगे। उन्हें सत्यनिष्ठ मानकर ही मेरे पिता ने मेरा पाणिग्रहण उनसे कराया। विवाह-वेदी पर उन्होंने (मेरे पति ने) अग्निदेव के समक्ष सदा मेरी रक्षा करने की प्रतिज्ञा की और मुझे अपने साथ अपने घर ले आये। आज उन्होंने मेरी उपेक्षा कर दी और मुझे अनाथ बना दिया। इस पर विचार करने के लिए प्रभु राम से निवेदन करो। उनसे यह भी निवेदन करो कि अपनी धर्मपत्नी को कोई चुराकर ले जाय, तो चुपचाप बैठे रहना वीरों का धर्म नहीं है। औचित्य का विचार करके मैंने इन बातों की चर्चा की है। मेरा शरीर चाहे जहाँ भी रहे, मेरे मन, वचन और कर्म उन्हीं में रमण करते रहेंगे।' इतना कहने के पश्चात् उन्होंने यह भी बताया कि चित्रकूट पर्वत पर, उन पर कौए ने कैसे आक्रमण किया था; कैसे आपने गैरिक से उनके कपोलों पर सुंदर मकराकृति की रचना की थी। (ये बातें उन्होंने इसलिए बताई थीं कि) मेरे वचनों पर आपका विश्वास हो जाय।" रामचंद्र से इतना कहने के पश्चात् हनुमान् ने लक्ष्मण तथा सुग्रीव को भी सीताजी का संदेश सुना दिया। सभी वानरवीर मन-ही-मन हर्षित हुए।

यह सुंदरकांड संसार में व्याप्त होकर सभी काव्यों में सुंदर सिद्ध हुआ है। इसका विचार करके आंध्र-भाषा का सम्राट्, काव्य-आगम आदि के ज्ञाता, आचारवान्, धीर, भूलोक-

निधि, गोनबुद्ध भूपाल ने सुंदर गुणों से संपन्न, धैर्यवान्, शत्रुओं के लिए भंयकर स्वरूप, महात्मा, अपने पिता विट्ठल-नरेश के नाम पर रसिक जनों के लिए प्रिय, अनुपम तथा ललित शब्द तथा अर्थों से संपन्न रामायण के इस सुंदरकांड की, श्रेष्ठ अलंकार तथा सुंदर भावों से परिपूर्ण बनाकर इस प्रकार रचना की कि वह आचंद्रार्क, परमपूज्य हो शोभायमान होता रहे। प्रसिद्ध, आर्ष, रसिकों के लिए सतत आनंददायक इस आदिकाव्य का पठन जो कोई भी करेगा, या जो इसका श्रवण करेगा, उसे सामवेद आदि विविध वेदों का आधार राम-नाम-रूपी चिंतामणि के द्वारा नये भोग, परोपकार-बुद्धि, उदात्त विचार, परिपूर्ण शक्ति, राज्य-सुख, निर्मलकीर्त्ति, नित्य सुख, धर्मनिष्ठा, दान-पुण्य में अनुरक्ति, चिरायु, स्वास्थ्य, ऐश्वर्य, अक्षय शुभ, पाप-क्षय, श्रेष्ठ पुत्र की प्राप्ति, शत्रुओं का नाश, और धन-धान्य-समृद्धि, आदि सुलभ होंगे। उनका जीवन निर्विघ्न होगा; घरों में लावण्यवती स्त्रियों का अनुराग तथा पुत्रों के साथ जीवन सिद्ध होगा। सब प्रकार के संकट दूर होंगे, सगे-संबंधियों से मिलन, इच्छित कार्यों की सिद्धि, देवताओं की प्रीति, और पितरों की तृप्ति सुलभ होंगी। इसके रचयिता की श्रेष्ठ तथा शुभ उन्नति होगी तथा उसे इन्द्रभोग की प्राप्ति होगी। जबतक कुलपर्वत, सूर्य, चंद्र, दिशाएँ, वेद, पृथ्वी, तथा सभी भुवन सुशोभित रहेंगे, तबतक यह कथा अक्षय आनंद-समूह का आगार सिद्ध होगी।

सुन्दरकांड समाप्त

श्रीरंगनाथ रामायण

(युद्धकांड)

१. श्रीराम का हनुमान् की प्रशंसा करना

आश्रितों के हिताकांक्षी, सूर्यवंश के संवर्द्धक रामचन्द्र ने जब प्राणाधिका प्रिया के इन प्रिय वचनों को हनुमान् के द्वारा सुना और उनका पता जान लिया, तब उन्होंने बड़े प्रेम से कहा—"हनुमान् ने जैसा कार्य किया है, क्या, वैसा कार्य करना देवताओं के लिए भी संभव है ? ऐसा प्रतीत होता है कि शक्ति में या तो हनुमान् ही श्रेष्ठ है, या पवन श्रेष्ठ है या गरुड़ ही श्रेष्ठ है । समुद्र को पार करना उनके सिवा और किसके लिए संभव है ? देव, गंधर्व, दैत्य तथा किन्नरों के लिए भी दुर्गम, राक्षस-सेना के प्रचंड बाहुबल से दिन-रात सुरक्षित लंका में प्रवेश करके वहाँ से जीवित लौट आना क्या शशिधर (शिव) के लिए भी संभव है ? अपने प्रभु का महान् कार्य बड़े आनन्द के साथ जो शीघ्र ही संपन्न करता है, वही उत्तम पुरुष है । प्रभु के कार्य में विघ्न पड़ने पर, विलंब के साथ उसे पूरा करनेवाला मध्यम श्रेणी का पुरुष है । प्रभु के बताये हुए कार्य से बचने की चेष्टा करनेवाला तथा हीला-हवाला करनेवाला व्यक्ति दुस्सेवक है । इन तीनों में हनुमान् निस्संदेह श्रेष्ठ व्यक्ति ही सिद्ध हुआ है । अनिलकुमार ने एक महान् कार्य को बड़े हर्ष तथा तत्परता से संपन्न किया है । अब उसका प्रत्युपकार, मैं किस प्रकार से कर सकूँगा । अब (प्रेम से)

उसका आलिंगन करना ही इस समय मेरे वश की बात है।" यों कहकर प्रभु ने हनुमान् को अपने हृदय से लगा लिया ।

इस प्रकार, सुग्रीव के समक्ष राम ने हनुमान् की प्रशंसा करके कहा—'हे पवनपुत्र, मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि तुम जानकी का पता लगाकर आये हो। मुझे अत्यन्त आनन्द का अनुभव हो रहा है । पता नहीं, इस कार्य की समाप्ति कैसे होगी । मेरा मन यह सोचकर व्याकुल हो रहा है कि इस विशाल समुद्र को लाँघकर जाने की क्षमता वानर-सेना को कैसे प्राप्त होगी ।' इतना कहकर राम अपना सिर झुकाकर चुप हो रहे । रविपुत्र, राम के मन की चिंता को दूर करने के उद्देश्य से कहने लगा—'हे देव ! आप साधारण लोगों की भाँति इस प्रकार क्यों दुःखी हो रहे हैं ? आप क्यों कहते हैं कि हम समुद्र को पार नहीं कर सकते ? हम अवश्य समुद्र को पार करेंगे, सुवेलाद्रि को पार करके लंका को जीतेंगे और रावण का संहार करके संसार का दुःख दूर करेंगे । हे राजन्, आप विचार कीजिए। मेरे सभी वानर परिश्रमशील हैं ; बाहुबल से संपन्न हैं; और दुर्जय हैं । हे राघव, इनके रहते हुए आप इस प्रकार क्यों चिंतित होते हैं ? आप तैयार हो जाइए । उद्योगी पुरुष के लिए सभी अर्थ सद्यः फल-प्रद सिद्ध होते हैं । शत्रु सदा उत्साही व्यक्ति से भयभीत रहते हैं; उत्साहहीन व्यक्ति से नहीं ।'

सुग्रीव के इन वचनों को सुनकर प्रभु ने हनुमान् से कहा—'ठीक है । मैं पहले समुद्र से (मार्ग देने की) प्रार्थना करूँगा । यदि उसने नहीं दिया, तो अपने बाणों की अग्नि से समुद्र को ही सुखा दूँगा, या उस पर पुल बाँधूँगा । हे पवनपुत्र, समुद्र पार करना मेरे लिए कौन बड़ा कार्य है ? अब तुम यह तो बताओ कि उस दशकंठ के नगर में कितने किले हैं, उसकी सेना कितनी बड़ी है ? उसके नगर के कितने द्वार हैं ? कितने राक्षस उन द्वारों की रक्षा करते हैं ? उस नगर के सौधों की पंक्तियाँ कैसी हैं ? तुम तो इन सबका पता लगाकर आये हो, इसलिए मैं तुमसे इन सब बातों का विवरण सुनना चाहता हूँ ।'

२. लंका के वैभव का वर्णन

तब हनुमान् हाथ जोड़कर बड़े विनय के साथ प्रभु से इस प्रकार निवेदन करने लगा— "हे दाशरथि, उस नगर में सतत (गंड-स्थलों से) मधु-धारा बहानेवाले, मुख से रौद्र भाव प्रकट करनेवाले, पर्वताकार भद्र गजों के असंख्य समूह हैं । बहुत-से आयुधों से सज्जित, आश्चर्यजनक तथा भयंकर दीखनेवाले, छत्रों, पताकाओं तथा विविध चिह्नों एव ध्वजाओं से युक्त सूर्य-बिंब की प्रभा के समान मणियों से दीप्तिमान्, अश्वों एवं सारथियों से युक्त असंख्य रथ हैं । वीर रस के समुद्र की लहरों के समान दिखाई देनेवाले विविध रंगों से युक्त, (दर्शकों की) दृष्टियों को चौंधिया देनेवाले, अपनी हिनहिनाहट से सबको आश्चर्य-चकित करनेवाले, अपने वेग में पवनदेव के अश्वों को भी मात करने की दिव्य शक्ति रखनेवाले तथा मनोहर आकारवाले, अश्व अनगिनत संख्या में हैं । हे देव, हे राघव, वहाँ के राक्षसवीरों की तो गिनती ही नहीं हो सकती है; वे ऐसे दिखाई देते हैं, मानों बिजलियों से युक्त काले बादलों ने ही दानवों का रूप ले लिया हो, यों काले पर्वत ही मूर्त्तिमान् रौद्र का-सा रूप धारण किये हुए हों, या जिस गरल का पान शिव ने किया था,

उसी ने मानों दैत्यों का रूप धारण कर लिया हो, या प्रलय-काल की अग्नि के धुएँ ने ही मानों राक्षसों का रूप धर लिया हो । बाहुबल में उन राक्षसों की समता ब्रह्मा आदि देवता भी नहीं कर सकते । हे राजन्, लंका में समस्त संसार में अनुपम सात उन्नत तथा श्रेष्ठ दुर्ग हैं । एक ईंटों का दुर्ग है, जिसके चारों ओर के कंगूरे सुंदर दिखाई पड़ते हैं। उसके भीतर शिलाओं से निर्मित एक विशाल दुर्ग है, जिसके भीतर फौलाद का दुर्ग है । उसके मध्य में गवाक्षों से युक्त एक ताँबे का दुर्ग है, जिसके भीतर (बड़ी-बड़ी तोपों की समता करनेवाले) शिला-यंत्रों से युक्त एक विशाल काँसे का दुर्ग है । उसके मध्य ब्रह्मा तथा शिव के लिए भी अभेद्य एक रजत-दुर्ग है, जिसके मध्य में मणियों के प्रकाश की किरणों से सुशोभित तथा प्रशंसनीय एक स्वर्ण-दुर्ग है ।

"हे राजन्, उन सात किलों में से प्रत्येक किले में, असंख्य दीप्तियों को विकीर्ण करनेवाली मणियों से खचित चार द्वार हैं, जिनके दरवाजे यम धर्मराज के वक्षःस्थल के समान विशाल हैं । उन दुर्गों में तंत्र-विधियों से अभिमंत्रित असंख्य शर-चाप रखे हुए हैं । उस किले के चारों ओर पाताल के समान गहरी, मकरों से भरी चार परिखाएँ हैं, जिनके मध्य में चार पुल बने हैं ।

"उन चारों पुलों पर बहुत-से राक्षस किले की रक्षा के लिए नियुक्त हैं । वहाँ ऐसी असंख्य शिलाएँ, बाण तथा यंत्र-समूह हैं, जो अपने-आप शत्रुओं का नाश कर देते हैं । अब उन सबका वर्णन ही मैं क्यों करूँ ? महान् वैभव से संपन्न हो रावण, प्रति दिन अपनी सेना के साथ भ्रमण के लिए निकलता है और सबका निरीक्षण करता है । अपने उद्धत गर्व से प्रेरित होकर वह सतत दूसरों को युद्ध के लिए चुनौती देता रहता है । पराक्रम तथा शक्ति से संपन्न शत्रुओं के लिए भी लंका को वश में करना दुष्कर है । इसके अलावा समुद्र में जल, वन, (कृत्रिम) स्थल, तथा पर्वत के चार दुर्ग और हैं । वे सतत दिखाई तो देते हैं, किन्तु उनको घेरने का उपक्रम करने जायँ, तो उनका पता ही नहीं लगता।

"हे राजन्, इस लंका नगर की रक्षा करनेवाले भयंकर राक्षस मृत्यु की जिह्वा की समता करनेवाले, शूल धारण किये हुए सतत रक्षण-कार्य में तत्पर रहते हैं । ऐसे रक्षक पश्चिम द्वार पर दस सहस्र रहते हैं । पूर्व द्वार पर स्वयं रावण चतुरंगिणी सेना के साथ रहता है । दक्षिण द्वार पर एक लाख राक्षस रक्षा करते रहते हैं । उत्तर द्वार पर अगणित शस्त्रों से सुसज्जित एक लाख राक्षस रहते हैं । नगर के मध्य में एक लाख पच्चीस हजार राक्षस रहते हैं । हे सूर्यवंशतिलक, ऐसी लंका में, बिना अन्य किसी का ध्यान किये मैं आपकी कृपा से प्रवेश कर सका; उन पुलों को अपने पदाघात से चूर-चूर कर दिया; दुर्गों को गिराकर खंदकों में भर दिया, सारी लंका को जला दिया और आपके श्रीचरणों में लौट आया । आपने वहाँ की सारी बातें जान ली हैं । अब विलंब क्यों ? हम शीघ्र समुद्र को पार करेंगे । समुद्र पार करने की देर है कि वानर-सेना दशकंठ की लंका को क्षण भर में उड़ा देंगी ।"

तब रघुराम ने सुग्रीव को देखकर कहा—'हे सूर्यपुत्र, अब विलंब क्यों करें ? यही शुभ मुहूर्त्त है । इसी मुहूर्त्त में प्रस्थान कर जाना ही हमारे लिए उचित है। अब उस राक्षस

के लिए मेरे अस्त्र के सिवाय (मुक्ति का) और कोई उपाय नहीं है । वह छिप कहाँ सकता है ?' फिर उन्होंने नील को देखकर कहा—'तुम सेना के आगे-आगे ऐसे मार्ग से चलो, जो बहुत ही मनोहर हो तथा जिसमें स्वच्छ एवं मीठा जल, पके हुए फल, तथा पेड़ों की छाया का प्राचुर्य हो । साथ-ही-साथ शत्रुजनों का भी पूरा ध्यान रखते हुए आगे बढ़ना ।' नल उनकी आज्ञा का पालन करने के लिए चल पड़ा । सुग्रीव ने सभी वानरों को युद्ध-यात्रा पर चलने की आज्ञा दी ।

३. कपि-सेनाओं की युद्ध-यात्रा

तब वानर-सेना जहाँ-तहाँ की गुफाओं से बड़े उत्साह के साथ चली । उनके पदाघातों की घोर ध्वनि से सब गुँफाएँ गूंजने लगीं । उनके घोर हुंकार, तथा विकट अट्टहास के निनाद आकाश तक व्याप्त हो गये । कुछ वानर भयंकर गर्जन करते हुए, अपनी शक्ति के गर्व में झूमते हुए जा रहे थे । कुछ पके हुए फल-वृक्षों को ही अपने कंधों पर रखे हुए उनके फलों को चबाते हुए जा रहे थे । कुछ वानर राम के समक्ष खड़े होकर कह रहे थे कि—'हे राम भूपाल, हम अवश्य युद्ध में राक्षस-समूह के साथ रावण का वध करेंगे ।' इस प्रकार, सभी वानरवीर अत्यधिक उत्साह से उछलते, हर्ष-निनाद करते, अपनी पूँछों को हिलाते, पर्वत-शिखरों पर चढ़कर अपनी इच्छा से भयंकर गर्जन करने लगे । उस ध्वनि से आकाश गूँजने लगा; पृथ्वी डोलने लगी, पहाड़ काँपने लगे, अष्ट दिग्गज धँस-से गये, आदिशेष अत्यधिक भार का अनुभव करने लगा, कच्छप ने अपना सिर झुका लिया । उस विशाल सेना के चलने से जो धूलि उड़ी, वह कई रंगों से आकाश में व्याप्त होकर ऐसी दीखने लगी, मानों उस ध्वनि के आधिक्य के कारण पृथ्वी से निःश्वास का धुआँ इस रूप में निकल रहा हो ।

वानरों की उस विशाल सेना के अग्र भाग में नील के नेतृत्व में चलनेवाली सेना (गरुड़ के) भयंकर मुख के समान थी, दोनों पार्श्व भागों में चलनेवाली सेनाएँ दो पक्षों की भाँति थीं, मध्य भाग में आनेवाले रामचंद्र आत्मा के समान थे, पीछे बड़े आटोप के साथ आनेवाली सेना पूँछ की तरह प्रकट होती थी । इस तरह वह विशाल सेना ऐसी दीख रही थी, मानों नागपाश से पीड़ित होनेवाले सूर्यवंशी राजकुमारों के संकट दूर करने के निमित्त, गरुड़ पृथ्वी पर चल रहा हो । प्रजंघ, केसरी तथा दधिमुख आदि वानर-वीर भीड़ को हटाकर मार्ग बनाते हुए जा रहे थे । उनके पीछे अत्यधिक हर्षोल्लास से भरे हुए हृदयों से गवय, तार, गंधमादन, हनुमान्, अंगद, शरभ, नल, जांबवान्, हर, मैन्द आदि वानर जा रहे थे । उनके पीछे रामचंद्र, अनुज लक्ष्मण के साथ चल रहे थे। इस प्रकार, सह्याद्रि पर पहुँचकर वहीं उन्होंने पड़ाव डाला । सुग्रीव ने वहाँ के विशाल वनों में, तडागों के किनारे, तथा वृक्षों की छाया में सेना को ठहरने का आदेश दिया ।

दूसरे दिन पूर्ववत् सेना को रवाना करके लक्ष्मण स्वयं भी अपने प्रभु राम के साथ चले । वानरों के चलने से धरती हिलने लगी । उस सेना-समुद्र में वीर रस का उफान-सा उठ रहा था; उसकी शक्ति चारों ओर व्याप्त हो रही थी; (सैनिकों की) शरीर-कांति की तरंगें उठ रही थीं; हर्ष-ध्वनियों का घोष आकाश का स्पर्श कर रहा था;

मनुवंशचन्द्र, (रामचन्द्र) के सान्निध्य से वह सेना-समुद्र उद्वेलित हो रहा था । इस प्रकार वह वानर-सेना-समुद्र (दक्षिण के) महासागर के गर्व को चूर करने के लिए निकल पड़ा। (उस सेना-समुद्र के बीच में) धीर राम-लक्ष्मण आकाश के मध्य भाग में प्रकाशमान होनेवाले सूर्य तथा चन्द्र की भाँति सुशोभित थे । जब नदियों में उतरकर सेना चलने लगी, तब नदी का पानी उमड़ने लगा । जब वह सेना सह्याद्रि पर्वत तथा मलय पर्वत के मध्य भाग से होकर जाने लगी, तब मंद पवन के चलने से वृक्षों की शाखाएँ आपस में रगड़ खाकर उन वानरों पर पुष्प बरसाने लगीं । यह उचित ही तो था ! वन-लक्ष्मी प्रभु राम के आगमन से हर्षित होकर पुष्पांजलि दिये विना कैसे रह सकती थी ?

वानर-वीर उस पर्वत-प्रदेश में स्थित सरोवरों में उतरकर उनका निर्मल जल पानकर संतुष्ट होते । उन सरोवरों में पाये जानेवाले कमल-समूहों को वे अपने कर-कमल-युग्मों से इस प्रकार तोड़ते, मानों कह रहे हों कि हे कमलाकर, (सरोवर) जैसे कमलों का शत्रु (चंद्रमा) क्रोध में कमलों को जैसे तोड़ डालेगा, वैसे ही हमारे कमलाप्त-कुल-तिलक (सूर्यवंशतिलक) दशकंठ के वदन-कमलों को भी तोड़ देगा । वे इस प्रकार कुमुदों* को कुचल डालते थे, मानों कह रहे हों कि हम दुष्ट-शत्रु की स्त्रियों को दुःख* देकर, जानकी के दुखों* को भी इसी प्रकार* कुचल डालेंगे । सरोवरों के गर्भ से दीर्घ मृणालों को वे इस प्रकार उखाड़ते थे, मानों कह रहे हों कि हम राक्षसों के उदरस्थ आँतों को इसी प्रकार चीरकर बाहर निकालेंगे । इस प्रकार के विनोदों में मग्न होते हुए सभी वानर सरोवरों के किनारे लाँघकर जाते और फिर पहाड़ों पर चढ़कर वहाँ प्राप्त होनेवाला मधु छककर खाते और फिर जल पीकर बड़े उत्साह के साथ आगे बढ़ते जाते थे ।

४. महेन्द्र पर्वत से राम का समुद्र का देखना

तब रामचन्द्र ने महेन्द्र पर्वत पर चढ़कर वहाँ से अनतिदूर पर दीखनेवाले समुद्र का अवलोकन किया । वह समुद्र विविध क्रूर प्राणियों को अपने गर्भ में एकत्र किये हुए बड़ा प्रचंड रूप धारण करके ऐसा कहते हुए-से दिखाई दे रहा था कि जो रावण दीर्घ-काय मगर-रूपी हाथियों के झुंडों से, उत्तुंग तरंग-रूपी घोड़ों से, कछुए तथा केंकड़े-रूपी रथ-समूह से, असंख्य मत्स्य-रूपी सैनिकों से, सर्पों के फन-रूपी पताकाओं से, उनकी सुंदर तथा चटुल पूँछ-रूपी खड्गों से, मीनावली-रूपी चामरों से, ऊपर तैरनेवाले झाग-रूपी छत्रों से, घनघोष-रूपी भेरी-निनाद से तथा जल-रूपी वीर रस से, मेरी शरण में आया हुआ है, उसका वध मैं कैसे करने दूँगा ?

ऐसे विशाल समुद्र को देखकर राघव आश्चर्यचकित हुए और निदान उस समुद्र के निकट पहुँचे । समुद्र के किनारे समस्त सेना को एकत्र करने लायक चंद्रकांत शिलाओं से पूर्ण एक विशाल प्रदेश में रामचन्द्र इस प्रकार बैठ गये, मानों वे अपने शर-रूपी बंसी से समुद्र के आश्रय में विचरनेवाले रावण-रूपी मोटे पाठीन (मछली विशेष) को पकड़ने के लिए बैठे हों । तब वे अपने पास ही बैठे हुए सूर्यपुत्र सुग्रीव को देखकर बोले—

* इन सभी शब्दों के लिए तेलुगु में एक ही शब्द (तोग) का उपयोग होता है । कवि ने यहाँ इस शब्द का प्रयोग करके यमक अलंकार सिद्ध किया है । —लेखक

'हे सुग्रीव, हम तो समुद्र के किनारे पहुँच ही गये । अब कहाँ से और कैसे इस समुद्र को पार किया जाय, इसका उपाय तुम सोचो । पहले एक सुंदर स्थान में इस वानर-सेना को ठहरने की आज्ञा दो ।' सुग्रीव ने इस कार्य के लिए नील को नियुक्त किया । नील ने शीघ्र ही सारी सेना को एक सुन्दर स्थान में ठहराने का प्रबंध किया । वानरों के, शिविरों में आते तथा वहाँ उनके ठहराते समय जो तुमुल शब्द हो रहा था, वह सूर्यमंडल तक व्याप्त होकर ऐसा लगता था, मानों वह समुद्र को डाँट रहा हो कि ऐ समुद्र, मैं स्वयं तो वनचरों (वानर) से उत्पन्न हूँ; भला मैं तुम्हारे वनचरों से (जल-चर) उत्पन्न घोष को कैसे सहन कर सकता हूँ और वह समुद्र के घोष को दबा देता था । सारी वानर-सेना, तीन सैनिक-शिविरों में, समुद्र-तट पर स्थित वनों में ठहर गई ।

तब रामचंद्र ने लक्ष्मण से एकांत में कहा—'हे सौमित्र, इस समुद्र की विशालता तो देखो; इसके अंत का पता कोई कैसे पा सकेगा ? इसी प्रकार दुःख-समुद्र का भी अंत नहीं होगा ।'

५. संध्या-वर्णन

इस प्रकार कहते हुए प्रभु रामचंद्र जब दुःख-समुद्र में डूब गये, तब सूर्य भी पश्चिम समुद्र में ऐसा डूब गया, मानों उसने ऐसा विचार किया हो कि रामचन्द्र का जीवन ही मेरा जीवन है । सूर्यास्त होते ही समस्त लोक मणिहीन मंजूषा की भाँति कांतिहीन हो गये । संध्या-राग चारों ओर इस प्रकार व्याप्त हो गया, मानों मनसिज के बाणों की अग्नि से तप्त मनवाले राम का शीतलोपचार करने के निमित्त पश्चिम समुद्र राग-रंजित वस्त्र लेकर आया हो । कमल-दलों का यौवन ढल जाने से, कमल अपने शेष सौंदर्य को लिये हुए मुकुलित हो गये, मानों यह बता रहे हों कि राम के प्रताप के आगे इंद्र के शत्रु रावण का मुँह भी ऐसा ही कुम्हला जायगा । चारों ओर अंधकार ऐसा व्याप्त होने लगा, मानों राम का शीतलोपचार करने के लिए दिग्वधुएँ ललित तमाल-पल्लव-राशियों को उछाल रही हों । जहाँ-तहाँ कुमुद ऐसे विकसित हुए, मानों वे यह सोचकर हँस रहे हों कि सूर्यवंश-तिलक राम की वधू को बंदी बनाकर हर्षित होनेवाले दनुजेन्द्र का हर्ष भंग हो जायगा । सारा आकाश इस प्रकार नक्षत्र समूह से अलंकृत था, मानों वह इस बात की सूचना दे रहा हो कि रामचन्द्र के पैने शरों से सारा समुद्र सूख जायगा और उसके गर्भ में स्थित रत्न-राशियाँ इस प्रकार दिखाई पड़ेंगी । आकाश के सारे नक्षत्र समुद्र के जल में इस प्रकार प्रतिबिंबित हो रहे थे, मानों रामचन्द्र के विरह-ताप का शमन करने के लिए निशासुंदरी ने सुगंधित मल्लिका-पुष्पों की शय्या का प्रबंध कर दिया हो । चक्रवाक एक दूसरे से अलग होकर शीघ्र गति से चारों दिशाओं में चले गये, जिससे सब दिशाओं में इस बात की घोषणा करें कि श्रीरामचन्द्र विरह-व्यथा से पीड़ित हो रहे हैं; यदि हम भी विरह से पीड़ित हों, तो क्या, आश्चर्य है । चन्द्र अपनी किरणों को आकाश में व्याप्त करते हुए ऐसा उदित होने लगा, मानों वह श्रीराम की निंदा यों कर रहा हो कि हे राजन्, मैं राजा (नक्षत्रों का) होकर समुद्र को प्रसन्नता से प्रफुल्ल कर देता हूँ और आप राजा होकर उसको सुखा देना चाहते हैं । आप पूर्णकला से समन्वित हैं; क्या आपके लिए यह उचित है ? यदि आप

ऐसा करेंगे, तो आपको भी (मेरे समान) कलंक लग जायगा। चन्द्रिका समस्त दिशाओं में ऐसे व्याप्त हो गई, मानों चन्द्र विकट अट्टहास कर रहा हो कि हे राजा राम, जिस शिव ने मुझे अपने सिर पर धारण करके मेरा सम्मान किया है, ऐसे शिवजी के धनुष को तोड़ने के कारण ही आपको विरह-दुःख हुआ है। उज्वल चाँदनी चारों दिशाओं में ऐसे व्याप्त हो गई, मानों चन्द्रमा ने समुद्र के फेन-रूपी चंदन को अपनी किरणों के द्वारा लहरों से आकृष्ट करके, दिग्वधुओं के शरीर पर मल दिया हो। तब चकोर-चकोरी अत्यधिक आनंद से एक दूसरे का आलिंगन करते बार-बार अपनी चोंचों को पसारकर छककर चंद्रिका-रस का पान करते, बड़े अनुराग से अपनी प्रियाओं को पिलाते, उनके पीने पर स्वयं पीते और इसी प्रकार बड़े मोद-मग्न हो चन्द्रिका में खेलते-कूदते। इस प्रकार, जब वे अपनी प्रियाओं से अलग होते, फिर उनको ढूँढकर उनके साथ बड़े आनंद से रहने लगते थे। इन पक्षियों को देखकर वियोग-दुःख से पीड़ित राम, सीताजी का स्मरण करके मन-ही-मन अत्यधिक व्यथा का अनुभव करने लगते।

अपने अग्रज को इस प्रकार संतप्त होते देख लक्ष्मण उन्हें शांति पहुँचाने के उद्देश्य से बोले--'हे देव, आप अनुपम वीर हैं; उदात्त चित्तवाले हैं। आप इसके लिए क्यों दुःखी हैं। अभी हम समुद्र को पार करके लंका पहुँचेंगे, युद्ध में दशकंठ का संहार करेंगे, और मिथिलेश की प्रिय पुत्री, कमलवदनी सीता को मुक्त करेंगे। आप खिन्न न होइए।' अनुज के इन नम्र वचनों को सुनकर राम प्रसन्नचित्त हुए।

सैनिक-शिविरों में, वानर उस आनंदप्रद चाँदनी में मुदित मन से रामचन्द्र के गुणों का गान करते, खेलते तथा कूदते रहे। कुछ लोग समुद्र के किनारे बड़े आह्लाद से विचरण कर रहे थे। कुछ लोग विष्णु के सभी अवतारों की कथाएँ दूसरों को सुना रहे थे, तो कुछ वानर पिघलनेवाली उन चन्द्रकांत शिलाओं पर बड़े आनंद से सोने का यत्न कर रहे थे। इस प्रकार, वे बड़ी देर तक विविध क्रीड़ाओं में मग्न रहे।

शीघ्र ही पूर्व दिशा में अरुणिमा का ऐसा आभास हुआ, मानों वडवानल ही इस भय से कंपित होते हुए कि, जब राघव समुद्र पर अपने पैने बाणों का प्रयोग करेंगे, तब उनका लक्ष्य बन जाऊँगा, उदयाचल पर चढ़ गया हो। सभी नक्षत्र इस भय से व्याकुल हो छिपने लगे कि समुद्र का दहन करने के लिए राम के बाणों से उत्पन्न अग्नि की शिखाएँ कहीं आकाश तक न व्याप्त हो जायें। धीरे-धीरे सूर्य का उदय होने लगा, मानों वे अपने पौत्र (राम) को सचेत करने के लिए आ रहे हों कि हे राघव, अभी विलंब क्यों करते हो, समुद्र को पार करके शीघ्र ही रावण का संहार करो। सभी कमल एक साथ ऐसे विकसित हुए, मानों कमलाप्त-वंशज (सूर्यवंशी) राघव का विजय-कमल, साम्राज्य-कमल, तथा कीर्त्ति-कमल एक साथ ही विकसित हो रहे हों। तब दाशरथि जगकर प्रातःकालीन संध्या-वंदन आदि नित्यकर्मों से निवृत्त हुए।

६. मंत्रियों के साथ रावण की मंत्रणा

लंका में रावण ने अपने मंत्रियों की सभा बुलाई और उनसे कहा--"हे मंत्रिवरो, तुम जानते ही हो कि एक वानर ने, एक यंत्र-संचालित चित्रों की भाँति, मेरे नगर में

प्रवेश किया, लंकिनी का वध किया, सीता के लिए लंका को शोध डाला, मेरे पुत्र का वध किया, मेरी शक्ति का तिरस्कार करते हुए मेरी नगरी को जलाकर भस्म किया और बहुत-से राक्षसों का वध किया। वह हमारे हाथ में फँसकर भी हमारे हाथ से बचकर चला गया। वही राघवों को समुद्र के किनारे ले आया है। यदि सूर्यवंशतिलक समुद्र को सुखाकर या समुद्र पर पुल बाँधकर इस पार चला आया, तो हमारा सब किया-कराया मिट्टी में मिल जायगा। उसके समुद्र पार करने के पहले हम क्या उपाय करें, जिससे वह लंका में नहीं आ सके। तुम अच्छी तरह सोच-विचारकर कहो कि हमारा अब क्या कर्त्तव्य है। यदि तुम्हारा बताया हुआ उपाय उपयोगी होगा, तो वैसा ही करेंगे।"

तब उन मूर्ख मंत्रियों ने राक्षसेश्वर से कहा—"हे देव, आपके वश में बहुत-से ऐसे दिव्यास्त्र हैं, जो देवताओं के लिए भी अजेय हैं। आप ने सर्पराज को बाँधा, उसका विष उगलवाकर गर्व-भंग किया। रुद्र के मित्र कुबेर का गर्व चूर करके आपने उसका पुष्पक विमान ले लिया। मय की ख्याति को नष्ट करके उसकी प्रिय पुत्री से विवाह कर लिया। मृत्यु-देवता अंतक (यम) को बंदी बनाकर उस अंतक के लिए आप अंतक बन गये। अनुपम बलशाली वरुण को कँपा दिया और उसे अपने वश में कर लिया। हे सम्राट्, आपने सभी चक्रवर्त्तियों के राज्य बात-की-बात में हस्तगत कर लिये। क्या आपने शूलपाणि (शिव) के निकट अपने बाहुबल का प्रदर्शन करके उनको नीचा नहीं दिखाया? क्या, स्वर्ग के देवताओं के साथ उस इन्द्र का गर्व आपने नहीं तोड़ा? क्या, आपने अग्नि को अपनी प्रतापाग्नि का ताप दिखाकर उसका ताप नष्ट नहीं किया? क्या, दैत्यनाथ नैऋत पर क्रुद्ध होकर अपने पराक्रम से उसका गर्व-भंग नहीं किया? आपने पवन को एक स्थान पर स्थिर रहने नहीं दिया और अपने बाहुबल से उसे विचलित कर दिया। राम तो एक मानवमात्र है और आप मनुष्य-भक्षी हैं। यह कैसे संभव है कि वह आपके हाथों से बचकर जीवित रहे? आपके पुत्र ने ईश्वर की प्रीति के लिए महेश्वर-यज्ञ करके शाश्वत कीर्त्ति तथा पूर्ण सफलता प्राप्त की; इन्द्र को जीतकर उसने इंद्रजीत का नाम प्राप्त किया। उसने इंद्र को भी बंदी बनाया था, किन्तु ब्रह्मा के प्रार्थना करने पर उन्होंने उसे ब्रह्मा को दे दिया। क्या, युद्ध में विजय पाने के लिए वह अकेला ही पर्याप्त नहीं है? हे दैत्यराज, आपको चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं है।"

७. दानव-वीरों के दर्पपूर्ण वचन

इस प्रकार, जब मंत्री रावण को समझा रहे थे, तब महान्-बलशाली एवं प्रलय-काल के रुद्र को भी परास्त करनेवाले शूर, ब्रह्मस्त, इंद्रजीत, शतमाय, दुर्मुख, अतिकाय, मकराक्ष, खड्गरोम, वृश्चिकरोम, सर्परोम, अग्निवर्ण, विरूपाक्ष, अक्षीणबल धूम्राक्ष, अक्षतविजयी उपाक्ष, अनुपम बली रश्मिकेतन, अमित पराक्रमी अग्निकेतन, वज्रदंष्ट्र, सप्तघ्न, शोणिताक्ष, प्रबलशूर महापार्श्व, कुंभ, निकुंभ, सूर्यशत्रु, अग्निकोपन, महोदर, देवताओं को जीतनेवाला देवांतक, अद्वितीय पराक्रमी तथा नरों का नाश करनेवाला एवं भयंकर आकारवाला महाकाय, विद्युज्जिह्व, कंपन तथा अकंपन आदि अभेद्य विक्रमी एवं श्रेष्ठ दैत्यवीर, राक्षस राजा रावण के सामने क्रोधाभिभूत होकर खड़े रहे। उनकी लाल-लाल आँखों से क्रोध की भयंकर

ज्वालाएँ निकल रही थीं । प्रलय-काल के प्रचंड प्रभंजन से मुक्त, कुलपर्वतों की भाँति वे परस्पर देख रहे थे; फुफकारनेवाले सर्पों की भाँति उनकी साँस वेग से चल रही थी । वे बड़े गर्व से शूल उठाते, खड्गों को खींचते, करवालों को आकाश में घुमाते, लाठियों को ऊँचा करते, चक्रों को घुमाते, प्रबल मुद्गरों को सँभालते, दीर्घ खड्गों को दिखाते, भालों को घुमाते और धनुष का टंकार करते हुए अपने क्रोध को प्रकट कर रहे थे । उनके इस क्रोध-प्रदर्शन के समय, उनके करवाल एक दूसरे से टकराकर स्फुलिंग उगलते थे; परस्पर उनके केयूर तथा मुकुटों के रगड़ खाने से मोती बिखर जाते थे और आभूषण चूर-चूर हो जाते थे । वे क्रोधोन्मत्त हो आकाश को कँपा देनेवाली गंभीर ध्वनि से रावण से कहने लगे—'हे देव, देवता गंधर्व, दैतेय तथा किन्नर आपको देखने का भी साहस नहीं करते; इन्द्र भी तो आपको देखकर भय से सिकुड़ जाता है । तब नर तथा वानरों का साहस ही कितना है कि वे आपका सामना कर सकें ? उस दिन हम कुछ आसावधान से रहे, इसलिए उस नीच वानर ने अपनी दुष्टता से आंतक फैला दिया था । अब हमारे सामने किसकी शक्ति है कि लंका में प्रवेश करने का साहस करे । हे दानव-नाथ, इतना क्यों, आप हमें शीघ्र आदेश दीजिए । हम तुरंत जाकर उन वानरों का नामो-निशान मिटा देंगे और राजकुमारों का संहार करके वापस आयेंगे ।'

८. राक्षसवीरों को विभीषण का उपदेश

इस प्रकार की दुर्वार गर्वोक्तियाँ कहनेवाले राक्षसों को देखकर विभीषण, समस्त इन्द्रियों को अपने वश में किये हुए योगीन्द्र की भाँति, गरजनेवाले उद्दण्ड मेघों को शांत रखनेवाले इन्द्र की भाँति उन सब को अपने-अपने आसनों पर बैठ जाने का आदेश देकर बोला—"हे वीरो, तुम उतावले मत बनो । किंचित् विचार करके देखो । किसी भी कार्य को साधने के लिए पहले साम, दान, तथा भेद के उपायों का आश्रय लेना चाहिए । यदि उनसे कार्य सिद्ध न हो, तभी दण्ड-विधान का आश्रय लेना पड़ता है । पहले ही दण्ड-नीति को अपनाना नीति-विरुद्ध है । शत्रु के असावधान रहते समय ही, उसको जीतना सुलभ है; या उस समय उसको जीता जा सकता है, जब कोई अन्य शत्रु उस पर आक्रमण करने आता है और वह भगवान् की कृपा से वंचित रहता है । राम कभी असावधान नहीं रहते; उनका पराक्रम दुर्वार है; उन पर कोई आक्रमण करने नहीं आता । और तो और, वे स्वयं भगवान् हैं । शिव-धनुष का भंग उन्हीं ने तो किया था ? वे परम विवेकी हैं, अनुपम बाहुबल-संपन्न, तथा विजयी हैं । तुम चाहे जितना भी डींग हाँको, उस सूर्यकुल-तिलक को जीतना क्या, तुम्हारे लिए संभव है ? उस वायुपुत्र की शक्ति का किंचित् विचार करो, जिसने विशाल समुद्र को एक छोटी नहर की भाँति पार कर लिया है । तुम नहीं जानते कि उसने तुम्हारे देखते-देखते लंका में कैसा उत्पात मचा दिया ? उस वानर ने राम की सेना के शौर्य का आभासमात्र दिखाया है । ऐसे अनेक वानर और उनसे भी अधिक शक्तिशाली असंख्य वानर उनकी (राम की) सेवा में हैं । तुम लोग राम के पराक्रम के आगे कैसे टिक सकते हो ? हे दानववीरो, क्रोधोन्मत्त हो अपने तथा दूसरों के बल का अनुमान किये बिना, ऐसे वचन कहना क्या बुद्धिमानी है ? सुंदरियों में

श्रेष्ठ सुंदरी राम की पत्नी सीता जब भयभीत होकर रामचन्द्र को पुकारने लगीं, तब राक्षसेश्वर अत्यंत वेग से उन्हें उठा लाये। हम स्वयं सोचें, उन्होंने हमें कौन-सी हानि पहुँचाई है ? तुम लोग इस बात का तो विचार करते हो कि उन्होंने खर-दूषण आदि राक्षसों को खंड-खंड कर दिया, किन्तु तुम यह नहीं सोचते कि पहले उन राक्षसों ने ही उनको घेरा था। क्या, राम-लक्ष्मण पर आक्रमण करना उनको उचित था ? अपने किये हुए कर्मों के फल भोगकर वे नष्ट हो गये और अमर-लोक को प्राप्त हो गये। अब उनकी चिंता क्यों करें ? हमारी भलाई इसी में है कि वीर वानरों के लंका में प्रविष्ट होने के पहले, हमारे दुर्गों के उनके पदाघात से नष्ट होने के पहले ही, सौमित्र के बाण-रूपी वज्र के गिरने के पहले, रामचन्द्र के क्रोध से उत्तेजित होने के पहले ही और उनकी क्रोधाग्नि से लंका के भस्म होने के पहले ही, हम सीता को श्रीरामचन्द्र के पास पहुँचा दें। सीता को ले आने के दोष का यही परिहार है। राम-भूपाल धर्मात्मा हैं और धर्म की सदा विजय होती है।''

इस प्रकार विभीषण ने कई प्रकार से राक्षसवीरों को समझाया और फिर दशकंठ को देखकर कहा—'हे प्रभु, दुर्व्यसन सुख तथा धर्म में बाधा डालनेवाले होते हैं। अतएव आप उनका त्याग कीजिए। धर्म-पालन सुख तथा कीर्त्ति प्रदान करनेवाला होता है। इसलिए आप धर्म के पथ का अनुसरण कीजिए और नीतिज्ञ कहलाइए। हठ छोड़िए; और प्रसन्न-चित्त होइए। यदि आप अपने समस्त कुल की रक्षा करना चाहते हैं, तो जानकी को मुक्त कर दीजिए। उस राम से हम शत्रुता क्यों करें ?' इस प्रकार के नीतियुक्त वचन सुनना रावण को अप्रिय लगा। इसलिए वह तुरत सभा-भवन छोड़कर अंतःपुर में चला गया।

९. रावण को विभीषण का हितोपदेश

दूसरे दिन प्रातःकाल ही विभीषण संध्यावंदन आदि प्रातःकाल के नित्य कर्मों से निवृत्त होकर अपने रथ पर सवार हो रावण के अंतःपुर को चला। उसके चारों ओर राक्षस सैनिक उसकी सेवा में चल रहे थे। वह रमणीय तथा चित्र-विचित्र तोरणों से अलंकृत राज-मार्ग से होकर सुंदर शिल्पों को देखते हुए रावण के उस अंतःपुर के सिंह-द्वार पर पहुँचा, जहाँ (अश्वों की) हिनहिनाहट, (गजों की) चिंघाड़, पटह तथा शंखों के निनाद, सेवा-कार्यों में प्रवृत्त परिचारिकारिओं की पायलों का झंकार, अतःपुर के रक्षकों के हुंकार, सूत-मागध बंदी-जनों की स्तुति, परिचारकों के वार्त्तालाप की ध्वनि, तथा गजों की निःश्वास-वायु के कारण बड़े वेग से फड़फड़ानेवाली पताकाओं की ध्वनि, समुद्र की तरंगों के घोष के समान समस्त दिशाओं को वधिर बना रही थीं। वह अंतःपुर विश्वस्त राक्षस-वीरों से ऐसा रक्षित था, मानों नक्षत्रों से परिवृत हो। उस सौध के सिंहद्वार पर असंख्य, गज-रथ तथ अश्वों का समूह था। ऐसे सिंहद्वार के निकट विभीषण अपने रथ से उतरा और अंतःपुर में प्रवेश किया। वहाँ यज्ञ आदि सत्कर्मों से अनुरक्त पूजनीय ब्राह्मणों को पुण्याहवाचन तथा शान्ति-पाठ करते हुए देखा। विभीषण उन्हें देखते हुए बड़ी प्रीति से आगे बढ़ा और सभा-भवन में पहुँकर अपने अग्रज को अत्यंत भक्ति के साथ प्रणाम किया। फिर, रावण का आदेश पाकर एक उचित आसन पर बैठा।

उसके पश्चात् मंत्रणा-कुशल विभीषण सभी मंत्रियों के समक्ष कहने लगा—"हे देव, हे दैत्यनाथ, आप ध्यान देकर मेरा निवेदन सुनिए । जिस दिन से आप सीता को ले आये हैं, उसी दिन से दुःशकुन दिखाई देने लगे हैं । आजकल होम-कुंडों में त्रेताग्नियाँ प्रदीप्त नहीं होतीं । उन कुंडों को घेरकर बहुत-से साँप पड़े रहते हैं । सतत मदजल बहानेवाले जिन हाथियों के गंडस्थल पर भ्रमरों का गुंजार होता रहता था, वे मत्तगज आज शुष्क शरीरों से, गर्दनों को ऊपर उठाये, चुपचाप खड़े रहते हैं । अत्यधिक शक्ति तथा स्फूर्त्ति से संपन्न उत्तम अश्व, आज आँखों से पानी गिराते हुए चारा-पानी छोड़कर, शक्तिहीन हो पड़े हुए हैं । हे असुराधिपति, इन सब के निराकरण का एक ही मार्ग है । आप सीता को ले जाकर श्रीराम को सौंप दीजिए । वे आपके अपराध पर ध्यान नहीं देंगे (वे आपको क्षमा कर देंगे) । यही नीतिवान् के लिए उचित कार्य है । 'यही कार्य उचित है', इस बात को सब लोग समझते हैं; किन्तु आपको इस धर्म का उपदेश देने से वे डरते हैं । मैं भी विवश होकर ही आपसे निवेदन कर रहा हूँ ।"

विभीषण के ये आप्त वचन रावण के कानों में प्रवेश ही नहीं कर पाये । उसने कहा—'मैं किसी से भी किसी भी प्रकार का भय नहीं रखता । चाहे कुछ भी हो जाय, मैं सीता को राम के पास नहीं भेजूंगा । चाहे देवता भी उसकी सहायता के लिए आ जाय, फिर भी युद्ध में मुझ दुर्जयी के सामने वह टिक नहीं सकेगा ।' इस प्रकार कहते हुए वह अत्यंत क्रोध से सभा-भवन छोड़कर भीतर चला गया ।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही उठकर रावण संध्यावंदन तथा ध्यान आदि से निवृत्त हुआ और अपने अनुज के वचनों पर मन-ही-मन विचार करके अपने मंत्रियों के साथ उन वचनों के बारे में मंत्रणा करने का निश्चय किया। फिर, वह सूर्य-मंडल के समान प्रभा से युक्त दिव्य विमान पर आरूढ हुआ । उस विमान का स्वर्ण-कलश बहुत-से सुन्दर रत्नों से खचित था । उसका ऊँचा छत्र, चंद्रिका के फन से विरचित-से अत्यधिक धवल दिखाई पड़ रहा था । सुंदरियाँ अपने कंकणों को झनझनाती हुई चामर डुला रही थीं। असंख्य तुरहियाँ बज रही थीं और बहुत-से सैनिक रावण की सेवा में लगे हुए उसका अनुगमन कर रहे थे । वेत्रधर-कंचुकी, सेवक-समूह को अनुशासन में रखने में तत्पर थे । इस प्रकार, अखंड वैभव से सुशोभित उस रावण ने अपने सभी मंत्रियों के साथ सभा-मंडप में इस प्रकार प्रवेश किया, मानों यह कह रहा हो कि सूर्यवंशी (राम) के शरों से आहत होने के पश्चात् मैं सूर्य-बिंब में प्रवेश करूँगा । फिर, सिंहासन पर आरूढ होकर सेनापतियों तथा गुप्तचरों को बुलाया । वे भी अपने रथों, गजों तथा अश्वों पर बैठकर तुरहियों के निनादों के साथ आये और सभा-मंडप के आँगन में पहुँचकर अपने वाहनों पर से उतरकर उस सभा-मंडप में प्रवेश किया, जैसे सिंह गिरि-गुफा में प्रवेश करते हैं । फिर, दानवेंद्र से उचित आदर प्राप्त करके प्रसन्नचित्त से अपने आसनों पर बैठ गये ।

उचित कार्यों के संबंध में निवेदन करने का अच्छा अवसर जानकर मंत्रियों ने रावण से निवेदन किया, 'हे देव, आपके अनुज, प्रचंड बलशाली कुंभकर्ण आज जागे हुए हैं ।' यह सुनकर रावण ने आदेश दिया कि उसे बुला लाओ । तुरंत वे कुंभकर्ण के यहाँ

गये और उससे कहा—'हे देव, आज प्रभु, सभा में विराजमान हैं और आपको बुला लाने के लिए हमें भेजा है ।' यह आदेश सुनकर कुंभकर्ण अपने पुत्र कुंभ तथा निकुंभ के साथ शीघ्र सभा-मंडप में पहुँचा । मणिमय, महिमा-समन्वित तथा नर्तकियों के संगीत की मधुर ध्वनि से संपन्न उस सभा-मंडप में सिंहासनस्थ अपने अग्रज को उसने प्रणाम किया और बड़ी नम्रता से एक उन्नत आसन पर बैठ गया । अपने भाई के साथ ही विभीषण भी आ गया और स्वर्ण के आसन पर उपविष्ट हुआ । तब रावण सुरेश (इंद्र) के समान प्रभाव उत्पन्न करते हुए प्रहस्त को देखकर बोला—'लंका नगर की रक्षा के लिए और भी अधिक सैनिकों को नियुक्त करो; सभी मार्गों में, किले के द्वारों पर, भीतर तथा बाहर, राक्षस-वीरों को सावधान रहने की चेतावनी देकर नियुक्त करो ।'

१०. कुंभकर्ण को सीतापहरण का वृत्तांत सुनाना

उसके पश्चात् दानवेश्वर कुंभकर्ण को देखकर अत्यधिक व्यग्रता से कहने लगा—"हे कुंभकर्ण, मैं तुम्हें एक ऐसी बात सुनाता हूँ, जिसे तुमने अबतक नहीं सुना होगा । मैं एक दिन जनपद में गया और वहाँ राम की पत्नी, भूमि-सुता कमलाक्षी सीता पर मुग्ध होकर उसे यहाँ ले आया । कुछ दिन पहले हनुमान् नामक एक वानर यहाँ आया और सीता से मिलकर उसे प्रणाम किया और कहा—'हे देवी, आपके पति राम यहाँ अवश्य आयेंगे।' सीता उन बातों पर विश्वास किये बैठी है । वह मानव (राम) अत्यधिक साहस के साथ समुद्र के उस पार शिविर डाले पड़ा हुआ है । वह अपने साथ, वनों में पाये जानेवाले वानरों की एक बड़ी सेना एकत्र करके लाया है । शीघ्र मुझसे युद्ध करके सीता को ले जाने के निमित्त वह आ रहा है । वह भले ही यहाँ आवे । मैंने इन्द्र आदि देवताओं को परास्त किया है । जिस कैलास पर्वत पर शिव रहते हैं, उसे मैंने उठाया है । शंभु से मैंने चंद्रहास (नामक खड्ग) प्राप्त किया है । कमलसंभव ब्रह्मा का वर मुझे प्राप्त है । तिस पर मुझे तुम्हारी शक्ति की सहायता प्राप्त है । तब, क्या एक साधारण मानव मुझे परास्त कर सकता है ? राम कैसे मुझे युद्ध में जीत सकेगा, और कैसे उस सुंदरी को यहाँ से ले जा सकेगा ?"

इन बातों को सुनकर कुंभकर्ण ने क्रोध में आकर सब लोगों के समक्ष रावण से कहा—'हे रावण, राम को धोखा देकर, उनकी पत्नी को इतनी क्रूरता के साथ तुम कैसे लाये ? क्या इस प्रकार उसे ले आना उचित था ? तुमने अपने मन में नीति का विचार ही नहीं किया । धर्म-मार्ग का स्मरण ही नहीं किया । काम के पीछे तुमने सारे कुल को कलंकित किया । जिस दिन तुम सीता को ले आये, उसी दिन लंका का सर्वनाश हो गया ? इसका नाश तो अब निश्चित ही है, चाहे कैसे भी हो । तुम उस सूर्यवंशज राम के अप्रतिहत बाणों का लक्ष्य हुए बिना अपने भाग्य से बचकर चले आये, यही बड़ी गनीमत है । अब मैं जाता हूँ । हे रावण, इतना बड़ा कार्य सँभालने का भार मुझ पर पड़ा है । अब तुम वानर तथा राघवों का किंचित् भी भय किये बिना सुख भोगते रहो ।'

इन बातों को सुनकर महापार्श्व ने कहा—'हे राक्षसाधीश, आप तो समस्त लोकों के अधिपति हैं । क्या आप सीता के साथ बलपूर्वक रति-क्रीड़ा नहीं कर सकते ?' यह

सुनकर मन-ही-मन अत्यंत प्रसन्न होते हुए राक्षसराज ने कहा—'हे महापार्श्व, सुनो। एक बार मैं ब्रह्मा की सभा में जाते समय पुंजिकस्थली नामक एक सुंदरी को देखकर उस पर मुग्ध हुआ और वासना से प्रेरित होकर बलपूर्वक उसके साथ रति-क्रीड़ा की। यह बात जानकर ब्रह्मा मुझ पर क्रुद्ध हुए और शाप दिया कि हे राक्षस, स्त्रियों के प्रति आदर दिखाये विना, अनुचित रीति से यदि तुम भविष्य में किसी भी स्त्री के साथ बलात् रति-क्रीड़ा करोगे, तो अवश्य तुम्हारे सिर के सौ टुकड़े हो जायेंगे। यही कारण है कि मैं किसी भी स्त्री की स्वीकृति प्राप्त किये विना उसके साथ बलात्कार नहीं करता। मेरी शक्ति का विचार किये बिना वानर-सेना के साथ राम का लंका पर चढ़ आना उसी प्रकार है, जैसे भद्रगजों के समूह का सोनेवाले सिंह को जगाना।'

तब विभीषण ने हँसकर रावण से विनयपूर्वक निवेदन किया—'हे भाई, तुम्हारे लिए सीता एक भयंकर कालसर्पिणी है। उनकी उसासें ही (नागिन का) फुफकार है और उनका दुःख ही गरल है। वह (काली नागिन) किसी भी प्रकार तुम्हें नहीं छोड़ेगी। इस कार्य से तुम्हें अपयश मिलेगा; पाप होगा; और तुम्हारा सुख नष्ट हो जायगा। इसलिए इस अनीति को तुम छोड़ दो।' उसके पश्चात् प्रहस्त को देखकर विभीषण ने प्रखर वाणी से कहा—"आज तुम क्यों इतना इतरा रहे हो? जिस दिन राम के वज्र-जैसे बाण तुम्हारे वक्ष में गड़ेंगे, उस दिन तुम जानोगे; परुष वचन कहना तो आसान है। क्या यह कुंभकर्ण, यह निकुंभ, यह कुंभ, यह महोदर, यह महापार्श्व, यह इन्द्रजीत युद्ध में राम को जीत सकेंगे? युद्ध में वे भी अपनी शक्ति दिखायेंगे ही; युद्ध में तुम सभी रक्षक होकर रावण की रक्षा में तत्पर रहना। एक बात स्मरण रखो, चाहे इन्द्र ही रावण की रक्षा करे, देवता ही उनको बचाने का प्रयत्न करें, कालाग्नि-सम भयंकर रुद्र ही उनकी रक्षा करने आवें, यहाँ तक कि मृत्यु ही स्वयं उन्हें बचाना चाहे, तो भी रामचंद्र रावण का संहार किये विना नहीं रहेंगे। जब मनुकुल-तिलक दनुजेश्वर को जीतने के लिए धनुष हाथ में धारण करे, तो क्या, हम उनकी शक्ति का सामना कर सकते हैं? प्रलय-काल की अग्नि कहीं मुट्ठी में समा सकती है? उमड़नेवाली जलराशि क्या, छोटे-से मुँह में समा सकती है? क्या, पाताल को अपने क्रोड़ के भीतर सीमित कर सकते है? क्या, गगन को पार करना संभव है? क्या दिङ्मंडल के वितान को तोड़ना संभव है? क्या, शिवजी के करवाल को खंड-खंड करना सहज है? क्या, सूर्य को हथेली से ढक सकते हैं? तुम जैसे अज्ञान लोगों से बात करना भी वृथा है। तुम्हारे जैसे मंत्रियों के रहते मूर्ख तथा कामातुर रावण मरेंगे क्यों नहीं? क्या, वे मेरे हित वचनों को सुनेंगे? वे मदांध होकर तुम्हारी मंत्रणा से अवश्य ही नष्ट होंगे।" इस प्रकार, सौजन्य का विचार किये विना जब विभीषण ने स्पष्ट वचन कहे, तो प्रहस्त ने उसकी बातों की उपेक्षा करते हुए कहा—'हम उरगों से युद्ध करके कभी परास्त नहीं हुए। सुरों से भिड़कर भी हम कभी नहीं हारे। यक्षों का सामना करके हम कभी विजित नहीं हुए। राक्षसों से जूझकर हम संतप्त नहीं हुए। हे विभीषण, तब क्या, मानवमात्र राम से, युद्ध में हम हार जायेंगे? न जाने, उनके संबंध में तुम इतनी बातें कैसे जान पाये? आज पहले-पहल हम तुम्हारे

मुँह से ऐसी विचित्र बातें सुन रहे हैं । क्या, तुम समझते हो कि राक्षस उतने शक्ति हीन हैं ?'

११. इन्द्रजीत का विभीषण को अपने पराक्रम का परिचय देना

रामानुज की बाणाग्नि से दग्ध होना इन्द्रजीत के भाग्य में लिखा हुआ था । इसलिए वह अत्यधिक मद से उन्मत्त हो, किसी भी प्रकार की नीति का खयाल किये बिना कहने लगा—"हे विभीषण सुनो । राक्षसों की शक्ति तथा प्रताप का विचार करके देखो, तो यह निश्चय है कि हम में से अल्पशक्तिमान् भी राम तथा लक्ष्मण को जीत सकता है । तीनों लोकों पर बड़े वैभव से राज्य करनेवाले इन्द्र को क्या मैंने पकड़कर बंदी नहीं बनाया ? उसके ऐरावत को पकड़कर उसके दाँत मैंने नहीं तोड़े ? ये सब मेरे लिए कौन बड़ी बात थी ? मैंने अग्नि को अपमानित किया; यम को दबा दिया, नैऋत की शक्ति को नष्ट किया तथा वरुण को परास्त किया । दिक्पालों को इस प्रकार निष्ठुर होकर त्रास देनेवाले मेरे प्रबल हाथों से क्या, ये मानव नष्ट नहीं होंगे ? तुम तो बहुत बढ़ा-चढ़ाकर उनकी महिमा का राग अलाप रहे हो । हे विभीषण, सप्त समुद्रों में प्रविष्ट होकर मैं उन्हें आलोडित करूँगा; मेरु तथा मंदर पर्वतों को नचा दूँगा; समस्त पृथ्वी को लाँघ जाऊँगा; इस पृथ्वी को ऐसे उछालूँगा कि वह जाकर आकाश से टकरा जायगी; मैं समस्त लोकों को झुका दूँगा; सारे वनचर समूह को इस प्रकार समुद्र में डुबो दूँगा कि वे थर-थर काँप उठेंगे; पृथ्वी का भार वहन करनेवाले उस शेष नाग को पकड़कर, उसका विष निचोड़ दूँगा । अपने भुज-बल से सूर्य तथा चंद्र को पकड़कर उन्हें पृथ्वी पर रगड़ दूँगा । वनचर-समूह को पकड़कर उन्हें सूर्य तथा दिशाओं के उस पार फेंक दूँगा; युद्ध में वानरों का रक्त भूतों को पिलाऊँगा; अपने शर-समूह से आकाश, दिशाएँ तथा पृथ्वी को ढक दूँगा । सूर्य के रथ का जुआ पकड़कर आकाश में घुमाऊँगा और उसे पृथ्वी में दबा दूँगा। अपने दायें और बायें हाथों में पृथ्वी तथा आकाश को ग्रहण कर उनको ऐसा मसल दूँगा कि वे चूर-चूर हो जायँ । हे विभीषण, तुम दनुजेश्वर के भाई हो; इसलिए मैं तुम्हें कुछ कहे बिना क्षमा करता हूँ । यदि दूसरा कोई होता, तो मैं कदापि ऐसी बातें नहीं सहता। ऐसी व्यर्थ की बातें क्यों करते हो ?"

१२. विभीषण द्वारा इन्द्रजीत के दंभ की निंदा

इन दर्पपूर्ण वचनों को सुनकर विभीषण अत्यंत क्रुद्ध हुआ और इंद्रजीत को देखकर इस प्रकार कहने लगा—"तुमने सूर्यवंशज राम को क्या समझ रखा है कि ऐसे मात्सर्य-युक्त अनुचित वचन कह रहे हो? तुम्हारे हाथों से पराजित होने के लिए वे इन्द्र नहीं हैं; वे तो युद्ध में भयंकर बननेवाले राम हैं । तुम्हारे द्वारा परास्त होने के लिए वे अग्नि-देव नहीं हैं; वे तो रणनीति-कुशल राम हैं । तुमसे हार जाने के लिए वे यम नहीं हैं; वे तो रण में प्रचण्ड रूप धारण करनेवाले राम हैं । तुमसे परास्त होने के लिए, वे नैऋत नहीं हैं; वे तो युद्ध में भयोत्पादक रूप धारण करनेवाले राम हैं । तुम्हारे द्वारा विजित होने के लिए वे वरुण नहीं हैं; वे तो रण में अत्यधिक सावधान रहनेवाले राम हैं । वे तुमसे हार जानेवाला पवन नहीं है; वे युद्ध-निपुण राम हैं । तुमसे परास्त होने वाले कुबेर नहीं हैं;

वे तो युद्ध में वज्रसम शत्रुओं का नाश करनेवाले राम हैं । तुम्हारे हाथों से पराजित होने के लिए वे पशुपति नहीं हैं; वे तो रण में अवश्य विजय प्राप्त करनेवाले रामचंद्र हैं । युद्ध में उनका सामना करना इतना सहज मत समझो, जितना दिक्पालों का सामना करना है । मदांध होकर असंभव कार्यों को साधने का विचार करोगे, तो मुँह की खाकर गिरोगे । तुम पुत्र नहीं हो; कुलनाशक हो । तुम ही रावण के शत्रु हो । रामचन्द्र के अग्निसम बाणों के प्रहार के सामने क्या रावण टिक सकता है? उचित यही है कि रावण मणियों, गज-मणियों तथा अश्व-मणियों साथ उस मानिनी-मणि (सीता) को रामचन्द्र के पास पहुँचा दे ।

१३. रावण का विभीषण को नगर से निर्वासित करना

तब रावण ने विभीषण को रोषपूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—'शत्रु के साथ भी सतत (युद्ध करते हुए) रह सकते हैं; विष उगलनेवाले सर्प के साथ भी निर्भय होकर रह सकते हैं; किन्तु शत्रु से मिले हुए पर अपना बनकर रहनेवाले लोगों के साथ जीवन बिताना कठिन है । तुम ऐसे ही व्यक्ति हो । इसीलिए मेरे सामने तुम बड़े गर्व से शत्रु की प्रशंसा करते रहते हो । तुम मेरे अनुज हो, इसलिए अवध्य हो ? (क्रोध से) क्या, तुम सचमुच मेरे अनुज हो ? तुम तो मेरे ज्ञाति (गोतिया) हो ।'

कुंभकर्ण ने देखा कि ब्रह्मा का शाप प्रबल है; (अर्थात्, रावण का अंत निश्चित है), न तो वह अपने अनुज की बातों को अनुचित कह सका, न अपने अग्रज को अनुचित कहने से रोक ही सका । इसलिए वह बड़े आदर के साथ अपने अग्रज को प्रणाम करके सोने के लिए अपनी गुफा में चला गया । उसके चले जाने के पश्चात् विभीषण ने रावण को देखकर कहा—'हे भाई, तुम मेरे अग्रज हो; इसलिए तुम पर आनेवाली विपत्ति की कल्पना से भयभीत होकर मैंने तुमको उचित परामर्श दिया है । हे असुरेन्द्र, आप्त बंधुओं के हित-वचन तुमको बुरे लगते हैं । ऐसे मंत्री बहुत कम होंगे, जो अच्छा परामर्श देते हैं और ऐसे राजा भी बहुत कम होंगे, जो उन वचनों को सुनते हैं । मेरा धर्म है कि मैं आपके हित का विचार करके उचित परामर्श दूँ और आपका धर्म है कि आप उसे स्वीकार करें । सीता को लौटा देना तुम्हारे लिए नीतिसंगत होगा । यदि ईश्वर स्वयं प्रतिकूल हो, तो शक्ति तथा पराक्रम आदि किस काम आयँगे ? दशरथ के पुत्र स्वयं ईश्वर हैं; भला उनके अतिरिक्त और कोई ईश्वर भी है ?'

विभीषण के इन वचनों को सुनकर रावण की भौंहें तन गईं; मुख विकृत हो उठा; क्रोध के कारण आँखों से अग्नि निकलने लगी और होंठ फड़कने लगे । उसने गरजकर कहा—'तुम मेरे सम्मुख राम को ईश्वर कहते हो ? एक साधारण मानव कहीं ईश्वर हो सकता है ? अविवेकी पिता के द्वारा राज से निर्वासित होकर, वनों में भटकते हुए कंद-मूल तथा पत्तों पर जीवन व्यतीत करनेवाले को कहीं ईश्वर कहते हैं । यदि वह ईश्वर होता, तो जब मैं उसकी पत्नी को चुराकर लाया, तभी वह मुझ पर आक्रमण करता । इसके विपरीत, वह अपने भाई के साथ जंगलों में रोते-कलपते फिरता रहा और भटककर सुग्रीव नामक एक वानर के आश्रम में रह रहा है । क्या, यह सब ईश्वर के ढंग है ? एक कायर मानव को मेरे समान कहकर, क्यों बार-बार मेरे सामने उसकी प्रशंसा करते हो ?'

तब विभीषण ने मन-ही-मन हँसते हुए रावण से कहा--"हे राक्षसाधीश, देवताओं की वृद्धि करने, ऋषियों की रक्षा करने, तथा असुरों को दंड देकर पृथ्वी का पालन करने के लिए आदिनारायण ने सूर्यवंश में दशरथ का पुत्र होकर जन्म लिया है । उस महा महिमा-संपन्न आदि देव की महिमा का वर्णन ब्रह्मा भी नहीं कर सकता। सनकादि मुनि भी उसका बखान नहीं कर सकते । भला, तुम उनकी महिमा कैसे जान सकोगे । राम साधारण मानव नहीं है । इसलिए यदि तुम जीवित रहना चाहते हो, तो राम के दर्शन करके कमलमुखी सीता को उन्हें सौंप दो । विचार करके देखो, अर्थ तथा काम मात्र की प्राप्ति से धर्म की सिद्धि नहीं हो सकती । तुम तो कभी नीतिमार्ग का अनुसरण करना नहीं चाहते । तुमसे भी अधिक तुम्हारे मित्र तथा अनुयायी उसे नहीं चाहते । हे दानवेन्द्र, कार्य तथा अकार्य का विवेक नहीं रखनेवाले तुम्हारे लिए धर्म का क्या मूल्य हो सकता है ? वानर अवश्य समुद्र पार करके यहाँ आयेंगे । हाथ जोड़कर (दया की भिक्षा माँगने-वाली) राक्षस-स्त्रियों के केश पकड़कर उन्हें घसीटेंगे । ऐसा करने के पहले ही तुम सीता को रामचन्द्र के पास पहुँचा दो । यही मेरा तुम से अनुरोध है । मैं तुम्हें राज करते हुए देखना चाहता हूँ; अग्नि-ज्वालाओं के सदृश राघव के असंख्य शरों को उद्दण्डता से तुम्हारे वक्ष पर लगते हुए मैं देखना नहीं चाहता । प्रलय-काल की अग्नि किस प्रकार कुलपर्वतों के शिखरों को गिरा देती है, वैसे ही राम युद्ध में तुम्हारे सिर गिराने लगेंगे । उस दृश्य को मैं कैसे देख सकूँगा ?"

विभीषण की इन बातों को सुनते ही रावण के दसों मुख क्रोध से लाल हो गये; कनपटी की शिराएँ फूल गईं और प्रचंड गति से निःश्वास चलने लगा, मानों धूम से युक्त अनल ही हो । अपने पदाघात से पृथ्वी को चूर-चूर करते हुए, तथा गर्जन से आकाश को कँपाते हुए, अपने क्रोध का पूर्ण स्वरूप प्रकट करते हुए तुरंत वह सिंहासन से उतरकर विभीषण की ओर लपका और उस पर प्रहार करने के लिए अपना खड्ग उठाया। फिर, अपने-आप को रोककर उसने विभीषण पर पदाघात किया । तब वज्रपात से गिरनेवाले पर्वत के उन्नत शिखर के समान विभीषण पृथ्वी पर गिर पड़ा । गिरे हुए विभीषण पर जब रावण खड्ग का प्रहार करने का उपक्रम करने लगा, तब प्रहस्त ने उसे रोका । सभा के सभी लोग कहने लगे—'हाय, यह कैसा अनर्थ है ?'

रावण की आँखों से क्रोध की ज्वालाएँ निकल रही थीं । उसने प्रहस्त को देखकर कहा--'हे प्रहस्त, तुमने इसके दुर्वचन सुने ? इसे अनुज मानकर इस पर कौन विश्वास कर सकता है । इसको तुरंत बाहर निकालो । सौजन्य के कारण विलंब करो, तो मेरी सौगंध है।'

तब प्रहस्त ने क्रोध प्रकट करते हुए विभीषण को देखकर कहा—'अब तुम यहाँ मत रहो । यहाँ से तुम अपनी इच्छा से कहीं भी जाकर रहो।' तब विभीषण अत्यधिक क्रुद्ध हुआ । उसने अनल, नल, हर, संपाति नामक अपने साथियों को साथ लेकर हाथ में गदा लिये हुए वहाँ से चल पड़ा और चलते समय उसणे रावण को देखकर कहा--'हे राक्षसेन्द्र, तुम कामातुर हो, समस्त पापों का भांडार हो और क्रूर कर्म करनेवाले हो । मैं पहले से से ही तुम से दूर रहना चाहता था । तुम्हारा यह आचरण मेरे लिए नया नहीं है ।

में उस आर्त-रक्षक, कृपानिधि, दिव्य मूर्त्ति, जगद्विख्यात, सत्यनिष्ठ, नित्य यशोनिधि और निर्मलात्मा रामचन्द्र भूपाल की शरण में जाऊँगा। वे सदा शरणागत की रक्षा करते हैं। मैं तो जा ही रहा हूँ। कम-से-कम भविष्य में तुम नीतिसंपन्न होकर अपना जीवन व्यतीत करना। ऐसा नहीं करोगे, तो जब सुग्रीव लंका पर आक्रमण करेगा, तब तुम्हें मेरे हित-वचन का स्मरण होगा; या जब वानर लंका को घेर लेंगे, तब तुम मेरी मंत्रणा का स्मरण करोगे; या रघुराम के भयंकर बाण तुम्हारा नाश करने लगेंगे, तब तो अवश्य मेरी बातों को याद करोगे।'

१४. विभीषण का अपनी माता के भवन में जाना

ऐसा कहकर विभीषण ने अपने अग्रज को प्रणाम किया और बड़े वेग से अपनी माता के अंतःपुर की ओर चला। वह क्रुद्ध सिंह के आक्रमण से आहत होकर, उससे बचकर जानेवाले मत्त हाथी के समान तथा भयंकर रव के साथ गिरनेवाले वज्रपात से खंडित पर्वत के समान दीखते हुए अपनी माता के घर में पहुँचा। वह अंतःपुर विश्वकर्मा से निर्मित था और कैलास पर्वत के सदृश शोभायमान था। अंतःपुर में पहुँचकर विभीषण ने अपनी माता को प्रणाम किया, जो अत्यंत निर्मल प्रभा से दीप्तिमान् थीं; पर रावण की दुष्टता का स्मरण करके अत्यधिक दुःखित हो रही थीं। वह श्वेत तथा मोटे वस्त्र धारण किये हुए थीं। उसकी भौंहें तथा केश, चंद्रिका में धुलकर, आकाश-गंगा के झाग का रोगन चढ़ाये हुए के समान अत्यधिक धवल दिखाई पड़ते थे और दर्शकों में आदर का भाव उत्पन्न करते थे। सहारा लेकर चलने के लिए उनके हाथ में एक डंडा था। असंख्य वृद्ध ब्राह्मण, उनके समीप उनकी सेवा में लगे हुए थे। करुणा-रूपी जल-प्रवाह सरस वाग्विलास-रूपी लहरें, शम तथा दम-रूपी दोनों तट, धवल केश-रूपी झाग, निकटवर्त्ती ब्राह्मणों के वेदोच्चारण की ध्वनि-रूपी जल-घोष असंख्य श्रेष्ठ ब्राह्मण-रूपी पक्षियों के साथ विलसित होती हुई वह वृद्धा जाह्नवी के समान दीख रही थी। उसके निकट (बैठे हुए) कितने ही ब्रह्मराक्षस वेद-पुराण तथा शास्त्र आदि पढ़कर उसे सुना रहे थे।

अपनी वृद्धा माता को प्रणाम करके विभीषण आँखों में आँसू भरकर खड़ा रहा। उसे इस प्रकार दुःखी देखकर माता कैकसी संभ्रमित हुई और बड़े स्नेह से उसे अपने क्रोड़ में भरकर बार-बार कहने लगी---'हे वत्स, तुम इस प्रकार दुःखी क्यों हो? क्या अंतःपुर पर कोई ऐसी विपत्ति आई है, जिसका निवारण करना कठिन है? या किसी ब्राह्मण का वध हो चुका है? या ब्रह्मा ने क्रोध किया है? या शिव रुष्ट हो गये हैं? या विष्णु क्रुद्ध हो गये हैं? या रामचन्द्रजी लंका पर चढ़ आये हैं? शीघ्र बताओ कि तुम्हारे दुःख का क्या कारण है; अन्यथा मेरे प्राण मेरे शरीर में नहीं रह सकेंगे।'

तब विभीषण ने हाथ जोड़कर कहा--'हे माता, सुनिए। आज आपका ज्येष्ठ पुत्र, रविकुलाधीश राम के समुद्र-तट पर पहुँचने के संबंध में अपने मंत्रियों के साथ परामर्श कर रहे थे। तब मैंने उनसे साग्रह निवेदन किया कि किसी भी प्रकार से सोचा जाय, उत्तम यही है कि सीता को राम की सेवा में पहुँचा दिया जाय। यदि हम ऐसा न करें, तो अवश्य ही राघव समुद्र पार करके आयेंगे और हमारे कुल का नाश करेंगे। इस पर रावण अग्नि

समान जल उठे और मुझ पर ऐसा पदाघात किया कि आसन के साथ मैं पृथ्वी पर गिर पड़ा । इतने से संतुष्ट न होकर उन्होंने मुझपर खड्ग चलाना भी चाहा । किन्तु, मैं किसी तरह वहाँ से बचकर यहाँ आ गया हूँ । अब मैं उसी राम भूपाल की शरण में जाऊँगा और उनकी कृपा प्राप्त करके वहीं रहूँगा । अब यहाँ पर मेरे आप्त बंधु और कौन हैं कि मैं यहाँ रहूँ ।'

इन बातों को सुनकर कैकसी भय से मूर्च्छित हो गई और थोड़ी देर के बाद सँभलकर अपने पुत्र से कहने लगी--"हे वत्स, मैं पूर्व से ही यह बात जानती हूँ । जिस समय देवता, देवेन्द्र तथा ब्रह्मा ने अमृत सागर के निकट पहुँचकर भगवान् विष्णु को अपनी विपत्तियों का वृत्तांत सुनाया, तब उन्होंने कहा 'बड़ी निर्दयता से तुम्हें त्रास देनेवाले क्रूर रावण तथा कुंभकर्ण का वध करने के लिए मैं सूर्यवंश में जन्म लूँगा ।' तुम्हारे पिता ने यह वृत्तांत मुझे विस्तार से सुनाया था । तब मैंने भयभीत होकर अपने पति से पूछा--'हे देव, आपके पुत्रों में कौन ऐसा पुण्यवान् है, जो आपके वंश का उद्धार करेगा ?' तब उन्होंने कहा--'सत्य, धर्म, तथा पवित्रता से संपन्न, नित्य यशस्वी तुम्हारा कनिष्ठ पुत्र ही राम की कृपा प्राप्त करके इस लंका का पालन करेगा ।' इस प्रकार, कहकर तुम्हारे पिता तपस्या करने के निमित्त मेरु पर्वत पर चले गये । हे पुत्र, सूर्यवंशतिलक राम ही विष्णु हैं; मानिनी सीता ही महालक्ष्मी है । क्या, तुम्हारे पिता विश्रवसु की बात मिथ्या हो सकती है ? तुम अवश्य राम की शरण में रहते हुए सुखी रहो और राक्षस-कुल को बचाने का प्रयत्न करो ।"

इतना कहकर उसने अपने पुत्र को आशीर्वाद दिया और उसे मत्राक्षत देकर बिदा किया । विभीषण ने भी अपनी माता को बार-बार प्रणाम किया, और मन-ही-मन प्रसन्न होते हुए, अपने मंत्रियों के साथ आकाश की ओर इस प्रकार उड़ा, मानों यह बता रहा हो कि रावण के पंच-प्राण उसका शरीर छोड़कर इसी प्रकार उड़ जायेंगे । उस गुणनिधि विभीषण को देखकर लंका के लोग अपने-अपने आँगनों में तथा गलियों में एकत्र होकर आपस में कहने लगे--'रावण ने धर्म का त्याग करके, भाई के प्रेम को भी ठुकराकर, विभीषण को निर्वासित किया है । नीति-रीति तथा कुशलता को उसने तिलांजलि दे दी है। रावण का नाश तो होगा ही; अब लंका की क्या दशा होगी ?' कुछ लोग मन-ही-मन सोचने लगे कि विभीषण ही अब लंका का राजा होगा । कुछ अन्य यह सोचने लगे, क्या विभीषण के राम से मिल जाने मात्र से रावण का नाश हो सकेगा ? ऐसे भी लोग थे, जो सोच रहे थे कि भले ही यह (विभीषण) राम के पास जाय, क्या राम इसका विश्वास करेंगे ?

१५. विभीषण की शरणागति

विभीषण अपने मंत्रियों के साथ बड़े हर्ष से, आकाश-मार्ग से, रामचन्द्र के निकट आ रहा था । तब सभी वानरों ने अत्यंत आश्चर्य से उसकी ओर अपने सिर ऐसे उठाये मानों वे देवताओं को यह बता रहे हों कि हे देवताओ, रामचन्द्र (रावण पर) आक्रमण करने जा रहे हैं; परन्तु रावण अब अपने सिर नहीं उठा सकेगा, उसका कुल नष्ट होगा ।

तुम लोग भय को त्यागकर अपने सिर उठाओ। तब सुग्रीव ने उन्हें देखकर कहा—हे वानरो, वह देखो, कोई अखंड विक्रमी पर्वताकार, दीर्घकाय, शस्त्रों से सुसज्जित होकर इसी ओर आ रहा है। देखो, वह कौन है ? तब सभी वानर बड़े-बड़े वृक्षों तथा पर्वतों को हाथ में उठाकर कहने लगे—'हे सुग्रीव, हे देव, हमें उससे युद्ध करने के लिए भेजिए; हम युद्ध में उस दैत्य का संहार करेंगे।'

उनकी बातें सुनकर विभीषण ने कहा—'हे वानरो, मैं तुम्हारे पक्ष का ही व्यक्ति हूँ। इस प्रकार उतावले मत बनो। मैं रावण का भाई हूँ; किन्तु मैं उत्तम राक्षस तथा निष्कलंक मन का हूँ। श्रीराम की शरण पाने के निमित्त मैं लंका से यहाँ उनकी सेवा में आया हूँ। मैंने रावण को विविध रीति से समझाया कि तुम सीताजी को राम की सेवा में पहुँचा दो; किन्तु रावण ने मेरी बातों से क्रुद्ध होकर भरी सभा में मुझ पर पद-प्रहार किया। उससे संतुष्ट न होकर उसने निर्दय होकर मुझसे कहा कि यदि तुम मेरे राज्य में रहोगे, तो मैं तुम्हारा वध कर दूँगा, इसलिए मैं रामचन्द्र के दर्शनार्थ आया हूँ। मैं कपटी नहीं हूँ। मेरे मन में कोई पाप नहीं है। मैं भयभीत होकर आया हूँ। अतः तुम लोग मुझे राम भूपाल की शरण दिला दो।'

तब सुग्रीव राम के दर्शनार्थ गया और बड़े विनय से उनसे निवेदन किया—'हे देव, रावण से क्रुद्ध होकर, उससे वैर ठानकर एक राक्षस आया है। अपने बंधुओं के साथ वह आकाश-मार्ग में ठहरा हुआ है और अपना मन आप पर लगाये हुए है। कहता है कि मैं रावण का भाई हूँ। वह मिष्टभाषी है और प्रार्थना कर रहा है कि, हे सूर्यवंशतिलक, मुझे अभयदान दीजिए। न जाने आप की कृपा किस ओर है। मेरा विचार है कि इस पर विश्वास नहीं करना चाहिए। हे राजन्, राक्षसों के समान कपटों का भांडार और कौन हो सकता है ? भला, दनुजेश्वर रावण का भाई यहाँ किसलिए आयगा ? अवश्य ही इस नीच का वध कर देना चाहिए।'

१६. हनुमान् का विभीषण की योग्यता राम को समझाना

इतने में हनुमान् ने बड़ी नम्रता से प्रभु राम से कहा—'हे देव, इस राक्षस ने सारी बातें प्रकट रूप से कह दीं कि किस प्रकार रावण ने प्रचंड क्रोध से उस पर भरी सभा में पद-प्रहार किया। यह कथन सत्य प्रतीत होता है। हमारे लिए उचित बात कहना, और जिसने उसे देश से निर्वासित किया, उसे त्याग कर चले जाना, यह सत्य हो सकता है। इस में कपट नहीं दीखता। कपटी आदमी कितना भी बहाना करे, उसका कपट प्रकट हो जाता है। इसकी बातों में कोई भी बनावटीपन नहीं दीखता। न कोई बुराई ही दीखती है। हे राजन्, यह राक्षसों के भेदों को जानता होगा। उसका हमारे पक्ष में रहना ही उचित है। उस दिन जब रावण मुझे बाँधकर कई प्रकार के दुःख देने लगा था, तब उसने मेरे पक्ष में बहुत-सी बातें रावण को समझाई थीं। इसलिए मैं इसके मन की दशा का थोड़ा-सा परिचय रखता हूँ।'

हनुमान् की बातें रामचन्द्र के मन को प्रिय लगीं। उन्होंने सुग्रीव को देखकर कहा—'हे सूर्यपुत्र, हमें इस बात पर तर्क-वितर्क करने की आवश्यकता ही क्या है कि यह

रक्षस भला है या बुरा । क्षत्रिय का धर्म यही है कि चाहे शत्रु ही क्यों न हो, यदि वह शरणार्थी होकर आये, तो उसकी रक्षा करनी चाहिए । बाज के द्वारा पीछा किये जाने पर एक कपोत ने व्याकुल होकर राजा शिबि की शरण ली थी और शिबि ने अपना शरीर भी त्यागकर कबूतर की रक्षा की थी । जो व्यक्ति आर्त्त व्यक्ति को शरण देता है, वह अश्वमेध यज्ञ करने से प्राप्त होनेवाले पुण्य का भागी बनता है । हे सुग्रीव, विभीषण ही क्यों, यदि रावण ही स्वयं अपना गर्व तजकर मेरी शरण में आये, तो मैं उसकी भी रक्षा करूँगा । यही हमारे वंश की रीति है । हे भानुपुत्र, मैं उस विभीषण को शरण दूंगा । तुम तुरंत जाकर उस भय-विह्वल विभीषण को ले आओ ।'

राम की कृपा-बुद्धि का विचार करके, सुग्रीव आँखें मुकुलित करके तथा सिर कँपाकर कहने लगा--'हे प्रभु, अपने परम शत्रु के अनुज के शरण माँगते ही, उसे अभयदान देकर उसकी रक्षा के लिए तत्पर होना इस संसार में आपके सिवा अन्य किस राजा के वश की बात है !' इतना कहकर सुग्रीव अपनी सेना के साथ आकाश-पथ की ओर उड़ा और विभीषण को देखकर बोला--'हे विभीषण, श्रीराम ने तुम्हें अभयदान दिया है । यह सत्य-वचन है । अब तुम उनके पास चलो ।' यों कहकर उसने राक्षसराज विभीषण को अपने हृदय से लगा लिया और बड़े हर्ष से उसे राम के समक्ष ले आया ।

१७. विभीषण की स्तुति

विभीषण ने रामचंद्र को देखकर उन्हें प्रणाम किया और उनकी स्तुति करने लगा--"हे नित्य सत्यरक्षक, हे नित्य कल्याण-रूप, हे नित्य जगद्रक्षक, हे नित्य देव, हे जगत्कारक, हे जगत् के आदिवीर, हे सृष्टिकर्त्ता, हे सर्वसंगातीत, हे सर्वानुभूत, हे सर्वजगत् में पवित्र, हे जगद्विधाता, हे गुरु-लघु रूप, हे गुरुज्ञान-रूप, हे मधुरभाषी, हे श्रेष्ठ धनुर्धर, हे पद्म-सम-नेत्रवाले, पद्माकलित शरीरवाले, हे समस्त जीवाधार, परम पवित्र-स्वरूप, कविजनों के लिए वेद्य, करुणासिंधु, विविध शास्त्रों के आधार, वेदांतवेदी, तुम ही परमातमा हो, तुम ही मोक्ष हो, तुम ही परमविद्या हो, तुम ही संसार के कर्त्ता हो, तुम ही संसार हो, और तुम ही संसार के हर्त्ता हो। तुम ही यज्ञ-भोक्ता हो, यज्ञ भी तुम ही हो, और यज्ञ-फल के प्रदाता तुम ही हो; तुम ही सूर्य-चन्द्र हो, तुम ही जलधि हो, तुम ही इंद्र आदि देवता हो और पृथ्वी भी तुम ही हो । तुम ही त्रिमूर्त्ति हो और त्रिमूर्त्तियों के परे जो रूप है, वह भी तुम ही हो । क्षर तथा अक्षर तुम ही हो; क्षर तथा अक्षर के ज्ञाता भी तुम ही हो । हे शतकोटि सूर्यसम तेजस्वी, तुम्हारी जय हो ! हे संसार-सर्प-सुपर्ण (संसार-रूपी साँप के लिए गरुड़ पक्षी के समान दीखनेवाले) तुम्हारी जय हो ! हे ललित आगमों से प्रशंसित, हे लक्ष्मीपति, हे दयासमुद्र, हे विबुध-शत्रुनाशक, श्रेष्ठ मुनिवंद्य, आद्यंतरहित, हे शत्रुनाशक, हे दशरथ-राम, दिनकर-शशि-नेत्रवाले, दिव्य चरित्रवान्, अनुपम शुभ गात्रवाले, अखिलाधार, सहस्र-मुख आदिशेष भी क्या, तुम्हारी महिमा का वर्णन कर सकेगा ? क्या पद्मसंभव ब्रह्मा भी तुम्हारी महिमा की स्तुति करने में समर्थ है ? फिर मेरी क्या शक्ति है कि मैं तुम्हारी प्रशंसा करूँ ? तुम्हारी महिमा को जानने की शक्ति मुझमें कहाँ है ? तुम्हारी स्तुति करने की क्षमता ही मुझमें कहाँ है । मैं दानव हूँ, चंचल चित्तवाला हूँ । हे राजन्,

तुम आदि पुरुषोत्तम हो । हे प्रभु, मैं शरणागत हूँ; तुम मेरी रक्षा करो । उस परम दुष्ट दैत्यनाथ का संहार करो । तुम्हें अखिल-लोक-शरण्य जानकर, तुम्हारे आश्रय में सुख से रहने की अभिलाषा से मैं आया हूँ ।"

तब राम ने उस पर अपनी कृपा-दृष्टि करते हुए उससे कहा--'हे विभीषण, तुम मेरी बातों पर विश्वास करो । तुम देव-वैरी रावण के भाई नहीं हो, बल्कि मेरे भाई हो । व्याकुल मत होओ । लक्ष्मण की अपेक्षा अधिक मैं तुम्हें अपना भाई मानता हूँ । इस प्रकार, आश्वासनपूर्ण वचनों से राम ने विभीषण का भय दूर किया । इसके पश्चात् राम विभीषण के स्कंध पर हाथ टेककर समुद्र के तट पर गये । वहाँ पहुँचकर उन्होंने विभीषण से कहा--'हे विभीषण, तुम हमें सच-सच बतलाओ कि रावण की तथा उसकी सेना की शक्ति कितनी है ?'

१८. त्रिकूट पर्वत की उत्पत्ति की कथा

तब विभीषण ने रामचन्द्र को प्रणाम करके इस प्रकार निवेदन किया--"हे कमलदल-लोचन, पूर्वकाल में एक बार नारद ने वायु के समक्ष नागराज की शक्ति की प्रशंसा की और नागराज के समक्ष वायुदेव की शक्ति की प्रशंसा की और इस प्रकार उन दोनों में शत्रुता उत्पन्न कर दी । मात्सर्य से प्रेरित होकर वे दोनों अपनी-अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने की इच्छा करने लगे । वायु ने कहा—'नागराज उज्ज्वल हेमाद्रि को घेरकर पड़ा रहे, तो भी मैं उसे उड़ा दूँगा ।' तब आदिशेष अपनी सारी शक्ति लगाकर उस पर्वत को घेरकर, अनुपम रीति से, अपने सहस्र फणों से उस पर्वत के सहस्र शिखरों को दृढ़ता के साथ पकड़कर पड़ा रहा । तब पवन अपने सप्त प्राणों को उद्रिक्त करके प्रचंड गति से चलने लगा । पवन के प्रकोप से सभी पर्वत खंड-खंड होकर गिर पड़े; समस्त भुवन कंपित होने लगे; सभी समुद्र आलोड़ित हो गये; सभी भूत आक्रंदन करने लगे । उस पवन ने सूर्य के रथ को भी विचलित कर दिया और समस्त दिशाओं को चूर-चूर कर दिया । लोक में व्याप्त इस संकट को देखकर सब देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि आप इस महा विपत्ति से संसार की रक्षा कीजिए । तब ब्रह्मा आदि देवता हेमाद्रि के पास आये और पवन से अनुरोध किया कि वह अपनी शक्ति का उपसंहार करे । किन्तु जब पवन ने उनकी बात नहीं मानी, तब उन्होंने नागराज को समझाया कि हे नागेन्द्र, तुमको तो अवश्य ही इस कार्य से विरत हो जाना चाहिए । तुम दोनों की इस स्पर्धा के कारण सूर्य डिग गया है, पृथ्वी धँस गई है, समुद्र ने मर्यादा छोड़ दी है । हमारा अनुरोध मानकर तुम पवन की विजय स्वीकार कर लो और हमारी रक्षा करने की कृपा करो ।

देवताओं की प्रार्थना मान करके नागराज शान्त हुआ और पवन को विजय दिलाने के निमित्त अपना एक फण ऊपर उठाया । पवन और अधिक वेग से बहने लगा, तो उस हेमाद्रि का एक-एक शिखर टूटकर बड़े वेग से बहुत दूर तक उड़ गया और समुद्र के मध्य आ गिरा । हे राघव, वही त्रिकूट पर्वत के नाम से विख्यात है ।"

१९. विभीषण का राम को रावण के वैभव का परिचय देना

"हे देव, उस द्वीप (त्रिकूट पर्वत) पर देवेन्द्र की आज्ञा से देवलोक के शिल्पी ने लंकापुर नामक एक नगर का निर्माण किया । उस नगर के सात दुर्ग हैं और प्रत्येक दुर्ग

के चार द्वार हैं । बाहर का दुर्ग कई कंगूरों से युक्त है और ईंटों का बना हुआ है । अस्सी करोड़ सैनिक उसके पश्चिमी द्वार की रक्षा करते रहते हैं । सात सौ सतहत्तर करोड़ सैनिक उत्तर द्वार की रक्षा करते हैं । पूर्व के द्वार पर सतत एक सौ करोड़ मदमत्त सैनिक दुर्ग-रक्षण में तत्पर रहते हैं । दक्षिण द्वार पर साठ करोड़ बलवान् सैनिक रहते हैं । उस दुर्ग के भीतर के छहों दुर्गों के कुल चौबीस द्वार हैं, जिनकी रक्षा भी उतनी ही संख्या के राक्षस-सैनिक करते रहते हैं । प्रत्येक गुप्त द्वार के पास एक-एक करोड़ शक्तिशाली राक्षस रहते हैं। नगर के मध्य में नगर की रक्षा में बीस लाख सात सौ करोड़ राक्षस तत्पर रहते हैं । कुंभकर्ण की शयन-गुफा की रक्षा सात करोड़ राक्षस करते रहते हैं । रावण के महल के आंगन की रक्षा करने में एक लाख करोड़ राक्षस लगे रहते हैं । उसके द्वार पर बीस करोड़ राक्षस रहते हैं । इंद्रजीत के भवन के द्वार पर दस सहस्र करोड़ राक्षसवीर रहते हैं । विशालकाय श्रेष्ठ राक्षसवीरों के गृहों के पास दस सहस्र करोड़ सैनिक रहते हैं । हे सूर्यकुलाधीश, उस सेना की गिनती असंभव है; वह बहुत ही विशाल है । स्वयं रावण की शक्ति का वर्णन करना भी कहाँ संभव है ? उसने ईर्ष्या से कैलास पर्वत को उठाया था; ब्रह्मा ने उसे ऐसा वरदान दिया कि वह दनुज, गंधर्व, अमर, तथा यक्षों से युद्ध में नहीं मरेगा । युद्ध में ही क्यों, किसी भी प्रकार से वे उस राक्षसराज को मार नहीं सकेंगे । हे राजन्, यदि वह युद्ध में मरेगा भी, तो केवल आपके हाथों, अन्य किसी के द्वारा उसकी मृत्यु नहीं हो सकती । कुंभकर्ण तो युद्ध में इन्द्र को एक तृणवत् भी नहीं मानता । शक्ति-मद से भरा इन्द्रजीत भय का नाम भी नहीं जानता । उसने शिवजी की तपस्या करके उनकी कृपा से वज्र-कवच प्राप्त किया है । माया-रूप धारण करके वह आकाश में रहते हुए अपने शत्रुओं को जीत लेता है । रावण का सेनापति प्रहस्त बड़ा ही चतुर तथा शक्तिशाली है । उसने (शिव के मित्र) कुबेर के सामंत मणिभद्र को युद्ध में जीत लिया था । महोदर, महापार्श्व तथा अतिकाय नामक राक्षस प्रचण्ड योद्धा हैं । ये तीनों वीर दिक्पालों की भी परवाह नहीं करते, और युद्ध में आने पर उन्हें सहज ही जीत लेते हैं । दनुजेन्द्र रावण के एक लाख पुत्र हैं, जो महाबली तथा देवों के शत्रु हैं । उसके सगे संबंधियों की गिनती करना ब्रह्मा के लिए भी दुष्कर है । जब कुबेर आदि उसके सामंत हैं, तब उसके वैभव का वर्णन करना कैसे संभव है ? इनके अतिरिक्त रावण के पास दस सहस्र करोड़ ऐसे श्रेष्ठ राक्षसवीर हैं, जो सदा शत्रु-रक्त को पीकर तृप्त तथा रण-मद से भरे रहते हैं । उन्हीं के बल की सहायता से रावण ने समस्त दिशाओं को जीत लिया है ।"

विभीषण की बातें सुनकर राघव ने कहा—'हे विभीषण, मैंने इसके पूर्व ही तुम्हारे भाई के संबंध में सुन रखा है । निश्चय ही वह महान् शूर है । उसकी शक्ति भी वैसी ही है । किंतु चाहे वह कैसा ही शूर क्यों नहीं हो, उसमें इतनी शक्ति कहाँ कि वह मेरे समक्ष अपना प्रताप दिखावे । हे दानवराज, चाहे हरि, हर, ब्रह्मादि देवता भी मेरी गति रोकें, तो भी मैं मारकर टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा, और तुम्हें लंका के सिंहासन पर बिठाऊँगा ।' तब विभीषण ने बड़े विनय से राम को प्रणाम किया और कहा—'हे राम, देव, जब आपके बाणों की अग्नि-ज्वाला प्रचण्ड गति से निकलेगी, तब रावण में तथा उस लंका

में इतनी शक्ति कहाँ है कि वे उसके सामने टिक सकें ? हे नरनाथ, जिस दिन वानरों की सेना, लंका के दुर्ग की दीवारों पर चढ़कर अत्यंत क्रोध से राक्षसों से जूझेगी, उस दिन आप मेरी शक्ति देखेंगे । (मैं रावण की सेना को) प्रलयकाल के रुद्र के समान भस्म करूँगा ।'

२०. राम का विभीषण को लंका का राजा बनाना

तब प्रभु राम ने विभीषण को गले से लगा लिया और फिर लक्ष्मण को देखकर बोले--'हे लक्ष्मण, तुम और सूर्यपुत्र दोनों तुरंत विभीषण को समुद्र-जल से अभिषिक्त करके रावण के बदले उसे लंका का राजा बनाओ । राम की आज्ञा के अनुसार वानर समुद्र से जल ले आये और लक्ष्मण ने उस जल से विभीषण का अभिषेक किया और घोषित किया कि हे विभीषण, आज से तुम सभी दानवों के प्रभु होकर रहोगे और जब-तक सूर्य और चन्द्र रहेंगे, जबतक श्रीरामचन्द्र की कीर्त्ति इस पृथ्वी पर सुशोभित होती रहेगी, तबतक तुम राज्य करते रहोगे ।

यह देखकर वानरों की सेना अत्यन्त हर्षित हुई । इसके पश्चात् राघव ने विभीषण को देखकर कहा--'विभीषण, कहो, हम इस समुद्र को पार करने के लिए क्या उपाय करें ?' तब विभीषण ने हाथ जोड़कर कहा--'हे देव, सेतु का निर्माण किये बिना इस समुद्र को पार करना इन्द्रादि देवों के लिए भी दुष्कर है । अतः, इसको वश में लाने के लिए समुद्र से प्रार्थना करनी चाहिए ।'

इसी समय दशकंठ के आदेश से शार्दूल नामक एक राक्षस गुप्तचर वहाँ आया और उसने वानर-सेना की संख्या, उनका परस्पर-संभाषण, तथा राम और वानरों का वार्त्तालाप आदि को (गुप्त रूप से) जान लिया । वह तुरंत असुरेन्द्र की सेवा में लौटकर, हाथ जोड़कर कहने लगा--'हे दैत्यनाथ, उत्तुंग गात्र, उत्तुंग बाहु, उत्तुंग शक्ति तथा उत्तुंग मति से संपन्न राम-लक्ष्मण समुद्र के तट पर श्रेष्ठ वानरों के साथ शिविर डाले हुए हैं । (उनकी सेना इतनी विशाल है कि) आकाश के नक्षत्र भी गिने जा सकते हैं, समुद्र की लहरों को भी गिन सकते हैं, किन्तु उस वानर-सेना की गणना करना असंभव है । अब उचित यही है कि आप साम आदि उपायों से कार्य को सिद्ध करें ।

२१. शुक का संदेश

शार्दूल की बातें सुनकर दैत्यराज ने शुक को देखकर कहा--'तुम शीघ्र वानर-सेना में जाओ और सूर्य-पुत्र से बड़े स्नेह से मेरा प्रेमपूर्ण संदेश कहो और उसे मेरी मित्रता का स्मरण दिलाकर युद्ध से विरत करके लौट आओ ।'

रावण की आज्ञा सिर पर धरे, वह सुग्रीव के पास गया और रावण का संदेश सुनाकर बोला--'हे सूर्यनंदन, तुम मुझसे कहो कि तुम किस कारण से रावण से शत्रुता ठान रहे हो ? बालि तथा तुम में शत्रुता थी; बालि दानवेन्द्र का शत्रु था; इसलिए तुम्हारी तो रावण के साथ मित्रता ही उचित है । यदि रावण इस राम की पत्नी को ले गये हैं, तो क्या तुम्हारा इस प्रकार उनका साथ देना उचित है ? कुबेर को जीतकर पुष्पक विमान प्राप्त करनेवाले रावण को समझाना क्या अच्छा नहीं है ? यही क्यों शिव

के साथ कैलास पर्वत को उठानेवाले रावण क्या, कोई साधारण व्यक्ति है ? हे वानरेन्द्र, क्या देवेन्द्र आदि समस्त देवताओं को रावण ने नहीं जीता ? क्या उन्होंने हवन-कुंड में अपने शिर की आहुति देकर ब्रह्मा को प्रसन्न करके त्रिलोक-विजय का वरदान नहीं प्राप्त किया है ? एक शक्ति-हीन मानव (राम) से तुम्हारी मित्रता क्यों हुई ? तुम्हारे लिए उचित यही है कि तुम दानवेश्वर से मित्रता करो ।'

उसकी बातें सुनकर सभी वानर बड़े क्रुद्ध हुए । वे आकाश की ओर उड़े, बलात् उसे पकड़ा और अपनी मुष्टि के आघातों से उसको चूर चूर-कर दिया । फिर उसके पंखों को तोड़कर, उसके नाक-कान काट लिये । तब राघव ने कहा—'दूत को इतना त्रास क्यों देते हो ? अब इसे दुःख न देकर, जाने दो ।' रघुराम की आज्ञा से प्रभावित होकर वानरों ने उसे छोड़ दिया । उसने आकाश में उड़कर सूर्य-पुत्र से कहा—'हे कपिराज, तुम रावण को क्या संदेश देते हो ?' तब सुग्रीव ने क्रोध से कहा—'तुम जाकर उससे कहो कि उसने रघुराम के साथ दुर्व्यवहार किया है । ऐसे नीच को मैं सहन नहीं कर सकता । वह चाहे किसी भी लोक में छिपकर अपने प्राण बचाने की चेष्टा करे, मैं अवश्य उसका वध करूँगा; उसे कदापि नहीं छोड़ूँगा । सोमयाजी राघव देवताओं को प्रसन्न करने के लिए अवश्य समर-भूमि-रूपी यज्ञ-वेदी में संग्राम-रूपी महायज्ञ संपन्न करेंगे । उसमें श्रेष्ठ धनुष, यूप-काष्ठ होगा, चटुल अस्त्र परिस्तरण (हवन-कुंड के चारों ओर के कुश) होंगे; लाल धूलि (अग्नि की) प्रभा होगी; वानर-सेना स्त्रुक वा स्त्रुवा (यज्ञपात्र विशेष) होंगे; वीरों के अंगों से बहनेवाला रक्त ही घृत होगा; धनुष का टंकार मंत्रघोष होगा; असंख्य राक्षस, यज्ञ-पशु होंगे; वानर-वीरों का सिंहनाद देवताओं को आमंत्रित करनेवाली ध्वनि होगी; युद्ध-वाद्यों का सतत निनाद ही साम-गान होगा; राम-लक्ष्मण का भयंकर क्रोध तथा मेरा क्रोध त्रेताग्नियों का रूप धारण करेगा; रावण के प्राण ही आहुति होंगे; उस रावण का दर्प-दलन ही सोम-पान होगा और राक्षसवीर-रूपी पशुओं का मांस ही समस्त भूत-समूह की संतुष्टि का साधन बनेगा । रावण से कहना कि ऐसे संग्राम-यज्ञ के संपन्न होने के पहले ही सीताजी को राम के पास पहुँचाकर प्राण बचा लेना उसके लिए शुभप्रद होगा ।' इन बातों को सुनकर शुक वहाँ से शीघ्र रावण के पास चला गया और उसे सारा वृत्तांत कह सुनाया ।

२२. राम का दर्भ-शयन

उस समुद्र के तट पर प्रभु राम अपनी दक्षिण भुजा को तकिया बनाकर, दर्भ-शय्या पर ऐसे लेटे हुए थे, जैसे आदिदेव अमृत-सागर में, शेष-शय्या पर आनंद से पूर्ण हो विमल-चित्त से लेटे हुए हों । उन्होंने निश्चय किया कि मैं समुद्र से प्रार्थना करूँगा कि वह मुझे समुद्र पार करके जाने के लिए मार्ग दे । इस प्रकार का निश्चय करके वे तीन दिन तक निर्जल उपवास करते हुए वहीं लेटे रहे और बड़ी निष्ठा के साथ अपने मन में वरुण देवता से प्रार्थना करने लगे—'हे समुद्र, तुम्हारे विशाल तथा दुर्गम हृदय के पार जाने के लिए मैं यहाँ पड़ा हुआ हूँ । तुम्हारे लिए मैं मान्य हूँ । स्वर्ग-विरोधी रावण का संहार करने के निमित्त तुम मुझे मार्ग दो ।'

२३. राम का समुद्र पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करना

इस प्रकार राम के प्रार्थना करने पर समुद्र, गर्व से फूलकर, उत्तुंग तरंग-रूपी अपनी बाहुओं को हिलाते हुए, अपने धवल फेन-रूपी हँसी को बिखेरते हुए विशाल मीन-रूपी जिह्वा को फैलाते हुए, अपने गंभीर घोष से अट्टहास करते हुए, अपने वेला-जल से दिशाओं को यह वृत्तांत सुनाते हुए तथा अपने मध्य भाग के भँवरों से अपनी वक्रता दिखाते हुए, राम की बातों की उपेक्षा करने लगा। यह सत्य ही तो है कि मूर्ख, दुर्जन, क्रूर-कर्मी, तथा कुल-नाशक, कभी प्रार्थना करने से नहीं झुकते। प्रार्थना सुनकर वे और भी भड़क उठते हैं। प्रेम से उससे मिलने जाइए, तो वे मन को अशान्त बनानेवाली विष-वृष्टि करने लगते हैं।

समुद्र को अपनी प्रार्थना अस्वीकार करते हुए देखकर राघव के विशाल नेत्रों से अग्नि-कण छिटकने लगे और उनकी भौंहें तन गईं। वे अत्यंत क्रोध से बार-बार समुद्र और फिर लक्ष्मण की ओर देखकर बोले—'हे लक्ष्मण, इस समुद्र का गर्व तो देखो। मैं इससे कितनी बार प्रार्थना करता हूँ। फिर भी, यह मेरी प्रार्थना को स्वीकार नहीं करता। स्वीकार कराये विना मैं थोड़े ही इसे छोड़ दूँगा? क्या, इसका वडवानल इतना तेजस्वी है कि मेरी बाणाग्नि उसे निस्तेज न बना सकती। समुद्र भी देख ले कि मेरे बाणों में कितनी शक्ति है। मैं अपने बाणों की अग्नि-ज्वालाओं से सारे समुद्र के जल को इस प्रकार ढक दूँगा कि मानों वे उस समुद्र की हड्डियाँ हों। उन बाणों के तीक्ष्ण ताप के कारण, बड़े-बड़े मकर, सर्प, मीन, गैंड़ा, कच्छप, कर्कट, मेंढ़क, जल-मानुष आदि का समूह परस्पर एक दूसरे से टकराते हुए प्राण-रक्षा के लिए भाग खड़े होंगे और तिमिंगिल, बलवान् जल-राक्षस, जल-ग्रह तथा पर्वत आदि का भी सर्वनाश हो जायगा। मैं उस समुद्र की ऐसी धूल उड़ाऊँगा कि समस्त जलचरों का संचलन बंद हो जायगा और सीप तथा घोंघे बाहर निकल आयेंगे। मैं इसको लक्ष्मी का पिता, हरि का श्वशुर समझकर ही अबतक चुप रहा। हे सौमित्र, मैं इसके लिए समुद्र से प्रार्थना ही क्यों करूँ? अपने-आपको मैं इसके सामने शक्तिहीन क्यों समझूँ? लाओ मेरे धनुष-बाण और देखो कि यह समुद्र मेरे बाणों से कैसे सूखता है। मैं अभी समुद्र में रहनेवाले प्राणियों को चूर-चूरकर देता हूँ।

इस प्रकार कहते हुए जब राघव ने धनुष हाथ में लिया, तब तुरंत इन्द्र कंपित हुआ; आकाश थरथराने लगा; समुद्र आलोडित हुए; दिग्गज स्तंभित हो रह गये; पृथ्वी धँस गई; पर्वत-शिखर टूटकर गिरने लगे; ब्रह्मा चकित रह गया, नक्षत्र गिरने लगे और दिशाएँ चकराने लगीं। सूर्यवंशतिलक राम ने अपने शौर्य का प्रदर्शन करते हुए, प्रलय के समय प्रयुक्त करनेवाले यम के काल-दण्ड के समान, उज्ज्वल तथा प्रलयकाल की अग्नि के समान दीप्त होनेवाले बाणों का अपने धनुष पर संधान किया और उन्हें समुद्र पर चलाया। तब समुद्र की लहरें पर्वतों का आकार धारण करके आकाश का ऐसे स्पर्श करने लगीं, मानों समुद्र यह कहते हुए बाणों से बच रहा हो कि मैंने अत्यधिक घमंड दिखाया, मुझ पर कृपा करो। उन उत्तुंग लहरों पर इतना अधिक फेन दिखाई पड़ने लगा,

मानों राम के शक्तिशाली बाणों के लग जाने से समुद्र के मुँह से झाग निकल रहा हो। सारा समुद्र इस प्रकार आलोडित होने लगा, मानों यह सोचकर वह व्याकुल हो रहा हो, कि अब मुझे शरण कहाँ मिलेगी ? चारों दिशाओं में धुआँ इस प्रकार छा गया, मानों मेघ-समूह समुद्र के जल का आस्वादन करने के निमित्त आने के पश्चात्, राम के शस्त्रों के प्रताप से भीत होकर तुरंत लौटे जा रहे हों। जलचर इस प्रकार छटपटाने लगे, मानों वे दिखा रहे हों कि (भविष्य में) राक्षस इसी प्रकार छटपटायेंगे। सभी दैत्य पाताल छोड़कर चारों ओर ऐसे भागने लगे, मानों मनुकुल-वल्लभ राम के बाणों की अग्नि से संभ्रमित समुद्र के चित्त से अहंकार आदि भाव भागे जा रहे हों। उद्धत गति से प्रज्वलित होनेवाली बाणाग्नि के साथ मिलकर समुद्र का वडवानल भी समुद्र के ऊपर ऐसे जलने लगा, मानों वडवानल यह सोचकर कि मेरे रहते हुए भी जो समुद्र सूखा नहीं, उसे सोखने के लिए यह बाणाग्नि आ रही है, उसे बड़े प्रेम से आलिंगन कर रहा हो।

तब लक्ष्मण यम के समान क्रोधाभिभूत अपने अग्रज को देखकर, भयभीत हो, समुद्र के किनारे आया और हाथ जोड़कर बोला--'हे मानवेन्द्र, यह कोई रुद्र का रोष-रूपी समुद्र नहीं, जिसका मथन करना असंभव हो। यह कोई यम का क्रोध-रूपी समुद्र नहीं है, जिसको मथ देना दुष्कर हो। इस जल को सोखने के लिए ऐसा प्रयत्न क्यों ? आपके बाणों की अग्नि इस समुद्र को जला देने के पश्चात् बाहर निकलकर समस्त दिशाओं के साथ सभी लोकों को जला दे, तो कोई आश्चर्य नहीं। अपना चरित्र समस्त जगत् में विख्यात करते हुए आप अपने क्रोध का उपसंहार कर लीजिए। आप के क्रोध के सामने यह समुद्र क्या शक्ति रखता है ? इसका नाश मत कीजिए; वह धनुष मेरे हाथ में दीजिए, यों कहते हुए उन्होंने राम के धनुष को पकड़ लिया।

किन्तु राम ने धनुष लक्ष्मण को नहीं दिया। उनका क्रोध द्विगुणित हुआ और सौमित्र को टालते हुए, होंठ चबाते हुए क्रोधपूर्ण दृष्टियों से समुद्र की ओर देखकर वे कहने लगे--'रे समुद्र, तुम मेरे हाथों से परास्त नहीं होओगे ? तुम्हारे जल को अभी सोखता हूँ और तुम्हारे जल के अंतर्गत रहनेवाले समस्त प्राणियों का नाश करता हूँ। तुम अब मेरा सेवक होकर खड़े रहोगे। तुमने मेरा सामना करने की दुष्टता की। लो, मैं अभी धनुष की डोरी पर बाण चढ़ाता हूँ।' इस प्रकार समुद्र को त्रस्त बनाते हुए उन्होंने धनुष पर ब्रह्मास्त्र चढ़ाया।

यह देखकर इन्द्र तथा ब्रह्मा दिग्भ्रान्त हुए, सारा ब्रह्माण्ड विदीर्ण-सा हो गया। त्रिभुवनों में रहनेवाले प्राणी आर्त्तनाद करने लगे। सारा भुवन परितप्त-सा होने लगा। दिशाओं में अंधकार व्याप्त होने लगा। रवि तथा चंद्रबिंब कांति-रहित हो गये। वज्र-पात होने लगा। महापवन भयभीत हुआ। आकाशवाणी कंपित होने लगी। मिथ्याग्नियाँ प्रज्वलित होने लगीं और अविरल गति से एक भयंकर निनाद गूँजने लगा।

तब समुद्र अपने मकर-समूह के साथ विचलित हुआ। उसका सारा उफान जाता रहा; उसकी उत्तुंग लहरें कहीं दब गईं; उसका घोर निनाद जाने कहीं अंतर्धान हो गया; उसका भयंकर विष न जाने कहीं लुप्त हो गया; उसका गर्व कहीं चूर-चूर हो गया

और उसके हाव-भाव नष्ट-से हो गये। अबतक पराजय का नाम न जाननेवाला समुद्र आज पराजय के निवास के समान, सत्त्व-संपन्न होते हुए भी सत्त्वहीन के समान व्याकुल होने लगा। स्थैर्य रखते हुए भी वह अस्थिर तथा अधीर हो बड़े वेग से राम के हाथ के ब्रह्मास्त्र के अग्र भाग में एक बिंदु के रूप में आकर ऐसे खड़ा रहा, मानों वरदान के प्रभाव से पल-पल बढ़नेवाले रावण के मस्तकों को एक साथ काट डालने के उद्देश्य से राम ने अपने बाण को पैना बनाने के लिए वडवानल में उसे तपाया हो और फिर समुद्र में उसे डुबोने पर सारा समुद्र खिचकर उस शर के अग्र भाग में बूंद के रूप में खड़ा हुआ हो और (इस प्रकार) कह रहा हो—'हे देव, मेरा अस्तित्व इतना ही तो है।'

२४. समुद्र का राम से प्रार्थना करना

तब समुद्र सब देवताओं के समक्ष दीप्तिमान् रत्न-प्रभा से विलसित हो, असंख्य मंगल पुष्प-मालाओं से अलंकृत हो, उज्ज्वल तथा विशाल फणवाले कोटि सर्प तथा असंख्य जलचरों के साथ, गंगा आदि नदियों की सेवाओं को प्राप्त करते हुए, रामचंद्र के समक्ष आया, साष्टांग प्रणाम किया और कर-कमलों को मुकुलित करके अत्यन्त भक्तियुक्त हो निवेदन करने लगा—'हे नरनाथ, आपके क्रोध के सम्मुख मेरी क्या शक्ति है कि मैं खड़ा भी रह सकूँ? आप आदि पुरुषोत्तम हैं; आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी आपकी आज्ञा के वशवर्त्ती हैं। आपमें जो प्राणी विलसित हैं, उनकी गणना ही नहीं हो सकती। समस्त लोक आपके अधीन हैं। मुझे अपराधी जानकर आप मुझे दंड मत दीजिए। आप जो भी कार्य कहें, आपकी आज्ञा को सिर आँखों पर धारण करके उसे संपन्न करूँगा।

इसके पश्चात् गंगा आदि नदियों ने रामचन्द्र को सिर नवाकर प्रणाम किया और ललाट पर हाथ जोड़कर कहा—'हे जगदभिराम राम, हम आपकी शरण में आई हैं। हे करुणानिधि, आप हम पर कृपा कीजिए। हम सब आपसे अभयदान की याचना करती हैं। अद्वितीय रीति से इस सागरेश्वर को क्षमा करके आप हमारे सौभाग्य की रक्षा कीजिए। हे त्रिभुवनाधार, हे दीन-मन्दार, अपराधियों को क्षमा करना ही आपका लोकोत्तर गुण है। हे देववंद्य, हम पर कृपा करके हमारी रक्षा कीजिए। हे शिवधनुभंजक, हे राम, आपकी महिमा का वर्णन श्रुति भी गा नहीं सकते। आप देव-देव हैं। रक्षा तथा पालन करने में आप ही समर्थ हैं। हे भूमीश, हे लोकेश, हे प्रकाश-संपन्न, हे सीतापति, हे पुण्य-स्वरूप, आप हमारी रक्षा कीजिए।'

इस प्रकार की नदियों की विनती सुनकर राम ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करते हुए कहा—'तुम भय छोड़ो।' तब समुद्र ने राम से निवेदन किया—'हे कमलगर्भ, हे मुनिजन-वंद्य, हे शरणागतरक्षक, हे दिव्य मूर्त्ति, आप चाहें, तो अपनी वानर-सेना को ले जाने के लिए दीर्घकाय मकरों के संचलन से युक्त उमड़कर लहरों में फैल जानेवाले, झंझावात को उत्पन्न करनेवाले, भँवरों से युक्त हो मेरे सौंदर्य की वृद्धि करनेवाले मेरे इस अगाध तथा अनंत जल पर सेतु बाँधिए या चाहें तो वैसे ही चले जाइए।"

समुद्र के इन विनयपूर्ण वचनों को सुनकर राम संतुष्ट हुए और जलाधीश के सुझाव के अनुसार उस अमोघ अस्त्र को मरुकांतार नामक प्रदेश पर चला दिया। उस बाण के

ताप से उस प्रदेश का सारा जल सूख गया । तब राम ने उस देश को सब प्रकार से समृद्ध रहने का वर दिया ; तब से वह प्रदेश उसी प्रकार सुशोभित रहता है । इसके पश्चात् राम का शर फिर उनके तूणीर में लौट आया और समुद्र पूर्ववत् शांत हो गया ।

तब समुद्र ने अत्यत विनय के साथ राघव से कहा--'हे भूपाल, पूर्वकाल में आपके वंश के सगर-पुत्रों के द्वारा निर्मित होने के कारण मैं सागर नाम से विख्यात हुआ । इतना ही नहीं, मैं आपके वंश के लिए मान्य रहा हूँ । देव-दानव-युद्ध के समय आपके पिता मुझे अयोध्या ले गये थे और बड़े आदर-सत्कार के साथ वहाँ से विदा किया था । इस प्रकार, मेरा और आपका संबंध (बहुत पुराना) है । इसलिए हे राघवेन्द्र, आप सेतु बाँधिए और वानर सेना को उस पार ले जाइए ।"

२५. सेतु-बंधन के लिए राम का सुग्रीव को आज्ञा देना

तब रघुराम सूर्यनंदन को देखकर बोले--'हे सुग्रीव, सेतु बनाने के लिए शीघ्र श्रेष्ठ वानरों को भेजो ।' सुग्रीव ने बड़े उत्साह से योग्य वानरों को इस कार्य के लिए नियुक्त किया । अंगद, जांबवान्, नील, गज, गवाक्ष, पनस, नल, पावकनेत्र, तपन, तारु, गवय, ऋषभ, गंधमादन, शरभ, द्विविद, शतबलि, हरिरोमवक्ष, सुषेण, केसरी, ज्योतिर्मुख, दधिमुख, वेगदर्शी आदि श्रेष्ठ वानर-वीर समुद्र के निकट गये और शीघ्र गति से बड़े-बड़े वृक्षों तथा पर्वतों को ले जाकर समुद्र में डालने लगे । लेकिन, उनमें कोई भी जल पर तैरता नहीं था; सब जल में डूब जाते थे । तब सब वानर आश्चर्यचकित होकर राम के पास लौट आये और सारा वृत्तांत कह सुनाया । रामचंद्र भी आश्चर्यचकित होकर समुद्र से बोले--हे समुद्र, यह कैसी बात है कि इन कपि-वीरों के द्वारा फेंके गये वृक्ष तथा पर्वत पानी पर तैरते नहीं हैं ? यह सुनकर समुद्र बोला--'हे परमेश, वानर जिन वृक्षों को जल में फेंकते हैं, उनके समुद्र-तल में पहुँचते ही जलचर उन्हें शीघ्र निगल जाते हैं । समुद्र के तल में शतयोजन विशाल आकारवाला तिमि नामक मत्स्य रहता है, जो सभी जलचरों को खा जाता है । उस मत्स्य को तिमिंगिल निगल जाता है । हे देव, इस प्रकार एक दूसरे को निगल जानेवाले दीर्घ आकारवाले असंख्य मत्स्य समुद्र में रहते हैं ।"

इन बातों को सुनकर राम बोले--'हे समुद्र, ऐसी दशा में समुद्र पर सेतु बाँधने का क्या उपाय हो सकता है, बताओ ।' तब समुद्र बोला--'हे सूर्यवंश-तिलक, आप सेतु बाँधने के लिए नल को भेजिए । यह महान् विश्वकर्मा का पुत्र है । इसका उपाय वही जानता है । अपने पिता से उसने यह कला जान ली है । उसके सिवा और किसी से यह सेतु बाँधा नहीं जा सकेगा । इसका एक और कारण भी है, सुनिए । बहुत पहले की बात है कि यह अपनी बाल्यावस्था में विंध्याचल के निकटवर्त्ती वन में पशुकण्व नामक मुनि के समीप खेल रहा था । मुनि स्नान आदि अनुष्ठान करने के लिए चले गये, तो इसने मुनि की सभी पूजा-मूर्त्तियों को अपने मुँह से धक्का देकर समुद्र में फेंक दिया । जब मुनि वहाँ लौटकर आये, तब सारा वृत्तांत उन्हें मालूम हुआ । इस पर वे बहुत ही क्रुद्ध हुए, किन्तु बालक होने के कारण उसे दण्ड नहीं देना चाहते थे । मुनि अपनी खोई हुई वस्तुओं को पुनः प्राप्त करने का उपाय सोचने लगे । उस तपोधन ने अच्छी तरह सोच-विचारकर, अपनी

तपस्या की महिमा से इसको एक ऐसा वर दिया कि तृण से लेकर कोई भी वस्तु, जिसे यह बालक समुद्र में फेंकेगा, वह जल के ऊपर ही तैरने लगेगी। इस वरदान के फल-स्वरूप उस मुनि की देव-मूर्त्तियाँ जल के ऊपर तैरने लगीं। यही कारण है कि इसके हाथों से फेंके जाने पर पहाड़ भी जल पर तैरने लगेंगे। इस प्रकार मेरे जल पर सेतु बँध जायगा। हे धरणीश, आप शीघ्र ही नल को बुला भेजिए।'

२६. सेतु-बन्धन

तब रघुकुलोत्तम राम ने नल को बुलाया और बड़े आदर के साथ उसे देखकर बोले--'हे वानरवीर, हे धीर, समुद्र ने तुम्हारे पराक्रम का वृत्तांत मुझे सुनाया है। अब तुम अपने शौर्य का प्रदर्शन करते हुए समुद्र पर सेतु बाँधने में दत्तचित्त हो जाओ।' राम का आदेश सुनकर उसने हाथ जोड़कर राम भूपाल से कहा--'हे देव, इस संसार में जन्म लेने का फल आज मुझे प्राप्त हुआ। आप मुझे आज्ञा दीजिए। मैंने अपने पिता से सेतु बाँधने की कला जान ली है। मैं अपनी निपुणता का वर्णन आपके सामने क्या करूँ? आप मुझे आज्ञामात्र 'दीजिए। मैं तुरत समुद्र पर सेतु बाँधकर आपकी प्रशंसा प्राप्त करूँगा। आप मुझे अनुमति दीजिए।'

राम की आज्ञा प्राप्त करके नल सेतु बाँधने के लिए निकल पड़ा। उसके साथ ही सारी वानर-सेना पृथ्वी, आकाश तथा दिशाओं को अपने गर्जन की ध्वनि से गुंजायमान करते हुए, पर्वत तथा वृक्ष-समूह को लाकर सेतु बाँधने का उपक्रम करने लगी। सुग्रीव आधा योजन लंबा एक विशाल पर्वत को, पृथ्वी को कँपाते हुए उठा लाया, तो राम ने मन ही मन गणेश का स्मरण तथा वंदन करके उसे नल के हाथ में दिया। उस विशाल पर्वत को नल ने समुद्र में ऐसा प्रतिष्ठित किया मानों वह पर्वत उसके सेतु-बंधन-शक्ति का, राम की अनुपम कीर्त्ति का तथा विभीषण के राज्य का कीर्त्ति-स्तंभ हो।

तब वानर-समूह सभी दिशाओं में व्याप्त होकर पर्वतों तथा वृक्षों को सहज ही उखाड़कर आवश्यकता के अनुसार नल के हाथों में देने लगे। वे एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर बड़े वेग से कूद जाते, गरजते, एक साथ कई पहाड़ों को उखाड़कर नीचे गिरा देते, पहाड़ों को सिर पर रखे हुए हाव-भाव दिखाते, पहाड़ों को शीघ्र ले आने के लिए दूसरों को अपशब्द कहते, हँसते, लाये हुए पहाड़ों को एक दूसरे पर ऐसे सजाकर रखते कि वे लुढ़क न जायँ, दोनों हाथों से पहाड़ों को नारंगियों के समान उछालते, परिहास के लिए दूसरों के लाये हुए पहाड़ों को नीचे गिराकर हँसते, और पहाड़ों तथा वृक्षों को दूर से ही नल के पास तक फेंकने में स्पर्धा करते। इस प्रकार, वे विविध रीतियों से पहाड़ों तथा वृक्षों को ला-लाकर नल के हाथों में सौंपते थे। नल भी बड़ी तत्परता के साथ सेतु बाँधने में लगा हुआ था। एक भी पहाड़ या वृक्ष समुद्र में डूबता नहीं था। इस प्रकार, पहले दिन ही चौदह योजन लंबा पुल तैयार हो गया। समुद्र भी ऐसा क्षुब्ध हुआ, मानों वह सोच रहा हो कि हाय, मुझे यह कैसी विपत्ति का सामना करना पड़ रहा है।

२७. चन्द्रोदय का वर्णन

सूर्य अस्त हुआ। सेतु की रक्षा के लिए कुछ बलवान् वानरों को नियुक्त करके

सभी वानर समुद्र-तट पर स्थित अपने निवासों में लौट आये। आकाश में नक्षत्र ऐसे दिखाई पड़ने लगे, मानों सफल-मनोरथ राम के कीर्त्ति-पुष्प ही बिखर गये हों। तब पूर्ण कलानिधि, मन्मथ का श्वशुर, विकसित कुमुदों का बंधु, चक्रवाक-मिथुनों के साहचर्य को भंग करनेवाला, क्षीर-सागर का मंथन करने से प्राप्त नवनीत, शिवजी का शिरो-पुष्प, नक्षत्रों का निर्मल हास्य, चकोरों को आनन्द देनेवाला, विरही प्रेमियों के हृदयों को उत्तप्त करनेवाली ज्वाला, आकाश का आभूषण, चोरों के हृदय का शूल, समुद्र को उत्तेजित करनेवाला, हरि-हर-ब्रह्मा की आनंदपूर्ण सृष्टि तथा कमलों के शत्रु चन्द्र का उदय हुआ। चारों ओर चंद्रिका ऐसे व्याप्त हो गई, मानों क्षीर सागर ही उफनकर संसार में व्याप्त हो गया हो। सभी वानर निद्राहीन होकर सोचते रहे कि कब हम सेतु बाँधेंगे? कब हम लंका में पहुँचेंगे? दानवेन्द्र की मृत्यु कब होगी? सीताजी राम को कब प्राप्त होंगी? न जाने यह रात्रि कब बीतेगी? हाय, हम बहुत शीघ्र ही थककर अपने निवास लौट आये। हम काम से लौटे ही क्यों? हमें रात भर वहीं रहकर पुल बाँधने के कार्य में लगे रहना चाहिए था।

इस प्रकार सोचते हुए उन्होंने रात्रि बिताई और प्रातःकाल ही संध्या आदि नित्य-कर्मों से निवृत्त हो, सभी वानर एक दूसरे को पुकारते तथा एक दूसरे को उत्साहित करते हुए काम में लग गये। वे बड़े वेग से बड़े-बड़े पर्वतों तथा वृक्षों को अपनी अनुपम शक्ति से उखाड़कर ले आते थे और उन्हें समुद्र में डालते थे। सुग्रीव आकाश-पथ से उड़ते हुए गया और विंध्याचल का अर्द्ध-योजन लंबा एक शिखर तोड़ लाया और सुषेण के हाथों में सुपुर्द किया। सुषेण ने उसे नल के हाथों में दिया। अंगद ने अद्वितीय गति से जाकर दर्दुर नामक पर्वत को उठा लाया और उसे समुद्र में फेंका। नील ने मलय-पर्वत का शिखर, वृक्षों-सहित ले आकर नल के हाथों में दिया। द्विविद तथा मैन्द ने एक साथ बड़े-बड़े पर्वतों को ले आकर उस समुद्र में फेंका। गज, गवाक्ष, गंधमादन, शरभ तथा गवय आदि बाहुबली वीरों ने समस्त पृथ्वी को कँपाते हुए महेन्द्र पर्वत के शिखर ले आकर समुद्र में डाले। नल अपने हाथ से उन सब पर्वतों का स्पर्श कर देता, जिससे कि वे डूब न जायँ और बड़ी तत्परता से पुल बनता जाता था।

इस प्रकार, वानरों के लाये हुए वृक्षों तथा पर्वतों को नल एक हाथ से ग्रहण करके दूसरे हाथ से समुद्र में रखते हुए सेतु का निर्माण करता जाता था। यह देखकर हनुमान् को क्रोध आ गया। वह अपनी सारी शक्ति लगाकर सात योजन लंबा एक पर्वत उठा लाया। रामचन्द्र ने समझ लिया कि हनुमान् के क्रोध का कारण क्या है। उन्होंने नल को आज्ञा दी कि वह हनुमान् के लाये हुए उस पर्वत को दोनों हाथों से ग्रहण करें। नल ने वैसा ही किया। उस समय वानरों के गर्जनों की ध्वनि, उफननेवाले समुद्र का गंभीर घोष, पर्वतों तथा वृक्षों के परस्पर टकराने की ध्वनि, कपियों के एक दूसरे को बुलाने का शब्द, (पर्वतों के नीचे) दबने से निकलनेवाले प्राणियों का चीत्कार और विचलित दिग्गजों की चिंघाड़, इन सब की सम्मिलित ध्वनि आकाश तथा समस्त ब्रह्माण्ड की दिशाओं तक व्याप्त हो गई। वह ध्वनि क्षीर सागर की उस गंभीर ध्वनि के समान थी, जो मंदर पर्वत को मथानी बनाकर देवासुरों के (क्षीर सागर) मथने के समय उत्पन्न हुई थी।

जब मध्याह्न हुआ, तब वानर अपनी थकावट मिटाने के लिए वृक्षों की छाया में गये और मीठे फल खाते तथा ठंडा जल पीते हुए थोड़ी देर वहाँ विश्राम करते रहे। उसके पश्चात् वे अत्यधिक उत्साह से काम में लग गये। वे एक दूसरे से कहते—'तुम इन पहाड़ों को ले आओ; तुम उन पर्वतों को उखाड़कर ले आओ।' इस प्रकार, एक दूसरे को बढ़ावा देते हुए असंख्य वृक्षों, तथा पर्वतों को ला-लाकर वे नल को देते थे। कुछ वानर पर्वतों को सीधे समुद्र में ही गिरा देते थे, कुछ बीच रास्ते में ही दूसरों का बोझ अपने सिर पर ले लेते और कुछ अपना बोझ ले आकर नल के निकट रख देते थे। इस प्रकार, दूसरे दिन उन्होंने छब्बीस योजन लंबा पुल बनाया। तब सूर्यास्त हुआ।

तब सुग्रीव आदि वानर, रामचन्द्र को अपने कार्य की प्रगति का वृत्तांत सुनाकर समुद्र-तट पर अपने निवासों में लौट आये और रात को बड़ी शान्ति के साथ सो गये। दूसरे दिन प्रातः-काल ही उठकर वे बड़े उत्साह से सेतु बाँधने चले। वे एक दूसरे से स्पर्धा करके कहते जाते थे कि हम अकेले सभी पर्वतों को उठा लायेंगे। हम ही सब वृक्षों को उखाड़कर लायेंगे। इस प्रकार, होड़ लगाकर वे चारों दिशाओं में बिखर गये। कुछ लोग वृक्षों तथा पर्वतों को ले आकर समुद्र में डालते थे; कुछ निरीक्षण करते थे, कुछ पेड़ों की छाया में बैठकर सुस्ताते थे; कुछ लोग बने हुए सेतु की लंबाई नापते थे; कुछ लोग जहाँ-तहाँ बैठकर ऊँघते थे; कुछ लोग ठंडे जल से अपनी प्यास बुझाते थे। इस प्रकार, वे सब अत्यधिक क्लान्ति का अनुभव करने लगे। तब सूर्य, चन्द्र के समान शीतल प्रकाशित होने लगा। इन्द्र अमृत का फुहारा बरसाने लगा। पवन शीतल होकर चलने लगा। पुष्प-सौरभ आनंद पहुँचाने लगा। तब वानर अत्यंत उत्साह से वृक्षों तथा शैलों को लाकर समुद्र में डालने लगे। उनकी उद्धत गति से भीत होकर समुद्र के सभी जीव, अपने प्राण बचाने के लिए जहाँ-तहाँ भागते, पुनः-पुनः पानी के ऊपर सिर उठाकर देखते और मन ही मन सोचते कि कदाचित् पहले के समान ही कोई अमोघ अस्त्र हमारा संहार करने के लिए आ रहा है। फिर तुरन्त यह जानकर कि वानर समुद्र में सेतु बाँध रहे हैं, मन-ही-मन प्रसन्न होकर अपनी इच्छा से विचरण करने लगते। इस प्रकार, वानर-वीरों ने बड़ी तत्परता से उस दिन पचास योजन तक पुल बाँधा। इतने में सूर्यास्त हुआ।

तब सभी वानर-वीर भक्तियुक्त हो, संध्या-वंदन आदि कार्य से निवृत्त हो विचार करने लगे कि अब तो हमें केवल दस ही योजन लंबा पुल बाँधना शेष रह गया है। कल यह भी पूरा कर लेंगे। इस प्रकार, वार्तालाप करते हुए वे समुद्र-तट पर लौट आये और रात को सुख की नींद सोये। प्रातःकाल होते ही सभी वानर-नेता रामचन्द्र के पास गये और उन्हें बड़ी भक्ति से प्रणाम करके अपने कार्य की प्रगति सुनाई। फिर, वे मोदमग्न मन से फिर वृक्षों तथा महाशैलों को बड़ी शीघ्र गति से ला-लाकर नल के हाथों में देने लगे।

२८. गिलहरी की भक्ति

तब राम सेतु का निरीक्षण करने के उद्देश्य से सागरेश्वर, वानरेश्वर तथा दैत्य-नायक के साथ वहाँ गये और लक्ष्मण के कंधे पर अपना वाम कर टेके हुए, मंद-मंद

मुस्कान-रूपी चंद्रिका से दीप्त होनेवाले मुँह से विलसित होते हुए पुल पर खड़े होकर सेतु के निर्माण का कार्य देखते रहे। कपि सब बड़े-बड़े वृक्षों तथा पहाड़ों को बड़े साहस के साथ उखाड़कर ले आते थे और नल के हाथ में देते थे; नल उन्हें लेकर पुल में लगा देता था। इसी समय एक गिलहरी ने सोचा—'सेतु का निर्माण शीघ्र ही पूरा होना चाहिए इसलिए मैं भी इन बलवानों की सहायता करूँगी।' यों सोचकर उसने राम के चरण-कमलों का मन-ही-मन स्मरण करके, उनके समक्ष ही बड़ी भक्ति के साथ समुद्र में गोता लगाया, फिर वह समुद्र-तट पर बालू में लोट गई; उसके पश्चात् पुल पर आकर अपने शरीर पर लगी रेत को झटका देकर गिराने लगी। इसी प्रकार, वह बार-बार समुद्र में गोता लगाती, बालू में लोटती और तुरंत आकर पुल पर अपने शरीर पर लगी रेत को गिरा देती। राम बड़ी देर तक गिलहरी का यह कार्य देखते रहे। फिर, उन्होंने अपने अनुज को देखकर कहा—'हे लक्ष्मण, वहाँ देखो, एक गिलहरी मेरी भक्ति से प्रेरित होकर अपना शरीर जल से भिगो रही है। फिर, तट पर पहुँचकर रेत में लोटती है और फिर अपने शरीर में लगी रेत को पुल पर गिरा देती है। जहाँ श्रेष्ठ बलशाली वानरवीर वृक्षों तथा पर्वतों को लाकर गिराते हैं, वहाँ अपनी अल्प शक्ति का विचार किये बिना ही वह बड़े प्रेम से अपनी शक्ति के अनुरूप सहायता कर रही है।' तब लक्ष्मण ने कहा—'हे सूर्यवंश-तिलक, मैंने जान लिया कि जो आपके चरण-कमलों में अपना मन स्थापित करके एक तृण भी अर्पित करता है, आप उसे मेरु पर्वत के समान ही मान प्रदान करते हैं। इसलिए हे अनघ, आपकी भक्ति ही प्रधान है।' तब राम ने सुग्रीव से कहा—'उस गिलहरी को देखने के लिए मेरी बड़ी इच्छा हो रही है। उसे प्रेम से यहाँ ले आओ।' तब सुग्रीव उस गिलहरी को पकड़कर ले आया और राम के हाथों में दे दिया। राम ने कई प्रकार से उसकी प्रशंसा की और बड़े हर्ष से अपना सुंदर दाहिना हाथ उसकी पीठ पर फेरा। उसके पश्चात् उन्होंने लक्ष्मण, सागरेश्वर, विभीषण तथा सुग्रीव के समक्ष उसे छोड़ दिया। वह गिलहरी थोड़ी देर तक वहीं इधर-उधर विचरती रही। फिर, राम ने उसे चंदन, मंदार, चंपक, पूगीफल, पुन्नाग, सहकार आदि वृक्षों से युक्त सुंदर प्रदेश में छोड़ देने का आदेश दिया।

२९. सेतु को देखकर राम का हर्षित होना

तदनंतर हनुमान्, अंगद, नील, हरिरोम, आदि वानरश्रेष्ठों के साथ राम आश्चर्य-चकित करनेवाले उस विशाल सेतु पर खड़े होकर कहने लगे—'वाह! नल कितना निपुण है! उसने समुद्र के दूसरे छोर तक एक विशाल चबूतरे के समान इस पुल का निर्माण किया है। अपनी कला-निपुणता तथा अपने बाहुबल को प्रदर्शित करके उसने इस दीर्घ सेतु को बाँधा!'

नल द्वारा निर्मित वह सेतु शत योजन लंबा और दस योजन चौड़ा था और मलय पर्वत तथा सुवेलाद्रि का स्पर्श करता हुआ बहुत सुंदर दीख रहा था। समुद्र में उछल-कूद करनेवाले बड़े-बड़े मत्स्य-समूह-रूपी दीप्त नक्षत्रों तथा दोनों ओर व्याप्त नील समुद्र-रूपी नील गगन के साथ वह सेतु आकाश-गंगा के समान सुशोभित हो रहा था।

'राम भूपाल ने दया करके मुझे अभयदान दिया है'—ऐसा सोचकर मानों फूल उठनेवाले उस विशाल समुद्र को देखकर कपि भी (अपने कार्य की सफलता देख) आनंद से फूलने लगे। आकाश से देवता (रामचन्द्र के) पराक्रम के परिणाम को देखकर मन-ही-मन यह विचार करके हर्षित होने लगे कि, सच ही तो है, नीच व्यक्ति कभी मृदुवचनों से बात नहीं मानता। वह केवल दंड के भय से, वश में लाया जा सकता है। रामचन्द्र ने जब समुद्र से विनय के साथ प्रार्थना की, तब समुद्र ने उनकी उपेक्षा की। फिर, सूर्यवंश-तिलक ऐसा क्यों नहीं करें? जो व्यक्ति इस सेतु का स्मरण-मात्र करेगा, जो इस सेतु का दर्शन करेगा, उसे विजय, यश तथा पुण्य की प्राप्ति होगी। जबतक यह सेतु स्थिर रहेगा, जबतक यह समुद्र रहेगा, तबतक राघव की कीर्त्ति स्थिर रहेगी और दिन-प्रतिदिन बढ़ती हुई वह आनंद प्रदान करती रहेगी।

इस प्रकार, मन-ही-मन हर्ष-पुलकित होते हुए उन्होंने फूलों की वृष्टि की और देव-दुंदुभियाँ बजाई। तब रघुराम आनंदित होकर सेतु को देखते हुए बोले—'यह सेतु अनंतकाल तक नल के नाम पर विख्यात होते हुए सुशोभित रहेगा।' प्रभु के वचन सुनकर सभी कपिवीरों ने नल की प्रशंसा की। तब समुद्र, सेना के साथ राम को अपने निवास स्थान ले गया और अत्यंत भक्ति के साथ उन्हें दिव्यास्त्र, दिव्य वस्त्र, दिव्य भूषण तथा वज्र-कवच प्रदान किये और निष्कलंक चित्त से रामचंद्र को देखकर कहा—'हे राम भूपाल, आप राजपुत्र हैं। युद्ध के समय आपका यह मुनि-वेश क्यों? अब उचित यही है कि आप इन दिव्य-वस्त्र तथा आभरणों को धारण करें।'

३०. राघवों का सुवेलाद्रि पर पहुँचना

तब राम-लक्ष्मण ने दिव्य वस्त्राभरणों, चंदन तथा पुष्प-मालाओं को धारण किया और रविचंद्र के समान दीप्तिमान् होने लगे। समुद्र ने उन्हें आशीर्वाद देकर विदा किया। तब राम-लक्ष्मण हनुमान् तथा नील के कंधों पर बैठकर (सुवेलाद्रि के लिए) रवाना हुए। सभी देवता उनकी स्तुति करने लगे, समस्त लोक उनकी जयजयकार करने लगा। रामचंद्र ने समुद्र को अनुमति देकर उसको घर भेज दिया और अपने अनुज के साथ लंका की ओर मुँह करके सेतु के मार्ग से ऐसे रवाना हुए, मानों रमणीय राक्षस-लक्ष्मी के सीमंत पर ही चरण धरकर चल रहे हों। विभीषण गदा हाथ में लिये हुए कपि-सेना के आगे-आगे चलने लगा। निदान पराक्रमी राम अपने मंत्रियों के साथ सुवेलाद्रि पर पहुँच गये और वहाँ शिविर डाल दिये। राम के पीछे-पीछे उनकी विशाल वानर-सेना चली। कुछ लोग सेतु के किनारे-किनारे चल रहे थे, तो कुछ सेतु के बीचोबीच जा रहे थे; कुछ वानर बड़े कौतुक के साथ आकाश-मार्ग से जा रहे थे, तो कुछ झुंड बनाकर जा रहे थे; कुछ समुद्र में तैरते हुए जा रहे थे, तो कुछ अपने समूह से बिछुड़कर आगे पीछे-दौड़ रहे थे। उस सेना के हुंकार तथा गर्जनों की ध्वनि ने समुद्र-घोष को भी दबा दिया। उस ध्वनि के प्रभाव से आकाश-पाताल तथा दिशाएँ कंपायमान होने लगीं। इस प्रकार, राघव ने अपनी सेना के साथ सेतु की यात्रा पूरी करके सुवेलाद्रि पर पड़ाव डाल दिया। अपने गुप्तचरों के द्वारा राम के आगमन का वृत्तांत जानकर रावण ने समस्त दानवों को अपनी राज-सभा में बुलाया और स्वयं नवरत्न-खचित सिंहासन पर आसीन हुआ।

३१. कैकसी का हितोपदेश

उस समय कैकसी सभा में आई। उसे देखकर रावण ने बड़े आदर के साथ उठकर उसे प्रणाम किया और योग्य आसन पर उसे बिठाकर स्वयं भी बैठा। फिर, अत्यंत विनय से उससे कहा—'हे माता, आप तो कभी राज-सभा में नहीं आतीं। आज आपके आगमन का क्या कारण है ? कृपा करके बतलाइए।'

तब उसने कहा—"हे पुत्र, मैं जितना जानती हूँ उसे कहूँगी। ध्यान से सुनो। राम की पत्नी पर आसक्त होकर तुम उन्हें धोखे से हरकर ले आये हो। इसीलिए, आज ऐसी भयंकर घटनाएँ घट रही हैं। स्वयं विष्णु ने आर्यों के रक्षणार्थ दशरथ का पुत्र होकर जन्म लिया, ताड़का का संहार किया, कौशिक के यज्ञ की रक्षा की, अपने चरणों की धूलि से शिला को स्त्री के रूप में बदल दिया, बड़े हर्ष से शिव-धनु का भंग किया, जानकी से विवाह किया, परशुराम के गर्व को तोड़ा, अपने पिता की आज्ञा मानकर लक्ष्मण तथा जानकी के साथ वनवास के लिए आया, वनों में रहनेवाले मुनियों को अभयदान दिया, तुम्हारी बहन के नाक-कान काट दिये, खर-दूषण का संहार किया, मारीच का वध किया, अपने भयंकर अस्त्र से वालि को गिरा दिया, सूर्यनंदन को अपना सेवक बना लिया, अपने बाण के अग्र भाग पर उपस्थित होने के लिए समुद्र को विवश किया, कपियों से समुद्र पर पुल बँधवाया और अब देवताओं की रक्षा करने तथा असुरों को दण्ड देने के उद्देश्य से सुवेलाद्रि पर आकर ठहरा हुआ है। उस दानवांतक (राम) ने इस पृथ्वी पर मत्स्य, कूर्म, वराह, सिंह, वटु, (भार्गव) राम, तथा (दशरथ-पुत्र) राम के रूप धारण किये हैं। वे स्वयं आदिनारायण हैं। उनकी महिमा का वर्णन करना किसी के लिए संभव नहीं है। उनकी आज्ञा से ही वायुपुत्र ने समुद्र पार किया, जानकी को राम का संदेश सुनाया, यक्ष आदि राक्षसवीरों का संहार किया और लंका-दहन करके अपने प्रभु के पास लौट गया। तुम उस पवनपुत्र को ही जीत नहीं सके। तब उसके प्रभु को जीतना क्या, तुम्हारे वश की बात है ? तुम्हारे पिता ने एक दिव्य रहस्य मुझसे कहा था। उसे मैं तुम्हें सुनाती हूँ। ध्यान से सुनो।

"एक बार ब्रह्मा तथा इन्द्र, मुनि, यक्ष तथा गंधर्व-नेताओं को साथ लेकर विष्णु भगवान् के दर्शनार्थ गये और उनसे निवेदन किया—'हे प्रभो, रावण तथा कुंभकर्ण के अत्याचार असह्य हो गये हैं। कृपया उनसे आप हमारी रक्षा करें।' तब उन्हें देखकर कमलनाभ ने कहा—'मैं सूर्यवंश में जन्म लेकर युद्ध में सहज ही इन राक्षसों का संहार करूँगा।' फिर, उन्होंने सभी देवताओं को देखकर कहा—'तुम वानरों का रूप धारण कर पृथ्वी पर जन्म धारण करना और युद्ध में मेरी सहायता करना।'

"यह वृत्तांत तुम्हारे पिता ने मुझे बताया था। वह विष्णु ही ये राम हैं। लक्ष्मी ही उनकी पत्नी है। देवता ही वानर हैं। उन्हें तुम युद्ध में जीत नहीं सकोगे। अतः, तुम अपनी दुर्बुद्धि तज दो और उस भूसुता, जगन्माता, निगमों द्वारा प्रशंसित, निखिल-लोक-विख्यात, अमित-गुणोपेत, पवित्र सीता को राम के चरणों में सौंप दो। पापशोषक, धीर, सतत सुभाषी तथा आर्य-पक्षपाती विभीषण को लंका का राज-तिलक कर दो और राम

की शरण की याचना करो । वे शरणागत शत्रु की भी उसी प्रकार रक्षा करते हैं, जैसे (उन्होंने) गजेन्द्र की रक्षा की थी ।"

कैकसी के हितोपदेश को सुनकर रावण क्रुद्ध होकर बोला—'हे माता, मैंने पचास लाख वर्ष तक अबाध-गति से राज्य किया है और सब प्रकार के सुखों का अनुभव किया है। मैं स्वप्न में भी किसी से नहीं डरता । इन नर और वानरों की शक्ति ही कितनी है ? क्या, ये देवताओं से भी अधिक शक्तिशाली हैं ? मैं अवश्य इन्हें जीत लूँगा । यदि मैं उन्हें जीत नहीं सका, तो राम के बाणों से मारा जाऊँगा। किन्तु, इन नीच मानवों के सामने अपना सिर नहीं झुकाऊँगा । यह सत्य है । हे माता, आप ऐसा उपदेश मत दीजिए आप रनवास में लौट जाइए । आप लाख कहें, तो भी मैं सीता को नहीं लौटा सकता ।' कैकसी इस प्रकार कहनेवाले अपने पुत्र की निंदा करती हुई अपने अंतःपुर में चली गई और विचार करने लगी, 'होनहार बलवान् है, वह किसी भी प्रकार से टाला नहीं जा सकता ।' यों विचार करके वह सतत धर्माचरण में लीन रहती हुई अपना समय व्यतीत करने लगी ।

रावण ने भेरियों तथा नगाड़ों के अत्यधिक निनाद के द्वारा सारी राक्षस-सेना को एकत्रित किया और आयुधों से सज्जित अपने प्रताप से दीप्त, मन्त्रियों को देखकर अत्यंत भयंकर रूप धारण करके, आँखों से अग्नि-वर्षा करते हुए कहने लगा—'रामचन्द्र सेतु को बाँधकर अत्यधिक शौर्य के साथ सुवेलाद्रि पर आकर ठहरा हुआ है । जब मेरा शत्रु मेरे ऊपर आक्रमण करने के लिए आ रहा है, तब तुम्हारा इस प्रकार उपेक्षा करके सोते रहना, क्या उचित है ? पर तुम्हें क्यों दोष दूँ ? तुम मंत्री हो, ऐसा सोचकर तुम पर विश्वास करना मेरी ही भूल है । क्या, तुम सोचते हो कि तुम्हारे उपेक्षा करने से मेरी हानि होगी। ऐसा कभी नहीं होगा । साम, दान, भेद आदि उपायों से यदि मैं उसे अपने वश में ला नहीं सकता, तो मैं राम के साथ घोर युद्ध करूँगा ।'

रावण ने जब ऐसा कहा, तब सभी राक्षस लज्जित होकर सिर झुकाये चुप हो रहे । जब रावण ने उन्हें डाँटकर कहा कि तुम लोग चुप क्यों हो, तब इन्द्रजीत अपना शौर्य दिखाते हुए कहने लगा—"हे देव, समस्त देवताओं पर विजय पानेवाले आपको इन राम-लक्ष्मण जैसे अकिंचनों के द्वारा कौन-सी हानि पहुँच सकती है ? आप चिंता मत कीजिए । मैं बल, साहस तथा शौर्य से सपन्न हूँ । क्या, आप नहीं जानते कि मैंने इन्द्र को नाग-पाश से बाँधकर उसकी कैसी दुर्गति कर दी थी ? भीषण रण में कालकेय आदि राक्षसवीरों को क्या मैंने परास्त नहीं किया था ? तब हे दनुजेश, साधारण मानव, कृश, तपस्वी तथा दुर्बल दशरथ-पुत्रों को युद्ध में मार डालना मेरे लिए कौन बड़ी बात है ? आप संदेह मत कीजिए; मैं अवश्य उन्हें युद्ध में मार डालूँगा ।"

तब अतिकाय नामक राक्षस ने राक्षसराज से कहा—'हे दानवनाथ, जो राजा नीतिवान् होकर, दूसरों की संपत्ति की अभिलाषा किये बिना समस्त संसार की प्रशंसा प्राप्त करते हुए, जीवन-यापन करता है, वही सदा राज्य-पालन करेगा । हे दनुजेश्वर, सूर्य-कुल-तिलक राम ने तुम्हारा क्या अपकार किया है ? उनकी स्त्री पर आपकी आसक्ति

क्यों हुई ? आपका तथा आपकी लंका का सर्वनाश करने के लिए इन राक्षसों ने निश्चय किया है । उचित यही है कि आप सीता को राघव के हाथों में सौंप दें और बुद्धिमान् होकर इस संसार में सम्मान प्राप्त करते रहें ।'

इस प्रकार, कई रीतियों से अतिकाय ने रावण से हित-वचन कहे; किन्तु रावण ने उसकी बातों की जरा भी परवाह नहीं की । उसने बड़े साहस के साथ शुक तथा सारण को देखकर अपना शौर्य दरसाते हुए कहा—'यह बड़ी विचित्र बात है कि एक मानव समुद्र पर पुल बाँधे । तुम लोग कहते हो कि राम ने ऐसे पुल का निर्माण किया है । इसलिए तुम दोनों उसकी सेना में प्रवेश करके उसकी शक्ति का पता लगाकर आओ ।'

३२. शुक तथा सारण का राम की सैन्य-शक्ति का परिचय पाना

तब उन दोनों ने वानरों का वेश धारण करके जंगलों, उपवनों तथा पर्वतों में सेतु के निकट और समुद्र के उस पार के प्रदेशों तथा गुफाओं में विचरण किया और सब स्थानों में व्याप्त वानर-सेना को देख आश्चर्य से अपने सिर कँपाने लगे । फिर, वे आश्चर्य-पुलकित गात्र से वानर-सेना के भीतर प्रवेश करने लगे । उस समय विभीषण ने उन्हें पहचान लिया और उन्हें बंदी बनाकर रामचद्र के सम्मुख उपस्थित करके कहा—'हे राजन्, ये दोनों रावण के मंत्री हैं । वानरों के वेश में यहाँ आये हैं । इनक नाम शुक तथा सारण हैं । वे हमारी सेना में प्रवेश करके हमारी सभी बातों का परिचय प्राप्त करके जाना चाहते हैं ।'

तब उन गुप्तचरों ने भय से अत्यधिक आक्रान्त होकर हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा—'हे देव, हम रावण के भेजे हुए गुप्तचर हैं । विभीषण ने जो कहा, वह सत्य है । रावण ने आज्ञा दी है कि हम आपकी सेना का पता लगाकर आयें । इसलिए हम आये हैं ।'

तब राघव ने हँसते हुए कहा—'तुम रावण के मंत्री हो; इसलिए तुम्हें मार डालना ही उचित है । किन्तु मैं तुम्हें मारना नहीं चाहता । तुम्हें मारने से हमारा क्या हित हो सकता है ? तुम यहाँ की सभी बातें विना किसी अपवाद के देख लो और शीघ्र जाकर अपने प्रभु रावण से सारी बातें कहो । उससे यह भी कहना कि जिस शक्ति के भरोसे वह सीता को चुराकर लाया है, उस शक्ति का प्रदर्शन करने के लिए यहाँ आये । उससे कहना कि मैं युद्ध में लंका के सभी राक्षसों का तथा गर्व से फूलनेवाले उसका भी वध करूँगा । अब तुम जाओ ।'

तब उन दोनों ने विभीषण के साथ जाकर समस्त वानर-सैन्य की शक्ति का पता लगा लिया और तुरत रावण के पास जाकर बोले—'हे देव, आपकी आज्ञा के अनुसार हम वानर-सेना के निकट जाकर उसको देखने लगे, तो आपके अनुज विभीषण ने हमें पहचान लिया और हमारा वध करने के उद्देश्य से हमें बंदी बनाकर राम के सामने उपस्थित किया । लेकिन रामचन्द्र दयानिधि हैं; इसलिए उन्होंने हमारे वध की आज्ञा नहीं दी । हे लंकेश्वर, आपका, आपकी लंका का तथा समस्त राक्षसों का नाश करने के लिए एक सौमित्र ही पर्याप्त हैं । अब राम के शौर्य का वर्णन क्या करें ? हे देव, हमने सेतु को देखा । वह शत योजन लंबा और दस योजन चौड़ा है ! ऐसे विशाल सेतु-भर में वानर

सेना ठहरी हुई है । उस सेना की गणना करना असंभव है । जहाँ देखो वहाँ वानर-सेना ही है । कुछ सेना पर्वतों पर ठहरी हुई है, कुछ सेना अभी ठहरने की व्यवस्था में ही लगी है, कुछ सेना ठहने के लिए स्थान खोज रही है, कुछ सेना समुद्र के उस पार है और कुछ सेना वहाँ से निकलकर इस पार आ रही है । हे प्रभो, इतनी विशाल सेना को देखकर मन में भय उत्पन्न होता है । एक एक स्थान पर ठहरी हुई सेना की गणना करके लिखना ब्रह्मा के लिए भी असंभव है । इसलिए हे दानवेन्द्र, आप राम के दर्शन करके उन्हें सीता को लौटा दीजिए और आनंद से रहिए ।"

उनकी ऐसी बातों को सुनने की इच्छा न रखनेवाला रावण अत्यधिक रोष से बोला––'चाहे देवता तथा गंधर्व ही मेरे ऊपर आक्रमण करने आवें, तो भी मैं सीता को नहीं छोड़ूँगा । तुम ऐसे कायर क्यों बनते हो ? कदाचित् वानरों ने तुम्हें पकड़कर अच्छी तरह पीटा है; इसलिए तुम भयभीत होकर भाग आये हो । डरो मत, वे कपि तुम्हारा पीछा करते हुए नहीं आ सकेंगे ।' इस प्रकार कहते हुए रावण शुक तथा सारण के साथ अपने ऊँचे सौध पर चढ़कर उस विशाल कपि-सेना को देखकर आश्चर्यचकित हुआ ।

उसके पश्चात् उसने शुक-सारण को देखकर पूछा––'इस विशाल कपि-सेना का संचालन करते हुए कौन आगे-आगे चलेगा ? सावधानी के साथ उसके पीछे-पीछे कौन चलेगा ? इनमें कौन शूर है ? कौन चतुर है ? सूर्यवंशी राम किसके परामर्श से काम करता है ? किसके साथ राम अपने मन की बात करता है ? सेना किसकी आज्ञा के अधीन है ? दिन-रात इस सेना की रक्षा करनेवाला कौन है ? इस सेना में सामंत कौन है ? इसमें सुग्रीव कौन है ? राम कौन है ? लक्ष्मण कौन है ? और, अंगद कौन है ? उन्हें दिखाने के पश्चात् उनके शौर्य के बारे में कहो । मुझे क्रोध नहीं आयगा ।'

३३. सारण का रावण को कपियों का परिचय देना

तब सारण बड़ी कुशलता के साथ इस प्रकार कहने लगा––"हे देव, पुलिंद नदी-तटवर्त्ती सूर्यपुत्र, इस पृथ्वी पर महान् बली है । उसीने इस लंका को उखाड़ दिया था और यहाँ भयंकर चीत्कार व्याप्त कर दिया था । वही एक लाख श्रेष्ठ कपि-वीरों के साथ वानर-सेना के अग्र भाग में रहता है । हे देव, नील एक अतिबलशाली है और वही राम का सेनाध्यक्ष है । अपनी पूँछ को बड़े गर्व से हिलाते हुए समस्त दिशाओं को कंपित करने-वाला हजार पद्म तथा एक शंख उत्तम वानर-सेना के साथ, पर्वत के समान दिखाई पड़ने वाला वालिपुत्र अंगद है । वह वालि की अपेक्षा अधिक बलवान् है । वालि-पुत्र के उस ओर रहनेवाला नल है, जो चन्दनाद्रि का स्वामी है और विख्यात विश्वकर्मा का पुत्र है । उसीने एक सहस्र करोड़ और अस्सी लाख वानरों की सहायता से समुद्र पर पुल का निर्माण किया है और समस्त वानर-सेना को समुद्र पार कराया है। वह अकेले ही अपनी विशाल सेना के साथ समस्त लंका को जीतना चाहता है । हे राक्षसराज, रविपुत्र के सामने ही रमणीय कांति से रजताद्रि की समता करनेवाले श्वेत नामक वानर को देखिए । वही समस्त सेना की व्यवस्था करता है । हे लंकेश वह देखिए, सहस्र करोड़ वानर-वीरों को साथ लिये हुए वेगवान् नामक वानर हमारी ओर देख रहा है। वह सुग्रीव का मित्र है

और विंध्य, सह्य तथा सुदर्शन आदि मुख्य पर्वतों का स्वामी है। हे देव, उस रंभ नामक कपिलवर्ण तथा दीर्घ केशवाले वानर को देखिए, जो सिंह-शावक के समान दीख रहा है। वह गंभीरता का समुद्र है और उसकी सेवा में एक सौ तीस लाख वानरों की सेना है। हे अमरवैरी, उस कुमुद नामक वानर को देखिए, जो संकोचनाचल का अधिपति है और दस करोड़ वानर-सेना की सेवा प्राप्त करते हुए अपने बल के मद में फूल रहा है। हे देव, उस शरभ नामक वानर को देखिए, जो रम्य शैल (सालेय पर्वत) का राजा है; जो विशाल वक्ष तथा उरु-प्रदेश से सुशोभित हो रहा है और जो चालीस लाख तथा चार सहस्र वानरों के साथ लंका पर आक्रमण करने की प्रतीक्षा कर रहा है।

"हे दानवेन्द्र, वह देखिए पारियात्राचल का अधिपति, भयंकर-रण-कुशल पनस है, जिसकी सेवा में सतत पचास लाख वानर रहते हैं। सिंदूर की लालिमा को भी मात करने-वाली शरीर की कांति से विलसित महा शक्तिशाली क्रोधन नामक उस वानर को देखिए, जो लंका की ओर दृष्टि गड़ाये सोच रहा है कि इस लंका का नाश करने के लिए मैं अकेले पर्याप्त हूँ। उसकी सेवा में साठ लाख कपि रहते हैं। हे देव, उस गवय नामक वानर को देखिए, जो विविध शौर्यों से युक्त हो अपने सत्तर लाख बलवान् कपि-श्रेष्ठों की सेना के साथ शोभा दे रहा है। ये सभी वानर कामरूपी हैं, भयंकर शक्ति से संपन्न हैं, युद्ध में निपुण हैं और देव-दानवों के लिए असाध्य हैं। ये सभी सेना के अग्र-भाग के वीर हैं। हे दानवनाथ, अब सेना के मध्य भाग में रहने वाले वीरों का विवरण सुनिए।

"हे दैत्यनाथ, वहाँ पर उस हर नामक वानर को देखिए। विशाल बाहु, तथा विविध वर्णवाले असंख्य सहस्र वानर उसकी सेवा में लगे हुए हैं। वह अकेले आपके साथ युद्ध करने की प्रतीक्षा करता है। उसके निकट ही जांबवान् के अनुज धूम्र को देखिए। अत्यंत नील मेघों के बीच में इन्द्र के समान शोभायमान होनेवाला वह नर्मदा नदी के तट पर स्थित ऋक्षनग का अधिपति है। वह महान् बलशाली तथा शूर है और असंख्य समर्थ भालू उसकी सेवा में रहते हैं। उस जांबवान् को देखिए। नीले पर्वत के समान शरीर धारण किये हुए एक करोड़ भालू उसकी सेवा में लगे हुए हैं। पूर्व काल में देवासुर युद्ध के समय अपने युद्ध-कौशल का परिचय देकर उसीने इन्द्र से कितने ही वर प्राप्त किये थे। युद्ध में वह धूर्जटि (शिव) से भी परास्त नहीं होता। उस धुरंधर योद्धा सन्नादन को देखिए। उसका एक-एक पार्श्व भाग एक-एक योजन लंबा है और उसका शरीर भी उतना ही दीर्घ है। हे देव-शत्रु, उसकी सेवा में एक पद्म वानर हैं। वह वानरों के पिता-मह-जैसा है और युद्ध में उसने इन्द्र को भी जीत लिया है। उस इंद्रजालक नामक वानर को देखिए। वह नील का अनुज है। उसने अग्निदेव से एक गंधर्व-युवती के गर्भ से जन्म लिया है और जंबु नदी-तीर पर स्थित द्रोण पर्वत का अधिपति है। उसकी सेवा में एक सहस्र करोड़ कपि हैं और वह महान् शूर है। वहाँ देखिए, ग्रथन नामक वीर वानर अपनी एक सहस्र करोड़ वानर-सेना के साथ ठहरा हुआ है। वह अति बलशाली है और गंगा नदी-तट पर विचरण करते हुए शिशिराद्रि का पालन करता है। हे देव, वहाँ पर गज नामक वानर को देखिए, जो दस करोड़ कपियों की सेना के साथ दीख रहा है।

हे इन्द्रारि, यम के सदृश करोड़ों वानरों की सेवा प्राप्त करते हुए रहनेवाले उस गवाक्ष को देखिए, वह युद्ध करने के लिए अत्यधिक उत्साह प्रकट कर रहा है। उस केसरी नामक वानर को देखिए, जो उत्तुंग कांचन पर्वत का स्वामी है। उसके पास, धवल वर्णवाले, उद्दण्ड पराक्रमी, सूर्य-सम तेजस्वी, तथा रण में भयंकर रूप धारण करनेवाले विविध रूपों के दस सहस्र प्रख्यात वानर हैं। हे देवताओं के शत्रु, उस अद्वितीय पराक्रमी, महान् बलशाली, शतबली को देखिए, जो राम की कृपा प्राप्त करके उनके लिए अपने प्राण त्यागने के लिए सतत सन्नद्ध रहता है। उसकी सेवा में सिंह-शावक को मात करनेवाले विशाल पिंगल-नेत्रवाले सहस्र करोड़ वानर हैं। वही सुषेण है, जो अपने समान सहस्र करोड़ वानरों को साथ लिये हुए युद्ध के लिए तैयार खड़ा है। वह उल्कामुख है, जो दस करोड़ वानरों के साथ ठहरा हुआ है। यहाँ देखिए, यह ऋषभ है, और इसकी वानर-सेना दस करोड़ की है। वह देखिए, वही विशाल भुजाओंवाला गंधमादन है, जिसके अधीन सौ करोड़ वानर हैं। हे देव, आप ध्यान रखें कि सुग्रीव की निजी सेना ही इक्कीस सहस्र शंख और दो हजार एक सौ सैनिकों की है। ऐसे वानर-वीरों की सेना किष्किंधा में रहती थी और ये सभी वानर देव तथा गंधर्वों से उत्पन्न हुए हैं। वे कामरूपी हैं और सतत समर करने की प्रबल इच्छा से प्रेरित रहते हैं। उन्होंने ब्रह्मा से अमृत-दान प्राप्त किया है, अतः देवताओं से भी श्रेष्ठ हैं। इनके अतिरिक्त मैन्द तथा द्विविद नामक अद्वितीय वीर दस सहस्र करोड़ सेना के साथ समुद्र के उस पार ठहरे हुए हैं। हे लंकेन्द्र, वहाँ सुमुख तथा विमुख नामक वीरों को देखिए। ये मृत्यु के ही पुत्र हैं और मृत्यु से भी अधिक शक्तिशाली हैं। हे दनुजेन्द्र, उस अद्वितीय वीर वानर को देखिए, जिसकी सेवा असंख्य वानर भृत्यों के समान करते हैं। उसी ने समुद्र को लाँघकर, आपकी तथा आपकी सेना की उपेक्षा करके जानकी के दर्शन करके अशोक-वन को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था और आपके प्रिय पुत्र को मारकर लंकिनी को परास्त किया था। आप जानते ही हैं कि वही वायुपुत्र हनुमान् हैं। एक और विचित्र बात सुनिए। बाल्यावस्था में उसने एक दिन पूर्वदिशा में उदित होनेवाले सूर्यबिंब को देखकर, अत्यधिक भूखा रहने के कारण उसे फल समझकर, उसे पकड़ने के उद्देश्य से आकाश में तीन सहस्र योजन तक उड़ा था और बड़ी तीव्र गति के साथ उदयाद्रि पर गिर पड़ा था। उस समय उसकी हनु (दाढ़ की हड्डी) टूट गई; इसलिए उसका नाम हनुमान् पड़ गया है। हे देव, ये सभी वानर समस्त संसार को बहुत ही शीघ्र जीतने में समर्थ हैं। ऐसे श्रेष्ठ कपियों की संख्या की गणना ही असंभव है।"

३४. शुक का रावण को राम का पराक्रम सुनाना

इस प्रकार सारण के कहने के पश्चात् विवेक-संपन्न शुक ने रावण से कहा—"हे असुरेन्द्र, इस विशाल सेना के प्राण स्वरूप राम के तेज का वर्णन करूँगा, आप सुनिए। रामचन्द्र नील मणियों की कांति से विलसित हैं; कमलों के सदृश नयनवाले हैं; विमल कीर्त्ति से संपन्न हैं, सत्य के आकार हैं, सतत धर्माचरण करनेवाले हैं, शस्त्रास्त्र-विद्या-विशारद हैं; अखिल शास्त्रज्ञ हैं, सुकीर्त्ति-श्री से संपन्न हैं, सूर्य उनके पितामह हैं, इसका भी विचार किये विना उनको भी उत्तप्त करने का प्रताप रखनेवाले वीर हैं, अपने शरों से

आकाश को भी चूर-चूर कर देनेवाले हैं तथा पृथ्वी को भी टुकड़े-टुकड़े करने की क्षमता रखते हैं। हे दशकंठ, उनका (क्रोध) शत्रुओं के लिए साक्षात् मृत्यु है। चूंकि, आप सीता को ले आये; इसलिए वे युद्ध करने के लिए आये हैं, अन्यथा वे शरणागतों के, वज्र के पिंजड़े के समान, रक्षक हैं, वे शूरों के भी शूर हैं। शरण की याचना किये विना उनके क्रोध का अंत नहीं होता। आपके ऊपर क्रोध करने के कारण ही उनकी आँखों में लालिमा छाई हुई है। वे ही त्रिभुवनों के शासक सूर्यकुल-तिलक (राम) हैं।

"वह देखिए, उनके भाई और शुद्ध स्वर्ण-वर्णवाले राम के अनुज लक्ष्मण धनुष धारण किये खड़े हैं; अत्यंत आग्रह के साथ सप्त भुवनों को परास्त करने की शक्ति से संपन्न हैं। वे राम के प्राणाधार के समान हैं और उद्दण्ड पराक्रमी हैं। हे असुरेन्द्र, उस राजा राम के पीछे आपके अनुज हैं, जो आपको युद्ध में परास्त करके लंका पर राज्य करने के उद्देश्य से राम भूपाल के द्वारा राज्याभिषिक्त होकर बड़े आनंद से फूल रहे हैं। वे परम धर्मानुसरण करनेवाले तथा नीतिवान् विभीषण हैं। हे देव, लक्ष्मण तथा विभीषण के निकट ही जो खड़ा है, वह सुग्रीव है, जो सर्वमान्य गुणों से संपन्न हो किष्किन्धा का राज्य-भार वहन कर रहा है। वह महनीय लक्ष्मी से संपन्न होकर स्वर्ण-माला धारण किये हुए है। वह विशालबाहु तथा अत्यंत भयंकर शौर्य से विलसित है। उसकी सेना के बारे में सुनिए। (कहते हैं कि) शतकोटि सहस्र संख्या का एक शंख होता है। ऐसे लाख शंखों का एक महाबृंद होता है और ऐसे लाख महाबृंदों का एक पद्म होता है। एक लाख पद्मों का महापद्म होता है और लाख महापद्मों का एक खर्व होता है। लाख खर्वों का एक महाखर्व होता है, लाख महाखर्व एक समुद्र कहलाते हैं और लाख समुद्र महासमुद्र कहलाते हैं। लाख महासमुद्र, महदाख्य कहलाते हैं। वालि के अनुज के पास एक करोड़ महदाख्य सेना है। अब आप ही स्वयं विचार करके देख लें कि उसकी सेना कितनी बड़ी है। उसकी सेना का आदि तथा अंत जानना असंभव है। उसके सामर्थ्य की समता और कोई सेना नहीं कर सकती। वह सेना दुर्वार है। इसलिए हे देव, उस सेना से भिड़कर युद्ध करना असंभव है।"

शुक ने जब इस प्रकार कहा, तब रावण ने एक बार फिर सारी वानर-सेना का पर्यवेक्षण किया और गर्भ में वडवानल प्रज्ज्वलित होनेवाले समुद्र की भाँति मन-ही-मन भयभीत हुआ, किन्तु अपने भय को दबाकर, निर्भीक की भाँति क्रोध प्रकट करते हुए कहा—'अपने स्वामी की इच्छा के विरुद्ध, कोई मंत्री मंत्रणा देकर उसको विचलित करे, यह कैसी नीति है? तुम विना विचार किये, मेरे सामने मेरे विरुद्ध इस प्रकार की बातें कह रहे हो। क्या, यह तुम्हारे लिए उचित है?' रावण के इतना कहते ही शुक तथा सारण भयभीत हो, अपना सिर नीचा किये वहाँ से चले गये।

३५. राम के माया-धनुष तथा सिर दिखाकर सीता को भयभीत करना

उनके चले जाने के पश्चात् रावण अपने अंतरंग सचिवों के साथ बड़ी देर तक मंत्रणा करता रहा और फिर उन्हें विदा करके दुर्वार हो, विद्युज्जिह्व नामक एक राक्षस को बुलाकर कहा—'तुम अपनी माया से राम के सिर तथा धनुष का निर्माण करके शीघ्र ले आओ।' वह तुरंत गया और अपनी सारी निपुणता तथा माया से बनावटी सिर तथा

धनुष का निर्माण करके ले आया। रावण ने उसे अच्छा पुरस्कार दिया। वहाँ से रमणीय अशोकवन में जाकर दनुजेश्वर ने सीता को देखा। उस समय सीता सिर झुकाये अत्यंत चिंता में पड़ी, कातर दृष्टि से पृथ्वी को इस प्रकार देख रही थीं, मानों वसुंधरा को कोस रहीं हों कि हे माता, तुम मुझे इतना अधिक दुःख क्यों दे रहीं हो ? उनकी आँखों से अविरल अश्रुधारा इस प्रकार बह रही थी, मानों उनके चित्त का क्रोध भीतर न रह सकने के कारण धाराओं के रूप में बह रहा हो। उनका शरीर ऐसा धूलि-धूसरित था, मानों पृथ्वी यह कहती हुई उनसे लिपट गई हो कि हे पुत्री, यह कैसा दुर्भाग्य है कि तुम ऐसी दुरवस्था को प्राप्त हुई हो। वे इस प्रकार बैठी हुई थीं, मानों रावण के क्रूर कर्म ही देवता का रूप धारण कर यह निश्चय करके बैठा हो कि हे रावण, मैं तुम्हारे तथा तुम्हारे राक्षस-कुल का सर्वनाश करके ही यहाँ से उठूँगा। वे बार-बार ऐसे दीर्घ निःश्वास छोड़ रही थीं, मानों राक्षस-रूपी नीरस वृक्षों को विध्वस्त करने में प्रयत्नशील प्रलय-काल की अग्नि हो।

अपनी ओर ध्यान दिये बिना बैठी हुई सीता को देखकर, सर्वनाश के लिए उद्यत रावण ने कहा—'हे जानकी, मूर्ख तथा अविवेकी खरदूषण आदि राक्षसों का वध करने मात्र से तुम राम के शौर्य का विश्वास करती हो और मेरे शौर्य को कभी अपने मन में भी नहीं लातीं। जब राम बड़े दर्प से अपनी सेना के साथ समुद्र को पार करके, वानरों के साथ सुवेलाद्रि पर सो रहा था, तब मेरे एक प्रिय सेवक ने उसका वध करके उसके धनुष तथा सिर ले आया है। राम का प्रिय अनुज, तथा वानर परास्त होकर भाग गये हैं। इसलिए हे कमलमुखी, तुम अब राघव की आशा छोड़ दो और मेरी तथा मेरी स्त्रियों के लिए अधीश्वरी बनकर रहो।'

इस प्रकार कहने के पश्चात् उसने विद्युज्जिह्व को बुलाकर, राम के सिर तथा धनुष को सीता के सामने लाने की आज्ञा दी। तब उसने कहा—'हे सुंदरी, यह लो, राम के सिर तथा धनुष।' इतना कहकर वह उन दोनों को सीता के सामने फेंककर हँसते हुए चला गया। उसी समय आकाशवाणी हुई—'राम भूपाल युद्धभूमि में असुर (रावण) का सिर काटेंगे, यह तुम्हारे पति का सिर नहीं है। तुम विचलित मत होओ। तुम्हारे धर्मा-चरण के प्रभाव से रामचंद्र अवश्य विजयी होंगे।' (फिर भी) उस चंचलाक्षी सीता ने उस सिर को देखा और राम की आँखें, मुँह, ललाट, मौलि-रत्न की प्रभा, दंत-पंक्ति और कर्ण-पुटों का सौंदर्य तथा अधरों की कांति का स्मरण करके उस सिर को राम का ही सिर समझकर मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर ऐसे गिर पड़ी, मानों पृथ्वी माता ही उस लतांगी को अपने हृदय पर लिटाकर उन्हें सांत्वना दे रही हो कि 'यह मिथ्या है। तुम्हारे पति का कोई अहित हो नहीं सकता। हे सुंदरी, यह माया है; इसकी ओर तुम्हें देखना नहीं चाहिए।'

थोड़ी ही देर में सीता सँभल गई और शोकाग्नि से संतप्त होती हुई बोली--'हाय, हे कैकेयी, कलह को जन्म देकर तुमने इस प्रकार इक्ष्वाकु-वंश का सर्वनाश किया है। राघवेन्द्र ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था कि तुमने उन्हें अनावश्यक ही वन में जाने की आज्ञा दी ? हे पृथ्वीपति, मैंने पूर्ण विश्वास किया था कि आपने समुद्र पर सेतु बाँधा है, और आप अवश्य मुझे छुड़ाकर ले जायेंगे; किन्तु मैं यह नहीं समझती थी कि भगवान्

मेरी ऐसी गति करेंगे । हे काकुत्स्थ, आपके और मेरे प्राण एक हैं, उस कथन को आप इस प्रकार मिथ्या साबित कर रहे हैं; क्या, यह आपके लिए उचित है ? हे सूर्यकुल-तिलक, पति से पहले ही प्राण देने का सौभाग्य मुझे नहीं मिला । आप भले ही जायँ, मैं भी तुरंत ही अपने प्राण आपके पास भेज दूँगी । पृथ्वी मेरी माता है और आप मेरे पति हैं । क्या, आपके लिए यह उचित है कि आप मुझे पुनः वसुधा की गोद में पहुँचा दें। अग्निदेव के समक्ष आपने मेरे पिता से मुझे ग्रहण किया था । अब इस प्रकार आपका मुझसे विलग हो जाना, क्या आपके लिए उचित है ? हे राम, न जाने क्यों आपको इस दशा में देखकर भी मेरा हृदय संतप्त नहीं हो रहा है । मेरा हृदय जब संतप्त नहीं होता, तो निश्चय ही आपकी यह दशा नहीं हुई होगी ।' इस प्रकार सोचती हुई सीता विलाप करने लगीं ।

उसी समय द्वारपालों ने आकर दनुजेश्वर से निवेदन किया--'हे देव, किसी अत्यंत आवश्यक कार्य के उपस्थित होने से आपके मंत्री सभा-स्थल में आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उनका संदेश लेकर आये हुए प्रहस्त आदि राक्षसवीर द्वार पर खड़े हैं ।' यह सुनकर रावण तुरंत सभास्थल के लिए रवाना हो गया । उसके जाते ही, वे माया सिर तथा धनुष भी ऐसे अदृश्य हो गये, मानों रावण की लक्ष्मी भी इसी प्रकार शीघ्र ही अदृश्य हो जायगी । सभास्थल में पहुँचकर रावण ने जब गुप्तचरों से सुना कि राम शीघ्र ही आक्रमण करने का यत्न कर रहा है, तब उसने बड़े धैर्य के साथ ढिंढोरे पीटकर नगर में इस समाचार को प्रकट कराने का आदेश दिया और अपनी सेना को एकत्रित करने के लिए वेत्रधरों को भेजा ।

यहाँ सरमा सीता को देखकर कहने लगी--'हे माता, तुम ऐसे क्यों प्रलाप करती हो ? रावण की बातें सत्य नहीं हैं; उन्हें मिथ्या जानो; क्या तुम इतना भी नहीं जानतीं कि तुम्हारे सामने जो सिर फेंका गया था, वह माया का सिर था । इस राक्षस के दुर्वचन सुनकर मैं सत्य समाचार जानने के लिए गई थी । मेरी बातें सुनो । राम युद्ध करने के लिए आ रहे हैं । यह समाचार सुनते ही देवताओं का शत्रु (रावण) विचलित हो उठा । वह सुनो, ढिंढोरे का शब्द हो रहा है । राक्षसों के भयंकर रथों के दौड़ने की ध्वनि सुनो। लो, वह सुनो, रथिकों तथा सारथियों के संभाषणों की ध्वनि सुनाई पड़ रही है । इसलिए हे कुटिल-कुंतले, तुम चिंता मत करो । राम पर किसी प्रकार की विपत्ति नहीं आई है ।'

इसी समय लंका को विदीर्ण करनेवाले गर्जन के साथ आनेवाली वानर-सेनाओं को देखकर रावण ने चिंताक्रांत चित्त से अपने मंत्रियों को शीघ्र बुलाकर कहा--'वह देखो, राघव युद्ध करने के लिए आ रहा है । तुम अब अपनी अमित शक्ति का परिचय देते हुए शीघ्र जाओ और उन दोनों मानवों को मारकर, वानर-सेना का वध कर डालो । जाओ, शीघ्र जाओ ।'

३६. माल्यवान् का हितोपदेश

तब रावण को देखकर नीतिवान् माल्यवान् ने कहा--'हे राजन्, उचित समय में संधि कर लेना श्रेयदायक होता है और उचित समय पर वैर ठानना शुभ-प्रद होता है ।

जो नीतियुक्त कार्य करता है, उस राजा के राज्य की सतत वृद्धि होती रहती है। नीच व्यक्ति से विग्रह और बलवान् से संधि करना विबुध-जनों का उपदेश है। सूर्यवंश-तिलक हमसे अधिक बलवान् हैं; देवताओं के कार्य के लिए उन्होंने पृथ्वी पर जन्म लिया है। दैवबल भी उन्हीं को प्राप्त है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि वे धर्मात्मा हैं। उन्हें ऋषियों के सतत आशीर्वाद प्राप्त हैं। तुम तो सदा देवताओं को पीड़ित तथा ब्राह्मणों का नाश करते हुए पाप-चिंता में लीन रहते हो। विजय सदा धर्म की ओर ही झुकी रहती है, अधर्म की ओर नहीं। उस दिन तुमने ब्रह्मा से अन्य सभी लोगों के हाथों से न मरने का बर प्राप्त किया था; किन्तु इस प्रकार तुम पर आक्रमण करनेवाले नर तथा वानरों पर विजय पाने का वर प्राप्त नहीं किया है। किसी भी रीति से देखा जाय, उनके हाथों से तुम्हारा नाश निश्चित है। इतना ही क्यों, होनहार की सूचना देनेवाले कितने ही शकुन दिखाई पड़ रहे हैं। विपुल होम-धूम त्रस्त-सा हो गया है। राक्षसों के तेज का अंत-सा हो रहा है। हमारे गृहों में कई प्रकार की विपत्तियों का जन्म हुआ है। इसलिए तुम जान लो कि वे (राम) आदिनारायण हैं और ऐसा करने के लिए (तुम्हारा वध करने के लिए) इस संसार में जन्मे हैं। राम से विग्रह तुम्हें शोभा नहीं देता। इसलिए तुम अपना हठ छोड़ दो। राम का शर औद्धत्य का सहन नहीं करता। अत: हे दानवेन्द्र, सीता को ले जाकर राम को सौंप दो और अपने वंश की रक्षा करो।'

तब रावण ने माल्यवान् को रोषपूर्ण नयनों से देखकर कहा—'मैं अद्वितीय प्रताप और दक्षता से संपन्न तथा सतत विजयी होनेवाला हूँ। तू मेरे सामने मेरे शत्रु की प्रशंसा कर रहा है। अब मैं तुझे क्या कहूँ ? तू कभी अपनी कायरता नहीं छोड़ता। भला, मैं सीता को क्यों देने लगा ? मुझे किसका भय है कि मैं सीता को दे दूँ ?' उसके उद्धत वचनों को सुनकर माल्यवान् ने कहा—'मेरी बातों का अनादर करके तुम रामचन्द्र को युद्ध में कैसे जीतते हो, यह मैं भी देखूँगा। हम जायेंगे कहाँ ? (इन्हीं आँखों से) देखेंगे ही।' इस प्रकार क्रोध में आकर माल्यवान्, कुछ और परुष वचन कहते हुए, वहाँ से चला गया।

उसके पश्चात् असुरेन्द्र ने पहले, अनुपम पराक्रमी प्रहस्त को पूर्व के द्वार की रक्षा के लिए भेजा; अक्षीण बली महोदर तथा महापार्श्व को दक्षिण के द्वार पर भेजा; अपने पुत्र इंद्रजीत को पश्चिम के द्वार पर नियुक्त किया, उत्तर द्वार की रक्षा के लिए शुक तथा सारण को नियुक्त किया और नगर के मध्य भाग की रक्षा के लिए विरूपाक्ष को आज्ञा दी। इस प्रकार, लंका के रक्षण की समुचित व्यवस्था करके रावण अंतःपुर में चला गया।

वहाँ राम ने सुग्रीव विभीषण, अंगद, जांबवान्, सुषेण, नील, नल, हनुमान्, गवाक्ष आदि वानरों को, (उनसे) परामर्श करने के लिए बुलाया और कहा—'अब हम सब प्रकार के अवगुणों का आगार, तथा देवताओं के शत्रु रावण की लंका का पर्यवेक्षण करें। देखो, उस एक दुष्ट के कारण उसका सारा वंश नष्ट होनेवाला है।'

३७. सुवेलाद्रि पर से राम-लक्ष्मण का लंका को देखना

इतना कहने के पश्चात् राम ने अपने अनुज तथा सुग्रीव आदि वानरों के साथ सुवेलाचल का आरोहण इस प्रकार किया, मानों कह रहे हों कि गुणवान् आदमी अपने वंश में इसी प्रकार उन्नति के शिखर पर चढ़ता है । वहाँ से उन्होंने अपने हाथों से नष्ट होनेवाली उस लंका को देखा । उस नगर के गोपुरों पर जड़ी हुई मणियों की प्रभा इतनी उज्ज्वल थी, मानों हनुमान् ने जो अग्नि लगाई थी, वह उस दिन तक वैसे ही दीप्त हो रही हो । बड़े-बड़े कंगूरों से युक्त उस नगर का प्राकार ऐसा दीख रहा था, मानों राम के बाणों के प्रहारों से संभ्रमित एवं परितप्त होनेवाले रावण-रूपी मृग को भाग जाने से रोकने के लिए ही प्रलयकाल के यम-रूपी शिकारी ने चारों ओर से घेरा लगा दिया हो ।

उस दुर्ग की मीनारों पर दीखनेवाली चित्र-विचित्र ध्वजाएँ तथा तोरण ऐसे दीख रहे थे, मानों मीनारें-रूपी स्त्रियाँ सूर्य के प्रकाश में उज्ज्वल दीखनेवाले सुंदर तोरण-रूपी मंगल-सूत्रों से अलंकृत हो, सुंदर ध्वजाएँ-रूपी अपने हाथों को हिलाती हुई, (राम का) स्वागत कर रही हो—'हे राम, रावण का संहार करने के लिए शीघ्र चले आओ ।' उस दुर्ग की परिखाएँ इतनी विशाल एवं गहरी थीं, मानों रावण-रूपी जंगली भैंसे को पकड़ने के लिए यम ने अनुकूल खड्डे खोद रखे हों । नगर के उज्ज्वल सौध आकाश का स्पर्श करते थे और ऐसे दीख रहे थे, मानों रावण ने कैलास पर्वत को उखाड़कर और उसे यहाँ लाकर सुंदर ढंग से फिर से उसका निर्माण किया हो । उस नगर से तुरही की ऐसी ध्वनि निकल रही थी, मानों लक्ष्मी राम के स्वागतार्थ आ रही हो । उस नगर में कितने ही ऐसे उपवन थे, जिसके असंख्य वृक्ष शुकों की बोली से हर्षित होते, भ्रमरों के गुंजन से आनंदित होते, कोयलों के कल-कूजन से संतुष्ट होते, मुखर सारिकाओं के संचालन से दीप्त होते, शाखाओं और मन-रूपी पल्लवों को राग-रंजित करते तथा सतत व्याप्त होनेवाले पुष्पों के सुगंध-भार से महक रहे थे । उस नगर के कमलाकर कमला (लक्ष्मी) के मन-कमल के समान थे । ऐसे नगर को आश्चर्य से देखनेवाले राघव को अपने प्रताप का ताप प्रदान करके भगवान् सूर्य पश्चिम समुद्र में डूबने लगे । तब राम ने उन्हें प्रणाम किया और सुवेलाद्रि पर ही उन्होंने रात्रि बिताई ।

प्रातःकाल होते ही सभी कपि अत्यधिक हर्ष से विनोद करते हुए उस पर्वत के जंगल में शीघ्र गति से चले गये और वहाँ अपने भयंकर निनादों से सिंह तथा हाथियों को भगाने लगे । उनके निनाद राक्षसों की अस्थियों को कँपाते हुए सारी लंका में व्याप्त हो गये ।

इस ध्वनि को सुनकर रावण यह जानने की इच्छा से कि वह कैसी ध्वनि है, अपने सौध के कंगूरे पर चढ़कर देखने लगा । उस समय उसके साथ उस कंगूरे की शोभा अत्यंत उज्ज्वल दीख रही थी । परिचारक-गण उसके ऊपर धवल छत्रों की छाया कर रहा था; धवल चँवर डुला रहा था । ऐरावत के दाँतों के प्रहार का सहन किये हुए उसके वक्ष पर मणिमय हार डोल रहे थे । इस प्रकार के वैभव से युक्त वह विविध राक्षसों से

परिवृत हो विशाल रत्न-सिंहासन पर आरूढ था तथा आयुधों की उज्ज्वल प्रभा से दीप्तिमान् होता हुआ, अस्ताद्रि पर विलसित होनेवाले सूर्य की समता करता था। बिजली से युक्त नील मेघों के समान अपना हर्ष प्रकट करता हुआ वह अद्वितीय रूप से उस कंगूरे पर शोभायमान हो रहा था। रावण की महिमा के कारण प्रभा-समन्वित उस कंगूरे को देखकर रामचन्द्र आश्चर्य के साथ (विभीषण) से बोले--'हे विभीषण, प्रलय-काल के सूर्य-मंडल के समान भासमान होनेवाला यह कौन है ?' तब विभीषण ने राम से कहा--'हे देव, वही मेरा अग्रज रावण है, जिसने इन्द्र आदि देवताओं को परास्त करके देव-कामिनियों को बंदी बनाया है और जो तीनों लोकों को अपने शौर्य के प्रताप से जीतनेवाले बाहुबल से संपन्न है।'

३८. रावण तथा सुग्रीव का द्वंद्व-युद्ध

तब सुग्रीव ने राम से कहा--'हे प्रभो, यह राक्षस मदांध हो आपके समक्ष अपने वैभव का ऐसा प्रदर्शन कर रहा है। मैं अभी इस का गर्व भंग करता हूँ।' इतना कहकर वह अत्यधिक क्रोध से, अलघु शौर्य-संपन्न गरुड़ के समान, मुकुट-रूपी शृंगों तथा विशाल वक्ष-रूपी सानुओं से युक्त पर्वत-रूपी रावण पर अत्यंत वेग से गिरनेवाले वज्र के समान, सुवेलाद्रि से उस रावण की ओर उड़ा। फिर, देवताओं के शत्रु उस रावण को तृणवत् मानकर कहा—'हे रावण, सुनो, मैं राम का सेवक हूँ। क्या, तुम अपना वैभव हमें दिखाने का साहस करते हो।' इतना कहकर उसने बड़े दर्प के साथ उसके सभी मुकुटों को नीचे गिरा दिया। तब नीचे लुढ़कनेवाली उसकी मुकुट-पंक्ति ऐसे दीखने लगी, जैसे पूर्वकाल में काल-रुद्र के प्रहार से नक्षत्र-पंक्ति नीचे गिरने लगी थी। इससे अत्यंत क्रुद्ध हो, दशकंठ ने वालि के अनुज को पकड़कर नीचे पटक दिया; किन्तु सूर्यपुत्र शीघ्र ही उठकर अपने प्रचंड बाहु-बल का प्रदर्शन करता हुए उस राक्षस को उसके सभी हाथों के साथ पकड़कर इस प्रकार नीचे पटक दिया कि सभी दिशाएँ काँप उठीं। इसके पश्चात् सुग्रीव ने उस राक्षस की कनपटियों, ललाटों और स्कंधों पर अंधाधुंध तमाचे लगाये, उसकी पीठ को नखों से नोच दिया, और उसकी गर्दन को अपने टखनों के बीच दबाकर उसे कंगूरे से दे मारा। इस प्रकार, मल्ल-युद्ध करते हुए वे दोनों बहुत थक गये और पृथ्वी पर गिरने लगे; किन्तु दोनों फिर से सँभलकर कंगूरे पर ही युद्ध करने लगे। अत्यधिक शक्ति से, प्रतिक्षण पैंतरा बदलते हुए, एक दूसरे को ढकेलते हुए, फिर एक दूसरे के निकट आकर ताल ठोंककर अलग होते हुए और शीघ्र ही एक दूसरे से भिड़कर अपनी शक्ति दिखाते हुए, वे एक दूसरे के वक्षों पर पदाघात करते; लिपटकर अपनी केहुनियों से एक दूसरे के अंगों को दबाते और अपने हाथों से एक दूसरे के सिरों को पकड़कर इस तरह टकराते कि रक्त की धाराएँ निकल पड़तीं; फिर लड़खड़ाते हुए कई प्रकार से कशम-कश करने के पश्चात् एक दूसरे से हटकर अपने-अपने स्थान पर आ जाते और फूलती हुई साँसों से थोड़ी देर तक चुप खड़े रहते। इस प्रकार, युद्ध करते हुए दोनों के शरीरों से रक्त की धाराएँ ऐसी बहने लगीं, मानों पर्वतों से लाल रंग की नदियाँ बह रही हों। तब रावण अपनी माया से सुग्रीव को बाँधने का यत्न करने लगा। यह देखकर सुग्रीव आकाश की ओर उड़ा और

क्रूर राक्षसों के देखते-देखते राम के पास पहुँच गया और राघव को प्रणाम किया। युद्ध की धूलि तथा रक्त से पंकिल गात्रवाले सुग्रीव को राम ने बड़े प्रेम के साथ हृदय से लगाया और स्निग्ध दृष्टियों से देखते हुए कहा—'इन्द्र को परास्त करनेवाले रावण की शक्ति की अवहेलना करके, ऐसा साहस करना केवल तुम्हें ही शोभा देता है। उसका वध करके विभीषण को लंका का राजा बनाने की जो प्रतिज्ञा मैंने की है, उसकी रक्षा करने के लिए तुम उसका वध किये विना ही लौट आये, यह तुमने बहुत अच्छा किया। मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम वालि के अनुज हो, तुम उस रावण को अवश्य मार सकते थे, किन्तु उसके वध का सेहरा, मेरे सिर पर बांधने, तथा उसे मारने का श्रेय मुझे देने के लिए तुम उसे जीवित छोड़कर लौट आये।' तब सुग्रीव ने कहा—'हे देव, उस द्रोही का वैभव देखकर मैं कैसे चुप रह सकता था?' सूर्य-पुत्र के इन वचनों को सुनकर राम हर्षित होकर बोले—'तारकों से विलसित तथा दीप्तिमान् रक्त तथा कृष्ण वर्ण के परिवेषण से घिरे हुए सूर्यमंडल से ज्वालाएँ निकल रही हैं; बड़े-बड़े जलद राक्षसों का रूप धारण करके रक्त-वर्षा कर रहे हैं; ऐसा लगता है कि कदाचित् भूकंप होनेवाला है। प्रचण्ड वायु के कारण शैल-शृंग टूटकर गिर रहे हैं और सूर्य के अभिमुख होकर सियार रो रहे हैं। बार-बार राक्षस-कुल के नाश-सूचक शकुन दिखाई दे रहे हैं। इधर हमारे पक्ष में अंगों के फड़कने आदि के श्रेष्ठ शुभसूचक शकुन दीख रहे हैं। अतः, निस्संदेह हमारी विजय होगी। अब विलंब करना अनुचित है।'

इसके पश्चात् रामचंद्र हनुमान् के कंधे पर बैठकर, जांबवान्, अंगद, सौमित्र, विभीषण नल आदि महान् पराक्रमी अनुचरों के साथ उस पर्वत से नीचे उतरे। फिर, अनुपम पराक्रमी रामचंद्र धनुष धारण करके लंका की ओर चले। वानर-श्रेष्ठ, उनको मार्ग बताते हुए आगे-आगे जा रहे थे और पीछे लक्ष्मण आदि चल रहे थे। वानर-सेना उद्दंड वेग से उनके पीछे-पीछे एक साथ मिलकर जा रही थी। इस प्रकार, सूर्यवंश-तिलक राघव घोर राक्षस-समूह से सुरक्षित लंका के उत्तर द्वार पर जा पहुँचे। यह समाचार सुनते ही राक्षस संभ्रमित-से हो गये। अविरल बाहुबली नील, द्विविद, मैन्द आदि वीर वानरों के साथ, विशाल वानर-सेना को लिये हुए पूर्व के द्वार पर जाकर ठहर गया। गज, गवाक्ष, गवय तथा बाहुबली के साथ वालिपुत्र ने बड़े उत्साह से दक्षिण के द्वार पर पड़ाव डाला। अपना विक्रम प्रदर्शित करते हुए, लंका-दहन करनेवाले पवन-पुत्र ने सुषेण को साथ लेकर पश्चिम के द्वार पर घेरा डाला। सूर्य-पुत्र सुग्रीव छत्तीस करोड़ विश्वास-पात्र तथा महाबलशाली कपि-वीरों के साथ राम के पश्चिम में ठहर गया। शक्तिशाली भालुओं के साथ अनुपम बली जांबवान् ने राम के पूर्व में पड़ाव डाला।

तदनंतर राम ने लक्ष्मण तथा विभीषण को देखकर कहा—'इनकी (वानर-नायकों की) सहायता के लिए प्रत्येक द्वार पर एक-एक पद्म दुर्वार बलशाली वानर-वीरों की सेना भेज दो। अनल, नल, हर तथा संपाति के साथ हम तीनों यहीं से शत्रु-राक्षसों से युद्ध करेंगे। घोर संग्राम के समय में भी हमें यहाँ का और वहाँ का समाचार मिलते रहना चाहिए। इसके पश्चात् राम ने वानरों को देखकर आज्ञा दी कि तुममें से किसी को

अपना वानर-रूप छोड़कर और कोई भी कपट-रूप धारण नहीं करना चाहिए। राम की आज्ञा सिर पर धारण किये हुए सभी वानर लंका के चारों ओर बड़े वेग से फैल गये। पूर्व तथा पश्चिम भागों में विकृत लांगूलवाले, विकृत आननवाले, विकृत दाँतोंवाले और विकृत शरीरवाले अनुपम विक्रमी वानर दस योजन तक व्याप्त हो गये और वृक्षों तथा शैलों की सहायता से युद्ध करने के लिए सन्नद्ध हो गये। उनके गर्जन, तर्जन, तथा उनके हुंकार सारी लंका में व्याप्त हो ऐसे भय का उत्पादन करने लगे कि दनुज-स्त्रियों के गर्भ-पात होने लगे। वानर-सेना का यह कोलाहल सुनकर राक्षस-समूह भय से काँप उठा।

३९. अंगद का दौत्य

अपने मंत्रियों की सम्मति प्राप्त करने के पश्चात् राम ने अंगद को बुलाकर बड़े स्नेह के साथ कहा—'हे अंगद, तुम हमारा दूत बनकर रावण के पास जाओ और उससे कहो कि हे रावण, तुमने ब्रह्मा से प्राप्त वरदान के गर्व के कारण मुनियों तथा देवताओं को दुःख दिया है। राम के समक्ष तुम्हारा कोई वश नहीं चलेगा। रामचन्द्र तुम पर आक्रमण करने आये हैं। जिस शक्ति के मद में आकर तुम सीता को उठा लाये, अब युद्ध में उस शक्ति का प्रदर्शन करो। राम के बाणों के प्रहार से विचलित हुए बिना, शूर के समान उनका सामना करो। यदि ऐसा करने में तुम्हें भय हो, तो सीता को लाकर सौंप दो और सुख से रहो। यही तुम्हारे लिए उचित है। राघव ने कृपा करके विभीषण को लंका का राजा बना दिया। वे अवश्य तुम्हारा संहार करेंगे। उनके संहार करने के पहले ही, अपने सभी सगे-संबंधियों को एक बार भली भाँति देख लो, लंका की ओर निहारो, अपनी प्रिय पत्नियों का विचार करो। अपने पुत्र, अनुज तथा सगे-संबंधियों को युद्ध में मारे जाने से उन्हें बचाने का उपाय सोचो। इसमें कोई संदेह नहीं है कि तुम अपने बंधु-मित्रों के साथ मारे जाओगे; तुममें से एक भी नहीं बचेगा। मरने के पश्चात् जो कार्य करने के लिए शेष रह जायेंगे, उन्हें अभी पूरा कर लो। अब यही तुम्हारी स्थिति है।'

राम के इन वचनों को सुनकर वह श्रेष्ठ वानर, मन-ही-मन हर्षित हो दुष्ट राक्षस-रूपी वन को भस्म करने के लिए उत्पन्न प्रलय-काल की अग्नि के समान, उस इन्द्र के शत्रु रावण को मारने के लिए आये हुए मृत्यु-दूत के समान, उड़कर रावण की सभा में पहुँचा। उसे देखकर राक्षसों ने कहा—'देखो, वह फिर आ गया।' यों कहते हुए वे आयुधों से युक्त हो अंगद पर आक्रमण करने का उपक्रम करने लगे। तब रावण ने अपना हाथ उठाकर उनका वर्जन करते हुए कहा—'रुको'। फिर उसने अंगद को देखकर कहा—'कहो, तुम कौन हो?' अंगद ने कहा—'हे रावण, क्या तुम यह नहीं जानते कि मैं राम का दूत हूँ।' तब रावण ने कहा—'राम कौन है?' अंगद बोला—'अपने अतुल पराक्रम से जिसने परशुराम को जीता, वही रणकुशल (व्यक्ति) राम है।' रावण ने पूछा—'परशुराम कौन हैं?' अंगद ने उत्तर दिया—'जिसने उद्धत कार्त्तवीर्य जैसे वीर को मारा, वह असमान पराक्रमी परशुराम है।' तब रावण ने पूछा—'वह कार्त्तवीर्य कौन है?' अंगद ने कहा—'क्या तुम नहीं जानते? जिसने तुम्हें जीतकर बंदी बनाया था, वही वीर कार्त्तवीर्य है।' फिर, रावण ने पूछा—'तुम किसके पुत्र हो?' अंगद ने उत्तर दिया—

'क्या तुम इतने शीघ्र उस इन्द्र-पुत्र वालि को भूल गये, जिसने तुम्हें समुद्र में डुबो दिया था। मैं उसी वालि का पुत्र हूँ। मेरा नाम अंगद है। हे असुरेश, तुम युद्ध-भूमि में मेरे बारे में बहुत कुछ जान जाओगे। क्या, तुम उस काकुत्स्थ-वंशज राम को नहीं जानते, जिन्होंने मोहित होकर उनके पास जानेवाली शूर्पणखा की नाक और कान काटकर उसके रक्त में भीगे हुए अपने खड्ग को खर तथा दूषण के अंगों के रक्त में धोया था। तुम क्यों प्रलाप करते हो? तुम अब जाओगे कहाँ? बचोगे कैसे? गर्वांध हो तीनों लोकों को झुलसानेवाले तुम्हें राम अवश्य मारेंगे। तुम शूर होकर विना विचलित हुए उनका सामना करो, यही उचित है। सुनो, अब लंका पर शासन करना तुम्हारे भाग्य में नहीं है। लंका का राजा अब विभीषण ही है। तुम इतनी विपत्ति क्यों भोगना चाहते हो? तुम उदार मन से सीता को रामचन्द्रजी के पास पहुँचा दो और अपने प्राण बचा लो। अपने से बलवान् राजाओं से संधि कर लेना इस पृथ्वी पर सभी राजाओं का उचित धर्म है।'

इन बातों को सुनकर रावण ने क्रुद्ध होकर उस महाबली अंगद को पकड़ने की आज्ञा दी। कुछ बलवान् राक्षस तुरंत उसे पकड़ने का प्रयत्न करने लगे। अंगद भी अपनी शक्ति दिखाने के उद्देश्य से अपने-आप उनके हाथों बंदी बन गया और उसके पश्चात् अपनी समस्त शक्ति के साथ आकाश की ओर उछलकर ऐसा झटका दिया कि दस सहस्र राक्षस-वीर नीचे गिरकर चूर-चूर हो गये। इससे संतुष्ट न होकर अंगद ने राक्षसों के उस सभा-मंडप पर ऐसा पद-प्रहार किया कि वज्रपात से गिरनेवाले हिमाचल के शिखर के समान वह मंडप टुकड़े-टुकड़े होकर गिर गया। रावण ने फिर से राक्षसों को आज्ञा दी कि छोड़ो मत, अंगद को अवश्य पकड़ लो। तब राक्षसों ने आकाश की ओर उड़कर अंगद पर परशु, शूल, करवाल, गदा आदि कई आयुधों का प्रहार करके उसे पीड़ित करने लगे। तब अंगद ने अपने मुक्कों से उन राक्षसों पर ऐसा प्रहार किया कि उनकी आँतें निकल आईं और वे पृथ्वी पर गिर पड़े। तब खर के पुत्र सूकर ने अंगद को देखकर कहा—'ठहरो अंगद, अब तुम कहाँ जा सकते हो?' इस प्रकार, घोर गर्जन करते हुए उसने अपना धनुष उठाया और पाँच तेज बाण अंगद के मस्तक पर चलाये और उसकी बाहुओं पर दस बाण चलाये। इससे क्रुद्ध होकर अंगद ने उस असुर पर अपनी मुष्टि से ऐसा प्रहार किया कि उसके सिर के कई टुकड़े हो गये और वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। यह देखकर सभी राक्षस भय से छटपटाने लगे और रावण भी बड़ी चिंता में पड़ गया।

तारा-पुत्र अंगद शीघ्र राम के पास पहुँचा, और प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहा—'हे देव, आपकी आज्ञा के अनुसार मैंने रावण के पास जाकर उसे सारी बातें समझाईं। किन्तु, उसने मेरी बातों की अवहेलना कर दी। हे राजन्, आपने नीति के अनुसार उसे समझाने की चेष्टा की है; किन्तु वह तो आपके बाणों को अपने प्राणों की आहुति देना चाहता है। वह मरने का दृढ निश्चय किये बैठा है। उसका अंत आसन्न है; इसलिए हे देव, आप युद्ध में उस दशकंठ का वध कर डालिए। हे अनघ, आप (रावण को मार कर) देवताओं को प्रसन्न कीजिए।' इस प्रकार उसने लंका में घटी हुई सभी बातों का वर्णन करके राम को सुनाया। अंगद की शक्ति का परिचय प्राप्त करके राम भी हर्षित हुए।

वहाँ सभी राक्षस रावण को देखकर कहने लगे---'हे देव, आप इस प्रकार चुप बैठे रहेंगे, तो कार्य कैसे चलेगा । वह देखिए, राघव कपि-सेना के साथ लंका को घेरे हुए है । अब आप अपना प्रताप कब दिखायेंगे ? हमें भेजिए । हम युद्ध में राम-लक्ष्मण को जीतकर आयेंगे ।'

४०. रावण का अपना वैभव प्रदर्शित करना

इन बातों को बड़े चाव से सुनकर रावण ने सोचा कि मैं अपना वैभव रामचन्द्र को दिखाऊँगा, जिससे सुग्रीव आदि भयभीत हो जायँ । इसके पश्चात् उसने उन सभी वस्तुओं को मँगाया, जिन्हें उसने अपने भयंकर प्रताप के प्रदर्शन से इन्द्र, धनेन्द्र तथा नागेन्द्र को जीतकर प्राप्त किया था । उसने उज्ज्वल कांतियुक्त पीतांबर धारण किये, चारों ओर सौरभ विकीर्ण करनेवाले मृगमद, घनसार आदि सुगंध-मिश्रित मनोज्ञ चंदन का लेप किया; सरस, मंजुल पारिजात-पुष्प-रचित मालाएँ धारण कीं; पद्मराग आदि बहुरत्न-खचित कंकण, मुद्रिका, केयूर, भुजाभरण, कंठाभरण आदि धारण किये; अपनी मणियों की प्रभा से गंडस्थलों को दीप्त करनेवाले कुंडल पहने; सूर्य-मंडल के समान उज्ज्वल तथा अपनी प्रभा से समस्त दिशाओं को प्रकाशित करनेवाले मुकुट अपने दसों सिरों पर धारण किये; इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋत, वरुण, मरुत्, कुबेर एवं ईशान का दर्प चूर करके, उन पर प्राप्त विजय की सूचना देनेवाला तोड़र अपने पैर में पहना; धनुष, बाण, चक्र, परशु, त्रिशूल, करवाल, पाश, मुद्गर, चंद्रहास आदि बीस आयुध अपने बीसों हाथों में धारण किये; और परिचारकों के साथ लेकर उत्तर दिशा के बुर्ज की ओर रवाना हुआ । उसके आप्तजन शूलों से सज्जित हो उसके चारों ओर चलने लगे । भूषण तथा वस्त्रों से अलंकृत होकर उसके मंत्री उसके दोनों ओर चल रहे थे । कई हजार राक्षस असंख्य स्वर्ण-टोपों से विलसित अस्सी हजार धवल-छत्र लिये हुए थे । अस्सी हजार कामिनियाँ शेषनाग के फन के समान दीखनेवाले सुंदर व्यजन (पंखा) लिये हुए चल रही थीं । चंद्र-किरणों के सदृश दीखनेवाली अस्सी हजार अप्सराएँ दोनों ओर चन्द्रिका की भाँति उज्ज्वल चामर धीरे-धीरे झुलाती हुई अपने कंकणों का मृदु शिंजन सुना रही थीं । बंदी-मागधों का समूह देवताओं पर (दानवों की) विजय का स्फूर्त्तिदायक स्तुति-पाठ कर रहा था। उसके आगे मंद, मध्यम, उच्च आदि स्वर-भेदों के साथ चंद्रवदनी स्त्रियाँ गीत गा रही थीं । ऐसी ठाट-बाट से सज्जित हो रावण दुर्ग के उत्तरी बुर्ज पर अपने वैभव का प्रदर्शन करते हुए मणिमय प्रभा-समन्वित सिंहासन पर आरूढ होकर ऐसा दीख रहा था, मानों पश्चिम पर्वत पर सूर्य-बिंब दिखाई पड़ रहा हो । राक्षसों के आतपत्रों ने सूर्य को ढक दिया था, इसलिए चारों ओर अंधकार फैलने लगा ।

उस समय राम माया-मृग के चर्म पर, इन्द्रनील मणि के समान प्रकाशमान अपनी देह का वाम भाग टेके हुए, वाम-भुजाग्र को अपने कपोल का आधार बनाकर, सूर्य-बिंब के समान उज्ज्वल सुग्रीव की जाँघों पर, राजसी ठाठ से, अपना अतुल सौंदर्य को प्रकट करते हुए लेटे थे और अपने प्रिय-भक्त पवन-पुत्र के जाँघों पर पैर पसारकर आराम कर रहे थे । पवन-पुत्र उनके चरण कमलों को धीरे-धीरे दबा रहा था । अंगद उनके दक्षिण-हस्त

की अँगुलियों को दोनों हाथों से दबा रहा था । बंदी-मागधों की तरह उनके चारों ओर नल-नील तथा जांबवान् आदि प्रमुख सेनापति उनकी स्तुति कर रहे थे—'हे सकल लोकाराध्यचरण, हे जानकी-हृदयांबुज-षट्चरण, हे दीनार्त्तिहरण, हे स्तवनीयरूपाभरण, हे हर-वंद्य नाम, हे सूर्यकुलाब्धिसोम, हे शत्रुनाशक, हे रघुराम आदि ।' तब रामचंद्र पूर्णचन्द्र के समान शोभायमान होनेवाले अपने मंदहास-युक्त तथा अविरल करुणामृत से परिपूर्ण मुख-मंडल में विलसित धवल अरविंद की सुंदरता को भी परास्त करनेवाले नेत्रों की कांति को, चारों ओर विकीर्ण करते हुए, अपने ललित कटाक्ष-रूपी चंद्रिका की वृष्टि करते हुए, अपने दोनों हाथों के समीप बैठे हुए, राक्षसों के भेदों के ज्ञाता विभीषण के साथ अत्यंत रहस्यपूर्ण वार्त्तालाप कर रहे थे । उस समय उनका मुँह दक्षिण की ओर था । इसलिए उन्होंने रावण को देखकर कहा—'हे विभीषण वहाँ देखो । उस दुर्ग के उन्नत शिखर पर कोई सिंहासन पर आसीन है । उस पर तने हुए शरत्काल के बादलों के सदृश दीखनेवाले छत्र-समूहों के कारण पृथ्वी पर छाया पड़ी हुई है । इस ढंग से वहाँ बैठा हुआ वह व्यक्ति कौन है ?'

तब राम को देखकर विभीषण ने निवेदन किया—'हे देव, वही देवताओं का शत्रु रावण है; युद्ध में अमरों के पैर उखाड़नेवाला वही है । समस्त देवताओं से प्राप्त दिव्य-आभूषणों को धारण किये हुए, अपने आप्त दनुज-वीरों की सेवाएँ ग्रहण करते हुए, अस्सी सहस्र छत्रों, चामरों तथा व्यजनों से सुसज्जित हो, अपना वैभव तथा ठाठ-बाट आपके समक्ष प्रदर्शित करने के निमित्त वह दुर्ग के बुर्ज के ऊपर सिंहासन पर बैठा हुआ है ।'

४१. राम का रावण के छत्र-चामरों पर अस्त्र चलाना

इन बातों को सुनकर राम हँसे और रावण का गर्व-भंग करने का निश्चय करके लक्ष्मण से धनुष लाने के लिए कहा । फिर अपने पीछे बैठे हुए लक्ष्मण के हाथ से धनुष लेकर दायें पैर तथा दायें हाथ के अंगूठे से उस पर प्रत्यंचा चढ़ाई । फिर लक्ष्य साधकर, अर्द्धचन्द्र शर को चढ़ाया और प्रत्यंचा को अच्छी तरह खींचकर आधे लेटे-लेटे ही रावण के छत्र-चामर तथा व्यजनों पर बाण छोड़ दिया । राम का वह एक शर क्रमशः दसों सैंकड़ों, हजारों, लाखों तथा करोड़ों की संख्या में बढ़कर रावण के निकट पहुँच गया और तालवृंतों को धारण करनेवाली सुन्दरियों, चामरों को डुलानेवाली स्त्रियों, संगीत गाने वाली कमलमुखियों, कीर्त्तिगान करनेवाली रमणियों, धवल छत्रों को धारण करनेवाली दैत्य-बालाओं और सेवा में खड़े हुए भटों के हाथों को विना काटे ही विना उनके कंठों का विच्छेद किये ही, विना उनके हृदयों में प्रवेश किये, रावण के मुकुटों को नीचे गिराये विना ही, उसके सिरों को काटे विना ही, उन छत्र, चामर, व्यजन आदि के उपरी भागों को काटता हुआ चला गया । यह देखकर सभी राक्षस संभ्रम तथा आश्चर्य से चकित रह गये । इस प्रकार, कटे हुए छत्र, चामर, तथा व्यजन उड़कर समस्त आकाश में व्याप्त हो गये; फिर वे जहाँ-तहाँ, उस सभा में, कुछ राक्षसों पर, कुछ लंका में, कुछ लवण-समुद्र में, और कुछ उस लंकेश्वर पर गिरने लगे । इस प्रकार, अद्वितीय ढंग से अपना कार्य पूरा करके वह दिव्य शर फिर राम के तूणीर में आकर प्रविष्ट हो गया । छत्र, चामर

तथा व्यजनों से रहित हो, केवल दण्डों को अपने हाथों में थामे खड़े रहनेवाले उन असुर-पंक्तियों के मध्य रावण संभ्रमित हो, अपना समस्त गर्व खोकर बड़ी देर तक बैठा रहा, क्योंकि उसे ऐसा लग रहा था; मानों खड़े हुए राक्षस उसे ले जाने के लिए आये हुए यमदूत हों। रघुराम के धनुर्विद्या-कौशल का बार-बार विचार करके उसका सिर काँपने लगा, और मन-ही-मन वह उनके (राम के) पटुत्व को स्वीकार करने लगा। फिर, प्रकट रूप से वह रघुराम की प्रशंसा करने लगा।

४२. रावण का राम की धनुर्विद्या की प्रशंसा करना

उसने कहा—'हे श्यामवर्ण रघुराम, हे नयनाभिराम, हे कोदंड-दीक्षा-गुरु, हे वीरावतार, हे शर-संधान-कला-निपुण हे श्रेष्ठ चाप के कर्षण में कृपण, हे दृढबाहु, हे विख्यात मुष्टि-संपन्न, हे विजित शत्रुओं के भाग्य-विधाता, हे विजय-संपन्न, हे श्रेष्ठ मानव-राजकुमार, हे नव्य-दिव्य-अस्त्र-संपन्न, हे चंचल तथा घोर शरों से पूर्ण अक्षय तूणीरधारी, हे वीराग्रगण्य, हे विश्वशरण, हे राम भूपाल, तुम्हारे समान इस संसार में और कौन धनुर्धर हो सकता है ? त्रिपुरों का नाश करने में (निपुण) अकेले एक शिव ही हैं और बाणों को चलाने में निपुण तुम एक ही हो।' इस प्रकार, रावण अपने दसों मुँहों से रामचन्द्र की प्रशंसा करने लगा।

यह देखकर (उसके) मंत्रियों ने उस दैत्यनाथ से कहा—'हे दैत्य-पुंगव, शत्रुता का विचार किये विना, कहीं शत्रु की ऐसी प्रशंसा कोई कर सकता है ? यदि आप ऐसी प्रशंसा करेंगे, तो शत्रु तथा मित्र, यह सोचकर कि आप भयभीत हो गये हैं, आपको उपेक्षा की दृष्टि से देखेंगे। यह राजनीति नहीं है।' तब रावण ने हँसकर उनसे कहा—'धनुर्विद्या की निपुणता, महान् पराक्रम, सौंदर्य तथा बाहुबल आदि गुणों में श्रेष्ठ, कोदंड-दीक्षा-गुरु, राम-भूपाल की समता इन तीनों भुवनों में कौन कर सकता है ? हरिहर तथा ब्रह्मा भी उसकी समता नहीं कर सकते। क्या, श्रेष्ठ शूरों की महत्ता को स्वीकार नहीं करनी चाहिए ?' इस प्रकार, नीति-पूर्ण वचनों को कहने के पश्चात् दनुजेश्वर वहाँ से चला गया। तब राक्षस-नेताओं ने कटकर गिरे हुए छत्र-चामर आदि को देखकर अत्यंत भयविह्वल हो वहाँ से चले गये और कई प्रकार से राम के पराक्रम तथा शौर्य की प्रशंसा करते हुए कहने लगे—'राघव करुणा-समुद्र हैं, इसलिए उनके भयंकर बाण ने केवल छत्रों को ही काटा। यदि वे उसी प्रकार और एक बाण चलायें, तो हमारे सिर भी उड़ने लगेंगे।'

४३. वानरों का लंका ध्वंस करना

यहाँ पर राघवेन्द्र ने आगे के कार्य के संबंध में अच्छी तरह मन-ही-मन विचार किया और फिर अपने अनुज विभीषण तथा सूर्य-पुत्र आदि आप्त-वर्ग की सम्मति लेकर शुभ मुहूर्त्त में वानरों को लंका पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। वानर-सेना उसी क्षण, भयंकर गर्जन करते हुए—'हे देव, हमारा शौर्य देखिए। आपके लिए हम किस प्रकार प्राण देते हैं, देखिए।' यों कहते हुए पर्वतों तथा वृक्षों को कँपाते हुए, करोड़ों वानरों ने एक साथ मिलकर लंका के दुर्ग को चारों ओर से घेर लिया।' 'राम की अवश्य जय

होगी'--ऐसा घोष करते हुए, वानर-वीर अपनी महान् शक्ति को प्रकट करते हुए पर्वतों तथा वृक्षों को जहाँ-तहाँ से जमा करके परिखा को पाटने लगे । उस समय वे ऐसे दीख रहे थे, मानों वध्य भूमि पर स्थित वधिक हों ।

तब कुमुद दस करोड़ वानरों की सेना लेकर पूर्व द्वार की ओर गया । बाहुबली शतबली अस्सी करोड़ की सहायक सेना लेकर आनेवाले राक्षसों के आक्रमण को रोकने के उद्देश्य से दक्षिण के द्वार पर जाकर ठहर गया । सुषेण दस करोड़ सैनिकों को लेकर पश्चिम के द्वार पर चला गया । राम, लक्ष्मण, विभीषण तथा सुग्रीव उत्तर के द्वार पर ही रहे । गज, गवय, गंधमादन तथा शरभ, दुर्ग के चारों ओर बार-बार भ्रमण करते हुए वानरों को दुर्ग पर चढ़ जाने के लिए उत्साहित कर रहे थे । तब वानर उद्धत गति से एक दूसरे से स्पर्धा करते हुए, एक दूसरे को धक्का देते हुए, दुर्ग पर ऐसे चढ़ गये कि, मालूम नहीं होता था कि कौन बुर्ज है, और कौन कंगूरा । फिर, स्तूपों पर चढ़कर वे भयंकर गर्जन करते हुए, अपनी पूँछों का फंदा बनाकर पत्थरों को किले के भीतर फेंकने लगे । फिर बड़े-बड़े वृक्षों को तने से उखाड़कर बड़े वेग से उन्हें अंदर फेंककर किले के भीतर स्थित घरों को तोड़ने लगे । फिर उन्होंने भीतर के कितने ही भवनों, मंडपों और कंगूरों को अपने पदाघात से चूर-चूर कर दिया; बड़े-बड़े पहाड़ों को फेंककर दुर्ग को गिराते और उसके नीचे दबकर मरनेवाले राक्षसों को देखकर हँसने लगे । वानर, राक्षसों को ललकारते हुए बड़ी-बड़ी शिलाओं को किले के ऊपर फेंककर उसकी ऊँची दीवारों को गिरा देते । दुर्ग के बहिर्द्वारों, राक्षसों, उनके आयुधों, पताकाओं, ध्वजाओं तथा छत्रों को गिरते हुए देखकर वानर-वीर दिशाओं को कंपित करनेवाले भयंकर गर्जन करते और अत्यधिक मात्सर्य से पुनः पर्वतों को लाकर दुर्ग पर फेंकने लगते । उनके कठोर प्रहारों के कारण लंकापुर की ऊँची अट्टालिकाएँ गिरने लगीं; वीथियाँ नष्ट होने लगीं; दीवारें गिरने लगीं; ऊँचे सौध टूटकर गिरने लगे, घर चूर-चूर होने लगे, और असंख्य मंदिर नष्ट-भ्रष्ट हो गये । सारा दृश्य राक्षसों के नाश की सूचना देनेवाले अपशकुन के समान बड़ा भयावह दीख पड़ता था ।

४४. राक्षसों तथा वानरों का भीषण संग्राम

तब भयभीत हो राक्षस कहने लगे—'हमने ऐसा उत्पात कभी नहीं देखा ।' फिर, वे विकट अट्टहास करते हुए, भयंकर गर्जन करने लगे । उसके पश्चात् सभी राक्षस एक साथ एकत्रित हो, बड़े क्रोध से वानरों पर शूल फेंके, खड्ग चलाये, और गदाओं से प्रहार किये । वे वानरों के समूह में घुस गये और उनपर प्रहार करने, परशुओं से उन्हें मारने और भाले चुभोकर उन्हें परिखाओं में गिराने लगे । फिर बड़ी-बड़ी शिला-यंत्रों के द्वारा गोले फेंककर दुर्ग की दीवारों के ऊपर चढ़नेवाले वानरों को आगे बढ़ने से रोकते तथा भयंकर गर्जन करते । उनके गर्जनों की ध्वनि तथा कपियों के विकट गर्जनों की ध्वनियों के कारण पृथ्वी तथा सभी दिशाएँ कंपित हो गईं । व्याकुल होकर दिग्गज चिंघाड़ने लगे । भय से कंपित होने से पृथ्वी में दरारें पड़ गईं । अदहन के समान समुद्र का पानी खौलने लगा । सारा संसार तप्त हो गया और भूत भयभीत हो गये । कुल-पर्वत गोलियों के समान

उछल-उछलकर गिरने लगे । शेषनाग विष उगलने लगा; कूर्म और पर्वत एक दूसरे से टकरा गये ।

तब रावण ने (कपि-सेना से) घिरी हुई भयंकर राक्षस-सेना को अपने पास बुलाया और उसे उत्साहित करते हुए कहने लगा--'कपि-सेना का पीछा करके उसे किले के बाहर भगा दो ।' तुरंत दुर्ग के चारों द्वारों से राक्षस-सेना इस प्रकार बाहर निकली, जैसे प्रलय-काल में रुद्र के मुख से ज्वालाएँ निकलती हैं । उस समय, भेरी, डंका, पटह, शंख, तुरही आदि वाद्यों के भयंकर निनादों, घोड़ों की हिनहिनाहट, बलिष्ठ हाथियों की चिंघाड़, रथों के चक्रों की ध्वनि तथा मन को विचलित करनेवाले सैनिकों के सिंहनादों के कारण समस्त ब्रह्माण्ड कंपित होने लगा और सभी देवता भयभीत हो गये ।

वानर-सेना तुरंत राक्षस-सेना से भिड़ गई । द्वंद्व-युद्ध होने लगा । इन्द्रजीत ने अंगद पर गदा का ऐसा घोर प्रहार किया, जैसे इन्द्र ने दुर्वार गति से अपने वज्रायुध को कुल-पर्वत पर चलाया था । अंगद ने भी इन्द्रजीत की समता करनेवाला अपना युद्ध-कौशल प्रकट करते हुए एक विशाल पर्वत-शृंग को उठाकर फेंका और इन्द्रजीत के रथ, सारथी तथा रथ के अश्वों को चूर-चूर कर दिया । प्रजंघ ने दुर्वार गति से संपाति पर तीन अस्त्र चलाये । उसके आघात को बचाकर संपाति ने अश्वकर्ण वृक्ष को उस पर फेंका । अतिकाय ने विनत तथा रंभ नामक वानरों को घेरकर उन पर शरवृष्टि की । किन्तु उन दोनों ने बड़े-बड़े पर्वतों को फेंककर उसकी सेना का ध्वंस कर दिया । महोदर ने सुषेण को घेरकर उसके विशाल वक्ष तथा प्रशस्त ललाट पर क्रमशः पाँच तथा तीन बाण चलाये । तब सिंह-गर्जन करते हुए उसने एक बड़ा पहाड़ उठाकर उस पर ऐसा फेंका कि महोदर का रथ अश्व तथा सारथी के साथ चूर-चूर हो गया । जांबवान् ने एक विशाल वृक्ष घुमाकर मकराक्ष पर फेंका; किन्तु उसने उसको बीच में ही काटकर, जांबवान् के ललाट, वक्ष तथा कंधों पर कई बाण मारे । इससे क्रुद्ध होकर जांबवान् ने उस पर एक विशाल पर्वत फेंका । देखते-देखते मकराक्ष का रथ सारथी तथा अश्वों के साथ नष्ट-भ्रष्ट हो गया । विद्युज्जिह्व ने शतबली को घेर लिया और उसके वक्ष पर शरवृष्टि की; किन्तु शतबली ने अत्यंत वेग से उस पर एक बड़ा वृक्ष फेंका । गज को कई राक्षसों का संहार करते हुए देखकर प्रमद ने क्रोध से उस बली वानर के वक्ष पर अपना शूल चलाया । तब गज ने एक साल-वृक्ष से उस राक्षस पर ऐसा प्रहार किया कि वह राक्षस वहीं ढेर हो गया । (उसे मरते देख) सभी वानरों ने हर्षनाद किया । कुंभकर्ण का ज्येष्ठ पुत्र कुंभ नामक वीर वानरों को पकड़-पकड़कर निगलने लगा, तो उसे देखकर धूम्र ने एक वृक्ष से मारा । क्रूर देवांतक ने गवाक्ष के विशाल वक्ष पर पाँच शर चलाकर उसे अत्यंत पीड़ित किया, तो उसने बड़े वेग से एक साल-वृक्ष उस पर फेंका । तब उस राक्षस ने सात बाणों से उस वृक्ष के खंड-खंड कर दिये और गवाक्ष पर नौ अस्त्र चलाये । तब गवाक्ष ने एक पहाड़ उस राक्षस पर फेंकते हुए कहा--'लो, इसे सँभालो ।' सारण ने ऋषभ पर एक मूसल चलाया, तो ऋषभ ने उसके वक्ष पर एक बड़ा वृक्ष फेंका । इससे उसके धनुष-त्राण टूट गये और वह मूर्च्छित हो गया । पहाड़ जैसे हाथी पर आसीन हो जब त्रिशिर ने शरभ के सिर पर तोमर चलाया,

तब उसने क्रोध में आकर उस राक्षस पर सप्त-पर्ण वृक्ष का ऐसा प्रहार किया, जैसे इन्द्र ने कुल-पर्वत पर (वज्र से) प्रहार किया था और उस राक्षस के हाथी को गिरा दिया। नरांतक ने क्रूर गति से पनस पर तीव्र बाणों की वर्षा की, तो पनस ने भी अपनी भयंकर शक्ति प्रकट करते हुए उस पर वृक्षों की वर्षा कर दी। अकंपन ने एक बड़े लट्ठ से कुमुद पर प्रहार किया, तो कुमुद ने झुककर उस प्रहार से अपने को बचा लिया और उस अकंपन पर मुष्टि का ऐसा प्रहार किया कि अकंपन मूच्छित हो गया। जब धूम्राक्ष ने क्रुद्ध होकर केसरी पर बाणों की घोर वर्षा की, तब उसने धूम्राक्ष पर पर्वतों की वर्षा की और उसे गिरा दिया। महापार्श्व ने बड़े रोष से महाबाहुबली गंधमादन पर आक्रमण किया, तो उसने पर्वतों, वृक्षों तथा अपने दाँतों के प्रयोग से उस राक्षस को पीड़ित किया। शुक ने वेगदर्शी के वक्ष पर अस्त्र चलाये, तो वेगदर्शी ने अपने दुर्वार विक्रम से उसके रथ को अपने पैरों से कुचलकर चूर-चूर कर दिया। जब तपन ने नल का सामना किया, तब नल ने अपना शरीर इतना बढ़ाया कि देखनेवाले संभ्रमित हो गये और फिर विशाल पर्वत को उस राक्षस पर फेंका। तपन ने नल पर तेज वाण चलाये, तो नल ने एक साल-वृक्ष से उस पर प्रहार किया। जंबुमाली ने अपनी गुरुतर शक्ति से हनुमान् पर घोर प्रहार किया, तो हनुमान् क्रुद्ध हो उसके रथ पर कूदा और जंबुमाली के सिर पर अपनी हथेली का ऐसा प्रहार किया कि उसका सिर फूट गया। मित्रघ्न ने विभीषण पर शरवृष्टि की, तो विभीषण के शरीर से रक्त के फौव्वारे छूटने लगे। तब उग्र क्रोध से विभीषण ने उस पर गदा चलाई, तो मित्रघ्न मूच्छित होकर गिर पड़ा। प्रहस्त नामक राक्षस को वानरों को पकड़कर निगलते देख सुग्रीव की आँखें क्रोध से लाल हो गईं। उसने तुरंत एक सप्त-पर्ण वृक्ष से उस पर प्रहार किया और उसे गिरा दिया। वज्रमुष्टि नामक राक्षस पर मैन्द ने अपनी मुष्टि से प्रहार किया, तो वह राक्षस पृथ्वी पर ऐसा गिरा, मानों लंका का बुर्ज ही गिर पड़ा हो। अशनिप्रभु नामक राक्षस को द्विविद ने एक पर्वत के प्रहार से ऐसा गिरा दिया कि स्वर्ग के देवता हर्ष-ध्वनियाँ करने लगे। विशाल बाहुबली निकुंभ ने अपने प्रताप का प्रदर्शन करते हुए अपने दिव्य अस्त्रों से नील को ऐसा ढक लिया, जैसे काले-काले मेघ सूर्य को आच्छादित कर लेते हैं। तब नील ने इसकी उपेक्षा करते हुए सहज ही निकुंभ के रथ के चक्र को निकालकर उसे बड़े वेग से ऐसे चलाया कि सारथी का सिर भूमि पर लोटने लगा और निकुंभ स्वयं भयाक्रांत होकर देखता रह गया। विरूपाक्ष सौमित्र पर शर-वृष्टि करने लगा, तो सौमित्र ने उसकी उपेक्षा करके एक ऐसा बाण उस राक्षस पर चलाया कि उसकी शक्ति जाती रही और वह मूच्छित हो पृथ्वी पर लुढ़क गया। उस समय सप्तघ्न, रश्मिकेतु, अग्निकेतु तथा कोपाग्निकेतु नामक चार भयंकर प्रतापी राक्षस बार-बार गर्जन तथा धनुष का घोर टंकार करते हुए उमड़कर आनेवाले मेघों के समान शर-वृष्टि करने लगे। तब सूर्य-वंश-तिलक राम ने सहज ही चार बाणों से उन चारों राक्षसों के सिर उड़ा दिये।

४५. युद्ध-भूम का वर्णन

इस प्रकार, घोर द्वंद्व-युद्ध के अविराम गति से चलते रहने से, सारी युद्ध-भूमि में टूटे हुए असंख्य धनुष, खंडित शर, चूर-चूर हुई गदाएँ, खंडित करवाल, टूटे हुए भाले तथा

मुद्गर, धूलि क समान बने हुए परिध तथा खड्ग, खंड-खंड बने हुए चक्र तथा शूल, चूर्ण के समान बने हुए लट्ठ, खंडित रथ-चक्र, छटपटाते हुए अश्व, गिरकर मिट्टी चाटनेवाले सारथी, सभी दिशाओं में बिखरकर पड़े हुए आभूषण, टूटकर गिरे हुए रत्न, कटे हुए हाथ तथा मरकर गिरे हुए असुर भयोतपादक ढंग से स्थान-स्थान पर पड़े हुए दिखाई दे रहे थे। वह युद्ध-क्षेत्र राम के वशीभूत उस कृश-समुद्र की समता करता था, जिसका गर्व राम ने अपने दुर्दमनीय शरों के प्रहार से भंग कर दिया था और फलस्वरूप उसके समस्त जल के सूख जाने से जल में निवास करनेवाले बृहदाकार मीन, मकर तथा उरग छटपटाने लगे थे। उस युद्ध-भूमि में धड़ इस प्रकार हिल रहे थे, मानों कह रहे हों कि जो रावण गर्वांध होकर सीता को ले आया है, उसकी धड़ पर सिर कैसे रह सकेगा? (कट-कटकर मरे हुए लोगों की) मज्जा रूपी कीचड़, केश-समूह-रूपी सेंवार, खोपड़ी-रूपी सीप, खंडित होकर गिरे हुए शिला-खंड-रूपी कमठ-समूह; टूटकर गिरे हुए खड्ग-रूपी मछलियाँ, चामर-रूपी हंस, श्वेत छत्र-रूपी झाग, आभूषणों का चूर्ण-रूपी बालुका, ढाल-रूपी जल-ग्रह, विशालकाय हाथियों के शव-रूपी पर्वत-खंड, वानर-तथा राक्षसों के शरीर-रूपी वृक्ष, आँत-रूपी दुष्ट सर्प, मरणासन्न राक्षसों की कराह-रूपी घोष, व्याकुल अश्व-रूपी मकर, तथा गिरनेवाली पताकाएँ-रूपी लहरें, इन सब से युक्त हो सब नदियों का उपहास करती हुई रक्त की नदी युद्ध-भूमि में बहने लगी। वह सारी रण-भूमि जाह्नवी के समान ऐसी आश्चर्यजनक दीख रही थी कि मानों वह कह रही हो कि भले ही रावण पापात्मा हो, राम का द्रोही हो, लोक-कंटक हो, नीच हो, तपस्वियों को मारनेवाला पापी हो, सतियों का नाश करनेवाला दुरात्मा हो, मैं उसे शरीर से मुक्ति प्रदान करूँगी, अपने में लीन कर लूँगी और उस पापी को स्वर्ग में भेजूँगी।

उस समय लंका में दैत्य-स्त्रियाँ उमड़ते हुए शोक-समुद्र में डूबी हुई बार-बार कह रही थीं—'क्या, राघव सूर्यास्त होने से पहले इस भीषण युद्ध को स्थगित करके अपने निवास को नहीं लौटेंगे? न जाने कब सूर्यास्त होगा।' निदान सूर्य अपने दीर्घ करों को समेटकर पश्चिम समुद्र में डूबने लगा, मानों उसने निश्चय कर लिया था कि तीक्ष्ण-शर-किरण-समूह से रावण के तमोगुण को नष्ट करने के लिए भयंकर-प्रताप-संपन्न राम ही पर्याप्त हैं। चारों ओर अंधकार ऐसे व्याप्त होने लगा, मानों उस पापी दशकंठ के नाश को सूचित करने के लिए निशा का केश-समूह चारों ओर फैल गया हो।

सूर्यास्त होने पर भी युद्ध को बिना स्थगित किये राक्षस, भयंकर गर्जन करते हुए वानरों से युद्ध करते रहे। उनके अट्टहासों, ताल ठोंकने की ध्वनियों, एक दूसरे को कोसने के शब्दों, दीर्घ हुंकारों, एक दूसरे को बुलाने या एक दूसरे की प्रशंसा करने के शब्दों, रथ-चक्रों की ध्वनियों, रथिक तथा सारथियों के भयंकर गर्जनों, धनुष के टंकारों, हाथियों के घंटे की ध्वनियों, उनकी चिघाड़ों, तुरही-निनादों तथा अश्वों की हिनहिनाहटों से युद्ध-भूमि गूँजने लगी। उस निविड़ अंधकार में कई प्रकार के शब्द सुनाई पड़ रहे थे। कोई कह रहा था—'मारो, मारो,' तो कोई कहता था—'भागो मत, भागो मत।' कहीं से सुनाई पड़ता था--'छोड़ो, छोड़ो', तो कहीं से 'मारो, मारो' की ध्वनि आ रही थी।

कोई कह रहा था 'छोड़ो मत, मारो', तो कोई कहता था, 'सिर काट लो, सिर काट लो।' कोई पूछ रहा था--'कहाँ है ?' तो कोई कहता था--'यहाँ आने दो, यहाँ।' इस प्रकार, की विविध ध्वनियों के साथ हुंकार तथा अट्टहास की ध्वनि करते हुए जब राक्षस तथा वानर युद्ध करने लगे, तब सारा आकाश धूलि से व्याप्त हो गया। क्रमशः अंधकार बढ़ जाने से राक्षस-सैनिक भ्रम से अपने ही पक्ष के लोगों पर अस्त्र चलाकर मार डालते थे। वानर भी अत्यधिक क्रोध से उन पापी राक्षसों से जूझकर रथिकों को मार डालते थे, सारथियों को चीर डालते थे, रथ के अश्वों को नष्ट-भ्रष्ट कर देते थे और रथों को ऊपर उठाकर पृथ्वी पर ऐसे पटकते थे कि उनके टुकड़े-टुकड़े हो जाते थे। फिर, वे गजों पर बैठे योद्धाओं का गर्व तोड़कर, मत्त गजों को पैरों से पकड़कर उन्हें ऊपर उठाकर, नीचे पटककर मार डालते। तितर-बितर होकर दौड़नेवाले अश्वों को पकड़कर ऊपर उठाते, और उन्हें वेग से घुमाकर नीचे ऐसे पटक देते थे कि खून बहने लगता। पदचर-सैनिकों को ऐसा मारते कि उनकी रीढ़ें, वक्ष, पसलियाँ, भुजाएँ, मुँह, दाँत, सिर तथा भेजा छिन्न-भिन्न होकर चारों ओर बिखर जाते। रथों के सतत संचलन से उत्पन्न तथा अश्वों के खुरों से उठी हुई धूलि आकाश की ओर इस प्रकार उड़ रही थी, मानों राक्षसों के मन की कालिमा चारों ओर व्याप्त हो गई हो। धूलि के अंधकार से मिलकर आकाश भर में व्याप्त होने से वह रात्रि राक्षसों तथा वानरों के प्राणों को हरनेवाली प्रलय-काल की रात्रि के समान दीख रही थी।

अपने लिए रात्रि अनुकूल होने से सभी राक्षसों ने अपने गर्जनों से त्रिकूटाचल को गुंजायमान करते हुए युद्ध-सन्नद्ध होकर एक साथ राम को घेर लिया और उन पर बाण-वृष्टि करने लगे। तब राम ने अग्नि-बाण चलाकर अंधकार को दूर कर दिया और अपने साथ युद्ध करनेवाले महोदर, महापार्श्व, सारण, शुक, वज्रदंत तथा महाकाय पर बड़े वेग से बाण चलाये। उनसे पीड़ित हो वे छहों भय-त्रस्त राक्षस भाग खड़े हुए। बचे हुए अन्य राक्षस-सैनिक राम के तीव्र शरों से नष्ट हो गये।

४६. इन्द्रजीत का माया-युद्ध

अंगद के हाथों से फेंके हुए गिरि-शृंग के कठोर प्रहार से रथ, सारथी तथा अश्वों को खोकर इंद्रजीत शीघ्र यज्ञ-शाला की ओर गया। राक्षस आवश्यक हवन-सामग्री ले आये। तब उसने, रक्तवर्ण के अधोवस्त्र, उत्तरीय तथा शिरोवस्त्र तथा पुष्प-मालाएँ पहनीं। फिर, उसने अग्नि के योग्य परिस्तरण (होमकुंड के चारों ओर रखे जानेवाले कुश) के रूप में भाले, भयंकर शस्त्र तथा शर रखे और क्रमशः काले बकरे के कंठ के रक्त तथा ताल की समिधाओं से होम करने लगा। तब अग्नि, विना धुआँ छोड़े विजय की सूचना देनेवाली अपनी चंचल शिखाओं को व्याप्त करते हुए जलने लगी और इंद्रजीत से प्रस्तुत आहुतियों को ग्रहण किया। इस प्रकार, इन्द्रजीत ने अत्यंत भक्ति से यथाविधि हवन पूरा किया और अग्निदेव से चार घोड़ों तथा विविध शस्त्रास्त्रों से युक्त एक स्वर्ण-रथ प्राप्त किया।

इसके पश्चात् वह उस रथ पर आरूढ होकर, ब्रह्माण्ड को विदीर्ण करनेवाले अपने भयंकर गर्जनों से इन्द्रादि देवताओं को भयभीत करते हुए राक्षस-सेनाओं के पास

आया और अदृश्य होकर, आकाश से ही, राम-लक्ष्मण पर घोर अस्त्रों की वर्षा करने लगा। राम तथा लक्ष्मण ने भी असंख्य शर आकाश की ओर चलाये, किन्तु उनमें से एक भी इन्द्रजीत को नहीं लगा। वह राक्षस आकाश में अदृश्य रहकर बड़े गर्व से सभी दिशाओं में घूमते हुए श्रेष्ठ वानर-वीरों का सहज ही नाश करने लगा। सूर्य-किरणों के समान आकाश से आनेवाले उसके क्रूर अस्त्र, वानरों तथा रामचन्द्र को दिखाई पड़ते थे; किन्तु उसके रथ की ध्वनि, घोड़ों के खुरों की ध्वनि, धनुष का टंकार, सारथी की बातें, कोड़े की ध्वनि, रथिक (इंद्रजीत) का गर्जन तथा उसका रूप, रथ तथा उसकी ध्वजाएँ कहीं भी दिखाई नहीं देती थीं। यह विचित्र युद्ध उस कपि-सेना को ऐसा लग रहा था, मानों वालि का संहार करनेवाले राम पर क्रुद्ध होकर इन्द्र अपने पुत्र के वध का प्रतिशोध लेने के उद्देश्य से भयंकर बाणों की वर्षा कर रहा हो। कपि-सैनिकों के अंगों को खंडित होते हुए देखकर रामचन्द्र से लक्ष्मण बोले--'हे देव, आकाश में छिपकर युद्ध करनेवाले इस राक्षस के प्रताप से, हमारी सहायता करनेवाले ये वानर इस प्रकार कटकर मर रहे हैं। अब मैं उस पर ब्रह्मास्त्र चलाकर, उसको तथा उसके वंश को भस्म कर दूँगा।'

तब राघव अपने अनुज से बोले--'हे लक्ष्मण, एक व्यक्ति के लिए क्या कहीं बहुतों का संहार करना उचित है? क्या, तुम युद्ध-नीति नहीं जानते? भय से छिपनेवालों को, पीठ दिखाकर भागनेवालों को, हाथ जोड़कर प्रणाम करनेवालों को, शरणार्थियों को, पराजितों को, शस्त्रहीन लोगों को तथा सोनेवालों को मारना कल्याण-कामी तथा पुण्यात्मा क्षत्रियों का धर्म नहीं है। मायावी इंद्रजीत का वध करने में समर्थ काल-रूपी वानरों को भेजना ही अब उचित है; ब्रह्मास्त्र चलाने का यह समय नहीं है।'

इस प्रकार कहने के पश्चात् उन्होंने नील, अंगद, हनुमान्, शतघ्न, गज, गवाक्ष, विक्रमी, पनस, केसरी, शरभ, ऋषभ, सन्नाथ, ग्रथन, गवय, नल, मैन्द तथा द्विविद नामक वानरों को इन्द्रजीत पर आक्रमण करने के लिए भेजा। तब वानर-वीर अत्यधिक वेग से आकाश में उड़ गये और वृक्षों तथा पर्वतों को फेंकने लगे; किन्तु बड़े दर्प के साथ उस राक्षस-राजकुमार ने उन पर भयंकर शर-वृष्टि करके उन्हें अत्यंत पीड़ित कर दिया। वे उस दैत्य को आकाश में कहीं भी न देख सकने के कारण राम-भूपाल के निकट लौट आये। प्रलय-काल के मेघ के समान काला तथा विशाल शरीर एवं क्रोध से भरी अरुण नेत्रों से युक्त अपना भयंकर रूप (दूसरों की) दृष्टि से बचाकर मेघनाद कहने लगा—'हे राजकुमारो, युद्ध में मेरे रूप को देखना सहस्राक्ष इन्द्र के लिए भी असंभव है। तुम किस गिनती में हो?' इस प्रकार कहते हुए उसने आकाश को कँपाते हुए धनुष का भयंकर टंकार किया, वज्रसम घोर बाणों को दाशरथियों पर चलाया और कवचों को छिन्न-भिन्न करने की शक्ति रखनेवाले कितने ही अस्त्र चलाये। इससे संतुष्ट न होकर इन्द्रजीत ने यम के समान भयंकर रूप धारण करके अत्यधिक क्रोध से वज्रपात के सदृश भयंकर तथा क्रूर सर्प-बाणों को राम-लक्ष्मण पर चलाया। तब उन्होंने अपने शक्तिसंपन्न बाणों से उस राक्षस पर कई श्रेष्ठ बाण चलाये; किन्तु इन्द्रजीत ने उन्हें चूर-चूर कर दिया और फिर असंख्य बाणों की वृष्टि कर दी। तब राम-लक्ष्मण उसी ओर बाण चलाने लगे, जिस

ओर से उसके शर आते थे । यह देखकर इन्द्रजीत ने उन दोनों सूर्यवंशियों को नागपाश से ऐसे बाँध दिया, मानों कह रहा हो कि सर्प के साथ रहना तुम्हारे लिए पहले से ही सहज रहा है; अब भी उनके साथ ही रहो । राम-लक्ष्मण ने भी (इन्द्रजीत को प्राप्त) ब्रह्मा के वर का सम्मान करने का निश्चय किया और वे आदिनारायण के वंशज, उस राक्षस-राजकुमार के द्वारा प्रयुक्त नाग-पाश से बँध गये । 'ये आज राम का रूप धारण किये हुए हैं; किन्तु विचार कर देखा जाय, तो इन्हीं ने वामन का रूप धारण करके तीन पग भूमि माँगी थी और कृतघ्न हो बलि को बाँधा था । भला उसका फल, मनुष्य का जन्म लेने के पश्चात् मिले बिना कैसे रहेगा'–इस प्रकार के लोक-कथन के अनुकूल ही रामचन्द्र अपने द्वारा उत्पन्न माया से आप बँध गये ।

माया के बंधनों में बँधे हुए राम सुध-बुध खोये-से पड़े रहे । यह देखकर देवता दिग्भ्रांत हुए और वानर खिन्न हुए । तब दुःखी सुग्रीव को देखकर विभीषण ने कहा—'हे सुग्रीव, ऐसे क्यों दुःखी हो रहे हो ? चाहे कैसा भी व्यक्ति क्यों न हों, उसके जीवन में विपत्तियाँ तो आती ही हैं । यदि सूर्यवंशज नाग-पाश से बँधे हुए हैं, तो क्या हुआ ?' यों कहकर उसने अपनी माया की दृष्टि से रावण के पुत्र को आकाश-वीथी में देखा और जल को अभिमंत्रित करके उससे राम-लक्ष्मण की आँखों को पोंछकर, उन्हें मेघनाद को दिखाया । उसके बाद सुग्रीव ने तुरन्त एक विशाल पर्वत को उखाड़कर इंद्रजीत पर फेंका; किन्तु उसने उसे बीच में ही खंड-खंड कर दिया और तीव्र शर-वृष्टि से सुग्रीव को ऐसे त्रस्त एवं व्याकुल कर दिया कि सुग्रीव को समर में पीठ दिखानी पड़ी । जो राक्षस सुग्रीव के प्रताप से भयभीत थे, वे इसे देखकर बहुत हर्षित हुए । इंद्रजीत इस विजय से अत्यधिक मोद-मग्न हो, अपने सैनिकों के साथ लंका में वापस चला गया और रावण से कहने लगा—'मैंने सर्प-बाणों से कपियों का नाश किया और इक्ष्वाकु-वंशजों को व्याकुल कर दिया है ।'

अपने पुत्र की वीरता पर मन-ही-मन हर्षित होते हुए रावण ने शीघ्र ही त्रिजटा को बुलाकर कहा—'राम को प्राप्त करने का दृढ विश्वास अपने मन में धारण किये रहने से भूमिसुता मेरा तिरस्कार कर रही है । आज इन्द्रजीत के हाथों में राम की जो दुर्गति हुई है, उसे सीता को दिखाओ । सीता को शीघ्र पुष्पक-विमान पर बैठाकर ले जाओ और राम की दशा दिखा लाओ, जिससे वह राम की आशा छोड़कर मुझे स्वीकार करे ।'

४७. नाग-पाशबद्ध दाशरथियों को देख सीता का दुःखी होना

रावण की आज्ञा मानकर त्रिजटा दानवियों के साथ सीता को पुष्पक-विमान पर बैठाकर ले आई और युद्ध-क्षेत्र में गिरे हुए वानरों तथा राम-लक्ष्मणों को दिखाया । वह कमल-लोचनी उनकी दशा देखकर अत्यंत दुःखी होकर अविरत अश्रुधारा बहाती हुई विलाप करने लगीं । वे कहने लगीं—"हाय राम, आपकी धनुर्विद्या कहाँ लुप्त हो गई ? आपमें ही स्थित हरि तथा हर आदि देवों को भी भयभीत करनेवाली आपकी बाण-शक्ति आज कैसे नष्ट हो गई ? इस संसार में आप ही अकेले परशुराम की भी उपेक्षा करने की शक्ति रखते हैं । सभी मुनि तथा नाग, आपकी सहायता के लिए सतत तत्पर रहते हैं । हाय, ऐसे नाग आज आपको बाँधनेवाले पाश बन गये हैं ! सामुद्रिकों ने मुझे देखकर कहा था कि

तुम्हारे शरीर में सब प्रकार के शुभ चिह्न हैं; तुम्हारे चरणतलों में रेखाएँ तथा कमल हैं; इसलिए पति के साथ तुम्हारा राजतिलक होगा; तुम्हें योग्य पुत्र उत्पन्न होंगे और तुम चिरसुहागिन रहोगी। हे सूर्यवंशतिलक, उनकी सभी बातें आज मिथ्या हो गईं। उन्होंने मुझे देखकर यह भी कहा था कि 'तुम्हारे (सीता के) चिकुर भ्रमर-समूह के समान नीले तथा सुंदर हैं, कटि क्षीण है, एक दूसरे से मिलनेवाली टेढ़ी भौहें हैं, बिजली की-सी कांति से युक्त दाँत हैं; विकृतिहीन स्थूल तथा वर्त्तुलाकार जाँघें हैं; हाथ, ललाट, नेत्र, मुँह तथा चरण सुंदर लक्षणों से समन्वित हैं, कांतियुक्त तथा स्निग्ध नखों से युक्त सुंदर अंगुलियाँ हैं; वर्त्तुलाकार, विवर्द्धित तथा सूक्ष्म अग्रभाग से युक्त दो कुच हैं; स्निग्ध एवं विशाल वक्ष तथा पार्श्वभाग हैं; नाभि गंभीर तथा सुंदर हैं तथा तुम्हारा शरीर दिव्य तथा कमनीय कांति से समन्वित है; अतः तुम्हारे समान भाग्यशालिनी कोई नहीं है।' हे राजन्, मेरा वह भाग्य आज ऐसा फूट गया है ? आर्यों की यह उक्ति कि ऐसे षोड़श लक्षणों से संपन्न रमणी अत्यंत भाग्यशालिनी होगी, आज मिथ्या साबित हुई। हे राजन्, यह सब मेरे दुर्भाग्य का फल है। आर्यों का कथन है कि जिस कन्या के, लाल कमल की-सी सुंदर हथेलियाँ हों, पल्लव के समान अरुण कांतिवाले चरण हों, क्षीण कटि हो, मंदहास से युक्त मुख-कमल हो, वह चिर सौभाग्यवती होती है। यह कथन भी झूठ ही साबित हुआ। हे राजन्, मेरी साधना का यही परिणाम हुआ। मुझे चुराकर ले आनेवाले भयंकर राक्षस की खोज करके मेरा पता आपने जान लिया, समुद्र को बाँधकर कपि-सेना के साथ इस पार चले भी आये, पर हाय, एक 'गोपद' में आप डूब गये ! हे राजन्, भयंकर याम्य शर, वरुणास्त्र, आग्नेयास्त्र तथा ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करना आप भूल तो नहीं गये ? कोई भी शत्रु, आपके दृष्टि-पथ में पड़ जाने मात्र से वह प्राणों से हाथ धो बैठता था; अब आपकी ऐसी दशा हो गई है ! दैव-योग से ही ऐसा हुआ है, अन्यथा किसकी शक्ति है कि आपका सामना करे। यदि मेघनाद अपनी माया के बल से युद्ध में आपको ऐसे भयंकर पाशों से बाँध सका, तो स्पष्ट है कि विधि-विधान का अतिक्रमण करना किसी के लिए संभव नहीं है। हे नाथ, हे वीर, हे रामचन्द्र, मैं अपने लिए नहीं रोती; आपके लिए नहीं रोती; आपके लिए अपने प्राण त्यागनेवाले काकुत्स्थ-वंशज लक्ष्मण के लिए भी मैं दुःखी नहीं होती; मेरे दुःख को देख द्रवीभूत हृदय से शोक करनेवाली अपनी माँ के लिए भी दुःखी नहीं होती; किन्तु सतत केवल आपका ही ध्यान अपने मन में धारण किये रहनेवाली माता कौसल्या के लिए विलाप करती हूँ। कब चौदह वर्ष समाप्त होंगे, कब राम अयोध्या में आयेंगे— ऐसी प्रतीक्षा करनेवाली आपकी माता की आशाएँ आज मिट्टी में मिल गईं।"

इस प्रकार, विलाप करनेवाली जानकी को सांत्वना देते हुए अत्यंत दयार्द्र चित्त से त्रिजटा सीता से बोली—'हे कमल-लोचनी, राम पर कोई विपत्ति आ नहीं सकती। आप क्यों इस प्रकार शोक कर रही हैं ? यदि वानर-सेना ऐसी निर्बल है, तो वे इतना बड़ा कार्य-भार उठाते ही कैसे ? वहाँ देखिए; वानर, बड़ी सावधानी से आपके प्रभु की रक्षा कैसे कर रहे हैं ? हे भूपुत्री, आप निश्चिंत रहिए। यदि ऐसा नहीं होता (यदि राम पर कोई विपत्ति आनेवाली है), तो वह पुष्पक-विमान पृथ्वी पर गिरे बिना कैसे रहता ?

(क्योंकि, इसका गुण है कि यह विधवाओं का वाहन नहीं बनता), इसलिए आप राम के लिए विलाप मत कीजिए। मेरी बात का विश्वास कीजिए। हे कमलमुखी, सूर्य-वंश-तिलक राम अवश्य ही लंकेश्वर का वध करके लंका पर विजय प्राप्त करेंगे और आपको ग्रहण करेंगे। हे कल्याणी, अब दुःख मत कीजिए। मेरी बातों का विश्वास कीजिए।' तब सीता ने सोचा कि कदाचित् माया-सिर के समान यह भी कोई माया होगी और त्रिजटा की बातों पर विश्वास करके शांत हुई। इसके पश्चात् त्रिजटा ने उन्हें अशोक-वन में पहुँचा दिया।

४८. लक्ष्मण के लिए राम का विलाप करना

यहाँ मनुवंशतिलक राम की चेतना लौट आई। पार्श्व में पड़े हुए अपने अनुज को देखकर उमड़ते हुए शोक से वे कहने लगे—"हे सुग्रीव, मेरे अनुज की ओर देखो, उसकी कैसी दुर्गति हुई है। हम सीता को खो बैठे। उसे रावण के कारागार से मुक्त नहीं कर सके। अब मुझे इसे भी खोना पड़ रहा है। सौमित्र को खोने के पश्चात् अब मुझे सीता की ही क्या आवश्यकता है? अब मेरा जीवित रहना भी किस काम का? यत्न करूँ, तो सीता के समान दूसरी पत्नी को मैं कदाचित् प्राप्त कर सकूँगा। पृथ्वी पर पत्नियाँ मिल सकती हैं, पुत्र प्राप्त हो सकते हैं; बंधु-बांधव मिल सकते हैं; किन्तु सहोदर भाई नहीं मिल सकता। मैं इसे केवल भाई समझकर दुःखी नहीं होता। यह महाबली सतत मेरी सेवा में तत्पर रहता है। यह कौसल्या तथा सुमित्रा, इन दोनों की एक समान भक्ति करता है। सुमित्रा, इससे भी बढ़कर मुझसे स्नेह करती है। ऐसी पुत्र-वत्सला, माता सुमित्रा को आज मेरे कारण दुःख भोगना पड़ रहा है। यदि मैं अयोध्या जाऊँ, तो भ्रातृ-वत्सल भरत तथा शत्रुघ्न पूछेंगे कि लक्ष्मण कहाँ हैं? वे क्यों नहीं आये? तो मैं अपने भाइयों से क्या कहूँगा? मुझे वन से अकेले आते हुए देखकर माताएँ पूछेंगी कि, हे पुत्र, सौमित्र क्यों नहीं आया है? हमारा मन व्याकुल हो रहा है। तो मैं उनका क्या प्रत्युत्तर दे सकूँगा? मैं कौन-सा मुँह लेकर उनको आश्वासन दूँगा। इस शरीर के साथ मैं वहाँ जाऊँगा भी कैसे? भले ही हिमाचल फट जाय, सूर्य पृथ्वी पर गिर पड़े, पानी स्थिर रह जाय, समुद्र सूख जाय, हवा की गति बंद हो जाय, अग्नि शीतल हो जाय, लक्ष्मण कभी मेरी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता। कभी इसने मुझसे अप्रिय बातें नहीं कीं। इसका चित्त मुझ पर एक निष्ठा से केन्द्रित है। इसकी समता करनेवाला भाई और कहाँ मिल सकता है। यही मेरा प्राण है, और यही मेरा बंधु है। इसे छोड़कर मैं अकेले नहीं रह सकता। यह जहाँ जायगा, मैं भी वहीं जाऊँगा। यही मेरा संसार है। मैं अन्य कोई संसार नहीं चाहता। उस दिन सौमित्र मेरे साथ आया था, आज मैं सौमित्र के साथ जाऊँगा। हे पराक्रमी सुग्रीव, तुमने मेरे हित के लिए बहुत-से कार्य किये हैं। अब तुम वालि-पुत्र को लेकर वानर-सेना के साथ किष्किंधा को लौट जाओ। लक्ष्मण के साथ मेरे चले जाने के पश्चात्, रावण तुम्हें तंग करेगा। जयशील सौमित्र के बिना, मेरी विजय का भी वही मूल्य होगा, जो अंधे के लिए चंद्रोदय का मूल्य होता है। मेरे प्रति श्रद्धा रखने के कारण वायु-पुत्र ने कई अद्भुत कार्य किये हैं; उसने समुद्र लाँघकर जानकी को देखा और

अनेक राक्षसों का संहार किया । यह अंगद, यह सुषेण, ये धीमान् द्विविद, मैन्द, ये गवय, गवाक्ष, गज, ये शक्तिशाली नील, संपाति, केसरी आदि अन्य वानरों ने मेरे लिए महान् कार्य किये । आज हम पर जो विधि का प्रबल आघात हुआ है, उसे टालना किसी के लिए संभव नहीं है । लक्ष्मण ने युद्ध-भूमि में बहुत-से राक्षसों का तृणवत् संहार किया; पर इस समय शत्रु के तीव्र बाणों से बँधकर, आँखें बंद किये हुए धूलि में लोट रहा है । श्रेष्ठ शय्या पर सोनेवाला आज युद्ध-भूमि में, शर-शय्या पर पड़ा हुआ है । विशाल रविकुल-रूपी समुद्र की ज्वार को शांत करके लक्ष्मण-रूपी कुमुदप्रिय (चंद्र) अस्त हो गया है ।"

४९. विभीषण तथा अंगद का वानरों को धैर्य देना

इस प्रकार, राम को विलाप करते हुए देखकर सभी वानर शोक-समुद्र में डूब गये उसी समय मेघनाद फिर से युद्ध करने के लिए आ पहुँचा । अंजन-शैल के सदृश आकार-वाले उसे देखकर सभी वानर सुध-बुध खोकर संभ्रमित हो रहे । तब विभीषण हाथ में गदा लिये वानर-सेना के मध्य में घूमते हुए उनको धैर्य देने लगा । फिर उसने रवि-पुत्र सुग्रीव को देखकर कहा—'हे सुग्रीव, इस प्रकार तुम शोक क्यों कर रहे हो ? यह युद्ध का समय है । यह समय शोक में डूबे रहने का नहीं है ? दुर्निवार तरंगों से पूर्ण समुद्र के मध्य फँसी हुई नाव के समान हमारी सेना कर्णधार-रहित हो गई है । अब हमारा कर्त्तव्य है कि हम युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जायँ ।'

इसे सुनकर अंगद ने कहा—'तुम्हारा कथन सर्वथा उत्तम है । नाग-पाशों से बँधे हुए राजकुमार, पृथ्वी पर गिरे हुए हैं और क्षतों से अविरत बहनेवाली रक्त-धारा के कारण मूर्च्छित-से पड़े हैं । तुम लोग इनकी रक्षा सावधानी से करते रहो । उदयाद्रि पर सूर्य का आगमन होने से पहले, मैं समस्त राक्षसों को जीतकर जानकी को यहाँ ले आऊँगा। हनुमान् आदि वानरों के साथ जाकर, लंका के दुर्ग के द्वार, दीवार, तोरण आदि को अपनी मुष्टियों के प्रहार से चूर-चूर कर दूँगा । बंधु-बांधवों के साथ दशकंधर को भस्म कर दूँगा । समस्त भूत-समूह आज मेरा पराक्रम, मेरा बाहुबल और राम के प्रति मेरी भक्ति देखेंगे । रघुनाथ का कार्य करने के लिए, चंदन तथा केयूर से अलंकृत मेरी भुजाएँ बड़े दर्प के साथ फड़क रही हैं । रावण को जीतकर विभीषण को इस लंका के सिंहासन पर प्रतिष्ठित करूँगा, ताकि रघुवीर प्रसन्न हों; अन्यथा मैं युद्ध में उस राक्षस के हाथों से मरकर लक्ष्मण के चरण-चिह्नों का अनुसरण करूँगा ।'

तब सुग्रीव ने अंगद को देखकर कहा—'हे पुत्र, तुम अब इन दाशरथियों को शीघ्र किष्किंधा ले जाओ । मैं इन्द्रजीत तथा रावण को समस्त राक्षसों के साथ मारकर रघुराम की पत्नी को शीघ्र वहाँ ले आऊँगा ।' सुग्रीव को तथा रामचन्द्र को देखकर सभी वानर भयभीत हो शोक-समुद्र में डूब गये । तब सुषेण ने सबको देखकर कहा—'हे वानर-वीरो, इस नाग-पाश से मुक्त होने का मैं एक उपाय जानता हूँ । पूर्वकाल में देवताओं और असुरों के बीच भीषण संग्राम में सभी देवता इसी प्रकार नाग-पाशों से बँध गये थे । तब देवताओं ने दिव्य औषधियों से, इन बंधनों से मुक्ति प्राप्त की । वे सभी औषधियाँ क्षीर-

सागर के उस पार द्रोण पर्वत पर मिलती हैं। हनुमान् को भेजो, तो वह अवश्य उन औषधियों को ले आयगा। तुम लोग दुःख मत करो।

५०. नारद का आगमन

उसी समय परम योगीन्द्र, पर-तत्व-वेत्ता, परम पावन मूर्त्ति तथा परम-वैष्णव नारद मुनि वहाँ आये। सहस्र सूर्य-सदृश कांति से युक्त उनकी देह पर कृष्ण-मृग-चर्म था। उस पर उनका पिंगल वर्ण जटा-समूह ऐसा शोभायमान था, जैसे काले-काले बादलों पर बिजली हो। उनके ललाट पर ऊर्द्ध्व-पुंड्र था और वे कौपीन-विलसित दण्ड धारण किये हुए थे। उनकी वीणा से रमणीय नारायण-मंत्र का अनुरणन हो रहा था। उन्होंने अपने साथी योगीन्द्र-समूह को आकाश में ठहरा दिया और स्वयं बड़े हर्ष से राम के निकट पहुँचकर बड़े आदर के साथ हाथ जोड़कर उनकी प्रदक्षिणा की और अत्यंत भक्ति के साथ निवेदन किया—"हे देव, ब्रह्मादि देवताओं ने, क्षीर-सागर में शयन करनेवाले आपके समक्ष पहुँचकर रावण आदि राक्षसों के अत्याचारों के संबंध में निवेदन किया, तो उन पर कृपा करके, उनकी रक्षा करने के निमित्त आप दशरथ के पुत्र होकर जन्मे। अतः, आपका इस प्रकार दुःखी होना उचित नहीं है। आपके नाम-मात्र का स्मरण करने से अज्ञान दूर हो जाता है। तब आपको अज्ञान छू भी कैसे सकता है? आप स्वयं विचार करके देखें। आप स्वयं नारायण हैं; पूर्णज्ञान-निधि हैं, चारु-कौस्तुभ-रत्न विलसित वक्षवाले हैं; सतत लक्ष्मी के निवास-योग्य विशाल अंगों से विलसित हैं; आदिदेव हैं; सर्वांतर्यामी हैं, वेद-वेद्य हैं; विश्व-रूप हैं; स्मरण करनेवाले योगीश्वरों के ध्यान में दिखाई पड़नेवाले सच्चिदानंद-रूप हैं। यह पृथ्वी ही आपका चरण है, आकाश ही मस्तक है, ब्रह्मा आपका ललाट है, सूर्य-चंद्र नेत्र हैं, पवन ही आपका श्वास है, अग्नि ही आपका मुँह है, सरस्वती जिह्वा है, वेद-राशि आपका दंत-समूह है, गायत्री ही शिखा है; प्रणव ही हृदय है, दिशाएँ ही कान हैं, महनीय धर्म ही मन है; असंख्य विजयों से संपन्न देवता ही आपकी बाहुएँ हैं; ब्राह्मण-समूह ही आपका उदर है; मित्र तथा वरुण आपकी जाँघें हैं; अश्विनी-देवता आपके जानु हैं, और समस्त विश्व आपका रोम-समूह है। हे पृथ्वी-नाथ, वह देखिए, सभी देवता, किन्नर, यक्ष, गंधर्व आदि आपकी विजय की अभिलाषा करते हुए आकाश में खड़े हैं। आप अपना भ्रम छोड़ दीजिए, निष्कलंक धीमान् बन जाइए और शीघ्र राक्षसों का संहार कीजिए। कदाचित् आप संसार को यह दिखाना चाहते हैं कि मानव मोहवश इच्छा-रूपी पाश से बँध जाय, तो वह इसी प्रकार संसार-सागर को पार नहीं कर सकता। अन्यथा हे श्रीराम, आप कैसे नाग-पाशों से बँधने लगे? आप आदिदेव हैं। आप अपने निज रूप का स्मरण कीजिए। आपका वाहन तथा आपके पताके का चिह्न गरुड़ यहाँ आयगा। उसके आते ही ये सभी नाग-पाश खुल जायेंगे।" इतना कहकर नारद आशीर्वाद देकर क्षीर-सागर को चले गये।

५१. राघवों का नाग-पाश से मुक्त होना

नारद के वचनों को सुनकर राघव ने अपने आदिदेव होने की बात का विचार किया और गरुड़ का स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही गरुड़ क्षीर-सागर के उत्तर

तट पर से आकाश की ओर उछला। जिस वेग से वह उछला, उस वेग के कारण पृथ्वी के नीचे रहनेवाला आदिशेष चौंक पड़ा। उसके पंखों से उत्पन्न अत्यधिक वायु से आकाश आलोडित-सा हो गया और नक्षत्र गिरने लगे। पंखों की फड़फड़ाहट के कारण उत्पन्न ध्वनि से समस्त लोक भयाक्रांत-से हो गये और समस्त आकाश धूलि से व्याप्त हो गया। उसकी तीव्र गति के कारण शैल-शृंग लुढकने लगे और समुद्र आलोडित होने लगा। वह दस सहस्र सूर्यों की संयुक्त प्रभा के समान दीप्त हो रहा था और प्रभा-समन्वित पक्षों से युक्त मेरु पर्वत के समान दीख रहा था। इस प्रकार, आकाश-मार्ग से आनेवाले गरुड़ को देखकर राम-लक्ष्मण को आबद्ध किये हुए सभी नाग उन्हें छोड़कर चले गये। यथार्थ तो यह है कि जो कोई उस गरुड़ का स्मरण करता है, वह सभी प्रकार के बंधनों से मुक्त हो जाता है। फिर, राम स्वयं भी यदि चाहते, तो वे अपने बंधनों को काट देने में समर्थ थे।

सुग्रीव आदि वानर आश्चर्य-चकित हो देखते रहे। गरुड़ ने राम की परिक्रमा की और राम-लक्ष्मण को बार-बार प्रणाम किया; अपने कांतियुक्त पक्षों को उन दोनों के शरीरों पर फेरा, और उनके समक्ष खड़े होकर, हाथ जोड़कर निवेदन किया—'हे देव आपके ये नाग-पाश-बंधन छूट गये। अब आप इन्द्र-वैरी रावण का संहार करके सीता को साथ लेकर अयोध्या लौट जाइए। हे राजन्, असुरों को दण्ड देते समय आप उनकी मायाओं से सावधान रहिए। उनकी किसी भी माया से धोखा मत खाइए।' इतना कहकर उसने फिर उनकी प्रदक्षिणा की, उनकी प्रशंसा करके, उन्हें आशीर्वाद दिया। फिर, कश्यप-पुत्र (गरुड़) ने उन्हें हृदय से लगाया, प्रणाम किया और शीघ्र क्षीर-सागर को रवाना हो गया।

नाग-पाशों से मुक्त होने से राम-लक्ष्मण प्रसन्नचित्त हुए। सभी वानर आनंद-सागर में निमग्न-से हो गये। वे सिंहनाद करते हुए तथा पूँछें हिलाते हुए नृत्य करने लगे। कुछ वानर हर्ष से उछल-कूद करते हुए, अट्टहास करते हुए, इधर-उधर दौड़ते हुए, पर्वतों और वृक्षों को फेंककर समस्त लंका का सर्वनाश करने की कल्पना करते हुए अत्यधिक हर्ष-नाद करने लगे। उनके कोलाहल से लंका हिल-सी गई; आकाश विदीर्ण-सा हो गया। इतने में सूर्योदय हुआ और रावण ने युद्ध-भूमि का वृत्तांत जानने के लिए अपने दूतों को भेजा।

दूतों ने दुर्ग की दीवारों पर से इक्ष्वाकु-वंशज राम-लक्ष्मण को नाग-पाश से मुक्त होकर बैठे देखा। उनकी सेवा में सुग्रीव बैठा था। विभीषण सविनय खड़ा था, और सारी कपि-सेना उनके समक्ष बड़ी भक्तियुक्त हो खड़ी थी। वे दोनों राज-पुत्र युद्ध के लिए अपनी सेना को उत्साहित कर रहे थे और देखने में विशृंखल मत्त गजों के समान लग रहे थे। जब दूतों ने यह दृश्य देखा, तब उन्होंने शीघ्र जाकर दनुजेश्वर से सारा समाचार कह सुनाया। यह सुनकर रावण खिन्न तथा आश्चर्य-चकित हुआ और मंत्रियों से कहा—'नाग-पाशों से मुक्त होने की क्षमता रखनेवाले राम-लक्ष्मण के द्वारा लंका का सर्व-नाश निश्चित ही है। भला, कहीं नाग-पाश भी छूटते हैं? अब मेरी विजय की आशा नहीं है। राक्षस-लक्ष्मी अब इस युद्ध में नष्ट हो जायगी। कदाचित् गरुड़ ही आया हो, अन्यथा नाग-पाश कैसे छूटते? अवश्य ही गरुड़ ने मुझ पर विजय पाई है। नहीं तो नर और वानरों में इतनी शक्ति कहाँ है?'

५२. धूम्राक्ष का युद्ध

इस प्रकार कहने के पश्चात् उसने एक मत्त गज के हुंकार की भाँति लंबी साँस छोड़ी और धूम्राक्ष को आज्ञा दी कि तुम एक विशाल सेना लेकर शीघ्र राम-लक्ष्मण पर आक्रमण करो । तब दैत्यपति को प्रणाम करके धूम्राक्ष युद्ध के लिए चल पड़ा । उसकी सेना भी चारों ओर से चली । भेड़ियों तथा सिंहों के मुखवाले फुर्तीले घोड़ों से युक्त उसका रथ, कर्ण-पुटों को विदीर्ण करनेवाली तथा दिशाओं को कंपित करनेवाली भयंकर ध्वनि करता हुआ तथा अपनी अनुपम दीप्ति फैलाता हुआ निकल पड़ा । भेरी, शंख, डंका, आदि विविध वाद्यों का निनाद करते हुए युद्ध के लिए आनेवाले धूम्राक्ष को कई दुश्शकुन दिखाई दिये । तब रथ के आगे जानेवाले राक्षस भयंकर गर्जन करके भयभीत हो निश्चेष्ट-से हो गये । इस पर भी बिना रुके बड़ी तत्परता दिखाते हुए धूम्राक्ष ने समुद्र के समान विशाल वानर-सेना पर आक्रमण किया । असुर तथा वानर आकाश का स्पर्श करनेवाले निनाद करते हुए आपस में जूझ गये । दानव खड्ग फेंकते थे, तो वानर उन पर वृक्षों का प्रहार करते थे । राक्षस भाले भोंकते थे, तो वानर मुष्टियों से आघात करते थे । राक्षस हठ करके (वानरों पर) घोड़े दौड़ाते थे, तो वानर उन घोड़ों को अपने नखों से चीर डालते थे । दानव उन पर रथ चलाते थे, तो वानर उनको चूर-चूर कर देते थे । दानव मत्त गजों को उनसे टकराते थे, तो वानर क्रोध से उन्हें पृथ्वी पर पटक देते थे ।

इस प्रकार, दोनों पक्षों के योद्धाओं में भयंकर युद्ध होने लगा । वानर-वीर यम के सदृश भयंकर आकार धारण करके असुरों को पैरों से कुचलकर, हाथियों को पृथ्वी पर रगड़कर मार डालते थे और उन्हीं (मृत) हाथियों को असुरों पर फेंककर उनका दर्प-दलन कर देते थे । फिर, रथों के कूबर पकड़कर उन्हें (रथों को) आकाश में तेजी से घुमाकर पृथ्वी पर पटक देते थे और उन्हीं टूटे हुए रथों को उठाकर राक्षसों पर फेंककर उनको पृथ्वी पर गिरा देते थे । फिर, वानर घोड़ों के पैरों को पकड़कर ऊपर उठाते और उन्हें पृथ्वी पर पटककर मार डालते, और उन्हीं मरे हुए घोड़ों को राक्षसों पर फेंककर उन्हें मार डालते थे । शत्रु के पदचर सैनिकों पर पद-प्रहार करके उनकी पसलियों को चूर-चूर करके मार डालते थे और उनके शवों को राक्षस-सेना पर फेंककर उन्हें नीचे गिरा देते थे। वे राक्षस-सेना में घुस जाते और अपने भयंकर दाँतों से राक्षस-समूह को काटकर उन्हें तितर-बितर कर देते, उनके अस्त्रों को तोड़ देते, कुहनियों से उनके मुखों पर प्रहार करते, नीचे गिराते और उनके गले घोंट देते । फिर, उनके पैरों को दबाकर अपने टखनों से ऐसा प्रहार करते कि उनकी पसलियाँ चूर-चूर हो जातीं । फिर, वे कुछ राक्षसों के कंठ में अपनी पूँछों को फंदे की तरह डाल देते और उन्हें इस प्रकार कस देते कि बेचारे राक्षसों की पुतलियाँ घूम जातीं और वे जहाँ के तहाँ ढेर हो जाते । इस प्रकार, सारी युद्ध-भूमि राक्षसों के शवों से ऐसी पट गई कि पता नहीं लगता था कि यह सिर है, यह आँख हैं, यह मुँह है, यह कान हैं, यह नाक है, यह कंधा है, ये हाथ हैं, यह शरीर है, यह कमर है, यह जाँघ है, यह घुटना है और यह पैर है । मज्जा, मांस, भेजा, रक्त, आँतें, हड्डियाँ, चर्म तथा खोपड़ियों के तो ढेर ही लग गये थे ।

तब धूम्राक्ष ने बड़े उपेक्षा-भाव से उस कपि-सेना पर आक्रमण किया और अपने प्रताप का प्रदर्शन करते हुए मुद्गरों के प्रहारों से वानरों के सिर विदीर्ण करते हुए, क्रोध से भाले चलाते हुए, विविध अस्त्रों से भयंकर युद्ध करने लगा । उसके भयंकर प्रहारों से कई वानर-सैनिक रक्त उगलते हुए गिर पड़े । कुछ धैर्य खोकर, उसके प्रहारों से अपने को बचाकर भागने लगे । यह देखकर हनुमान् ने बड़े क्रोध से एक विशाल पर्वत उस राक्षस पर फेंका; लेकिन उसने अपनी गदा से उस पर्वत को रोककर अपने को बचा लिया; किन्तु वह पर्वत उसके रथ पर गिरा और रथ चूर-चूर हो गया । तब पवन-कुमार ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हुए तरु, शैल तथा पाषाणों के प्रहारों से राक्षसों के सिर ऐसे चूर-चूर करने लगा, जैसे यम समस्त ब्रह्माण्ड को विदीर्ण करके चूर-चूर करता हो । फिर, वह सिंह-सदृश पराक्रमी हनुमान् एक पर्वत-शृंग को उठाकर धूम्राक्ष की ओर बढ़ा । तब उसने 'लो, अब मरो' कहते हुए अपनी गदा हनुमान् के सिर पर चलाई । किन्तु, हनुमान् ने उस धूम्राक्ष की शक्ति, शौर्य, क्रोध तथा साहस की उपेक्षा करते हुए, भयंकर गर्जन करके अपने हाथ के उस शैल-शृंग को धूम्राक्ष पर ऐसा फेंका कि उस राक्षस के सिर के दो टुकड़े हो गये और वह ढेर होकर वहीं गिर गया । उस समय चारों ओर ऐसी ध्वनि फैल गई, मानों वज्रपात होने से कई पहाड़ गिर रहे हों । धूम्राक्ष को इस प्रकार मरे हुए देखकर हतशेष कुटिल राक्षस पवन-पुत्र के प्रताप से भयभीत हो उठे और शीघ्र ही लंका की ओर भागने लगे । उनके भागते समय पृथ्वी भी काँपने लगी ।

५३. अकंपन का युद्ध

धूम्राक्ष की मृत्यु का समाचार सुनकर रावण का हृदय क्रोध से जलने लगा । तब उसने देवताओं को कंपित करने की क्षमता रखनेवाले, दिव्यास्त्र शस्त्रों से संपन्न तथा दिव्य रथ से विलसित अकंपन नामक राक्षस को, एक बड़ी सेना के साथ वानरों से युद्ध करने के लिए भेजा । प्रलय-काल के मेघ के समान आकारवाला वह राक्षस अपने आभूषणों की दीप्ति तथा मणियों की कांति से सूर्य-मंडल के समान देदीप्यमान होते हुए स्वर्ण-रथ पर चढ़कर युद्ध के लिए चल पड़ा । उसके रथ की पताका ऐसे फहरने लगी, मानों कह रही हो कि लो, अब अकंपन युद्ध करने आ गया है । राक्षस-वीरों के भयंकर हुंकारों तथा भेरी, पटह आदि के निनादों के मध्य, अपने साथ असंख्य चतुरंगिणी सेना लिये हुए गगन को भी भेदनेवाले भयंकर गर्जन करते हुए, उसने वानर-सेना पर आक्रमण किया । दोनों पक्षों की सेनाएँ आपस में भिड़ गईं और बड़ी भयंकर गति से युद्ध करने लगीं । उस घोर संग्राम के कारण उत्पन्न लाल धूलि सभी दिशाओं तथा आकाश में व्याप्त हो गई और कपि-सेना तथा असुर-सेना के बीच अंधकार-सा छा गया ।

उस समय कुछ सैनिक तो अपने पक्ष के लोगों को पहचान कर युद्ध करते थे । कुछ उनकी बोली तथा चेष्टाओं से उन्हें पराया समझकर युद्ध करते थे और कुछ तो किसी प्रकार का विचार किये बिना, जो कोई भी सामने पड़ जाता, उससे भयंकर गति से युद्ध करते जाते थे । वानरों के द्वारा फेंके जानेवाले वृक्ष तथा पर्वत एवं दैत्यों के द्वारा चलाये जानेवाले भयंकर शस्त्र चारों ओर फैलकर धूलि-रूपी तिमिर समुद्र में जलचरों के

समान दीखते थे । राक्षसों तथा वानरों के बड़े उत्साह से युद्ध करते समय, सैनिकों के शरीरों से उमड़नेवाली रक्त-धाराओं के कारण सारी पृथ्वी की धूलि सिंच गई । युद्ध में वानरों का युद्ध, दुस्सह होते देखकर अकंपन अग्नि के समान क्रुद्ध हुआ । तब धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर बड़े उत्साह से उस महाबली ने अपने सारथी से कहा—'वानर-सेना वृक्षों तथा पर्वतों की सहायता से राक्षस-समूह को नष्ट कर रही है । शीघ्र ही मेरा रथ उनकी ओर ले चलो ।'

उसका सारथी रथ को उसी ओर ले गया । अकंपन ने उस वानर-सेना पर अपने तीक्ष्ण बाणों की वृष्टि-सी कर दी, तो सभी वानर धैर्य खोकर निश्चेष्ट-से हो गये । तब हनुमान् ने बड़े साहस के साथ उस राक्षस का सामना किया । तब उसके साथ वानरों ने भी दानव-सेना पर आक्रमण किया । अकंपन अपनी अद्वितीय वीरता का परिचय देते हुए, भयंकर गर्जन-रूपी निर्घोष करते हुए, मेरु पर्वत के समान आकारवाले पवन-पुत्र पर प्रलय-काल के मेघ की भाँति शर-वृष्टि करने लगा । किन्तु हनुमान् ने उनकी उपेक्षा करके अट्टहास किया और प्रलय-काल के रुद्र के समान अपनी क्रुद्ध दृष्टियों से रौद्र रस उगलते हुए, निर्भय हो एक विशाल पर्वत को समूल उखाड़कर उसे अकंपन पर ऐसा फेंका, जैसे इन्द्र ने नमुचि पर वज्र गिरा दिया था; पर उस दानव ने उस पहाड़ को अर्द्ध-चन्द्रास्त्र से चूर-चूर कर दिया । तब हनुमान् और भी उद्धत हो, अपनी महनीय शक्ति को प्रकट करते हुए तथा आँखों से स्फुलिंगों को गिराते हुए शीघ्रता से एक दूसरा पर्वत उखाड़कर ले आया और भयंकर गर्जन करके उसे बड़ी क्रूरता से उस राक्षस पर फेंका । किन्तु, राक्षस ने शीघ्र ही उस पर्वत के टुकड़े-टुकड़े कर दिये । इस पर मारुति और भी क्रुद्ध हो उठा और बड़े वेग से एक पर्वताकार वृक्ष को उखाड़ा और अपने पैरों के आघात से पृथ्वी को कँपाते हुए स्फुलिंगों से युक्त आँखों से उस वृक्ष को घुमाकर अन्य वृक्षों को तोड़ते हुए दैत्य-समूह पर पिल पड़ा । उसने रथिकों को मार डाला, रथों तथा उसके अश्वों को मिट्टी में मिला दिया, तथा राक्षसों का संहार कर दिया । फिर हाथियों के समूह पर आक्रमण करके, उनके दाँतों, हड्डियों, उनके कुंभों पर बैठे महावतों, उनके अंकुशों, उनकी घंटियों तथा आभूषणों आदि को चूर-चूर करके एक पिंड-जैसा बना दिया और कुछ हाथियों को चूर-चूर करके मिट्टी में मिला दिया । उसके पश्चात् उसने घुड़सवारों के साथ घोड़ों को मार डाला और पदचर सेना को दल दिया । यम के समान अत्यधिक भयंकर गति से युद्ध करनेवाले हनुमान् को देखकर अकंपन मन-ही-मन बहुत क्रुद्ध हुआ । उसने एक साथ चौदह तीव्र बाणों को चलाकर (हनुमान् के) हाथ में रहनेवाले अश्वकर्ण वृक्ष के टुकड़े-टुकड़े कर दिये और अत्यंत हर्ष से सिंहनाद किया । हनुमान् के शरीर से रक्त-धाराएँ छूटने लगीं और तब वह पुष्पित अशोक के समान दीखने लगा । फिर, हनुमान् ने सहज ही एक और वृक्ष को उखाड़ लिया और उससे अकंपन के सिर पर प्रहार किया । उस राक्षस का सिर विदीर्ण हो गया और उसने एक पर्वत के समान पृथ्वी पर गिरकर अपने प्राण छोड़ दिये । उसके गिरते ही वानरों के तीक्ष्ण प्रहारों को सहना असंभव जानकर तथा हनुमान् को समक्ष देखकर सभी राक्षस-वीर भयभीत हो गये और प्राण लेकर लंका की ओर भाग गये । सभी वानर-वीर हनुमान् के साहस की प्रशंसा करने लगे ।

५४. महाकाय का युद्ध

शत्रुओं के हाथ में अकंपन को मरा हुआ जानकर दशकंठ बहुत खिन्न हुआ और उसने महाकाय को बुलाकर कहा—'अपने शौर्य को प्रकट करते हुए नरों तथा वानरों का संहार करो।' तब वह पराक्रमी शीघ्र युद्ध की सज्जा से सज्जित हो, रमणीय मयूर-ध्वजा से अलंकृत, मणियों की प्रभा से विलसित शस्त्रास्त्रों से परिपूर्ण तथा पिशाच-मुखवाले गधे जुते हुए रथ पर बैठकर, दक्षिण द्वार से बड़े वेग के साथ निकला। उसके साथ ही विविध शस्त्रास्त्रों से युक्त उसकी सेना, भेरी, डंका तथा तुरहियों का गंभीर शब्द करती हुई चलने लगी। उस समय उनपर हड्डियों की वर्षा हुई, बिजलियाँ गिरीं; छत्र तथा ध्वजाएँ टूटकर गिर पड़ीं। किन्तु, महाकाय इन अपशकुनों की उपेक्षा करते हुए आगे बढ़ा और बड़ी क्रूरता से वानर-सेना पर आक्रमण किया। तब वानर भी उन पर तरु-शैल-समूह की वर्षा करते हुए उनसे भिड़ गये।

दानव उस वानर-सेना पर अपना पराक्रम दिखाने लगे। उन्होंने अत्यंत चंचल गति से कपि-सेना के मध्य रथ चलाये, गज-समूह को वानर-सेना से टकरा दिया, अश्वों को उनके ऊपर चलाया और पदाति-सेना उनपर टूट पड़ी। फिर, उन्होंने वानर-सैनिकों को अपने करवालों से काटते हुए गदा के प्रहारों से उन्हें व्याकुल करते हुए, भालों से बेधते हुए, शूलों से चीरते हुए, लाठियों से पीटते हुए, बरछियों से भोंकते हुए, शरवृष्टि करते हुए, चक्रों को चलाते हुए, परशुओं से काटते हुए अत्यंत क्रोध के साथ अपने मुद्गरों के प्रहार से वानरों को दण्ड देने लगे। इधर वानर भी उन वीर राक्षसों पर शैल-वृक्षों की वर्षा करने लगे। उस घोर युद्ध के कारण धूलि उड़कर रवि-मंडल तक व्याप्त हो गई। उस धूलि के कारण अविरत युद्ध करनेवाली दोनों पक्षों की सेनाएँ एक दूसरे को नहीं देख पाती थीं। भयंकर राक्षस लगातार अपने ऊपर गिरनेवाले तरु-शैलों को लक्ष्य करके असंख्य बाण चलाकर आकाश को ढक देते थे। वानर-वीर राक्षसों के चलाये हुए शस्त्र, बाण तथा लाठियों को अपनी ओर आते देखकर उनको लक्ष्य करके, पर्वतों तथा वृक्षों को फेंकते थे। युद्ध-भूमि में उड़नेवाली धूलि उनके कर्णपुटों में भी भर गई थी और उनको इसका पता नहीं चलता था कि कौन राक्षस है, और कौन वानर है। जो कोई उनके समक्ष पड़ जाता था, वे उस पर प्रहार करके उसको मार डालते थे। दनुजों के शरीर से बहनेवाले रक्त, नदियों के समान बहकर धूलि को भिगो देता था। धूलि-जनित अंधकार के व्याप्त रहने पर भी दानवों को अपने दीप्त तेज से युद्ध करते देखकर, देवता भी आश्चर्य-चकित हो गये। तब दैत्यों के प्रताप से नष्ट-भ्रष्ट हो वानर भयभीत हो गये और युद्ध-भूमि से भागने लगे।

उन्हें भागते हुए देखकर अंगद ने कहा—'हे कपियो, मेरे रहते हुए तुम ऐसे क्यों भागे जा रहे हो?' इस प्रकार के उत्साहपूर्ण वचनों से अंगद ने उनको धैर्य देकर फिर उन्हें युद्ध में प्रवृत्त किया। वह स्वयं एक महापर्वत को उठाकर राक्षस-सेना पर आक्रमण करने लगा। उसके पीछे भयंकर गर्जन करते हुए वानर-वीर भी चल पड़े। अंगद ने क्रुद्ध होकर पर्वतों तथा वृक्षों को राक्षसों की सेना पर फेंका। वह बायें हाथ से राक्षसों को

नीचे गिराकर उन पर मुष्टियों से प्रहार करता, हाथों से पीटता, कुहनियों से उनके मुँह पर प्रहार करके फोड़ देता और उनके शस्त्रास्त्रों को चूर-चूर कर देता । अंगद के सामने क्रूर राक्षस टिक न सके । वे विवश हो चारों दिशाओं में भागने लगे ।

५५. अंगद के द्वारा महाकाय का संहार

इस प्रकार, भागनेवाले राक्षसों को मतिमान् रुधिराशन, वज्रनाभ, कालदंष्ट्र, कालकल्प, वपाश, शतमाय, धूम्र तथा दुर्धर नामक महाकाय के प्रख्यात मंत्रियों ने रोका, और अपने समस्त पराक्रम को प्रकट करते हुए वानर-सेना को पीड़ित करने लगे । यह देखकर पनस, मेघपुष्पक, गवाक्ष, ऋषभ, गज, क्रोधन, शतबली तथा तार नामक श्रेष्ठ वानर उन राक्षस-वीरों के सम्मुख आकर युद्ध करने लगे । उस समय रुधिराशन ने क्रोधोन्मत्त हो गवाक्ष पर असंख्य बाण चलाये, तो गवाक्ष ने बड़े वेग से वृक्ष तथा पर्वतों को उस पर फेंका; पर रुधिराशन ने उन्हें बीच में ही चूर-चूर कर दिया और गवाक्ष पर ऐसा प्रहार किया कि गवाक्ष मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। गवाक्ष को मूर्च्छित होते देखकर तार ने क्रोध से एक विशाल साल-वृक्ष को उखाड़कर रुधिराशन के रथ पर फेंका । किन्तु, रुधिराशन ने उस वृक्ष को बीच में ही चूर-चूर करके दस बाण चलाकर तार को गिरा दिया। उसके पश्चात् वह प्रलय-काल के यम के समान बड़ा ही उग्र रूप धारण करके कपि-सेना पर टूट पड़ा । इतने में गवाक्ष तथा तार सचेत हुए और चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर देखा । फिर, गवाक्ष ने यम के समान भयंकर रूप धारण करके एक गदा से रुधिराशन के सिर पर प्रहार किया, तो वह राक्षस विकृतांग होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और उसके प्राण शरीर को छोड़कर उड़ गये ।

वज्रनाभ नामक राक्षस उद्धत होकर पृथु पर कई बाण चलाये, तो पृथु ने उस राक्षस पर एक पर्वत फेंका; किन्तु उस राक्षस ने उसके दस टुकड़े कर दिये। तब क्रोधोन्मत्त हो पृथु ने बड़े वेग से उसके रथ पर आक्रमण किया, उसके धनुष को खंडित किया, घोड़ों को मार डाला, रथ को चूर-चूर कर दिया और अपने अनुपम बाहु-बल से उसकी टाँगें पकड़कर उसे ऊपर उठाया और बड़े वेग से उसे घुमाकर पृथ्वी पर पटककर सिंह-गर्जन किया ।

इसके पश्चात् कालदंष्ट्र ने ऋषभ पर अपने उद्दण्ड मत्त गज को चलाया। सामने से आनेवाले उस हाथी के मार्ग से विचलित न होकर ऋषभ आकाश की ओर उछला, और एक साथ दोनों पैरों से उस हाथी के कुंभ-स्थल पर प्रहार किया, तो वह हाथी चिघाड़ता हुआ बहुत दूर पीछे हट गया । किन्तु, ऋषभ ने इससे संतुष्ट नहीं होकर, उसका पीछा किया और उसके दाँतों को उखाड़कर उसी से उस पर प्रहार करके उसे मार डाला। फिर, अपना शौर्य प्रकट करते हुए उसने कालदंष्ट्र की टाँगों को पड़कर उसे नीचे पटक दिया और उसका वध कर दिया । असुरों की सेना में हाहाकार मच गया और वानर-सेना दर्प से हुंकार करने लगी । तब कालकल्प ने पनस से भिड़कर उस पर अग्निकल्प-बाण चलाया, तो पनस कालकल्प के रथ पर कूद गया और पहले उसके अश्वों को कुचल दिया, फिर पदाघात से सारथी को गिराकर रथ को चूर-चूर कर दिया । उसके पश्चात् उसने

उस राक्षस के जबड़े पर ऐसा घूसा मारा कि वह राक्षस छटपटाकर गिर पड़ा, उसके दाँत टूट गये और रक्त उगलते हुए वह मर गया। सभी राक्षस आश्चर्य-चकित हो गये।

इसके पश्चात् वपाश नामक राक्षस ने कपियों पर आक्रमण किया और उनको जर्जरित करने लगा। तब गज ने उस पर ऐसी बाण-वृष्टि की कि सारा आकाश बाणों से आच्छादित हो गया। किन्तु, वपाश ने उन सब बाणों को बीच में ही काट डाला और गज का वध करने के लिए अग्नि-सम सात बाण उस पर चलाये और इससे संतुष्ट न होकर फिर उस पर पच्चीस बाण चलाये और उसके पश्चात् एक सौ ऐसे बाण चलाये, जो उसके शरीर को पार कर गये। उन बाणों से गज अत्यधिक पीड़ित हुआ और वपाश के रथ को चूर-चूर करते हुए उस पर आक्रमण किया और गरुड़ पक्षी जिस प्रकार किसी कंगूरे को नीचे गिरा देता है, वैसे ही उसका सिर धड़ से नीचे गिरा दिया। इस पर क्रुद्ध होकर धूम्र तथा दुर्धर नामक राक्षसों ने भयंकर अस्त्रों के प्रयोग से वानरों को पीड़ित करते हुए उनके पैर उखाड़ दिये। तब क्रोधन तथा मेघपुष्प नामक वीर वानरों ने उनके रथों पर कूदकर अपने करतलों से उनके मस्तक पर प्रहार किया और युद्ध करके उन्हें मार डाला। उनको आहत देखकर सभी राक्षस भयभीत हो तुरंत भाग खड़े हुए।

इस प्रकार राक्षसों को भागते हुए देखकर शतमाय अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हुए गज से भिड़ गया। तब गज ने एक लट्ठ लेकर उसका सामना किया। इतने में बड़े वेग से ऋषभ, शतवली, पनस, गवाक्ष तथा अंगद एक साथ उस पर वृक्षों तथा पर्वतों की अविरत वृष्टि करने लगे; किन्तु शतमाय ने शर, तोमर, भाले, चक्र, गदा, खड्ग आदि श्रेष्ठ शस्त्रों की वर्षा करके वीरों को क्रूर गति से त्रस्त कर दिया। उसके हाथों से यों पीड़ित होकर वानर-नायक रोषोद्दीप्त हो शतमाय पर पिल पड़े। गवाक्ष ने उसके रथ के घोड़ों को मार डाला, अंगद ने उसका झंडा काट डाला, पनस ने उसके रथ को पैरों तले कुचल डाला, ऋषभ ने सारथी को मार डाला और नल ने उसके शस्त्रास्त्रों को काट डाला और शतवली ने अपनी मुष्टियों से उस पर प्रहार किया। किन्तु, शतमाय ने उन मुष्टि के आघातों की उपेक्षा करके तलवार और ढाल लेकर गरुड़ के समान बड़े लाघव से आकाश की ओर उछला। तब बड़ी तत्परता के साथ (युद्ध-भूमि में) पड़े हुए खड्ग, ढाल आदि लेकर शतवली भी उसके पीछे आकाश की ओर उछला। आकाश में वे दोनों भेरुंड पक्षियों (दो सिरवाले पक्षी) के समान एक दूसरे पर वार करने लगे। वे कभी पैंतरें बदलते, कभी निकट आते, फिर शीघ्र ही दूर हट जाते; कभी गिरते तो कभी उठते और एक दूसरे को गिराने की चेष्टा करते हुए लड़ने लगे। तब शतमाय ने अपने खड्ग को चमकाकर शतवली के विशाल वक्ष पर प्रहार किया; किन्तु शतवली ने अपनी ढाल को आगे करके उस वार से अपने को बचा लिया और अपने तीक्ष्ण कृपाण से शतमाय की जाँघों को काट डाला, तो वह राक्षस सिर के बल पृथ्वी पर गिर पड़ा और उसका सिर पर्वत-शिखर के समान छिन्न-भिन्न होकर छितरा गया। शतमाय की मृत्यु को देखकर शतवली के साथ सभी वानरों ने हर्ष का गंभीर निनाद किया।

तब महानाद ने अपने धनुष के टंकार से पृथ्वी तथा आकाश को कँपाते हुए अपना रथ अंगद की ओर दौड़ाया और अंगद पर तीन पैने बाण चलाये। तब कपिराज अंगद बड़े क्रोध से उससे भिड़ गया और एक योजनाकार पर्वत को उसके रथ पर फेंका। किन्तु, उस राक्षस ने बड़े वेग से अपनी गदा से उस पर्वत को बीच में ही चूर-चूर कर दिया। तब वालि-पुत्र क्रुद्ध होकर सहज ही उसके रथ पर कूद गया और अपनी अनुपम शक्ति से उसका धनुष तोड़ डाला; उसे रथ पर गिराकर उसके वक्ष को ऐसे दबाया कि उसकी आँखें निकल आईं और वह हाँफने लगा। फिर, अंगद ने उसके कंठ को मरोड़कर उसे काट डाला और रक्त-सिक्त मुंड को पृथ्वी पर गिरा दिया।

अपने अनुज को मृत देखकर महाकाय अपार शोक से पीड़ित हो, भयंकर ध्वनि से हाहाकार करते हुए, अपनी कांति-किरणों को चारों ओर विकीर्ण करनेवाले अपने महान् रथ पर बैठे उद्धत सिंह के समान झूमते हुए निकला। उसने क्रूर बाण चलाते हुए वानरों पर आक्रमण किया और कई वानरों को पृथ्वी पर गिरा दिया। उसके समक्ष खड़े रहने में असमर्थ हो वानर-सेना हनुमान् की ओट में चली गई। तब महाकाय ने अपने सारथी से कहा--'अब मेरे समक्ष खड़े होकर युद्ध करने की क्षमता रखनेवाला कोई नहीं है। तुम रथ को सीधे राम के निकट ले चलो।' तब उसने घोड़ों के रास ढीले किये और वेग से रथ को राम की ओर चलाया। रथ की क्रूर गति के समक्ष खड़े होने में असमर्थ हो वानर-सेना भागने लगी। तब महाकाय ऊँचे स्वर में कहने लगा--'हे वानरो, तुम क्यों भयभीत हो रहे हो? मेरा क्रोध केवल उस राजकुमार पर है, जिसने शिव-धनुष का भंग करके सीता के साथ विवाह किया है। जिसने परशुराम का गर्व-भंग किया है, वही मेरे जोड़ का है, अन्य कोई नहीं। जिसने युद्ध में खर का वध किया था, उसी पर मेरा बाण चलेगा, दूसरों पर नहीं। जिसने अपने बाण के अग्र भाग के समक्ष समुद्र को आने के लिए विवश किया था, केवल उसीसे मैं युद्ध करूँगा, दूसरों से नहीं। मैं त्रिभुवन को अपने शौर्य से दीप्त करनेवाले, कैलास पर्वत को उठानेवाले रावण का पुत्र हूँ; इन्द्रजीत का भाई हूँ; मेरा नाम महाकाय है। मैं अब युद्ध करने के निमित्त आया हूँ।'

तब अंगद ने अत्यंत क्रुद्ध होकर कहा--'हे महाकाय, युद्ध-भूमि में ऐसा प्रलाप क्यों कर रहे हो? तुम्हारे पिता ने कैलास पर्वत को उठाया था, इसलिए हम दोनों में युद्ध होना उचित है। इसके लिए न राम की आवश्यकता है, न अन्य कपि-वीरों की। इतना कहकर उसने एक विशाल वृक्ष से उस पर प्रहार किया, तो महाकाय ने अपने दारुण शरों से अंगद का शरीर ढक-सा दिया। इसके पश्चात् महाकाय ने बड़े क्रोध से अंगद पर अपनी गदा से प्रहार किया, तो अंगद विवश होकर गिर पड़ा। उसको गिरते हुए देखकर सभी दैत्यों ने समस्त पृथ्वी को विदीर्ण करते हुए सिंहनाद किया और सभी वानर-वीरों ने एक साथ महाकाय पर आक्रमण किया और उस पर शिलाओं तथा वृक्षों को फेंकने लगे; किन्तु महाकाय ने अपने बाणों से उन शिलाओं तथा वृक्षों को खंडित कर दिया। फिर, उसने गवाक्ष पर दस बाण, पृथु पर पाँच बाण, महाबली गज पर सौ बाण, शतबली पर तीस बाण, ऋषभ पर अस्सी बाण, क्रोधन और मेघपुष्पक पर साठ बाण चलाकर इनका दर्प-दलन किया।

इतने में मूर्च्छित अंगद ने आँखें खोलीं। अपने मुँह से बहनेवाले रक्त को बार-बार पोंछते हुए, एक विशाल गदा लिये हुए वह उस महाकाय के रथ पर कूद पड़ा और अपनी उद्दण्ड शक्ति को प्रकट करते हुए उसके सारथी को मार डाला। फिर, उसके धनुष के खंड़-खंड कर दिये, सभी अश्वों को मार गिराया और उसके पश्चात् उस राक्षस-वीर पर गदा का ऐसा प्रहार किया कि महाकाय का मुकुट पृथ्वी पर लोटने लगा। तब महाकाय भी रथ से नीचे उतरकर भयंकर गदा से अंगद पर प्रहार किया; किन्तु अंगद ने प्रतिघात किया। महाकाय ने अंगद का वार बचाकर उद्धत गति से अंगद के सिर पर गदा-दंड से प्रहार किया। उस प्रहार के कारण अंगद के सिर से रक्त फूट निकला। किन्तु, अंगद ने विना धैर्य खोये, अपनी गदा से महाकाय पर ऐसा प्रकार किया कि महाकाय का सिर फूट गया। तब भी महाकाय ने भयंकर आघात करके उसे रक्त की बाढ़ में ऐसा डुबोया, मानों उसने सोच लिया कि इसके पिता ने मेरे पिता को एक सहस्र बार समुद्र में डुबोया था और उसका प्रतिशोध मुझे लेना चाहिए। इस प्रकार, इन्द्र का पोता तथा महाकाय दोनों भयंकर युद्ध करते हुए रक्त-सिक्त होकर ऐसे दीखने लगे, मानों रक्त-वर्ण की नदियों से विलसित दो महापर्वत हों। दोनों की गदाओं के आपस में टकराकर छिन्न-भिन्न होने से, वे दोनों वीर इस प्रकार मल्लयुद्ध करने लगे, जैसे पूर्वकाल में इन्द्र तथा बल नामक राक्षस ने आपस में द्वंद्व-युद्ध किया था। उनके पदाघात से धूलि उड़-उड़कर आकाश में व्याप्त हो गई। वे वालि-सुग्रीव के द्वंद्व-युद्ध का स्मरण दिलाते हुए परस्पर ऐसे भिड़ गये थे कि मालूम नहीं होता था कि यह वानर है, और यह राक्षस है।

तब सभी वानर अंगद को उत्साह देते हुए कहने लगे--'हे वीर, इस दुष्ट राक्षस की उपेक्षा क्यों करते हो ? तुम वालि के पुत्र हो। वालि के समान तुम्हारा बाहुबल भी श्रेष्ठ है। जब वालि ने दुंदुभी से युद्ध किया था, तब उसने दुंदुभी को इतनी देर तक ठहरने नहीं दिया था। तुम अपने पराक्रम का प्रदर्शन करके इस देवताओं के शत्रु का संहार शीघ्र कर डालो।' इस प्रकार, जब वानरों ने उत्साहवर्द्धक जय-निनाद किया, तब अंगद ने उस राक्षस पर अपनी मुष्टि से तीव्र प्रहार किया। वह उस आघात से चकराकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। पृथ्वी पर गिरे हुए उस राक्षस के वक्ष को पैरों से दबाकर अंगद ने उसका कंठ मरोड़कर सिर को धड़ से अलग कर दिया और उसे ऊपर उछालकर विजय-गर्जन किया। अंगद को देखकर सभी वानरों ने विपुल हर्ष-नाद किया। यह देखकर सभी दानव तितर-बितर हो गये। कुछ समुद्र में कूद पड़े, कुछ लंका में घुस गये और शेष राक्षस चारों दिशाओं में भाग गये। सभी वानरों ने अंगद की प्रशंसा की और उसे सीता-पति के समक्ष ले जाकर सारा वृत्तांत उन्हें कह सुनाया। रघुपति यह समाचार सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुए और बड़े हर्ष से हृदय से लगाकर और कृपा-पूर्ण दृष्टि से देखकर मंदहास करने लगे।

हतशेष राक्षसों ने जब यह वृत्तांत रावण को सुनाया, तब राक्षस-कुलाधीश ने बड़ी प्रीति से मृत महाकाय का स्मरण किया। वह दुःख से, आँखों में आँसू भरे, सिर झुकाये खड़ा रहा और फिर संभ्रमचित्त से अंतःपुर में चला गया। रात-भर चिंता में निमग्न

रहने से वह सो भी नहीं सका । प्रातःकाल होते ही वह अपने सामंतों के साथ, अपने उज्ज्वल रथ पर बैठकर अंतःपुर से निकला और दुर्ग के स्तूप पर चढ़कर अपने विशाल दुर्ग को ध्यान से देखा । फिर, वहाँ के सैनिकों के शिविरों का निरीक्षण किया और दुर्ग की रक्षा के लिए और अधिक सैनिकों को नियुक्त किया । उसके पश्चात् रावण ने प्रहस्त से कहा—'यह प्रसिद्ध दुर्ग अभेद्य है । यह किसी भी पराक्रमी शत्रु के वश में आनेवाला नहीं है । आज वानर-समूह ने इसे भेद डाला है, यह देखकर मुझे आश्चर्य हो रहा है । इतना ही नहीं, श्रीराम के बाहुबल का विक्रम दुर्वार प्रतीत हो रहा है । युद्ध करने योग्य या तो तुम हो, या मैं हूँ या मेरा भाई कुंभकर्ण है । निद्रा में मग्न हो, मेरा भाई जाग नहीं रहा है । इसलिए या तो तुम युद्ध करने के लिए जाओ या मैं जाऊँ ।'

तब प्रहस्त ने राक्षसेश्वर से कहा—"हे देव, मैं अभी जाता हूँ और उन नरों का ऐसा संहार करता हूँ कि देवता भी मेरे बाहुबल की प्रशंसा करेंगे । मैं अपने प्रताप का ऐसा प्रदर्शन करूँगा कि भूत, प्रेत तथा डाकिनी छककर रक्त-पान करेंगे और मोद-मग्न होकर कह उठेंगे, 'लो देखो, प्रहस्त उन बन्दरों की कैसी दुर्गति कर रहा है ।' आपने मुझे युद्ध में जाने का आदेश दिया, तो ऐसे समय में, मेरा आपको हितोपदेश देना उचित तो नहीं है । फिर भी, एक बात सुन लीजिए । मेरा विचार है यह कार्य आपके लिए उचित नहीं है । अब आप मानें या न मानें । आप स्वयं विचार करके देख लें । मैं आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता । पहले आपने अपने बुद्धिमान् मंत्रियों के हित-वचन नहीं सुने । अब तो सुनिए और सीता को भूपाल के पास पहुँचा दीजिए । यह युद्ध अनावश्यक है ।"

५६. प्रहस्त का युद्ध

इतना कहने के पश्चात् प्रहस्त रावण की आज्ञा लेकर युद्ध के लिए रवाना हुआ । उसने अपने वेत्रधरों को भेजकर अपनी चतुरंगिणी सेना को एकत्रित किया और मणिमय किंकिणी के रणन से मुखरित होनेवाले ऐसे रथ पर सवार होकर चला, जिसका मेघ-समान घोष तबतक सुनाई पड़नेवाला था, जबतक वानरों के श्रेष्ठ अंगों के पवन उसका स्पर्श नहीं करे, और जिसके ऊपर की सर्प-ध्वजा तबतक लहरानेवाली थी, जबतक वानर-रूपी गरुड़ उस पर उतर नहीं आवे । उसके निकलते समय तुरहियों की जो ध्वनि हुई, उससे दिशाएँ चक्कर काटने लगीं, आकाश विचलित हो गया, नक्षत्र टूटकर गिरे और वसुंधरा विदीर्ण-सी हो गई । इस प्रकार, प्रहस्त पूर्व के द्वार से कालांतक के समान युद्ध करने के लिए निकला ।

दैत्यों के सिंह-गर्जनों के साथ निकलनेवाले प्रहस्त की उग्र मूर्त्ति को देखकर रामचन्द्र आश्चर्य करने लगे और उसे विभीषण को दिखाकर बोले,—'हे विभीषण, तेज, बल, तथा शौर्य से विलसित होनेवाले इस राक्षस-नेता का नाम क्या है ? विपुल साहस के साथ उसका वानरों पर आक्रमण करना देखकर मुझे आश्चर्य होता है ।'

तब विभीषण ने कहा—'हे देव, यह रावण की समस्त सेना का सेनापति है । इसकी अपनी सेना रावण की सेना की तीन चौथाई है । अपने साहस के लिए तीनों

लोकों में यह प्रख्यात है । यह अत्यधिक बलवान् है तथा रावण का मामा लगता है । यह महान् पराक्रमी है और इसका नाम प्रहस्त है । (रावण के द्वारा) चन्द्रशेखर के मित्र (कुबेर) के सामंत को पराजित होते समय इसने मणिभद्र को परास्त किया था । हे रवि-कुलोत्तम, इसके साथ वानर-नायकों को घोर युद्ध करना होगा ।'

इस प्रकार विभीषण के कहते समय ही वानर-वीर पर्वतों तथा वृक्षों को उठाये सिंहनाद करते हुए दानवों का सामना करने लगे । असुर-सेना ने भी भयंकर गर्जन करते हुए वानरों पर आक्रमण किया । प्रलय-काल की अग्नि तथा वडवानल आपस में कभी संघर्ष नहीं करते; पृथ्वी और आकाश का एक दूसरे से टकराकर चूर-चूर होना संभव नहीं; भिन्न-भिन्न ब्रह्माण्डों का आपस में टकराना संभव नहीं । यदि ऐसा कभी हुआ होता, तो इन राक्षस तथा वानर-सेनाओं के युद्ध की उपमा उनसे दी जा सकती थी । राक्षस अग्नि-सम बाण-समूह को वानरों पर चलाते थे । कुछ राक्षस खड्ग, गदा, भाले, मूसल तथा भयंकर चक्र आदि शस्त्रों को भी चलाते थे । तब वानर-सेना राक्षसों पर बड़े वेग से वृक्षों तथा पर्वतों को फेंकती थी । इस घोर युद्ध में पृथ्वी पर लुढकने-वाले सिर, विदीर्ण होनेवाले वक्ष, चूर-चूर होनेवाले कंधे, बाहर निकल पड़नेवाली आँतें, फूटनेवाले सिर, टूटनेवाली पसलियाँ, उमड़नेवाला रक्त, छितरानेवाला भेजा, छिन्न-भिन्न होनेवाले पैर, उछलकर गिरनेवाले हाथ, पिंडाकृति धारण कर सड़नेवाले शव, आधा कटकर गिरे हुए शरीर, घूम जानेवाली पुतलियाँ, ये सब अत्यंत भयंकर दीखने लगे । युद्ध-भूमि में राक्षस और वानर निर्भय होकर बड़े उत्साह से लड़ते थे । सहसा कपि-वीरों ने राक्षसों पर बड़ा भयंकर धावा बोल दिया । द्विविद ने नरांतक पर एक पर्वत-शिखर उठाकर फेंका । तार ने एक वट-वृक्ष को वेग से चलाकर कुंभ हनु को गिरा दिया। जांबवान् ने महानद पर एक विशाल पर्वत को गिरा दिया । दुर्मुख ने समुन्नत को एक विशाल वृक्ष से मार गिराया ।

इस प्रकार, राक्षसों को वानरों के प्रहारों से बुरी तरह मरते हुए देखकर प्रहस्त ने अपने प्रमुख साथियों की मृत्यु निश्चित जान और अत्यंत क्रुद्ध होकर अपने रथ को विचित्र वेग से चलाकर एक-एक प्रहार से एक साथ दस, बीस, तीस तथा चालीस वानरों का संहार किया । तब वानर भी पर्वतों तथा वृक्षों को गिराकर प्रहस्त की सेना का नाश करने लगे। रक्त की नदियाँ उमड़-उड़कर आकाश का स्पर्श करती हुई-सी बहने लगीं; रक्त की उस धारा में ही जहाँ-तहाँ वानर तथा असुर घोर गर्जन करते हुए युद्ध करते थे । उनके पराक्रम को देखकर देवता भी उनकी प्रशंसा करने लगे ।

तब प्रहस्त कालांतक के समान अपने अद्वितीय प्रताप का प्रदर्शन करते हुए वानरों के करों तथा चरणों को काटते हुए, उनके वक्षःस्थलों को विदीर्ण करते हुए, सिर तथा बाहुओं को पृथ्वी पर गिराते हुए, हड्डियों तथा दाँतों को चूर-चूर करते हुए, चक्रों से खंड-खंड करके, अंकुशों से चीरकर, भालों से चुभोकर, विशाल पाशों से बाँधकर, परशु से काटकर, शूलों को भोंककर बरछियों से उछालकर तथा शक्तियों से पीटकर वानरों के मांस तथा भेजा के ढेर-सा लगा दिया और अपनी शर-वृष्टि से वानरों को मारकर सभी भूतों

को बलि चढ़ाई। इस प्रकार, प्रहस्त ने अपने दुर्वार विक्रम से वानरों का संहार करने में सफल होकर सभी दिशाओं को विदीर्ण करते हुए भयंकर गर्जन किया।

५७. नील के द्वारा प्रहस्त का वध

वानर-सेना को इस प्रकार नष्ट होते हुए देखकर, उद्‌भट-रण-कुशल नील भयंकर हुंकार करते हुए प्रहस्त पर आक्रमण करने के लिए ऐसी अद्‌भुत गति से चला कि सारी पृथ्वी काँप गई। उसने एक विशाल वृक्ष को उखाड़ लिया और सहज ही उस राक्षस के रथ पर जा चढ़ा। उसने सारथी को मार डाला, अश्वों का नाश कर दिया, और देखते-देखते प्रहस्त के धनुष को खंडित कर दिया। तब भयंकर गर्जन करते हुए प्रहस्त एक मूसल लेकर रथ से उतर पड़ा और नील के सामने डट गया। नील ने निर्भीक होकर उसका सामना किया, मानों वह अपनी विजय में पूरा विश्वास रखता हो। फिर, दोनों युद्ध करते हुए एक दूसरे को परास्त करने का प्रयत्न करने लगे, जैसे वृत्रासुर तथा कौशिक ने (पहले) किया था। प्रहस्त ने अच्छी तरह लक्ष्य करके मूसल से नील के ललाट पर ऐसा तुला हुआ प्रहार किया कि उसका ललाट फूट गया। उससे छूटनेवाली रक्त-धारा को पोंछते हुए नील ने अत्यधिक क्रोध से उस प्रहस्त पर वृक्षों से प्रबल प्रहार किया। किन्तु, उस राक्षस ने फिर से उसी मूसल से नील पर प्रहार किया। इस आघात से नील लड़खड़ाने लगा, फिर भी उसने वृक्ष को छोड़कर उसी समय भयंकर गर्जन करके एक विशाल पहाड़ उठाकर लक्ष्य करके उस राक्षस के सिर पर फेंका। नील के उस प्रहार से प्रहस्त का शरीर, सिर तथा आभूषण छिन्न-भिन्न हो गये और इन्द्र के प्रहार से सिकुड़कर गिरनेवाले पर्वत के समान वह राक्षस पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसके गिरते ही सभी कपियों ने विजय-घोष किया और राक्षस-सेना लंका की ओर भागने लगी।

उस समय सारी युद्ध-भूमि, अमृत-सागर-सुता (लक्ष्मी) के समान हरि* (विष्णु अथवा अश्व) युत अंगों से, दानशील के निवास के समान मार्गणों* (पातक अथवा बाण) के समूह से, जंबूद्वीप के समान नवखंडों* (द्वीप अथवा खंड) से, प्रेमी पति के निकट वनिता की भाँति राग-रस* (प्रेम रस अथवा रक्त) से, दुर्गम वन के सदृश पुंडरीकों* (व्याघ्र अथवा गज) से, सुंदर मधु-मास की भाँति आरक्त, फुल्ल, पलाशों* (पलाश वृक्ष अथवा राक्षस) से, शिव के निवास की नाईं भूत-गण* (शिव के सेवक अथवा प्रेत) से, सूर्य-प्रकाश से विलसित गगन के समान अस्त-व्यस्त तारकों* (नक्षत्र अथवा आँख के तारे) से, तीव्र निदाघ के समान अंबर-मणियों* (सूर्य अथवा वस्त्राभरण) से, अर्द्ध-नारीश्वर के समान अर्द्ध-शरीरों से युक्त हो, अनेक प्रकार से आश्चर्य उत्पन्न करती थी।

तब नील शीघ्र ही राघवाधीश के समक्ष गया और उनके चरणों को प्रणाम किया। वानरों ने बार-बार नील की प्रशंसा की। हतशेष राक्षस भयभीत हो भागकर रावण के निकट पहुँचे और उसे सारा वृत्तांत कह सुनाया। तब रावण ने शोक-विह्वल हो अपने मंत्रियों से कहा—'युद्ध करने गये हुए सभी वीर लौटने का नाम तक नहीं ले रहे हैं और वानरों के हाथों मर रहे हैं। अब वैरियों का गर्व चूर करने के लिए मैं स्वयं ही जाऊँगा।'

***इस प्रसंग में हरि, मार्गण, नवखंड आदि शब्दों में श्लेष है।—ले०**

५८. मंदोदरी के हित-वचन

रावण की सभी बातें सुनकर, मंदोदरी शीघ्र माल्यवान् के पीछे, दैत्य-स्त्रियों के साथ रावण की सभा की ओर चली। उसके पीछे-पीछे अतिकाय तथा प्रतीहारी चलने लगे। आयुधों से अलंकृत अन्य सैनिक भी उनका अनुसरण करने लगे। चामरिक-समूह चामर डुला रहे थे और सभी मंत्री भी उसके साथ चल रहे थे। अपने समस्त आभूषणों की शोभा को चारों ओर विकीर्ण करती हुई उसने रावण की सभा में ऐसे प्रवेश किया, मानों नील-मेघों के मध्य विलसित होनेवाली बिजली हो।

रावण ने मंदोदरी को अपने सिंहासन के अर्द्ध भाग पर आसीन कराया और प्रिय वचन कहते हुए बुद्धिमान् मंत्रियों को उचित आसनों पर बिठाया। प्रणाम करनेवाले अतिकाय को प्रसन्नता से अपने निकट ही एक आसन पर बिठाया? उसके पश्चात् दानवेश्वर ने अपनी स्त्री से कहा--'हे कुवलयनेत्री, तुम तो इस प्रकार कभी सभा में नहीं आतीं। आज तुमको कंपित शरीर से इस प्रकार सभा में आते देखकर मुझे आश्चर्य हो रहा है! तुम्हारे आगमन का क्या कारण है?'

तब मंदोदरी ने अपने पति को देखकर कहा--"हे दनुजेश, आज मुझे यहाँ आने की आवश्यकता पड़ी, इसलिए मैं आई हूँ। आप मेरे आगमन को बुरा न मानिए। हे देव, आपने देखा कि धूम्राक्ष आदि हमारे सेनापति युद्ध में कैसे मारे गये? राम ने जन्म-स्थान में चौदह सहस्र राक्षसों का संहार किया था और खर तथा त्रिशिर का वध किया था। मैं कहती हूँ कि ऐसा वीर एक साधारण मनुष्य नहीं हो सकता। इतना ही नहीं, राम ने दण्डक-वन में महान् बलशाली कबंध का संहार किया। मारीच की मायाओं की उपेक्षा करके उन्होंने उसका वध किया। एक भयंकर अस्त्र से वालि का संहार किया। राघव ने देवताओं के हित के लिए इस संसार में जन्म लिया है। वे स्वयं आदिनारायण हैं अन्यथा इस पृथ्वी पर ऐसा पराक्रमी नर कहाँ मिलेगा? उन्होंने ही तो नीलकंठ के धनुष को भंग किया था? अपने पिता की आज्ञा से जिस समय वे वन में तपस्वी का जीवन व्यतीत करते थे, उसी समय आप सीता को हर लाये। रामचन्द्र ने आपका क्या अहित किया था। राम-लक्ष्मण से युद्ध करने की क्षमता तीनों लोकों में कौन रखता है? यदि साम, दान तथा भेद से शत्रु वश में आ जाय, तो दण्ड का उपाय अपनाना उचित नहीं। यदि आप दण्ड देना भी चाहें, तो क्या राम-लक्ष्मण आपसे दण्ड भोगेंगे? हे देव, राम परमात्मा हैं; अतः आप उनके समक्ष नतमस्तक हों, तो इसमें कोई दोष नहीं। यदि आप उनसे शरण माँगें, तो वे आपको अवश्य अपनायेंगे। शरण माँगने से आपका शुभ ही होगा, हानि नहीं। काकुत्स्थवंशी राम के गुण, रूप, कृपा आदि गुण-गण का वर्णन करना कैसे संभव है? यदि वे क्रोध में आ जायें, तो इन्द्रादि देवता भी ठहर नहीं सकते, तब आपके लिए (उनका सामना करना) कैसे संभव है? अब आप इस प्रयत्न को छोड़ दीजिए। व्यर्थ ही दर्प की अग्नि में नाश मत होइए। हठ छोड़िए और संताप त्यागकर सीता को लौटा दीजिए। इसी में आपका हित होगा। हे लंकेश, आप अपने कुल तथा लंका की रक्षा कीजिए। ऊँचे वाहनों तथा मणि-भूषणों के साथ आप जानकी को लौटा दीजिए और उपाक्ष, अतिकाय

तथा माल्यवान् के द्वारा संधि का प्रस्ताव भेजिए। बहुत क्यों ? क्या, आपने कार्त्तवीर्य के साथ संधि नहीं की थी ? तब उस कार्त्तवीर्य को जीतनेवाले भार्गव राम को परास्त करनेवाले यशस्वी राम क्या संधि करने के योग्य नहीं है ।"

५९. मंदोदरी की मंत्रणा की उपेक्षा करना

मंदोदरी के इन दीन वचनों को सुनकर रावण क्रोध से दीर्घ श्वास लेने लगा । उसकी लाल आँखों से क्रोधाग्नि की चिनगारियाँ छूटने लगीं । उसने मंदोदरी को देखकर कहा—'हे नारी, हित-बुद्धि से तुमने मुझे उपदेश दिया है; किन्तु तुम्हारी बातों में एक भी मुझे अच्छी नहीं लगती । दानव, यक्ष, गंधर्व देव आदि की सेवाएँ प्राप्त करनेवाले मुझे तुम वानरों के आश्रय में जीनेवाले नर को प्रणाम करने का उपदेश देती हो । ऐसी बात तुम इस सभा में कैसे कह सकीं ? क्या, तुम्हारे लिए यह उचित है ? उस इक्ष्वाकुवंशी ने जान-बूझकर पहले हमारा अहित किया था; तभी तो मैं उसकी स्त्री को ले आया । खर-दूषण आदि के संहार तथा तुम्हारी ननद के अपमान को भुलाकर मूर्ख के समान मैं कैसे राम से संधि कर लूँ ? यह असंभव है । अपने भयंकर बाणों से विभीषण, सुग्रीव तथा राम-लक्ष्मण के साथ सभी वानरों को मारकर मैं विजय पाऊँगा । यदि विजय नहीं प्राप्त करूँगा, तो युद्ध-भूमि में ही अपने प्राण दे दूँगा; किन्तु उस राम के साथ न संधि करूँगा, न जानकी को ही लौटाऊँगा । यही मेरा दृढ़ निश्चय है । तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र, उदात्त पराक्रमी, इन्द्रजीत के रहते तुम्हें किस बात का भय है ? मेरे पुत्र भयंकर आकारवाले तथा दुर्वार पराक्रमी हैं; मेरा सामना कौन कर सकता है ?'

इन बातों को सुनकर मंदोदरी चिंताक्रांत मन से सिर झुकाकर सभा से ऐसे चली गई, मानों रावण की लक्ष्मी ही यों सोचती हुई रावण से अलग हो रही हो कि यह नीच तथा निकृष्ट नीति का अनुसरण करते हुए अपना बुरा-भला आप ही नहीं पहचान पा रहा है।

६०. रावण का प्रथम युद्ध

तब रावण ने अपने गुप्तचरों से कहा—'चिर काल से मेरे मन में जो क्रोध था, उसका आज परिहार करूँगा । मैं उस (राम) के लिए कालरुद्र हूँ और वह मेरे लिए अंधकासुर है । मेरे तूणीरों से निकलनेवाले अस्त्र, केंचुली से मुक्त होनेवाले क्रूर सर्पों के समान राघव को लगेंगे । राम मृत्यु से प्रेरित होकर, कपि-सेना का विश्वास करके यहाँ आया है । तुम शीघ्र मेरे युद्ध करने के लिए दिव्य शस्त्रास्त्रों से सज्जित करके रथ ले आओ ।'

उसके आदेशानुसार वे गुप्तचर सूर्य-प्रभा के समान दीप्तिमान् श्रेष्ठ रथ ले आये। फिर, अपने नीच मनोरथ पर आरूढ होने की भाँति रावण उस रथ पर आरूढ हुआ । अपने दीप्तिमान् आभूषणों से अलंकृत रावण के उस रथ पर बैठते ही, उसके आभूषणों की प्रभा दिशाओं तथा आकाश में आश्चर्यजनक ढंग से व्याप्त हो गई, मानों युद्ध में राम के बाणों की अग्नि-ज्वालाओं में रथ-समेत स्वयं रावण दग्ध हो रहा हो । निसानों का विपुल निनाद, पटह, भेरी तथा शंख का भयंकर घोष, हाथियों की चिंघाड़, अश्वों की हिनहिनाहट, बन्दी

मागधों के स्तुति-गान की गंभीर ध्वनि, रथों के चलने की ध्वनि, सैनिकों के हुंकार, तथा पृथ्वी को विदीर्ण करनेवाले उनके पदाघात की सम्मिलित ध्वनि भयंकर गति से समस्त ब्रह्माण्ड में ऐसे व्याप्त हो गईं, मानों लंका के समुद्र के सभी जलचर एक साथ आर्त्त-ध्वनि कर रहे हों कि रामचंद्र जैसे पहले समुद्र पर क्रुद्ध हुए थे, वैसे ही वे आज क्रुद्ध हो गये हैं। (राक्षसों के) बृहदाकार रथ, रामचंद्र के मनोरथों के समान ऐसे चलने लगे, मानों कह रहे हों कि हे राम, हम दैत्य-समूह को ले आये हैं; आप इन्हें ग्रहण कीजिए। असंख्य गज-समूह पृथ्वी को कँपाते हुए चलने लगे। उनके कर (सूँड़) रामचंद्र के करों (हाथ) के लिए दुर्जय न होने पर भी भयंकर दीख रहे थे और उन सूँड़ों के चारों ओर शिलीमुख (भ्रमर) ऐसे झंकार कर रहे थे, मानों कह रहे हों कि इनमें रामचन्द्र के शिलीमुख (बाण)-समूह लगकर इनका (गजों का) मद गिराने के पहले हम अब इनकी मद-धाराओं का पान कर लें। घोड़े ऐसे झूमते हुए चल रहे थे, मानों कह रहे हों कि सारे उपाय नष्ट हो गये हैं, हमारे द्वारा रावण को युद्ध में विजय कहाँ मिलेगी; रावण तो अवश्य ही युद्ध में गिरेगा। प्यादों की सेना ऐसे हुंकार भरती हुई जा रही थी, मानों आर्त्त-ध्वनि कर रही हो कि राघव की आसन्न बाणाग्नि से संभ्रमित सेना का सारा बल दग्ध हो जायगा। प्रलय-काल के घने बादलों के समान तथा पहाड़ों का भ्रम उत्पन्न करनेवाले राक्षस, प्रलय-काल के सूर्यबिंब के सदृश दीखनेवाली उभरी हुई आँखों से तथा विशाल कनपटियों, घोर दंष्ट्रों एवं विपुल केश-समूह से युक्त होकर, प्रलयांतक को भी भय देनेवाले विकृत वेष, विविध आयुध तथा विभिन्न मायाओं से सज्जित थे। राक्षस-वीर तथा राक्षस-नेताओं ने राक्षसेश्वर के समक्ष, अपना शौर्य प्रकट करते हुए प्रतिज्ञा की कि युद्ध में हम ही राम को जीतेंगे। फिर, वे घोर गर्जन करते हुए, पटहों का विपुल निनाद करते हुए युद्ध के लिए चल पड़े। रावण भी अपने प्रताप से सूर्य को भी निस्तेज करते हुए, अपने साहस को अपने मुख की दीप्ति के द्वारा प्रकट करते हुए, शौर्य तथा विजय-लक्ष्मी से युक्त हो, भयंकर ध्वनि एवं ठाट-बाट के साथ, युद्ध के लिए निकल पड़ा, मानों सूर्यवंशज को मार्ग देने के कारण समुद्र पर क्रुद्ध होकर उसे सुखा डालने के लिए ही जा रहा हो अथवा यह कहते हुए सूर्य को निगलने के लिए जा रहा हो कि हे सूर्य, तुम्हारा पुत्र राम से मिल गया है। राक्षस-सेना के असंख्य आयुधों की कांति आँखों को चकाचौंध करती थी और नगाड़ों के ताड़न से उत्पन्न वायु से ध्वजा-पताकाएँ आकाश में फड़फड़ा रही थीं। अत्यंत भयंकर रूप से बार-बार गर्जन करते हुए, राम की बाणाग्नि में दग्ध हो जानेवाले प्राणों को तृणवत् मानते हुए, दुर्वार गति से आनेवाली दारुण राक्षस-सेना को देखकर रघुराम ने अपने अनुज से कहा—'हे लक्ष्मण, पता नहीं कि यह कौन आ रहा है? यह अत्यधिक शक्ति-संपन्न तथा महान् साहसी दीखता है।'

६१. विभीषण का राम को राक्षस-वीरों का परिचय देना

तब विभीषण ने राम से कहा—'हे रघुराम, मैं इन दनुज-नायकों का अलग-अलग परिचय आपको सुनाता हूँ, सुनिए।' फिर, वह इस प्रकार कहने लगा—'वह जो मदमत्त हाथी पर चढ़कर, उज्ज्वल दीप्ति से दीप्त हो रहा है, जिसके उदयार्कबिंब के समान

समुज्ज्वल मुँह पर अत्यधिक रोष दिखाई पड़ रहा है, बार-बार अपने अंकुश की प्रेरणा से हाथी की चाल को तीव्र करने का प्रयत्न करते हुए बड़े वेग से आ रहा है, वही उपाक्ष है। भीषण घंटा-रव करनेवाले रथ पर चढ़कर आनेवाला, महोदर है। उसने युद्ध में बहुत-से लोगों का संहार किया था। रत्न-प्रभा-संपन्न अरुण कवच धारण किये, अश्व पर आरूढ जो उद्धत होकर गरुड़ के समान वेग से आ रहा है, वह पिशाचों का नायक है। युद्ध में इसका सामना करनेवाला कोई नहीं है। सिंह पर चढ़कर शूल हाथ में लिये जो आ रहा है, वह युद्ध-प्रिय त्रिशिर है। विपुल घंटारव करनेवाले तथा सर्प-ध्वजा से युक्त रथ पर बैठकर धनुष का टंकार करनेवाला, काले शरीर का वह राक्षस, कुंभ है। स्वर्ण-मणि-खचित ध्वजा से युक्त इस चित्ररथ पर बैठकर आनेवाला, वह विशालबाहु राक्षस, निकुंभ कहलाता है। अग्निसम उज्ज्वल रथ पर आरूढ हो, बड़े दर्प के साथ युद्ध करने की तीव्र लालसा से विष-दृष्टियों से कपि-सेना की ओर देखते हुए, धनुष पर बाण चढ़ाते हुए आनेवाला नरांतक नामक राक्षस है। जैसे भूत-गण कालनेत्र की (शिवजी) सेवा में रहते हैं, वैसे ही गज-मुख, अश्व-मुख, सिंह-मुख, व्याघ्र-मुख, सर्प-मुख तथा उष्ट्र-मुख-वाले भयंकर राक्षस जिसकी सेवा में लगे हुए हैं, और जो भयंकर गर्जन कर रहा है, वह उभरी हुई आँखोंवाला राक्षस देवांतक है। हे देव, वहाँ जो स्वर्ण-रथ पर आरूढ है, जो एक विशाल धनुष को एक तृण के सदृश सँभाले हुए भयंकर टंकार कर रहा है, जो कभी पराजय का नाम तक नहीं जानता, जो नरभोज का पुत्र है, जो अपने शरीर पर अरुण चंदन का लेप किये हुए है, जो तीक्ष्ण तथा क्रुद्ध दृष्टियों से युक्त है, जिसका शरीर सांध्य-मेघों के समान है, जो विंध्याचल के सदृश विशालकाय है, और जो करोड़ों छत्र-चामरों से विलसित है, वही युद्ध का श्रेष्ठ शूर, अतिकाय है। वहाँ जो दस सहस्र श्वेत छत्रों तथा स्वर्ण-चामरों से विलसित है, जो सिंह-ध्वज से युक्त तथा बलिष्ठ अश्व जुते हुए रथ पर आरूढ हो, विपुल शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित हो, धनुष का टंकार करते हुए, हम पर दृष्टि गड़ाये आ रहा है, वह इन्द्रजीत है। उसने ब्रह्मा के वर से अपार बाहुबल प्राप्त करके अखिल देवताओं को युद्ध में जीत लिया था और इन्द्र को बंदी बनाकर बड़े गर्व से झूम-रहा है। हे सूर्यकुलतिलक, अब मैं उस प्रतापी लंकानाथ को दिखाऊँगा, जो कनक-रत्न-प्रभा-कलित दण्डों से युक्त चामरों से विलसित है, जिसके सिरों पर शोभायमान होनेवाले विचित्र रत्नों की आभा से दीप्त दस किरीट ऐसे दीख रहे हैं, मानों (वे किरीट) बारहों सूर्य-बिंबों को गलाकर बनाये गये हों, जिसके कर्णों को अलंकृत करनेवाले महनीय मणिकुंडलों की प्रभा सभी दिशाओं में व्याप्त हो रही है, जो अपनी क्रोधपूर्ण दृष्टियों से बहुत भयंकर दीख रहा है, जिसने हर के निवास-स्थान कैलास पर्वत को उठाया था और देवांगनाओं को बंदी बनाया था, जिसके वक्षःस्थल ने ऐरावत के दाँतों के प्रहारों को सहन किया था, जिसने समस्त लोकों पर विजय प्राप्त की थी और जिसने इन्द्र को भी युद्ध में परास्त किया था, वही रावण वहाँ सेना के मध्य में झूमता हुआ आ रहा है।"

विभीषण के इस प्रकार सभी वीरों का परिचय देने के पश्चात् राघव ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—'हे विभीषण, यह बड़ी विचित्र बात है कि यह दानवेश्वर ऐसे महान्

तेज तथा सुंदर आकार से विलसित है । भला, राक्षसों में ऐसा तेजस्वी कौन है ? यदि यह क्रूरकर्मी नहीं होता, तो वह समस्त संसार के लिए पूज्य होता । इसके सभी राक्षस-वीर सैनिक, पर्वताकारवाले, अपार शक्तिशाली, योद्धा, क्रूर-चरित्र तथा भयंकर हैं। इसके पश्चात् उग्रलोचन (शिव) के पिनाक को वश में लाने में निपुण राम तथा लक्ष्मण ने धनुष तथा बाण धारण किये मानों (संसार को) बता रहे हों कि क्रुद्ध होने पर भी धर्म-मार्ग का ही अनुसरण करनेवाले इन राजकुमारों की समता कौन कर सकता है ।'

तब रावण ने अपने सभी राक्षस-वीरों को देखकर कहा--'नगर के द्वारों पर तथा बड़े-बड़े आँगनों में असंख्य सैनिक लंका के रक्षणार्थ रहें । जब हम और तुम युद्ध के लिए चले जायेंगे, उस समय यदि वानर लंका में प्रवेश करें, तो हमारी शक्ति किस काम की होगी ? इसलिए इसका ध्यान रहे।' तब असंख्य राक्षस इस रक्षण-कार्य के लिए चले गये। इसके पश्चात् रावण ने धनुष तथा बाण धारण किये हुए बड़े वेग से वानरों की सेना पर ऐसे आक्रमण किया, जैसे दावाग्नि वनों को घेर लेती हो और पृथ्वी आकाश से भिड़ जाती हो । उसने अत्यंत तीक्ष्ण बाणों की ऐसी तीव्र वर्षा की कि यह विदित नहीं होता था कि यह आकाश है, यह पृथ्वी है और ये दिशाएँ हैं । अपने उद्दण्ड बल को प्रकट करते हुए उस राक्षस ने झुंड-के-झुंड वानरों को सहज ही खंडित करके चूर-चूर कर दिया, अस्थि, मज्जा, मांस तथा रक्त से सारी युद्ध-भूमि को भर दिया और अपने धनुष के टंकारों से दिशाओं को प्रतिध्वनित करने लगा। गिरनेवाले, भ्रमित होनेवाले, मरनेवाले, चकरानेवाले, भयभीत होनेवाले, आर्त्तनाद करनेवाले तथा विकृतांग होनेवाले वानरों से रण-भूमि को पूर्ण देखकर देवता संभ्रमित तथा व्याकुल हो गये ।

उस समय क्रूर कालानल की दुर्वार लीला के समान भयंकर दशानन को अत्यंत भयानक रूप धारण करके गरजते हुए देखकर सुग्रीव ने उसका सामना किया और एक पर्वत उठाकर उस पर फेंका; किन्तु रावण ने उसे बीच में ही अपने विपुल अस्त्रों से चूर-चूर कर दिया और अपनी दीप्ति-ज्वालाओं को आकाश में फैलाते हुए, जलनेवाले एक तीक्ष्ण शर को सुग्रीव के वक्ष पर चलाया, तो वह शर उसके शरीर के आर-पार निकल-कर पृथ्वी में गड़ गया । तुरंत सुग्रीव लड़खड़ाते हुए पृथ्वी पर गिर पड़ा । यह देखकर दानव हर्षध्वनि करने लगे और वानर अश्रु-धाराएँ बहाने लगे । इस पर महान् बाहुबली ऋषभ, सुदंष्ट्र, गज, गवाक्ष, गवय, नल तथा ज्योतिर्मुख नामक वानरों ने क्रोधोन्मत्त होकर रावण पर पर्वतों तथा वृक्षों से अविरत प्रहार किया । किन्तु, रावण ने उन सब को बीच में ही खंडित कर दिया और उन सातों वानरों को एक ही बाण से मृत-सा कर दिया ।

६२. हनुमान् का रावण से युद्ध करके मूर्च्छित होना

अपनी सेना के नायकों को इस प्रकार गिरते देखकर हनुमान् अत्यधिक क्रुद्ध हुआ और बड़े दर्प से रावण के रथ पर कूदकर उससे कहने लगा--'हे रावण, कदाचित् तुम गर्व से फूलते रहे हो कि मैंने देवेन्द्र आदि देवताओं तथा राक्षसों पर विजय प्राप्त की है; किन्तु मेरे सामने तुम्हारी दाल नहीं गल सकती; मैं तुम्हारा तेल निकाल दूँगा । चिरकाल

से इस पृथ्वी पर उन्नत दशा में जीवित रहनेवाले तुम पर प्रहार करने के लिए मेरी दक्षिण बाहु अपने-आप आगे बढ़ रही है। अभी मैं तुम्हारा वध करके तुम्हें यमपुर भेज दूँगा। इसे निश्चय जानो।'

हनुमान् के ये वचन सुनकर रावण का मुख क्रोध से विकृत हो उठा। उसने कहा–'यदि तुममें शक्ति तथा सामर्थ्य हो, तुम अपनी समस्त शक्ति लगाकर मुझे एक घूसा मारो। उसके पश्चात् तुम्हारे शौर्य तथा शक्ति को देखकर मैं भी घूसा मारूँगा।' तब हनुमान् ने अपना अद्भुत शौर्य दिखाते हुए दशकंठ से कहा––'देवाधिदेव, राम के भेजने पर तुम्हारे नगर में आकर मैंने सीता का अन्वेषण किया और अंत में सीता को देखकर उनसे रामचंद्रजी का संदेश सुनाया और लौटते समय अपना पराक्रम दिखाकर तुम्हारे वन का सर्वनाश किया, तुम्हारी लंका को जलाकर तुम्हारे पुत्र का वध किया और दैत्यों के संभ्रमित होकर देखते-देखते मैं लौट पड़ा। आज तुम दर्प से फूलकर मेरी शक्ति देखने की बात कह रहे हो। हे रावण, उस दिन तुम कहाँ छिप गये थे ?'

इस पर क्रुद्ध होकर असुरेश्वर ने हनुमान् के वक्ष पर अपनी मुष्टि से प्रहार किया। हनुमान् इस प्रहार से सिकुड़-सा गया; किन्तु फिर भी उसने अपनी समस्त शक्ति से रावण पर एक घूसा चलाया। झंझावात से कंपित होनेवाले विशाल वृक्ष की भाँति, रावण काँप गया। पीड़ित होनेवाले असुरेश्वर को देखकर इन्द्र आदि देवता हर्षित हुए; पर अल्प-काल में ही रावण सँभल गया और हनुमान् को देखकर कहने लगा––'तुम्हारी शक्ति प्रशंसनीय है। तुम्हारी मुष्टि के प्रभाव से मैं प्रेत-लोक का दर्शन कर आया।' हनुमान् ने कहा––'हे रावण, तुम अभी जीवित हो, फिर भी तुम मेरी प्रशंसा क्यों करते हो ? (तुम्हारी बातें सुनकर) मुझे लज्जा हो रही है। तुम्हें तो मुझ पर प्रहार करना चाहिए।' 'तब लो, यह घूसा' कहते हुए रावण अपनी वज्र-सम मुष्टि से हनुमान् के वक्ष पर घोर प्रहार किया। तुरंत हनुमान् मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

६३. नील का रावण से युद्ध करना

हनुमान् के गिर जाने के पश्चात् रावण नील से भिड़ गया। इतने में हनुमान् सचेत हुआ और रावण को नील पर आक्रमण करते देखा; किन्तु वहाँ जाना अनुचित समझकर वह वहीं रह गया। अपने ऊपर उद्धत गति से आक्रमण करनेवाले रावण को देखकर नील ने बड़े क्रोध से मलय-शृंग को उठाकर फेंका। देवताओं के शत्रु ने सात बाणों से उसे बीच में ही खंडित कर दिया। उसके पश्चात् भी नील रावण के विशाल वक्ष को लक्ष्य करके पर्वतों तथा वृक्षों को चलाता रहा; किन्तु रावण ने अपने पैने बाण-समूह से उन सबको चूर-चूर कर दिया और नील के शरीर पर कई पैने शर चलाये, जिसके कारण उसके शरीर से रक्त की धाराएँ बहने लगीं। इस पर भी नील विचलित नहीं हुआ। सभी राक्षसों को भयभीत करते हुए, लघुत्व धारण करके वह दानवराज के रथ पर कूद पड़ा और अपनी अद्भुत शक्ति का परिचय देते हुए, उस रथ की ध्वजा पर उछलकर उसको तोड़ दिया; फिर धनुष के अग्र-भाग पर कूदकर, रावण के लक्ष्य को भंग कर दिया। फिर, उसने अपने बाहुबल से सुर-सिद्ध-साध्यों को आश्चर्यचकित करते हुए रावण के

मुकुटों को पैरों से कुचलने लगा। उसने एक मुकुट को दूसरे मुकुट पर फेंका, एक मुकुट पर से दूसरे मुकुट को गिराया, एक मुकुट से दूसरे मुकुट पर पद-प्रहार करके सभी मुकुटों को मिट्टी में मिला दिया। इससे संतुष्ट न होकर, वह सूक्ष्म रूप में रहनेवाले अपने को पकड़ने में रावण को असफल होते देखकर, हँसने लगा। फिर उसने रावण के छत्र फाड़कर फेंक दिये, उसके चामरों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया, रथ पर प्रहार करके उसको खंड-खंड कर दिया, क्रूरता के साथ दानवेश्वर की मुष्टि पर पद-प्रहार किया, उसके हारों को खींच-कर फेंक दिया और उसके विशाल वक्ष पर प्रहार करने लगा। इस प्रकार, बड़े उत्साह से युद्ध करनेवाले उस नील को देखकर राक्षस तथा वानर-सेनाएँ आश्चर्यचकित हो गईं। राम तथा लक्ष्मण भी विस्मित हुए। तब रावण अत्यन्त क्रोध से महान् अग्नि-बाण को अपने धनुष पर चढ़ाकर उस अग्नि-पुत्र (नील) से कहा--'बलिहारी है तुम्हारे लाघव की। मैं तुम्हारी प्रशंसा करता हूँ। तुम अपनी लघुता ही मुझे दिखाते रहो। अब यह लो, अग्नि-बाण अपनी ज्वालाओं का प्रकाश फैलाता हुआ चला। इससे बचने का उपाय करो।' यों कहते हुए उसने बाण चलाया। अग्नि-बाण के प्रभाव से नील का सारा शरीर जलने लगा और वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। अग्नि-पुत्र होने के कारण उसकी मृत्यु तो नहीं हुई; किन्तु वह अवश हो पृथ्वी पर पड़ा रहा।

६४. रावण का ब्रह्म-शक्ति से लक्ष्मण को गिराना

तब सौमित्र ने अपने धनुष का टंकार करते हुए भयंकर गति से उस दैत्य पर आक्रमण किया। उस टंकार तथा लक्ष्मण की प्रशंसा करते हुए रावण ने उनसे कहा--'हे लक्ष्मण, छोटी अवस्था के होते हुए भी तुम साहस के साथ युद्ध करने के लिए सन्नद्ध होकर आये हो, यह प्रशंसनीय है। अब कुछ समय इसी प्रकार ठहरो; मैं तुम्हें यमपुर भेज दूँगा।' तब रामानुज ने कहा--'हे अधम राक्षस, व्यर्थ इतना गर्व क्यों करते हो? मैं तो तुम्हारे निकट आ ही गया हूँ। बातें बनाना छोड़कर कार्य करके अपनी शक्ति दिखाओ।' इतना कहते ही रावण ने उनपर सात-बाण चलाये। किन्तु राक्षस के बाणों को लक्ष्मण ने बीच में ही खंडित कर दिया। इस पर उद्दीप्त क्रोध से रावण धनुष का घोर टंकार करते हुए अविरत बाण-वर्षा करने लगा। उन असंख्य बाणों को नष्ट करके लक्ष्मण ने शीघ्र (उस राक्षस पर) एक सहस्र शर चलाये। उनके बाणों का सामना करने में असमर्थ होकर रावण ने एक ब्रह्म-दत्त बाण लक्ष्मण के ललित वक्ष पर चलाया। लक्ष्मण अशक्त-से हो गये और वे धनुष को टेककर थोड़ी देर खड़े रहे। फिर, सँभलकर हुंकार भरते हुए लक्ष्मण ने एक प्रबल बाण से राक्षसेश्वर के धनुष को काट दिया। इतने से संतुष्ट न हो-कर उन्होंने त्रेताग्नि-सदृश शक्तिशाली तीन बाण उसके वक्ष पर चलाये। उनके लगने से रावण मूर्च्छित हो गया, किन्तु शीघ्र ही वह सँभल गया। उसे अपने धनुष के तोड़े जाने पर विस्मय हुआ और अपनी समस्त शक्ति को बटोरकर बड़ी क्रूरता के साथ, लक्ष्मण पर उसने उस ब्रह्म-शक्ति का प्रयोग किया, जो सदा गंध-पुष्पों से अर्चित थी, जो समस्त दिशाओं तथा ब्रह्माण्ड में अपनी उज्ज्वल ज्वालाओं को व्याप्त करने की क्षमता रखती थी, जो दस करोड़ अशनियों की-सी भयंकर ध्वनि करनेवाली थी और जो सूर्य की किरणों से भी

अधिक ताप से युक्त थी । यह देखकर सभी देवता चकित-से रह गये । प्रलय-काल के समान भयंकर गति से तथा अशनि से भी अधिक तेज से उस शक्ति को अपनी ओर आते देखकर, लक्ष्मण ने उसका निवारण करने के लिए घोर शर-वृष्टि कर दी; किन्तु उन बाणों की उपेक्षा करते हुए वह शक्ति लक्ष्मण के निकट आई और उनकी भुजाओं के मध्य में लग गई । तुरन्त लक्ष्मण पृथ्वी पर गिर पड़े ।

तब दशानन ने लक्ष्मण को अपने बीस हाथों से उठाने का प्रयत्न किया; किन्तु विष्णु का अंश होने के कारण वह उन्हें उठाने में असमर्थ हुआ । वह आश्चर्यचकित होकर सोचने लगा कि मैं तो कैलास पर्वत को भी उखाड़कर उठा सका था, और मेरु तथा मंदर पर्वतों को उठाने की शक्ति भी रखता हूँ। कैसा आश्चर्य है कि यह लक्ष्मण इतना भारी है । ऐसा सोचते हुए, अपने बीस हाथों का सारा बल लगाकर रावण ने फिर एक बार लक्ष्मण को उठाने का प्रयत्न किया । इतने में हनुमान् अत्यंत क्रोध से उसके निकट पहुँचा और सिंह-गर्जन करके उस क्रूर राक्षस के वक्ष पर वज्रसम अपनी मुष्टि से घोर प्रहार किया । उस प्रहार से रावण मूच्छित होकर घुटनों के बल गिर पड़ा । रावण की उस दशा को देखकर देवताओं ने हर्ष-ध्वनि की; कपियों ने सिंहनाद किया और राक्षस त्रस्त हो उठे । विष्णुभक्त होने के कारण हनुमान् ने, रावण के लिए दुर्वह लक्ष्मण को अपनी श्रेष्ठ शक्ति से सहज ही उठा लिया और शीघ्र ले जाकर उन्हें रामचंद्र के समक्ष लिटा दिया । लक्ष्मण को लगी हुई शक्ति राम के तेज से निस्तेज हो उनसे छूटकर फिर रावण के रथ की ओर लौट गई । थोड़ी देर में लक्ष्मण सचेत हो गये ।

६५. राम-रावण का प्रथम युद्ध

वहाँ रावण भी मूर्च्छा से मुक्त हो अपने चंचल धनुष को लेकर युद्ध के लिए सन्नद्ध हुआ । लक्ष्मण के मूच्छित होने से सभी वानर भयभीत होकर भाग आये थे । रावण को उद्धत गति से आक्रमण करने के लिए आते देखकर राम स्वयं क्रुद्ध होकर उस देव-वैरी का सामना करने के लिए अपने धनुष का भयंकर टंकार करते हुए आगे बढ़े । तब पवन-पुत्र ने राम से कहा—'हे सूर्यकुल-तिलक, जब यह रावण रथ पर बैठकर आप से युद्ध करेगा, तब आप पैदल ही उसका सामना करें, यह कैसे उचित होगा ?' तब ऐरावत पर आरूढ होनेवाले इंद्र की भाँति, राम हनुमान् के कंधों पर बैठे और बड़े रोष से धनुष का भयंकर टंकार करने लगे । रावण ने क्रोधोन्मत्त होकर राम को देखा और उन पर अग्नि-शिखाओं के सदृश बाणों की वर्षा आरंभ की । राघव ने भी उस पर श्रेष्ठ बाण चलाये; किन्तु इन्द्र के शत्रु ने उन्हें बीच में ही काट डाला । तब राम ने उद्धत गति से अर्द्धचन्द्र बाण चलाकर राक्षसेश्वर का धनुष काट डाला और पाँच तेज बाण चलाकर उसे व्यथित कर दिया । तब रावण ने हुंकार करके एक तीक्ष्ण बाण हनुमान् के ललाट पर चलाया । उस भयंकर बाण को हनुमान् के ललाट पर लगते देखकर राम ने बड़े क्रोध से अपना भाला सँभाला और उससे प्रहार करके रावण के सारथी को, अश्वों को, रथ को, ध्वजा को, छत्र को और चामरों को क्षणमात्र में नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और फिर सुमंत्रक नामक शर रावण के वक्ष पर चलाया । उस शर के प्रहार से रावण अत्यंत पीड़ित हुआ

और थर-थर काँपते हुए निश्चेष्ट हो गया। फिर, राम ने उद्दीप्त क्रोध से अर्द्ध-चन्द्र बाण का प्रयोग करके उसके दसों मुकुटों को नीचे ऐसे गिराया, मानों दसों दिशाओं में व्याप्त उस राक्षस के प्रताप को ही झटका देकर गिरा दिया हो। अपने उज्ज्वल मुकुटों की प्रभा से रहित हो रावण मन-ही-मन अत्यधिक दुःखी हुआ और सुध-बुध खोकर खड़ा रहा। तब राघव ने रावण से कहा--'वानरों के साथ भयंकर युद्ध करने के कारण तुम थके हुए हो। अतः, मैं तुम्हारा वध किये विना तुम्हें छोड़ देता हूँ। तुम शीघ्र लंका को लौट जाओ।'

६६. रावण का खिन्न होकर लंका लौट जाना

तब रावण विरथ हो दुःखी मन, अकेले ही पैदल, लंका की ओर चल पड़ा। वह उत्तप्त निःश्वास छोड़ रहा था और उसका उद्दीप्त क्रोध बुझ गया था। उसका अत्यधिक गर्व चूर हो चुका था। उसकी शक्ति नष्ट-सी हो गई थी और उसका दर्प दलित-सा हो गया था। उसका मुख पीला पड़ गया था और वह बार-बार अपने सूखे हुए ओठों को आर्द्र करता हुआ जा रहा था और भय के कारण उसका कंठ सूख रहा था। इस प्रकार जानेवाले रावण को देखकर सभी भूत तालियाँ पीटते हुए ठहाका मारकर हँसने लगे। सभी वानर जहाँ-तहाँ दौड़ते हुए, उछल-कूद करते हुए रावण का उपहास करने लगे। निदान रावण लंका में पहुँच गया और अत्यधिक चिंता में डूबकर छटपटाने लगा। सिंह के हाथों में फँसकर भी, बचकर निकल आये हुए गज की भाँति, गरुड़ की पकड़ से छूटकर गिरे हुए त्रस्त सर्प की भाँति, रावण भयभीत हुआ। विद्युत् की-सी प्रभा से समन्वित, भयंकर ज्वालाओं से युक्त तथा ब्रह्मास्त्र से भी अधिक शक्तिशाली राम के बाणों से अपने संहार की चिंता करते हुए वह बार-बार लू की-सी गरम साँसें छोड़ने लगा। लज्जित होने के कारण उसका साहस जाता रहा। वह सभा में स्थित दैत्यों को देखकर बोला--'हे दानववीरो, आज मेरा शौर्य और मेरी शक्ति मिट्टी में मिल गई। स्वाभाविक पराक्रम से संपन्न एक व्यक्ति राम-भूपाल, इस संसार में जन्मे हैं। मैं ने ब्रह्मा से वर प्राप्त किया था कि युद्ध में सुर, सिद्ध, साध्य, गरुड़, गंधर्व, राक्षस, पक्षी, यक्ष, किन्नर, उरग आदि किसी से भी मैं पराजित नहीं होऊँगा। तब मैंने नर तथा वानरों की उपेक्षा कर दी थी। मेरे दुष्कर्म ही मेरी विपत्ति का कारण बन गये हैं। मैं अपनी दुर्दशा का कैसे वर्णन करूँ? अब तुम लोग सावधानी से दुर्ग की रक्षा करो। द्वारों पर अधिक संख्या में रक्षकों को नियुक्त करो। प्रहस्त आदि महान् वीर युद्ध करते हुए अपने प्राण खो चुके हैं। अब कौन ऐसा वीर है, जो राम-लक्ष्मण को जीतने की क्षमता रखता है? विविध युद्धों को करने में प्रवीण, सहज पराक्रमी राम-भूपाल पर आक्रमण कर सकने की क्षमता अब केवल मेरे अनुज कुंभकर्ण के सिवा और किसमें है?'

६७. राक्षसों का कुंभकर्ण को जगाना

इसके पश्चात् दशकंठ ने सबको देखकर कहा--'मेरा भाई छह मास तक लगातार सोने के पश्चात् जगा, सभा में आकर मेरे साथ मंत्रणा की और फिर आज नौ दिन से सो रहा है। वह अवश्य शत्रुओं का संहार कर सकता है। उस अनुपम वीर को जगाकर किसी प्रकार यहाँ ले आओ।'

रावण के आदेशानुसार राक्षसों ने कई प्रकार के गंध-पुष्प और विविध मिष्टान्न आदि खाद्य पदार्थ लेकर कुंभकर्ण की उस गुफा में प्रवेश किया, जो तीन योजन लंबा था तथा सब प्रकार के सुख-सुविधाओं से पूर्ण होने के कारण भोगों का निवास, पाताल के समान महनीय, वज्रायुध की महिमा से समन्वित, इंद्रलोक के समान संसार के श्रेष्ठ तेज से विलसित, अग्नि के निवास के समान, अत्यधिक भयंकर यमलोक के समान, विविध मेदा, मांस आदि से युक्त होने के कारण (नैऋत) राक्षस के भवन के आँगन के समान, निरुपम वारुणी से युक्त होने से वरुणालय के समान, सुगंधित वायु से युक्त पवन के निवास के समान, श्रेष्ठ निधियों से युक्त कुबेर के भवन के समान, श्रेष्ठ विभूति का आगार शिव के निवास के समान, तथा श्रेष्ठ पद्म-राग की प्रभा से समन्वित ब्रह्म-लोक के समान, सुशोभित थी। सोनेवाले कुंभकर्ण के दीर्घ निःश्वासों से राक्षस कंपित हो उठे; किन्तु जैसे-तैसे उसके निकट पहुँचे और निर्मल तथा विशाल स्वर्ण-पर्यंक पर, हंस-तूलिका-तल्प पर शयन करने-वाले कुंभकर्ण को देखा। वह अपने कंधे पर कपोल टिकाये, सतत दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए सो रहा था। उसके मुख पर श्रम-जल की बूँदें थीं और उसके नेत्र किंचित् खुले हुए-से थे। उसके शरीर पर कर्पूर तथा चंदन का लेप था और उसके वक्ष पर उज्ज्वल मणिमय हारों का समूह था। वह आनंद में अपने आपको भूलकर निद्रा तथा कामिनियों के साथ रति-क्रीड़ा में सतत तल्लीन रहनेवाले के समान दीख रहा था और कदाचित् देवताओं पर कई बार विजय प्राप्त करने के संबंध में स्वप्न देख रहा था। ऐसे कुंभकर्ण को देखकर आगंतुक राक्षस दुःखी होने लगे कि हाय, ब्रह्मा ने ऐसे महान् वीर को ऐसी निद्रा क्यों दी? उसके पश्चात् उन्होंने उसके आगे भात की राशियाँ तथा महिष एवं वराह का पकाया मांस आदि सजाये, चंदन तथा पुष्पों से उसकी पूजा की, धूप जलाया, दीपों से आरती उतारी और हाथ जोड़कर उसकी स्तुति के पाठ किये। फिर, उन्होंने अशनि-घोष से भी अधिक भयंकर ध्वनि की, निसानों का विपुल निनाद किया, भीषण भेरी-ध्वनि की, और सिंह के समान गर्जन किया। वह महाध्वनि पाताल-लोक में, नक्षत्र-पथ में सभी दिशाओं में तथा स्वर्ग में भी व्याप्त हो गई। इस पर भी कुंभकर्ण नहीं जगा; इसके विपरीत वह और अधिक गंभीर निद्रा में डूब गया। तब सभी राक्षसों ने गदा, मूसल, मुद्गर आदि से उसपर प्रहार किया। दस हजार भाले उसकी पसलियों में चुभोये। उस पर लगातार पहाड़ गिराये और उसकी छाती पर चढ़कर, हाथों तथा पैरों से ताड़न किया। फिर भी कुंभकर्ण नहीं जगा। तब उन्होंने भीषण सिंहनाद करते हुए, शंख बजाते हुए असंख्य कुंभ, पटह, भेरी, तुरही आदि का घोर निनाद किया। दस हजार भयंकर राक्षस लगातार निसानों को बजाते ही रहे। इतनी ध्वनि होने पर भी कुंभकर्ण नीलाद्रि के समान बिना हिले-डुले ही पड़ा रहा। तब राक्षसों ने उसे हाथी, घोड़े, ऊँट, जंगली भैंसे आदि जानवरों से रौंदवाया और बड़े लट्ठों से उसका सारा शरीर चूर-चूर कर दिया और एक साथ सभी वाद्य बजाये। सारी लंका इस ध्वनि से काँप उठी और वानर-सेना भी शंकित होने लगी। इतना सब करने पर भी कुंभकर्ण ऐसा सो रहा था, मानों उसके कान पर जूँ तक न रेंगी हो। तब कुछ राक्षस दिशाओं को कंपायमान करते हुए भेरीनिनाद

करने लगे, कुछ पर्वत गुफाओं को प्रतिध्वनित करते हुए सिंह-सम गर्जन करने लगे, कुछ अपने हाथों में उसके केश लपेटकर नोचने लगे, कुछ उसके कर्ण-पुटों में प्रवेश करके उसके परदों को दाँतों से काटने लगे और कुछ अविराम गति से गदा, मुद्गर, खड्ग, मूसल आदि से उसके मुख तथा वक्ष पर प्रहार करने लगे। तब उस राक्षस की नींद थोड़ी उचटी। उसने एक जँभाई ली और फिर सोने लगा। तब राक्षसों ने उसे बड़े-बड़े रस्सों से बाँध दिया और एक सहस्र घट उबलता हुआ तेल उसके कानों में उडेल दिया; नथुनों में जलती हुई शलाकाएँ रखीं; एक साथ भयंकर गति से वे भेरियों का निनाद करने लगे और लगातार हाथी तथा घोड़ों से उसका वक्ष रौंदवाने लगे। तब कुंभकर्ण किंचित् शंकित-सा हुआ और सर्प के समान भयंकर हाथों को फैलाया, थोड़ा-सा जगा, हुंकार भरकर अँगड़ाई ली और अपने विशाल मुख को विकृत करते हुए जँभाई ली और आँखें खोलकर भयंकर रूप धारण किये ऐसे बैठ गया, मानों उसने यह सोच लिया हो कि जब राम मुझे महान् सायुज्य पद ही देनेवाले हैं, तब मुझे इस निद्रा की वृथा आवश्यकता है और अपनी निद्रा त्याग दी। उसका मुँह प्रलयकाल के सूर्य-बिंब के समान लाल था, और विंध्याचल की गुफाओं से निकलनेवाले पवन के समान उसकी उसासें चल रही थीं और उसकी आँखें प्रलय-काल के अर्क-बिंब के समान लाल दीख रही थीं।

इस प्रकार, उसके जगकर बैठने के पश्चात् सभी राक्षस दानवेश्वर के पास जाकर बोले—'हे देव, कई प्रकार से पीड़ा पहुँचाने के पश्चात् आपके अनुज जगे हैं; हम उनसे युद्ध में जाने की प्रार्थना करें या आपके सम्मुख उन्हें लिवा लायें? आप जो आज्ञा दें।' तब रावण ने बड़ी प्रीति से कहा—'उसको यहीं लिवा लाओ।'

६८. राघवों की युद्ध-यात्रा पर कुंभकर्ण का क्रुद्ध होना

रावण की आज्ञा के अनुसार राक्षस कुंभकर्ण के पास गये। अपने समक्ष अड़े हुए राक्षस-समूह को देखकर उसने कहा—'तुम लोगों ने मुझे क्यों जगाया? अब रावण के लिए कौन-सा कार्य आ पड़ा है? कहो, बात क्या है?' तब उन्होंने कहा—'आप स्वयं प्रभु रावण से ही सारी बातें जान लें? आपको लिवा लाने के लिए उन्होंने हमें भेजा है। इससे अधिक हम और कुछ नहीं जानते।'

तब कुंभकर्ण उठा, जी भरकर स्नान किया, सुंदर वस्त्राभूषण पहने और प्रकाशमान किरीट धारण किया। उसके पश्चात् बड़े मोद से राक्षसों ने कई प्रकार के मिष्टान्न, पकवान, मधु, महिष तथा सूकर का मांस, भेजा तथा घी के बरतन लाकर उसके सामने रखे। कुंभकर्ण ने पहले बड़ी प्रीति के साथ मेदा तथा मांस खाया, छककर रक्त तथा मधु पिया और अत्यधिक संतुष्ट हुआ। तब सभी राक्षस प्रणाम करके उसके समक्ष खड़े हुए। तब कुंभकर्ण ने उन्हें देखकर कहा—'दानवेश्वर अपने पुत्र तथा बंधुजनों के साथ कुशल हैं? लंका पर कोई विपत्ति तो नहीं आई? यदि उस पर कोई विपत्ति आ पड़ी है, तो मैं उस भय को दूर कर दूँगा। अमरेन्द्र से भी भिड़कर उसे स्वर्ग से भगा दूँगा; प्रलय-काल की अग्नि को भी बुझा दूँगा, शत्रुओं के तीव्र दर्प को भंग कर दूँगा।'

तब उपाक्ष ने हाथ जोड़कर कुंभकर्ण से कहा—'हे राक्षसवीर, सुनिए, हमें देवता,

राक्षस तथा गंधर्वों की ओर से कोई भय कभी नहीं हुआ । अभी मानवों ने हम में भय उत्पन्न किया है । देव-शत्रु रावण के जानकी को ले आने से क्रुद्ध होकर रविकुलोत्तम राम अत्यंत पराक्रमी वानरों के साथ लंका पर चढ़ आये हैं । इसके पहले अकेले एक वानर ने अक्षयकुमार का वध करने के पश्चात् लंका को भस्म करके अपनी शक्ति को प्रकट किया था। अब इन महान् कपियों को जीतनेवाला कौन है ? राम देवों तथा असुरों से भी अधिक पराक्रमी हैं और रावण भी उनके साथ युद्ध करके हार गये हैं और त्रस्त होकर लंका में लौट आये हैं ।'

इन वचनों को सुनकर उस निशाचर की आँखों से अग्नि-कण निकलने लगे । उसने भीषण क्रोध से उद्दीप्त होकर दाँत पीसते हुए कहा---'युद्ध में सभी वानरों तथा अत्यंत पराक्रमी दाशरथियों को वध किये बिना, वानरों के रक्त-मांसों से राक्षस-समूह को तृप्त किये बिना तथा स्वयं राम-लक्ष्मण के रक्त का पान किये बिना मैं कौन-सा मुँह लेकर रावण के सम्मुख आऊँ ? मैं वैसा करने के पश्चात् ही वहाँ आऊँगा ।'

इस पर महोदर ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा--'हे वीर, दशकंठ से मिलने के पश्चात्, आप ऐसा ही कीजिए । उनका आदेश लेकर आप शत्रुओं पर विजय प्राप्त कीजिए ।' तब उसने कहा--'ऐसा ही हो' और राक्षसों की ओर देखने लगा । तब उन राक्षसों ने इक्कीस मनुष्यों के मांस का ढेर उसके सामने लगा दिया । फिर वे अस्सी महिष, सात सौ बकरियाँ, एक सहस्र सूकर, चार सहस्र मोटे मोटे खरगोश तथा छह सौ मृग ले आये और उनका वध करके अलग-अलग पकाया और उस मांस को उसके सामने लाकर रखा । कुंभकर्ण सारे मांस को खाकर तृप्त हुआ । उसके पश्चात् उसने दो सहस्र घट मद्य पीकर ऐसी डकार ली कि सभी दिशाएँ विदीर्ण-सी हो गईं । फिर अपनी मूँछों पर ताव देते हुए, आँखों को घुमाते हुए अपनी गति से सारी पृथ्वी को कँपाते हुए, अपनी गुफा से यों निकल पड़ा, मानों राहु के मुँह-गह्वर से मुक्त प्रलय-काल का सूर्य हो, या बलि-महाराज को दंड देकर, सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त होनेवाले त्रिविक्रम हो ।

उस प्रकार दीर्घ तथा भीषण आकारवाले राक्षसवीर को आते देखकर किले के बाहर रहनेवाले सभी वानर त्रस्त हो उठे । कुछ वानर विस्मित हुए, कुछ जहाँ-तहाँ छिपने लगे, तो कुछ वानरों के पैर लड़खड़ाने लगे, कुछ भयभीत हो उठे, तो कुछ मूर्च्छित होकर गिर पड़े; कुछ समुद्र में कूद पड़े, तो कुछ दाँतों-तले उँगली दबाये खड़े रहे और कुछ राम की आड़ में जा खड़े हुए । तब राम ने उन्हें देखकर लक्ष्मण को धनुष-बाण लाने की आज्ञा दी । तत्पश्चात् उन्होंने विभीषण को देखकर कहा--'हे विभीषण, पृथ्वी तथा आकाश का स्पर्श करनेवाले विशाल शरीर से संपन्न प्रलय-काल के मेघों के बीच चमकनेवाली बिजलियों के समान आभूषणों की कांति से दीप्त तथा तीनों लोकों को एक साथ निगलने योग्य मुँह से युक्त यह कौन है, जो वहाँ नगर के मार्ग से जा रहा है ? क्या, वह यमराज है, या प्रलय-काल का अनिल है, या प्रलय-काल का रुद्र है, या प्रलय-मारुत है, या प्रलय-काल का सूर्य है, या प्रलय-काल का शेष-नाग है, या प्रलय-मृत्यु है, या प्रलय-काल का वरुण है, या प्रलय-काल का यम है या प्रलय-काल का भैरव है या प्रलय-काल

के रुद्र के लिए प्रलय-रुद्र है ? ऐसा भीम-रूप हमने अबतक न कभी देखा, न उसके बारे में कभी सुना ही है । यह तो बताओ कि वह कौन है ? क्या वह दानव है या दैत्य है ? यह किस कुल का है ? वह कहाँ का रहनेवाला है ? इसका नाम क्या है ? इसे देखकर सभी वानर त्रस्त हैं, इसका आकार-प्रकार देखकर आश्चर्य हो रहा है ।'

६९. कुंभकर्ण का शाप-वृत्तांत

तब विभीषण ने राम को देखकर कहा--"हे देव, इस दैत्य का वृत्तांत सुनिए। यह विश्रवसु का पुत्र है और इसका नाम कुंभकर्ण है । रावण का भाई तथा महान् क्रूर है। देवताओं तथा दिक्पालों को पराजित करके उन्हें युद्धभूमि से भगा देनेवाला महान् बाहु-बली है । दीर्घशूल विविध आयुधों से युक्त तथा उद्धत शक्ति से संपन्न है । यह समस्त ब्रह्माण्ड को भी विदीर्ण करने की क्षमता रखता है । शक्ति में ब्रह्मा से कम नहीं है। जन्म के समय से ही यह अपने कुरूप मुँह से जीवधारियों को निगलने लग गया था । इस प्रकार, जीव-धारियों को निगलते देखकर इन्द्र ने अपना वज्रायुध इस पर चलाया, तब इसने क्रोध में आकर ऐरावत का दाँत उखाड़ लिया और उससे इन्द्र पर प्रहार किया। उस प्रहार से इन्द्र मूर्च्छित हो गया । उसके पश्चात् वह सभी देवताओं को साथ लेकर ब्रह्मा की सेवा में पहुँचा और उन्हें प्रणाम करके निवेदन किया--'हे देव, कुंभकर्ण नामक राक्षस पृथ्वी के जीवों का नाश कर रहा है और सुरों को पीड़ित कर रहा है । वह पर-स्त्रियों पर बलात्कार कर रहा है और हठ करके समस्त संसार का नाश कर रहा है । यदि वह ऐसे ही अत्याचार करता रहा, तो विश्व का सर्वनाश निश्चित है ।'

"उनकी बातें सुनकर कमलासन मन-ही-मन बहुत ही क्रुद्ध हुए और सभी राक्षसों को अपने समक्ष बुलाकर उनमें कुंभकर्ण का भयंकर रूप देखा । उसका रूप देखकर स्वयं ब्रह्मा को भी आश्चर्य हुआ । उन्होंने कहा--'ऐसा लगता है कि यह समस्त ब्रह्माण्ड को निगल जायगा । इसका आकार-प्रकार देखकर स्वयं मुझे भी भय लग रहा है । जब इसका रूप इतना भयंकर है, तो क्या, यह त्रिनयन शिवजी को भी युद्ध में हरा नहीं देगा ?' उसके पश्चात् ब्रह्मा ने संसार के प्राणियों का वध करने से उसे रोकने का विचार करके कहा–'क्या, तुम्हारा जन्म पुलस्त्य के उत्तम वंश में इसलिए हुआ कि तुम अपना शौर्य दिखाकर सभी लोकों को त्रस्त करो और सभी प्राणियों का नाश करो ?' फिर, उन्होंने मृत्यु के समान शाप देते हुए कहा--'तुम निरंतर सोते रहो । बर्फ के वज्र के-से इस शाप के लगते ही कुंभकर्ण खड़ा रह नहीं सका और तुरंत निद्रा के वशीभूत हो गया ।'

"तब रावण ने ब्रह्मा को प्रणाम करके कहा--'हे देव, आप इस पर कृपा-दृष्टि कीजिए । स्वयं पौधा लगाकर फिर स्वयं उसको कहीं काटते। यदि अपने आकार के कारण यह दूसरों को कष्ट पहुँचाता है, तो उचित यही है कि उसे अच्छा उपदेश दिया जाय । ऐसे शाप से उसे दग्ध करना न्यायोचित नहीं है । इसके शाप का अंत कैसे होगा, इसकी भी व्यवस्था दीजिए।' तब ब्रह्मा ने रावण से कहा--'यह लगातार छह मास तक सोता रहेगा (प्रत्येक छह मास के बाद) सिर्फ एक दिन यह जगा हुआ रहेगा।' हे देव, उसी समय से वह निश्चिंत होकर सोता और जागता रहता है । आपके दिव्य बाणों की भयंकर

अग्नि-ज्वालाओं के समक्ष न टिक सकने के कारण असमय ही रावण न इसे जगाने के लिए राक्षसों को भेजा । इसलिए यह युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर राजा के अंतःपुर में जा रहा है । बहुत शीघ्र यह रावण की आज्ञा लेकर हम पर आक्रमण करने के लिए आयगा। उसके आने के पहले आप सारी कपि-सेना में यह घोषित करवाइए कि कोई इसके आकार को देखकर युद्ध-क्षेत्र से भाग न जाय; यह दनुज नहीं है, यह यंत्र की सहायता से बना हुआ भयंकर रूपवाला काठ का एक पुतला है । इस प्रकार घोषित कराकर आप वानरों का भय दूर कर दीजिए और उन्हें युद्ध के लिए सन्नद्ध कीजिए ।" तब राम ने नील को ऐसी घोषणा करने की आज्ञा देकर भेजा ।

कुंभकर्ण को आते देखकर नगर की स्त्रियाँ उस पर फूलों की वर्षा करने लगीं । निदान, कुंभकर्ण चंद्रिका के निवास-सदृश सुशोभित होनेवाले उस सभा-मंडप में ऐसे पहुँचा, जैसे उज्ज्वल किरणों से सुशोभित होनेवाला सूर्य धवल मेघ-समूह में प्रवेश करता हो । वहाँ पहुँचकर उसने अपने अग्रज को प्रणाम किया, तो रावण ने उसे बड़े प्रेम से अपने हृदय से लगा लिया और उसे एक स्वर्णासन पर बिठाया । उसके पश्चात् कुंभकर्ण ने अपने अग्रज को देखकर कहा--'हे असुरनाथ, आपका मुझे जगाने का क्या कारण है ? किसने आपका अपकार किया ? मैं किसे मार डालूँ ? क्या आज्ञा है ?'

तब रावण ने कुंभकर्ण से कहा--'अपनी निद्रा की अधिकता के कारण यहाँ के कार्यों की गति-विधि से तुम अनभिज्ञ हो । इसलिए मैं तुम्हें सभी बातें समझाता हूँ, सुनो। दशरथ-नंदन (राम) सुग्रीव को मित्र बनाकर समुद्र पर सेतु बाँधकर मुझ पर चढ़ाई करने के लिए आया है और अपनी सेना के साथ लंका को घेरे हुए पड़ा है । उससे युद्ध करने गये हुए प्रहस्त आदि वीर राक्षसों का उसने संहार किया है; किन्तु उस युद्ध में एक भी वानर-वीर मरा नहीं है । इसलिए तुम उन राम-लक्ष्मण को जीतकर वालि-पुत्र तथा सूर्य-नंदन का वध करो और लंका के यश की रक्षा करो ।'

७०. कुंभकर्ण का हितोपदेश

रावण के ऐसे दीन वचनों को सुनकर कुंभकर्ण ने रावण से कहा--"उस दिन एकांत में सभी मंत्रियों ने जिस विपत्ति की संभावना की थी, वही आज अचूक रूप से प्रत्यक्ष हुई है । यह किसी भी प्रकार टलनेवाली नहीं है । जो मदांध होकर, आगे-पीछे का विचार किये विना कार्य करता है, वह सब प्रकार से हानि उठाता ही है; ऐसा व्यक्ति आपके सिवा और कौन हो सकता है ? जो राजा अपने बुद्धिमान् मंत्रियों की मंत्रणा के अनुसार कार्य करता है, उसे अपने तथा मंत्री दोनों के उत्साह तथा शक्ति से अगणित फल प्राप्त होगा । राजा को चाहिए कि वह देश और काल का विचार करे, जन तथा धन को समृद्ध रखे, किसी कार्य के प्रारंभ करने के पूर्व उसके संबंध में सोच-विचार कर ले, उसमें पड़नेवाले विघ्नों का निवारण करे और कार्य में कृत-कृत्य होकर सतत राज्य-सुख का आनंद प्राप्त करते हुए पृथ्वी का पालन करे । उसे शत्रु के बल तथा शक्ति का मूल्यांकन करके, यदि शत्रु अपने से बलवान् हो, तो उससे संधि का प्रस्ताव करना चाहिए। यदि शत्रु अपने समान बलशाली हो, तो उसके विरुद्ध अपना बल तथा पराक्रम प्रकट करके, उसे अपने वश में

कर लेना चाहिए । यदि शत्रु अपने से बलहीन है, तो उस पर सारी शक्ति से आक्रमण कर देना चाहिए । अवसर देखकर शत्रु-सेना पर आक्रमण करके शत्रुओं को जीतने का उपाय सोचना चाहिए । यदि शत्रु उद्दण्ड होकर आक्रमण करे, तो उनमें फूट डालने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि वह महान् शक्तिशाली होने के कारण अजेय हो, तो उसकी शरण में जाना चाहिए । इन छहों नीतियों को जानकर जो राजा व्यवहार करता है, वह अवश्य उन्नति करेगा । साम, दान, भेद तथा दंड के चारों उपायों को जो सतत काम में लाता रहता है, उसके लिए अन्य नीति-शास्त्रों की आवश्यकता नहीं है । जो पर-धन, पर-स्त्री में अपना चित्त लगाता है, वह अपने सारे वंश का नाश करता है ।"

कुंभकर्ण के इन वाक्यों को सुनकर रावण क्रोध-विवश हो कहने लगा--'मैं अग्रज हूँ, इसका विचार किये बिना तुम यहाँ आकर मुझे उपदेश दे रहे हो ? अब यह प्रलाप क्यों ? चाहे कैसे भी हो, मैंने यह कार्य किया है । अब इसे सँभालना तुम्हारा धर्म है न? कहो।' तब कुंभकर्ण ने कहा--"हे दानवेन्द्र, मैं अवश्य युद्ध करने के लिए जाऊँगा । किन्तु एक और बात सुन लीजिए । एक दिन की बात है । मैं निद्रा से जगने के पश्चात् अत्यधिक प्राणियों को खाकर एकांत में बैठा हुआ था । उसी समय अनघ नारद वहाँ आये । मैंने उनके निकट जाकर कहा--'हे अनघ, आप इतनी शीघ्रता से कहाँ से आ रहे हैं और कहाँ जा रहे हैं ? कृपया बतलायें ।' तब उन्होंने कहा--'मैं कनकाद्रि से आ रहा हूँ । मैं वहाँ की बातें तुम्हें सुनाऊँगा, सुनो । कनकाद्रि पर कमलासन (ब्रह्मा); फाल-लोचन (शिव); पंकजनाभ (विष्णु); पाकशासन, अनल, यम, वरुण, अनिल, यक्षराज कुबेर, चंद्र, सूर्य आदि ग्रह; सिद्ध, मुनि, किन्नर, गंधर्व, गीर्वाण, गरुड़, पन्नग तथा गुह्य-प्रमुख आदि लोगों की एक सभा एकत्रित हुई थी । उस सभा में सुर-गुरु बृहस्पति ने कहा--'दशकंठ हमारी उपेक्षा करके अत्यधिक उद्दण्ड हो सारे संसार को त्रास दे रहा है । उसने अपनी प्रचंड शक्ति से युद्ध में इन्द्र को परास्त किया है, यम को भगा दिया है, वरुण को जीत लिया है, अपने बल का प्रदर्शन करके कुबेर को अपने अधीन कर लिया है, उद्धत गर्व से कई धर्मात्माओं को बंदी बनाकर पीड़ित किया है, रवि-चंद्र का तेज मंद करके उनको अपनी आज्ञा के अनुसार चलने के लिए बाध्य किया है, ग्रहों को पीड़ित किया है, मंत्र-पूत यज्ञों को नष्ट किया है; महान् उद्यान-वाटिकाओं को उजाड़ दिया है और असंख्य उत्तम स्त्रियों को कारागार में डाल दिया है । ऐसे भयंकर कार्य करते हुए उसने सभी भुवनों को त्रस्त कर दिया है । अतः, आप उस दशानन का नाश करने का कोई उपाय सोचें ।'

"बृहस्पति के वचनों को सुनकर ब्रह्मा ने सभी देवताओं से कहा--'मैंने पहले उसे वर दिया था कि वह सुर, गरुड़, उरग, असुर तथा यक्षों के हाथों से नहीं मरेगा । अब मैंने इसका प्रतीकार सोचा है, सुनो । उसने मुझसे मनुजों की चर्चा नहीं की थी और वरदान के समय मैंने भी इसकी चर्चा नहीं की। अतः, युद्ध-क्षेत्र में केवल मानव उसे परास्त कर सकेंगे । इसलिए आप आदिविष्णु, कमलनाभ तथा लोकवंद्य मुकुंद से प्रार्थना कीजिए कि वे मर्त्य-लोक में जन्म लें ।' इसके पश्चात् देवताओं तथा मुनियों ने वैसे ही किया ।

हरि ने भी मर्त्यलोक में जन्म लिया है।' इतना कहकर नारद चले गये। हे दैत्य-राज, सूर्य-वंश-तिलक आदि देव ही हैं; वे मनुज नहीं है। अतः, सीता को उन्हें सौंप दीजिए। उनकी शरण लीजिए और सभी बानरों को देवता जानिए। हे दानवेन्द्र, मेरी बात सत्य मानिए।"

७१. रावण का कुंभकर्ण के उपदेश का तिरस्कार करना

कुंभकर्ण के इन वचनों को सुनकर दशानन मन-ही-मन संताप की अग्नि में जल गया और थोड़ी देर तक मौन बैठा रहा। फिर, दीर्घ निःश्वास छोड़कर अत्यंत चिताक्रान्त हुआ और साथ-ही-साथ भयभीत भी; किन्तु अपने भय को प्रकट किये विना उसने क्रुद्ध होकर अपने अनुज को देखकर कहा--"बार-बार 'विष्णु', 'विष्णु', कहकर क्या प्रलाप कर रहे हो ? इतना भय तुम्हें कैसे होने लगा। स्वयं विष्णु से भी मैं नहीं डरता; तब मानव-वेशधारी विष्णु से मैं क्यों भयभीत होऊँगा ? मुझे बार-बार ऐसा भय क्यों दिखाते हो ? भले ही तुम भयभीत हो जाओ। चाहे राघव विष्णु ही क्यों न हो, उसका अनुज इन्द्र ही क्यों न हो, सुग्रीव हर ही क्यों न हो, उन्हें मुझसे युद्ध करना ही पड़ेगा। समस्त नीतिशास्त्रों के ज्ञाता होते हुए भी तुम चाहते हो कि जिस राम से मैंने विरोध ठान लिया है, उसके साथ हीन मित्रता कर लूँ ? नीति-शास्त्र का तुम्हारा सारा ज्ञान आज निष्फल हुआ। युद्ध-भूमि में हमारा संहार करके, मुनियों तथा सुरों की रक्षा करने का विचार करके, जगदेकरक्षक तथा कमलनाभ ने अपने देवत्व को त्यागकर, धोखे से मानवत्व को धारण कर लिया है और इस जगत् पर राम होकर जन्म लिया है, भला, उससे हमारी संधि कैसे संभव है ? मैं अपने गर्व को छोड़कर वानरों के आश्रय में रहने-वाले उस राम के पास कैसे जाऊँ ? यही कमलनाभ वामन का रूप धरकर बलि के यज्ञ में गया, तीन चरण पृथ्वी दान में ली और फिर उसे बंदी बनाया। इसने तुरन्त उपकार करनेवाले का अपकार कर दिया। ऐसी दशा में हम विरोधियों का संहार किये बिना वह रहेगा क्यों ? हमारे और राम के मध्य संधि हो कैसे सकती है ? जब हम दोनों ने इन्द्र-लोक पर चढ़ाई की थी और अपने बाहुबल का प्रदर्शन करते हुए महान् पराक्रमी इन्द्र आदि देवताओं को परास्त किया था, तब यह विष्णु कहाँ था ? क्या, तुमको इसलिए मैंने जगाया कि मैं तुमसे उपदेश सुनूँ ? भला, तुम्हें यह भय क्यों हुआ ? प्राणों के भय से इतनी बातें क्यों करते हो ? यदि तुम्हें प्राण प्रिय हैं, तो तुम कुशलपूर्वक रहो। मैंने तो दीर्घ आयु पाई है; तीनों लोकों को जीता है; कई प्रकार के राज-सुखों का अनुभव किया है और अपना अनुपम तेज समस्त संसार में व्याप्त किया है। मैं और लोगों के समान हीन पराक्रमी राम को प्रणाम नहीं करूँगा। मैंने तुम्हें युद्ध में जाने का आदेश दिया, तो जाने की इच्छा नहीं रखते हुए ऐसे वचन तुम क्यों कहते हो ? अब तुम जाकर सुख से सो जाओ। शत्रु सोनेवाले को नहीं मारते। मैं स्वयं राम-लक्ष्मण का, सुग्रीव का तथा अन्य भयंकर-पराक्रमी वानरों का संहार करूँगा। सभी देवताओं का वध मैं स्वयं करूँगा। विष्णु को भी मैं ही मार डालूँगा। उस विष्णु के अनुचर-शूरों को युद्ध में जहाँ भी मिलेंगे, मैं अपनी शक्ति दिखाते हुए मारूँगा। तुम कायर की भाँति चिरकाल तक जीवित रहो।"

इतना कहने के पश्चात् रावण ने फिर कुंभकर्ण से कहा--'मैं जानता हूँ कि लक्ष्मी स्वयं सीता होकर इस पृथ्वी पर जन्मी हैं। मैं जानता हूँ कि विष्णु स्वयं रघुराम होकर जन्मे हैं। मैं यह भी जानता हूँ कि युद्ध में राम के हाथों मेरी मृत्यु अवश्य होगी। अब तुमसे मैं क्यों छिपाऊँ? मैं काम-वश हो सीता को नहीं लाया; क्रोधाभिभूत होकर बलात् मैं सीता को नहीं लाया; युद्ध में रघुराम के हाथों मरकर वंदनीय विष्णु का परम-धाम प्राप्त करने के निमित्त ही मैं सीता को लाया हूँ।'

इस प्रकार के वचन कहनेवाले रावण को देखकर कुंभकर्ण ने कहा--'हे दानवनाथ, जब मैं आपकी सेवा करने के लिए प्रस्तुत हूँ, तब आप व्याकुल क्यों होते हैं? आप आनंद से रहिए। मैं शत्रु का नाश करूँगा।' इसके पश्चात् उसने सारी सभा की ओर एक बार ध्यान से देखा और कहा--'हे इन्द्र के शत्रु, इस सभा में निर्मल चरित्रवान्, विभीषण नहीं दीख रहा है। वह कहाँ है?' तब रावण ने कहा--"राम-लक्ष्मण के लंका पर आक्रमण करने का समाचार सुनकर उस संबंध में परामर्श करने के लिए सभी लोग एकत्र हुए थे। निद्रा के वशीभूत होकर तुम तो शीघ्र यहाँ से चले गये। तब विभीषण ने राम के प्रति अपनी निष्ठा प्रकट करके उसकी प्रशंसा में ऐसे हृदय-विदारक शब्द मुझसे कहे कि क्रोध में आकर मैंने दृढ़ता के साथ कहा--'यदि तुम यहाँ रहो तो मैं तुम्हारे प्राण ले लूँगा। तब वह मुझे छोड़कर राम की शरण में चला गया और अब वहीं है।"

७२. कुंभकर्ण की गर्वोक्तियाँ

तब कुंभकर्ण ने सोचा कि अब परिस्थिति बड़ी विकट हो गई है, मुझे अवश्य युद्ध में जाना ही चाहिए। अब मैं (अपनी गुफा में) लौट नहीं सकता। इस प्रकार, निश्चय करके उसने रावण के सामने दृढ़ता से यह प्रतिज्ञा की--"मैं यमराज से भी भिड़कर उसका नाश करूँगा; ब्रह्मा को भी पकड़कर उसका मर्दन करूँगा; आदिशेष को भी पकड़कर उसे चारों ओर आकाश में घुमाऊँगा; विहगेन्द्र (गरुड़) को भी त्रस्त करूँगा; प्रलयाग्नि को भी निगल जाऊँगा। समुद्र का सारा जल पी जाऊँगा; विष्णु को भी युद्ध में परास्त कर दूँगा। रुद्र को भी नामावशिष्ट करूँगा; नैऋत को भी पकड़कर खंड-खंड कर दूँगा; मृत्यु का भी गला घोंट दूँगा; वरुण का भी तेज नष्ट करूँगा; कुबेर का भी पेट चीर डालूँगा; सूर्यबिंब को भी अपनी मुष्टि में कस लूँगा और ब्रह्माण्ड को भी ठुकरा दूँगा। ऐसी दशा में मेरे उद्धत रण-कौशल के समक्ष, इन वानरों को निगल जाना कौन बड़ा काम है? हे असुरेन्द्र, मैं अवश्य इन कपियों को पहाड़ों पर भगाकर, उन मानवों का वध कर दूँगा; आप निश्चिंत रहिए। जब राम मेरे हाथ से मारे जायँगे, तब सीता अनाथा बन जायगी और आपकी कामना पूरी होगी।'

इन बातों को सुनकर महोदर ने बाहुबली कुंभकर्ण से कहा--'हे वीर, तुमने श्रेष्ठ कुल में जन्म लिया है और तुम्हारा यह उत्कट गर्व उचित ही है; किन्तु नीति तथा अनीति का विचार किये बिना क्या कोई वीर ऐसे शत्रु-वध की प्रतिज्ञा करता है? भयंकर सिंह की भाँति क्रोधोन्मत्त होकर प्रखर तेज से विलसित होनेवाला राम, केवल मानव नहीं है; स्वयं विष्णु इस रूप में आया हुआ है। एक ही बाण से वालि का संहार करने-

वाले उस श्रेष्ठ वीर को जीतना, क्या, तुम्हारे लिए संभव है ? उद्दण्ड पराक्रमी तथा महाबली राम पर तुम्हें अकेले आक्रमण करने की सलाह हम नहीं देते । तुम सेना के साथ जाओ और महाबली राम पर विजय प्राप्त करो ।'

इसके पश्चात् उसने दशकंठ से कहा--'हमारे रहते आप चिंता क्यों करते हैं ? क्या, हम आपका मनोरथ पूर्ण नहीं करेंगे ? जानकी को प्राप्त करने के लिए आप इतने व्याकुल क्यों हैं ? मैं, संपाति, द्विजिह्व, तथा गंभीर पराक्रम-संपन्न बाहुबली कुंभकर्ण, सब एक साथ मिलकर जायेंगे और राम पर विजय प्राप्त करेंगे । फिर तो, आपको वैदेही प्राप्त होगी ही । ऐसा नहीं भी हो सकता और हम राम के उग्र बाणों के आघात से क्षत-विक्षत हो जायेंगे, तो भी हम आपके पास लौटकर आयेंगे और आपके चरणों में प्रणाम करके यों ही कहेंगे कि हे देव, हम भयंकर वानर-सेना के साथ राम लक्ष्मण का वध करके उन्हें खा गये हैं । तब आप बड़े मोद से हमें हृदय से लगाकर हमारे प्रति आदर दिखाते हुए, उस समाचार को सारे नगर में प्रकट करेंगे । उस वार्त्ता को सीता सत्य मानेगी और पति की आशा छोड़कर आपकी बात मान लेगी ।'

तब कुंभकर्ण ने क्रुद्ध होकर असुरेन्द्र को देखकर कहा—'इन सब झूठी बातों से क्या प्रयोजन है ? मेरे बाहुबल को देखिए । मैं अवश्य ही राम को जीत लूँगा । आप निश्चिन्त रहिए ।' रावण भी बड़े उत्साह से, अपने पुनर्जन्म की प्राप्ति को निकट देखकर बड़े आनंद से बोला--'मुझे विश्वास है कि तुम युद्ध में राम-लक्ष्मण को अवश्य जीत लोगे । अनुपम शक्ति तथा शौर्य में तुम्हारी समता कर सकनेवाला कोई वीर नहीं है । यह सत्य है । शूल आदि श्रेष्ठ आयुधों के साथ तुम युद्ध करो ।' इस प्रकार कहते हुए बड़ी प्रीति से उसने कुंभकर्ण को अनुपम रत्नाभरण आदि भेंट किये ।

७३. कुंभकर्ण का युद्ध के लिए जाना

तब रावण का भाई उन आभूषणों को पहनकर उज्ज्वल आभा से दीप्त हो उठा । स्वर्ण-कवच धारण करके वह संध्या के मेघों से आवृत पर्वत की भाँति तथा बहु-रत्न-कलित मेखला धारण करके वह वासुकि से आवद्ध मंदराचल के समान सुशोभित होने लगा । उस राक्षसपुंगव ने रणोत्साह से भरे, अपने हाथ में तीनों लोकों में अपनी भयंकर दीप्ति व्याप्त करनेवाला, विजय-प्रदायिनी शिव के शूल से भी सुंदर, अपनी नोक से निकलनेवाली ज्वालाओं के द्वारा अग्निकण बिखेरनेवाला, सदा पूजित, रत्न-प्रभा से भासमान तथा शत्रु-वीरों के रक्त से रंजित अनुपम शूल धारण किया । उसके पश्चात् उसने अपने भाई को प्रणाम किया और उसके आशीर्वाद प्राप्त करके, उस सभा-मंडप से अपने कार्य में तत्पर हो अत्यंत वेग से यों चल पड़ा, मानों उसके प्राण उससे यह कह रहे हों कि हे कुंभकर्ण, इस दुःखद शरीर में हम रहना नहीं चाहते, शीघ्र इसे युद्ध-भूमि में त्याग दो, चलो, और उसे जैसे खींचे लिये जा रहे हों । तब राक्षस-वीरों का समूह भी उसके पीछे-पीछे युद्ध के लिए निकल पड़ा । वे सब घोड़ों पर, गजों पर, रथों पर, सिंहों पर चढ़कर काजल के पर्वतों के समान सुशोभित होते हुए, अपने विशाल दंष्ट्रों की दीप्ति चारों ओर फैलाते हुए, इस प्रकार जा रहे थे, मानों क्रूरता ने ही एक स्थान पर एकत्रित हो पिंड-रूप धारण कर लिया हो

तथा शौर्य स्वयं रूप धारण करके चल रहा हो। युद्ध करना ही एकमात्र लक्ष्य बनाकर, बड़े गर्व से झूमते हुए, परिघ, भाले, गदा, कोदंड, करवाल, मूसल, मुद्गर, परशु, चक्र आदि आयुधों से सज्जित होकर पदाति-सेना उद्दण्ड गति से चलने लगी।

इस प्रकार की सेना से युक्त हो, दर्प से भरे हुए कुंभकर्ण युद्ध के लिए रवाना हुआ, तो नगर की स्त्रियों ने उस पर पुष्प-वर्षा की; उसके ऊपर चंद्र-मंडल-समान छत्र शोभायमान होने लगे और चंद्रमुखी स्त्रियाँ चामर डुलाने लगीं। उस समय घोड़ों की हिनहिनाहट, हाथियों की चिंघाड़, रथों का विपुल रव, निसानों की घोर ध्वनि, पटह, भेरी, शंख तथा नगाड़ों का भीषण रव एवं घंटा, मृदंग और डंकों के विपुल नाद की सम्मिलित ध्वनि से पृथ्वी विदीर्ण-सी होने लगी; समुद्र आलोड़ित हुए, दिशाएँ फट गईं, आकाश काँप उठा, दिग्गज धँस गये, सभी जगत् त्रस्त हुए और पर्वत टूटकर गिरने लगे। उस समय काले-काले बादल ऐसे घोर गर्जन करते हुए बिजलियाँ गिराने लगे, मानों वे राघव के अनुचर बनकर आये हों और कुंभकर्ण को डाटकर कह रहे हों--'हे अत्याचारी दुष्ट दानव, तुमने संसार को जो दुःख दिया था, उसका फल अब भोगो।' तारे टूटकर पृथ्वी पर ऐसे गिरने लगे, मानों कह रहे हों--'हम इस बात के साक्षी हैं कि अत्यधिक दहाड़ते हुए इठलानेवाले इस राक्षस का अंग-भंग सुग्रीव ने किया था और वह राघव के हाथों से हत होनेवाला है।' प्रतिकूल पवन ऐसा चलने लगा, मानों वह अपने पूर्ववैर का प्रतिशोध लेने के लिए राम की आज्ञा से वेग से चल रहा हो। पृथ्वी इस प्रकार कंपित होने लगी, मानों वह भयभीत हो रही हो कि जब इस अधम राक्षस को राम मार डालेंगे, तब मुझ पर गिरेगा, उस समय न जाने मुझे कितनी पीड़ा होगी। खग ऐसे मँडराने लगे, मानों कह रहे हों--'हे नीच राक्षस, हमें पक्षपाती (पंखों से उड़नेवाले) मत समझो, तुम राघव के खगों से (बाणों से) अवश्य मरोगे।' किन्तु इन सबकी उपेक्षा करते हुए, दुगुने साहस तथा उत्साह के साथ, अपनी क्रुद्ध दृष्टियों से ही वानर-समूह को भस्मीभूत कर देने का संकल्प करके आनेवाले उस अनुपम वीर ने दुर्ग के बाहर रहने-वाले कपि-समूह को देखा। कपियों ने भी उस कुंभकर्ण को देखा और प्रचंड वायु के आघात से भागनेवाले मेघों के समान जहाँ-तहाँ भागने लगे। कुंभकर्ण ने शीघ्र दुर्ग के बाहर निकलकर सिंह-गर्जन किया। उस दहाड़ को सुनकर सभी वानर मूर्च्छित होकर गिर पड़े; समुद्र आलोडित हुआ और भूमि काँपने लगी तथा देवताओं के मन में भय प्रवेश कर गया।

७४. वानर-कुंभकर्ण का युद्ध

कुछ ही समय के पश्चात् वानर-वीर सचेत हो गये और यम-सदृश आकारवाले उस कुंभकर्ण से भिड़ गये। वे सिंह-गर्जन करते हुए, वृक्षों, पर्वतों और शृंगों को फेंकने लगे। दानव-सेना भी बड़े वेग और तत्परता से उनसे जूझ गई। जैसे प्रलयकाल में समुद्र आपस में भिड़ जाते हैं, वैसे ही दोनों सेनाएँ आपस में भिड़ गईं। राक्षसों ने रथ पर आरूढ़ होकर शत्रुओं के शरीरों, हड्डियों, जाँघों तथा पसलियों को चूर-चूर कर दिया; रथ के अश्वों से, उनकी आँतें कंठ, सिर आदि कुचलवा दिये और दिशाओं को भेदनेवाले अपने

खड्गों से वानरों के शरीरों के खंड-खंड कर दिये । इससे संतुष्ट न होकर उन्होंने अपने तीक्ष्ण बाणों से पृथ्वी तथा आकाश को ढक दिया और इस प्रकार बड़ी भयंकर रीति से वानरों का संहार किया । वानरों ने भी रथों पर कूदकर अपने पदाघातों से उनको पीछे की ओर ढकेल दिया, उनका जूआ पकड़कर पृथ्वी पर गिरा दिया और उन्हें चूर-चूर करके दूर फेंक दिया; तीव्र वेग से सारथियों पर कूदकर, अपने पैरों से उन्हें कुचल दिया, उन्हें पृथ्वी की ओर घसीटकर उनके सिर काटकर फेंक दिये और बड़ी तीव्र गति से रथों पर कूदकर राक्षस-वीरों को विविध रीतियों से मारने लगे । यह देखकर राक्षस अत्यधिक रोष से वानरों को घेरकर अपने मदमत्त हाथियों को उन पर चलाकर, उनकी सूँड़ों से वानरों को नीचे पटकवाते थे और उनके कपाल तथा भेजा को हाथियों के पैरों के नीचे कुचलवाकर मिट्टी में मिला देते थे । गजों पर आरूढ राक्षस-सैनिक भयंकर बाण चलाकर वानरों को खंड-खंड करके नीचे गिरा देते थे । तब कपि भी क्रोधोन्मत्त होकर हाथियों के दाँतों को पकड़कर, उनको झकझोर कर, उनके गंड-स्थलों पर पदाघात करके उन्हें फोड़ देते थे । फिर, उन हाथियों को टाँगें पकड़कर उन्हें पृथ्वी पर ऐसे पटक देते कि उनका रक्त, मांस और हड्डियाँ एक साथ मिलकर एक लोंदा बन जाता । उसके उपरान्त वे गजों पर आरूढ राक्षसों पर अत्यंत रौद्र गति से आक्रमण करके, उनके धनुष, हाथ, सिर, धड़, कवच आदि नीचे गिराकर उन्हें मार डालते । अश्वारोही राक्षस-सैनिक एक साथ मिलकर, डींग हाँकते हुए अश्वों को वानरों पर दौड़ाकर उन पर कई प्रकार से शर-वर्षा करते और अपने पैने खड्गों से शत्रु-सैनिकों के खड्गों को काट देते थे । वानर भी क्रुद्ध होकर घोड़ों के पैर या पूँछ पकड़कर या तो चारों दिशाओं में उछालकर फेंक देते थे, या आकाश की ओर उछाल देते थे, या पृथ्वी पर पटक देते थे या चीर डालते थे, या पदाघातों से चूर-चूर कर डालते थे । फिर, अश्वारोहियों को बड़े साहस के साथ पृथ्वी पर पटककर मार डालते थे । तब पदचर राक्षस बड़े दर्प के साथ आँखों से अग्नि-वर्षा करते हुए उद्दण्ड गति से वानरों पर बाण चलाने लगे । वे उन्हें भालों से चुभोते थे, बरछियों से भोंकते थे, पैने खड्गों से काटते थे, मुद्गरों से चूर-चूर करते थे और अन्य अस्त्रों से भयंकर प्रहार करके उनका संहार करते थे । वानर भी उन पदचर सैनिकों पर टूट पड़ते और उनके विविध अस्त्रों को तोड़ देते थे । वे राक्षसों को चरणों तथा हथेलियों से मारकर उनके कवचों को फाड़ देते थे; दोनों हाथों से दो राक्षसों को पकड़कर उन्हें एक दूसरे से टकराकर नीचे गिरा देते थे; उनके शिरों तथा धड़ों को काट देते थे और इस प्रकार वे असंख्य राक्षसों को मार डालते थे ।

इस प्रकार, दोनों सेनाओं में जब घोर युद्ध चलने लगा, तब युद्ध-भूमि राक्षसों की मृत्यु-देवता के क्रीड़ा-सरोवर के समान भयंकर दीखने लगी । उसमें रक्त जल की भाँति, मांस-पेशियाँ विकसित लाल कमल के समान, मुख कमल के जैसे, नेत्र कुमुदों की पंक्ति की भाँति, आँतें मृणालों की भाँति, जमा हुआ भेजा फेन के समान, विपुल केश-समूह भ्रमरों के समूह की भाँति, असंख्य शस्त्र लहरों की भाँति, चामर-समूह हंसों की नाईं और धूलि पराग की भाँति दीखने लगी । सुर तथा खेचर बहुत ही आनंदित दीखने लगे । युद्ध के

समय जब कपि-सैनिक राक्षसों के प्रहारों से अत्यधिक दुःखी होते थे, तब उनके नायक अत्यधिक क्रोध से राक्षसों पर पर्वतों और वृक्षों की ऐसी अविरत वर्षा करते कि दानव धैर्य खोकर कुंभकर्ण की आड़ में जाकर शरण लेते। तब कुंभकर्ण ने उन दैत्य वीरों को आश्वस्त करके सिंह-नाद करते हुए, धैर्य बँधाया और कहा कि 'भागना मत, भागना मत।' उसके पश्चात् वह (शत्रुओं पर) आक्रमण करते हुए आनेवाले वानरों को अपनी क्रुद्ध दृष्टियों से ही मार डालनेवाले की भाँति अपना शूल लेकर, दहाड़ते हुए, उन पर टूट पड़ता। रावण का भाई, वह राक्षस-वीर कुंभकर्ण, कपि-समूह के भाग्य-निर्णायक के समान अथवा क्रुद्ध होकर आनेवाले यम के समान उन वानरों को मारने लगा। उस क्रूर कुंभकर्ण के समक्ष टिकना असंभव हो गया। कुछ वानर मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े, कुछ रक्त उगलने लगे, कुछ भयभीत हो सेतु की दिशा में भागने लगे और कुछ बवंडर की भाँति आकाश की ओर उड़ने लगे।

वानरों को इस प्रकार भागते हुए देखकर अंगद ने क्रुद्ध होकर कहा--'हे वानरो, धैर्य तजकर इस प्रकार क्यों भाग रहे हो? अपने प्रभु के प्रति निष्ठा एवं अपना औन्नत्य छोड़कर भागना क्या तुम्हारे लिए उचित है? तुम महान् वंश में जन्म लिये हुए, श्रेष्ठ वानर हो। ऐसे तुम इस प्रकार साधारण जीवों की भाँति भाग सकते हो? रामचंद्र के समक्ष युद्ध में यदि तुम मारे जाओगे, तो तुम्हें सुन्दर स्वर्ग का राज्य मिल जायगा या यदि तुम विजय प्राप्त करोगे, तो यश प्राप्त करोगे। इसलिए तुम लौटो, भागो नहीं।' ऐसे उपदेश देते हुए अंगद ने उनमें उत्साह का संचार किया और सभी वानरों को फिर लौटा लाया। अंगद के उत्साहवर्द्धक उपदेशों को सुनकर वे कहने लगे--'हम राम के लिए अपने प्राणों की बलि देंगे; उनके प्राणों के आगे हमारे प्राणों का मूल्य ही क्या है?' फिर, उन्होंने पर्वतों को ले आकर, गर्जन करते हुए पर्वत के समान कुंभकर्ण के विशाल वक्ष पर फेंका, तो उसने उन पर्वतों को देखते-देखते अपने शूल से चूर-चूर कर दिया। इससे संतुष्ट न होकर उसने रौद्र रूप धारण कर गदा हाथ में ली और उसे तेजी से घुमाकर वानरों पर ऐसा प्रहार किया कि दस करोड़, सतहत्तर लाख, तीस हजार छह सौ वानर हुंकार करते हुए पृथ्वी पर मूर्च्छित होकर गिर पड़े। फिर, वह अपने हाथों से असंख्य वानरों को पकड़कर बड़ी क्रूरता से यों निगलने लगा, जैसे गरुड़ पक्षी जल्दी-जल्दी सर्पों को निगल जाता है। इस प्रकार, उसने देखते-देखते अस्सी लाख, बीस सहस्र, छह सौ वानरों को निगल लिया। इसके पश्चात् भी वह नर तथा वानर-भक्षक वहाँ से हटा नहीं; किन्तु उसी युद्ध-भूमि में बड़े दर्प के साथ घूमता रहा। उस समय उसके नथुनों तथा कर्ण-पुटों से वानर बाहर निकलने लगे! किन्तु वह उन्हें तुरंत पकड़कर मसल देता और उनका लोंदा बनाकर चबा जाता। जो लोग उसके डाढ़ से छूटकर पृथ्वी पर गिर आते, उन्हें पैरों से रौंदकर चूर-चूर कर देता। इतने में उसके गदा-प्रहार से आहत हो मूर्च्छित पड़े हुए वानर सचेत हुए। वे भयंकर सिंहनाद करते हुए पर्वतों तथा वृक्षों को ले आकर बड़े दर्प के साथ उस राक्षस के समक्ष खड़े हुए। क्रोध से जलते हुए द्विविद ने एक विशाल पर्वत को उस राक्षस के वक्षःस्थल को विदीर्ण करने के निमित्त फेंका। उसके लगते ही कुंभकर्ण उछलकर गिर पड़ा और एक बड़ी राक्षस-सेना उसके नीचे कुचलकर मर गई।

७५. कुंभकर्ण आर हनुमान् का युद्ध

तब हनुमान् अत्यंत क्रोध से आँखों से अग्नि बरसाते हुए, पर्वतों तथा वृक्षों को को उखाड़कर उस राक्षस पर गिराने लगा; किन्तु कुंभकर्ण अपने दारुण शूल से उनको चूर-चूर करते हुए हनुमान् पर आक्रमण करने के निमित्त आगे बढ़ा। तब हनुमान् ने एक महान् पर्वत को उठाकर उसे कुंभकर्ण पर फेंका। यह देखकर असुर भी उसकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे कि यह अनुपम बली है। उस पर्वत के गिरने से कुंभकर्ण का सारा शरीर काँप उठा और उसके शरीर से रक्त की अजस्र धाराएँ बह निकलीं।

उससे अत्यंत दुःखी होकर उस दानव-वीर ने प्रकाश एवं ज्वालाओं को व्याप्त करते हुए, पृथ्वी को विदीर्ण करते हुए, नभ को कँपाते हुए और देवताओं को भयभीत करते हुए भयंकर शूल को हाथ में धारण करके बड़े उल्लास के साथ उसे हनुमान् पर ऐसे चलाया, जैसे कुमार ने क्रौंचगिरि पर अपनी शक्ति चलाई थी। यह देखकर सभी वानर भय से व्याकुल हो गये। उसके लगते ही पवनकुमार का हृदय चरचराकर फट गया और रक्त की ऐसी धारा छूटी, मानों हनुमान् अपना समस्त क्रोध-रस उगल रहा हो। प्रलय-काल के घनघोर बादलों के गर्जन के समान हाँफते हुए कपिशेखर हनुमान् पृथ्वी पर गिर पड़ा। यह देखकर कपि-सेना काँप उठी और राक्षस हर्षित हुए।

युद्धभूमि में अनिलकुमार की ऐसी दशा देखकर नील ने क्रोधाग्नि से जलते हुए उस कुंभकर्ण पर एक महापर्वत से प्रहार किया। अत्यधिक वेग से अपने ऊपर गिरनेवाले उस पर्वत पर कुंभकर्ण ने मुष्टि-घात करके उसे रोका। उसके मुष्टि-घात से वह पर्वत चिनगारियाँ बिखेरते हुए चूर-चूर हो गया। प्रचंड क्रोध से क्षुब्ध हो ऋषभ, शरभ, नील, गंधमादन, गवाक्ष आदि उद्दण्ड बली वानर-वीर, एक साथ भयंकर गर्जन करते हुए, उस कुंभकर्ण पर पर्वतों तथा वृक्षों को फेंकते हुए, मुष्टियों तथा चरणों से प्रहार करते हुए, नाखूनों से चीरते हुए तथा अन्य कई प्रकार से उसे दुःख देने लगे। तब भी कुंभकर्ण विचलित नहीं हुआ। उसने शरभ पर ऐसा प्रचण्ड मुष्टि-घात किया कि वह पृथ्वी पर गिर-कर छटपटाने लगा। उसके बाद उसने ऋषभ को पकड़कर अपने हाथों से उसे मसलकर एक पिंड-जैसा बना दिया। उसके पश्चात् उसने अपने घुटने से वीर नील पर ऐसा प्रहार किया कि वह काँपकर गिर पड़ा और छटपटाने लगा। फिर, उसने गवाक्ष के निकट पहुँचकर अपनी हथेली से उस पर ऐसा प्रहार किया कि वह तिलमिला उठा। उसके बाद उस राक्षस ने बड़े क्रोध से गंधमादन को अपने बायें हाथ से ऐसा मारा कि वह गिर पड़ा। इस प्रकार, पाँचों वानर-वीर रक्त उगलते हुए ऐसे गिर पड़े, मानों रण का राग-रस उगल रहे हों। शत्रुओं का वध करने के कारण, बड़े दर्प के साथ वह राक्षस अपना शूल घुमाते हुए भयंकर वज्र से युक्त इन्द्र की भाँति, अनुपम दण्ड से युक्त उद्दण्ड यम की भाँति, युद्ध-भूमि में भीषण गर्जन करते हुए जहाँ-तहाँ घूमने लगा। तनी हुई भौंहों से युक्त उसके मुख से अग्नि-कण ऐसे झरने लगे, जैसे प्रलय के समय रुद्र के शूल से स्फुलिंग विकीर्ण होते हैं।

७६. सुग्रीव तथा कुंभकर्ण का युद्ध

तब सुग्रीव ने मन-ही-मन सोचा कि मेरे युद्ध करने का यही अवसर है। फिर, उस अनुपम पराक्रमी ने, कुल पर्वतों के अधिपति पर आक्रमण करने के लिए आनेवाले इन्द्र की भाँति अपना शरीर बढ़ाया, तथा प्रचण्ड क्रोध की अग्नि से दीप्त होते हुए सभी पर्वतों में श्रेष्ठ एक महान् पर्वत को उठाकर बड़े वेग से, उस राक्षसेश्वर की ओर बढ़ा, जिसके मुँह और शरीर वानरों के रक्त से भींगकर विचित्र भद्दापन लिये हुए थे। उसके पास पहुँचकर सुग्रीव ने कहा--'हे राक्षस क्या, तुम मुझे नहीं जानते? मैं सूर्य का पुत्र हूँ और प्रख्यात रामचंद्र का भी पुत्र हूँ। तुम्हारे और मेरे बीच का ही युद्ध योग्य होगा। तुम व्यर्थ ही इन वानरों को क्यों मार रहे हो ?'

सुग्रीव के इन वचनों को सुनकर कुंभकर्ण ने क्रुद्ध होकर कहा--'हे सुग्रीव, लोग तुम्हें बड़ा ही शूर कहते हैं। क्या, कोई शूर युद्ध किये विना ही क्रोध करता है ? युद्ध में अपनी शूरता प्रदर्शित करना ही उचित होगा। इस प्रकार डींग हाँकना तुम्हें शोभा नहीं देता।' उसके इतना कहते ही सूर्य-पुत्र ने उस राक्षस पर क्रुद्ध होकर लाये हुए पर्वत को उस पर पटक दिया। वह पर्वत उस राक्षस के विशाल वक्ष से लग गया और चूर-चूर हो गया। दोनों पक्षों की सेना इस क्रूर आघात को देखकर हाहाकार करने लगी। उस महाबली के प्रहार से राक्षस-वीर अत्यंत संभ्रमित हुआ। फिर भी, बड़े साहस के साथ उसने भयंकर गर्जन किया और सुग्रीव पर उस विख्यात शूल को चलाया, जो बीस सहस्र सिर की आहुति के पश्चात् चंदन-अक्षत से अर्चित था तथा सुरासुरों के वहन करने के लिए अशक्य था। तब वह शूल भयंकर ज्वालाओं से प्रदीप्त होते हुए पृथ्वी, आकाश तथा दिशाओं तक अपनी ज्वालाओं को फैलाते हुए, दस हजार अशनियों के समान ध्वनि करते हुए सूर्य-पुत्र की ओर जाने लगा। उस शूल को ऐसी भयंकर गति से आते देखकर हनुमान् ने बीच में आकर उसे इस प्रकार पकड़कर खंड-खंड कर दिया जैसे गरुड़, घनी विष-ज्वालाओं को उगलनेवाले सर्पराज को पकड़कर उसको नष्ट-भ्रष्ट कर देता है। उसके पश्चात् हनुमान् ने उछलकर सिंह-गर्जन किया, तो सभी वानर उसकी प्रशंसा करने लगे। शूल के टूटने से कुंभकर्ण क्रोध से जलते हुए लंका के मलयाद्रि-शृंग को उठाकर सूर्य-पुत्र पर फेंका। शृंग के सुग्रीव के वक्ष पर लगते ही वह हाँफते हुए पृथ्वी पर गिर पड़ा।

७७. कुंभकर्ण का मूर्च्छित सुग्रीव को लंका ले जाना

सुग्रीव के गिरते ही राक्षस बड़ी हर्ष की ध्वनि करने लगे। तब कुंभकर्ण क्रूर रूप धारण किये पृथ्वी पर पड़े हुए उस महाबली सुग्रीव के निकट आया और उसे देखकर बोला--'समस्त वानर-सेना के लिए तथा सूर्यकुल-तिलक राम के लिए एकमात्र शक्ति-पुंज यही है। अतः, यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इसके गिरने से सभी वानर शीघ्र गिर जायेंगे। अब मेरे भाई भी इस सुग्रीव को देख लें।' इस प्रकार, सोचते हुए वह उसे उठाकर लंका की ओर ऐसे ले चला, मानों कालानिल घनघोर बादल को गिराकर उसे अपनी गुफा में ले जा रहा हो। सभी देवता दुःखी होने लगे--'हाय, सुग्रीव कहीं

इस प्रकार बंदी तो नहीं बनेगा ?' कुंभकर्ण की शक्ति तथा पराक्रम की सभी दानव प्रशंसा करने लगे और रवि-सुत को छुड़ाने में असमर्थ होकर वानर हाहाकार करने लगे ।

तब हनुमान्, अंगद, नील, शरभ, ऋषभ, जांबवान्, गिरिभेदी, सुतर, केसरी, पृथु, हरिरोम, पावकाक्ष, हर, द्विविद, मैन्द, वेगवान्, गवय, शतबली, गज, दुर्दम, समुख, बालपाश, गवाक्ष, कुमुद, ज्योतिर्मुख, सुषेण, दधिमुख, वेगदर्शी, रंभ, क्रथन, धूम्र, गंधमादन, तार, क्रोधन, तपन, प्रजंघ, घोराक्ष, जंघाल, गोमुख, विमुख, पनस, सन्नाथ, संपाती, इन्द्रजाल, विनुत, सुदंष्ट्रक, श्वेत, दुर्मुख आदि भयंकर आकारवाले उद्दण्ड पराक्रमी एवं वीर वानर पर्वतों तथा वृक्षों को उठाये हुए ब्रह्माण्ड को विदीर्ण करनेवाले घोर गर्जन करते हुए किसी भी तरह से सूर्य-पुत्र को छुड़ाने का दृढ़ संकल्प करके उस राक्षस पर टूट पड़ने के लिए उतावले होने लगे । इतने में नीतिवान् वायुपुत्र ने अपने हस्त-संकेत से उन्हें रोककर उनसे कहा--'अद्भुत शूर सूर्य-पुत्र अभी मूर्च्छा में पड़े हुए हैं। जब उनकी चेतना लौट आयगी, तब वह महान् वीर स्वयं यहाँ चले आयँगे । यदि हम हठ करके उन्हें राक्षस के हाथ से छुड़ा लेंगे, तो कपिराज मन-ही-मन दुःखी होंगे। अतः, हमें ऐसा नहीं करना चाहिए। थोड़ी देर प्रतीक्षा करो । यदि इस बीच में वे नहीं लौटे, तो कुटिल रावण एवं कुंभकर्ण को तथा प्रचंड विक्रमी सभी राक्षसों को अपने मुष्टि-घातों से हम मार डालेंगे, स्वर्ण-दीप्तियों से सुशोभित होनेवाले सातों दुर्गों के साथ लंका का सर्वनाश करके प्रलय मचा देंगे और सूर्य-पुत्र से मिलकर उन्हें ले आयेंगे ।' हनुमान् के इन वचनों को सुनकर सभी कपि-वीर मन-ही-मन हर्षित हुए और आकाश-मार्ग में बड़े वेग से उस राक्षस के पीछे-पीछे चलने लगे । कुंभकर्ण ने इस बात से अनभिज्ञ हो, अपने ढंग से सूर्य-पुत्र को लेकर लंका में प्रवेश किया ।

तब राजमार्गों राजांतःपुरों तथा ऊँची अट्टालिकाओं पर से नगर की स्त्रियाँ पुष्प-वृष्टि करने लगीं । इससे सूर्य-पुत्र सचेत हुआ और नगर-मार्ग को चारों ओर आश्चर्य से देखा । फिर, मन-ही-मन आश्चर्य तथा दुःख का अनुभव करने लगा। वह सोचने लगा—'हाय, इतनी देर तक मूर्च्छित रहकर मैं इस राक्षस के हाथों में फँस गया । फिर, उसने अपने हाथों से उस राक्षस के कानों को पकड़कर ऐंठा और उन्हें जोर से खींचा । फिर उसके नथुनों के साथ नाक को काट डाला और तीव्र गति से आकाश की ओर उड़ गया; किन्तु राक्षस ने उसे छोड़ा नहीं । उसने सुग्रीव के पैर पकड़कर उसे नीचे की ओर खींच लिया और नीचे पटक दिया; किन्तु सुग्रीव फिर से आकाश की ओर उड़कर शीघ्र अपने प्रभु के पास पहुँच गया । स्वर्ग में सभी देवता आश्चर्यचकित हुए और वानर-समूह घेरकर उसे प्रणाम करने लगे। तब सभी वानरों के साथ सुग्रीव ने रामचन्द्र के चरणों में प्रणाम किया। श्रीराम ने बड़े हर्ष से सुग्रीव को हृदय से लगा लिया । सभी कपि आनंदविभोर हो गये ।

७८. कुंभकर्ण का वानर-सेना को तहस-नहस करना

वह असुरेश्वर अपने नाक तथा कान के नष्ट होने से मन-ही-मन बहुत क्षुब्ध हुआ और सोचने लगा—'अपनी बहन के अपमान से अत्यंत लज्जित होकर उसका प्रतिकार

करने के उद्देश्य से अकारण ही सूर्यवंशज राम से वैर ठानकर अत्यधिक शौर्य के साथ युद्ध करनेवाले रावण के समक्ष मैं इस विकृत शरीर से कैसे जा सकूँगा ? अतएव, मेरे लिए उचित यही है कि मैं युद्ध-भूमि में वापस चला जाऊँ ।' यों सोचकर वह उद्दण्ड राक्षस अत्यंत क्रुद्ध होकर, रक्त-सिक्त शरीर से इस प्रकार रण-भूमि की ओर चल पड़ा, मानों लाल रंग के झरनों से युक्त नीलाद्रि आ रहा हो अथवा युगांत के समय की प्रचंड अग्नि हो । रणभूमि में पहुँचकर वह क्रुद्ध राक्षस भयंकर गति से वानरों पर टूट पड़ा और विविध रीतियों से उनका संहार करने लगा । वह कुछ वानरों के पैर पकड़कर उन्हें तेजी से घुमाता और पृथ्वी पर पटक-पटककर मारता । कुछ वानरों पर मुष्टि-प्रहार करता, तो कुछ वानरों की आँतों को बाहर खींच लेता । कुछ लोगों पर पद-प्रहार करता और जब उनका कलेजा और मांस-खंड बाहर निकल आते, तब उन्हें पैरों से कुचल देता । कभी-कभी वज्र के समान अपनी विशाल बाहुओं को उठाकर शत्रुओं पर ऐसा प्रहार करता कि वे मिट्टी चाटने लगते । जो वानर उसके शरीर पर चढ़ जाते, उन्हें आश्चर्यजनक रीति से पकड़ लेता और सामने पड़नेवाले राक्षस को भी अपनी ओर खींचकर उसके कंठ पर प्रहार करता था । इस प्रकार, उसने हुंकारों तथा दहाड़ों के साथ वानरों के प्राण ले-लेकर उनके शवों का ढेर-सा लगा दिया । फिर, वह कुछ वानरों को ऊपर उठाकर आकाश की ओर ऐसे उछाल देता कि युद्ध को देखने के लिए आये हुए देवताओं के विमान घबराकर लौट जाते । ऊपर फेंके हुए वानरों को नीचे गिरने के पहले ही उनसे टकराने के लिए दूसरे वानरों को लक्ष्य करके फेंक देता । कुछ वानरों को पकड़कर आकाश में ऐसा घुमाता कि उनकी हड्डी-पसली चूर-चूर हो जाती । कुछ वानरों को मार-मारकर मूच्छित कर देता । कुछ लोगों को दोनों हाथों से कसकर पकड़ लेता, फिर उन्हें जहाँ-तहाँ पटककर दूर फेंक देता । कुछ वानरों को पकड़कर लंका में फेंक देता और कहता––'लो तुम भी इन वानरों को देखो ।' कुछ कपियों को समुद्र में फेंककर कहता––'जिन्होंने तुम्हें बाँधा था, उन्हें अब तुम डुबो दो ।' इस प्रकार, वह दानव अपना प्रताप प्रकट करते हुए उन वानरों को सभी दिशाओं में फेंकने लगा । पृथ्वी, आकाश तथा सभी दिशाओं में, जहाँ देखो वहाँ, मरनेवाले, लुढ़कनेवाले, लोटनेवाले, अर्त्तनाद करनेवाले, छटपटानेवाले, हाँफने-वाले गिरे हुए तथा गिरनेवाले कपि ही भरे थे । सारा रण-रंग इन वानरों के आक्रंदन से दुस्सह प्रतीत होने लगा । उस कुंभकर्ण का कालांतक के समान अत्युग्र तथा भीषण आकार देखकर, सुग्रीव दब गया; अंगद भयभीत हो गया, गवाक्ष काँप उठा, गज धैर्य खो बैठा; ऋषभ विचलित हो गया, नल शंकित हुआ, नील भय-विकंपित हो गया, पृथु विचलित हुआ; शरभ चकित हुआ, धूम्र भय-विह्वल हुआ; पनस थर-थर काँपने लगा, गंधमादन डर गया; अनिल-कुमार भी थरथराने लगा; ज्योतिर्मुख अत्यंत भयाकुल हुआ; जांबवान् मार्ग पकड़कर भागने लगा और शेष सभी वानर अत्यंत भय-विह्वल हो उठे ।

तब महान् बली लक्ष्मण ने कुंभकर्ण को सिर से पैर तक देखकर क्रोध से उसके वक्ष पर सात शर चलाये । उसके बाद भी उन्होंने कई शर चलाये; किन्तु उस क्रूर राक्षस ने

लक्ष्मण की उपेक्षा कर दी। अनेक कपि आपादमस्तक उसके शरीर पर रेंगते हुए, उसकी मूँछें पकड़कर झूलते हुए, क्रोध से अपनी पूँछें उसके शरीर पर रगड़ते हुए, उसके शरीर के विविध अंगों को पकड़कर खींचते हुए, उसे विविध रीतियों से पीड़ित करने लगे। तब वह राक्षस अत्यधिक क्रुद्ध हो गया और अपने शरीर को ऐसे झटका देकर उन वानरों को नीचे गिरा दिया, जैसे चंचल मत्तगज अपने शरीर को झटकाता है, या जल में डुबकी लगाने के पश्चात् मस्त सूकर अपने शरीर को झटकाकर (अपने शरीर पर लगे) जल-बिंदुओं को नीचे गिराता है या प्रलय-काल में ब्रह्मा नक्षत्रों को टप-टप नीचे गिरा देता है।

तब राम उस कुंभकर्ण को देखकर विस्मित हुए। उनकी आँखों से अंगारे छूटने लगे। उन्होंने शेष-नाग के आकारवाले अपने स्वर्ण-धनुष को उठाया, अनुपम तूणीरों को पीठ पर कसा और भयंकर विक्रम से विलसित हो (युद्ध के लिए) चल पड़े। ऐसी सज्जा से परिपूर्ण राम को युद्ध के लिए आते देखकर, युद्धारंभ में उत्साही तथा उद्दण्ड पराक्रमी वानर भी अत्यधिक चंचलता से पर्वतों, चट्टानों तथा वृक्षों को धारण किये, दुर्निवार क्रोध से, अपनी उछल-कूद से, सप्त पातालों को विदीर्ण करते हुए, कूर्म को व्याकुल करते हुए, समुद्रों को आलोडित करते हुए, दिग्गजों को विचलित करते हुए, आकाश को कँपाते हुए, उस राक्षस पर आक्रमण करने के लिए चल पड़े। उनके उस रणोत्साह को देखकर सुर-सिद्ध-साध्य उनकी स्तुति करने लगे। विभीषण राम के आगे-आगे क्रोधाभिभूत होकर अपनी गदा लिये हुए जाने लगा।

१७९. विभीषण-कुंभकर्ण का वार्त्तालाप

तब विभीषण को देखकर रावण का भाई (कुंभकर्ण) हँसते हुए कहने लगा--'हे विभीषण, सुनो। अपने प्रभु के समक्ष अपने पराक्रम के प्रदर्शन का यह अच्छा अवसर है। भाई के संबंध का विचार करके तुम झिझकना मत। तुम्हारे लिए इस नरनाथ का हृदय ही आधार है। तुमने सूर्यवंशज की कृपा प्राप्त की है; इसलिए कोई भी विपत्ति तुम्हें छू नहीं सकेगी। उनकी अपार दया तुम पर है ही; साथ ही तुम प्रशंसनीय एवं दया-परिपूर्ण चित्तवाले भी हो। तुम्हारे सिवाय और कौन ऐसा सद्गुणालंकृत है, जो लंका का राज्य कर सके? इसलिए मैं तुमसे कह रहा हूँ कि तुम अपने साहस, बल, विक्रम से मेरे साथ मत भिड़ो। क्या, ब्रह्मा तथा रुद्र के लिए भी यह संभव है कि वे आज मेरे सम्मुख खड़े रह सकें? इसलिए हे भाई, तुम मेरे सामने से हट जाओ। तुम मरो नहीं; राक्षस-वंश का उद्धार करने के लिए तुम्हारा जीवित रहना आवश्यक है।'

तब विभीषण ने अपने भाई से कहा--'मैंने इस भय से कि सारा दानव-कुल दग्ध हो जायगा, अपने भाई से, अपनी शक्ति-भर नीति-वचन कहे; किन्तु उन्होंने मेरी बातों को नहीं माना। इसीलिए मैंने अग्रज तथा तुम्हें छोड़कर श्रीराम की शरण ली।' इतना कहकर उसने मन-ही-मन दानवेश्वर की दुर्नीति का विचार करके आँखों से अश्रु बहाते हुए अत्यंत दुःख से, अपने भाई की दशा न देख सकने के कारण वहाँ से हट गया।

तब राघवेश्वर अपने अनुज लक्ष्मण के साथ रण के लिए उद्यत होकर उस कुंभकर्ण को देखकर मन-ही-मन आश्चर्य-चकित हुए, जो सुंदर मुकुट तथा आभूषण पहने हुए था,

वीर-रसावेश से अभिभूत था, बड़े साहस के साथ कपियों का संहार कर रहा था और अत्यधिक रक्त में भींगा हुआ ऐसा दीख रहा था, मानों रौद्र रस ही मूर्त्त होकर राक्षस के रूप में आ गया हो।

तब सूर्यकुलोत्तम-राम भूपाल ने अत्यंत क्रोध से अपने धनुष की प्रत्यंचा का ऐसा टंकार किया, मानों कह रहे हो कि नारी के कारण उद्भुत अपना सारा क्रोध इस नारी★ (प्रत्यंचा) के द्वारा प्रदर्शित करूँगा और दहाड़ते हुए आनेवाले इस राक्षस की क्रोधाग्नि को मैं अपनी शर-वृष्टि से बुझा दूँगा। धनुष की ध्वनि सुनकर दिग्गज ऐसे चिंघाड़ने लगे, मानों कह रहे हों कि गज-गामिनी (सीता) अब अपने स्वाभाविक निवास को प्राप्त होगी। (उस ध्वनि से) लंका इस प्रकार गूँज उठी, मानों कह रही हो कि श्रीराम का क्रोध अब लंकेश्वर को भस्म कर देगा। उस ध्वनि से समस्त जग बहरे-से हो गये।

उस ध्वनि को सुनकर कुंभकर्ण रोष से भरकर, बड़े गर्व से अकड़ते हुए राम के समक्ष आया। तब सूर्यवंशज राम ने बड़े दर्प के साथ उससे कहा--'हे राक्षस, अब तुम्हें पीछे हटना नहीं चाहिए। तुम धैर्य तथा साहस के साथ युद्ध करने के लिए ऐसे डट जाओ कि देवता भी तुम्हारी प्रशंसा करें। ऐसा नहीं करके यदि तुम माया रचकर कहीं छिप भी जाओगे, तो भी मैं तुम्हें छोड़ूँगा नहीं। यदि तुम ब्रह्मा के निकट पहुँचकर उनकी शरण माँगोगे, तो भी ब्रह्म-लोक मेरे सामने टिक नहीं सकेगा। यदि तुम नीलकंठ की शरण में जाकर उनसे रक्षा करने की प्रार्थना करोगे, तो भी रुद्र-लोक मेरे समक्ष खड़ा नहीं रह सकेगा। यदि तुम विष्णु की शरण माँगोगे, तो विष्णु-लोक भी मेरा सामना नहीं कर सकेगा।'

राम के इन दर्प-पूर्ण वचनों को सुनकर कुंभकर्ण अत्यधिक भयाक्रांत हुआ। फिर भी, उसने ऐसा अट्टहास किया कि वानरों के हृदय फट गये, खड़े-खड़े उनके प्राण उड़ गये और समस्त पृथ्वी, आकाश तथा दिशाएँ विचलित हो गईं। फिर, वह अपनी युद्ध-कुशलता को प्रकट करते हुए, राम भूपाल को देखकर कहने लगा--"हे सूर्यकुलतिलक, विविध मायाओं को रचकर अंत में तुम्हारे हाथ से मरनेवाला मारीच मैं नहीं हूँ। तुम्हारे शर-प्रहारों से गिरनेवाला विराध मैं नहीं हूँ। युद्ध-क्षेत्र में एक ही बाण से पृथ्वी पर गिरनेवाला वालि भी मैं नहीं हूँ। अपने हाथ का धनुष तुम्हारे हाथ में देकर तुम्हारे द्वारा गर्वभंग करा लेनेवाला भृगु-पुत्र नहीं हूँ, मैं रावण का भाई हूँ; देवताओं का शत्रु हूँ और प्रदीप्त विक्रम से विलसित हूँ। हे राम, क्या, तुम मुझे नहीं जानते? वानर-समूह के सद्यःरक्त का पान करनेवाला मैं कुंभकर्ण हूँ। तुमने अज्ञान ब्रह्मा और इन्द्र की प्रेरणा से इस संसार में जन्म लिया और न जाने क्यों इस वानर-समूह के भरोसे मेरे साथ युद्ध करने के लिए आये हो? राक्षसों के भयंकर बाण, सनक आदि योगीन्द्रों की स्तुतियाँ नहीं हैं। वेग से आनेवाले भयंकर शस्त्र, परिचारकों का चामर-समूह नहीं हैं। भीषण आकारवाले राक्षस-सैनिक सुंदर गीत गानेवाले तुंबुरु तथा नारद नहीं हैं। मेरी जो वायु तुम पर चल रही है, वह पंखों का पवन नहीं है। यह युद्ध-क्षेत्र है, अमृत-सागर नहीं। यह युद्ध-भूमि है, तुम्हारी देव-सभा नहीं है। हे राजन्, तुमने पृथ्वी पर जन्म क्यों लिया? इस युद्ध में

★ तेलुगु में 'नारी' शब्द के दो अर्थ हैं--स्त्री और प्रत्यंचा।--ले०

तुम्हें स्वर्ग का वह सुख कहाँ मिलेगा ? यह सब मैं तुमसे क्यों कहूँ ? हे राम, मेरी यह गदा तो देखो । इसी से मैंने देवताओं को जीता । तुम्हारे दिव्यास्त्र कहीं इसकी समता कर सकते हैं ? यदि तुम में बाहुबल, शौर्य तथा पराक्रम है, तो मुझसे घोर युद्ध करो । हे राजन्, तुम्हारी शक्ति देखकर फिर मैं तुम्हारा वध करूँगा ।"

८०. श्रीराम के द्वारा कुंभकर्ण का संहार

तब राम ने क्रुद्ध होकर ऐसे सहस्रों भयंकर बाण उस देवताओं के शत्रु पर चलाये, जैसे बाण उन्होंने वालि पर चलाये थे; किन्तु उन सब बाणों को कुंभकर्ण ऐसे पी गया, जैसे चातक पक्षी जल-बिंदुओं को पी जाता है। फिर, वह भयंकर मुद्गर घुमाते हुए बड़े वेग से वानर-वीरों को भगाते हुए आगे बढ़ा । उसको सामने आते हुए देखकर राम ने निर्भीक हो सहज ही एक अनिल-बाण चलाकर भयंकर गदा से युक्त उसका हाथ काट डाला । उस हाथ को गिरते देखकर वानर चारों ओर बिखर गये; जो उस हाथ के गिरने से पहले भाग नहीं पाये, वे उसके नीचे दबकर मर गये । तब बचे हुए वाम हस्त से उस राक्षस ने एक विशाल वृक्ष को सहज ही उखाड़कर उसे उठाकर राम की ओर आगे बढ़ा । यह देख इन्द्र आदि देवता काँप उठे; किन्तु राम ने ऐन्द्र बाण से उस हाथ को भी काट डाला । वह विशाल बाहु अद्भुत गति से कटकर पृथ्वी पर ऐसे गिरी कि पृथ्वी विदीर्ण-सी हो गई और असंख्य वानर उसके नीचे दबकर चूर-चूर हो गये । इस प्रकार, सूर्यवंश-तिलक राम के घोर अस्त्रों से दोनों हाथ कट जाने पर वह राक्षस, वज्र के द्वारा पंख कटे हुए पर्वत की भाँति भयंकर हाहाकार करते हुए राम की ओर आने लगा । तब हाथ-नाक-कान-विहीन विकृत आकारवाले उस कुंभकर्ण को देखकर राम ने संकल्प कर लिया कि मैं अब अवश्य इस नीच का वध करूँगा । फिर, उन्होंने शीघ्र दो अर्द्धचन्द्र बाणों का संधान किया और उस राक्षस के दोनों चरण ऐसे काट दिये कि समस्त जग उनकी प्रशंसा करने लगा । चरण तथा बाहुओं के कट जाने पर भी, वह राक्षस नहीं दबा; किन्तु क्रोधोन्मत्त हो वडवानल-चक्र की भाँति अपने मुँह को विकृत बनाकर, सूर्य को ग्रसने के निमित्त आनेवाले राहु की भाँति राम से भिड़ गया । तब राम ने अपने तूणीर के कठोर बाण उसके मुँह में ऐसे भर दिये, मानों वे एक तूणीर के बाण दूसरे तूणीर में भरते हों । इस प्रकार जब बाण-समूह से उस राक्षस का मुँह भर गया, तब उससे सिंहनाद करते नहीं बना; इसलिए वह विविध अपस्वरों से हुंकार करते हुए अपनी दृष्टियों से डराने-धमकाने लगा । तब राम ने उस दैत्यनाथ के शरीर को लक्ष्य करके ऐन्द्रास्त्र चलाया । रघुवर के छोड़ते ही वह बाण ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्न-सूर्य की भाँति, ब्रह्म-दण्ड की भाँति, प्रबल प्रभंजन की भाँति, समस्त लोकों को अपनी लाल-लाल ज्वालाओं से भरते हुए आया और कुंभकर्ण के वक्षःस्थल में घुसकर पार निकल गया तथा पृथ्वी में गड़कर सभी दिशाओं को अपने भीषण रव से प्रतिध्वनित करने लगा । इतने में राघवेन्द्र ने अत्यंत शीघ्रता से अंतक बाण का संधान करके चलाया । वह बाण अपनी भयावह ध्वनि से सभी दिशाओं को गुंजायमान करते हुए, ब्रह्माण्ड को कंपित करते हुए, पृथ्वी को विदीर्ण करते हुए, समस्त भूत-राशि को मूर्च्छित करते हुए, सौ करोड़ काल-चक्रों के एक साथ चलकर आने की भाँति, वडवानल के

आगमन के समान, कालकूट विष ही बाण के रूप में आने के समान, दुर्वार गति के साथ अत्यंत वेग से आया और उस राक्षस के नीलाद्रि-सम दीखनेवाले सिर को काट दिया। वह सिर तुरंत नीचे नहीं गिरा; किन्तु वह लंका में बहुत ही ऊँची अट्टालिकाओं तथा सौधों से टकराकर उन्हें चूर-चूर करके अत्यधिक ध्वनि करते हुए आगे निकल गया और समुद्र के विविध प्राणि-समूह को कुचलते हुए समुद्र में गिरकर डूब गया। उस राक्षस का अर्द्ध-शरीर पृथ्वी पर दस करोड़ वानरों को कुचलते हुए तथा दूसरा अर्द्ध-शरीर समुद्र के जल-चर समूह को चूर-चूर करते हुए गिर पड़ा। उसके गिरने से जो ध्वनि हुई, उससे सभी समुद्र आलोडित हो उठे, पृथ्वी काँप उठी, दिशाएँ विदीर्ण हुईं और लंकाधीश का हृदय विदीर्ण हो गया। लंका में कोलाहल होने लगा, सभी जग हर्षित हुए और वानर-वीर आनंद-सागर में डूब गये। तब देवताओं ने रविकुलाधिप रघुरामचंद्र की विविध रीतियों से स्तुति की। रामचंद्र भी कुंभकर्ण की मृत्यु पर मंदहास करते हुए मन-ही-मन हर्षित होने लगे कि यह राक्षस देवताओं तथा दिक्पालों के लिए भी दुर्जय था; अब सभी लोकों के लिए कभी किसी प्रकार का भय नहीं रहेगा। राहु के प्रभाव से मुक्त होकर प्रभा से विलसित होनेवाले सूर्यबिंब की भाँति रामचंद्र विजयलक्ष्मी को प्राप्त करके भासमान होने लगे।

इसके पश्चात् राक्षस मन-ही-मन इस पराजय के कारण परितप्त होते हुए, कांति-हीन मुखों से शीघ्र रावण के समक्ष गये और निवेदन किया--'हे देव, देवताओं का शत्रु, आपके भाई ने समस्त वानर-समूह को भयभीत करके भगा दिया और आकाश से पृथ्वी तक व्याप्त होकर कपि-समूह-रूपी समुद्र को इस प्रकार मथ डाला, जैसे मंदराचल ने क्षीर सागर का मथन किया था। फिर, उन्होंने दुर्वार विक्रम से सारे रण-क्षेत्र में युद्ध करते हुए, इन्द्रादि देवताओं में ईर्ष्या उत्पन्न की और निदान श्रीराम की विपुल-बाणाग्नि में दग्ध हो गये।' जब राक्षसों ने इस प्रकार रण-क्षेत्र में कुंभकर्ण की मृत्यु का समाचार रावण को सुनाया, तब वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर इस प्रकार गिर पड़ा, मानों उसका पतन निश्चित ही है। अतिकाय अत्यंत शोकाकुल हुआ; देवांतक धैर्य तजकर शोक करने लगा। त्रिशिर दिङ्मूढ की भाँति पृथ्वी पर लोट गया। नरांतक काठ के पुतले के समान स्तंभित रह गया। महोदर तथा महापार्श्व आदि राक्षस-वीर शोक-विह्वल हो भूमि पर गिर गये।

८१. कुंभकर्ण की मृत्यु पर रावण का शोक

रावण शीघ्र ही सचेत होकर बार-बार अपने भाई का नाम लेकर यों प्रलाप करने लगा--'हे वीर, अब मैं राघव-वैर-रूपी समुद्र को किस नौका से पार करूँगा? मुझे विश्वास था कि तुम राम-लक्ष्मण का रण में संहार करोगे। ऐसे समय में तुम स्वयं राघव के प्रचण्ड शर-वह्नि की ज्वाला में भस्म हो गये! हे निद्रालु वीर, तुम सतत निद्रा-निरत रहनेवाले हो; आज तुम दीर्घ निद्रा (मृत्यु) से क्यों अनुरक्त हुए? अविरत अशनि-पात से भी नष्ट नहीं होनेवाला तुम्हारा शरीर आज एक साधारण मानव के प्रहार से नष्ट हुआ! तुम तो अपनी अनुपम शक्ति के कारण अंतक (यम) के लिए अंतक सिद्ध हुए थे। ऐसे तुम्हारे लिए आज युद्ध-क्षेत्र में राघव अंतक कैसे सिद्ध हुआ? अद्रि, विद्रावण आदि

देवता इस भय से पीड़ित होकर सोते तक नहीं थे कि तुम नींद से जगकर रौद्र रूप धारण करके क्रूरता के साथ उनका सर्वनाश कर दोगे। तुम युद्ध में गिर गये; अब, भला, देवता मेरी परवाह क्यों करने लगे ? सारे वंश की रक्षा करने के उद्देश्य से भाई विभीषण ने, हठ करके बार-बार मुझे हित-वचन कहे; किन्तु मैंने उसकी बातें नहीं सुनीं और पद-प्रहार करके उसे नगर से निर्वासित कर दिया। क्या, वह पाप मुझे यों ही छोड़ देगा ? तुम तथा अन्य बुद्धिमान् लोगों ने सतत जो नीतिपूर्ण वचन कहे, उन्हें मैंने नहीं माना, और तुम्हें खो बैठा। अब जिस विजय की मैंने आशा की थी, वह मुझे क्यों मिलेगी ? युद्ध-क्षेत्र में तुम मेरे दाहिने कंधे की तरह रहे; किन्तु आज युद्ध में तुम अपने महान् बाहु-बल को खोकर नष्ट हो गये। अब मेरा सहारा कौन होगा ?'

इस प्रकार, रावण बार-बार कुंभकर्ण का स्मरण करते हुए दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए, परिताप-रूपी बडवानल, उमड़कर टपकनेवाली लार-रूपी फेन, अजस्र अश्रु-रूपी बाढ़, अनंत दुःख-रूपी तरंगें, रुदन-रूपी घोष, भय-रूपी संचलन से युक्त शोक-समुद्र में डूबकर व्याकुल पड़ा रहा। तब रावण को देखकर त्रिशिर उसे धैर्य देते हुए बोला--'हे देव, आप साधारण लोगों की भाँति अपना धैर्य खोकर ऐसे क्यों शोक करते हैं ? ब्रह्मा से प्राप्त वर की महान् शक्ति रखते हुए, सतत मंत्र-पूत अस्त्र तथा वज्र-कवच से संपन्न होते हुए, श्रेष्ठतम गतिशील उज्ज्वल रथ के रहते हुए, आप क्यों ऐसे शोक करते हैं ? मेरी ओर देखिए। हे अमरों के शत्रु, कौन है जो आपका सामना कर सके ? आप शीघ्र चलकर अपने अनुपम पराक्रम से राघव का संहार कीजिए। अब शोक तजिए। मैं अभी जाता हूँ और घोर युद्ध-क्षेत्र में अपने अनुपम पराक्रम एवं प्रताप से वानरों को ऐसे काट डालता हूँ, जैसे गरुड़ साँपों को काट डालता है। जैसे इन्द्र ने वृत्रासुर का संहार किया था, और जैसे शिव ने अंधकासुर का नाश किया था, वैसे ही मैं भी युद्ध में राम का संहार करूँगा। मुझे आज्ञा दीजिए; मैं अभी जाता हूँ।'

तब अतिकाय ने रावण को देखकर कहा--'हे दानवेन्द्र, आप इतना शोक क्यों करते हैं ? मैं दैत्य-सेना के साथ जाऊँगा; मुझे आज्ञा दीजिए। जिस प्रकार दावानल काननों को जलाता है, वैसे ही, मैं अपने असंख्य बाणों का प्रहार करके कपियों के साथ, राम-लक्ष्मण का वध करूँगा।' तब नरांतक तथा महाबली देवांतक दोनों ने मिलकर कहा--'हम इसी क्षण जाकर राम-लक्ष्मण तथा वानरों का वध करते हैं।' इनकी बातें सुनकर दैत्याधीश ने शोक छोड़ दिया और अपने पुत्रों के साथ मोदमग्न हो रहने लगा, जैसे देवताओं के साथ इन्द्र रहता है।

इसके पश्चात् रावण ने बड़े हर्ष से अपने चारों पुत्रों को आदेश दिया--'राम-लक्ष्मण को तथा वानर-सेना को अपने भयंकर अस्त्रों की सहायता से मारकर आओ।' फिर, उसने अपने भाई महोदर तथा महापार्व को भी युद्ध करने के लिए भेजा।

८२. अतिकाय तथा महोदर आदि राक्षसों की युद्ध-यात्रा

वे छहों राक्षस ब्रह्माण्ड को विदीर्ण करनेवाले गर्जन करते हुए इस प्रकार युद्ध के लिए निकल पड़े, मानों (काम-क्रोध आदि) अरि-षड्वर्ग यह सोचकर राम से भिड़ने के लिए

आगे-आगे जा रहा हो कि हमारे कारण ही यह मनुजाशन (रावण) सीता के निमित्त श्रीराम का सामना कर रहा है । अस्ताद्रि पर आरूढ सूर्य की भाँति महोदर शरत्-काल के मेघ की समता करनेवाले तथा ऐरावत के अंश से युक्त सुदर्शन नामक हाथी पर बैठकर निकला । निशित आयुधों से प्रकाशित होनेवाला शीघ्रगामी रथ, जिसमें बलिष्ठ तथा चंचल अश्व जुते हुए थे और जो सूर्य के समान भासमान था, उस पर, इन्द्रचाप के समान दीखनेवाले धनुष धारण किये हुए, नील मेघ के समान त्रिशिर निकला । तब धनुर्वेद का पंडित अतिकाय, अत्यंत तेजस्वी शर, चाप, खड्ग तथा विविध शस्त्रास्त्रों से युक्त तथा सूर्य-सम प्रकाश से भासमान, स्वर्ण-रथ पर आरूढ होकर रवाना हुआ । विविध आभूषणों से युक्त हो कनक पर्वत के समान दीप्त होते हुए नरांतक, देवताओं के अश्व का स्मरण दिलानेवाले विविध आभूषणों से अलंकृत श्रेष्ठ अश्व पर आरूढ हो, प्रविमल तेज से विलसित हो, बलिष्ठ बाहुओं में शक्ति धारण किये हुए, शक्तिपाणि (कुमार) की भाँति निकल पड़ा । दीप्त गदा धारण करके देवांतक, विष्णु के समान सुशोभित होते हुए रवाना हुआ । महापार्श्व विशाल गदा लिये हुए गुह्यकेश्वर (कुबेर) के समान निकला। कालचक्रों के वेग से असंख्य रथ भी साथ निकल पड़े । पर्वतों की भाँति दीखनेवाले करोड़ों श्रेष्ठ मदमत्त हाथी अपने उद्दंड दण्डों से (सूँड़ों से) सुशोभित होते हुए झुंडों में चलने लगे। अपनी हिनहिनाहट की गंभीर ध्वनि को चारों ओर प्रतिध्वनित करते हुए अश्व चलने लगे। यम-किंकरों के सदृश दीखनेवाले पदचर-सैनिक भयंकर गति से चलने लगे ।

ऐसी अनुपम चतुरंगिणी सेना के मध्य भाग में प्रलय-काल के सूर्यों की भाँति, प्रकाश-मान होनेवाले छहों दैत्य-वीर, दीखने लगे । उनके श्वेत छत्र शरत्काल के मेघ की भाँति शोभायमान होने लगे । हम अवश्य विजय प्राप्त करेंगे या युद्ध में प्राण-त्याग करेंगे; किन्तु रण का उत्साह नहीं छोड़ेंगे, वे ऐसी विविध प्रतिज्ञाएँ करते हुए, एक दूसरे को पुकारते हुए युद्ध के लिए रवाना हुए । उनके विचित्र सिंहनाद, रथ-घोष, अश्वों की हिनहिनाहट, गजों की चिंघाड़, सैनिकों के अत्यंत भयंकर पदाघात, अनुपम ध्वजाओं का किंकिनी-रव, पटह, भेरी तथा शंखों की भयावह ध्वनि तथा निसान-तुरहियों का घोर नाद आदि से समस्त दिशाएँ गूँजने लगीं; आकाश हिल उठा, नक्षत्र गिरने लगे, वासुकि ने करवट ली, मेरु-पर्वत आमूल हिल गया, पृथ्वी कंपित हुई और दुर्वह भार से दिग्गज विचलित हुए ।

इस प्रकार, जब राक्षस-सेना दुर्ग से बाहर निकली, तब वानर-वीर, भूमि तथा आकाश को चीरनेवाली भयंकर ध्वनियाँ तथा भयंकर हुंकार करते हुए बड़े उत्साह से पर्वतों तथा वृक्षों को राक्षस-सेना पर फेंकने लगे । दैत्यों ने वानरों पर अविरत गति से शर-वृष्टि आरंभ कर दी । वानरों द्वारा असुरों पर आक्रमण करने के पहले ही असुर वानरों पर आक्रमण कर देते और उनका सर्वनाश करने लगते । वे एक दूसरे से जूझते, एक दूसरे को गिराते, और असुरों के हाथों के शस्त्र छीनकर उन्हें तोड़ डालते । तब क्रूर राक्षस क्रुद्ध होकर वानरों के हाथों के पर्वतों तथा वृक्षों को तोड़ डालते । राक्षस कपियों के पैर पकड़कर उन्हें भयंकर गति से नीचे पटक देते, तो वानर तुरन्त उनके पैर पकड़कर उन्हें पृथ्वी पर गिरा देते । इस प्रकार, घोर युद्ध करते हुए वानरों तथा राक्षसों के

अंग जर्जर हो गये और वे रक्त उगलते हुए पृथ्वी पर गिरकर मूर्च्छित हो गये। फिर, वानर शीघ्र ही सचेत होकर एक राक्षस को उठाकर दूसरे राक्षस पर प्रहार करके गिराने लगे। इसी प्रकार, वे एक हाथी से दूसरे हाथी को, एक घोड़े से दूसरे घोड़े को, एक रथ से दूसरे रथ को, फिर रथ से हाथी को, हाथी से घोड़े को, और घोड़े से राक्षस-सैनिक को, मार-मारकर गिराने लगे। इस प्रकार, जब वानर सिंहनाद करते हुए अपनी अनुपम शक्ति का प्रदर्शन करके भयंकर गति से असुरों का संहार करने लगे, तब राक्षस-वीर भी क्रोधोन्मत्त होकर वानरों पर टूट पड़े। उन्होंने वानरों पर बाण चलाये, उन्हें चक्रों से मारा, गदाओं का प्रहार किया, खड्गों से काटा, बर्छियों को मांस में तथा शूलों को पसलियों में चुभोया और विविध रीतियों से उनको पीड़ित किया। फिर भी, वानरों ने धैर्य नहीं छोड़ा। वे और भी क्रुद्ध होकर बड़ी भयंकर गति से पर्वत-शृंगों तथा तरु-कांडों से राक्षसों पर प्रहार करने लगे। कितने ही राक्षस आहत हो गिरने लगे, कुछ भागने लगे, कुछ वहीं लुढ़कने लगे, कुछ रक्त उगलने लगे, कुछ भूमि पर लोटने लगे, सिर कट जाने से कुछ के धड़-मात्र झूलने लगे और कुछ मरकर अपने शत्रुओं को भूलने लगे। कहीं अश्वारोही सैनिक के गिर जाने पर भी उसकी उपेक्षा करते हुए घोड़े घोर रूप से हिन-हिनाते थे; कुछ घोड़े ऐसे दौड़ते थे कि उनकी झूलें फट जाती थीं; कुछ घोड़े ऐसे भागते थे कि दिशाएँ भी चकराने लगतीं; कुछ घोड़ों के अंगों की संधियाँ उखड़ जाने से गिरकर मर जाते थे; कुछ गिरकर छटपटाते थे; कुछ अंग-हीन होकर मुँह खोले गिर जाते थे और कुछ तो ऐसे जर्जर हो जाते थे कि उनका आकार ही मालूम नहीं होता था। सूँड़ों के कट जाने से कई हाथी काँपते थे; कई हाथियों के दाँत टूट गये थे; कुछ हाथी लंका की ओर भाग रहे थे; तो कुछ वेग से चक्कर काट रहे थे। कुछ हाथी पर्वतों की भाँति गिर जाते थे, कुछ खंड-खंड होकर गिरते थे। कुछ हाथी मदजल बहाते हुए नष्ट हो जाते थे, तो कुछ कुचले जाने से मिट्टी में मिल जाते थे। युद्ध-भूमि में जहाँ देखो, वहाँ रथिक, सारथी, तथा अश्वों से रहित रथ, पृथ्वी पर गिरनेवाले रथ, एक ओर उलटकर गिरे हुए खंडित रथ, पूरे उलटकर गिरे हुए रथ, जोड़ चटककर टूटे हुए रथ, रस्सों के टूट जाने से अस्त-व्यस्त हुए तथा चूर-चूर बने हुए रथ, प्रचुर मात्रा में दिखाई पड़ रहे थे। सुर-खेचर आदि का समूह इसे अत्यंत अद्भुत दृश्य मानकर वानरों की प्रशंसा करने लगे।

तब नरांतक ने अमित क्रोध से गर्जन करते हुए अपना अश्व वेग से दौड़ाया और असुरों को धैर्य देते हुए कहने लगा—'भागो मत, भागो मत।' फिर, वह बड़े दर्प के साथ वानरों पर आक्रमण करने और एक ही क्षण में एक साथ सात सौ वानरों को मारकर गिराने लगा। जिस मार्ग से वह जाता था, उस मार्ग में रहनेवाले वानर गिर जाते थे, और वह मार्ग उसी मार्ग के जैसा दीखने लगता था, जिस पर इन्द्र अपने अद्भुत शौर्य का प्रदर्शन तथा पर्वतों का खंडन करते हुए गया था। जो कोई वानर क्रोध में आकर अपने मन में उसका वध करने का संकल्प मात्र करता था, उसके पहले ही वह उसका संहार कर देता था, मानों उसने उस वानर के अंतरंग में पैठकर उसके मन में उत्पन्न

होनेवाली बात जान ली हो। जो कोई कपि उसका नाश करने के निमित्त किसी पर्वत को उखाड़ने की चेष्टा करता, उसके पूर्व ही वह अत्यधिक क्रोध से उसका नाश कर देता था। जो कोई कपि उसका वध करने के लिए कोई वृक्ष उखाड़ने का प्रयत्न करता, उसके पहले ही वह उसका वध कर देता। इतना ही नहीं, वह अपने अश्वों को वानरों के समूह पर चलाकर कितने ही वानरों को कुचल दिया, जिससे उनकी आँतें, और मांस निकल पड़े। वह उन्हें एक दूसरे से ऐसा टकरा देता था कि उनका वक्ष फट जाता और हड्डियाँ चूर-चूर हो जातीं। इस प्रकार, उसने भयंकर क्रोध से प्रलय-कालानल की भाँति सारे युद्ध-क्षेत्र में व्याप्त होकर वानर-सेना-रूपी वन को कई बार नष्ट कर दिया। वानर उसके शौर्य तथा उसकी शक्ति का सामना नहीं कर सकने के कारण चकित तथा व्याकुल-से हो रहे। सभी देवता विचलित हुए। अत्यधिक त्रस्त वानर-सेना को क्लेश पहुँचानेवाले नरांतक को देखकर कपिराज का पुत्र अंगद क्रोध में आकर वानर-सेना से यों बाहर निकल पड़ा, जैसे बादलों के समूह को चीरकर सूर्य बाहर निकलता है।

८३. अंगद तथा नरांतक का द्वंद्व-युद्ध

उसने नरांतक को देखकर कहा—'हे नरांतक, इतनी क्रूरता के साथ तुम इन वानरों का संहार क्यों कर रहे हो? ऐसा करने से क्या तुम शूर बन जाओगे? यदि सचमुच तुम शूर हो, तो मेरे साथ युद्ध करो।' तब नरांतक ने हँसकर कहा—'हे वनचर, मेरे सामने तुम्हारी हस्ती ही क्या है? मैंने सभी दिक्पालों का दर्प-दलन किया है। समस्त देवताओं को पीड़ित किया है। मेरे जैसे पराक्रमी का सामना, क्या, तुम कर सकोगे? मैं तुम्हारी दोनों जाँघों को चीरकर फेंक दूँगा। तुम अभी नादान दुधमुँहे बच्चे हो; किन्तु प्रतापी योद्धाओं के साथ युद्ध करना चाहते हो। अभी तुम मेरी शक्ति देख लोगे।' तब अंगद ने हँसकर कहा—'हे राक्षस, दशकंठ का दर्प चूर करने के पश्चात् खर के पुत्र का संहार करके जब मैं जाने लगा, तब क्या, तुमने मुझे नहीं देखा था?'

इतना कहते ही वह राक्षस काल-सर्प की भाँति फुफकारते हुए अंगद के निकट आ पहुँचा और अत्यधिक स्फुलिंगों को विकीर्ण करनेवाली अपनी शक्ति से अंगद पर प्रहार किया। गरुड़ के मुँह का स्पर्श होते ही गिरनेवाले काले नाग की भाँति वह शक्ति अंगद के वज्र-सम वक्ष का स्पर्श करते ही खंड-खंड हो गई। अपने वज्रायुध से पर्वतराज को दबानेवाले इन्द्र की भाँति वालि-पुत्र ने अपनी हथेली से उसके घोड़े पर ऐसा दुर्भर प्रहार किया कि उसका मस्तक फूट गया और वह अश्व मुँह खोले, जीभ बाहर किये, पृथ्वी पर गिर पड़ा और छटपटाकर मर गया। अश्व के गिरते ही नरांतक क्रोधानल से आँखें लाल किये हुए अपनी मुष्टि से अंगद के सिर पर प्रहार किया और उसे मूर्च्छित कर दिया; किन्तु अंगद शीघ्र ही सचेत हो गया और चिल्लाया कि रे नरांतक, तुम्हारा ऐसा साहस? फिर, उसने वज्र-सम अपनी मुष्टि से श्रेष्ठ पर्वत के समान दीखनेवाले उसके वक्ष पर प्रहार किया। चोट लगते ही वह रक्त उगलते हुए पृथ्वी पर गिर पड़ा और उसका कपाल फूटकर चूर-चूर हो गया। इस प्रकार, नरांतक ने उस घोर रण-क्षेत्र में गिरकर अपने प्राण छोड़ दिये। आकाश से देवता और पृथ्वी पर कपि हर्ष की ध्वनि करने लगे।

८४. देवांतक तथा त्रिशिर का अंगद पर आक्रमण करना

दानवेश्वर के पुत्र की यह दशा देखकर महोदर ने अपने भयंकर गज को आगे बढ़ाया। देवांतक ने भी अपने अनुज की मृत्यु पर दुःखी तथा वालि-पुत्र के साहस पर क्रुद्ध होकर अपना परिघ घुमाते हुए अंगद पर आक्रमण किया। रवि-मंडल-सदृश दीप्त होने-वाले रथ को उद्धत गति से चलाते हुए, पृथ्वी को कँपाते हुए, त्रिशिर अग्नि के समान भासमान होते हुए बड़े क्रोध के साथ अंगद से भिड़ गया। तब अंगद ने, शाखाओं से युक्त एक विशाल वृक्ष को उखाड़कर उसे देवांतक पर फेंका, तो त्रिशिर ने उसे बीच में ही काट डाला। तब, अंगद आकाश की ओर उछलकर क्रोध से पर्वतों तथा वृक्षों को उन पर गिराने लगा; किन्तु देवांतक तथा त्रिशिर उन्हें ताबड़-तोड़ काटते गये। दोनों ने उस पर एक साथ असंख्य तोमर चलाये। इससे संतुष्ट न होकर देवांतक ने भयंकर गर्जन करते हुए अंगद पर बड़े वेग से अपना परिघ चलाया। त्रिशिर ने सिंह-गर्जन करते हुए शर-वृष्टि की। महोदर ने अपने मत्त गज को उत्तेजित करके आगे बढ़ाया और तोमर चलाया। इस प्रकार, जब तीनों एक साथ अपनी-अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने लगे, तब अंगद अपना शरीर झुकाकर वज्र के समान महोदर के हाथी से ऐसे टकराया कि वह हाथी चिंघाड़ते हुए पर्वत-शृंग की भाँति नीचे गिर गया। उसकी आँखें बाहर निकल आईं और वह वहीं ढेर हो गया। उसका कुंभ-स्थल फूट गया और उससे अनुपम मोती ऐसे बिखर गये, मानों विजय-लक्ष्मी ने राघवेश्वर को प्राप्त करने की अभिलाषा से अपना अलंकरण करने के लिए अपनी मंजूषा खोल दी हो। उसके पश्चात् वालि-पुत्र ने उसी हाथी का दाँत उखाड़-कर उससे देवांतक पर प्रहार किया। उस प्रहार से, वह राक्षस, प्रबल वायु से झूलने-वाले घने साल-वृक्ष की भाँति कंपित हो उठा और रक्त उगलने लगा। फिर भी, उसने बड़े साहस के साथ अपना सारा बल एकत्र करके अंगद के पर्वतसानु-सदृश वक्षःस्थल पर अपने परिघ से प्रहार किया। प्रहार से अंगद भी पृथ्वी की ओर झुक गया, किन्तु उसने अपनी सारी शक्ति संचित करके अत्यधिक क्रोध से देवांतक पर आक्रमण किया। तब त्रिशिर ने तीन प्रचण्ड शर उस वालि-पुत्र के ललाट पर छोड़े।

८५. हनुमान् आदि वीरों के द्वारा त्रिशिर आदि राक्षसों का वध

इसी समय नील तथा हनुमान् अंगद की सहायता के लिए आ पहुँचे। नील ने एक विशाल पर्वत को उठाकर दहाड़ते हुए त्रिशिर पर फेंका। तब, त्रिशिर ने वज्र-सम एक बाण का संधान करके उससे उस पर्वत को काट दिया। पवन-पुत्र ने देवांतक को बड़े साहस के साथ एक विशाल परिघ को घुमाते हुए, प्रचंड विक्रम प्रदर्शित करते हुए सामने आते देखकर अपनी मुष्टि से उस पर प्रहार किया। इस प्रहार से उसके दाँत टूट गये, पुतलियाँ घूम गईं, और वह मुँह खोले पृथ्वी पर लुढ़क गया। देवांतक का यह पतन देखकर स्वर्ग-लोक के देवता हर्ष-ध्वनि करने लगे।

इस पर क्रुद्ध होकर त्रिशिर ने अशनि-वेग से एक तीव्र बाण नील पर चलाया। उसी समय महोदर भी एक हाथी पर आरूढ हो गर्जन करते हुए आ पहुँचा और उस पर ऐसी शर-वर्षा कर दी, जैसे घनघोर मेघ कुल-पर्वत पर वर्षा करता है। उनके अस्त्र-समूह

स अत्यंत पीड़ित होकर नील मूर्च्छित हो गया, किन्तु शीघ्र ही सँभलकर आकाश की ओर उछला और तरु-सहित एक विशाल पर्वत को उठाकर उसे महोदर पर दे मारा। उस पर्वत के प्रहार से महोदर का सिर फूट गया और वह अपने अस्त्रों के साथ नष्ट हो गया। महोदर को पृथ्वी पर गिरते देखकर त्रिशिर ने प्रचंड पराक्रम का प्रदर्शन करते हुए, साहस खोये विना पवन-पुत्र पर असंख्य बाणों की वर्षा की। तब हनुमान् ने शीघ्र ही एक पर्वत-शृंग को उखाड़कर उसे उस त्रिशिर पर फेंका। किन्तु त्रिशिर ने उसे बीच में ही ऐसे चूर-चूर कर दिया कि देवता भी देखकर चकित-से रह गये। तब हनुमान् सहज ही उसके रथ पर कूद गया और उसके अश्वों को ऐसा चीर डाला, जैसे सिंह क्रुद्ध होकर हाथियों को चीर डालता है। तब, क्रोधोन्मत्त हो त्रिशिर ने उस पर शक्ति का प्रयोग किया। प्रचंड ज्वालाओं से युक्त हो उस शक्ति को आते देखकर हनुमान् ने उसे पकड़कर तोड़ डाला। शक्ति को तोड़ने के हनुमान् के बाहु-बल का विचार करके त्रिशिर ने एक पैनी धारवाले खड्ग को लेकर बड़े वेग से हनुमान् पर आक्रमण करके उस खड्ग से हनुमान् के वक्ष पर प्रहार किया। तुरंत हनुमान् ने अपनी हथेली से उस राक्षस के वक्ष पर आघात किया। तब, वह राक्षस अपने खड्ग को छोड़कर पृथ्वी पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। तब, नीचे गिरे हुए खड्ग को हाथ में उठाकर अनिल-कुमार ने पृथ्वी को विदीर्ण करते हुए सिंहनाद किया। किंतु इतने में त्रिशिर सँभल गया और अपनी मुष्टि से हनुमान् के वक्ष पर प्रहार किया। तब हनुमान् की कनपटियाँ क्रोध से फूल उठीं। उसने बड़े दर्प के साथ खड्ग को चमकाते हुए उस राक्षस के तीनों सिर ऐसे काट डाले, जैसे सुरेन्द्र ने विश्वरूप के सिर काट डाले थे, अथवा हनुमान् ने त्रिशिर के कर्म-बंधनों को ही काट डाला हो। तब पृथ्वी, आकाश, तथा दिशाओं को कँपाते हुए त्रिशिर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

उसके गिरते ही महापार्श्व अत्यधिक क्रोध से तेवर बदलते हुए, दिग्गज के समान भयंकर, कनक-चक्र एवं मणि-प्रभा से विलसित, यम के भीषण दंड के सदृश दीप्त अरुण-पुष्प एवं अरुण-चंदन से अलंकृत हो उदय-सूर्य की भाँति उज्ज्वल गदा-दंड को धारण किये हुए बड़ी शीघ्र गति से हनुमान् पर आक्रमण करने चला। इतने में ऋषभ ने एक विशाल पर्वत को उठाकर उस राक्षस पर फेंका। किन्तु, उस राक्षस ने अपनी गदा से उस पर्वत को चूर-चूर कर दिया। फिर, उसने बड़े दर्प से युक्त हो तेजी से अपनी गदा को घुमाकर ऋषभ के वक्ष पर प्रहार किया। गदा के प्रहार के कारण ऋषभ तुरंत मूर्च्छित हो गया; किन्तु वह शीघ्र ही सँभल गया और अपनी मुष्टि से महापार्श्व के वक्ष पर भीषण प्रहार किया। चोट लगते ही वह राक्षस अपना गदा-दंड छोड़कर, शक्तिहीन हो पृथ्वी पर गिरने लगा। तुरंत ऋषभ ने उस गदा-दण्ड को लेकर भयंकर गर्जन करते हुए उससे उस राक्षस पर प्रहार किया। वज्र के गिरने से जैसे गिरि-शृंग गिर जाता है, वैसे ही उस राक्षस का सिर चूर-चूर हो गया और वह भयंकर ध्वनि के साथ पृथ्वी पर गिर पड़ा। पवन से डरनेवाले पीले पत्तों की भाँति दैत्य-सैनिक चक्कर काटते हुए तितर-बितर हो गये।

८६. अतिकाय का युद्ध

इस प्रकार, उन सब राक्षसों को गिरे हुए देखकर अतिकाय ने ऐसा गर्जन किया,

मानों वह सभी लोकों को निगलनेवाला हो । फिर, उसने सहस्र सूर्यों की भाँति उज्ज्वल एक विशाल रथ पर आरूढ होकर सिंहनाद करते हुए, अपने प्रताप की डींग हाँकते हुए, धनुष का टंकार करते हुए, भीषण गति से कपि-सेना पर आक्रमण किया, जैसे प्रलय-काल की अग्नि घोर वन पर आक्रमण करती है । उस निशाचर का रूप देखकर सभी वानर भयभीत हो गये कि कुंभकर्ण ही फिर रौद्र रूप धरकर आ गया है। उसे देखते ही कुछ वानर मूर्च्छित हो गये, तो कुछ आड़ में छिपकर देखने लगे। कुछ वानर भयभीत हो आर्त्तनाद करने लगे तो कुछ संभ्रमित हो गये और कुछ राम की दुहाई देने लगे । इस प्रकार, भयभीत होकर भागनेवाले वानरों को देखकर श्रीराम कहने लगे--'भागो मत, भागो मत ।' फिर, सभी में व्याप्त प्रलय-काल की घनघोर घटा की भाँति गर्जन करते हुए अत्यधिक वेग से आनेवाले राक्षसराज के पुत्र के प्रताप, दर्प, एवं गति को निकट देखकर राम स्वयं आश्चर्यचकित होकर विभीषण से बोले--'हे विभीषण, अशनि-पात के समान भयंकर ध्वनि करनेवाले उस रथ पर आरूढ होकर इन्द्र-धनुष की समता करनेवाला विपुल-प्रभा-समन्वित धनुष धारण किये हुए, परिध, गदा, शल, परशु, भाला, तोमर, चक्र तथा दिव्य-शस्त्र-समूह से युक्त अद्वितीय राहु-चिह्नवाली ध्वजा से विलसित, चार सारथियों, तथा एक सहस्र अश्वों से युक्त रथ पर त्रिनेत्र की मूर्त्ति के समान अपनी प्रतापाग्नि को चारों दिशाओं में विकीर्ण करते हुए आनेवाला वह वीर कौन है ?'

तब विभीषण ने रामचंद्र से कहा--'हे देव, यह राक्षस, देवताओं के शत्रु (रावण) का पुत्र है । यह रावण से भी अधिक रण-कुशल है । हे राजन्, यह चतुरंगिणी सेना के साथ युद्ध करने में महानिपुण है और अद्वितीय वेद-शास्त्रादि विद्याओं में निष्णात है । यह अध्यात्म-तत्त्वज्ञ है । इस वीर की शक्ति के विश्वास पर लंका सतत निःशंक रहती है। देवताओं से वैर ठानकर युद्ध में उनके हाथों नहीं मरने का वर इसने ब्रह्मा से प्राप्त किया है । यह दिव्य आयुधों, दिव्य अस्त्रों तथा मंत्र-शक्ति से संपन्न है । इसने इन्द्र आदि देवताओं को सौ बार परास्त किया है । इन्द्र का वज्रायुध, वरुण का पाश, और यम का प्रचंड दंड तथा कुबेर की गदा सदा इसके बाण-समूह के अधीन होकर रहते हैं । रावण ने इस धान्यमालिनी में अपने पुत्र के रूप में प्राप्त किया था। हे राजन्, सभी वानरों को कुचल डालने के पहले ही आप अपने अनुपम पराक्रम से इसका वध कर दें, तो अच्छा हो ।'

इतने में ही उस राक्षस को, धनुष के टंकार से समस्त दिशाओं को प्रतिध्वनित करते हुए निकट आते देखकर, खंडनोदग्र, गवय, गोमुख, ज्योतिर्मुख, कुमुद, पवन-पुत्र, मैन्द, नल, शरभ, नील, शतबली, गज आदि कपि-वीर वृक्षों तथा महान् पर्वतों को उठाये हुए उसका सामना करने लगे। तब, उस राक्षस ने हँसते हुए कहा--'हे वानरो, तुममें रण-विक्रम-कौशल एवं शक्ति नहीं है, अतः तुम यहाँ से हट जाओ । तुम मुझे उस शूर को दिखाओ, जिसने अपने बाण के अग्रभाग से समुद्र को सोख लिया था और तीनों लोकों की प्रशंसा प्राप्त की थी । मैं अपना अनुपम अस्त्र उसके सिवाय और किसी पर नहीं चलाऊँगा । त्रिभुवनविजयी, अनुपम शूर तथा अलघु बलवान्, कुंभकर्ण का सिर काट डालनेवाला

वह कौन है, उसे दिखाओ । उसके सिवाय और किसी पर मैं अपना अतुल शक्ति-संपन्न अस्त्र नहीं चलाऊँगा । देव, दानव, यक्ष तथा अन्य देवताओं से भी अधिक शक्तिशाली रावण को युद्ध में जीतने का संकल्प करके, इस प्रकार लंका में आनेवाला वीर कौन है, उसे दिखाओ । उसके सिवाय और किसी पर मैं अपने अतुलित अस्त्र नहीं चलाऊँगा ।'

इस प्रकार गर्वोक्तियों को कहनेवाले उस दानवेश्वर के पुत्र पर कपि-वीर क्रोध से वृक्षों तथा पर्वतों की अविरल वर्षा करने लगे । तब अतिकाय ने अविरल बाण-वर्षा से उन सब को बीच में ही काट डाला । उसके पश्चात् तीन गुरुतर अस्त्रों से कुमुद को, पाँच भयंकर शरों से द्विविद को, सात अद्वितीय बाणों से मैन्द को, नौ शरों से शरभ को, आठ घोर बाणों से गज को, चार तीव्र बाणों से गवाक्ष को, आठ बाणों से गवय को, दस बाणों से ज्योतिर्मुख को, पंद्रह बाणों से शतबली को और पच्चीस बाणों से नील को, पृथ्वी पर गिराकर मूर्च्छित कर दिया । सभी देवता आकाश से चकित होकर यह दृश्य देखने लगे । तब प्रचंड क्रोध से अतिकाय ने सभी वानरों को ऐसे भगाया, जैसे मृगराज मृगों को भगाता है । वह मन-ही-मन सोचने लगा कि विरोधी होते हुए भी यदि मैं परमेश्वर राम की भक्ति करूँ, तो मैं अवश्य मुक्ति प्राप्त करूँगा । यों सोचकर वह राम की ओर बढ़ने लगा । जो वानर उसका मार्ग नहीं रोकता, वह उस पर हाथ नहीं उठाता। इस प्रकार, वह आगे बढ़ते हुए राम के निकट पहुँचा और उस निगमवेद्य राम से हँसते हुए बोला—"हे राम, तुम इस रणभूमि में अपनी शूरता मुझे दिखाओ । तुम अनन्त हो । कोई भी यह नहीं जानता कि तुम्हारी शक्ति कितनी है । मेरे पिता के कारण तुमने मनुष्य का जन्म लिया है । उन्हीं के कारण तुम पृथ्वी के राजा हुए हो । मेरा सामना करने के लिए, अमरेन्द्र, यम, वरुण आदि देवताओं के समूह से तुम कोई नहीं हो । अपना अंत कर डालने के लिए जो कोई शूर मुझसे भिड़े, उससे मैं लड़ूँगा ही । मैं तुम्हारा पराक्रम भली भाँति जानता हूँ । तुम्हें मान-अपमान का विचार ही नहीं है । तुम कदाचित् मुझे नहीं जानते । भला गुणहीनों में सत्वगुण कहाँ रहेगा ? तुम किस जाति के हो, मैं कैसे कहूँ ? क्या, तुम राजकुल के आचारों का पालन करनेवाले हो ? पुण्यात्मा तपस्वियों के मानस-काननों में भले ही तुम निवास करो । मेरे साथ लड़ने की क्षमता तुम नहीं रखते । वेदाद्रि-गुफाओं में तुम जाकर वास करो; युद्ध के लिए तुम मेरे जोड़ के नहीं हो। सनक आदि मुनि तथा योगियों के मानस-रूपी समुद्रों में भले ही तुम निवास करो; मेरे साथ युद्ध करने योग्य नहीं हो । गेरुए रंग के वस्त्र धारण करके, पाप-रहित तथा संसार के दुःखों से मुक्त, कंद-मूल-फल जैसे नीरस आहार करते हुए, विविध आचार-निष्ठाओं के कारण क्लान्त, घोर काननों में विचरण करनेवालों के साथ तुम जाकर रहो। तुममें रण-कौशल नहीं है । तुम्हारी शक्ति की कल्पना मैंने कर ली है। इस संसार में तुम अकेले थे; ऐसे तुम्हें यह कपि-सेना मिल गई है। आश्रयहीन होकर घूमनेवाले तुम्हें अब सूर्य-पुत्र एक मात्र आधार मिल गया है । हाय, कहीं भी, किसी का जो गुरु नहीं बना, ऐसा विश्वामित्र तुम्हारा गुरु हुआ । तुम्हारा अपना कोई देश नहीं था, इसलिए

अकलंक अयोध्या तुम्हें प्राप्त हुई । इनके गर्व में मत इठलाओ । तुम भले ही, मत्स्य का रूप धरकर सभी समुद्रों में प्रवेश करो, कूर्म का रूप धारण कर पर्वत के नीचे चले जाओ, पर मैं तुम्हें छोड़ूँगा नहीं । अवश्य मैं तुम्हें ढूँढ़ लाऊँगा। तुम अपना वेश विकृत करके भले ही कहीं भी छिप जाओ, मैं तुम्हें अवश्य पकड़ लाऊँगा, तुम्हें भूलूँगा नहीं । वामन का रूप धरकर, याचक-वृत्ति अपनाये हुए भले ही तुम कहीं चले जाओ; मैं तुम्हें ढूँढ़कर पकड़ लाऊँगा; तुम्हारा विचार नहीं भुलाऊँगा । भूसुर का वेश धरकर, परशु को लिये हुए राजाओं के संहारक तुम भले ही बन जाओ, मैं अवश्य तुम्हारा अन्वेषण करके तुम्हें पकड़ लूँगा । मेरा बाण अत्यंत भीषण है । वह कोई वट-पत्र नहीं कि तुम्हें वहन किये हुए अद्वितीय रण-समुद्र में तैरता रहे । अत्यधिक शक्ति के मद से झूमनेवाले मेरे सामने युद्ध-क्षेत्र में ठहरना तुम्हारे लिए असंभव है ।"

८७. लक्ष्मण तथा अतिकाय का द्वन्द्व-युद्ध

इस प्रकार, प्रलाप करनेवाले अतिकाय का दर्प देखकर लक्ष्मण हँसते हुए बोले-- 'हे राक्षस, मेरे रहते, राघव के साथ युद्ध करने का प्रयत्न क्यों करते हो ? सँभलकर मेरी ओर बढ़ो; मैं तुम्हें अपने बाणों से टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा।' ऐसा कहकर वे अपने धनुष के टंकार से दानवों के चित्त कंपित करते हुए उस राक्षस पर टूट पड़े । लक्ष्मण के साहस को देख वह आश्चर्यचकित हुआ और एक क्रूर अस्त्र का संधान करके, दहाड़ते हुए कहने लगा--'ठहरो, लक्ष्मण, ठहर जाओ । तुम अभी बालक हो; मेरे साथ मत भिड़ो । मैं यम से भी अधिक क्रूर हूँ । मेरे तीव्र बाणों को सहने की क्षमता या तो इस वसुंधरा में है, या हिमाचल में है, या रावण के उठाये कैलास पर्वत में है, या देवताओं के निवासभूत पर्वत में है, या अंधकरिपु शिवजी के धनुष को भंग करने के गर्व से फूलने-वाले तुम्हारे भाई राघव में है । उसके अलावा दूसरे किसी में मेरे साथ युद्ध करने की शक्ति नहीं है ? मेरे समक्ष खड़े रहना, क्या तुम्हारे लिए संभव है ? हे सौमित्र, यह श्रेष्ठ बाण अभी तुम्हें लगकर तुम्हारा रक्तपान कर लेगा ।'

ऐसे दुरहंकार से भरे वचन सुनकर लक्ष्मण ने कहा--'हे राक्षस, इस प्रकार व्यर्थ गर्जन क्यों करते हो ? युद्ध में तुम अपनी शक्ति दिखाओ। मेरे समक्ष व्यर्थ प्रलाप क्यों करते हो ? हे निशाचर, तुम भी बड़े वीर की भाँति, अपना औद्धत्य तजे विना, शस्त्र-समूह से सज्जित हो, तथा रथ पर आरूढ हो, मेरे समक्ष खड़े हो, यही एक महान् आश्चर्य है ।' यह सुनकर उस राक्षस ने बड़े क्रोध से अपने हाथ का बाण लक्ष्मण पर चलाकर गर्जन किया। तब, लक्ष्मण ने उस बाण को अर्द्धचन्द्र बाण से काट डाला । फिर, उन्होंने एक तेज बाण अपने धनुष पर चढ़ाकर उसे उस राक्षस के ललाट को लक्ष्य करके चलाया, मानों यह संकेत कर रहे हों कि ब्रह्मा का लेख भी अब मिटनेवाला है । तब, उस शर के प्रहार से अतिकाय ऐसे हिल उठा, जैसे रुद्र के प्रहार से भासुरासुर का प्रासाद कंपित हो गया था । 'मेरे साथ यह युद्ध करने का साहस रखता है'--यह विचार आते ही अति-काय ने सिंहनाद किया और अपना रथ लक्ष्मण के निकट चलाकर, शीघ्र ही रामानुज पर एक ऐसा पैना शर चलाया, मानों उसी से उनका संहार कर डालने का संकल्प कर लिया हो ।

उसके तुरंत बाद ही उसने तीन ऐसे शक्ति-संपन्न बाण चलाये, मानों कह रहा हो कि भले ही त्रिनेत्र शिव भी रक्षा करें, तो भी तुम्हारा सुख छीन लूंगा। फिर, तुरंत उसने पाँच बाण चलाये, मानों कह रहा हो कि तुम्हारे पंच प्राण अवश्य खींच लूंगा। उसके पश्चात् उसने अपने बाहु-बल के गर्व से फूलते हुए बड़े वेग से सात बाण चलाये, मानों कह रहा हो कि भले ही तुम सप्त समुद्रों में प्रवेश करके उन्हें पार कर जाओ, मैं तुम्हें अवश्य ही मार डालूँगा। किन्तु, लक्ष्मण ने शीघ्र ही उन सभी बाणों को खंड-खंड करके सिंह-गर्जन किया। उसके पश्चात् उन्होंने आग्नेय अस्त्र चलाया, तो अतिकाय ने सौरास्त्र चलाया। दोनों शरों ने आपस में टकराकर युद्ध किया और दोनों चूर-चूर होकर नीचे गिर गये। फिर, राक्षस ने ऐषिक बाण चलाया, तो लक्ष्मण काँप उठे। फिर, उन्होंने ऐन्द्र बाण से उसे काट डाला। यह देखकर दैत्य ने याम्यास्त्र चलाया, तो लक्ष्मण ने वायव्यास्त्र चलाकर उसे काट डाला। इतना ही नहीं, उन्होंने कई और बाण भी उस राक्षस पर चलाये, किन्तु वे सभी बाण अतिकाय का स्पर्श करते ही टूटकर पृथ्वी पर गिर गये। लक्ष्मण यह देखकर सोचने लगे कि क्या कारण है कि कोई भी शर इसके शरीर में गड़ता नहीं? उनका इस प्रकार व्याकुल होते समय अनिल ने आकर कहा--'यह अनुपम रहस्य तुम्हें बताऊँगा। हे लक्ष्मण, इसने ब्रह्मा से वज्र-कवच प्राप्त किया है। अतः, कोई भी शर इसके शरीर में नहीं गड़ता। तुम इस पर ब्रह्मास्त्र चलाकर इसके टुकड़े-टुकड़े कर डालो।'

तब बड़े हर्ष से लक्ष्मण ने ब्रह्मास्त्र को मंत्र-पूत करके धनुष पर चढ़ाया और उसे रावण के पुत्र पर चलाया। तुरंत समस्त ब्रह्माण्ड को विदीर्ण करते हुए, इन्द्र को भयभीत करते तथा देवताओं को कँपाते हुए, दिशाओं को हिलाते हुए, समुद्रों को आलोडित करते हुए, पर्वतों को झकझोरते हुए, सूर्य-चंद्र को पथ-भ्रष्ट करते हुए, नक्षत्रों को गिराते हुए, वह ब्रह्मास्त्र, रत्न-समूह की भाँति उज्ज्वल कांति से युक्त हो, प्रलय-काल की अग्नि के समान सभी लोकों में व्याप्त होकर जलते हुए, पवन के वेग से यम-दंड के समान, अतिकाय की ओर आने लगा। तब अतिकाय ने उस पर तीव्र शर चलाये, किन्तु उस ब्रह्मास्त्र को निष्फल नहीं कर सका। फिर, राक्षस ने शक्ति चलाई, किन्तु ब्रह्मास्त्र ने उसकी भी उपेक्षा कर दी। फिर, अतिकाय ने उस पर शूल चलाया, किन्तु ब्रह्मास्त्र ने उसकी भी अवहेलना कर दी। उसके पश्चात् राक्षस ने गदा चलाई। उसे व्यर्थ होते देखकर, उसने खड्ग चलाया। किन्तु, उसकी भी परवाह किये बिना उसको अपनी ओर आते देखकर अतिकाय ने परशु चलाया। किन्तु, परशु की भी उपेक्षा करके उसे आते देखकर राक्षस ने भाला चलाया। इस पर भी ब्रह्मास्त्र की गति नहीं रुकी, तो उसने अपनी कमर से बरछी निकालकर उससे प्रहार किया।

८८. अतिकाय का वध

उसपर भी ब्रह्मास्त्र अप्रतिहत गति से अतिकाय की ओर बढ़ता रहा। तब अतिकाय ने उस पर अपनी मुष्टि से प्रहार किया। पर, उस अस्त्र ने मुकुट तथा कुंडलों से अलंकृत उस राक्षस का सिर काट डाला। वज्र के आघात से रोहणाद्रि का शृंग जैसे गिरा था

वैसे जब उसका सिर पृथ्वी पर गिरा, तब उसके सिर को देखकर हतशेष राक्षस भयभीत होकर लंका की ओर भागने लगे। सभी वानर लक्ष्मण की प्रशंसा करने लगे। रामानुज ने तब रामचन्द्र के चरणों में गिरकर प्रणाम किया, तो उन्होंने बड़े आनंद से लक्ष्मण को हृदय से लगा लिया और वानरों के साथ अत्यधिक हर्ष प्रकट किया।

अतिकाय आदि छह वीरों की मृत्यु का समाचार सुनकर रावण मूर्च्छित हो गया। फिर सचेत होकर अविरल अश्रु बहाते हुए वह अत्यधिक शोक से संतप्त होने लगा। इस प्रकार दुःख से पीड़ित होनेवाले पति की सेवा में पहुँचकर मय-पुत्री मंदोदरी कहने लगी-- 'हे असुरेन्द्र, सभी लोकों में अद्वितीय शक्ति से संपन्न आपका ऐसा दुःखी होना उचित नहीं है। उस दिन वीर की तरह आप राम की देवी को क्यों ले आये ? उन्हें फिर राम के पास पहुँचाना आप नहीं चाहते थे। अब उचित समय बीत गया। उस राम पर आक्रमण करने के लिए गये हुए राक्षस-वीर फिर लौटकर आयेंगे, यह आशा आप छोड़ दीजिए। हे नाथ, युद्ध में आप अपनी शक्ति दिखाइए।'

इन बातों पर रावण ने मन-ही-मन विचार किया। उसने अपनी स्त्री को अंतःपुर में भेज दिया और दुःख की लंबी साँस खींचकर अपने मंत्रियों से कहा--'हाय, मेरे भाई तथा मेरे प्रिय पुत्र इस प्रकार मारे गये ? अब क्या कहा जाय ? श्रेष्ठ योद्धाओं के लिए भी अकाट्य नाग-पाशों को इन मानव-वीरों ने न जाने, माया से या शक्ति से, काट दिया है। अब मैं विजय की आशा करूँ, तो भी वह मेरे लिए असंभव है। उस राम को युद्ध में जीतनेवाला अब ढूँढ़ने पर भी मुझे नहीं मिलेगा। अबतक जो लंका, विना किसी भय के शोभायमान थी, वह आज इन शक्तिशाली लोगों के कारण त्रस्त हो रही है। उस राम के पराक्रम की सीमा ही नहीं है। इसलिए तुम लोग अब लंका की रक्षा के लिए आवश्यक सेना प्रतिदिन भेजते रहो।' ऐसा आदेश देकर वह अंतःपुर में चला गया और एकांत में मन-ही-मन चिंता से पीड़ित रहने लगा।

८९. इंद्रजीत का द्वितीय युद्ध

उस समय मेघनाद वहाँ पहुँचकर दशकंठ से कहने लगा--'हे दानवेन्द्र, मेरे रहते हुए आपका इस प्रकार चिंतित होना उचित नहीं है। शक्ति से संपन्न मेरे बाणों का आघात क्या ईश्वर भी सह सकता है ? लीजिए, मैं अभी जाता हूँ। उस राम के भाई को अपने उद्धत बाणों से अवश्य जर्जर करके उसे मार डालता हूँ और उस वानर-सेना को अपने पराक्रम से पृथ्वी पर सुलाकर आता हूँ। हे देवताओं के शत्रु, मेरी प्रतिज्ञा सुन लीजिए। जैसे महाराज बलि की यज्ञ-भूमि में त्रिविक्रम के वढ़ते हुए रूप को त्रस्त होकर इन्द्र, विष्णु, यम, अग्नि, रुद्र, सूर्य, चन्द्र तथा साध्य देखते रहे, वैसे ही आज वे मेरे प्रताप को देखते रह जायेंगे।'

इतना कहने के पश्चात् वह राक्षस-राजकुमार वायुसम शीघ्रगामी रथ पर आरूढ हो युद्ध के लिए चल पड़ा। उसके चलते ही सब दिशाओं से एक साथ बड़े वेग से असंख्य रथ निकल पड़े। अनगिनत गज निकल पड़े, विपुल अश्व-सेना तथा पदाति-सेना निकल पड़ी। उस चतुरंगिणी सेना पंडरीकों (श्वेत छत्रों) से प्रकाशित होनेवाले, पंडरीक (बाघ)

की-सी आँखोंवाले, पुंडरीक (श्वेत कमल) की कांतिसम शरीरवाले, पुंडरीक के (आग्नेय दिशा का दिग्गज) के औन्नत्य से विलसित होनेवाले, पुंडरीक (बाघ) के समान भयंकर लगनेवाले और पुंडरीक (बाघ) की शक्ति से संपन्न वीरों से पूर्ण थी। सिंहनादों, दहाड़ों, हुंकारों, गर्वोक्तियों, रथ की नेमियों तथा निसानों की भयंकर ध्वनि चारों ओर व्याप्त हो रही थी। धवल छत्र से युक्त वह राक्षस-कुमार सुधाकर से युक्त आकाश के समान दीख रहा था। सुंदर कामिनियाँ अपने कमल-नेत्रों की दीप्ति को चारों ओर विकीर्ण करती हुई चामर डुला रही थीं। ऐसी रण-सज्जा से युक्त हो, अपने आभूषणों की प्रभा से दीप्त होते हुए, सहज वैभव से उज्ज्वल इंद्रजीत रण-स्थल के मध्य आकर खड़ा हुआ। उसके पश्चात् उसने रक्त-वर्ण के वस्त्र, चंदन तथा पुष्प-मालाएँ धारण करके अग्निदेव का प्रतिष्ठापन किया; शर तथा तोमरों से उसकी परिधि बनाई और लोहे के स्रुक् तथा स्रुवा एकत्र किये। फिर, राक्षसेश्वर के पुत्र ने अथर्ववेद के उच्चारण के साथ घी, खील तथा ताल-समिधाओं का हवन किया। होम की समाप्ति के पहले, उसने कृष्ण-छाग (काला बकरा) के रक्त की पूर्णाहुति दी। तब अग्निदेव ने स्वयं प्रकट होकर हव्य ग्रहण किया। उनकी कृपा से मेघनाद ने ब्रह्मास्त्र, रथ, धनुष तथा कवच प्राप्त किये।

उसके पश्चात् वह राक्षस अपने सिंहनाद से दिशाओं को कँपाते हुए अपने रथ, अश्व, केतु तथा सारथियों के साथ, सूर्य, चंद्र तथा नक्षत्रों को अपदस्थ करते हुए शीघ्रगति से आकाश-वीथी में जाकर छिप गया। फिर, अपनी सेना से अपने पराक्रम के अनुरूप वचन कहने लगा—'तुम विना विचलित हुए युद्ध करते जाओ। मैं आकाश से घोर युद्ध करते हुए राम और लक्ष्मण का शीघ्र ही संहार कर दूँगा।'

इन उत्साहवर्द्धक वचनों को सुनकर दानव अत्यंत हर्षित हुए और सेना के साथ वानरों पर टूट पड़े तथा विविध रीतियों से उनसे युद्ध करने लगे। उसी समय इंद्रजीत अपनी छाया तक प्रकट किये विना आकाश से दिव्य बाण चलाने लगा। तब वानर उठकर पर्वतों को उठा-उठाकर उस राक्षस की ओर फेंकने लगे। किन्तु इंद्रजीत के शरों ने उन्हें तोड़कर उन वानरों की छाती को विदीर्ण कर उन्हें पृथ्वी पर गिरा दिया। इसके पश्चात् उसने एक घोर अस्त्र चलाकर पाँच वानरों को तथा नौ अस्त्रों से सात वानरों को नीचे गिरा दिया। तब क्रुद्ध होकर कपि-वीरों ने पर्वतों तथा वृक्षों को उठाकर उस इंद्रजीत पर फेंका। किन्तु, उसने बड़ी निपुणता से उन्हें अपने तीव्र बाणों से काटकर गंधमादन पर अठारह बाण चलाकर उसका मद चूर-चूर कर दिया। उसके पश्चात् उसने नौ बाणों से नल के नाम-रूप मिटा दिये; सात बाणों से मैन्द को झुका दिया; पाँच बाणों से गज का संहार किया; दस बाणों से जांबवान् का शरीर चीर डाला; सौ बाणों से हनुमान् को अत्यधिक दुःख पहुँचाया; तीन बाण गवाक्ष पर चलाये; तेरह बाणों से हरिरोम के प्राण हर लिये; छह बाणों से रंभ को गिरा दिया; दस बाणों से सूर्यप्रभ को परास्त किया; तेरह बाणों से पनस के अंगों को छेद डाला; आठ क्रूर बाणों से कुमुद को तथा पैंतीस बाणों से नील को छिन्न-भिन्न दिया। तत्पश्चात् विना विश्राम लिये ही उसने कई बाणों से अंगद को, तीन पैने बाणों से सूर्य-नंदन (सुग्रीव) को, पाँच बाणों से इन्द्रजाल को, दो शरों से गिरि-

भेदी को तथा बीस शरों से ऋषभ को मूर्च्छित कर पृथ्वी पर गिरा दिया । फिर, चौदह बाणों से केसरी को, पाँच भास्वर बाणों से दधिमुख को, छह-छह बाणों से सुमुख तथा ग्रथन को, छह शरों से विमुख को, सात बाणों से द्विविद को, उतने ही बाणों से शरभ को, दस शरों से शतबली को, आठ बाणों से हर को, तीन बाणों से सन्नाद को और श्रेष्ठ तथा दिव्य अस्त्रों की वर्षा से अन्य समस्त वानर-नायकों को छिन्नगात्र तथा विगतप्राण करके पृथ्वी पर गिरा दिया ।

९०. ब्रह्मास्त्र से इन्द्रजीत का राम-लक्ष्मण आदि को मूर्च्छित करना

इन्द्रजीत ने कुछ वानरों पर बाण चलाये, कुछ कपियों को गदा से मार गिराया, कुछ को शूल से हत किया, कुछ पर शक्ति का प्रहार किया । इस प्रकार, सभी वानर-वीरों को पृथ्वी पर गिराकर, अपना अनुपम पराक्रम प्रदर्शित करता रहा । इन्द्रजीत के भयंकर बाण सह नहीं सकने के कारण कुछ कपि तितर-बितर होकर भाग रहे थे; कुछ थर-थर काँप रहे थे; कुछ त्रस्त हो रहे थे; कुछ छिप रहे थे और कुछ को ऐसा लग रहा था, मानों कपि-सेना के लिए प्रलय-काल आसन्न हो गया हो। दानवेन्द्र के पुत्र ने तब अपने ब्रह्मास्त्र के मंत्र-प्रभाव से हत-शेष वानर-सेना का संहार करके विजय-गर्व से सिंह-गर्जन किया ।

कपि-समूह को इस प्रकार पीड़ित होते देखकर लक्ष्मण क्रुद्ध हुए और अपने अग्रज से कहने लगे—'हे देव, आप चिंता क्यों करते हैं; आप मुझे आज्ञा दें, तो मैं ब्रह्मास्त्र चलाकर रावण के साथ-साथ राक्षस-समूह को नष्ट कर दूँ ।' तब राम ने कहा—'जब यह राक्षस अपनी माया के कारण दिखाई नहीं देगा, तब ब्रह्मास्त्र अद्वितीय शक्ति का प्रदर्शन करते हुए सभी लोकों को भस्म करता हुआ चला जायगा । एक के कारण तुम निष्ठुर होकर सभी लोकों को भस्म क्यों करना चाहते हो ? ब्रह्मा के दिये वर की शक्ति से इस राक्षस ने कपि-सेना को मार डाला है। हमें तो ब्रह्मा के वर का आदर करना चाहिए।'

उनका वार्त्तलाप चल ही रहा था कि इन्द्रजीत ने उन दोनों रघुवंशियों पर ब्रह्मास्त्र का ऐसा प्रहार किया कि वे दोनों मूर्च्छित हो गये । तब गर्वित रावणपुत्र-रूपी व्याप्त नील-मेघ, धनुष की प्रत्यंचा के टंकार-रूपी मेघ-गर्जन, वेग के साथ राक्षस के द्वारा गिराई जानेवाली कांति-रूपी बिजली, बार-बार चलाये जानेवाले असंख्य बाण-रूपी बर्षा, पंखों से युक्त बाण-रूपी चातक, कनक रत्न-प्रभा-कलित धनुष-रूपी इंद्रधनुष, अनुपम रीति से वानरों के शरीर से फूटकर निकलनेवाली रक्त-धारा-रूपी बाढ़, हारों से छूटकर गिरे हुए मोती-रूपी ओले, टूटकर छितराये हुए मुकुटों की उज्ज्वल मणियाँ-रूपी इंद्रगोप, काहल (चर्मवाद्य) का निनाद-रूपी केका तथा अत्यधिक भीषण पटह-नाद-रूपी मेंढकों की टर-टर से युक्त हो, वह समय आषाढ़ की पहली वर्षा के समय के समान दीख रहा था; जब कि रघुपति-रूपी किसान, राक्षसों की विपुल देह-रूपी क्षेत्रों में बाण-रूपी बीजों को रोपने के लिए आया हो और अपने बाहु-बल का प्रदर्शन करके खलिहान में उस दशकंधर को लाकर, उसके सिर-रूपी बालों को काटकर दँवरी कराना चाहता हो । इसी समय इंद्रजीत ने बहत्तर वानर-सेना-समूह को तथा राघवों को जीतकर, अपने धनुष का घोर टंकार करते हुए, युद्ध को स्थगित किया और हर्ष से हँसते हुए लंका को लौट गया ।

उसी समय सूर्यास्त हुआ, मानों राघव की दुर्दशा के कारण मन-ही-मन दुःखी हो, उन्हें उस दशा में देख नहीं सकने के कारण सूर्य ने आँखें बंद कर ली हों । वानरों के मुख-कमल मुरझा गये । अंधकार चारों ओर ऐसा व्याप्त हो गया, मानों बता रहा हो कि वानरों के द्वारा लंका का दहन होते समय, धुआँ इसी प्रकार व्याप्त होगा । वह ब्रह्मास्त्र का संधान करने के लिए आवश्यक मंत्र-पठन का उचित अवसर नहीं था, इसलिए विभीषण ने पृथ्वी पर गिरे हुए सुग्रीव आदि योद्धाओं को देखकर कहा--'हे वानर-वीरो, रावण के पुत्र ने ब्रह्मा के वर की शक्ति से अस्त्र चलाया था, और राघव ने ब्रह्मास्त्र की शक्ति का आदर करने के विचार से उसे सह लिया है। इतना ही है और कुछ नहीं ।' ब्रह्मा के वर से आरक्षित होने के कारण वायु-पुत्र, इन्द्रजीत के दिव्य-अस्त्रों के प्रहार से मरा नहीं था । इसलिए उसने कहा--'अब हम देखें कि बाणों से आहत हो युद्ध-भूमि में गिरे हुए वीरों में से कितने अभी जीवित हैं ।' यों कहकर वे दोनों जलती हुई मशालें लेकर उस अंधकार में युद्ध-भूमि में घूमने लगे। तब उस युद्ध-भूमि में लगातार नृत्य करनेवाले धड़, छककर मांस खानेवाले भूत, भयंकर रूप से गरजनेवाले बैताल, बहनेवाले रक्त का पान करनेवाली डाकिनियाँ, मांस-पेशियों को निगलनेवाले गृद्ध, उच्च स्वर में रव करनेवाले शृगाल, रक्त उगलनेवाले भालू, पृथ्वी पर लोटने, छटपटाने तथा दाँत पीसनेवाले वानर, शक्ति-हीन होकर गिरे हुए, रूप-विकृत, रक्त में भींगे हुए तथा धूलि से सने हुए कपि, एक ही बाण के आघात से एक साथ एक ही स्थान पर सटकर गिरे हुए कपि, खंड-खंड होकर गिरे हुए पर्वत, छिन्न-भिन्न होकर गिरे हुए वृक्ष, खंडित होकर फैले हुए राक्षसों के शूल, असंख्य खंडों में टूटकर गिरी हुई गदाएँ, मरकर गिरे हुए असंख्य हाथी आदि जहाँ-तहाँ दिखाई पड़ने लगे । इस दृश्य को देखकर विभीषण तथा हनुमान्, दोनों विस्मित तथा दुःखी हुए, किन्तु तुरन्त उन्होंने निश्चय किया कि अब हमें भविष्य के कार्य के संबंध में जांबवान् से परामर्श लेना चाहिए । वही जानता है कि अब क्या करना चाहिए । हम उसे पहले ढूंढ़े और उसके कथन के अनुसार कार्य करें ।

यों सोचकर वे युद्ध-भूमि में जांबवान् को ढूंढ़ते हुए गये और निदान एक विशाल शर-शय्या पर पड़े हुए उसे देखा । तब विभीषण ने कातर-भाव से जांबवान् को देखकर कहा--'हे ऋक्षराज, तुम अभी जीवित हो ? क्या, तुम बोल सकते हो ? तुम हमें पहचानते हो ?' राक्षस के शर-प्रहार से शक्तिहीन होने के कारण जांबवान् ने क्षीण स्वर में कहा--'हे विभीषण, तुम्हारे कंठ-स्वर को पहचानकर मैं तुम से बात कर रहा हूँ। वैसे तो मेरी आँखों में बाण चुभ गये हैं । अतः, मेरी आँखें देख नहीं पातीं । क्या पवन-पुत्र जीवित है ? उसके जीवित रहने की वार्ता सुनकर मेरे कानों को आनंद पहुँचाओ ।' यह सुनकर विभीषण ने अत्यंत आश्चर्य-चकित होकर जांबवान् से पूछा--'हे ऋक्षराज, यह कैसे आश्चर्य की बात है कि तुम महात्मा रामचन्द्र के बारे में नहीं पूछते, लक्ष्मण के संबंध में नहीं पूछते, सूर्य-पुत्र के संबंध में जानने की इच्छा प्रकट नहीं करते, और अंगद के बारे में भी पूछना नहीं चाहते, किन्तु पवन-पुत्र के संबंध में ही पहले जानना चाहते हो ? यह तुम्हारा कैसा विचार है ?' तब जांबवान् ने कहा--'हे विभीषण, यदि अकेले

हनुमान् अपने प्राणों से जीवित है, तो सभी वानर जीवित हो जायेंगे । यदि वह जीवित नहीं है, तो जीवित रहकर भी, वानर जीवित नहीं रह पायेंगे ।'

इन बातों को सुनकर वायु-पुत्र को अधिक हर्ष हुआ । उसने अपना नाम लेकर जांबवान् के चरणों में प्रणाम किया । ऋक्षराज अत्यंत हर्षित हुआ और अपने को पुनर्जीवित-सा अनुभव करके कहा--'हे वायुनंदन, अब इन वानरों के लिए तुम्हारे सिवाय और कौन आश्रय है, इसलिए तुम शीघ्र ही समुद्र को पार करके जाओ । हिमाचल को पार करके हेमकूट, ऋषभ-पर्वत, मेरु-पर्वत, रजताद्रि तथा श्वेताचल से आगे निकल जाओ । वहाँ (तुम्हें) लवण-समुद्र मिलेगा । उसे भी पार करो, तो शाक-द्वीप पहुँचोगे । उसको भी पार करो, तो तरंगायमान अमृताब्धि को देखोगे । उसे पार करो, तो चंद्र-शैल तथा द्रोण-शैल के मध्य भाग में उज्ज्वल प्रकाश से दीप्त ओषधी-शैल को देखोगे । उस पर्वत पर संजीवकरणी, विशल्यकरणी, संधानकरणी तथा सौवर्णकरणी नामक चार ओषधियाँ हैं । तुम उस पर्वत पर चढ़कर उन ओषधियों को ले आओ और इस वानर-समूह को प्राण-दान देकर राम-लक्ष्मण को आनंद पहुँचाओ ।'

९१. हनुमान् का ओषधी-शल लाकर वानरों का मूर्च्छा दूर करना

वायुपुत्र, जांबवान् से आज्ञा लेकर सुवेलाचल पर चढ़ गया । अपने चरणों को समान रूप से पृथ्वी पर प्रतिष्ठित करके, अपनी दीप्तिमान् लांगूल को ऊपर उठाये, कंधों को उचकाकर, अपने शरीर को फुलाकर, राम का स्मरण करते हुए वह आकाश की ओर उछला । उस अनुपम वेग के कारण वह विशाल पर्वत भी पृथ्वी में धँस गया; दिशाएँ काँप गईं और पृथ्वी चकराने लगी । इस प्रकार, आकाश मार्ग में उड़कर हनुमान् ने अत्यंत भयंकर समुद्र को पार किया और विष्णु के चक्र के समान आकाश में जाते हुए, मार्ग में कई विचित्र दृश्यों को देखते हुए, घने फेन से युक्त अमृत-समुद्र को पार किया और चन्द्र-शैल तथा द्रोण-शैल के मध्य भाग में स्थित ओषधी-शैल पर चढ़ गया और ओषधियों का अन्वेषण करने लगा । किन्तु, वे ओषधियाँ काम-रूपिणी थीं, इसलिए अपने-आपको उस कपि-शेखर की दृष्टि से छिपा लिया । ओषधियों के नहीं दीखने से अनिलकुमार मन-ही-मन विचार करने के पश्चात्, विनीत हो उस पर्वत से प्रार्थना करने लगा--'हे पर्वतराज, मैं प्रालेय, पर्जन्य तथा कैलास-पर्वतों की उपेक्षा करते हुए शीघ्रगति से तुम्हारी सेवा में आया हूँ । मैं कार्यातुर हूँ । देवताओं नें यहाँ जिन ओषधियों को छिपा रखा है , उन्हें कृपया मुझे दिखा दो । हमारे राघव को इनकी आवश्यकता पड़ गई है । किसी भी तरह उन्हें दे दो, तो अच्छा होगा ।'

तब पर्वत ने अट्टहास करके गर्व से फूलते हुए, हनुमान् से कहा--'तुम्हारा कितना साहस है कि तुम मुझसे ऐसे वचन कह रहे हो ? इन ओषधियों को मुझसे माँगने का तुम्हारा अधिकार ही क्या है ? इन्हें लाने का आदेश देनेवाले तुम्हारे राम की शक्ति कितनी है ? जिन ओषधियों को देवताओं ने यहाँ छिपा रखा है, उन्हें तुम्हें देने से अधिक कोई और अपराध हो सकता है ?'

इन गर्वोक्तियों को सुनकर अनिल-कुमार ने अत्यंत क्रुद्ध होकर उस पर्वत से कहा--

'मैं जब तुमसे ऐसी विनम्र प्रार्थना करता हूँ, तब क्या यह उचित नहीं कि तुम मेरी प्रार्थना पर विचार करो ? हे पर्वत, मैं अपनी विशाल भुज-शक्ति से समूल तुम्हें उखाड़कर अभी यहाँ से ले जाता हूँ; अबतक जिन रामचन्द्र को तुम नहीं जानते हो, उन्हें तब तुम जानोगे ।' इतना कहकर हनुमान् ने भयंकर गति से गर्जन करते हुए उस पर्वत को जड़ से उखाड़ लिया; (पर्वत पर रहनेवाले) गंधर्वों को भगा दिया और उसे उठाकर इतने वेग से जाने लगा कि कोई भी उसे पहचान न सके ।

सहस्र धाराओं से अत्यधिक दीप्त होनेवाले चक्र से युक्त विष्णु की भाँति जब हनुमान् उस पर्वत को लिये हुए चलने लगा, तब राक्षस-वीरों के शर-प्रहार से घायल हो, मूर्च्छित पड़े हुए कपियों ने श्रेष्ठ महौषधियों की वायु के स्पर्श-मात्र से ही अपनी आँखें खोल दीं। उन्होंने अत्यधिक उत्साह से सिंहनाद करते हुए युद्ध-भूमि में पड़े हुए दैत्य-सैनिकों को उठा-उठाकर समुद्र में फेंक दिया। सुवेलाद्रि को पारकर हनुमान् ने उस महनीय ओषधि-शैल को कपि-सेना के मध्य भाग में उतार दिया और अपने कुल के लोगों को तथा सूर्य-पुत्र आदि वानर-नायकों पर उन ओषधियों का प्रयोग किया । उन ओषधियों की शक्ति से वे सब मूर्च्छा से मुक्त हो गये। फिर, उसने खंडित देहों को संधानकरणी की सहायता से जोड़ दिया । विशल्यकरणी के प्रयोग से शर तथा शस्त्र-समूह घायलों के शरीर से निकल गये और उनके घाव भर गये । सौवर्णकरणी से उनके सभी अंग सुवर्ण की कांति के समान उज्ज्वल हो गये । संजीवकरणी की सहायता से उनके खोये हुए प्राण लौट आये और पूर्व की अपेक्षा अत्यधिक बल तथा उत्साह से संपन्न हो गये, मानों वे अभी सुख-निद्रा से जाग पड़े हों। तब, सभी कपि-वीरों ने बड़े उत्साह से अनिलकुमार के प्रति आभार प्रकट किया । युद्ध-भूमि में मरे हुए राक्षसों को कपियों ने पहले ही समुद्र में फेंक दिया था; इसलिए उनमें से एक भी राक्षस उन ओषधियों के प्रभाव से जीवित नहीं हो सका ।

तब सुग्रीव आदि वानरों ने बड़े हर्ष से सूर्य-चन्द्र की भाँति सुशोभित होनेवाले राम-लक्ष्मण को प्रणाम किया और बड़ी प्रीति के साथ अनिल-कुमार की प्रशंसा की । हनुमान् ने अत्यंत हर्ष से गद्‌गद होकर बड़ी भक्ति के साथ राम-लक्ष्मण को प्रणाम किया। तब राम ने हनुमान् को देखकर बड़े आदर के साथ कहा--'हे वायुपुत्र, हमें इन्द्र की आज्ञा मान्य होनी चाहिए । अतः, इस ओषधी-शैल को यथास्थान प्रतिष्ठित करके लौट आओ ।'

राघव का आदेश मानकर मारुतिनंदन अनुपम वेग से उस पर्वत को यथास्थान प्रतिष्ठित करके शीघ्र युद्ध-क्षेत्र में लौट आया । इतने में सूर्योदय हुआ और राघव की चिंता के साथ-ही-साथ अंधकार भी दूर हो गया । तब सुग्रीव ने रामचंद्र को देखकर बड़े उल्लास के साथ कहा--'हे वसुधेश, रावण की सारी सेना, अपने अद्वितीय साहस तथा बल को खोकर नष्ट हो गई है । कुंभकर्ण आदि मुख्य राक्षस एक साथ मारे जा चुके हैं, इसलिए रावण की शक्ति समाप्त हो चुकी है । अब वह युद्ध करने की इच्छा भी नहीं करेगा, इसलिए हे देव, आज रात को आप लंका को जलाने के लिए वानरों को भेजिए ।'

९२. वानरों का लंका जलाना

इस बात को सुनकर सभी वानर सूर्यास्त की प्रतीक्षा करने लगे । शनैः शनैः सूर्यास्त हुआ और अंधकार क्रमशः घना होता हुआ चारों ओर व्याप्त होने लगा । तब कपि-वीरों ने अत्यधिक रोष से भरे हुए बड़े साहस के साथ लूकाओं को हाथ में लिये हुए बड़े वेग से उछलते-कूदते लंका को घेर लिया । द्वाररक्षक उन्हें देख भयभीत होकर भाग गये । तब वानरों ने लंका में प्रवेश किया और लंका को जलाने लगे । अग्नि क्रमशः प्रचंड होकर दिशाओं तथा आकाश में व्याप्त हो गई । वह प्रचंड अग्नि ऐसी लग रही थी कि रावण की लंकापुरी को जलाने के लिए अब राम की क्रोधाग्नि की कोई आवश्यकता नहीं, यही अग्नि उसको जलाने के लिए पर्याप्त होगी ।

बड़वानल जैसे अपने धुएँ के साथ समुद्र-भर में व्याप्त होता है, वैसे ही यह अग्नि विपुल धुएँ के साथ आकाश तक पहुँच गई । इससे प्रासादों की पंक्तियाँ अपनी मणि-राजियों को बिखेरती हुई भस्मसात् हो गई ; ऊँचे-ऊँचे गोपुर पृथ्वी को कँपाते हुए जलकर पृथ्वी पर गिर पड़े और चूर-चूर हो गये । बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ आश्चर्यजनक रीति से जलकर गिरने लगीं और अग्नि-ज्वालाएँ लपलपाती हुई आकाश की ओर बढ़ने लगीं। महान् स्वर्ण-मंडप, तथा रत्न-निर्मित गृह-पंक्तियाँ जलकर राख हो गईं । आभरणों से भरे भंडार-घर जैसे थे, वैसे ही भस्म हो गये । विविध अमूल्य वस्त्र, सुगंध-द्रव्य, कालीनें, मोती, तथा मरकत, अगर-चंदन, कर्पूर, कस्तूरी आदि वस्तुएँ, विविध धान्यों की अक्षय राशियाँ तथा अन्य मूल्यवान् वस्तुएँ, हाथियों तथा घोड़ों की झूलें, स्थान-स्थान पर रखे हुए कवच-समूह आदि जलकर भस्म हो गये, जिससे राक्षसों के हृदय में पीड़ा उत्पन्न होने लगी । उस समय कुछ राक्षस सुवर्ण-कवच पहने हुए आयुधों से युक्त हो दुर्वार गति से वानरों का संहार करने का निश्चय करके घरों से निकल रहे थे; कुछ राक्षस विपुल रति-क्रीड़ा के आवेश से मस्त हो कामिनियों के संग-सुख की घड़ियाँ बिता रहे थे; शय्या को छोड़ने की अनिच्छा से कुछ लोग ऊँघ रहे थे, कुछ लोग अभी सुख की निद्रा में निमग्न थे; कुछ राक्षस अपने बच्चों को लेकर भाग रहे थे; कुछ भौंचक होकर चारों दिशाओं में दौड़ रहे थे; कुछ रुदन कर रहे थे; कुछ अपनी संपत्ति को घर के बाहर निकालकर उसे छोड़कर जाने की इच्छा न होने से, वहीं चकित हो यह दृश्य देख रहे थे; धुएँ के कारण मार्ग न पाकर कुछ लोग जँभाइयाँ लेते हुए खड़े थे; कुछ राक्षस अग्नि को बुझाने के लिए घर की छतों पर चढ़ गये, किन्तु वहाँ से नीचे उतरने में अपने को असमर्थ पा रहे थे; और जहाँ-तहाँ कुछ लोग इकट्ठे होकर घबराहट से यह दृश्य देखकर दुःखी हो रहे थे । अग्नि प्रलयानल के समान, अपनी लपलपाती शिखाओं को व्याप्त करती हुई, कई भवनों तथा कई राक्षसों को भस्मसात् करने लगी । रत्न-नूपुरों का मधुर शिंजन, वीणा की मृदु झंकार, सुंदर तथा मीठे वचनों की ध्वनि, अद्वितीय नृत्य-गीतों की ध्वनि, श्रुति-मधुर केका-रव, हंसों का कल-कूजन तथा सुंदर शुक-शारिकाओं की मधुर ध्वनि आदि मिट्टी में मिल गईं । चंद्रिका से भी धवल कांति से युक्त तथा पद्मराग-मणियों की कांति से उज्ज्वल, उस लंका के सभी हर्म्य, जलने की ध्वनि, चारों ओर व्याप्त होनेवाले धुएँ

तथा छितरानेवाले स्फुलिंगों से युक्त हो भयंकर रूप से भस्म होकर मिट्टी में मिल गये। सभी युवतियों का अभिमान चूर-चूर हो गया और वे कठपुतलियों की भाँति सन्न-सी खड़ी रह गई। प्रचंड ध्वनि से, जलती हुई अग्नि-ज्वालाओं से युक्त बहिर्द्वार-समूह ऐसा दीख रहा था, मानों बिजलियों से युक्त मेघ हो। नगर की वधुओं की विपुल रोदन-ध्वनि श्रोताओं के हृदय तथा कानों को विदीर्ण करती हुई फैल रही थी। जले हुए तथा बिना जले अपने बंधनों को तोड़ने के प्रयत्न में विफल हो क्रंदन करनेवाले हाथियों तथा घोड़ों की आर्त्त-ध्वनि से भरी लंका ऐसी लग रही थी, जैसे इसके पूर्व राम की बाणाग्नि से जलनेवाले जलचर-समूह के आक्रंदन से उद्वेलित समुद्र दीख पड़ा था। भागनेवाले, दौड़कर आनेवाले, दुःख से रोनेवाले, छिपनेवाले, धुएँ से व्याकुल होकर भागनेवाले, लाँघकर जानेवाले, विलाप करनेवाले, आग बुझाने के निमित्त पानी लाने-वाले राक्षसों को पकड़-पकड़कर वानर उस भयंकर अग्नि-ज्वालाओं में फेंककर भयंकर गर्जन करने लगे।

तब राघव अपने श्रेष्ठ कोदंड को हाथ में लिये हुए इस प्रकार उस धनुष का टंकार करने लगे, जैसे त्रिनयन ने क्रुद्ध होकर त्रिपुरों को जीतने के लिए अपने पिनाक का टंकार किया था। उस धनुष का टंकार करते ही नक्षत्र पृथ्वी पर गिरने लगे, पृथ्वी काँपने लगी, समुद्र आलोडित होने लगे, रवि-शशि पथ-भ्रष्ट हो गये, स्वर्ग हिल उठा, दिशाओं की संधियाँ चटक गईं, दिग्गज डोल उठे, विरूपाक्ष विस्मित हुए, भूत-समूह चकरा गया; ब्रह्मा त्रस्त हो उठे, भूमि तथा आकाश उस ध्वनि से गूँज उठे और पौलस्त्य (पुलस्त्य के वंशज रावण आदि) भयभीत हो गये। कोदंड की ध्वनि, वीर वानरों का सिंहनाद तथा सैनिकों के गर्जनों से एक साथ सभी दिशाएँ गूँजने लगीं। तब राम ने कैलास-शिखर के समान विलसित होनेवाले लंका के सिंहद्वार पर पाँच बाण ऐसे चलाये कि वह खंड-खंड होकर गिर पड़ा। फिर, उन्होंने लंका के सौधों पर, अट्टालिकाओं पर, तथा रथों पर कई बाण चलाकर उन्हें नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। यह देखकर सभी राक्षस युद्ध के लिए तैयारी करने लगे। इस प्रकार, वह रात्रि घोर-रूप से व्यतीत हुई।

राक्षसों की रण-सज्जा देखकर सुग्रीव ने सभी वानरों से कहा—'लंका के सभी द्वारों की तुम जागरूक होकर रक्षा करते रहो। यदि कोई राक्षस बाहर निकले, तो उसका वध कर डालो। यदि तुमने किसी को छोड़ा, तो उस अपराध को मैं कभी क्षमा नहीं करूँगा।' यह सुनकर सभी वानर भयंकर गर्जन करते हुए विशाल पर्वतों तथा वृक्षों को लिये हुए अत्यधिक रणोत्साह से भरे दुर्ग के द्वारों की रक्षा करने लगे।

९३. कुंभ-निकुंभ का युद्ध के लिए प्रस्थान

वानरों का भयंकर गर्जन असुरेन्द्र के लिए असह्य हो गया। उसने तुरंत भयंकर पराक्रमी, कुंभकर्ण के पुत्र कुंभ तथा निकुंभ को युद्ध करने के लिए भेजा। उनकी सहायता के लिए रावण ने कंपन, प्रजंघ, शोणिताक्ष तथा उपाक्ष नामक राक्षसों को भी उनके साथ भेजा। वे राक्षस-वीर गज, अश्व तथा रथों पर आरूढ हो, परिघ, गदा, शूल, करवाल, कुंत, मुद्गर, धनुष, बाण आदि आयुधों से सज्जित होकर चले। उनके पीछे अत्यंत

शक्तिशाली दानव-सेना भी चली। उनकी सुंदर पताकाएँ फहराने लगीं और उनके आभूषणों की कांति दीप्त हो उठी। तुरहियों की ध्वनि तथा भीषण सिंहनाद से पृथ्वी को कँपाते हुए लंका को जलाकर गर्व से झूमनेवाले वानरों पर राक्षसों ने ऐसा आक्रमण किया, जैसे प्रलय-काल का पवन-समूह प्रलय-काल के बादलों पर आक्रमण करता हो। पहले उन प्रचंड पराक्रमी वीरों ने दुर्ग के द्वार पर दुर्वार गति से रहनेवाले कपि-सैनिकों पर आक्रमण करके उन्हें भगा दिया। उन वानरों को भागते देखकर हरिरोम, केसरी आदि बाहु-बली योद्धाओं ने उन्हें रोका और रोष से भरे हुए दैत्य-वीरों से स्वयं भिड़ गये और उन पर पर्वतों तथा वृक्षों को फेंकने लगे। किन्तु, राक्षसों ने अपने करवाल, गदा, शूल, परिघ, चक्र आदि श्रेष्ठ अस्त्रों से उन्हें रोक दिया। तब वानरों ने अपने नखों से उनका वक्षःस्थल चीर डाला, उनके कानों तथा नाकों को खंडित किया, दाँतों से काटा और सिरों पर मुष्टियों से प्रहार किया। एक वानर एक दैत्य पर मुष्टि से प्रहार करता था, तो दूसरा राक्षस उस वानर पर मुष्टि से प्रहार करता था। एक राक्षस किसी कपि को मार डालता, तो दूसरा कपि उस राक्षस का वध कर डालता था। एक दैत्य किसी कपि को पकड़ लेता, तो दूसरा दैत्य शीघ्र उस कपि को पकड़ लेता था। एक कपि किसी राक्षस को घेर लेता तो दूसरा दैत्य शीघ्र उस कपि को घेर लेता। एक राक्षस किसी कपि को युद्ध करने के लिए ललकारता, तो दूसरा कपि उससे युद्ध करने लगता। कहीं-कहीं सात-आठ योद्धा एक साथ अपने शत्रु को अकेले घेरकर उसको मुष्टि के प्रहारों से मार डालते, तब उसके फलस्वरूप दोनों पक्षों के कितने ही कपि तथा राक्षस लड़कर मर जाते। इस प्रकार, दोनों पक्ष के योद्धा भयंकर सिंहनाद करते हुए घोर युद्ध करने लगे। तब रण-भूमि पर्वत-शृंगों, गज, हय तथा राक्षसों के विशाल शरीरों एवं शस्त्रों से भरकर भयंकर दीखने लगी।

युद्ध इस प्रकार चल ही रहा था कि कंपन ने एक विशाल गदा उठाकर अंगद पर प्रहार किया। इस प्रहार से अंगद बहुत ही व्याकुल हुआ, किन्तु शीघ्र ही सँभलकर एक विशाल पर्वत से उस दैत्य पर प्रहार किया। तब वह राक्षस चूर-चूर होकर मिट्टी में मिल गया। यह देख कपिनायक अंगद बड़े दर्प से सिंहनाद करने लगा। कंपन की मृत्यु को देख, शोणिताक्ष ने अत्यधिक क्रुद्ध होकर अपना रथ अंगद के निकट ले जाकर अंगद पर अक्षतास्त्र चलाने लगा। अंगद उसकी बाण-वर्षा से विचलित हो उठा। वह तुरंत उस राक्षस के रथ पर कूद गया और उसका धनुष तोड़ दिया, तो वह राक्षस शीघ्र ही खड्ग लेकर आकाश की ओर उछला। तब कपि-वीर भी उसके साथ ही आकाश की ओर उछला और उस राक्षस के हाथ का खड्ग छीनकर उसीसे उस राक्षस पर प्रहार किया। तब वह राक्षस मूर्च्छित हो गया। तब अंगद यम के समान राक्षस-समूह का संहार करने लगा। इतने में शोणिताक्ष सचेत हुआ और गदा लेकर अंगद पर आक्रमण किया। प्रजंघ भी उसकी सहायता के लिए आ गया और गवाक्ष भी उसकी सहायता के लिए आ पहुँचा। यह देख-कर द्विविद तथा मैन्द अंगद की सहायता के लिए आये। तब उन दोनों दलों में घोर युद्ध छिड़ गया। जब वानर राक्षसों पर पर्वतों की वर्षा-सी करने लगे, तब प्रजंघ ने देखते-

देखते उन पर्वतों को तोड़ डाला । उसके बाद तीनों वानर-नेताओं ने गज, तुरंग तथा रथों पर लगातार पर्वतों तथा वृक्षों की वर्षा की, तो उपाक्ष ने अद्वितीय ढंग से उन्हें बीच ही में काट डाला । उसके पश्चात् द्विविद तथा मैन्द आश्चर्यजनक रीति से वृक्षों को उखाड़कर राक्षसों पर फेंकने लगे, तो शोणिताक्ष ने अपनी गदा से उन्हें बीच में ही चूर-चूर कर दिया। तब प्रजंघ ने अपनी तेज तलवार को चमकाते हुए वानरों से भिड़ गया, तो मैन्द ने एक काले साल-वृक्ष से उस पर प्रहार किया । इससे संतुष्ट न होकर मैन्द ने अपनी मुष्टि से उस राक्षस के वक्ष पर प्रहार किया, तो खड्ग को नीचे फेंककर उस राक्षस ने क्रोध से अपनी वज्र-सम मुष्टि से मैन्द पर प्रहार किया । इस प्रहार से मैन्द मूर्च्छित हो गया, किन्तु शीघ्र ही सँभलकर अपनी प्रबल मुष्टि से प्रजंघ पर ऐसा प्रहार किया कि वह राक्षस पृथ्वी पर गिर पड़ा । अपने चाचा को इस प्रकार गिरते देखकर उपाक्ष रथ से उतर पड़ा और तलवार लेकर युद्ध करने के लिए निकला । तब द्विविद ने अत्यंत क्रोध से उस पर आक्रमण किया; अपनी प्रबल मुष्टि से उस पर प्रहार करके अपने समस्त बल से उसे पकड़ लिया । तुरंत उपाक्ष का अनुज शोणिताक्ष वहाँ पहुँच गया और द्विविद के वक्षःस्थल पर मुष्टि का प्रबल प्रहार करके उसे मूर्च्छित कर दिया और अपने भाई को छुड़ाकर ले गया । द्विविद शीघ्र ही सचेत हो उठा और मैन्द को साथ लेकर उपाक्ष तथा शोणिताक्ष पर आक्रमण करके युद्ध करने लगा । युद्ध करते समय द्विविद ने आश्चर्यजनक ढंग से शोणिताक्ष को पकड़कर उसे अपने पैरों से ऐसा रौंद दिया कि उसका रूप पहचानना भी कठिन हो गया । तभी मैन्द ने अपनी भीषण मुष्टियों के प्रहार से उपाक्ष को, उसक शरीर तथा हड्डियों को चूर-चूर करके, मार डाला ।

इस प्रकार, चारों राक्षस-नेताओं को मरे देखकर राक्षस-सेना प्राण लेकर भागने लगी । यह देखकर कुंभ अत्यंत क्रुद्ध हुआ और भागनेवालों को आश्वासन देकर सुरधनु-सदृश प्रकाशित होनेवाले अपने धनुष तथा चमकनेवाले बाण धारण करके एक पैर आगे करके धनुष चलाने की मुद्रा में खड़े होकर क्रूर गति से वानरों पर बाण चलाने लगा । उसके बाणों के प्रहार से द्विविद एक पहाड़ की भाँति पृथ्वी पर भयंकर गति से गिर पड़ा । अपने सामने अपने प्रिय अनुज की यह दशा देखकर मैन्द ने अत्यंत वेग से एक पर्वत कुंभ पर फेंका, तो उसने सात बाणों से उस पर्वत को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया । फिर, उसने मैन्द पर एक ऐसा अस्त्र चलाया कि वह वीर पृथ्वी पर लुढ़क गया । अपने दोनों मातुलों को इस प्रकार धराशायी होते देख, अंगद ने एक विशाल पर्वत को उठाकर कुंभ पर फेंका । किन्तु, उसने पाँच बाणों से उस पर्वत को तोड़ दिया और फिर लगातार अंगद पर असंख्य शर चलाये । क्रोध से जलते हुए अंगद ने भयंकर गति से कुंभ पर कई विशाल पर्वत फेंके, किन्तु कुंभ ने उन सब पर्वतों को सहज ही काट डाला । उसके पश्चात् उसने दो पैने शर अंगद के ललाट के मध्य भाग को लक्ष्य करके चलाये । इन शरों के प्रहार के कारण फूटनेवाली रक्त-धाराओं को पोंछते हुए अंगद ने एक पेड़ को उखाड़कर उससे कुंभ पर प्रहार किया, किन्तु उस राक्षस ने उस पेड़ को भी तोड़कर अंगद को बहुत भीषण बाणों से पीड़ित किया । इससे अंगद मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसके गिरते ही

सभी वानर-सैनिक राम के पास भागे और उन्हें सारा वृत्तांत कह सुनाया। राम ने जांबवान् आदि श्रेष्ठ वानर-वीरों को कुंभ के साथ युद्ध करने के लिए भेजा। वे वृक्षों तथा शिलाओं को फेंकते हुए राक्षस-सेना को भगाने लगे। तब कुंभ ने अनेक पैने शरों को चलाकर वानर-वीरों के आक्रमण को रोका और अपनी सेना को आश्वस्त किया। कपि-वीरों तथा अंगद को युद्ध-भूमि में मूर्च्छित गिरे देखकर सुग्रीव क्रोधोन्मत्त होकर असंख्य विशाल पर्वत तथा अश्व-कर्ण वृक्षों को उखाड़कर उनसे दानवों पर प्रहार करने लगा। किन्तु, देखते-ही-देखते कुंभ ने उन सब को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और रवि-पुत्र पर कई बाण चलाकर उसे अत्यधिक पीड़ा पहुँचाई। फिर भी, विचलित न होकर सुग्रीव ने उस राक्षस के धनुष को छीनकर उसे खंड-खंड कर दिया। दाँत तोड़ने से जैसे हाथी क्रोध से अपने शत्रु पर झपटता है, वैसे ही कुंभ क्रोधावेश से सुग्रीव को मार डालने का निश्चय करके, उसकी ओर लपककर उससे जूझ गया। उस समय वे दोनों ऐसे लगते थे, मानों दो हाथी आपस में भिड़कर लड़ रहे हों। इस प्रकार, दोनों उद्धत हो, अपनी श्रेष्ठ भुज-शक्ति को प्रदर्शित करते हुए, अपने चरण-ताडनों से पृथ्वी को कँपाते हुए धुएँ के समान लंबी साँस छोड़ते हुए, परस्पर ऐसे टकराते थे कि उनके आघातों से सारा आकाश विदीर्ण हो जाता था।

९४. सुग्रीव के द्वारा कुंभ का वध

निदान, सुग्रीव ने उस कुंभ को उठाकर चारों ओर वेग से घुमाया और उसे समुद्र में फेंक दिया, तो सभी देवता हर्ष की ध्वनि करने लगे। वह राक्षस समुद्र में ऐसे जा गिरा, मानों मंदराचल ही समुद्र-तल में गिर गया हो। किन्तु, वह राक्षस फिर अत्यधिक वेग से सूर्य-पुत्र के समक्ष पहुँच गया और अत्यंत क्रोध से सुग्रीव के वक्षःस्थल पर अपनी-मुष्टि से ऐसा प्रहार किया कि उसका प्रभाव सुग्रीव की हड्डियों पर भी पड़ा और अग्नि-कण ऐसे छितरा गये, जैसे वज्रपात होने से कनकाद्रि से अग्नि-कण निकलते हों। इससे क्रोधाग्नि से जलते हुए सूर्य-पुत्र ने उस नीच राक्षस के वक्षःस्थल को लक्ष्य करके अपनी मुष्टि से ऐसा तुला हुआ प्रहार किया कि राक्षस अपनी शक्ति खोकर पृथ्वी पर लुढ़ककर मर गया। शांत अग्नि के समान, प्रताप से हीन हो जब वह गिर गया, तब सभी राक्षस भयभीत हो, ऐसे भागने लगे कि सारी पृथ्वी हिल उठी और सभी समुद्र आलोडित हो उठे।

अपने अग्रज को इस प्रकार गिरते हुए देखकर निकुंभ की आँखों से अग्नि-कण निकलने लगे। वह क्रोधावेश से सिंहनाद करके, कनक-रत्न-प्रभा से युक्त तथा सतत पुष्प-चंदन से अर्चित अपने परिघ को ऐसे घुमाने लगा कि समस्त ब्रह्माण्ड टूटता हुआ-सा दीखने लगा; सभी दिशाएँ चटकती-सी दिखाई पड़ने लगीं और वायु-पाश टूटते-से दीखने लगे। तब हनुमान् सुग्रीव की सहायता के लिए आ पहुँचा और गर्जन करते हुए स्वयं उस राक्षस का सामना किया। तब राक्षस ने क्रोधोन्मत्त हो अपना परिघ मारुति के वक्षःस्थल पर चलाया। उस प्रहार से चारों ओर अग्नि-कण छिटक पड़े और परिघ आश्चर्यजनक ढंग से चूर-चूर होकर हनुमान् के वक्ष की कठोरता को प्रकट करने लगा। उस आघात के कारण

हनुमान् स्वयं ऐसा हिल गया, जैसे प्रचंड वायु के कारण कोई विशाल वृक्ष डोलने लगता है। फिर भी, अत्यंत धैर्य के साथ हनुमान् ने निकुंभ के वक्ष पर अपनी मुष्टि का ऐसा प्रबल प्रहार किया कि उसका वक्ष विदीर्ण हो गया और रक्त की धारा फूट निकली। निकुंभ भी प्रचण्ड वायु-वेग से आहत वृक्ष की भाँति काँप गया और शीघ्र ही सँभलकर उद्धत गति से हनुमान् को ऊपर उठा लिया। यह देखकर सभी दानव हर्ष की ऐसी ध्वनि करने लगे कि सारा आकाश काँप उठा। किन्तु, कपि-पुंगव हनुमान् ने अपने-आपको शीघ्र ही उसके हाथों से छुड़ा लिया और युद्ध-भूमि पर कूद गया। उसने अपनी मुष्टि से निकुंभ पर प्रबल प्रहार किया और उसे उठाकर पृथ्वी पर ऐसे पटका कि उसकी हड्डियाँ चूर-चूर हो गई। फिर, उसने उस राक्षस की छाती पर चढ़कर उसका सिर काट डाला और ऐसा भयंकर गर्जन किया कि सभी दिशाएँ हिल उठीं और पृथ्वी, आकाश, समुद्र एवं सारा दिङ्मण्डल उस ध्वनि से गूँजने लगा।

हतशेष राक्षस शीघ्र लंका में रावण के निकट पहुँच गये और कुंभ-निकुंभ आदि छह शक्तिशाली वीरों की मृत्यु का समाचार कह सुनाया। तब रावण ने अत्यंत क्रुद्ध होकर खर के योग्य पुत्र मकराक्ष को बुलाकर कहा--'तुम अपनी विशाल सेना को साथ लेकर अपने शौर्य का प्रदर्शन करते हुए राम-लक्ष्मण तथा उन वानरों का संहार करके आओ।'

९५. मकराक्ष का युद्ध

रावण का आदेश पाकर मकराक्ष अत्यधिक उत्साह से भर गया कि मुझे अपने पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने का अवसर मिल गया। हर्ष से उसकी छाती फूल गई। उसने रावण को प्रणाम किया और उसकी आज्ञा लेकर रथ पर आरूढ़ होकर चल पड़ा। उसने रणोत्साह से फूलते हुए अपने निकट उपस्थित वीरों को देखकर कहा--'तुम उग्र रूप से कपियों से युद्ध करो। मैं अपने भीषण शरों की अग्नि से राम-लक्ष्मण को तथा वानरों को छिन्न-भिन्न करके उनका नाश करूँगा।'

उसके आदेश को स्वीकार करके सभी दानव उसके पीछे-पीछे चलने लगे। चलते समय उन्हें कई दुःशकुन दिखाई पड़े। किन्तु, उन सबकी उपेक्षा करके तुरही-नाद तथा सिंहनाद करते हुए राक्षस-सेना कपि-सेना पर ऐसे टूट पड़ी कि पृथ्वी तथा आकाश विचलित हो गये। वानरों ने दैत्यों पर पर्वतों तथा वृक्षों की वर्षा की, तो दानवों ने गदा, दंड, कोदंड, खड्ग आदि महान् शस्त्रों की सहायता से उन सबको शीघ्र ही खंडित कर दिया और अपने शस्त्रों के प्रहार से वानरों को व्याकुल करके सिंह-गर्जन किया। उस समय मकराक्ष ने सभी वानरों पर अपना रथ वेग से चलाते हुए उन पर कभी तीस, कभी सौ, कभी साठ, कभी पैंसठ, कभी बीस, कभी छब्बीस, कभी छह, कभी बारह, कभी दो, कभी दस, कभी पन्द्रह, कभी अठारह, कभी तेरह, कभी चार, कभी चौदह, कभी तीन, कभी पाँच, कभी सात और कभी नौ बाण चलाकर उन्हें पीड़ित कर दिया।

उन अस्त्रों को सह न सकने के कारण सभी वानर इस वेग से भागने लगे कि पृथ्वी भी काँप उठी। तब राम ने धनुष उठाकर वानरों को आश्वासन देते हुए कहा--'भयभीत होकर भागो मत, मैं अभी आता हूँ', यों कहते हुए राम राक्षसों की चतुरंगिणी

सेना का संहार करने लगे। यह देखकर मकराक्ष क्रोध से दहाड़ते हुए अपना रथ राम के पास ले गया और उनसे कहने लगा—'हे राघव, मैं खर का पुत्र हूँ। तुमने पहले मेरे पिता का वध किया है। इसी कारण मेरा हृदय इतने दिनों से जल रहा है। मैं सतत तुम्हारे साथ युद्ध करने के अवसर की प्रतीक्षा में था। आज वह अवसर मुझे मिल गया। तुम यहाँ से हटो मत। अपने पिता के वध का प्रतिशोध लेने के लिए आज मैंने तुम्हें प्राप्त किया है। तुम गदा, धनुष या खड्ग इन तीनों में से किसी को लेकर मेरे साथ युद्ध कर सकते हो।'

तब राघव ने क्रुद्ध होकर उससे कहा—'हे नीच दानव, व्यर्थ का गर्व क्यों करते हो? मैं अपने भुज-बल का प्रदर्शन करके युद्ध में तुम्हारा वध करूँगा। इन बातों को सुनकर मकराक्ष ने राम पर कई पैने बाण चलाये। किंतु, बीच में ही राम ने उन्हें काट डाला। उन दोनों के कठोर धनुष के टंकारों से समस्त ब्रह्माण्ड तथा दिशाएँ कंपायमान होने लगीं। मकराक्ष, राम के चलाये सभी अस्त्रों को शीघ्र ही काट डालने और उन पर अनुपम बाणों का प्रहार करने लगा। किंतु, राघव ने उसके बाणों को काटकर विविध भीषण शरों से उसे आहत करने की चेष्टा की। लेकिन, उस राक्षस ने शीघ्र ही सब अस्त्रों को खंड-खंड करके भयंकर सिंहनाद किया। तब काकुत्स्थ-वंशज ने एक बाण से उस राक्षस का धनुष काट डाला। आठ शरों से उसके सारथी का संहार किया और उतने ही बाणों से उसके रथ को छिन्न-भिन्न कर दिया।

रथ से रहित होकर मकराक्ष ने एक शूल राम पर चलाया। किंतु, राम ने तीन बाणों से उसको चूर-चूर कर दिया। यह देखकर देवता राम की प्रशंसा करने लगे। वह राक्षस क्रोधोन्मत्त दाशरथि पर मुष्टि से प्रहार करने के लिए वेग से उनकी ओर आने लगा। किंतु, राम ने इसी बीच उसके वक्ष पर अनलास्त्र का प्रहार किया, तो मकराक्ष तुरंत पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसी समय पश्चिम पर्वत पर कमल-बांधव (सूर्य) अपनी अरुण प्रभा से भासमान होने लगा। हतशेष राक्षस लंका में भाग गये और रावण से मकराक्ष की मृत्यु का समाचार कह सुनाया। तब क्रोध एवं चिंता से अभिभूत होकर रावण ने इंद्रजीत से कहा—'हे तात, युद्ध में कपियों तथा राम-लक्ष्मण को क्षणमात्र में मार डालने की क्षमता रखनेवाला तुम्हारे सिवाय और कौन शूर रह गया है? तुम शीघ्र अपनी सेना के साथ जाओ और उन दोनों का संहार करके लौट आओ, जैसे तुम देवताओं का संहार करके लौट आये थे।'

९६. इन्द्रजीत का तृतीय युद्ध

तब इंद्रजीत ने विनय से रावण को प्रणाम किया और उसकी आज्ञा लेकर युद्ध के लिए चल पड़ा। वायुवेग से जानेवाले अश्वों से जुते हुए विशाल रथ पर आरूढ होकर शरत्काल के बादलों से आच्छादित शैल की भाँति वह श्वेत छत्रों की छाया में बैठे हुए जाने लगा। उसके दोनों पार्श्वों में सुन्दरियाँ अपने रमणीय कंकणों की मधुर ध्वनि करती हुई चामर डुला रही थीं। अपने मुख पर रणोत्साह की दीप्ति को लिये हुए उसने अपनी माता को प्रणाम किया और माता से आशीर्वाद प्राप्त करके पत्नी तथा पुत्रों से

विदा लेकर अपने भाइयों की मृत्यु का स्मरण करके, अत्यंत क्रुद्ध हो, बड़े दर्प के साथ वह आगे बढ़ा। उसके पीछे असंख्य दानव-सेना तथा काम-रूप मंत्री उसकी सेवा करते हुए चले। उसी समय साठ करोड़, चार दाँतवाले विशालकाय गज तथा भेरुण्ड पक्षी के समान बृहदाकार, तोते के रंगवाले चार करोड़ घोड़े उत्तर द्वार से निकले। ऐसी घोर युद्ध-सज्जा से युक्त हो इंद्रजीत निसानों की भयावह ध्वनि के बीच लंकापुर से निकला और वानर-वीरों के दुर्वार गर्जनों की ध्वनि से गुंजायमान होनेवाली युद्ध-भूमि में जा पहुँचा।

९७. इन्द्रजीत का होम करना तथा कृत्ति नामक शक्ति प्राप्त करना

युद्ध-भूमि में पहुँचकर इन्द्रजीत रथ से उतरा और चारों ओर दैत्यों को खड़ा किया। एक त्रिकोणाकार वेदी बनाई और दक्षिण दिशा से श्मशान की सिद्ध-अग्नि ले आकर उसे वेदी पर प्रतिष्ठित किया। उसके पश्चात् उसने बड़ी भक्ति से रक्त वर्ण के वस्त्र, माला तथा चंदन धारण किये, दण्ड, उपवीत तथा मौंजी (मूँज की करधनी) धारण की और संपूर्ण मन से खट्वांग का ध्वज स्थापित किया, महान् निष्ठा से कपाल पर आसीन होकर कंकाल की परिधि बनाई और दक्षिण दिशा में लोहे के स्रुक् तथा स्रुवा सजाये। फिर, उसने कृष्ण वर्ण के यज्ञ-पशुओं के रक्त तथा मांस अग्नि-कुंड में डालकर मौन धारण किया। तत्पश्चात् अथर्ववेद की विधि के अनुसार अविराम मंत्रोच्चारण करते हुए स्रुक्-स्रुवाओं को अपने हाथ में लेकर उस प्रज्वलित अग्नि में विधिवत् ताड़ की समिधाओं, तिल तथा सरसों का हवन किया और उस होम के धूम से समस्त ब्रह्माण्ड को भर दिया। उस समय उस अग्नि-कुंड से एक विशाल रथ निकला। फिर, भयंकर केश, भयावह रूप तथा कपाल, चमकनेवाली डाढ़ें, अस्थि की मालाएँ तथा अग्नि-ज्वालाओं को उगलनेवाली आँखों से युक्त हो, निरंतर अट्टहास करती हुई दहाड़नेवाली एक (कृत्ति) देवी निकली। उस देवी ने कहा--'हे देव-वैरी, जो भी कार्य हो, मुझे सौंपो। मैं उसे संपन्न करूँगी। उस देवी को पहचानकर, इन्द्रजीत अस्त्रों को तथा उसको लिये हुए, रथ पर बैठे, आकाश में चला गया और वानरों पर आक्रमण करने के लिए छिपा रहा। उसकी सारी सेना लंका को लौट गई।

इन्द्रजीत कपि-सेना पर घोर शर-वृष्टि करके उन्हें विवश कर दिया। शिलाओं की वर्षा के कारण चारों ओर उड़नेवाले पक्षियों की भाँति कुछ वानर तितर-बितर होकर भाग गये। कुछ वानर अपना प्रताप खोये हुए रहे। कुछ घायल होकर लाल रंग की नदियों से युक्त पर्वतों के ढहने की भाँति रक्त-धाराएँ बहाते हुए पृथ्वी पर गिरने लगे। उस राक्षस-कुमार के बाणों के कारण चारों ओर अंधकार व्याप्त हो गया। वानर-वीर अंतरिक्ष में छिपे हुए इंद्रजीत को देख नहीं सकते थे। इसलिए, वे उन बाणों को रोकने का कोई उपाय भी नहीं कर सकते थे। किन्तु, इन्द्रजीत अविराम गति से भूमि तथा आकाश को अपने बाणों से भरने लगा। उन पैने बाणों से कुछ वानरों की कमरें कट गईं; कुछ चूर-चूर हो गये; कुछ खंड-खंड होकर मिट्टी में मिल गये। कुछ इंद्रजीत के बाण लगते ही, युद्ध करने के लिए लाये हुए वृक्षों को, पृथ्वी पर छोड़कर भूमि पर लोट गये।

कुछ लोगों के सिर पर बाण ऐसे लगते कि वे पृथ्वी से सट जाते और खड़े-ही-खड़े मर जाते थे; कुछ समस्त अंगों में बाणों के लगने से, भूमि पर लोट जाते । कुछ गजों के शवों की आड़ में छिप जाते और कुछ अपने हाथों में पर्वत उठाये हुए राक्षस के बाणों को रोकते । कुछ वानर इंद्रजीत के दृष्टिगोचर न होने से पुनः-पुनः आकाश की ओर देखते हुए दाँत पीसते थे । अविरल अस्त्र के प्रवाह के ऊपर से गिरते रहने से कुछ वानर उससे अपने मुखों की रक्षा करने के लिए अपनी हथेलियों को सेतु के समान बनाकर उसे रोकते थे । कुछ वानर अशनि-पिंडों की भाँति गिरनेवाले उन बाणों को शीघ्र ही अपने हाथों से तोड़ डालते थे और कुछ पूँछों से उन पर प्रहार करके उन्हें तोड़ डालते थे; कुछ वानर बाणों के आघात से रक्त में सन गये थे और कुछ बाणों के प्रहार के बावजूद अचल खड़े रहते थे । कुछ वानर आँतों के बाहर निकलने से पृथ्वी पर लोटते हुए और जँभाइयाँ लेते हुए अपनी आँखें बंद कर लेते थे; कुछ कहते थे कि अंत में हम श्रीराम के लिए युद्ध में अपने प्राण दे पाये और कुछ ब्रह्मा को कोसते हुए कहते थे कि यह दुर्जय है, आज इसको जीतना असंभव है । कुछ वानर कहते थे कि यह ब्रह्मा की दी हुई शक्ति है, इसलिए यह ब्रह्माण्ड में कहीं भी दीख नहीं रहा है; किन्तु राम के आगे ब्रह्मा का वर ही क्या है और स्वयं ब्रह्मा की ही क्या हस्ती है ? पता नहीं कि रामचन्द्रजी अबतक क्रुद्ध क्यों नहीं हो रहे हैं ?

इस प्रकार, सभी वानर जितने मुँह उतनी बातें कर रहे थे । इन्द्रजीत अपने अनुपम पराक्रम का प्रदर्शन करते हुए एक स्थान पर धनुष का टंकार करता, तो दूसरे स्थान पर शर-वृष्टि करता । एक स्थान पर अपना नाम कहता, तो दूसरे स्थान पर गर्जन करता; एक स्थान पर डाँट बताता, तो दूसरे स्थान पर हँसता और कहीं हुंकार भरता । इस प्रकार, जब वह भयंकर गति से विचरण करने लगा, तब श्रेष्ठ बलवान् हनुमान्, अंगद, शरभ, ऋषभ, जांबवान्, गज, गवाक्ष, गंधमादन, विजय, नील, सुषेण, पनस आदि योद्धा शीघ्र ही पर्वतों तथा वृक्षों को उठा-उठाकर समस्त आकाश में फेंकने लगे, किन्तु वे इन्द्र-जीत के चलाये हुए बाणों से टकराकर खंड-खंड हो गये और वायु-वेग से तथा भयंकर ध्वनि के साथ, जहाँ-तहाँ पृथ्वी पर गिर गये और उनकी चोट से कई वानर मृत्यु को प्राप्त हो गये । फिर, मेघनाद अत्यंत क्रूरता से बाणों की अविराम वर्षा करने लगा, तो कुछ वानर खंडित होकर गिर पड़े और कुछ भयभीत होकर चारों दिशाओं में जाकर छिप गये । इस प्रकार, इन्द्रजीत ने बाणों के प्रहार से दस करोड़ वानर-वीरों को मिट्टी में मिला दिया । उसके पश्चात् भी उसका सामना करनेवाले कितने ही वानरों को अपने प्रचण्ड बाणों के प्रहार से खंड-खंड कर दिया । महान् पराक्रमी हनुमान्, अंगद, शतबली, गवाक्ष, नील, नल, पनस, कुमुद, गंधमादन तथा ऋक्ष एवं असंख्य वानरनायकों को अपने उग्र बाणों से निश्चेष्ट कर दिया और ऐसा सिंहनाद किया कि देवताओं के हृदय भी दहल उठे ।

९८. राम का आग्नेय अस्त्र से इन्द्रजीत की माया को दूर करना

इन्द्रजीत के दुर्वार विक्रम से मन-ही-मन भयभीत हो, गर्व त्यागकर कपि-सैनिक लक्ष्मण के पीछे आ-आकर शरण लेने लगे । तब सौमित्र ने रामचंद्र को देखकर कहा—

'हे देव, अपनी माया के कारण गर्वांध होकर यह इस प्रकार कपि-सेना का संहार करने पर तुला हुआ है। हमें अब शीघ्र इसका वध कर डालना चाहिए ।' तब राम ने अनुज को देखकर कहा--'हे लक्ष्मण, ब्रह्मा के वर के प्रभाव से यह आकाश में दूसरों की दृष्टि में आये विना गर्व से बहुत फूल रहा है । हम कितना भी क्रुद्ध होकर युद्ध करें, यह हमारे वश में नहीं आ सकेगा । आज यह हमारे लिए असाध्य है । इसके ऊपर कोई भी अस्त्र सफल सिद्ध नहीं होगा; केवल हमारे अस्त्र व्यर्थ जायेंगे ।' उसी समय अग्निदेव ने आकर मृदु वचनों में कहा--'हे नर-नाथ, इसकी माया को देखकर आप भयभीत मत होइए । यदि आप आग्नेय मंत्र को जपकर बाण चलावें, तो उस देवी की शक्ति नष्ट हो जायगी और वह उस राक्षस को छोड़कर चली जायगी ।'

इतना कहकर जब अग्निदेव चले गये, तब राम ने विधिवत् अग्नि-मंत्र का जप करके बाण चलाया । तुरंत वह माया-मूर्त्ति अद्भुत रीति से इन्द्रजीत को छोड़कर कहीं चली गई । तब इन्द्रजीत पृथ्वी पर उतर आया और धनुष का भीषण टंकार करने लगा। इतने में सभी वानरनायक मूर्च्छा से मुक्त हो शीघ्र एकत्र हुए और इन्द्रजीत से भिड़ गये । हनुमान् ने शैल-शृंग से, अंगद तथा मैन्द ने विशाल पर्वतों से, गज ने बड़े पर्वत से, नील ने एक विशाल वृक्ष से, नल ने अश्वकर्ण नामक वृक्ष से, सूर्य-पुत्र ने एक विशाल वृक्ष से, पनस ने असंख्य शाखाओंवाले वृक्ष से, विभीषण ने भयंकर गदा से, संपाति ने ताल-वृक्ष से, अन्य वानर तथा जांबवान् आदि वीरों ने असंख्य वृक्षों तथा महाशैलों से इन्द्रजीत पर प्रहार किया । लक्ष्मण ने तीन बाण चलाये और राघव ने एक सौ तीर चलाये । किन्तु, उस राक्षस ने उन सब को अपने विविध शरों से चूर-चूर कर दिया और अपने घोर बाणों की वृष्टि से वानरों को विफल कर दिया । उसने अठारह परुष तथा उग्र बाणों से गंध-मादन को, पाँच शरों से मैन्द को, सात तीरों से द्विविद को, सात बाणों से हनुमान् को, सात ही बाणों से कुमुद को, नौ बाणों से अंगद को, उतने ही शरों से नल को, पाँच तीरों से नील को, सात बाणों से गवाक्ष को, पैंसठ बाणों से सुग्रीव को, बीस बाणों से पनस को, सात बाणों से दधिमुख को, सौ बाणों से राघव को, पचहत्तर बाणों से लक्ष्मण को, तीन ही बाणों से शतबली को, तथा सौ बाणों से विभीषण को व्याकुल कर दिया और अन्य वानर तथा ऋक्ष-वीरों को अपने शराघात से मरणासन्न कर दिया । तब हनु-मान् ने पर्वत-शृंग को, अंगद ने बृहदाकार शिलाओं को, पनस तथा विभीषण ने विशाल गदाओं को, संपाति ने उत्ताल ताल को, नल ने साल तथा अश्वकर्ण नामक वृक्षों को, सूर्य-पुत्र ने पर्वत-पंक्तियों को, शक्ति-विक्रम-संपन्न नील ने शक्ति को, अनल ने सप्तपर्ण को, अन्य वानरों ने खदिर-वृक्षों को तथा शतबली ने बेर-वृक्ष को उस इन्द्रजीत पर फेंका । लक्ष्मण ने तीन उग्र बाण चलाये और राम ने एक सौ श्रेष्ठ शरों को चलाया । शरभ, ऋषभ, जांबवान्, गवय, सुषेण, गवाक्ष, गज, द्विविद, मैन्द तथा अन्य अनुपम शूर वानरों ने विशाल पर्वतों तथा वृक्षों को उस राक्षस-राजकुमार पर फेंका। किन्तु, इन्द्रजीत ने आश्चर्य-जनक ढंग से उन सबको अपने बाणों से चूर-चूर कर दिया और सूर्य-पुत्र के वक्ष पर एक शूल ऐसा चलाया कि वह प्रचण्ड वायु के आघात से कंपित होनेवाले वृक्ष की भाँति

काँप गया । तुरंत उसने ऋषभ, गवाक्ष, सुषेण, अंगद, जांबवान्, कुमुद, हनुमान्, गंधमादन, नल आदि वीर वानरों को अपने अनुपम युद्ध-कौशल से विवश कर दिया । फिर, उसने राघव पर विविध बाण चलाये और लक्ष्मण के धनुष को खंडित कर दिया और विभीषण को बाणों के प्रहार से झकझोर दिया । तब उसने प्रलय-काल के बादल की भाँति बार-बार गर्जन करते हुए राम से कहा—'हे रघुराम, देखा तुमने, मेरे क्रोध में आते ही सुग्रीव आदि वानर-वीर कैसे गिर गये ? हे राजकुमार, तुम पर विश्वास करनेवाले इन वानरों की धज्जियाँ उड़ गईं ।' इस प्रकार कहने के पश्चात् भी उस राक्षस ने अनेक बाण उस कपि-सेना पर चलाये और तदनंतर 'मैं विजयी हुआ', यों चिल्लाते हुए लंका को लौट गया और अपने पिता से अपने युद्ध-कौशल का वृत्तांत कह सुनाया ।

अपने पुत्र के पराक्रम का वृत्तांत सुनकर रावण अत्यंत हर्षित हुआ और उसे निकट बुलाकर हृदय से लगा लिया और कहा—'हे वत्स, तुम्हारे जैसे पुत्र के रहने से ही तो मैं शत्रुओं के द्वारा मारे गये अपने बंधु-बांधवों की मृत्यु का प्रतिशोध ले सका । आज मेरा दुःख दूर हुआ । महान् वीर कुंभकर्ण मारा गया; महाबली प्रहस्त मृत्यु को प्राप्त हुआ; अनुपम वीर त्रिशिर का अंत हुआ; अतिकाय युद्ध में आहत हुआ; महापार्श्व तथा महोदर युद्ध में गिरे; नरांतक तथा देवांतक कट मरे, कुंभकर्ण के पुत्र, घोर पराक्रमी कुंभ तथा निकुंभ नष्ट हुए; साथ-ही-साथ मकराक्ष भी युद्ध में काम आया और समस्त राक्षस-सेना का नाश हो गया । कपियों ने अपने प्रताप का प्रदर्शन करके लंका को जला दिया । हे पुत्र, तुम इन बातों का स्मरण करके शीघ्र ही जाओ और अपने भयंकर बाणों के प्रयोग से राम-लक्ष्मण का वध कर डालो । तुम रण-विद्या में दक्ष हो । पहले तुमने सहज ही देवेन्द्र को युद्ध में जीत लिया था । यदि तुम क्रुद्ध होकर युद्ध के लिए प्रस्थान करोगे, तो निखिल लोक उसी समय भस्म हो जायेंगे । तुम्हारे समक्ष इन नर तथा वानरों की शक्ति ही कितनी है ?'

९९. इन्द्रजीत का यज्ञ करके रथ प्राप्त करना

इस प्रकार के उत्साहवर्द्धक वचन कहकर रावण ने अपने पुत्र को विदा किया । तब वह अपने पुरोहित को भी साथ लेकर युद्ध-भूमि में पहुँचा और वहीं यज्ञ करने का उपक्रम करने लगा । परिचारक लोग शीघ्र ही अस्थि, कपाल, आवश्यक पात्र, लोहे के स्रुक्-स्रुवा, शस्त्र, ताल, समिधाएँ, रक्त-वस्त्र, रक्त-चंदन आदि ले आये । तब उसने रक्त-वस्त्र, रक्त-माला तथा रक्त-चंदन धारण किया; मारण-तंत्र-विधि से तोमर, प्रास तथा खड्गों को हवन-कुंड की परिधि के रूप में सजाया और सजीव कृष्ण-हरिण का कंठ काटकर उसका सिर ले लिया और भक्ति के साथ विधिवत् होम किया । अग्निदेव ने अपने धूम तथा शिखाओं को चारों ओर व्याप्त करते हुए प्रज्वलित होकर हव्यों को ग्रहण किया । उस जयशील निशाचर वीर ने विजय के कई शकुन देखने के कारण अत्यंत हर्ष से नियमपूर्वक होम समाप्त किया । उसके पश्चात् उसने चार अश्व जुते हुए, भयंकर तथा श्रेष्ठ बाणों से दीप्तिमान् होनेवाले, सुंदर ढंग से अलंकृत सिंह तथा अर्द्ध-चन्द्र के चिह्नों से अंकित, मणियों की उज्ज्वल कांति से भास्वर पताका से युक्त,

ब्रह्मास्त्र-से रक्षित, तथा युद्ध-भूमि में अदृश्य रूप से विचरण करनेवाले एक रथ को प्राप्त किया। उस रथ पर आरूढ होकर वह युद्ध के लिए रवाना हुआ। जाते समय उसने राक्षस-सैनिकों से कहा—'अब मैं तुम्हारे समक्ष ही उन दाशरथियों को युद्ध-क्षेत्र में गिराकर उनसे प्रतिशोध लूँगा और अपने पिता दशकंधर के दुःख को दूर करके उन्हें विजयी बना दूँगा। मैं एक निमिष मात्र में सूर्य-पुत्र तथा अन्य वानर-पुंगवों का संहार कर डालूँगा और देखते-देखते ही युद्ध-क्षेत्र में, मैं अन्य वानर-वीरों का भी नाश कर दूँगा।'

इस प्रकार कहने के पश्चात् वह अदृश्य हो गया। राक्षसों से युद्ध करनेवाले राघवों को देखते ही उसकी भौंहें तन गईं। तुरंत धनुष का संधान करके उसने दुर्वार गति से उन पर ऐसी शर-वृष्टि की, जैसे प्रलय-काल में बादल जल-वृष्टि करते हैं। यह देखकर राघवों ने क्रोध से समस्त आकाश को उग्र बाणों से भर दिया। इंद्रजीत ने तब उन सबको खंडित करके ऐसी शर-वृष्टि कर दी कि सभी दिशाओं में अंधकार-सा छा गया। केवल उसके विशाल एवं प्रचंड कोदंड की भयंकर ध्वनि, रथ की नेमियों की ध्वनि, रथ के अश्वों की टापों की ध्वनि तथा प्रत्यंचा का टंकार-मात्र सुनाई पड़ता था, किन्तु उस राक्षस का रूप कहीं दिखाई नहीं पड़ता था। इससे दोनों राजकुमार आश्चर्य से आकाश की ओर देखने लगे। किन्तु, वह राक्षस शीघ्र उनके शरीरों के सभी अंगों में पैने बाणों से प्रहार करने लगा। तब राघवेन्द्र ने क्रुद्ध होकर उसी दिशा में अपने बाण चलाकर उसके बाणों को जहाँ-के-तहाँ काट दिया। तब भुजबली इन्द्रजीत अपने रथ को भिन्न-भिन्न दिशाओं में चलाते हुए असंख्य शर चलाने लगा। तब उसके बाणों से क्षत-विक्षत अंगों से राम-लक्ष्मण पुष्पित किंशुक-वृक्षों के सदृश दीखने लगे। प्रलय-काल के बादल के सदृश अपने विशाल शरीर को छिपाये हुए दक्षिण-दिशा से इन्द्रजीत ने राघवों को देखकर कहा—'अब तुम कहाँ जाओगे और कहाँ छिपोगे? तुम मेरे हाथों में फँस गये हो। अब तुम्हारी रक्षा करनेवाला कौन है? देवता तो अब इस ओर अपना मुँह भी नहीं दिखा सकेंगे। दुबले-पतले बंदरों पर भरोसा करके बड़े साहस के साथ तुम युद्ध में आकर धोखा खा गये। मेरे तीक्ष्ण बाणों की अग्नि-शिखाओं से बचकर तुम अब कहाँ जाओगे? उस विभीषण के वचनों पर अधिक विश्वास करके मेरी शक्ति को तुम पहचान नहीं सके। मैं अभी तुम्हारा वध करता हूँ और आज ही जाकर अयोध्या में रहनेवाले उन भरत-शत्रुघ्न का भी अंत करता हूँ।

यह सुनकर सभी वानर तथा देवता संभ्रमित-से हो गये। इन्द्रजीत क्रुद्ध होकर कभी पश्चिम दिशा से गर्व का प्रलाप करता, तो कभी उत्तर दिशा से धनुष का टंकार करता। फिर, पूर्व दिशा से घोर शर-वृष्टि करता और तुरंत दक्षिण दिशा से ऐसा घोर गर्जन करता कि पृथ्वी हिल उठती। इस प्रकार, वह भिन्न-भिन्न दिशाओं में संचार करते हुए वानरों पर बाण चलाने लगा। तब राम-लक्ष्मण धनुष पर बाण चढ़ाये हुए शीघ्र ही, उस राक्षस के चलाये हुए बाणों को बीच में ही तोड़ देते। उसके इस युद्ध-कौशल को देखकर देवता तथा सूर्य-पुत्र आदि वानर-वीर आश्चर्य-चकित हो गये।

इन्द्रजीत के बाणों से सैकड़ों कपियों को मरकर ढेर होते देखकर, सौमित्र ने क्रोध से अपने भाई से कहा--'हे देव, इस राक्षस के हाथों से वानरों का सर्वनाश हो गया है। तब भी आप ऐसे चुप साधे क्यों हैं? वहाँ देखिए, भालुओं के नेता सभी दिशाओं में गिर-कर लोट रहे हैं और अनेक वानरनायक नष्ट हो गये हैं। हे प्रभु, सभी वानर आपका भरोसा करके बड़ी भक्ति के साथ युद्ध में आये और इन्द्रजीत के दारुण अस्त्रों से आहत होकर गिरते हुए आपका ही नाम ले रहे हैं। शत्रु ने आपकी सारी सेना को समाप्त कर दिया है। अब आप यदि इसे नहीं रोकें, तो अनर्थ हो जायगा। हे सूर्यवंशतिलक, शत्रुओं का सर्वनाश करने की क्षमता रखनेवाले आपके बाण चारों दिशाओं में व्याप्त होकर अपने दिव्य शरीर धारण किये हुए रहते हैं। आप उन्हें ग्रहण करके शत्रु का वध कर डालिए। इन शत्रुओं की शक्ति ही क्या है कि आपका सामना करके युद्ध कर सकें? ऐसे शांत रहना क्षत्रिय के लिए उचित नहीं है। आप ऐसी चिंता में क्यों पड़े हैं? हे सूर्य-सम तेजस्वी प्रभु, आप अपने भुज-बल तथा पराक्रम का विचार ही नहीं करते। हे नाथ, आपकी भक्ति करनेवाले मेरे जैसे सेवक के रहते हुए आप चिंता क्यों करते हैं? आपकी कृपा से मैं स्वयं इस नीच दानव का वध करने में समर्थ हूँ। मैं अभी ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करके इस कुटिल राक्षस-वंश का नाश करता हूँ।'

तब राघव ने अपने अनुज से कहा--'हे लक्ष्मण, केवल इस एक के कारण अनेक का संहार करना क्या उचित है? जो लोग युद्ध में भाग नहीं लेते हैं, क्या, उनका भी संहार करना ठीक है? उसे ब्रह्मा का यह वर प्राप्त है कि यह देव-दनुज तथा रुद्रादि देवों के द्वारा नहीं मरेगा; उस वर के गौरव की रक्षा करने के लिए ही मैं अबतक इसके औद्धत्य का सहन कर रहा हूँ। अब भी यदि यह युद्ध-भूमि में रहा, तो मैं स्वयं इसका संहार करने की क्षमता रखनेवाले वीर-वानरों को भेजूँगा। वे ही बुरी तरह इसे पीड़ित कर सकेंगे। यदि ऐसा नहीं हो सका, तो भले ही यह मेघनाद, इन्द्रलोक में आश्रय ले, ब्रह्मलोक में शरण ले, रुद्र-लोक में छिप जाय, पृथ्वी में प्रवेश कर रसातल में पहुँच जाय, समुद्र में डूब जाय या चाहे यम ही इसकी रक्षा करे, अथवा इसका दादा पुलस्त्य स्वयं इसे अपनी आड़ में छिपा ले, फिर भी मैं इसका वध अवश्य करूँगा, मैं इसे छोड़ूँगा नहीं।'

राम के इस प्रकार कहते ही उनके क्रोध की कल्पना करके इन्द्रजीत युद्ध करने की इच्छा छोड़कर अपनी भयंकर सेना को साथ लिये हुए लंका को लौट गया और अपने पिता से कहने लगा--'हे दानवेन्द्र, मैंने युद्ध में वानर-सेना का सर्वनाश और राम-लक्ष्मण का मान-हरण किया है।' उसकी बातें सुनकर रावण ने क्रुद्ध होकर कहा--'युद्ध के लिए तुम्हारा इस प्रकार जाना और फिर लौट आना किस प्रयोजन का है? तुम ने कौन बड़ा कार्य किया है कि मेरे सामने डींग हाँक रहे हो? राम-लक्ष्मण का वध किये विना तुम लौट आये और कहते हो कि सब मर गये। यदि तुम अपने शौर्य का प्रदर्शन करते हुए युद्ध करते, तो समस्त लोक भस्म हो जाते। अबतक जो सफलता तुम्हें मिली है, उसे बहुत बड़ा मानकर तुम संतुष्ट मत होओ। अपने पराक्रम से राम लक्ष्मण को तथा वानरों को मारकर, फिर मुझे अपना मुख दिखाओ।'

१००. इन्द्रजीत का माया-सीता का सिर काटना

रावण के इन वचनों को सुनकर इंद्रजीत ने कहा--'ऐसा ही होगा', और अपने पिता की आज्ञा लेकर वहाँ से चल पड़ा। उसने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि इस भयंकर युद्ध में अतिकाय, कुंभकर्ण आदि दैत्य-वीर अपने प्राण खो बैठे हैं, इसलिए मैं किसी-न-किसी प्रकार से राम-लक्ष्मण को अवश्य परास्त करूँगा। यों सोचकर उसने अपनी माया से एक माया-सीता की सृष्टि की और उसे साथ लिये हुए अपनी सेना के साथ पश्चिम दिशा की ओर रवाना हुआ। उस राक्षस के प्रताप से भयभीत हो सभी वानर भिन्न-भिन्न दिशाओं में भागने लगे। तब हनुमान् एक महान् शैल-शृंग को उठाकर उस राक्षस का सामना करने के लिए आया। वहाँ उसने इन्द्रजीत के रथ पर माया-सीता को देखा। वह (माया) सीता राम की अत्यधिक विरहाग्नि से पीड़ित आहार तथा निद्रा से रहित अत्यंत दुःख से अभिभूत दिखाई पड़ रही थी। निःश्वास छोड़नेवाली उस माया-सीता का शरीर नितांत दुर्बल था, मुख पीला पड़ गया था और उसके कमल-दल-जैसे नेत्रों से आँसू बह रहे थे। उसके केश उलझे तथा मलिन थे। उसके सभी अंग पृथ्वी पर लोटने के कारण धूलि-धूसरित थे। वह अपना कांतिहीन मुख, कर-पल्लव पर टेके हुए इस प्रकार काँपती हुई बैठी थी, जैसे प्रचंड वायु से लता कंपित होती है। उस सीता को देखकर हनुमान् दुःखी होने लगा, 'हाय भगवन्, यह राक्षस राम की पत्नी की न जाने और क्या दुर्गति करेगा। उनकी यह दीन दशा मुझे देखना पड़ रहा है।' फिर भी वायु-पुत्र घोर वानर-सेना के साथ दारुण रूप से उस राक्षस पर आक्रमण करने का उपक्रम करने लगा। यह देखकर दशकंठ के पुत्र ने बड़ी क्रूरता से हनुमान् को देखकर कहा--'रे वानर, अब क्यों आगे बढ़ रहा है ? ले, सीता को यहाँ देख। इसी सीता के लिए तो तू इस प्रकार उतावला हो रहा है ? मैं अभी इसका सिर काट डालता हूँ।'

तब बाघ के सम्मुख पड़ी हुई हिरणी के समान दीखनेवाली सीता अपनी आँखों से अश्रु बहाते हुए, 'हाय राम, हाय राम' कहकर आर्त्तनाद करने लगी। वह क्रूर राक्षस सीता के केश पकड़कर खींचने लगा। तब वायुपुत्र ने उस राक्षस से कहा--'रे दुरात्मा, क्या, यह तुम्हारे लिए उचित है ? तुम राक्षस हो तो क्या हुआ ? तुम विश्रवसु के पोते हो; क्या तुम्हारे लिए यह शोभा देता है कि तुम मनुकुलेश्वर राम की पत्नी को इस प्रकार केश पकड़कर खींचो ?'

हनुमान् के इतना कहते ही इन्द्रजीत ने अपने खड्ग को उठाकर उस माया-सीता का सिर काट डाला और कहा--'अब तुम जाकर यह समाचार राम-लक्ष्मण से कहो।' यह देखकर अनिलकुमार अत्यंत शोक-संतप्त हुआ। खड्ग से कटकर, रक्त से लथपथ माया-सीता को दिखाकर इन्द्रजीत ने हनुमान् से कहा--'हे वानरोत्तम, राम की पत्नी इस सीता का वध मैंने अपने खड्ग से कर डाला। अब तुम्हारा रणोत्साह शिथिल पड़ जायगा।' इतना कहकर इन्द्रजीत युगांत के घनघोर मेघ के गर्जन की भाँति सिंहनाद करके दिग्गजों के कर्ण-पुटों तथा दिशाओं को विदीर्ण करते हुए, शत्रु-सैनिकों के मन में भय उत्पन्न करते हुए, युद्ध-भूमि में आगे बढ़ा। उस राक्षस को देखते ही सभी वानर भागने लगे। तब

हनुमान् ने उन्हें देखकर कहा--'हे कपि-वीरो, अपने पराक्रम का प्रदर्शन करना छोड़कर भाग जाने का क्या यही समय है ? क्या, तुम युद्ध-धर्म को नहीं जानते ? क्या, युद्ध-क्षेत्र से भागना, अपने वंश के लोगों को कलंकित करना नहीं है ? मैं आगे-आगे चलता हूँ, तुम मेरा अनुगमन करो ।'

हनुमान् के वचन सुनकर सभी वानर पर्वत-शृंग तथा वृक्षों को उठाये हुए, गर्जन करते हुए हनुमान् के पीछे-पीछे चले और राक्षसों पर उन पर्वतों तथा वृक्ष को फेंकने लगे । पवन-कुमार ने भी क्रोध से एक महान् पर्वत को उखाड़कर उस राक्षस पर फेंका । तब इन्द्रजीत के सारथी ने रथ को तुरंत दूसरी ओर फिरा लिया, तो वह पर्वत भयंकर ध्वनि के साथ पृथ्वी पर आ गिरा । इतने में वानर फिर से पर्वतों पथा वृक्षों को ला-लाकर राक्षस-सेना पर फेंकने लगे । वानरों के प्रहारों से अपनी सेना को नष्ट होते देख रावण का पुत्र क्रुद्ध होकर शूल, मुद्गर तथा खड्गों के प्रहार से वानरों का संहार करने लगा । तब मारुति ने अत्यंत क्रोधोन्मत्त हो अपने भयंकर रण-कौशल का प्रदर्शन करते हुए राक्षसों पर शिलाओं तथा वृक्षों की वर्षा करके राक्षसों को भगा दिया । इसके पश्चात् उसने वानरों को देखकर कहा--'हे वानरो, इस अधम राक्षस ने राम की पत्नी सीता का वध कर दिया है । हमारा कार्य बिगड़ गया है । अब हमें युद्ध करने की आवश्यकता ही क्या है ? मैं यह समाचार राघव को सुनाने के लिए जा रहा हूँ । उसके पश्चात् राम जो आज्ञा देंगे, वही हम करेंगे । अब तुम सावधान होकर रहो । यह राक्षस महान क्रूर है ।'

१०१. इन्द्रजीत का निकुंभिल-यज्ञ करना

इस प्रकार कहने के पश्चात् हनुमान् को जाते हुए देखकर रावण का पुत्र मन-ही-मन सोचने लगा--'यह बली यहाँ से चला गया; अब मेरे यज्ञ में विघ्न डालने की शक्ति किसी में नहीं है ।' यों सोचकर वह राक्षस रक्त-मांसों से अनल को तृप्त करते हुए निकुंभिल-यज्ञ करने का प्रयत्न करने लगा । इधर राम ने पश्चिम दिशा में अत्यधिक कोलाहल सुना, तो शीघ्र जांबवान् को बुलाकर कहा--'पश्चिम दिशा में विपुल घोष सुनाई पड़ रहा है । न जाने, हनुमान् पर कोई विपत्ति आ पड़ी हो । तुम शीघ्र ही सेना के साथ जाओ और वहाँ के विपुल घोष के संबंध में पता लगाकर आओ ।'

राम का आदेश पाकर ऋक्षेश (भालुओं का राजा) शीघ्र ही अपने एक करोड़ रीछ-सैनिकों के साथ पश्चिम द्वार की ओर चल पड़ा । मार्ग-मध्य में ही वायु-पुत्र उससे मिला । वायु-पुत्र ने जांबवान् को देखकर इंद्रजीत के कार्य के संबंध में बताया और कहा–'मैं यह समाचार रामचंद्रजी को सुनाकर अभी आता हूँ; मेरे आते तक तुम इसी स्थान पर डटे रहो । शक्तिशाली शत्रु के संबंध में असावधान नहीं रहना चाहिए ।' यों समझाकर पवन-पुत्र ने जांबवान् को भेज दिया और स्वयं राघव के पास चला । राघव हनुमान् को दूर से ही देखकर सोचने लगे, 'क्या कारण है कि हनुमान् का मुखमण्डल अग्निवत् (तमतमाया हुआ) दीख रहा है ? न जाने क्या बात है ?' इतने में वायु-पुत्र राम के निकट आ पहुँचा और उन्हें प्रणाम करके कहा--'हे देव, मैं आपसे क्या विनती करूँ ? हम सब अपने प्राण हथेली पर लिये राक्षसों से युद्ध कर रहे थे कि इन्द्रजीत भूमि-सुता

सीता को युद्ध-भूमि में लेकर आया और निर्दय होकर हमारे समक्ष ही उनका सिर काट डाला। इसलिए मैं जांबवान् को द्वार पर रक्षा करने के लिए नियुक्त करके आप से यह समाचार कहने को आया हूँ।'

यह समाचार कानों तक पहुँचने के पूर्व ही प्रचण्ड वात से आहत वृक्ष की भाँति अतुलित शोकाग्नि से जलते हुए, धैर्य खोकर रघुकुलेश्वर मूर्च्छित हो गये। पृथ्वी पर गिरे हुए राम को देखकर सभी वानरनायक विलाप करने लगे।

१०२. लक्ष्मण का शोक

तब लक्ष्मण ने अपने अग्रज के सिर को अपनी गोद में रखकर संभ्रमित चित्त से इस प्रकार आर्त्तनाद करने लगे--"हाय राम, आप जैसे पुरुषोत्तम को आज यहाँ ऐसा कलंक लग गया। 'धर्ममेव जयते', यह कथन सत्य सिद्ध नहीं हुआ। यदि वह उक्ति सत्य होती, तो आप जैसे दयावान् के लिए ऐसा संताप क्यों कर होता? आपके हाथों से रावण की मृत्यु क्यों प्राप्त नहीं होती? इससे तो यही सिद्ध होता है कि धर्म से अधर्म ही श्रेष्ठ है। अयोध्या का राज्य त्याज्य नहीं है, ऐसा विचार किये बिना हम उस राज्य को छोड़कर जंगलों में भटकने आये। जंगलों में भटकनेवाले हमें पुरुषार्थ कैसे सिद्ध होंगे?

"क्या हमने बुद्धिमानों का यह वचन नहीं सुना कि निर्धनों के सभी प्रयत्न उसी प्रकार निष्फल हो जाते हैं, जैसे निदाध में झरने नष्ट हो जाते हैं। हे राजन्, धन का अर्जन करने से धर्म तथा काम आदि अपने-आप सिद्ध हो जाते हैं। जिसके पास धन होता है, सभी उसके सगे-संबंधी बन जाते हैं। अर्थ-संपन्न व्यक्ति ही पुरुषोत्तम होता है; धन ही विद्या है; धन ही कौशल है; धन ही कीर्त्ति है, वही महत्ता है; वही उच्चकुल तथा सद्गुण है। धन ही शील और बल है; वही पुण्य है, वही राज्य है। धन ही प्राण है, सौंदर्य है, ख्याति है, नीति है, संपत्ति है, बुद्धि है, ज्ञान है, सुख है और शुचित्व है। अर्थ से संपन्न व्यक्ति की सभी इच्छाएँ बात-की-बात में पूरी हो जाती हैं। महान् व्यक्ति, वेद-वेदांग-पारंगत तथा विबुध-जन पुष्पाक्षतों से धनी व्यक्ति की बड़ी प्रीति से पूजा करते हैं। जंगलों में रहनेवाले मोक्षार्थ मुनि-पुंगव भी कंद, मूल तथा फल की भेंट करते हुए धन-संपन्न व्यक्ति के दर्शन करते हैं। वंदीजन तथा संगीतज्ञों का समाज धनवान् व्यक्ति की सतत प्रशंसा करते रहते हैं। उन्नतकुच, गुरु नितंब, क्षीण कटि, मंदगमन, बिंबा-धर, चंद्रमुख, कमल-नेत्र, भ्रमर के समान नीला जूड़ा, सुंदर केश, नवोदित लज्जा, हाव-भाव, मधुर कटाक्ष, मीठे वचन, नव यौवन आदि से संपन्न रमणियाँ भोग-लालसा से प्रेरित होकर धनी-वृद्ध से भी प्रेम करेंगी, पर धन-हीन तरुण का अनादर करेंगी। धन का अभाव ही नरक है, वही श्मशान है, वही महान् शोक है। दरिद्रता ही रोग है, मृत्यु है, पाप है और कारावास है। धन का अभाव ही संकट है, अकाल है, दैन्य है और दुःख है। निर्धनता ही सब प्रकार की कलुषता है। धनाभाव से सभी का अभाव होता है। अतः, जिस दिन हम राज-पाट छोड़कर आये, उसी दिन विपत्तियाँ भी हमारे साथ आईं। मैं जानकी की मृत्यु का दुःख सहन नहीं कर सकता। हे राजन्,

में अपने भयंकर बाणों की अग्नि से राक्षसों के साथ सारी लंका को शीघ्र ही भस्म कर दूँगा।"

१०३. इन्द्रजीत की माया को विभीषण का राघवों को समझाना

लक्ष्मण के इन वचनों को सुनते ही विभीषण ने राम की मूर्च्छा दूर करने का सफल प्रयत्न किया। जब उनकी चेतना लौट आई, तब वह कहने लगा--'हे देव, यह सब इन्द्रजीत की माया है। सीता पर कोई विपत्ति नहीं आई है। मेरी बातों पर विश्वास कीजिए। उस पापात्मा दशकंठ के मन का भेद मैं भली भाँति जानता हूँ। मैंने उसे कितना समझाया कि तुम सीता को राम के चरणों में सौंप दो। किन्तु, उसने मेरे हित-वचनों पर कान नहीं दिया। ऐसा रावण, भला, सीता का वध क्यों करायेगा ? हे राजन्, संभव है कि यह उसकी माया हो। यदि सीता का वध सत्य होता, तो क्या अबतक सभी लोक नष्ट-भ्रष्ट नहीं हो जाते ? यह असत्य ही है। आप चिंता क्यों करते हैं ? मैं अभी जाता हूँ और सीता का कुशल जानकर आता हूँ।'

उसके पश्चात् विभीषण ने राम की अनुमति पाकर, अपना विशाल रूप छोड़कर सूक्ष्म रूप ग्रहण किया और राक्षसेश्वर के वन में निर्विघ्न चला गया; वहाँ सीता को देखकर तुरंत लौटा और रामचंद्र को प्रणाम करके बड़ी भक्ति के साथ सारा समाचार कह सुनाया। उसकी बातें सुनकर राम ने कहा--'हे विभीषण, इन्द्रजीत ने युद्ध-भूमि में ऐसा क्यों किया ?' तब विभीषण ने कहा--'हे देव, उसने आसुर होम करने का संकल्प किया है। हनुमान् आदि वानर-वीरों को निरुत्साह करके उन्हें आपकी सेवा में भेजने के निमित्त ही उसने यह उपाय किया है। उसकी योजना सफल हुई और उसके यज्ञ में बिघ्न डालनेवाला वहाँ कोई नहीं रह गया। यह देखकर उसने निकुंभिल में यज्ञ प्रारंभ कर दिया है। हे देव, यदि वह निष्ठा तथा भक्ति-युक्त मन से विधिवत् यज्ञ को पूरा कर लेगा, तो देव तथा दानव कोई भी उस वीर को जीत नहीं सकेंगे। अतः, हमें उस राक्षस के यज्ञ में विघ्न डालना चाहिए। हे राजन्, हम अभी अपनी सेना के साथ उसके यज्ञ में बिघ्न डालने के निमित्त जायेंगे; आप लक्ष्मण को हमारे साथ भेजिए। दशकंठ के पुत्र इन्द्रजीत आज निकुंभिल वन में यज्ञ के अनुष्ठान में लगा हुआ है। लक्ष्मण आज अपने प्रचंड बाणों से उसे वध कर डालेंगे। यज्ञ का अनुष्ठान पूरा होने के पहले ही यदि उसको हम दण्ड नहीं देंगे, तो यज्ञ की समाप्ति पर वह ब्रह्मा से ब्रह्मशिर नामक शर, धनुष, कवच, खड्ग, दो तूणीर, कई मंत्र-पूत अस्त्र और देवताश्वों से तथा सुंदर ध्वजा से युक्त, वायु-वेग से चलनेवाला रथ, उस होम-कुंड से निकलेंगे। यदि इन्द्रजीत उस रथ पर आरूढ़ होकर अपने हाथ में वह धनुष सँभाले, तो देवासुर भी उसके समक्ष खड़े नहीं रह सकेंगे। इसके पहले, ब्रह्मा ने उसे वर-प्रदान करते समय उससे कहा था कि यदि तुम निकुंभिल-यज्ञ करोगे तो सब प्रकार से अजेय हो जाओगे। यदि यज्ञ के बीच में विघ्न उपस्थित हो और यज्ञ अधूरा रह जाय, तो तुम युद्ध में शत्रुओं के द्वारा मारे जाओगे। इसलिए हे राजन्, आप युद्ध का आवश्यक प्रयत्न कीजिए और इन्द्रजीत का वध करवाइए। यदि यह मायावी मारा जाय, तो निश्चय समझिए कि देवताओं का शत्रु दशकंठ भी मर गया।

१०४. लक्ष्मण का युद्ध के लिए प्रस्थान

तब रघुराम ने अपने अनुज से कहा--'हे अनघ, वीर इन्द्रजीत बादलों में तिरोहित होनेवाले सूर्य की भाँति अपनी माया से अपनी गति को प्रकट किये बिना विचरण करने के लिए यज्ञ कर रहा है। उस वीर को इन्द्रादि देवता भी युद्ध में जीत नहीं सकते। अपने मंत्रियों के साथ विभीषण उस यज्ञ को तुम्हें दिखायगा। हे सौमित्र, तुम जाओ और यज्ञ पूरा होने के पहले ही उस राक्षस का वध कर डालो। शक्तिशाली भालुओं की सेना के साथ पराक्रमी जांबवान् तथा विजय और विक्रम में धुरंधर हनुमान् भी तुम्हारे साथ जायेंगे।' इतना कहकर रघुराम ने अपने अनुज को समुद्र के दिये हुए वज्र-कवच, श्रेष्ठ खड्ग, दो तूणीर, धनुष तथा श्रेष्ठ आभूषण आदि देकर उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा--'हरि, तुम्हें सतत विजय प्रदान करें; शंकर तुम्हें सब प्रकार के शुभ दें; ब्रह्मा तुम्हें दीर्घायु दें; समस्त देवता सभी दिशाओं में तुम्हारी रक्षा करें; अनल तथा अनिल आगे और पीछे तुम्हारी रक्षा करते रहें।'

तब लक्ष्मण ने अत्यंत उत्साह से धनुष सँभाला, कवच धारण किया, तूणीर कसे, खड्ग लिया और विविध आभूषणों से विलसित हो, राम को भक्ति के साथ प्रणाम किया और बड़े साहस के साथ कहने लगे--'हे देव, कमल-सरोवर में हंसों के प्रवेश होने की भाँति, श्वेत पंखवाले मेरे बाण आज इन्द्रजीत को पार करके लंका में गिरेंगे। रूई के ढेर की भाँति मैं अपनी बाणाग्नि से उसे भस्म करूँगा।'

इस प्रकार कहते हुए उन्होंने रामचंद्र की आज्ञा लेकर, गरुड़ पर आरूढ विष्णु की भाँति हनुमान् पर आरूढ हो, वानर-सेना तथा जांबवान् आदि वीरों के साथ युद्ध के लिए प्रस्थान किया। निदान, वे वहाँ से तीस योजन दूर स्थित निकुंभिल के पास पहुँचे।

१०५. निकुंभिल-होम में विघ्न

यज्ञ-भूमि, मत्त गज, उत्तम अश्व, श्रेष्ठ रथ, तथा पदचर सेना से घिरी हुई भयंकर एवं अभेद्य प्रतीत होती थी। सारी सेनाएँ बिना कल-कल ध्वनि के, तरंग-हीन समुद्र की भाँति दिखाई दे रही थीं। ऐसी राक्षस-सेना को देखकर महान् शस्त्रास्त्रों से संपन्न सौमित्र से विभीषण ने कहा--'हे अनघ, इस महान् सेना को जबतक आप अपने बाण-समूह से काट नहीं डालेंगे, इन्द्रजीत हमें दिखाई नहीं देगा, इसलिए आप अपने श्रेष्ठ बाणों से पहले इस सेना का संहार कीजिए। उसके पश्चात् हालाहल के सदृश भयंकर अपनी बाणाग्नि से इस दुरात्मा का संहार कर डालिए, जिससे इसका प्रारंभ किया हुआ यज्ञ पूरा न हो।'

विभीषण की सलाह के अनुसार सौमित्र ने अपनी आँखों से अग्नि-कणों की वर्षा-सी करते हुए राक्षस-सेना पर विविध बाण चलाये। तुरंत ही अतीव बलशाली वानर राक्षसों पर पर्वतों तथा वृक्षों की वर्षा करने लगे। राक्षसों ने अत्यधिक क्रुद्ध होकर, परिघ चलाते हुए, गदाओं से प्रहार करते हुए, करवालों से मारते हुए तथा भिन्न-भिन्न महान् शस्त्रों से आघात करते हुए विविध रीतियों से वानरों पर आक्रमण किया। ऐसी भयंकर गति से भिड़े हुए वानर तथा राक्षस-सेनाओं के भीषण गर्जनों से लंका डोल उठी। राक्षस-सेना नष्ट होने

लगी । तब वानर-सेना भी क्रुद्ध होकर राक्षसों पर ऐसे प्रहार करने लगी कि राक्षस-सेना अपना दर्प खोकर इंद्रजीत की आड़ में शरण लेने लगी ।

तबतक इन्द्रजीत यज्ञ की सफल समाप्ति के लिए आवश्यक दो सौ दस आहुतियों में से, एक-एक करके एक सौ नौ आहुतियाँ महावह्नि की ज्वालाओं में दे चुका था । उसी समय वानर-सेना अपने भयंकर गर्जनों से पृथ्वी को कँपाती हुई वहाँ आ पहुँची । यह देखकर क्रोधोन्मत्त हो इन्द्रजीत ने अपने हाथ की आहुति नीचे फेंक दी; अपनी आँखों से चिनगारियाँ बिखेरते हुए वह युद्ध के लिए सन्नद्ध हुआ । अपने रथ पर आरूढ हो, हाथ में अपना भयंकर धनुष लिये हुए, वह वानर-सेना पर टूट पड़ा और उन्हें अपने तीव्र शरों के आघात से भागने के लिए विवश कर दिया । इसी बीच सौमित्र को साथ लिये हुए विभीषण ने निकुंभिल-वन में प्रवेश किया और घने नील मेघ की भाँति दीखनेवाले वटवृक्ष के नीचे स्थित इंद्रजीत का हवन-कुंड दिखाकर कहने लगा--'हे सौमित्र, देखा आपने ? युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए इस राक्षस ने यहाँ यह हवन प्रारंभ किया है और भूतों की बलि देकर अग्नि से अद्वितीय शक्ति को प्राप्त कर शत्रुओं को जीतने का संकल्प किया है । इसके पहले भी इसने इसी प्रकार हवन करके दुर्वार शक्ति प्राप्त की थी और इन्द्र को जीत लिया था । वहाँ देखिए, हवनकुंड से अरुण नेत्र, अरुण केश, अरुण वस्त्र तथा अरुणवर्ण माला धारण किये हुए काले रंग का सारथी तथा अरुण अश्वों से युक्त रथ उभर-उभरकर निकलनेवाले हैं । इंद्रजीत शीघ्र ही लौट आयगा और हवन से प्राप्त शक्ति से इस रथ पर आरूढ होगा । उसके पश्चात् उसे कोई भी जीत नहीं सकेगा । अतः, हे सौमित्र, आप अपने भयंकर बाणों के प्रहार से इन्द्रजीत का संहार कीजिए ।' तुरंत लक्ष्मण धनुष का भयंकर टंकार करने लगे ।

१०६. लक्ष्मण तथा इन्द्रजीत का परस्पर तिरस्कार के वचन कहना

तब करवाल हाथ में लिये हुए, कवच धारण किये, अग्निवर्ण रथ पर सवार हो इन्द्रजीत लक्ष्मण के समक्ष उपस्थित हुआ । उसे देखकर सौमित्र ने क्रोध से कहा--'हे मायावी राक्षस, अब तुम्हारी माया से कोई प्रयोजन नहीं है । यदि तुम वीर हो, तो मेरा सामना करो और अपनी सच्ची वीरता को प्रकट करते हुए मेरे साथ युद्ध करो । मैं अवश्य तुम्हें यमपुरी को भेजूँगा । तुम भले ही कपट-रूप धारण करो या अपने निज रूप में रहो, मैं शीघ्र तुम्हें समाप्त कर दूँगा ।'

यह सुनकर इन्द्रजीत ने रोषपूर्ण आँखों से लक्ष्मण को देखकर कहा--'हे लक्ष्मण, बालक होकर तुम ऐसा हठ क्यों करते हो ? किंचित् काल ठहरो, मैं अपने बाणों से विजय-लक्ष्मी से तुम्हें दूर करके, तुम्हारे शौर्य का नाश करूँगा और तुम्हारे प्राण लेकर पृथ्वी पर गिरा दूँगा और तुम्हारे शरीर को काटकर उस मांस से कौओं तथा गीधों को तृप्त करूँगा । क्या, इतने शीघ्र तुम भूल गये कि मैंने तुम्हें नाग-पाशों से बाँधा था ।'

इसके पश्चात् उसने विभीषण को देखकर क्रोध से कहा--'हे धर्म-घातक, तुम मेरे चाचा हो, और मैं तुम्हारा प्रिय पुत्र हूँ । क्या, तुम्हें यह उचित है कि तुम मेरा अहित करो । दुर्मति होकर कुल-द्रोह करनेवाले तुम, भला औचित्य का विचार ही कैसे करोगे ?

क्या, कोई ऐसा नीच होगा, जो विपत्ति में पड़े हुए बंधुओं को छोड़कर शत्रुओं की शरण ले ? औचित्य की बात रहने दो। अपने लोगों को छोड़कर शत्रुओं की सेवा में जीवन बितानेवाले व्यक्ति का जीवन भी कोई जीवन है ? राक्षसेश्वर महा तेजस्वी हैं। ऐसे व्यक्ति तुम्हारे निष्ठुर वचनों को हित-वचन कैसे मान लेंगे ? भाई के क्रोध करने से यदि तुम घर के किसी कोने में पड़े रहते, तो क्या होता ? वहाँ से भागकर भी तुमने कौन-सा महान् कार्य सिद्ध कर लिया ? क्या, तुम्हारे प्रताप की सहायता से ही दशकंठ ने समस्त देवताओं को जीत था ? हमारे अपने होते हुए तुम अपना रहस्य अपने शत्रु को बताकर उसके हाथों में स्वयं भी नष्ट हो जाओ।'

तब विभीषण ने कहा--'हे मेघनाद, तुम मेरे आचरण से भली भाँति परिचित हो। फिर भी, ऐसा प्रलाप क्यों करते हो ? तुम उस अविनीत पिता के अविनीत पुत्र ही तो हो। भला, तुम्हें धर्म और नीति का विचार ही क्यों होगा ? क्रूर बंधु का उसी प्रकार त्याग करना चाहिए, जैसे पाले हुए सर्प का त्याग करते हैं। यदि वह पापी दशकंठ मेरी बात उस दिन मानता, तो इतना अनर्थ ही क्यों होता ? परधन तथा परस्त्रियों के लोभ में पड़नेवाले पापियों को औचित्य, शुभ, धर्म, लोक-संग्रह आदि से संबंध ही क्या हो सकता है ? तुम्हारे मन का गर्व तथा अहंकार तुम्हें अग्नि में जलाये विना नष्ट भी कैसे होंगे ? तुम लोग मदांध होकर सतत अधर्म के आचरण में प्रवृत्त रहते हो। तुम देवताओं को पीड़ित करते हो और सुव्रती परम मुनीन्द्रों का वध करते हो। अतः, उस दशकंठ के साथ-साथ तुम, सारी लंका, तुम्हारे सभी बंधु-बांधव, झूठी प्रशंसा करनेवाले तुम्हारे मंत्री तथा सेना, सब राम के द्वारा नष्ट होंगे, यह सत्य है। तुम मति-भ्रष्ट हो गये हो; आसन्न मृत्यु के पाश में बँधे हुए हो। अतः, तुम जैसे चाहो, बको। अब तुम्हारी कोई माया काम नहीं देगी। हवन करने के निमित्त तुम अब वटवृक्ष के नीचे नहीं जा सकते। न लक्ष्मण ही लंका की ओर जा सकते हैं। तुम शीघ्र यम-पुर को जा सकते हो।'

इतने में उदयाद्रि पर उदित होनेवाले सूर्य की भाँति, हनुमान् के विशाल कंधों पर आरूढ़ लक्ष्मण को, विभीषण को, तथा युद्ध के लिए उन्मुख वानरों को दुर्वार क्रोध से देखकर कहा--'आज तुम लोग युद्ध-भूमि में वीर होकर मेरी बाण-वृष्टि का सहन करो। मेरे धनुष से अविराम निकलनेवाले बाणों की अग्नि तुम्हें आहुति के रूप में ग्रहण करेगी। मैं आज करवाल, भाला आदि शस्त्रों से तुम्हारा संहार करूँगा।

१०७. इन्द्रजीत तथा लक्ष्मण का युद्ध

इस प्रकार कहकर पृथ्वी तथा आकाश को प्रतिध्वनित करते हुए उसने सिंहनाद किया और विविध बाण अत्यंत वेग से चलाते हुए कहने लगा--'देखता हूँ कि कौन भुज-बल से संपन्न व्यक्ति मेरे समक्ष आज खड़ा रह सकता है। यह सुनकर लक्ष्मण ने उस दैत्य से कहा--'हे अधम दनुज, व्यर्थ का गर्व क्यों करते हो ? समक्ष भिड़ना छोड़कर, छिपकर धोखे से चोट करना कैसा न्याय है ? यह भी कोई शौर्य है ? अपनी सब प्रकार की मायाओं को तजकर तुम आज मेरे समक्ष खड़े रहो। मैं अपने शरों से तुम्हारे प्राण हरण करूँगा।'

यह सुनकर इन्द्रजीत ने बड़े क्रोध से कालसर्प-सदृश बाणों को लक्ष्मण पर चलाया, जो लक्ष्मण के शरीर को पार करके पृथ्वी में धँस गये। फिर, उसने लक्ष्मण के शरीर पर कई शर चलाये, जो उनके शरीर को छेदकर दूसरी ओर निकल गये। लक्ष्मण के शरीर से, रौद्र रस की बाढ़ की तरह रक्त की धारा फूट निकली। यह देखकर राक्षस हर्ष का भीषण निनाद करने लगे। तब इन्द्रजीत ने अट्टहास करते हुए लक्ष्मण के निकट पहुँचकर कहा--'हे राजकुमार, बड़े शूर की भाँति तुमने मुझसे युद्ध ठाना है। पहले मैं तुम्हारा कवच खंड-खंड कर दूँगा और उसके पश्चात् अपने दारुण अस्त्रों से तुम्हारा सिर काट लूँगा। आज राम अवश्य ही अपने भाई को युद्ध-भूमि में पड़े हुए देखेगा।'

तब लक्ष्मण ने उस निशाचर को देखकर कहा--'हे राक्षस, व्यर्थ ही गर्व क्यों करते हो? युद्ध-भूमि में प्रलाप करने से क्या प्रयोजन? यहाँ से विना हटे, मेरे साथ युद्ध करो। जिस प्रकार अग्नि विना कुछ कहे, जला डालती है, वैसे ही मैं विना बातें किये ही अभी तुम्हारा वध कर डालता हूँ। व्यर्थ डींग मारने से क्या लाभ?' इस प्रकार कहकर लक्ष्मण क्रोध से आँखें लाल किये हुए, अपने धनुष की प्रत्यंचा पर ऐसे दारुण अस्त्रों का संधान किया, जिनका प्रकाश दिशाओं में व्याप्त हो रहा था और जिनसे अग्नि-ज्वालाएँ तथा स्फुलिंग निकल रहे थे। लक्ष्मण ने ऐसे अस्त्रों को उस क्रूर राक्षस के वक्षःस्थल को लक्ष्य करके चलाया। उन बाणों के लगते ही वह राक्षस रक्त-वमन करते हुए मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा। किन्तु, तुरंत सँभलकर उसने सिंहनाद करके तीन पैने बाण रामानुज के वक्ष पर चलाये। वे दोनों रौद्र रूप धारण किये हुए, आँखों से अंगारों की वर्षा करते हुए, एक साथ सिंह-गर्जन करते, धनुष का टंकार करते तथा बाणों का संचालन करते थे, मानों यम का ही अट्टहास हो। अपनी शक्ति तथा विक्रम से दीप्त होते हुए वे सतत दीप्तिमान् चंद्र-सूर्य की भाँति, चार दाँतोंवाले गजों के समान, सिंह-शावकों के समान, कुमार-तारकों के समान, वृत्रासुर तथा इंद्र के समान तथा काल-रुद्रों की भाँति शोभायमान होते हुए जय की उत्कट अभिलाषा से प्रेरित हो युद्ध कर रहे थे। अत्यधिक क्रोध से लक्ष्मण धनुष के टंकार से युक्त धनुष, रथ, ध्वजा आदि के साथ इन्द्रजीत को अपने शरों की वृष्टि से ढक-से देते थे। जब वह प्रतिबाण चलाता था, तब लक्ष्मण उसके बाणों को बीच में ही काटकर उस राक्षस को अपनी बाण-वर्षा से आवृत कर देते थे। तब मेघनाद शक्तिहीन हो, उनके अस्त्रों के प्रति-अस्त्र चलाने में असमर्थ हो, दीर्घश्वास लेते हुए खड़ा रहा। यह देखकर विभीषण ने लक्ष्मण से कहा--'हे राजकुमार, वह देखिए, आपके बाणों का सामना करने की क्षमता नहीं रखने के कारण रावण का पुत्र निर्वेद से अभिभूत हो चुपचाप खड़ा है। अभी आप विजय प्राप्त कीजिए।' तुरंत लक्ष्मण ने उस राक्षस के शरीर पर भयंकर बाण चलाकर उसे घायल कर दिया। इंद्रजीत एक मुहूर्त्त काल तक मूर्च्छित पड़ा रहा, और उसके पश्चात् सचेत हो सोचने लगा--'हाय, मैंने पहले देव तथा असुरेन्द्र को जीत लिया था। आज दैव मेरे प्रतिकूल हैं; इसलिए मुझे एक मानव से पराजित होना पड़ रहा है। इन सूर्यवंशियों के द्वारा सभी राक्षस युद्ध में मारे जा चुके। अब मेरा जीवित रहना व्यर्थ है।'

इस प्रकार सोचकर मेघनाद ने लक्ष्मण को देखकर कहा—'हे राजकुमार, अब तुम वीर की तरह खड़े होकर मेरे पराक्रम को देखो।' यों कहते हुए उसने सात बाण लक्ष्मण पर, दस बाण हनुमान् पर तथा एक सौ बाण विभीषण पर चलाकर उन्हें व्याकुल कर दिया। उन बाणों की उपेक्षा करते हुए लक्ष्मण ने इन्द्रजीत को देखकर हँसते हुए कहा—'हे राक्षस, शूर बड़ी-बड़ी बातें कहे बिना ही युद्ध जीत लेते हैं और अधम डींग हाँकते हुए भी हार जाते हैं। सच्चा वीर युद्ध में कभी छिपता नहीं। युद्ध में धोखा देना भी क्या कोई वीरता है? हे क्रूरात्मा, तुम कुटिल युद्ध करनेवाले हो? तुम्हारे इह-लोक और पर-लोक दोनों नष्ट हो जायेंगे।'

इस प्रकार कहते हुए लक्ष्मण ने सूर्य-किरणों की भाँति प्रकाशमान होनेवाले, स्वर्ण की अनी से युक्त बाणों को उस राक्षस पर चलाया, तो वे उसके कवच को भी छेदकर उसके शरीर के पार निकल गये। तब उसका कवच भयंकर सर्प की केंचुली की भाँति पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब इंद्रजीत दूसरा वज्र-कवच पहनकर लक्ष्मण पर पैने बाण चलाने लगा। परस्पर के शराघातों के कारण शरीरों से निकलनेवाले शोणित के प्रवाह से युक्त होकर, वे दोनों गेरुए रंग के निर्झरों से युक्त पर्वतों की भाँति दीखने लगे। वे अपनी-अपनी धनुर्विद्या का कौशल दिखाते हुए तीव्र गति से युद्ध करने लगे। अस्त्र के आघातों से युक्त हो युद्ध करते समय, वे ऐसे दिखाई पड़ रहे थे, मानों पतझड़ के उपरान्त पुष्पित किंशुक वृक्ष हों। अमर, गंधर्व आदि आश्चर्य के साथ इस युद्ध को देखने लगे।

उसी समय कलभों से घिरे हुए मत्त गज के सदृश, मंत्रियों से घिरे विभीषण ने भयंकर रीति से अपने धनुष का टंकार किया और क्रोधोन्मत्त हो राक्षस-सेना पर ज्वालाओं को उगलनेवाले तीक्ष्ण बाण चलाये। उन बाणों के लगते ही राक्षस-सेना इस प्रकार पृथ्वी पर गिरने लगी, जैसे वज्रपात से विशाल वृक्ष गिरते हैं। अनल आदि उसके मंत्री शूल, बरछे, खड्ग आदि शस्त्रों से राक्षसों पर आक्रमण करके उन्हें धराशायी करने लगे। तब विभीषण वानर-सेना को देखकर कहने लगा —'अब तुम सब लोग एक साथ मिलकर इस इन्द्रजीत का वध करो। लंकेश्वर की सारी शक्ति यही है। यदि यह मारा गया, तो समझो कि दशकंठ अपनी सेना के साथ परास्त हो गया। इसके पहले तुम लोगों ने अपने असमान विक्रम से, प्रहस्त, वज्रमुष्टि, प्रजंघ, सुप्तघ्न, भयंकर प्रतापी कुंभ-निकुंभ, कुंभकर्ण, अतिकाय, महापार्श्व, धूम्राक्ष, मकराक्ष, क्रोधन, शोणिताक्ष, उपाक्ष, त्रिशिर, महोदर, अग्निकोप, देवांतक, नरांतक, जंबुमाली, अकंपन आदि महान् पराक्रमी योद्धाओं को मारकर युद्ध-सागर को सहज ही पार किया था और अपने बाहुबल को प्रदर्शित किया था। अब तुम्हारे तथा लक्ष्मण के लिए यह इन्द्रजीत एक गोपद के समान है। मुझे अपने पुत्र का वध नहीं करना चाहिए। इसके नष्ट होने का उपाय मैं तुम्हें बताऊँगा। सुनो, स्वयं हिंसा करना या दूसरों को भेजकर हिंसा कराना, दोनों समान हैं। किंतु यह राम का कार्य है, इसमें लोकहित निहित है। इसलिए यह पाप नहीं है। अब मैं सौमित्र के हाथों इसका वध कराऊँगा। आगे इसकी एक भी माया नहीं चलेगी।'

इसके पश्चात् जाम्बवान् ने अपनी रीछों की सेना लिये हुए आकाश को विदीर्ण

करनेवाला गर्जन करके राक्षसों पर टूट पड़ा और पर्वत-शृंगों, वृक्षों तथा नखों और दाँतों से शत्रुओं के ऊपर आघात करते हुए उन्हें व्याकुल कर दिया। तब राक्षस भयंकर परशु, मुद्गर, शूल, परिघ तथा धनुष लिये हुए भयंकर गति से उनसे भिड़ गये। वानर तथा निशाचरों का वह संग्राम ऐसा दीख पड़ा, मानों सुरासुरों का संग्राम हो। तब हनुमान् ने क्रुद्ध होकर लक्ष्मण को नीचे उतार दिया और यम के समान एक-एक प्रहार से अनेक राक्षसों को पृथ्वी पर गिरा दिया। उसने शैल-शृंगों तथा शाल-वृक्षों का प्रचुर प्रयोग किया और असंख्य राक्षसों का संहार करके भयंकर सिंहनाद किया। तब विभीषण ने क्रोध से अपने धनुष का टंकार और अपने मंत्रियों के साथ राक्षस-सेना पर टूटकर अनेक राक्षसों का संहार किया। फिर, उसने स्वर्ण अनी से युक्त तीव्र शर इंद्रजीत के शरीर पर चलाया। तब उसने भी क्रुद्ध होकर अद्वितीय शर यों चलाये कि वे विभीषण के वक्ष को पार करके पृथ्वी में ऐसे गड़ गये कि पृथ्वी भी डोल गई।

इस प्रकार, विभीषण से भयंकर युद्ध करनेवाले इंद्रजीत को देखकर लक्ष्मण क्रुद्ध हुए और हनुमान् के कंधे पर बैठकर असंख्य तीव्र शर उस राक्षस पर चलाये। इंद्रजीत ने भी भयंकर बाण-समूह चलाकर लक्ष्मण के बाणों को काट दिया। इस प्रकार, जब वे दोनों एक दूसरे पर क्रूर बाण चलाने लगे, तब उन अस्त्रों से ढके हुए शरीर से युक्त वे, वर्षा की धारा से युक्त बादलों के समान और बादलों से युक्त सूर्य-चंद्र के समान दिखाई पड़ने लगे। उनके बाणों की तीव्र गति का वर्णन कैसे किया जाय? ऐसा लगता था, मानों धनुष की प्रत्यंचा पर चढ़ाये हुए बाण जैसे-के-तैसे रहते हों और वे उन्हें छोड़ते ही न हों। दोनों ओर के बाण समस्त आकाश में ऐसे व्याप्त हो गये कि अंधकार छा गया। वीर रस के आवेश से अभिभूत वे दोनों उस युद्ध-क्षेत्र में अपने-आपको भूल-से गये। आश्चर्य था कि उस समय उस युद्ध-भूमि में वायु का संचलन भी नहीं होता था और अग्नि दीप्त नहीं होती थी। यह देखकर दिक्पाल, देवता, गंधर्व, यक्ष, किन्नर आदि चकित-से होकर लक्ष्मण की प्रशंसा करते हुए उनकी शरण में आये। उन्होंने लक्ष्मण की विजय की कामना करते हुए उन्हें कई आशीर्वाद दिये और कहने लगे--'हे सौमित्र, इस लोक-कंटक राक्षस का आप अवश्य वध कीजिए।'

१०८. इन्द्रजीत का वध

देवताओं के इस प्रकार कहते ही भानु-वंशज लक्ष्मण ने भयंकर सिंहनाद करके अपने धनुष का टंकार करते हुए इंद्रजीत पर आक्रमण किया और असंख्य बाण उस पर चलाये। उस राक्षस ने भी उन बाणों को काटकर फिर कई भीषण शर लक्ष्मण पर चलाये। तब, लक्ष्मण ने क्रुद्ध होकर एक अर्द्धचंद्र बाण से उसका धनुष काट डाला, सात बाणों से उसकी ध्वजा को गिरा दिया, एक बाण से सारथी का सिर काट डाला, दस बाणों से उसका वक्ष विदीर्ण करके चार बाणों से रथ के अश्वों को मार गिराया। तब रावण का पुत्र स्वयं सारथी तथा रथिक बनकर सौमित्र पर भयंकर शरवर्षा करके अट्टहास करने लगा। तब सौमित्र ने स्वयं रथ चलाते हुए युद्ध करनेवाले इंद्रजीत को लक्ष्य करके तीक्ष्ण बाण चलाये, जिनके लगने से रावण का पुत्र मूर्च्छित हो गया।

कुछ ही समय के पश्चात् इन्द्रजीत की चेतना लौट आई। वह चिंतित होकर सोचने लगा--'यह कैसी विचित्र बात है कि एक मानव ने मुझे इतना व्याकुल कर दिया। इसके पहले के युद्धों में मैंने कभी ऐसी व्याकुलता का अनुभव नहीं किया था। समय की गति प्रबल है; कोई उसके प्रतिकूल जा नहीं सकता।' इस प्रकार चिंता से पीड़ित हो वह दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए धनुष पर बाण का संधान करने की इच्छा नहीं रहने के कारण चुपचाप शत्रु को देखता रहा। तब सभी देवता रामानुज की प्रशंसा करने लगे।

इंद्रजीत के कांतिहीन तथा विवर्ण मुख को देखकर वानर हर्ष-ध्वनि करने लगे। तब वीराग्रणी प्रमाथी, मेरु-सदृश विशालकाय एवं मेघनिःस्वन शरभ तथा ऋषभ ने पर्वत-श्रृंगों को, इन्द्रजीत के रथ पर फेंककर अश्वों के साथ रथ को भी नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। इस पर विपुल क्रोध से इन्द्रजीत ने सिंहनाद करके विभीषण के ललाट को तथा लक्ष्मण के वक्ष को लक्ष्य करके तीन-तीन पैने बाण चलाये और धनुष का टंकार करते हुए सिंह-गर्जन किया। तब विभीषण ने क्रोधोन्मत्त हो, आँखों से अग्नि-कणों की वर्षा करते हुए पाँच बाण ऐसे चलाये कि वे उस राक्षस के वक्ष को पार कर निकल गये। तब इन्द्रजीत ने क्रोध से अपने पिता (विभीषण) पर आग्नेय बाण चलाया। उसको आते देखकर लक्ष्मण ने वारुणास्त्र का प्रयोग किया। दोनों शर आपस में टकराकर पृथ्वी पर गिर पड़े। उसके पश्चात् उस राक्षस-कुमार ने उरगास्त्र चलाया, तो लक्ष्मण ने गरुड़ास्त्र के प्रयोग से उसको विफल कर दिया। फिर, उसने कुबेरास्त्र चलाया, तो लक्ष्मण ने ऐन्द्रास्त्र से उसे खंडित कर डाला। तब दानव ने गंधर्वास्त्र चलाया, तो लक्ष्मण ने उसे रौद्रास्त्र से काट डाला। उन दोनों का युद्ध प्रलय-काल में पृथ्वी की दशा का स्मरण दिला रहा था। उस समय सौमित्र की रण-क्लान्ति को मिटाने के लिए मानों, मंद-मंद पवन चलने लगा।

तब लक्ष्मण ने यम की भाँति क्रूर हो इन्द्रजीत को देखकर अपने धनुष की ऐसी ध्वनि की कि दिशाएँ विदीर्ण-सी हो गईं। और, उसके पश्चात् उन्होंने भयंकर सिंहनाद करके, देवेन्द्र से प्राप्त ऐन्द्रास्त्र को अपने धनुष पर चढ़ाया और कहा--'यदि रामचन्द्र धर्मात्मा हैं, यदि देवी सीता पतिव्रता हैं, यदि देवताओं की कृपा मुझ पर है, यदि इन्द्र आदि देवताओं का हित (इन्द्रजीत के अंत से) होनेवाला है, तो यह महान् शर इन्द्रजीत का सिर काट देगा।' इस प्रकार कहते हुए उन्होंने लक्ष्य साधकर इन्द्रजीत पर वह बाण चलाया। रत्न की नोक से सुशोभित वह बाण, समस्त आकाश में व्याप्त हो, घोर वज्र के समान भीषण रूप धारण किये हुए, क्रूर गति से चल पड़ा। उस शर ने विहगेन्द्र के सदृश वेग के साथ, सर्प के मुख से निकलनेवाले अग्नि-कणों की चंचलता लिये हुए, सूर्य-बिंब की-सी भयंकर दीप्ति से प्रज्वलित होते हुए, अपनी कांति से पृथ्वी तथा आकाश को भरते हुए उग्र दंड देने के उद्देश्य से भयंकर बनकर उस राक्षसेन्द्र के पुत्र पर आक्रमण किया। उस महान् उद्दण्ड अस्त्र ने अनुपम मणिकुंडलों तथा ललित अरुण अक्षतों से अलंकृत इन्द्रजीत के सिर को मुकुट के साथ पृथ्वी पर गिरा दिया, मानों (लक्ष्मण ने) लंका की निधि सिद्ध करने की इच्छा से प्रेरित हो, उसके पहले बलि देने के लिए, एक जंगली भैंसे का सिर काट लिया हो। युद्ध-क्षेत्र में गिरे हुए इन्द्रजीत को देखकर, लक्ष्मण विजय-लक्ष्मी से

संपन्न हो, अत्यंत हर्ष से दिशाओं को कँपाते हुए शंख बजाया, धनुष का भीषण टंकार और सिंहनाद किया। उस समय अप्सराएँ नृत्य करने लगीं और गंधर्वों ने अपने मधुर संगीत से लोगों को आनंद पहुँचाया।

तब विभीषण ने अत्यधिक हर्ष से लक्ष्मण को हृदय से लगा लिया और सभी वानर हर्ष मानने लगे। हतशेष निशाचर त्रस्त हो, वानरों के आक्रमण के समक्ष खड़े रहने का साहस न कर सके और अपने चरणों के आघातों से पृथ्वी को कँपाते हुए, अपने आयुधों को जहाँ-तहाँ फेंककर, प्राण लेकर भागने लगे। कुछ राक्षस लंका की ओर भागे, कुछ पर्वत-शृंगों पर चढ़ गये; कुछ समुद्र में कूद गये और कुछ गुफाओं में जाकर छिप गये। तब अग्निदेव अपनी स्वाभाविक दीप्ति से जलने लगे, सूर्य प्रखर तेज से भासमान होने लगा, सातों समुद्र अत्यंत स्वच्छ हो गये; दिशाओं में आच्छादित कुहरा हट गया, गगन प्रसन्न दीखने लगा, और पृथ्वी निष्कंप दिखाई पड़ने लगी। तब हनुमान्, शतबली, नल, पनस, शरभ, ऋषभ, अतुल पराक्रमी अंगद, अतिबली सुग्रीव, दधिमुख, गज, गवय, गंधमादन, द्विविद, मैन्द आदि वानर-नेताओं ने आकर लक्ष्मण को प्रणाम किया और बड़े हर्ष से उनकी प्रशंसा करने लगे। समस्त देवताओं ने भी लक्ष्मण की प्रशंसा करते हुए पुष्प-वृष्टि की। वानरों ने विजय-गर्व से सिंहनाद किया। परिमल से युक्त मंद पवन धीरे-धीरे चलने लगा। चूँकि, लक्ष्मण विष्णु के अंश से संभूत थे, उनके हाथों युद्ध में मरे कपटी राक्षस, शरीर तजकर, पश्चिम सागर में डूबनेवाले सूर्य की भाँति विष्णु-सायुज्य को प्राप्त हो गये। सूर्यवंश की कीर्त्ति को सब दिशाओं में व्याप्त करते हुए लक्ष्मण ने वहाँ एक विजय-स्तंभ प्रतिष्ठित किया और वानरों, विभीषण तथा हनुमान् के साथ शीघ्र रामचन्द्र की सेवा में पहुँच गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने राम के चरण-कमलों में झुककर प्रणाम किया। तब, राम ने उन्हें अपने हृदय से लगा लिया और आनंदाश्रुओं से अभिषिक्त करते हुए, उन्हें अपनी गोद में बिठा लिया। लक्ष्मण के शरीर पर वीर-पुलक के सदृश लगे हुए बाणों को देखकर उमड़नेवाले अपार दुःख तथा मेघनाद की मृत्यु के अत्यधिक हर्ष से राम मूर्च्छित-से हो गये। किन्तु, वे शीघ्र ही सँभल गये और सूर्य-पुत्र को तथा विभीषण को अपने भाई लक्ष्मण को दिखाकर यों कहने लगे—'युद्ध में अजेय होकर आज इसने कैसी अद्भुत वीरता का प्रदर्शन किया है। असंख्य दिव्य शस्त्रास्त्रों से संपन्न इन्द्रजीत का इसने वध किया है। अतः, अब यह निश्चित ही है कि महान् शक्ति-संपन्न रावण मेरे हाथों मरेगा। उसका वैभव और उसका बल, आज उसके पुत्र की मृत्यु के साथ ही समाप्त हो गये। असंख्य शस्त्रों से संपन्न तथा समस्त राक्षसों का आधार अपने पुत्र की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के उद्देश्य से रावण मेरे साथ युद्ध करने के लिए समस्त आयुधों से सुसज्जित होकर, दुर्वार गति से आवे, तो भी मैं अपने पैने बाणों से, चतुरंगिणी सेना के साथ दशकंठ का खंड-खंड करके भूतों को बलि चढ़ा दूँगा।'

इसके पश्चात् राम ने सुषेण को देखकर कहा—'हे वानरोत्तम, तुम ओषधी-शैल से श्रेष्ठ प्रभा-विलसित विशल्यकरणी ले आओ और लक्ष्मण, विभीषण तथा अन्य वानरों के शरीर पर लगे बाणों के घावों की पीड़ा को दूर कर दो। सुषेण ने राम के आदेश का पालन किया और वे सब स्वस्थ-गात्र हो गये। सूर्य-पुत्र की आज्ञा से, सभी वानरों ने

चंद्र तथा सूर्य-सम विलसित राम-लक्ष्मण को अलंकृत किया। राम-लक्ष्मण, रवि-पुत्र, राक्षस-राज विभीषण, हनुमान्, सुषेण, शतमन्यु का पोता जांबवान्, नील आदि वानरनायक, पौलस्त्य-वंशजों का एकमात्र आधार उस वीरवर इंद्रजीत की मृत्यु पर हर्ष मनाने लगे।

१०९. इन्द्रजीत की मृत्यु पर रावण का शोक

युद्ध-भूमि से भागे हुए हतशेष राक्षस लंका में पहुँचे और लोक-कंटक रावण को देख, शोकार्त्त हो यों कहने लगे--'हे देव, इंद्र के वैरी आपके पुत्र ने अपने अनुपम भुज-बल से असंख्य वानरों का संहार किया। उन्होंने देवताओं को आश्चर्य-चकित करते हुए अपने दिव्य अस्त्रों के प्रयोग से लक्ष्मण को भी व्याकुल कर दिया और युद्ध करते हुए निदान लक्ष्मण के हाथों से मृत्यु को प्राप्त हुए।' यह समाचार सुनते ही रावण अत्यधिक शोक से व्याकुल होकर बहुत समय तक मूर्च्छित होकर पड़ा रहा। फिर, वह सचेत होकर शोक-सागर में डूबे हुए कहने लगा--"हाय, वंशवर्द्धन, हे महावीर, हाय दानशील, हे शूर-वीर, शतमन्यु को सहज ही जीतनेवाला तुम्हारा शौर्य आज किसने दबा दिया? इंद्र आदि दिक्पाल और गगनचारी जीव तुम्हारा नाम लेते ही भयभीत होकर भागते थे। ऐसी तुम्हारी भयंकर शक्ति के समक्ष खड़े होकर एक साधारण मानव ने तुम्हारा दर्प-दलन किया! प्रचंड क्रोध से तुम अपने भयंकर कोदंड को सँभाले हुए युद्ध-क्षेत्र में खड़े हो जाते, तो यम भी तुमसे परास्त हो जाता था। ऐसी तुम्हारी वह शक्ति कहाँ नष्ट हो गई? क्या दैव-गति वाम हो गई है? अन्यथा, हे इन्द्रजीत, आज यम तुमसे भी अधिक प्रबल कैसे हो गया? तुम्हारे पैने शर आश्चर्यजनक ढंग से मंदराचल को खंड-खंड कर देने में समर्थ थे। तुमने युद्ध-भूमि में कई बार सहज ही राम-लक्ष्मण को परास्त किया था। हे पुत्र, आज उस शक्ति को खोकर तुम सौमित्र के हाथों मारे गये। हे देवशत्रु, तुम्हारी मृत्यु से देवता तथा मुनि अत्यंत हर्षित होंगे। प्रलय-काल के घन-गर्जन-सदृश तुम्हारे सिंहनाद करते ही समस्त लोक भयभीत हो जायेंगे। तुम सभी देवताओं के लिए अजेय थे। ऐसे तुम एक क्षुद्र जीव की भाँति मारे गये। हाय, ब्रह्मा का लेख मिटाने में तुम असमर्थ ही रहे। आज समस्त चराचर जगत् विक्रम तथा वीरों से शून्य दीख रहा है। हाय पुत्र, मैं तुम्हारी शक्ति का भरोसा किये हुए था, आज तुमने मुझसे अलग होकर मुझे देवताओं के उपहास का पात्र बना दिया। क्या, तुम्हारे लिए यह उचित था? आज राक्षस-स्त्रियों का विलाप मुझे अपने कानों से सुनना पड़ रहा है। तुम अपना युवराजत्व, अपनी लंका, अपने इष्ट बंधुओं, अपनी माता, स्त्रियों तथा पुत्रों को त्याग कर कैसे चले गये? हाय पुत्र, तुम कहाँ चले गये? उस दिन तुमने यम को जीत लिया था, ऐसे बलशाली तुम आज उसी के नगर को कैसे गये? पुत्र बड़ी भक्ति से अपने पिता के क्रिया-कर्म करता है। आज वह कर्म नहीं रहा; आज मुझे ही तुम्हारा क्रिया-कर्म करना पड़ रहा है। अब मैं क्या कहूँ और क्या करूँ? राम-लक्ष्मण, रवि-पुत्र, राक्षस-पालक विभीषण तथा भयंकर पराक्रमी वानर, शूलों के समान मेरे हृदय में गड़े हुए हैं। हे पुत्र, उन हृदय-शूलों को निकाले विना ही तुम कहाँ चले गये? तुम मेरी विजय थे, मेरे तेज थे, मेरे पुण्य-फल थे, मेरे भाग्य थे, मेरे शौर्य थे, मेरी गति थे, मेरी कीर्त्ति थे और मेरा सर्वस्व तुम ही थे, तुम्हारे जैसे पुत्र की

मृत्यु मैंने देखी । अब मेरा जन्म किस प्रयोजन का ? इस विपत्ति-रूपी समुद्र को पार करने का साधन ही क्या है ? मैं अबतक यही विश्वास किये रहा कि तुम्हारी सहायता से मैं राम को जीत लूँगा । वह विश्वास अब नष्ट हो गया है । मेरी सभी आशाएँ समाप्त हो गईं । अब मैं इस शोक-दावानल में जल नहीं सकता ।" इस प्रकार, आर्त्तनाद करते तथा बार-बार शोक करते हुए, अस्थिरमति हो, रावण कितनी ही बार मूर्च्छित होता रहा । दशकंठ के विवेकी मंत्री उसे सांत्वना देने तथा समझाने लगे । रावण बार-बार सँभलकर रोष तथा शोक से, भौंहें तानता, और चारों दिशाओं में क्रमशः अपनी क्रुद्ध दृष्टि केन्द्रित करता । जिस दिशा में उसकी क्रुद्ध दृष्टि पड़ जाती, उस दिशा में स्थित राक्षस भय से सिकुड़ जाते। निदान, राक्षसेश्वर ने अपने उग्र दाँतों को पीसते हुए, अपने दसों मुखों के नेत्रों से अग्नि-कणों की वर्षा करते हुए अपने मंत्रियों को देखकर कहा--'मैंने अविरत तप से ब्रह्मा को संतुष्ट किया और असंख्य शस्त्रास्त्रों को प्राप्त किया । मैंने युद्ध में न कभी अपजय प्राप्त की, न कभी अपने मन में शोक का ही अनुभव किया । शिवजी को संतुष्ट करके नील मेघ के सदृश जो कवच मैंने प्राप्त किया है, उसे धारण करके यदि मैं अपने रथ पर युद्ध के लिए जाऊँ, तो क्या, स्वर्ग के अधिपति भी मुझे जीत सकते हैं ? उस दिन मैं ब्रह्मा से जो धनुष-बाण प्राप्त किये थे, उन्हें शीघ्र ले आओ । आज मैं अपने पराक्रम का प्रदर्शन करते हुए शीघ्र शत्रुओं पर आक्रमण करूँगा और राम और लक्ष्मण तथा वानरों को जीतूँगा ।' इतना कहकर वह मन-ही-मन प्रलय-काल की अग्नि की भाँति जलते हुए ताल ठोंककर सभी दिशाओं को प्रतिध्वनित करते हुए विविध वाद्यों के निनाद के बीच युद्ध के लिए चल पड़ा । अत्यंत क्रोध से वह गरजकर कहने लगा--'राम ने सीता को प्राप्त करने के लिए मेरे भाइयों, पुत्रों, बंधुओं तथा सैनिकों का नाश किया है । इंद्रजीत ने माया सीता का भी वध किया । मेरे सभी उपाय निरर्थक हो गये । मैं अभी जाऊँगा और असली सीता का ही वध करके अपना प्रतिशोध लूँगा ।'

११०. रावण का सीता का वध करने के लिए जाना

इस प्रकार कहने के पश्चात् वह चंद्रहास को अपने हाथ में लेकर अपने पदाघात से पृथ्वी को कँपाते हुए अशोक-वन की ओर चल पड़ा । तब वृद्ध राक्षस-मंत्री आपस में परामर्श करने लगे--'क्या दशकंठ उन दाशरथियों को अपने पैने बाणों से जीत नहीं सकता । इसने लोक-पालकों की परवाह न करके युद्ध में उन्हें जीत लिया था; मरुतों को भयंकर युद्ध में परास्त किया; नौ ब्रह्माओं को जीत लिया; आठ वसुओं का दर्प चूर कर दिया; अपने प्रताप से नवग्रहों को दबा दिया; बारह आदित्यों को झुका दिया; ग्यारह रुद्रों को जीत लिया; गंधर्व, यक्ष, राक्षस, उरग, गरुड़ तथा भयंकर दानवों को भयभीत करके अपने वश में कर लिया । ऐसी दशा में इसके सामने मनुष्यों की शक्ति ही कितनी है ? क्रोध में आकर पतिव्रता स्त्री को मारना उचित नहीं है ।'

उसी समय रावण यम की भाँति लोक-भयंकर रूप धारण किये हुए जानकी का वध करने के उद्देश्य से अशोक-वन में पहुँच गया । उस पापात्मा की क्रुद्ध दृष्टि को देखते ही वह साध्वी भय से सिकुड़-सी गई । भयंकर ग्रह के समक्ष भयाक्रांत हो पड़ी हुई रोहिणी

की भाँति वह सीता रावण को देख सोचने लगी—'हाय भगवन्, इस दुरात्मा के हाथों से मुझे इस प्रकार मरना पड़ रहा है। कदाचित् इंद्रजीत की मृत्यु का समाचार जानकर मुझे मारने के लिए यह आ रहा है अथवा उन राम-लक्ष्मण को जीतकर मुझे मारने के उद्देश्य से यहाँ आ रहा है, मुझे जान नहीं पड़ता। क्या, इसी के हाथ मरना विधि ने मेरे भाग्य में लिखा है ? हाय, अब मैं क्या करूँ ? हाय भगवन्, तुमने अत्यंत पुण्यात्मा राम-लक्ष्मण को अनेक संकटों में डाल दिया है।' इस प्रकार, वह कमललोचनी विलाप करती हुई, अपने मन में रघुराम की मूर्त्ति प्रतिष्ठित करके दुःख-विवश होकर मूर्च्छित हो गई। पृथ्वी पर पड़ी हुई सीता को देख दशकंठ उनकी तरफ आगे बढ़ा। तब सभी राक्षस हाहाकार करते हुए चिल्लाने लगे—'यह भयंकर कृत्य अनुचित है ?' उसी समय महान् मतिमान् तथा नीतिवान् सुपार्श्व नामक राक्षस रावण के निकट पहुँचकर निर्भय हो रावण को उपदेश देने लगा कि हे दानवेंद्र, तुम्हारे पितामह पुलस्त्य हैं; तुम्हारे पिता धर्मात्मा, नीतिज्ञ तथा यशस्वी विश्रवसु हैं, तुम स्वयं वेद तथा आगमों के ज्ञाता हो, अपने महत्त्व का विचार किये बिना तुम ऐसे दुष्कर्म करने पर क्यों उतारू हुए हो ? उत्तम स्त्रियों का स्पर्श करके उनका वध करना महापाप है। इसलिए, तुम यह विचार छोड़ दो। तुम अपना सारा क्रोध कल युद्ध में राम-लक्ष्मण पर दिखाना। इस प्रकार कहकर सुपार्श्व ने रावण के हाथ से चंद्रहास छीन लिया और रावण को अपने साथ वहाँ से ले आया। वहाँ से लौटकर दशकंठ मन-ही-मन शोक से पीड़ित होते हुए अपने मंत्रियों तथा बंधुमित्रों को सभा-मंडप में बुलाया और अपने पुत्र के गुणों की बार-बार प्रशंसा करते हुए शोक प्रकट करने लगा।

१११. इन्द्रजीत की स्त्री सुलोचना का शोक

अंतःपुर की स्त्रियाँ इंद्रजीत की मृत्यु का समाचार सुनकर शोक प्रकट करने लगीं, तो उसे सुनकर आदिशेष की पुत्री सुलोचना को अपने प्राणनाथ की मृत्यु का समाचार ज्ञात हो गया। वह तुरंत शोक से अभिभूत होकर, मूर्च्छित गिर पड़ी। बड़ी देर तक सहेलियों की परिचर्या के उपरान्त, वह किंचित् सचेत हुई और अपने प्राणेश्वर का स्मरण करती हुई विविध रीतियों से यों प्रलाप करने लगी—"हाय प्राणेश्वर, हे प्राणनाथ, क्या, एक साधारण मनुष्य ने तुम्हें परास्त किया है ? हाय, वह पापी ब्रह्मा हमारे प्रेम को नहीं देख सका। इसीलिए उसने हम दोनों को अलग कर दिया है। जब कभी तुम बाहर जाते थे, तब मुझसे कहकर जाते थे। इस बार भी तुम मुझसे कहकर जाते, तो शत्रु के हाथों तुम्हारी ऐसी मृत्यु नहीं होती। मेरे पिता ने जब तुम्हारे साथ बड़ी प्रीति से मेरा विवाह किया था, तब उन्होंने तुमसे कहा था, 'यदि तुम विजय की आकांक्षा करते हो, तो जाने से पहले सभी कार्यों की सूचना अपनी स्त्री को देकर जाना। तब तुम ब्रह्मा तथा शिव के लिए भी अजेय बनोगे। नरों की तो बात ही क्या ?' उसके पश्चात् उन्होंने मुझे एक शिरोरत्न देकर कहा था, 'हे पुत्री, जब तुम्हारे पति शत्रुओं पर आक्रमण करने जायँ; तब तुम इस मणि से उनकी आरती उतारकर उन्हें भेजना। ऐसा करो, तो वे शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके अवश्य लौट आयेंगे।' उनके इन प्रिय वचनों को भूलकर

तुम शत्रुओं के दिव्य शरों से युद्ध-भूमि में निहत हुए ।" इस प्रकार, प्रलाप करती हुई उसने मन-ही-मन अपने प्राण, अपने प्राणेश्वर के चरणों पर समर्पित कर लिये । उसके पश्चात् अपने पुत्रों को देखकर उस सुंदरी ने कहा--'हे पुत्रो, शोक-रूपी गम्भीर समुद्र में डूबने के पश्चात् भी किस बात का भय हो सकता है ? विभीषण तो हैं ही । वे अवश्य तुम्हारी रक्षा करेंगे । अतः, तुम श्रेष्ठ गुणों से संपन्न होते हुए उन्नति करो । अब मेरा जीना उचित नहीं है । मैं अवश्य अपने प्राणेश्वर की सेवा में जाऊँगी ।'

इस विचार से मन-ही-मन हर्षित होती हुई, वह अपने मन की इच्छा को दृढ़ बनाती हुई, अत्यधिक क्लान्ति से चीत्कार करती हुई अपने पैरों को घसीटती हुई किसी प्रकार रावण के सभा-मण्डप में पहुँची । वहाँ पहुँचकर वह सुंदरी आँखों से अश्रुधारा बहाती हुई बड़ी नम्रता से अपने ससुर से कहने लगी--'हे दानवेन्द्र, पति से वंचित हुई पत्नी का यही धर्म है कि वह पति के साथ ही इस संसार को त्याग दे । अतः, मुझे अभी पति के साथ जाना चाहिए । आप अपने सैनिकों तथा मित्रों के द्वारा मेरे पति का शव मँगवा दीजिए ।'

उस साध्वी के वचन सुनकर राक्षसराज बड़ी देर तक चिंता में घुलते हुए चुप रहा, फिर कहने लगा--'हे साध्वी, तुम्हारे पति का शरीर युद्ध-क्षेत्र में शत्रुओं के बीच में पड़ा हुआ है । यदि मैं जाकर माँगू भी, तो क्या, वे मुझे वह शरीर देंगे ? अतः, यह कार्य मुझसे नहीं हो सकेगा । अब आगे जैसी तुम्हारी इच्छा हो, वैसे करो । मैं क्या कहूँ ? हे पुत्री, कोई ऐसा कार्य नहीं है, जिसका ज्ञान तुम्हें न हो । अपनी बुद्धि के अनुरूप मैंने तुम्हें यह परामर्श दिया है ।'

तब उस पद्मलोचनी ने उससे कहा--'हे दानवेन्द्र, आपने अपने हाथ से कैलास पर्वत को उठाकर शिवजी को भी भयभीत किया था । आप तीनों लोकों को जीते हुए महान् वीर हैं । देवेन्द्र को भी परास्त किये हुए महावीर के सम्मुख नर और वानरों की शक्ति कितनी है ? नरों तथा वानरों के मध्य पड़े हुए आपके वीर-पुत्र का शरीर लाने में आप अपनी असमर्थता प्रकट कर रहे हैं । कदाचित् यह कुसमय का ही प्रभाव है कि आप इस प्रकार कह रहे हैं । पति-हीना तरुणियों को यदि घर के बाहर कार्यवश जाना पड़े, तो धर्म यही बताता है कि वे अग्नि को साथ लेकर जायँ । आप मेरे निवेदन को बुरा मत मानिए और मुझे जाने की आज्ञा दीजिए । मैं स्वयं जाकर अपने पति का शरीर ले आऊँगी ।'

दशकंठ ने उस रमणी को जाने की अनुमति दी, तो उसने अपने श्वशुर को प्रणाम किया और आषाढ़ मास की बिजली के सदृश दीखनेवाली अपनी देह की कांति की किरणें भूमि तथा आकाश में व्याप्त करती हुई, निश्चल बुद्धि से वह सुंदरी आकाश-मार्ग से चल पड़ी । सभी वानर-वीर आश्चर्य-चकित हो उस कमललोचनी को देखकर सोचने लगे--'कदाचित्, देवताओं ने स्वर्ग-लोक से इस श्रेष्ठ सुंदरी को राम देव के पास भेजा होगा, अथवा अपने पुत्र की मृत्यु के दुःख से पीड़ित हो रावण ने अपना दर्प त्यागकर सीता को रथ पर बिठाकर भेज दिया होगा; अन्यथा किसी देवकांता को इतने वेग से यहाँ आने

की आवश्यकता ही क्या थी ?' अंगद, सुग्रीव, हनुमान् तथा युद्ध-भूमि में रहनेवाले सभी वानर-नेता राम-लक्ष्मण के निकट पहुँचकर आश्चर्य प्रकट करने लगे । उस समय परम पावन, पवन-पुत्र ने आकाश-मार्ग से आनेवाली उस रमणी को देखकर रामचंद्र से कहा--'हे देव, यह मानिनी, देवकांता नहीं है और राम की पत्नी भी नहीं है । यह कोई पति-हीना स्त्री है; उसका प्रत्यक्ष प्रमाण भी है । वहाँ उस रमणी के रथ पर देखिए, भस्म से आवृत अग्नि दिखाई दे रही है ।'

११२. सुलोचना का राम की स्तुति करना

इतने में वह रमणी शीघ्रगति से उस स्थान पर पहुँचकर रथ से उतर आई । क्षीण कटि से विलसित वह रमणी ऐसी दीखती थी, मानों स्वर्ण-प्रतिमा हो या नवजात मोती हो, अथवा नव-यौवना राजहंसिनी हो । वह अपनी आँखों से अश्रु बहाती हुई, चकराती हुई, चीत्कार करती हुई, मंद-गति से राघव के सम्मुख पहुँच गई और उन्हें साष्टांग दण्ड-प्रणाम करके, हाथ जोड़कर कहने लगी--'हे रवि-कुलांबुधि सोम, हे रामाभिराम, हे विमल गुणधाम, हे शत्रुविनाशी, हे मेघश्याम, हे कमलनेत्र, हे विमल चरित्रवान्, हे हिमगिरि-सम धीर, हे ललित-मधुर-वचन-कुशल, हे लावण्य-निधि, हे जन-नायक, आपके चरणों की सेवा से मेरे सभी पाप दूर हो गये ।'

इस प्रकार, राम के समक्ष स्तुति करती हुई, विनय के साथ वह खड़ी हुई । तब राम की आज्ञा से सूर्यपुत्र ने कहा--'हे सुंदरी, तुम कौन हो ? तुम्हारे यहाँ आने का क्या कारण है ? तुम्हारा नाम क्या है ? तुम्हारे पति कौन हैं ? तुम किसकी पुत्री हो ? तुम अपना वृत्तांत सुनाओ।' तब वह आँसू बहाती हुई कहने लगी--'हे भानु-पुत्र, मेरे पिता आदिशेष हैं; मेरा नाम सुलोचना है; मेरे पति वह पुण्यवान्, बहुभोग-भाग्य-संपन्न, बाहुबली, महा तेजस्वी, युद्ध में भयंकर, इन्द्र-विजयी, महान् शूर, दशकंठ तथा मंदोदरी के पुत्र मेघनाद हैं ।'

इतना कहने के पश्चात् उस रमणी ने राम को देखकर शोकाभिभूत होकर कहा--'हे राघवेन्द्र, आपने युद्ध-भूमि में ऐसे महान् शूर का वध किया है । कृपालु होते हुए भी आपने कैसे उनका संहार किया ? हे सूर्यकुलतिलक, ऐसा महान् विक्रमी अब आगे कहीं जन्म लेगा ? आप जानते ही हैं कि पति की वियोगाग्नि से सती स्त्री अत्यधिक परितप्त होती है । मैं अपने पति को खोकर वैधव्य-दुःख का कैसे सहन कर सकूँगी ? हे शरणार्थी-त्राण, हे दयामय, हे परिपूर्णहृदय, हे शुभ-गुण-संपन्न, मैं आपकी शरण में आई हूँ । शरणागत की रक्षा करने की आपकी टेक है । मेरे पति को प्राण-दान देकर आप अपने प्रण की रक्षा कीजिए । पति-भिक्षा देकर मुझे जीवन प्रदान कीजिए ।'

सुलोचना की कातर प्रार्थना सुनकर, दया-मूर्त्ति राम का हृदय पिघल गया और वे उस रमणी के पति को पुनर्जीवित करने की बात सोचने लगे । यह समझकर हनुमान् ने राम से निवेदन किया—'हे राघव, आप तो सर्वज्ञ हैं । उस ब्रह्मा का वचन टाल देना आपको उचित नहीं है । हे राजन्, आपको ब्रह्मा की मर्यादा रखनी चाहिए ।' तब राघव ने पवन-पुत्र की बातों पर विचार करके कहा--'हे कमलाक्षी, तुम अगले जन्म में अपने

पति के साथ इस पृथ्वी पर जन्म लेकर अगणित संपत्ति के साथ चिर काल तक सुख-भोग करोगी और उसके पश्चात् तुम दोनों वैकुण्ठ में अपना इच्छित सुख प्राप्त करोगे ।'

राम के वचन सुनकर वह स्त्री हर्षित हुई और विनयपूर्वक उस दयामय राम की स्तुति यों करने लगी--'हे दया-समुद्र, हे अमल-गुण-धीर, हे साधुजन-आश्रित, हे सेतु-बंधक, आप कृपा करके मेरे पति का शव मँगा दीजिए । मुझे अब शीघ्र नगर को लौट जाना चाहिए ।' तब सुग्रीव ने उस स्त्री से कहा--'हे कमलनयनी, यदि तुम पतिव्रता हो, तो बिना विलंब जाकर अपने प्रिय पति से अपना सारा वृत्तांत कहो ।' यह सुनकर वह साध्वी शीघ्र युद्ध-क्षेत्र में पहुँच गई । वहाँ उस चंचलाक्षी ने अपने पति के कटे हुए सिर को देखकर कई प्रकार से रुदन करने लगी । फिर, अपने पति के शरीर के पास पहुँचते ही उमड़ते हुए दुःख से वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ी । कुछ समय के उपरान्त वह सचेत हुई और अपने प्राणेश्वर के शरीर पर गिरकर ऊँचे स्वर में हाहाकार करती हुई विलाप करने लगी । फिर वह धैर्य धारण किये हुए स्थिर हो खड़ी हुई और सत्य की प्रभा से दीप्त होती हुई यों बोली--'यदि मैंने मन-वचन-कर्म से पति की भक्ति की हो, यदि मैंने धर्माचरण में पति को ही दैव मानकर पातिव्रत्य धर्म का पालन किया हो, तो मेरे पति पुनर्जीवित होकर मुझसे संभाषण करें ।'

सुलोचना ने आत्मविश्वास के साथ जब ऐसे वचन कहे, तो दशकंठ के पुत्र ने आँखें खोलकर कहा--'हे रमणी, मेरा वध करानेवाले तुम्हारे पिता ही तो हैं ? मुझे जीतने की शक्ति दूसरों में कहाँ है ? तुम को दुःखी होने की कोई आवश्यकता नहीं है । अपने ऋणानुबंध के अनुसार ही पति अपने पत्नी के साथ रहता है । संयोग तथा वियोग, दोनों, जीवों के लिए ब्रह्मा के द्वारा विधान किये जाते हैं । समय की गति प्रबल है, इसलिए मेरी मृत्यु हुई है । अब तुम जाओ ।' इतना कहकर उसने अपनी आँखें बंद कर लीं । सुलोचना मन-ही-मन अत्यंत दुःखी हो, वहाँ से चलकर राम के पास आई और उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया और बड़ी प्रसन्नता से उनकी प्रशंसा करने लगी । तब रघुराम ने अंगद को बुलाकर कहा--'इस रमणी को उसके पति का शरीर दिला दो ।'

अंगद ने राम की आज्ञा मानकर सुलोचना को उसके पति का शरीर दिला दिया । सुलोचना उस शव को लिये हुए बड़ी भक्ति से राम की आज्ञा प्राप्त कर वहाँ से शीघ्र लंका-नगर को रवाना हुई । वह सीधे अपने अंतःपुर में नहीं गई, किन्तु अपने पति के शरीर को एक योग्य स्थान में रखकर, उसकी रक्षा के लिए सैनिकों को नियुक्त करके, उसके पश्चात् अंतःपुर में गई । वह बहुत समय तक अत्यधिक चिंता में निमग्न रही और उसके पश्चात् अपने प्रिय पुत्रों को पास बुलाकर आँखों से अश्रुधारा बहाती हुई, उनके शिरों को सूँघा, गालों का बड़े स्नेह से स्पर्श किया और फिर उन्हें हृदय से लगाकर कहा--'हे पुत्रो, तुम्हारे मुँह देखते रहने का सौभाग्य मुझे भगवान् ने नहीं दिया है । अब इस पृथ्वी पर जीना मेरा धर्म नहीं है, इसलिए अवश्य मैं सहगमन करूँगी । अब तुम्हारा यहाँ रहना भी

उचित नहीं है । इसलिए तुम पाताल-लोक में चले जाओ । अपने नाना आदिशेष के घर में तुम विना संकोच के स्थिरबुद्धि से युक्त हो रहो ।' यों कहकर सुलोचना ने उन्हें शीघ्र वहाँ से भेज दिया ।

उसके पश्चात् वह थर-थर काँपती हुई दशकंठ के सम्मुख गई और मुरझाये हुए अपना मुख झुकाये आँसू बहाती हुई, गद्गद कंठ से, हाथ जोड़कर भक्ति से प्रणाम किया और अपने राम के पास जाने तथा शव लाने का वृत्तांत उसे सुनाया और अंत में कहा--'राम की दयालुता, लक्ष्मण का अतिशय स्नेह, विभीषण की सद्हृदयता तथा वानर-वीरों का पराक्रम आदि अद्भुत हैं ।' यह सुनते ही रावण का मुख कांतिहीन हो गया । उस रमणी के साहस, विवेक, न्याय, विचक्षण महिमा, पति-भक्ति तथा (शव के लाने में) उसकी कुशलता आदि के संबंध में सोचकर उससे कुछ कहते नहीं बना । प्रत्युत्तर देने में हिचकनेवाले अपने श्वशुर को देखकर सुलोचना ने कहा--'हे असुराधीश, विधि-विधान को लेकर अब मन-ही-मन चिंतित क्यों होते हैं ? मैं अब एकनिष्ठ होकर सती हो जाऊँगी । आप मुझे जाने की अनुमति दीजिए ।'

तब व्याकुल चित्त से रावण ने अपनी पुत्र-वधू को देखा, और ऐसी साहसवती तथा बुद्धिमती नारी को सहगमन करने से रोकना असंभव समझकर कहने लगा--'हे कमलाक्षी, अब मैं तुम से क्या कह सकता हूँ ? तुम्हारे मन की इच्छा क्या है, कौन जाने ? अपने प्रिय ज्येष्ठ पुत्र का वध कराकर, मैं भय तथा शोक के समुद्र में डूबा हुआ हूँ । मुझे कुछ सूझता नहीं है। अतः, तुम जैसा चाहती हो, वैसा करो ।"

११३. सुलोचना का सहगमन

तब उस चंचलाक्षी ने 'अहोभाग्य' कहकर मन-ही-मन हर्षित होती हुई रावण को प्रणाम किया और वहाँ से अपने अंतःपुर में पहुँच गई । स्नान से निवृत्त होकर उसने पीतांबर तथा रत्नाभरण धारण किये, ललाट पर चंदन का लेप किया और पुष्प-मालाएँ पहनीं । उसके पश्चात् सहेलियों तथा दशकंठ की आज्ञा से आये हुए बंधुमित्रों के साथ वह सुंदरी अंतःपुर से बाहर चली । उस समय मृदंग, निसान, पटह, भेरी, शंख, काहल आदि वाद्यों की ध्वनि से दसों दिशाएँ प्रतिध्वनित होने लगीं । वहाँ से वह शीघ्र इन्द्रजीत के शरीर के पास पहुँची और सुंदर वस्त्र तथा आभूषणों से उस मृत शरीर का अलंकरण किया । तत्पश्चात् उसने उस देह को अरथी पर रखवाया। तुरही आदि श्रेष्ठ वाद्यों की ध्वनि के बीच त्रेताग्नियों को लिये हुए स्वयं अरथी के आगे-आगे चली । उसके पीछे-पीछे दैत्य-समूह चला । इस प्रकार, नगर की उत्तर दिशा में पहुँचकर वहाँ उसने चिता सजाई । फिर, अपने साथ आई हुई सौभाग्यवती स्त्रियों को स्वर्णाभरण, वस्त्र आदि विविध दान दिये और निश्चल भक्ति के साथ चिता में प्रवेश करके अपने प्राणेश्वर का शरीर अपने हृदय से लगाकर बैठ गई । जब अग्नि प्रज्वलित हुई, तब उसने अपना शरीर अपने पति को समर्पित किया । देवता उसकी पति-भक्ति की प्रशंसा करने लगे । उस समय सब के समक्ष वह अपने पति के साथ देवताओं के विमान पर बैठकर, देव-मंडली के बीच देदीप्यमान होती हुई पुण्य-लोक में पहुँची और वहाँ अपने पति के संग रहने लगी ।

११४. रावण का अपनी प्रधान सेना को युद्ध के लिए भेजना

रावण अत्यधिक क्रोध तथा शोक से जलते हुए, बार-बार उमड़नेवाले पुत्र-शोक में घुलते हुए अपने सभा-मंडप में पहुँचा। क्रोधोद्दीप्त सिंह की भाँति उष्ण निःश्वासों को छोड़ते हुए, बल, साहस तथा युद्ध-कुशलता से संपन्न अपने सैनिकों को देखकर उसने आदेश दिया कि तुम शीघ्र जाकर वानरों तथा राम-लक्ष्मण को जीतकर आओ।

रावण का आदेश शिरोधार्य करके राक्षस-सैनिकों ने बड़े उत्साह के साथ, रथ, गज, तुरग, पदाति आदि चतुरंगिणी सेना के साथ युद्ध के लिए आवश्यक शस्त्रास्त्रों का संगठन किया। फिर, वे वज्र-कवच तथा वज्र-सम आयुधों से सज्जित हो भीषण गति से चल पड़े। उस समय उनके गज-समूह के चिंघाड़ों तथा घंटिकाओं एवं अश्वों की हिनहिनाहटों का भीषण रव; दुंदुभि, शंख, पटह, डमरू, पणव आदि वाद्यों का तुमुल नाद; सेना का कलकल, ध्वजाओं की फड़फड़ाहट, रथ के पहियों की घड़घड़ाहट तथा धनुष का टंकार आदि विविध ध्वनियों से मथित समुद्र की भाँति दिशाएँ गूँजने लगीं। सेना के चलने से अत्यधिक धूलि ऐसे उड़ने लगी, मानों वह समुद्र से युद्ध करने जा रही हो। सभी राक्षस ऐसे गर्जन करने लगे कि उनके गर्जनों की ध्वनि आकाश का स्पर्श करने लगी और सारी पृथ्वी काँपने लगी। वे अपनी गर्वोक्तियों, धमकियों, हुंकारों तथा चिल्लाहटों की ध्वनियों के साथ, अपने मणिमय कुंडलों, हारों, कंकणों तथा किरीटों की दीप्ति को विकीर्ण करते हुए लंका से बाहर निकले, मानों महान् शक्ति-संपन्न कपि-समुद्र को देखकर, बड़े उत्साह से लंका-समुद्र से निकलनेवाला वडवाग्नि का समूह हो।

तब कपि-वीरों ने बड़े उत्साह से गर्जन करते हुए, अपने पदाघातों से दिग्गजों को बैठ जाने के लिए विवश करते हुए, आकाश की ओर उछलते हुए तथा ताल ठोंककर ब्रह्माण्ड को भी विदीर्ण करते हुए, काजल के पर्वतों के समान दीखनेवाले राक्षसों को देखकर करोड़ों वृक्षों, पर्वतों तथा बड़ी-बड़ी शिलाओं को लिये हुए, उन पर आक्रमण किया। इतने में उदयाद्रि पर सूर्य भगवान् चढ़ आये, मानों वे रघुराम की धनुर्विद्या की निपुणता देखने की उत्कट अभिलाषा लिये हुए आये हों। राक्षस तथा वानर-सेनाएँ ऐसी भयंकर रीति से परस्पर भिड़ गईं, मानों एक समुद्र दूसरे समुद्र से भिड़ गया हो। कपियों की विशाल सेना को देखकर राक्षस अपने रथ, गज तथा अश्वों को उनकी ओर बढ़ाते हुए वानरों पर टूट पड़े और उन्हें अनेक रीतियों से दुःख पहुँचाने लगे। किन्तु, वानरों ने अत्यंत साहस के साथ पर्वतों को उठाकर उन पर फेंका। उनके प्रहार से कई राक्षस-सैनिक गिर पड़े। राक्षस, करवालों से वानरों की पूँछों को काट डालते थे, तो वानर अपने बाहु-दण्डों से राक्षसों के गदा-दण्डों को तोड़ देते थे। राक्षस, वानरों पर परशुओं, परिघों तथा खड्गों को फेंकते थे, तो वानर पर्वतों, वृक्षों तथा पर्वत-शृंगों को फेंककर उन्हें नष्ट कर देते थे। युद्ध-भूमि में रक्त की धाराएँ बहने लगीं। वानर अपनी पूँछों से पर्वतों को उठाकर फेंकते थे, तो राक्षस उनके नीचे चूर-चूर हो जाते थे और फिर चक्रों तथा गदाओं से वानरों पर प्रहार करते थे। इस प्रकार, वे समान पराक्रम दिखाते हुए परस्पर युद्ध करते थे। राक्षस जब गजों, अश्वों तथा रथों को कपियों पर चलाकर उन्हें

व्याकुल करने लगे, तब सुग्रीव, अंगद, पवनपुत्र तथा नील आदि वानर-वीर अत्यंत क्रोध से उनपर पर्वतों तथा वृक्षों की वर्षा करने लगे। इससे असंख्य रथ खंड-खंड होकर गिर गये; हाथी झुंड-के-झुंड गिरकर मर गये और अश्व तथा पदचर सेना पृथ्वी पर लोटने लगी। जब रथारूढ़ कुछ राक्षस क्रुद्ध हो पृथ्वी को कँपाते हुए, अपने मनोरथों की भाँति, अपने रथों को बड़े वेग से वानरों पर चलाया, तब वानरों ने उन रथों के जुए पकड़कर सहज ही उन्हें पृथ्वी पर पटक दिया। जब अश्वारोही राक्षसों ने कपियों पर अपने अश्व चलाये, तब कपि उनके सम्मुख धैर्य के साथ खड़े होकर एक अश्व को उठाकर उससे दूसरे अश्व पर प्रहार करने लगे। जब गजारोही सैनिक वानरों पर गजों को चलाते, तब वानर गजों पर आक्रमण करके एक गज से दूसरे गज को टकरा देते। फिर, वे गज-सेना पर टूट पड़ते और गजों पर आरूढ़ राक्षसों को नीचे खींच लेते या उन पर पदाघात करके गिरा देते या उन्हें नीचे गिराकर अपने पैरों से कुचल देते या उन्हें ऊपर उठाकर पृथ्वी पर पटक देते और विविध रीतियों से उन्हें छिन्न-भिन्न कर देते थे। इस समय अश्वों के खुरों से उठी हुई धूलि के आकाश में व्याप्त होने से युद्ध-भूमि में अंधकार-सा छा गया। उस अंधकार में करवालों की दीप्ति उन्हें मार्ग दिखाने लगी, तो उस दीप्ति की सहायता से वानर तथा राक्षस परस्पर घोर युद्ध करने लगे। इस युद्ध के कारण बहनेवाले रक्त की धारा-रूपी किरणें, धूलि-रूपी अंधकार को दूर करने लगीं। घोर युद्ध में हाथी तथा रथ-रूपी तटों के बीच अश्व-रूपी मगर, ध्वजाओं, पेड़ों तथा सैनिकों-रूपी तटवर्त्ती वृक्षों, खड्ग-रूपी मछलियों, हाथी की सूँड़-रूपी सर्पों, ढाल-रूपी कच्छपों, चूर-चूर बने हुए असंख्य रत्नाभूषणों के कण-रूपी रेत, केशजाल-रूपी शैवाल तथा चामर-रूपी फेन से युक्त रक्त की नदियाँ बहने लगीं। उन नदियों को शीघ्र पार करते हुए वानर तथा राक्षस परस्पर भिड़ जाते। इतने में वानर राक्षसों पर उद्धत गति से टूट पड़ते, उनकी रीढ़ों को तोड़ देते, अपनी मुष्टियों तथा कुहनियों से प्रहार करके, उन्हें नीचे गिरा देते, सिरों को कुचल देते, उनके पेट चीर देते, और इनसे भी संतुष्ट न होकर उन्हें दाँतों से काटते, अंगों को तोड़ते, एँड़ी पकड़कर उन्हें घुमाकर पृथ्वी पर पटक देते, उनके केश पकड़कर क्रूर गति से खींचते, दोनों हाथों से दो राक्षसों को पकड़कर उन्हें एक दूसरे से टकराकर चूर-चूर कर देते, उन्हें गिराकर उनके वक्षों पर ऐसा प्रहार करते कि उनकी छातियाँ फट जातीं उनसे रक्त बह निकलता और अपने नाखूनों तथा दाँतों से उनकी नाक, कान, मुख, ललाट आदि चीर डालते। कभी एक सौ वानर एक ही दानव पर टूट पड़ते और कभी एक ही वानर एक सौ दानवों का नाश कर देता। इस प्रकार, वानरों ने बड़ी तत्परता से लड़ते हुए दानवों को तितर-बितर कर दिया।

तब राक्षस-सैनिक बड़े रोष के साथ, अपने दहाड़, भेरी, मृदंग आदि युद्ध-वाद्यों के निनाद से पृथ्वी को कँपाते तथा दिशाओं को विदीर्ण करते हुए, वानर-सेना पर टूट पड़े। यह देखकर इन्द्र आदि दिक्पाल भयभीत हो उठे। विकृत सिर विकृत प्रकोष्ठ, विकृत ओष्ठ, विकृत नख, विकृत मुख, विकृत गात्र, विकृत नेत्र, विकृत हास, विकृत नाक, विकृत वक्ष, विकृत वर्ण, विकृत कर, विकृत पाद तथा विकृत नादवाले राक्षस-वीर उमड़-घुमड़कर अलग-अलग आनेवाले

प्रलय-काल के बादलों की पंक्ति के समान परिघ, गदा, चक्र, परशु, तोमर, त्रिशूल, खड्ग, मुद्गर, करवाल, ढाल, नागमुख, शिलीमुख, धनुष, मूसल आदि समस्त आयुधों से सज्जित हो वानर-सेना पर भयंकर गति से टूट पड़े और उन्हें काटते, पीटते, मारते, उछालते तथा विविध रीतियों से उनपर प्रहार करते हुए उनका संहार करने लगे। इन क्रूर प्रहारों से भीत होकर वानर अपने हाथ के पर्वतों तथा वृक्षों को नीचे गिराकर विवश हो सोचने लगे, भला, हमें युद्ध करने की आवश्यकता ही क्या है ? हमें राक्षसों से शत्रुता ही क्या है ? हमें न सूर्यवंश राम ही चाहिए, न सूर्यपुत्र सुग्रीव। जंगलों में कच्चे फल और पीले पत्तों को खाते हुए सुख से जीवन-यापन करना छोड़कर, यहाँ इन राक्षसों के हाथों में व्यर्थ ही हम क्यों मरें ? चलो, हम यहाँ से भाग चलें। यों सोचकर वानर-वीर धैर्य खोकर सेतु की दिशा में भागने लगे। राक्षस-सेना उनका पीछा करके उन्हें खदेड़ने लगी।

११५. वानर-सेना को हनुमान् आदि का प्रोत्साहन देना

हनुमान्, नील तथा अंगद ने वानरों को इस प्रकार भागते हुए देखा, तो वे शीघ्र सेतु के उस पार गये और वानरों को सेतु के पार जाने से रोककर उन्हें लौटाया। तब सभी वानर भय से पीड़ित हो राम के पीछे जाकर शरण लेने लगे। राम ने वानरों की यह दीनता देखी, तो क्रोध से धनुष हाथ में लेकर उसका टंकार करते हुए ऐसा सिंहनाद किया कि राक्षसों के हृदय भय से काँप उठे। तदनंतर क्रोधोन्मत्त हो अपना हस्त-कौशल दिखाते हुए, निशाचरों पर तीव्र बाणों की ऐसी वर्षा करने लगे कि उन बाणों की अधिकता के कारण स्वयं राम भी युद्ध-भूमि में दीखते नहीं थे। राम के चलाये हुए असंख्य शरों के प्रहार से राक्षसों की कमरें टूट गईं, जाँघें कट गईं, शरीर के खंड-खंड हो गये, वक्षःस्थल विदीर्ण हो गये, मुख विकृत हो गये, पैर कट गये, हाथ टूट गये, कंठ कट गये और सिर फट गये। कवचों को पार करके बाणों के शरीर में चुभ जाने से रक्त की नदियाँ बहने लगीं। राम के बाणों के प्रहार से कुछ राक्षस मरते थे, कुछ भयभीत होते थे, कुछ मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ते थे, कुछ व्याकुल हो जाते थे तथा कुछ भय से मुँह बाये खड़े रह जाते थे। गज, अश्व तथा रथ पर आरूढ राक्षस संभ्रमित रह जाते थे। त्रस्त राक्षस चिल्लाने लगे—'वह देखो, राघव बाण चला रहे हैं। लो, वे हमारे निकट पहुँच ही गये।' ऐसा आर्त्तनाद करते हुए वे बड़े वेग से युद्ध-क्षेत्र से भागने लगे। इतने में राघव ने अत्यधिक रोष से उन पर सम्मोहन-अस्त्र चलाया। उस अस्त्र के लगने से राक्षस अपने-आपको भूल-से गये और यह न जानकर कि कौन राक्षस है, और कौन वानर, एक राक्षस दूसरे राक्षस पर ही आक्रमण करने लगा। उस गांधर्व शर का ऐसा प्रभाव था कि किसी-किसी राक्षस को एक ही राम दीखता था, किसी को एक राम के स्थान में दस राम दीखते थे, किसी को सौ राम दीखते थे, किसी को सहस्र राम दीखते थे, किसी को एक लाख राम दीखते थे, किसी को करोड़ राम दीखते थे, किसी को सौ करोड़ राम दीखते थे; इस प्रकार उनको सारा युद्ध-क्षेत्र ही राममय दीखने लगा। अविराम बाण चलाते रहने से राम का स्वर्ण-धनुष वृत्ताकार में दीखने लगा। उसे देखकर राक्षस

मन-ही-मन सोचने लगे कि यह कदाचित् वही चक्र है, जिसे विष्णु ने भयंकर युद्ध करते हुए 'नमुचि' पर चलाया था, अथवा किरण-समूह से घिरा हुआ सूर्यबिम्ब है । यों सोचते हुए, राम के शर-समूह के प्रहार का सहन न कर सकने के कारण वे प्राण लेकर भागने लगे । उस समय राक्षस-सेना में क्षण-भर की रक्त-वर्षा में भीगे हुए, चौदह सहस्र अश्व, अठारह सहस्र हाथी, एक लाख रथ, दो लाख वीर राक्षस नष्ट हुए । शर-रूपी अर, धनुष-रूपी नेमि (पहिये का घेरा), टंकार-रूपी रव, किरण-रूपी स्फुलिंगों से युक्त राम का धनुष-रूपी चक्र काल-चक्र की भाँति विलसित होते देखकर हतशेष दैत्य अत्यंत त्रस्त हो उस घोर युद्ध-भूमि को छोड़कर भागे और लंका में जा पहुँचे । यह देखकर वानर उत्साह से सिंह-नाद करने लगे । प्रलय-काल के यम की भयंकर नाश-लीला की भाँति उस समय का युद्ध-क्षेत्र दीखने लगा । जब रघुवीर रावण की प्रधान सेना के दस सहस्र हाथी, बीस सहस्र अश्व, एक सौ रथ तथा एक पद्म सेना का संहार कर देते थे, तब एक धड़ उठकर नाचने लगता था; ऐसे करोड़ धड़ जब नाचते थे, तब एक कटा हुआ सिर आकाश की ओर उछलकर एक भयंकर चीत्कार करता था; ऐसे एक करोड़ सिर जब उछलते थे, तब राम के धनुष की एक घंटी बजती थी । इस भयंकर युद्ध में राम के धनुष में लगी हुई ऐसी चौदह घंटियाँ अविराम बजती रहीं । रघुवीर की ऐसी धनुर्विद्या का कल्पनातीत कौशल लगातार सत्रह घड़ियों तक चलते देखकर किन्नर, गंधर्व, खेचर, यक्ष, उरग तथा अमर उनकी स्तुति करने लगे ।

उसके उपरान्त, रामचंद्र ने शूर-पुंगव सुग्रीव को देखकर कहा—'यह सम्मोहनास्त्र जगद्भयंकर है । इसका प्रयोग करने तथा इसका उपसंहार करने की शक्ति या तो मुझ में है, या ईश्वर में; अन्यों में ऐसी क्षमता नहीं है । कौशिक ने जिस महान् शस्त्र को मुझे प्रदान किया था, उसकी महिमा से स्वयं कौशिक भी अनभिज्ञ थे ।' तब विभीषण ने राम को देखकर विनय तथा संभ्रम से कहा—'हे देव, रावण की यह सेना देवेन्द्र आदि देवताओं के लिए भी अजेय थी । यही रावण की मूल-सेना थी, आज यह भी मिट्टी में मिल गई । अब रावण का अंत निश्चित है । आप तो स्वयं अपने महत्त्व का ज्ञान नहीं रखते । सच तो यह है कि कोई भी आपकी समानता नहीं कर सकता ।' विभीषण के वचन सुनकर रामचंद्र प्रसन्न हुए ।

११६· राक्षस-स्त्रियों का रावण की निन्दा करना

लंका में दानव-स्त्रियों ने झुंडों में एकत्र होकर उमड़ते हुए शोक से पीड़ित होती हुई कहने लगीं—"हाय, कैसा दुर्भाग्य है कि निंदनीय चरित्र, भाग्यहीन मुखड़ा, पलित केशों से युक्त सिर, विशाल उदर, विकृत वेश, विकृत यौवन, उग्र केश तथा उग्र दंष्ट्र-वाली शूर्पणखा सकल गुणोज्वल, सत्त्व-संपन्न, सुकुमार, तेजस्वी, सुमुख तथा कामदेव के समान सुंदर रामचंद्र पर आसक्त हुई । कहाँ राजा भोज, और कहाँ गंगू तेली । इस लंका के सभी राक्षसों पर मृत्यु की छाया पड़ी हुई थी, इसी कारण से उस राक्षसी ने दशकंठ तथा उस सूर्यवंशज में शत्रुता उत्पन्न कर दी । उस शूर्पणखा की बातें सुनकर उचित तथा अनुचित का विचार किये विना, शत्रुत्व ठानकर, दशकंठ अपना ही नाश कराने के लिए नहीं,

अपितु राक्षस-वंश का भी सर्वनाश करने के लिए उस राम की पत्नी को ले आया। इतना करने पर भी क्या, सीता उसे मिल गई ? ऐसा दुस्साहस उसने किया ही क्यों ? राम ने तो एक ही बाण से मारीच का वध कर डाला तथा दण्डक-वन में विराध पर क्रुद्ध होकर उसका संहार किया। इन बातों को जानकर भी मदांध हो रावण ने उनको नहीं पहचाना। जनस्थान में राम ने अपने अनल के समान शरों से चौदह सहस्र राक्षसों का संहार किया और अपने भयंकर बाणों से, त्रिशिर, दूषण तथा खर को सहज ही मार डाला। दशकंठ ने उसका भी विचार नहीं किया। क्रौंचवन में दाशरथियों ने अपने अनुपम शौर्य से रुधिराशन को, क्रूर विक्रम को तथा योजनबाहु कबंध को मार डाला। ऐसे विक्रमी राक्षसों के (वध का) वृत्तांत जानकर भी रावण ने राम पर विजय प्राप्त करने की ठानी। क्या, यह उसके लिए संभव है ? क्या हमारे रावण में इतना साहस है, कि वह जगदीश्वर राम से युद्ध कर सके ? राम ने तो एक ही बाण से सहज ही वालि का वध करके सूर्य-पुत्र को किष्किंधा का राजा बना दिया। सहस्रों हाथी, लाखों अश्व, करोड़ों रथ और असंख्य पदचर सेना को राम ने एक क्षण-मात्र में ही युद्ध में मार डाला। उन्होंने अकेले महान् पराक्रमी कुंभकर्ण का संहार किया। ऐसी वीरता देखकर भी रावण राम की शक्ति पहचान नहीं सका। महाशूर अतिकाय तथा इन्द्रजीत को अकेले लक्ष्मण ने युद्ध में समाप्त कर दिया। इतना सब होने के उपरान्त भी रावण राम की शरण में नहीं जाना चाहता। आज लंका के घर-घर में विलाप सुनाई पड़ रहा है। सभी लोग 'युद्ध में हमारे बंधु मरे, हमारे पुत्र मरे, हमारे पति मरे, हमारे सहोदर मरे', इस प्रकार का आर्त्तनाद करते हुए शोक-समुद्र में डूब रहे हैं। जिस दिन से दुर्मति तथा नीति-बाह्य हो रावण अपनी माया से सीता को इस नगर में ले आया, उसी दिन से दुःशकुन दिखाई पड़ रहे हैं। अब शीघ्र ही दशरथ के पुत्र के हाथों में दशकंठ का अंत होना निश्चित ही है। हाय, नीतिज्ञ बिभीषण ने विविध रीतियों से इसको धर्म-मार्ग समझाया था। यदि यह उनके हित वचनों का आदर करता, तो क्या लंका की ऐसी दुर्दशा होती ? या तो कुल-पर्वतों के पंखों को अपने वज्राघात से काटनेवाले पुरंदर ने या मधु-कैटभ आदि राक्षसों का संहार करनेवाले विष्णु ने या क्रूर यम ने या प्रलय-काल के रुद्र ने इस पृथ्वी पर राम के रूप में जन्म लिया है और राक्षसों का वध करने लगा है। जिस समय दशरथ-पुत्र राम, अपने शौर्य का प्रदर्शन करते हुए, युद्ध में दशकंठ का वध करने लगेंगे, उस समय, क्या, महान् देवता या गंधर्व या मुनि या रावण को वर प्रदान करनेवाले ब्रह्मा या शिव या राक्षस उन्हें राम के हाथों से बचा सकेंगे ? वर देते समय ब्रह्मा ने यह वर नहीं दिया था कि यह नर के हाथों से नहीं मरेगा। इसलिए यह स्पष्ट हो रहा है कि दशकंधर अपने बंधुओं के साथ राम के हाथों से मरेगा। यह सत्य है; क्योंकि जब इस रावण ने इन्द्र आदि देवताओं को बड़ी क्रूरता से दुःख पहुँचाया, तब समस्त देवताओं ने ब्रह्मा से अभय-दान की प्रार्थना की। तब चतुर्मुख ने उन्हें देखकर कहा था—'भविष्य में तुम्हें किसी प्रकार का दुःख नहीं होगा। अब तुम निश्चित रहो।' इसके पश्चात् ब्रह्मा देवताओं को साथ लेकर महादेव के पास गये और उनसे प्रार्थना की। तब प्रसन्न होकर शिव ने ब्रह्मा को

करुणापूर्ण दृष्टि से देखकर कहा—'देवों की रक्षा करने तथा समस्त राक्षसों का वध करने के लिए पृथ्वी पर इंदिरा का जन्म होगा। उस सती के पति बनकर विपत्तियों से प्रजा की सतत रक्षा करने तथा दुर्जन राक्षसों का संहार करने के लिए विष्णु स्वयं पृथ्वी पर अवतार लेंगे। राम ही वह विष्णु हैं और भूमि-सुता ही वह इंदिरा है।' शिव का वचन कभी नहीं टलेगा। अतः, समझ लो कि हमें अब अघट दुख प्राप्त होनेवाला है। अब हमारा रक्षक कौन है ? हमारा रावण अब बचेगा नहीं। अब हमारे संतप्त होने से कोई प्रयोजन नहीं है। हमारे एकमात्र त्राता विभीषण भी रामचंद्र की शरण में गये हुए हैं।"

११७. रावण का द्वितीय युद्ध

इस प्रकार, विविध रीतियों से असुर-स्त्रियों के दीन विलाप सुनकर रावण थोड़ी देर तक चिंता की अग्नि में परितप्त होते हुए मौन हो रहा। फिर, प्रचण्ड काल-नाग के फुफकार की भाँति दीर्घ निःश्वास छोड़कर ओठ चबाते तथा आँखों से अग्नि-कणों की वर्षा करते हुए अत्यंत क्रोध से युद्धोन्मत्त तथा विरूपाक्ष नामक राक्षसों को देखकर बोला—'तुम शीघ्र तुरहियों की भयंकर ध्वनि करते हुए सिंह-गर्जनों के साथ युद्ध के लिए निकल पड़ो।' उसकी बातें सुनकर भी भयाक्रान्त निशाचरों को मौन देखकर, उसने फिर कहा—'शीघ्र ही युद्ध की तैयारी करो। इस प्रकार हतोत्साह हो क्यों बैठे हो ?' तब उन्होंने जाकर पुण्याह कर्म आदि करने के पश्चात् युद्ध की तैयारी की और राक्षसेन्द्र के समक्ष आकर उस बात की सूचना दी। तब रावण ने उनको देखकर कहा—'दिन-दिन मेरी सेना घटती जा रही है। मेरे सभी अनुचर मारे जा चुके। अमरेन्द्र के समान पराक्रमी खर, अमित बलशाली इन्द्रजीत, कुंभकर्ण, प्रहस्त, कुंभ-निकुंभ, भयंकर पराक्रमी अति-काय, महाकाय, महोदर, असुरांतक, नरांतक, यशस्वी अकंपन, कंपन आदि महान् योद्धा, जो युद्ध में इंद्र का भी सामना कर सकते थे, मेरे निमित्त प्राण खो बैठे। मेरा दर्प चूर-चूर हो गया। इसलिए, मैं अपने सभी शत्रुओं का नाश करूँगा और अपने पराक्रम का प्रदर्शन करके उनसे प्रतिशोध लूँगा। मेरे शर समस्त आकाश तथा समुद्र को ढक लेंगे। मैं आज सभी वानरों का संहार करूँगा। मेरे चलाये बाण मृणालयुक्त कमलों की भाँति वानरों के कंठ-नाल-युक्त मुख-कमलों को काटेंगे और मैं उनसे युद्ध-भूमि का अलंकार करूँगा। आज लंका नगर की स्त्रियाँ यह सोचकर कि हमारे पति, पुत्र और सहोदर युद्ध में कटकर मरे पड़े हैं, अब हमारी रक्षा कौन करेगा। वे शोक-सागर में डूबी हुई हैं। मैं शत्रुओं का वध करके उनका शोक दूर करूँगा। मैं शत्रु-पक्ष की सेनाओं को अपने पैने बाणों से काटकर उनके रक्त-मांस से, सियारों, गीधों उकाबों, पिशाचों, प्रेतों एवं भूतों को तृप्त करूँगा।'

इसके पश्चात् उसने युद्धोन्मत्त, मदमत्त एवं अक्षीण बलवान् विरूपाक्ष को देखकर कहा—'तुरंत तुम सभी राक्षसों को युद्ध-भूमि में ले आओ। मेरे लिए रथ सजाकर भेजो। आज मेरे तीक्ष्ण बाण, प्रतापी राम-लक्ष्मण के प्राण लेकर उनके रक्त का पान करना चाहते हैं। मैं वानर-सेना पर बाण ऐसे चलाऊँगा कि एक-एक बाण से सैकड़ों वानर मारे जायेंगे। तुम बलवान् राक्षसों को चुन-चुनकर सेना का संगठन करके शीघ्र लाओ।'

तब विरूपाक्ष आदि राक्षसों ने सेना को एकत्र होने की घोषणा की । तुरंत सभी राक्षस अपने गर्जनों से आकाश को कँपाते हुए, करवाल, चक्र, खड्ग, परशु, शूल, गदा, मूसल, मुद्गर, शक्ति आदि विविध एवं विचित्र आयुधों से युक्त हो अत्यधिक उत्साह से आ गये । राक्षस रावण के लिए विविध अस्त्रों से सज्जित, सूर्य-प्रभा से विलसित रथ ले आये । तब रमणीय रत्नों की कांति से प्रकाशमान कर्ण-भूषण धारण किये हुए; दसों कंठों में रत्न-पदक पहने हुए, दसों मुखों से नाना प्रण करते हुए; केयूर, मणिकंकण आदि भूषणों से बाहुओं को अलंकृत किये हुए; धनुष, शर, खड्ग, चक्र, करवाल, परशु आदि विविध आयुधों को धारण किये हुए दशकंठ रथ पर आरूढ हुआ । उसके दसों मुकुट ऐसे प्रतीत होते थे, मानों बारह आदित्यों में एक को तो रावण ने बंदी बनाया, दूसरा आकाश में दीख रहा है, अतः बचे हुए दसों आदित्य यहाँ विराज रहे हैं । रावण के रथ के पीछे रथ, गज, तुरंग, पदाति चतुरंगिणी सेना भी चलने लगी । उस समय सेना के निसान, तुरही आदि की ध्वनि तथा सैनिकों के सिंहनाद आदि से गूँजनेवाली लंका प्रलय के समय भयंकर गर्जन करनेवाले समुद्र के समान दीख रही थी । बंदीजनों की स्तुतियों के साथ रावण उत्तर द्वार से लंका से बाहर निकला और युद्धोन्मत्त विरूपाक्ष को देखकर ऐसा सिंहनाद किया कि पृथ्वी विदीर्ण-सी हो गई । उस समय सूर्य-बिंब की दीप्ति भी क्षीण हो गई; दिशाएँ अंधकार से व्याप्त हो गईं; पृथ्वी डोल गई, रथ चूर-चूर हो गये; अश्व गिर पड़े और रक्त की वर्षा होने लगी । ऐसे दुःशकुनों को देखकर भी दशकंठ किंचित्-मात्र विचलित नहीं हुआ ।

लंकेश की विशाल सेना को देखकर ब्रह्माण्ड को विदीर्ण करते हुए वानरों ने सिंहनाद किया और उद्धत गति से भयंकर राक्षसों पर टूट पड़े । इससे क्रुद्ध होकर राक्षस-वीरों ने अपने पराक्रम को प्रकट करते हुए, वानरों के हृदयों को छेदकर पार निकल जानेवाले पैने बाण चलाये; मूसल, तोमर, शक्ति, मुद्गर, चक्र आदि फेंके; अंकुश, कुंत तथा शूल चुभोये; भयंकर गदाओं से प्रहार किया और तलवारों को चमकाकर उनसे वानरों के अंगों को खंडित किया । तब कपि-वीरों ने भी क्रोधोन्मत्त हो, विशाल पर्वतों तथा वृक्षों को उन राक्षसों पर फेंका; अपने चरण, हाथ, दाँत, नख तथा पूँछों की सहायता से उनके सिरों तथा शिराओं को, हाथों तथा मुखों को, वक्षों तथा बाहुओं को, ओठों तथा कंठों को काटते, चीरते तथा कुचलते हुए, उन्हें कई प्रकार से पीड़ित किया । यह देखकर दनुजेश्वर ने वत्सदंत, अश्वकर्ण, नाराच, भल्ल आदि नाना अस्त्रों को वानरों पर चलाकर रक्त की धाराएँ बहा दीं । वह एक-एक बाण से पाँच-पाँच, सात-सात, नौ-नौ कपियों को एक साथ जहाँ-के-तहाँ गिरा देता था । इसके पश्चात् उसने पाँच बाणों से गंधमादन को, अठारह बाणों से पनस को, दस बाणों से नील को, पचास बाणों से नल को, छह बाणों से द्विविद को, सात बाणों से विनत को, सत्तर बाणों से पवनपुत्र को, पच्चीस बाणों से कुमुद को, पाँच बाणों से गोमुख को, सात बाणों से ऋषभ को, सत्रह बाणों से गज को, सात बाणों से शरभ को, सात बाणों से गवय को, तीन-तीन बाणों से तार तथा क्रथन को, अस्सी बाणों से अंगद को तथा कई बाणों से अन्य वानरों को पृथ्वी पर शीघ्र

गिराकर गर्व से इतराने लगा । असुरेश्वर के बाणों से आहत कुछ कपि कमर के टूटने से गिर पड़ते थे; कुछ चकराकर लुढ़क जाते थे; कुछ लोगों के वक्षःस्थलों के विदीर्ण होने से गिर पड़ते थे; चरणों के कट जाने के कुछ वानर गिर जाते थे; कुछ लोगों के हाथ कट जाते थे; कुछ वानरों के सिर फट जाने से वे भूमि पर लोट जाते थे; कुछ कपियों के कंठ कट गये और कुछ की जाँघें कट गईं, इसलिए वे कराहते हुए पृथ्वी पर लोट गये । युद्ध-भूमि में कई ऐसे भी कपि थे, जिनके अंग ऐसे कुचल गये थे कि उनके अंगों को पहचानना कठिन हो गया था । बाणों के लगते ही कुछ वानर भागने लगते, किन्तु बीच में ही प्राणों के निकल जाने से वहीं पृथ्वी पर गिर जाते थे । इस प्रकार, दनुजेन्द्र के बाणों के आघात को सह नहीं सकने के कारण वे सभी वानर प्राण लेकर भागने लगे । रावण ने उनका पीछा किया । तब सुग्रीव वानर-सेना को देखकर कहने लगा—'भागते क्यों हो; रुक जाओ, ठहर जाओ ।' फिर भी, वानर-सेना भागती ही रही। तब उनको रोकने के लिए सुषेण को भेजकर, सुग्रीव ने स्वयं एक वृक्ष को लिये हुए राक्षस-सेना का सामना किया । उसके पीछे-पीछे पर्वतों को लिये हुए वानर-वीर भी चलने लगे । तब सिंहनाद करके वह प्रलय-काल के रुद्र की भाँति वृक्ष से प्रहार करते हुए शीघ्र गति से राक्षसों का संहार करने लगा । अन्य वानर-वीर भी उसीके साथ राक्षस-सेना पर वृक्षों तथा पर्वतों की घोर वृष्टि करने लगे । इससे राक्षसों के सिर फूट गये और कई राक्षस कुलिश से आहत भग्न-शिखर कुल-पर्वतों की भाँति गिर पड़े ।

११८. सुग्रीव के द्वारा विरूपाक्ष आदि राक्षसों का वध

तब रविपुत्र क्रोध से अपने नेत्र लाल किये हुए एक पर्वत को हाथ में लिये हुए आगे बढ़ा । तब विरूपाक्ष ने अत्यधिक रोष से रथ को आगे बढ़ाते हुए धनुष का टंकार करके सुग्रीव पर वज्र-सम पैने बाण चलाये । किन्तु, रविपुत्र उनकी उपेक्षा करके उसके रथ पर कूद पड़ा और रथ, सारथी तथा घोड़ों को एक पर्वत के प्रबल प्रहार से पृथ्वी पर गिरा दिया । रथ से वंचित किये जाने पर भी वह राक्षस-वीर पृथ्वी पर उतरकर सुग्रीव पर विविध शरों को चलाने लगा । इतने में राक्षसेन्द्र की आज्ञा से, सभी आयुधों से सज्जित करके, महावत एक मत्त गज को ले आया, तो विरूपाक्ष तुरंत उस पर चढ़ गया और कपियों पर भयंकर प्रहार करके उनका संहार करने लगा और साथ-ही-साथ सूर्य-पुत्र पर भी भयंकर बाण चलाये । इससे संतुष्ट न होकर विरूपाक्ष कई शस्त्र और विविध बाण कपियों पर चलाने लगा । इनको न सह सकने के कारण जब वानर युद्ध-क्षेत्र से भागने लगे, तब सुग्रीव ने उन्हें रोककर, किसी भी तरह विरूपाक्ष को जीतने का संकल्प कर लिया । इतने में क्रथन नामक एक वीर वानर ने विपुल पराक्रम से एक वृक्ष को उखाड़कर क्रोध से उस वृक्ष से हाथी के कुंभ-स्थल पर प्रहार किया । तब प्रचुर रक्त-धारा बहाते हुए वह गज उतनी दूर पीछे हट गया, जितनी दूर धनुष से निकलकर बाण जा सकता है और वहाँ जाकर वह झुक गया । तुरंत वह राक्षस पृथ्वी पर कूद पड़ा और खड्ग तथा ढाल लिये हुए उसने सुग्रीव पर आक्रमण किया । तब सुग्रीव ने उस पर एक विशाल शैल से प्रहार किया, पर उस राक्षस ने उसे काट डाला । तब रविपुत्र ने

निर्मित उन बाणों के लगते ही समस्त वानर, अपना भुजबल खोकर पृथ्वी पर गिरने लगे। इतने में रघुराम ने अपने अनुज के साथ क्रोध से धनुष धारण किये हुए रावण का सामना किया। राम के धनुष का निनाद सुनते ही आकाश विदीर्ण-सा हो गया, समुद्र आलोडित हो गये, दिग्गजों के कान के परदे फट गये और राक्षसों के चित्त डोल उठे। क्रुद्ध दशकंठ के धनुष से निकलनेवाले भयंकर बाणों की ध्वनि सुनकर ही कितने वानर भयाक्रान्त हो पृथ्वी पर गिरने लगे। तब राम-लक्ष्मण सूर्य-चन्द्र की भाँति भासमान होते हुए युद्ध के लिए आगे बढ़े, तो देवताओं का शत्रु रावण राहु की भाँति शोभायमान होते हुए उनसे जूझ गया। जब लक्ष्मण ने दशकंठ पर अत्यंत तीव्र शर चलाये, तब दशकंठ ने उन्हें कठोर बाणों से बीच में ही काट डाला और उनपर उग्र बाण चलाये। लक्ष्मण ने भी उसके एक-एक बाण को खंडित करके उस पर तीन बाण एक साथ चलाये। तब रावण ने अपने तीन बाणों से उनके बाण खंडित कर दिये। इसी प्रकार, जब लक्ष्मण दस बाण एक साथ चलाते, तब वह उन्हें अपने दस बाणों से छिन्न-भिन्न कर देता, सौ बाण चलाते तो वह अपने सौ बाणों से उन्हें चूर-चूर कर देता। इस प्रकार, सौमित्र को युद्ध-भूमि में तंग करके उसके उपरांत दनुजेश्वर राम से युद्ध करने चला। उसे देखकर सभी वानर इस प्रकार भागने लगे, मानों वे यम को देखकर भाग रहे हों। तब राम ने क्रोध से आँखें लाल किये हुए धनुष सँभालकर रावण का सामना किया। तब सभी देवता राम की प्रशंसा करने लगे और पृथ्वी हिल उठी। तब रावण भी क्रोध से तेवर बदलकर राम से भिड़ गया। राम तथा रावण भयंकर अट्टहास करते हुए धनुष की टंकार-ध्वनि से दसों दिशाओं को प्रतिध्वनित करते हुए, परस्पर ऐसे बाण चलाने लगे कि उनके चलाये बाण सारे आकाश में व्याप्त हो गये। उन बाणों के आपस में टकराने से भयंकर ध्वनि के साथ निकलनेवाली अग्नि-ज्वालाओं से नभोमंडल व्याप्त हो गया। वे एक दूसरे के धनुर्विद्या-कौशल की मन-ही-मन प्रशंसा करते हुए, एक दूसरे की रण-कुशलता पर आश्चर्य करते हुए युद्ध करने लगे। इसी समय रावण ने भयंकर तमिस्र-बाण चलाया, जिसके प्रभाव से सभी वानर अंधकार से आच्छादित हो निश्चेष्ट हो गये। तब राम ने रोष-पूरित अरुण नेत्रों से एक सौ भयंकर बाण चलाये, तो दशानन ने शक्तिशाली भालों से उन्हें काट दिया और राम पर पैने बाण चलाये। तब राम ने उसके बाणों को एक अर्द्धचन्द्र बाण का प्रयोग करके काट डाला और अनेक बाण ऐसी अनुपम गति से चलाये कि वे रावण के अंगों को छेदकर दूसरी ओर निकल गये। तब रावण ने रौद्र बाण चलाया, तो राम ने भी रौद्र बाण छोड़ा। वे दोनों बाण अन्योन्य संघर्षण के पश्चात् पृथ्वी पर गिर पड़े। तब दोनों ने क्रोध से परस्पर अनेक पैने बाण चलाये, जिनके आकाश में व्याप्त होने से अंधकार-सा छा गया। टंकार-रूपी गर्जनों से युक्त दोनों के धनुष-रूपी समुद्रों से निकलनेवाले शर-रूपी लहरें परस्पर टकराकर एक दूसरी को दबा देती थीं। जब राक्षस ने भयंकर क्रोध से राम के वक्ष पर बाण-समूह चलाया, तब वे बाण नीलोत्पलों की पंक्ति के समान राम के शरीर पर भासमान होने लगे। तब राम ने प्रचंड बाणों का संधान करके उन्हें रावण पर ऐसे चलाया कि वे उसके कवच को पार करके वक्ष में चुभ गये।

रावण इससे अत्यंत व्याकुल हुआ और राम पर सर्प-बाण चलाये, तो राम ने उन्हें बीच में ही काट डाला। तब रावण ने शार्दूलमुख, उष्ट्रमुख, सूकरमुख, सर्पमुख, गजमुख, गृध्रमुख तथा सिंहमुखवाले कितने ही भयंकर बाण राम पर चलाये, पर राम ने उनके टुकड़े कर दिये। उसके पश्चात् राम ने आग्नेयास्त्र चलाया, तो उसमें से उल्कामुख, विद्युन्मुख, ग्रहमुख, सूर्यमुख तथा अग्निमुख से युक्त बाण निकलकर रावण पर आघात करने के लिए पहुँचे। तब रावण ने आश्चर्य-चकित रीति से उन सबको काट डाला और मय से प्राप्त माया-शर का संधान करके उसे राम पर चलाया। उससे असंख्य भाले, तोमर, गदा, परिघ आदि शस्त्र निकल पड़े। यह देखकर राघव ने अपने महान् धनुष पर गांधर्व शर का संधान करके चलाया, तो उसमें से अनेक सूर्यबिंब-सदृश चक्र तथा दिव्य बाण संसार को त्रस्त करते हुए निकले और उन्होंने रावण के माया-शर से निकले हुए परिघ आदि शस्त्रों को चूर-चूर कर दिया। तब दशकंठ ने क्रोध करके राम पर अनेक प्रखर बाण चलाये, तो राम ने भी शीघ्र गति से उस राक्षस पर असंख्य प्रतिशर चलाये। राम-रावण के शर-जाल से सारा आकाश ढक गया। तब लक्ष्मण ने सात बाणों से रावण की पताका को काट डाला, एक बाण से धनुष को तोड़ दिया एक और बाण से सारथी का वध किया और फिर रावण के वक्ष पर पाँच बाणों से प्रहार किया। इसी समय विभीषण ने इन्द्रनील पर्वत की भाँति दीखनेवाले रावण के अश्वों को मार गिराया। रथ से वंचित होने से रावण पृथ्वी पर कूद पड़ा और अपने दसों मुखों की भौंहों को तानकर क्रुद्ध दृष्टि से विभीषण पर भयंकर शक्ति-बाण चलाया। किन्तु, रामानुज ने तीन बाणों से उसे बीच में ही गिरा दिया। उससे स्फुलिंग तथा ज्वालाएँ निकलकर आकाश तक व्याप्त हो गईं। तब दशकंठ अत्यंत क्रोध करके, मय से प्राप्त शक्ति-बाण को विभीषण पर चलाने का यत्न कर ही रहा था कि लक्ष्मण ने कहा—'शरणागत की रक्षा करनेवाले धर्मात्मा क्या कभी शरणागत की मृत्यु सह सकते हैं? यों कहते हुए उन्होंने रावण के अनुज को अपने पीछे कर लिया और स्वयं रावण पर क्रूर बाण चलाने लगे।

१२०. रावण की शक्ति से लक्ष्मण का मूर्च्छित होना

तब रावण ने कहा—'हे लक्ष्मण, बड़े शूर की भाँति तुमने विभीषण को अपने पीछे छिपा लिया है। तब तुम स्वयं ही इस शक्ति के प्रहार का सहन करो।' इस प्रकार कहते हुए उसने प्रलय-काल के आदित्य के परिवेश के सदृश, उस शक्ति को घोर वलय के रूप में घुमाकर, उसे लक्ष्मण पर चलाया। तब वह शक्ति अपनी किंकिणी तथा घंटिकाओं का निनाद करते हुए, समुद्रों को आलोडित करते हुए, कुल-पर्वतों को हिलाते हुए, दिशाओं को कँपाते हुए, सूर्यबिंब को विचलित करते हुए, वज्रों को गिराते हुए, पृथ्वी को कंपित करते हुए, आकाश को झकझोरते हुए, नक्षत्रों को तितर-बितर करते हुए, अग्नि-कणों को विकीर्ण करते हुए, ज्वालाओं को व्याप्त करते हुए, आदिशेष की जिह्वा का आकार धारण किये हुए, लक्ष्मण के द्वारा चलाये जानेवाले बाण-समूह को चूर-चूर करते हुए, लक्ष्मण के वक्ष पर भयंकर गति से गड़ गई। राम कहने लगे कि इस भयंकर अस्त्र से लक्ष्मण के प्राणों पर कोई विपत्ति नहीं आये। समस्त देवता यह देखकर आकाश में हाहाकार

करने लगे । शक्ति-बाण के लगते ही लक्ष्मण चकराकर पृथ्वी पर ऐसे गिर पड़े, जैसे प्रलय-काल में महामेरु पर्वत ढह जाता है ।

धरती पर पड़े हुए अपने अनुज को देखकर, राम का हृदय शोकाग्नि से जलने लगा और आँखों से अश्रुपात होने लगा । लक्ष्मण के विशाल वक्ष में अच्छी तरह गड़े हुए उस शक्ति-बाण को निकालने के लिए सभी वानर-वीर यत्न करने लगे, किन्तु उनसे वह निकल नहीं सका । तब राम ने रावण के द्वारा चलाये जानेवाले बाण-समूह की उपेक्षा करते हुए, उस शक्ति बाण को लक्ष्मण के वक्ष से निकालकर फेंक दिया । उसके पश्चात् उन्होंने सभी वानर-वीरों को देखकर कहा--"हे वीरो, अपना शौर्य प्रदर्शित करने का यही समय है, शोक में पड़कर युद्ध से विमुख होने का समय नहीं है । अब तुम लोग लक्ष्मण की रक्षा करते रहो और मेरी यह प्रतिज्ञा सुन लो । मैं आज इस दुष्कर्मी दशकंठ का संहार करके, उन सभी दुःखों को दूर करूँगा, जिन्हें मैंने, राज्य छोड़ने, बंधुजनों से अलग होने, वनों में भटकने, धनुष-बाण लिये हुए भी, अपनी प्राण-प्रिय धर्म-पत्नी को खोने तथा मायावी राक्षसों से युद्ध करने से प्राप्त किया था । समर-भूमि में इसका वध करने के लिए मैंने असमान विक्रमी वालि का संहार किया और कपिराज के रूप में सुग्रीव का अभिषेक किया । प्रचंड ग्राह-संकुल तथा आकाश का स्पर्श करनेवाली तरंगों से युक्त अनंत सागर पर सेतु बाँधकर मैं कपि-सेना के साथ समुद्र को पार करके आया और लंका को घेर लिया । यहाँ अब मैं अपने सौमित्र को खो बैठा हूँ । यदि युद्ध में रावण मेरे दृष्टि-पथ में आये, तो अपनी दृष्टि के विष से ही उसका अंत कर दूँगा, जैसे क्रूर सर्प दुष्ट जंतुओं को मार डालता है । अब मैं दशकंठ को जीवित लौटने नहीं दूँगा; उसे मैं अपने बाण-समूह का लक्ष्य बना दूँगा । आज सभी वानर पर्वतों पर चढ़कर हमारे युद्ध का कौशल देखते रहें । आज सभी दिक्पाल तथा समस्त लोक मेरे धनुर्विद्या-कौशल को भली भाँति देख लें और युद्ध में मेरे पराक्रम को देखकर, मुझ रघुराम के विक्रम को जान लें । आज रावण भले ही देवलोक में छिप जाय, समुद्र के गर्भ में डूब जाय, पृथ्वी में समा जाय, और रसातल में प्रवेश कर जाय, तब भी मैं उसका संहार किये विना नहीं छोड़ूँगा । यदि निश्चय ही मैंने रवि-कुल में जन्म लिया है, यदि मैं रवि-समान तेजस्वी दशरथ का पुत्र हूँ, यदि मैं राम हूँ, यदि रावण युद्ध-क्षेत्र में डटा रहा, तो मैं किसी भी प्रकार उसका वध करूँगा । इस युद्ध-क्षेत्र में या तो रावण रहेगा या राम रहेगा । राम तथा रावण दोनों का यहाँ रहना अब असंभव है ।"

ऐसी प्रतिज्ञा करके राम ने दशकंठ पर भीषण बाण चलाने लगे । दशकंठ ने भी उनके बाणों के प्रतिबाण चलाये, तो उन बाणों के परस्पर टकराने से निकलनेवाली अग्नि-ज्वालाएँ आकाश तक व्याप्त हो गईं और घोर ध्वनि होने लगी । इस ध्वनि के साथ धनुषों के टंकारों की ध्वनि मिलकर समस्त लोकों को भयभीत करने लगी ।

१२१. रावण का चिंतित होना

राम के बाणों के प्रहार से रावण जर्जर हो गया और उनके बाणों के वेग का सहन न कर सकने के कारण राक्षसेन्द्र, सिंह को देखकर भागनेवाले गजराज की भाँति,

युद्ध-भूमि को छोड़कर भागने लगा। तब उसके केश खुल गये, सुंदर रत्न-खचित आभूषण बिखरने लगे, समस्त भूत तालियाँ बजाकर अट्टहास करने लगे, और वानर हर्ष के निनाद प्रकट करने लगे। भागते समय उसके चरण-घात से पृथ्वी भी काँपने लगी।

इस प्रकार, लंका में प्रविष्ट होकर वह अपने सभा-मंडप में आसीन हुआ। फिर, वह विभीषण के हितवचनों, राम के प्रहारों का तथा कुंभकर्ण, अतिकाय, महान् इंद्रजीत आदि वीरों की मृत्यु का स्मरण करके मन-ही-मन शोक-संतप्त हो निश्चेष्ट बैठा रहा। कुछ समय के उपरान्त वह सँभलकर अंतःपुर में पहुँचा और उद्विग्न हो, अपनी पत्नी को बुलाकर सिर झुकाये हुए कहने लगा--'हे प्रिये, राम के अद्वितीय विक्रम का वृत्तांत सुनो। मैं कैसे कहूँ ? वह देखो, मेरे समक्ष सहस्रों राम दीख रहे हैं। मैं इस लंका में जहाँ भी देखता हूँ, वहाँ राम-ही-राम मुझे दिखाई पड़ता है। अब विजय की कोई आशा नहीं है। अब शंकर के चरण ही मेरे लिए शरण हैं। जिस देव के दिव्य तथा भयंकर बाण के आघात से त्रिपुर भस्मीभूत हुए, जिनके मुकुट पर चन्द्रकला रमणीय गति से सुशोभित हो रही है, जिनके हाथों में पिनाक, खड्ग, त्रिशूल आदि विलसित हैं, जो अखिल लोक के ईश हैं, जिन्होंने दक्ष-यज्ञ का विध्वंस किया था, क्रुद्ध होकर जिन्होंने अंधकासुर का संहार किया था, वेद जिस देव की स्तुति करते हैं, तथा जो देवादिदेव हैं, उस शिवजी की अब मैं उपासना करूँगा।'

इस प्रकार निश्चय करके वह स्नान आदि से निवृत्त हुआ, ब्राह्मणों को विविध दान देकर उन्हें तृप्त किया तथा मद, दर्प आदि (राजस भावों का) त्याग कर सात्त्विक भाव ग्रहण किया। उसके पश्चात् उसने, रक्तांबर, रक्त माल्य, रक्त उपवीत, रक्त चंदन तथा रक्तवर्ण की जपमाला आदि धारण की और फिर बड़ी भक्ति के साथ मंत्र का जप करते हुए, शिव के मंदिर में पहुँचा। वहाँ एकनिष्ठ हो उसने एक वेदी बनाई, दर्भांकुर आदि एकत्र किये। फिर सभी, दिशाओं में यज्ञ के रक्षणार्थ भयंकर राक्षसों को नियुक्त किया और यज्ञ करने के लिए उद्यत हुआ। इसकी सूचना मिलते ही मंदोदरी वहाँ आ पहुँची और दशकंठ को देखकर कहने लगी--"हे दानवेन्द्र, क्या, आपको उचित है कि इस प्रकार दीन होकर अपना शौर्य खो बैठें। आपके क्रोध करने से सभी समुद्र गर्जन करने से डरते हैं, पवन चलने से डरता है, अग्निदेव तीव्र ज्वालाओं के साथ जलने से डरता है और आकाश में सूर्य प्रचंड तेज से दीप्त होने से डरता है। आपके नाम से सारे जग विचलित होते हैं। ऐसे आप, अपना साहस खोकर ऐसी दशा को क्यों प्राप्त हुए ? यदि आपमें इतना साहस नहीं था, तो उस दिन राम की पत्नी को क्यों ले आये ? उस दिन मारीच ने जो हित-वचन आपसे कहे थे, उन्हें आपने बुरा मान लिया और नीति-विरुद्ध वचन कहे थे। नीति का विचार करके तथा आपके अहित की संभावना देखकर धर्मात्मा विभीषण ने बार-बार आपसे कहा था कि हे राक्षसेन्द्र, आप अनुचित मार्ग पर क्यों जा रहे हैं ? सीता को छोड़ देने में ही आपका हित है। किंतु आपने उनके वचनों पर ध्यान नहीं दिया। मातामह माल्यवान् ने आपको नीति सुझाई, तो क्या आपने उसको स्वीकार किया ? आपकी माता ने स्वयं उचित कर्त्तव्य का आदेश दिया, तो क्या आपने उस पर

ध्यान दिया ? कुंभकर्ण ने जब कहा था कि राम से आप क्यों विरोध ठानते हैं, तो क्या आप क्रुद्ध नहीं हुए ? इस कार्य से विमुख होने का उपदेश जिन लोगों ने दिया था, उनके ही वचन आज सिद्ध हुए हैं न ? अपने भुजबल तथा पराक्रम को छोड़कर आज आपने मुनि-वृत्ति क्यों स्वीकार की है ? इन्द्र से युद्ध करके भी आप परास्त नहीं हुए, अब आप रामचंद्र को परास्त नहीं करेंगे, तो क्या लोग आपका उपहास नहीं करेंगे ? हे असुरेश्वर, आप युद्ध करके शत्रु पर विजय पाइए । दीन होकर आप यह सब क्या कर रहे हैं ?"

इस प्रकार जब मंदोदरी ने रावण को उत्तेजित किया, तब रावण ने लज्जा से एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा और कहा—'हे सुंदरी, तुम्हारी बातें सत्य हैं । अब मैं रामचन्द्र से नहीं डरूँगा । अब तुम जाओ ।' तब प्राणेश्वर को प्रणाम करके आँखों से अश्रु-वर्षा करती हुई वह चली गई । उसके कहे हुए दुःखपूर्ण वचनों का स्मरण करके रावण ने हवन करना छोड़ दिया और युद्ध की तैयारी करने के लिए चला गया ।

१२२. लक्ष्मण की मूर्च्छा पर राम का शोक

युद्ध-भूमि में रक्त में भींगे, निश्चेष्ट पड़े हुए शेषनाग के सदृश दीखनेवाले अपने प्रिय अनुज को देखकर रामचंद्र अधीर होकर शोक करने लगे । वे कहने लगे—"सौमित्र को इस प्रकार पृथ्वी पर गिरे हुए देखकर मैं किस प्रकार अपने प्राणों को रोक सकता हूँ? युद्ध करने की शक्ति मुझमें कैसे आयगी ? अपनी मुष्टि में धनुष कैसे धारण कर सकूँगा ? आँखों में आँसू उमड़-उमड़कर आते समय, बढ़-बढ़कर आनेवाले शत्रुओं को मैं कैसे देख सकूँगा ? मेरी आँखों के सामने मेरा सहोदर, मेरा प्रिय बंधु, मेरा प्रिय सखा मेरे लिए प्राणों की बलि देकर मुझे छोड़कर चला गया है । धिक्कार है, मेरे शौर्य को । मुझे अब इस युद्ध की आवश्यकता ही क्या है ? मुझे विजय ही किसलिए चाहिए ? मुझे अब राज्य की क्या आवश्यकता है ? मुझे अब सीता ही क्यों चाहिए ? मेरा यह शौर्य किस काम का ? मैं अब जीवित ही क्यों रहूँ ? हे लक्ष्मण, तुम्हारे साथ मैं भी स्वर्ग चलूँगा । हे बंधु, विजयी होकर तुमने पहले शरभ-शार्दूलों से भरे हुए भयंकर वनों में मेरी रक्षा करते रहे, अब यहाँ तुच्छ दैत्यों के वन के बीच मुझे पराया समझकर छोड़ दिया है । हे तात, अपनी उन्नत शक्ति से मेरी रक्षा करने के निमित्त वन में तुम एक क्षण भी नहीं सोये ? आज इस प्रकार दीर्घ निद्रा में सो जाना क्या तुम्हें उचित है ? मैं बार-बार दुःख के आवेश से ऊँचे स्वर में तुम्हें पुकारता हूँ, फिर भी तुम बोलते क्यों नहीं हो ? अब मेरे लिए कौन है ? मैं कहाँ जाऊँ । मैं अंत में शोकाग्नि के हाथों में पड़ गया हूँ । शुभलक्षण-संपन्न, सुन्दराकार, अद्वितीय बलवान्, परम भक्त तथा प्रिय सहोदर, गंभीरचेता, युद्धविजयी मेरा प्राण-सखा लक्ष्मण मेरे साथ वनवास के लिए आया । अब मैं इसी के साथ स्वर्ग जाऊँगा । कितने ही बंधु हैं और कितनी ही पत्नियाँ हैं, किन्तु ऐसा सहोदर पृथ्वी में कहाँ मिलेगा ? यत्न करूँ, तो सीता की समता करनेवाली पत्नी को मैं कहीं-न-कहीं प्राप्त कर सकता हूँ; पर ऐसे सद्‌गुणशील, दयालु तथा महाबली अनुज को मैं कहाँ पाऊँगा । क्या, यह केवल मेरा अनुज था ? यह महाबली सतत मेरी सेवा करने-वाला भक्त भी था । यही मेरा पौरुष था, यही मेरी शांति था, यही मेरी कीर्त्ति था,

यही मेरी प्रेरणा था, यही मेरा शौर्य था, यही मेरा धैर्य तथा विनय था और यही मेरी विजय था। इतना ही क्यों, मेरे लिए भाग्य-देवता तथा मेरा पावन राज्य-पद भी यही था।"

इस प्रकार, जब राम शोक से अभिभूत हो प्रलाप कर रहे थे, तब सुषेण ने राम को देखकर कहा—'हे देव, आप इस प्रकार शोक क्यों करते हैं ? आप धैर्य धरकर इनकी ओर देखिए। यदि इनके शरीर में प्राण नहीं रहते, तो क्या, उनके मुख पर ऐसी आभा दिखाई देती ? या उनकी आँखें कमलों की सुंदरता लिये रहतीं ? या उनकी सुंदर हथेलियाँ लाल कमल की भाँति सुशोभित रहतीं ?'

इस प्रकार राम को आश्वासन देकर उसने उन्हें शांत किया और हनुमान् को देखकर कहा—'इसके पहले जांबवान् के कहने से तुम ओषधियों का पता जानते ही हो। महाद्रोण पर्वत के, दक्षिण शिखर पर विशल्यकरणी, सौवर्णकरणी, संधानकरणी तथा संजीवकरणी ओषधियाँ अपनी कांति से प्रकाशित रहती हैं। तुम शीघ्र इन चारों ओषधियों को ले आओ। उनकी सहायता से लक्ष्मण के प्राण लौट आयेंगे। पूर्वकाल में देवासुरों ने क्षीर-सागर का मंथन करके जो अमृत प्राप्त किया था, उसे वहीं छिपा रखा है। उसी अमृत से इन ओषधी-लताओं ने जन्म लिया है। लवण-समुद्र को पार करके जाने के बाद कुशद्वीप मिलेगा, उसे पार करके आगे बढ़ो, तो क्षीर-सागर मिलेगा। उसे भी पार कर जाओ, तो चंद्र तथा द्रोण पर्वतों को देखोगे। वहाँ देवेन्द्र की आज्ञा से मंदराचल की भाँति विशालकाय गंधर्व उन ओषधियों की रक्षा करते रहते हैं। गंधर्वों से तुम्हारा युद्ध होगा। वहीं राक्षस भी घूमते रहते हैं। वे बड़े मायावी हैं, उनसे सावधान रहना। द्रोणाद्रि से उन ओषधियों को लाकर, लक्ष्मण के प्राणों को लौटाओ, जिससे रघुपति प्रसन्न हों। यहाँ से वह पर्वत तेईस लाख, बीस हजार दो सौ दस योजन दूर है। तुम वायु-वेग से जाकर सूर्योदय के पहले ही यहाँ लौट आओ। सूर्योदय हुआ, तो वे ओषधियाँ अपनी कांति खोकर शक्तिहीन हो जायँगी। उसके पश्चात् लक्ष्मण को मूर्च्छा से जगाना असंभव होगा। इसलिए हे वानरोत्तम, तुम शीघ्र जाकर वापस आओ। उन ओषधियों के लक्षण भी तुम्हें जान लेना चाहिए। उनके फल हरे होंगे, फूल लाल होंगे और पत्ते सफेद होंगे। तुम शीघ्र विभीषण, जांबवान्, सुग्रीव तथा अंगद की अनुमति लेकर जाओ।'

सुषेण के इन वचनों को सुनकर हनुमान् ने कहा—'ऐसा ही हो।' तब पवनपुत्र को देखकर राम ने कहा—'मूर्च्छित पड़े हुए लक्ष्मण को प्राण-दान करके तुम त्रिभुवनों में अचल कीर्ति प्राप्त करो। मेरे तीन भाई हैं। हे अनिलकुमार, आज से तुम्हारे साथ मेरे चार भाई होंगे।'

१२३. संजीवनी लाने के लिए हनुमान् का द्रोणाद्रि को जाना

राम की बातें सुनकर हनुमान् ने कहा—'हे सूर्यकुलतिलक, सेवक हनुमान् के रहते हुए आप चिंता क्यों करते हैं ? हे राजन्, आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके शीघ्र ही सप्त द्वीपों के उस पार रहने पर भी ओषधियों के उस पर्वत को सूर्य के उदयाचल पर आने के पहले ही ले आऊँगा।' इस प्रकार कहते हुए उसने राम के चरणों पर गिर-कर प्रणाम किया। तब राम ने उसे उठाकर हृदय से लगा लिया और कहा—'हे अंजनि-

पुत्र, इन्द्र तुम्हारे सिर की, सूर्य तुम्हारे मुख की, चन्द्र तुम्हारे मन की, आदिशक्ति तुम्हारे नितंब की, पवन तुम्हारी पीठ की, शिव तुम्हारी पूँछ की, अग्नि तुम्हारे चरणों की, ब्रह्मा तुम्हारी बुद्धि की, वरुण तुम्हारी शक्ति की, सरस्वती तुम्हारी वाणी की, विष्णु तुम्हारे बाहुद्वय की तथा गणेश तुम्हारे उदर की रक्षा करते रहेंगे । तुम शीघ्र जाकर आओ ।' उसके पश्चात् क्रमशः सुग्रीव, विभीषण, जांबवान् तथा अंगद आदि वानर-वीरों ने उसे विदा दी । तब हनुमान् आकाश की ओर ऐसे उछला कि जिस पर्वत पर चढ़कर वह उछला था, वह धँस गया और पृथ्वी विदीर्ण हो गई; पवन, समुद्र तथा आकाश-गंगा व्याकुल-सी हो गई और लंका नगर की ऊँची अट्टालिकाएँ गिर गईं । उसके पश्चात् वह विद्युत्-प्रकाश के समान उज्ज्वल कांति से युक्त अपनी पूँछ को तथा अपने दोनों विशाल हाथों को ऊपर उठाये, सूर्य-मंडल की भाँति प्रकाशमान होनेवाले अपने मुख से प्रचंड दीप्ति विकीर्ण करते हुए, चरणों तथा कर्णों को कुंचित करके उड़ने लगा । देखते-देखते वह अनेक पर्वतों, कई देशों, कई नद-नदियों, कई वनों, नगरों तथा समुद्रों को देखते हुए हिमाचल के पार निकल गया । दिशाओं तथा आकाश को कँपाते हुए वह एकाकी शूर आगे बढ़ने लगा।

१२४. कालनेमि का वृत्तांत

गुप्तचरों के द्वारा रावण ने यह समाचार सुना, तो वह हनुमान् के मार्ग में विघ्न डालने का संकल्प करके स्वयं अर्द्धरात्रि के समय कालनेमि के घर पहुँचा । कालनेमि ने अत्यंत श्रद्धा से रावण को अर्घ्य, पाद्य आदि देकर उसका सत्कार किया और पूछा—'हे राजन्, अर्द्धरात्रि के समय आपके यहाँ पधारने का क्या कारण है, कृपया बताइए ।' तब रावण ने कहा—'आज मेरे शक्ति-बाण से आहत लक्ष्मण को पुनर्जीवित करने के उद्देश्य से राम की आज्ञा से हनुमान् संजीवकरणी लाने के लिए जा रहा है । तुम शीघ्र जाकर उस हनुमान् का वध कर डालो, या उसके मार्ग में कोई ऐसा विघ्न उपस्थित करो कि वह सूर्योदय के पूर्व यहाँ पहुँच नहीं सके । द्रोण पर्वत के पास ही देवासुरों से निर्मित एक सरोवर है । उसमें एक महान् मकरी बड़े आनंद से रहती है । वह देवताओं को भी निगल जाने की क्षमता रखती है, तब इस वानर की गिनती ही क्या है ? तुम कोई ऐसी माया रचो कि हनुमान् उस सरोवर में पहुँच जाय । तुम शीघ्र जाओ ।'

रावण की बातें सुनकर, मन-ही-मन नीति-मार्ग का विचार करके, उसने कहा—'हे दनुजेश, माया-मृग का रूप लेकर मारीच गया था और उसकी मृत्यु हुई । आप इस अनुचित मार्ग को त्याग दीजिए । घोर युद्ध में कुंभकर्ण आदि दानव-वीर नष्ट हो चुके हैं । अब तो आप बात मानिए । राम के पास सीता को पहुँचा दीजिए और अपनी लंका विभीषण को देकर आप शिवजी के निवास कैलास पर्वत पर तपस्वी बनकर जीवन व्यतीत कीजिए या योद्धा के समान, युद्ध-भूमि में राम से युद्ध कीजिए और उनके हाथों से प्राण त्यागकर विष्णु-सायुज्य प्राप्त कीजिए ।"

कालनेमि के इस प्रकार कहते ही रावण की आँखें क्रोध से लाल हो गईं और वह अपने चंद्रहास को निकालकर उसका वध कर डालने के लिए उद्यत हुआ । यह देखकर, कालनेमि ने कहा—'हे देव, आपकी आज्ञा का पालन करने मैं अभी जाता हूँ ।'

इसके बाद वह मनोवेग से द्रोण गिरि के निकट पहुँच गया और वहाँ अपनी माया से एक आश्रम का निर्माण किया । उस आश्रम में आम, पुन्नाग, चंपक, पूगीफल, कटहल, चंदन, जामुन, पाटली, बकुल, कदली, खर्जूर, कर्पूर आदि के सुंदर वृक्ष थे । जहाँ-तहाँ ब्रह्मचारियों का वेद-पाठ हो रहा था और महनीय मणिदीप-मालिकाएँ जल रही थीं । फल-फूल तथा लताएँ, होम-धूम से धूमिल हो रही थीं । कलकंठ शुक, नीलकंठ शारिका तथा कलहंसों के मधुर कूजन सर्वत्र सुनाई पड़ रहे थे । स्थान-स्थान पर हवन तथा स्वरयुक्त मंत्रों का पठन हो रहा था । ऐसे माया-आश्रम में कालनेमि एक मुनि के समान कपट वेश धारण किये मन्द प्रकाश में आँखें बन्द करके जप-माला फिराते हुए बैठा था । आकाश-मार्ग से जाते हुए हनुमान् ने इस आश्रम को देखा और सोचने लगा कि मुनि का यह आश्रम कितना भव्य दीख रहा है ! उस दिन (जब मैं यहाँ आया था) यह यहाँ नहीं था, आज यह कहाँ से आया ? कहाँ वह क्षीर-सागर, कहाँ वह मेरु पर्वत और कहाँ मुनियों का यह आश्रम ? कदाचित् मैं मार्ग खो गया हूँ । मैं इस मुनि से मार्ग जान लूँगा । यों सोचकर वह आकाश से पृथ्वी पर उतर आया । वन के पके हुए फल देखकर उसके मुँह में पानी भर आया, किन्तु मुनि-शाप के भय से बिना उनको छुए ही मुनि के समक्ष पहुँच गया और हाथ जोड़कर बोला--'हे मुनिनाथ, महाराज राम के आदेश से मैं क्षीर-सागर के पास जा रहा हूँ । मेरा नाम हनुमान् है । मुझे अत्यधिक प्यास लग रही है, क्या यहाँ कहीं जल मिल सकता है ?' तब उस कपटमुनि ने मंदहास करते हुए कहा--'हमारे कमंडलु का जल पीकर तुम अपनी प्यास बुझा लो । ये फल लो, इन्हें खाकर इस रात को यहीं आराम करो । हे वानरोत्तम, मैं अपने मन में भूत तथा भविष्य की सभी बातें जानता हूँ । राम को धोखा देकर रावण उनकी पत्नी सीता को ले गया है । राम ने सहज ही वालि का वध करके लवण-समुद्र में सेतु को बाँधा और वानर-सेना के साथ लंका को घेरे हुए हैं । उन्होंने कुंभकर्ण आदि राक्षसों तथा इन्द्रजीत का संहार किया है । पुत्र-शोक से क्रुद्ध रावण ने भय से प्राप्त शक्ति-बाण सुमित्रा के पुत्र पर चलाया, तो लक्ष्मण मूर्च्छित हो गिर पड़े । उस लक्ष्मण को जीवित करने के निमित्त ओषधियाँ ले जाने को तुम आये हो । अबतक तुम वायु-वेग से एक सहस्र योजन का मार्ग तय करके आये हो । कोई अधर्मी मुझे देख नहीं सकता । तुम मुझे देख पाये, इससे मुझे निश्चय हो गया है कि तुम उत्तम व्यक्ति हो । जगत् के कल्याण के लिए राम ने जन्म लिया है, इसलिए हमें भी राम का कार्य संपन्न करना चाहिए । मैं तुम्हें ऐसे दिव्य मंत्र दूँगा, जिनसे तुम्हें दिव्य ओषधि दिखाई पड़े । प्रातःकाल के सूर्य का दर्शन करते ही शक्ति से संपन्न होनेवाली संजीवनी आदि कितनी ही ओषधियाँ हमारे इस वन में हैं। उनमें से जो ओषधि चाहिए, उसे तुम लंका ले जाओ । मेरे मंत्रों की शक्ति से तुम पलक मारने की देर में (लंका) पहुँच जाओगे ।'

तब उस कपटमुनि को देखकर हनुमान् ने कहा--'हे तपस्वी । जब लक्ष्मण बुरी दशा में वहाँ पड़े हुए हैं, तब क्या मुझे उचित है कि मैं यहाँ सुख से सो जाऊँ ? हे स्वामिन, अपने प्रभु की कार्य-सिद्धि के रूप में लक्ष्मण को प्राप्त करने के पहले मैं इन फलों

का ग्रहण कैसे कर सकता हूँ ? मेरी प्यास थोड़े-से जल से नहीं बुझेगी । क्या यहाँ कोई सरोवर नहीं है ?' तब उस कपट-मुनि ने कहा—'यहाँ से समीप में ही एक दिव्य सरोवर है। यदि तुम उस सरोवर में आँखें बन्द करके उसके अमृत-सम निर्मल जल का पान करोगे, तो तुम्हारा शरीर दिव्य हो जायगा और दिव्य ओषधि तुम्हें तुरन्त दिखाई पड़ेगी।' इतना कहकर हनुमान् को मार्ग बताने के लिए उस कपटमुनि ने शिष्यों को भेजा ।

हनुमान् कपटमुनि के शिष्यों की सहायता से उस सरोवर के पास पहुँचा । उस सरोवर के तट पर आम, मंदार, माधवी, बकुल, सागवान, कुटज, चन्दन, साल, नीम, अर्जुन, अशोक, निंबु, कदम्ब, तमाल आदि के वृक्ष सुशोभित थे । सरोवर में सुन्दर तथा कोमल कमल, कल्हार तथा विमल कैरव विलसित थे । कहीं कलहंस कल-कूजन करते हुए विलासपूर्ण गति से परस्पर कौतुक करते हुए विहार कर रहे थे, कहीं हंस की चोंचों का स्पर्श करनेवाले बक, क्रौंच तथा कारण्डव पक्षियों का समूह विचरण कर रहा था। किसी स्थान पर कैरव-मुकुलों के अग्र-भाग पर भ्रमर झुंड-के-झुंड अचल बैठे हुए मधुपान कर रहे थे और किसी स्थान पर भ्रमर-समूह मकरन्द-पान करने के निमित्त आया हुआ था, किन्तु कमलिनियों के विकसित न होने के कारण गायकों की तरह उसके चारों ओर मँडराते हुए फिर रहे थे । तोते की चोंचों से चीरे जाने से फलों का रस, पत्तों से होकर लाल कमलिनियों पर ऐसे झर रहा था, मानों सरोवर के तट पर स्थित आम के वृक्ष शिव से (वसन्त के मित्र) कामदेव को फिर प्राप्त करने के उद्देश्य से अग्नियों में घी की आहुति दे रहे हों । दूसरे स्थान में लाल कमलिनियों में झरनेवाला फलों का रस पान करके मधुप आकाश की ओर ऐसे उड़ रहे थे, मानों होमकुंड से धुआँ उड़ रहा हो । वह सरोवर ऐसा दीख रहा था कि मानों कमलपत्र-रूपी थालियों में हिम-शीकर-रूपी अक्षत रखे हुए, उत्फुल्ल कुवलयों के लोचनों से, हनुमान् के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा हो। उस सरोवर को देखकर हनुमान् अत्यधिक हर्षित हुआ और आँखें बन्द करके उस सरोवर में उतर गया और अत्यधिक प्यास के कारण जल का पान करने लगा ।

१२५. मकरी का हनुमान् को निगल जाना

संसार-रूपी सागर में विषय-रस को बड़े चाव से पीनेवाले तृषित व्यक्ति को संसार की माया जसे निगल जाती है, वैसे ही उस सरोवर से उस समय एक विशालकाय मकरी निकली और उसने हनुमान् के चरणों को कसकर पकड़ लिया। हनुमान् ने अपने चरणों को खींच लेने का उद्धत शक्ति से प्रयत्न किया, किन्तु छुड़ा न सका । तब वह बड़े धैर्य के साथ खड़े होकर देखने लगा कि वह क्या है ? ध्यान से देखने पर उसे मालूम हुआ कि वह एक विशालकाय मकरी है । तब उसका क्रोध दुगुना हो गया और उसने भयंकर रूप धारण करके रघुराम की विजय का आधारभूत अपनी पूँछ उठाकर दुर्वार गति से उस मकरी के दाँतों पर प्रहार करके उन्हें गिरा दिया, मानों रावण की भोग-लालसा से संचित पापों को ही झटका देकर गिरा दिया हो, किन्तु वह मकरी हनुमान् को निगल जाने का उपक्रम करने लगी, मानों वह संसत् मुनि के शाप-रूप रोग से मुक्त होने के लिए (हनुमान्-रूपी) ओषधि को खाना चाहती हो । तब वायुपुत्र सोचने लगा—'हाय, राम के कार्य में

विघ्न पड़ गया । कदाचित् मैं यहाँ इस प्रकार मर जाऊँगा । हाय, अब क्या उपाय है ?' फिर, हनुमान् ने यह निश्चय करके कि इसके पेट में पहुँचकर मैं इसका वध कर डालूँगा, मकरी को अपना शरीर निगलने दिया। निदान वह भुजबली अंधकूप के सदृश दीखनेवाले उस मकरी के उदर में पहुँच गया । वह मकरी बड़ी प्रसन्नता से जल के मध्य-भाग में चली गई। तब हनुमान् भयंकर क्रोध से उस मकरी की आँतों तथा नसों को ऐंठने और तोड़ने लगा और विषग्रास की भाँति उस महा मकरी के उदर में अविराम गति से जहाँ-तहाँ घूमते हुए अग्नि की भाँति उसका उदर जलाने लगा । तब वह मकरी धैर्य खोकर प्यास की तीव्रता का सहन नहीं कर सकने के कारण अपने सूखे हुए मुख-गह्वर को खोलकर पड़ रही । तब क्रूर नक्र, ग्राह आदि से युक्त जल-प्रवाह हनुमान् पर गिरने लगा ।* तब वायुपुत्र काटी हुई आँतों का पिंड बनाकर बाहर ले आया और शीघ्र उसका गला घोंट दिया । मकरी ने भी यह सोचकर कि यह आहार पचाने-योग्य नहीं है, अवश हो पड़ी रही । तब हनुमान् ने उसे तट पर घसीटकर उसको चीर डाला । उस समय उस मकरी के रक्त से युक्त वह सरोवर प्रलय-काल में भयंकर वडवानल की ज्वालाओं से युक्त समुद्र के समान लाल दीखने लगा ।

तब वह मकरी देव-स्त्री का रूप धरकर अपनी चंचलता छोड़कर, स्थिरता के साथ बादलों में प्रकाशित होनेवाली बिजली की भाँति विमान में बैठी आकाश-मार्ग में दिखाई पड़ी । पवन-पुत्र के पुण्य प्रताप से शापमुक्त हो वह अत्यन्त हर्षित हुई और वह देव-स्त्री हनुमान् को देख कर बोली--'हे कपिकुंजर, हे वानरेन्द्र, मैं तुम्हारे कारण आज शापमुक्त हुई । मैं अभी इन्द्रलोक में जा रही हूँ । जाने से पहले मैं तुम्हें एक बात बतलाना चाहती हूँ ।' इतना कहकर हनुमान् को सरोवर के निकट भेजनेवाले उस कपट-तपस्वी को दिखाकर बोली--'हे कपिश्रेष्ठ, यह कोई मुनि नहीं है । इस पर विश्वास मत करो । यह एक राक्षस है और दानवेन्द्र के आदेश से तुम्हें मारने के लिए यहाँ आया है । मेरे इस सरोवर में रहने की बात जानकर मुझसे तुम्हें मरवाने के लिए ही यहाँ भेजा । यह वध्य है । इस पर विश्वास मत करो । वह यहाँ रहने योग्य नहीं है। अतः, तुम शीघ्र इसका संहार करके ओषधियों को प्राप्त करने के लिए जाओ । द्रोणाद्रि पहुँचने का मार्ग यही है ।'

१२६. धान्यमालिनी का वृतांत

देव-रमणी की बातें सुनकर हनुमान् को आश्चर्य हुआ । उसने उस रमणी को देखकर कहा--'हे सुन्दरी, पहले तुम मकरी कैसे हुई और फिर अब देव-कांता कैसे बनी ?' तब वह कहने लगी--"हे वीरवर, हे पावनचरित, हे कनकाद्रिसम वीर, मैं धान्यमालिनी नामक गंधर्व-कन्या हूँ । मैं अपना पूर्व-वृत्तांत सुनाता हूँ, सुनो । अखिल लोक के आराध्य सदाशिव जब रजताद्रि पर गोष्ठी में बैठे थे, तब मैंने अपनी नृत्य तथा संगीत-कला का प्रदर्शन करके उनको प्रसन्न किया और उनसे एक अनुपम विमान प्राप्त किया । उस विमान में बैठकर मैं प्रतिदिन इस सरोवर में जलक्रीड़ा करने आने लगी । एक दिन की बात है कि शाण्डिल्य

---

*विशाल मकरी के मुंह खोलने से उसके मुख से होकर मीन, ग्राह आदि के साथ सरोवर का जल उसके शरीर के अन्दर बहने लगा ।—ले०

नामक मुनि यहाँ आये और बड़ी आसक्ति से मुझे देखते हुए मन-ही-मन महान् आनन्द का अनुभव करने लगे । फिर भोग की लालसा से प्रेरित तथा काम-पीड़ा से अभिभत हो, इसका भी विचार किये विना कि कहाँ मेरे जैसा तपोधन तथा पुण्यात्मा मुनि और कहाँ यह सुन्दरी, मुझ पर अनुरक्त हो गये और निर्लज्ज हो, लोलुप दृष्टि से मुझे देखने लगे । यह देखकर मैंने उनसे कहा--'हे मुनीन्द्र, कहाँ आप, कहाँ मैं और कहाँ आपकी यह लोलुप दृष्टि ? आप तपस्वी तथा पुण्यात्मा हैं, आपका यह कार्य आपके तप में विघ्न डालनेवाला है।' तब मुनि कामातुर हो, तपस्या का पवित्र संकल्प त्याग कर कहने लगे--'हे सुन्दरी, यही मेरी तपस्या और पुण्य का फल है, यही मेरे लिए स्वर्ग का सोपान है, यही मेरे लिए मोक्ष का साधन है !' तब मैंने उनसे कहा--'हे मुनि, मैं अभी रजस्वला हूँ, अतः आपको मेरा स्पर्श नहीं करना चाहिए । इन दिनों मैं आपके ही घर में रहूँगी । स्नान तथा शुद्धि के पश्चात् आप मुझे प्राप्त कर सकते हैं ।' इस प्रकार, मुनि को समझा-कर मैं उस मुनि के साथ गंधमादन को गई और मुनि के घर में ही निष्ठा से रहने लगी । उस दिन रात को रावण सभी दिशाओं पर विजय प्राप्त करके अपनी सेना के साथ उस पर्वत पर ठहरा । जब मैं पर्वत-शिखर पर गाने लगी, तब मेरा गाना सुनकर रावण मेरे पास आया और अपना प्रताप, अपना सौन्दर्य, अपनी महत्ता तथा अपना नाम बताकर मुझे प्रलोभन देने लगा कि 'हे सुन्दरी, तुम अपने रूप-यौवन तथा विलास के साथ मेरा आलिंगन करो ।' मैंने कहा--'मैं विवश हूँ, अतः तुमको मेरा स्पर्श नहीं करना चाहिए ।' तब उस राक्षस ने कहा--'हे सुन्दरी, मेरे लिए रजस्वला स्त्रियाँ तथा परस्त्रियाँ अधिक प्रिय हैं, अतः तुम मुझे मत ठुकराओ ।' इस प्रकार मुझे अपने प्रिय वचनों से प्रसन्न करके उसने मेरे साथ रति-क्रीड़ा की । इससे अतिकाय का जन्म हुआ । मैंने उस पुत्र को दानवेन्द्र को सौंप दिया । तीन दिन के पश्चात् शुद्धि-स्नान आदि से निवृत्त होकर मैं मुनीश्वर के समक्ष जाकर खड़ी हो गई । तब उस मुनि ने मुझे देखकर कहा--'मेरे घर में रहती हुई, तुम मुझे धोखा देकर किसके साथ प्रीति से रति क्रीड़ा में प्रवृत्त हुई थी ? हे तन्वी, तुम्हारे यौवन का उपभोग किसने किया ? तुमने विना सोचे-समझे ऐसा क्यों किया ? यदि विवेक के साथ विचार किया जाय, तो तुम्हारी यह करतूत स्त्री-सुलभ ही प्रतीत होती है । परहित कहाँ और युवतियाँ कहाँ ? शीलाचरण कहाँ और सुंदरियाँ कहाँ ? कमललोचनियाँ कहाँ और सत्य कहाँ ? कामिनियाँ कहाँ और करुणा कहाँ ? (काश,-- दोनों बातें एक साथ ही देखी जातीं ?) इस प्रकार कहते हुए उस मुनि ने अत्यधिक क्रोध से निर्दय हो मुझे घोर शाप दिया--'तुम अपने विलास को खोकर इस सरोवर में मकरी बनकर रहो । जिसने तुम्हारे साथ रति-क्रीड़ा की, वह तुम्हारे इस पाप से अपने पुत्र, मित्र तथा सेना के साथ भस्म हो जायगा ।'

"मुनि का यह घोर शाप सुनकर मैं विचलित हो उठी और उस पुण्यात्मा के समक्ष हाथ जोड़कर कहने लगी--'हे मुनिश्रेष्ठ, मैं इस शाप-रूपी समुद्र को किस नौका की सहायता से पार कर सकूँगी ? इस शाप-रूपी दावानल को मैं किस जल से बुझा सकूँगी ? हे दयालु, मुझ पर दया दिखाइए ।' भयाक्रान्त हो, इस प्रकार आर्त्तनाद करनेवाली मुझे देखकर

ज्ञान-दृष्टि से अनुमान करके, उस कृपानिधान ने कहा--'हे सुन्दरी कुछ समय के पश्चात् हनुमान् राम के कार्यार्थ यहाँ आनेवाला है। उसके द्वारा तुम्हारे शाप की मुक्ति होगी।' इतना कहकर वह मुनि गंगा नदी के तट पर चले गये। आज मैं शाप-मुक्त हो गई हूँ। अतः मैं जा रही हूँ।" यों कहती हुई वह कमलाक्षी हनुमान् को आशीर्वाद देकर वहाँ से स्वर्ग चली गई।

१२७. कालनेमि का वध

हनुमान् वहाँ से सीधे कालनेमि के सामने उपस्थित हुआ। उस समय वह पापी, अचल समाधि में निमग्न रहनेवाले (मुनि) की भाँति कुंभक-क्रिया के द्वारा अपने वक्षःस्थल को फुलाकर मुख को किंचित् झुकाकर, ध्यान-मग्न रहनेवाले की भाँति आँखें बंद किये हुए जप-माला को फेरते हुए जप करनेवाले की भाँति ओंठ हिलाते हुए बैठा था। हनुमान् के आते ही उसने आँखें खोलकर, हनुमान् से कहा--'सरोवर निकट ही तो है? तुमने इतना विलंब क्यों किया? देखो कितनी रात बीत गई है। यदि तुम मंत्रोपदेश ग्रहण करने की इच्छा रखते हो, तो क्या गुरु-पूजा की व्यवस्था कुछ करोगे?'

तब पवनपुत्र ने कहा--'लो, अब तुम्हारे लिए यही गुरु-पूजा है।' यों कहकर उसने अपनी कठोर मुष्टि से उस राक्षस के बाहुमध्य में प्रहार किया। तुरन्त उस दैत्य ने अपना वह रूप छोड़कर एक पक्षी का रूप ले लिया और हनुमान् पर आक्रमण किया। उसके आक्रमण करते ही हनुमान् ने उसे कसकर पकड़ लिया और उसके दोनों पंखों को तोड़कर फेंक दिया। तुरन्त उस राक्षस ने वह रूप भी त्याग दिया और अपनी माया से एक गंभीर सिंह का रूप धारण किया और आकाश की ओर भयंकर दृष्टि को दिखाते हुए गर्जन करके हनुमान् को धमकाने लगा। किन्तु, हनुमान् निर्भीक हो अपनी मुष्टि से उस कालनेमि के सिर पर ऐसा प्रहार किया कि उसका सिर फट गया। तुरन्त वह राक्षस सिंह का रूप भी छोड़कर सुग्रीव के रूप में आया और कहने लगा--'हे पवनपुत्र, यहाँ क्या कर रहे हो? चलो, लक्ष्मण के प्राण लौट आये हैं। अब तुम्हें द्रोणाचल जाने की आवश्यकता नहीं है। अब हमें ओषधि नहीं चाहिए।' पहले हनुमान् को भ्रम हुआ कि वह सुग्रीव ही है, किन्तु ध्यानपूर्वक देखने के पश्चात् निश्चय कर लिया कि वह सुग्रीव नहीं है। तब अत्यन्त क्रोध से उसके वक्ष पर ऐसा प्रहार किया कि वह राक्षस मूर्च्छित होकर गिर पड़ा, किन्तु शीघ्र ही वह दानव सँभल गया और शतशृंगी होकर धनुष से पैने शर चलाकर हनुमान् को कष्ट पहुँचाने लगा। तब हनुमान् ने भी अपनी मुष्टियों तथा चरणों के आघात से उसकी सारी शक्ति शिथिल कर दी और उसे आकाश से पृथ्वी की ओर खींच लिया। उसके पश्चात् उसने राक्षस का सिर ऐंठकर उसे धड़ से अलग करके पृथ्वी पर ऐसा फेंक दिया, जैसे मत्त गज मृणाल को तोड़कर फेंक देता है। उसके बाद विजय-गर्व से सिंहनाद करते हुए हनुमान् तुरन्त द्रोणाचल पर पहुँच गया।

द्रोणाचल पर पहुँचकर हनुमान् अनेक दिव्य लताओं की आभा से तथा निर्मल मणिसमूह की कांतिवाले दीप-वृक्षों की दीप्ति से भासमान उस पर्वत पर घूम-घूमकर दिव्य ओषधियों का अन्वेषण करने लगा। वह किसी लता को देखकर 'यही वह सुगंधि है, यही

वह लता है,' ऐसा विचार करके उसके पास पहुँचता, तो वह लता छिप जाती । यह देखकर हनुमान् मन-ही-मन दुःखी हो कहने लगा--'हे पर्वतेश्वर, हे पर्वतराज, हे पुण्यात्मा, अनघ रघुराम की आज्ञा से दिव्य ओषधि ले जाने के निमित्त मै आया हूँ। हे नगराज, जो कार्य समस्त लोकों के हित में है, उसको संपन्न करने के लिए आये हुए मुझे आप क्यों इस प्रकार धोखा दे रहे हैं ? आप शीघ्र अपने पास रहनेवाली ओषधि-लताओं को प्रकट कीजिए। मुझे शीघ्र जाना है । हे ओषधि-लताओ, यह कार्य लोक-हितार्थ है । अतः, मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप अपनी सुन्दर आकृति दिखाइए ।' इस प्रकार प्रार्थना करने पर भी वे लताएँ अपने रूप छिपाये रहीं । तब हनुमान् ने फिर कहा--'हे नगकुलतिलक, मेरे आगमन को देखकर आपने मेरा उचित सत्कार नहीं किया, यह उचित नहीं है ।'

कई बार विनम्र प्रार्थना करने पर भी जब उस पर्वत ने दिव्य ओषधि-लताओं को नहीं दिखाया, तब हनुमान् अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और कहने लगा--'हे नगकुलाधम, मेरे इतनी प्रार्थना करने भी तुम्हारा मन मेरी ओर द्रवीभूत नहीं हुआ । भला, गुणहीन तथा कठोर पत्थर में दया कैसे उत्पन्न होगी ?'

इतना कहते-कहते हनुमान् की क्रोधाग्नि की ज्वालाएँ उनके रोम-रोम में व्याप्त हो गईं । तुरन्त उसने दस योजन विशाल तथा दस योजन ऊँचा रहनेवाले उस भयंकर पर्वत को सहज ही उखाड़ लिया, मानों यह बता रहा हो कि मैं राम का सामना करनेवाले रावण-रूपी पर्वत को भी इसी प्रकार उखाड़ डालूँगा । उस समय सारी पृथ्वी हिल उठी और आकाश काँपने लगा ।

इन्द्र के आदेश से उस पर्वत की रक्षा करनेवाले अग्नि-सम तेजस्वी चित्रसेन आदि तेरह करोड़ गंधर्व अपने बल तथा शौर्य का प्रदर्शन करते हुए हनुमान् से कहने लगे--'यह देवगण का निवास है । यह मेरु-तुल्य पर्वत है और यह जगत् का जीवन है । इसे तुम मत ले जाओ । तुम इसे नहीं ले जा सकोगे । इसलिए इसे यहीं छोड़ जाओ । यदि नहीं मानोगे, तो तुम्हारे प्राण नहीं बचेंगे ।' तब युद्ध में यम की भाँति भयंकर दीखनेवाले हनुमान् ने क्रुद्ध होकर उनकी ओर देखा और उन्हें अपनी पूँछ-रूपी पाश से बाँधकर, तेजी से घुमाया और कुछ लोगों को समुद्र में फेंक दिया, कुछ लोगों को मार डाला और कुछ लोगों को पृथ्वी पर पटककर नष्ट कर दिया । उस महावीर की उद्धत शक्ति देखकर गंधर्वों ने सोचा कि उसको पराजित करना असंभव है । अतः, दीन होकर उन्होंने हनुमान् के समक्ष बड़ी भक्ति के साथ हाथ जोड़कर कहा--'हे कपिकुंजर, हे वानरेन्द्र, आप इस पर्वत को ले जाइए ।' इस प्रकार कहते हुए गंधर्व-वीर आशीर्वाद देकर चले गये, तब पवनपुत्र उस पर्वत को उठाकर आकाश की ओर उड़ा और अपने भयंकर वेग से भूचर तथा खेचर को आश्चर्य-चकित करते हुए जाने लगा ।

१२८. भरत का स्वप्न

उसी दिन अर्द्धरात्रि के समय भरत ने स्वप्न में देखा कि राम तथा लक्ष्मण रण-भूमि में सिर पर तैल लगाये हुए, क्लान्त शरीर तथा बलहीन हो, पंक के मध्य में पड़े छटपटाते हुए रुदन कर रहे हैं । यह देखकर भरत चौंककर जाग पड़े और अपने

दुःस्वप्न के कारण व्याकुल होते हुए घर से बाहर निकल आये । वे बार-बार स्वप्न में देखी हुई राम-लक्ष्मण की दशा की कल्पना करके व्याकुल होते रहे । साथ-ही-साथ, उसी समय उन्होंने कई और दुःशकुन देखे, तो वे और भी भयभीत हो सोचने लगे, यह कैसा पाप है ? कैसा अपशकुन है ? न जाने भविष्य में क्या होनेवाला है ? न जाने वन में राम तथा लक्ष्मण को क्या हो गया है ? न जाने, जानकी की क्या दशा हुई ? चौदह वर्ष पूरे होने को हैं, किन्तु उनका कोई समाचार नहीं मिल रहा है । सत्यनिष्ठ, उदार, सदाचारी, कृतार्थ, उन लोगों के लिए मैं अपना सारा पुण्य अर्पण करता हूँ, जिससे उनपर कोई विपत्ति न आये ।

इस प्रकार सोचकर भरत ने तुरन्त वेदनिष्ठ ब्राह्मणों को बुलाया और वेदविधि से सब प्रकार के दान-धर्म आदि करके, हवन आदि के द्वारा शान्ति-कर्म कराया ।

उसी समय हनुमान् आकाश-मार्ग से चंचल बाल-सूर्य की भाँति, नंदीग्राम के ऊपर होकर जाते हुए, जटाभार एवं वल्कल धारण किये हुए, राम के समान दिखाई पड़नेवाले, घनश्याम वर्णवाले सूर्यवंशज भरत को देखकर अत्यन्त आश्चर्य-चकित हो सोचने लगे—'क्या सौमित्र की मृत्यु हो जाने से सीता को भी तजकर रामचन्द्र अकेले यहाँ आ गये हैं?, क्या मैं इनसे पूछकर जान लूँ ?' फिर, वह कपिकुलोत्तम हनुमान् (भरत से) न पूछने का निश्चय करके मन-ही-मन सोचने लगा—'रघुराम शरणागतरक्षक, सद्धर्मनिरत तथा श्रेष्ठ बलशाली हैं । क्या, वे अपने सत्य तथा यश की उपेक्षा करके अपनी धर्मपत्नी तथा अनुज को त्याग कर सुग्रीव आदि वानर-वीरों को युद्ध-क्षेत्र में ही छोड़ रावण को सजीव छोड़कर अकेले यहाँ आयेंगे ? ऐसा कभी नहीं हो सकता । एक साधारण मनुष्य की भाँति सोचकर मैंने राम के प्रति अपराध किया है । कदाचित् राम से मिलता-जुलता कोई और तपस्वी यहाँ रहता होगा ।' इस प्रकार सोचते हुए हनुमान् शीघ्रगति से लंका के मार्ग में जाने लगे ।

उसी समय भरत आकाश-मार्ग से जानेवाले हनुमान् को देखकर सोचने लगे—'न जाने क्यों यह दुष्ट-ग्रह यहाँ दिखाई पड़ रहा है। इसे अपने भयंकर बाणों से नीचा गिराना चाहिए ।' ऐसा निश्चय करके शक्तिशाली धनुष-बाण हाथ में लेकर वे बाण चलाने का उपक्रम करने लगे । उसी समय आकाशवाणी हुई—'हे अनघ, तुम इसके प्रति मित्र-भाव रखो, यह तुम्हारा हित है, इस पर तुम क्रोध मत करो ।' इस आकाशवाणी को सुनकर भरत ने धनुष-बाण नीचे डाल दिया ।

१२९. हनुमान् का माल्यवान् से युद्ध करना

निदान हनुमान् समुद्र के निकट पहुँच गया। इतने में रावण की आज्ञा से माल्यवान् ने अपने दस करोड़ महाबली तथा पराक्रमी राक्षस-सैनिकों के साथ आकर हनुमान् का मार्ग रोका । हनुमान् ने द्रोण पर्वत को सावधानी से थामे हुए, उन राक्षसों का सामना किया । राक्षस-वीर भी बड़ी भयंकर गति से हनुमान् से भिड़ गये और परशु, तोमर, चक्र, शूल, करवाल एवं मुद्गर आदि अस्त्र चलाते हुए हनुमान् को मारने लगे । किन्तु, अनुपम विक्रमी पवनकुमार ने उनके प्रहारों की परवाह किये विना, अपनी भयंकर पूँछ से राक्षस-

वीरों को बाँधकर समुद्र में फेंक दिया, उसने कुछ राक्षसों को पद-प्रहार से मार डाला, कुछ वीरों को अपने भयंकर गर्जन से मार डाला, कुछ राक्षसों का अपनी पूँछ से संहार किया और अपनी दृष्टि-मात्र से कुछ राक्षसों का वध कर दिया। कुछ राक्षसों को उसने नीचे गिरा दिया, कुछ राक्षसों को दबा दिया और कुछ को चीर डाला।

तब माल्यवान् क्रोधोन्मत्त होकर यम के समान भयंकर रूप धारण किये हुए हनुमान् पर शर-वृष्टि करने लगा। किन्तु, हनुमान् ने उन बाणों को अपनी पूँछ से ही तोड़ डाला और क्रोध से उसके धनुष को खंड-खंड कर दिया। फिर, उसने अपनी पूँछ से माल्यवान् के पैरों को बाँधकर ऊपर उठाया और पृथ्वी पर पटक दिया। तब माल्यवान् ने हनुमान् पर अपना शूल चलाया। उसकी भी उपेक्षा करके खड़े हुए हनुमान् को देखकर उस राक्षस ने अपनी शक्ति से उसके वक्ष पर भयंकर प्रहार किया। इस आघात से हनुमान् के वक्ष से रक्त की धारा बहने लगी। हनुमान् थोड़ी देर तक मौन खड़ा रहा, और फिर अत्यधिक रोष से उस राक्षस के सिर पर भयंकर पद-प्रहार करके आकाश में जाकर उड़ गया। इससे राक्षस का सिर फूट गया और उससे रक्त की धारा बहने लगी। माल्यवान् इस भयंकर प्रहार से थोड़ी देर तक मूर्च्छित पड़ा रहा, किन्तु शीघ्र ही सचेत होकर उसने हनुमान् पर अपनी गदा फेंकते हुए कहा—'युद्ध में यही गदा तुम्हारा अन्त कर देगी।' उस गदा के लगने से भयंकर ज्वालाएँ निकल पड़ीं। यह देखकर माल्यवान् ने कहा—'हे वानर, इस पर्वत को समुद्र में फेंककर जाओ, तो मैं तुम्हारा वध नहीं करूँगा। पूर्वकाल में समुद्र के मध्य में गरुड़ पर आरूढ हो विष्णु स्वयं मुझसे युद्ध करने आया था और मुझे अजेय जानकर लौट गया था। मेरा प्रताप सारा संसार जानता है, तुम मुझसे युद्ध नहीं कर सकते।'

तब हनुमान् ने माल्यवान् को देखकर क्रोध से कहा—'हे वृद्ध राक्षस, मेरे प्रताप से भीत हुए विना तुम मुझसे युद्ध करने चले हो? तुम्हारी शक्ति ही कितनी है?' हनुमान् के इन दर्प-पूर्ण वचनों को सुनकर माल्यवान् का क्रोध और भी बढ़ गया। उसने अपने भयंकर खड्ग चन्द्रहास को निकालकर उद्धत शक्ति से उसे हनुमान् पर चलाया। हनुमान् के वज्रसम शरीर पर लगते ही वह चन्द्रहास चूर-चूर हो गया। उस खड्ग के प्रहार से हनुमान् ने थोड़ी देर तक पीड़ा का अनुभव किया, किन्तु शीघ्र ही सँभलकर अपनी भयंकर पूँछ को उस राक्षस के कण्ठ में लपेटकर आकाश में बड़े वेग से घुमाकर फिर समुद्र में फेंक दिया। माल्यवान् समुद्र में गिरकर उसी मार्ग से पाताल में पहुँच गया। हतशेष राक्षस धैर्य खोकर भाग गये। पर्वत जैसी विशाल विजय को तथा पर्वत को लिये हुए हनुमान् आगे बढ़ा, तो सभी देवता उसकी प्रशंसा करने लगे।

१३०. लक्ष्मण के लिए राघव का शोक

द्रोण पर्वत की दीप्ति को दूर से देखकर सूर्यवंशज राम को भ्रम हुआ कि प्रभात होनेवाला है। तब अत्यन्त भय-विह्वल हो, समरलक्ष्मी-रतिश्रांत लक्ष्मण को रण-शय्या पर सोते देखकर राम कहने लगे—'हे लक्ष्मण, तुम्हारे जैसे अनुज के रहने से ही मैं वन-गमन की तपस्या का भार वहन कर सका। वह देखो, संसार के समस्त जीवों के लिए दिन निकल रहा है, किन्तु मेरे लिए दिन डूब रहा है। मैं वन में पत्नी को खो बैठा

और युद्ध में तुमको खो दिया । हे सौमित्र, अब मुझे संप्राप्त अपयश-रूपी पंक को कौन धो सकेगा ? यदि माता सुमित्रा मुझे देखकर कहें कि हे तात, बड़ी तपस्या के उपरान्त प्राप्त, उन्नत, पुण्यशील, महनीय चरित्रवान्, मानधन अपने पुत्र को मैंने तुम्हारा विश्वास करके तुम्हें सौंपा था । ऐसे पुत्र को वन में ले जाकर तुमने उसका अन्त कर दिया, अब मैं क्या करूँ ? तब मैं उनसे क्या कहूँगा ? मुझसे मिलने के लिए जब भरत तथा शत्रुघ्न आयेंगे और पूछेंगे कि लक्ष्मण कहाँ है, तो मैं क्या उत्तर दूँगा ? दीन होकर मैं वहाँ जाऊँगा भी कैसे ? मैं इसके कारण चिन्तित तथा दुःखी नहीं हूँ । मेरी चिन्ता का कारण दूसरा है । पापी रावण के दुष्कर्मों को देखकर मन-ही-मन दुःखी हो, अपने भाई का त्याग कर मेरा मित्र तथा सेवक बनकर विभीषण ने मेरी शरण ली । ऐसे शरणार्थी विभीषण को आश्वासन देते हुए मैंने कहा था--'मैं तुम्हें राक्षसों का राज्य देता हूँ ।' मैंने उसका राज्यतिलक भी कर दिया। किन्तु, उस प्रण को पूरा करने की क्षमता मुझमें नहीं रही । लो, सूर्योदय भी होने लगा है, अब लक्ष्मण के बचने की आशा नहीं है । मुझे भी अब जीवित नहीं रहना चाहिए। पापरहित लक्ष्मण के जीवन के साथ ही मेरा जीवन है। अब यह शोक मेरे लिए असह्य हो गया है । किन्तु, शरणार्थी को त्यागना नहीं चाहिए, इस पृथ्वी पर यह क्षत्रियों का धर्म नहीं है । राजाओं को चाहिए कि स्वयं दुःख भोगते हुए भी, अपने आश्रितों की रक्षा करे । इसलिए हे सुग्रीव, तुम इस विभीषण को साथ लेकर अयोध्या जाओ और पुण्यात्मा भरत को यहाँ का सारा समाचार समझाकर कहो और उन्हें मेरा यह आदेश सुनाओ कि वह इस विभीषण को लंका के बदले अयोध्या का राज्य देकर पुण्य-लग्न में इसका राजतिलक कर दे । उसके पश्चात् तुम तथा वालिपुत्र दोनों अपनी सेनाओं को लेकर किष्किन्धा को लौट जाना ।"

राम को ऐसे दीन वचन कहते सुनकर सुग्रीव अत्यंत संभ्रमित हुआ । वह सान्त्वना देते हुए कहने लगा--'हे देव ! ध्यानपूर्वक देखने से पता चलता है कि अभी प्रभात नहीं होगा । अभी तो रात का चौथा पहर प्रारंभ हुआ है । वायुपुत्र शीघ्र आ जायगा । आप संताप त्यागिए ।' फिर भी, राम अत्यधिक शोकाग्नि में जलते हुए पृथ्वी पर लोट-लोटकर कहने लगे--'हे तात, मैं जब पिता की आज्ञा से अकेले वन के लिए चला, तो तुम बिना पिता के आदेश लिये ही अपने-आप मेरे साथ चले आये और असंख्य दुःख भोगते रहे । इसे देखकर मैं बहुत दुःखी होता था । आज तुम शत्रु के हाथों में अपनी शक्ति खोकर इस प्रकार पृथ्वी पर पड़े हुए हो । अब मैं कैसे जीवित रह सकूँगा ? कैसे यह दुःख सह सकूँगा ? कौन-सा मुँह लेकर अयोध्या को लौटूँगा ? अब मुझे सीता किसलिए चाहिए ? अब मेरा जीवन ही किस काम का है ? मुझे अब राज्य किसलिए चाहिए ? जिस दिन पिता ने मुझे यहाँ भेजा, उसी दिन से तुम मुझे पितृवत् मानते आ रहे हो । मेरे भाग्य ने आज रुष्ट होकर रावण के द्वारा तुम्हारी ऐसी गति करा दी । भिन्न-भिन्न देशों में खोजने के पश्चात् योग्य पत्नियों को प्राप्त किया जा सकता है, देश-देशान्तरों में भ्रमण करके बंधु-जनों को भी प्राप्त कर सकते हैं, किन्तु अनुज को प्राप्त करना असम्भव है ।' इस प्रकार, विलाप करते हुए राम अनुज के चेतना-हीन शरीर पर

गिर पड़े । फिर अधीर होकर कहने लगे--"हे लक्ष्मण, तुम मुझे भाई कहकर कब पुकारोगे ? तुम सीता को सुमित्रा की भाँति, मुझे महाराज दशरथ की भाँति और इस घनघोर कानन को अयोध्या के समान मानते थे । पुष्प-शय्या पर लिटाने योग्य अपने शरीर को आज तुम पत्थरों पर कैसे लिटा सके ? हे राजकुमार, साधना की समाप्ति पर ही निद्रा उचित है। ऐसा सोचकर तुमने चौदह वर्षों तक निद्रा का त्याग कर दिया और वन में मेरी रक्षा करते रहे । आज युद्ध में शत्रुओं का संहार किये विना ही तुम सो रहे हो, क्या, यह तुम्हारे लिए उचित है ? यदि तुम इस प्रकार पड़े रहो, तो तुम्हारा अग्रज भी दीर्घ-निद्रा (मृत्यु) को प्राप्त होगा । तुम सतत अपने अग्रज की बड़ी भक्ति करते रहे, आज क्यों नहीं कर रहे हो ? तुम सतत मेरे वचनों का आदर करते रहे, आज मेरी परीक्षा क्यों ले रहे हो ? 'हे पुण्यमूर्त्ति, युद्ध में रावण का संहार करके सीता को आपकी सेवा में उपस्थित करूँगा' ऐसे श्रुति-मधुर वचन कहनेवाले तुम आज किस कारण से मौन साधे हुए हो ? तुम उठो और 'हे देव, ऐसे अनुचित वचन कहना आपको शोभा नहीं देता ।' ऐसे वचनों से मुझे सांत्वना दो और आँखें खोलकर मुझे देखो ।" ऐसे विलाप करते हुए राम ने लक्ष्मण के अरुण हस्त को अपनी कनपटी से लगाया और 'हे लक्ष्मण मेरा उद्धार करो' यों कहते हुए ही मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े। तब वानर-वीरों ने उपचार करके राम की मूर्च्छा दूर की और उन्हें सांत्वना देने लगे ।

१३१. हनुमान् का द्रोण-पर्वत ले आना

इसी समय प्रभा-मंडल से दीप्त होते हुए हनुमान् आता हुआ दिखाई पड़ा । तेजोमय सूर्य-सम उसकी दीप्ति के आधिक्य के कारण उसपर दृष्टि ठहरती नहीं थी । उसे देखकर सभी वानर अत्यधिक भयभीत हो गये और संभ्रम-चित्त हो व्याकुल हो उठे । रामचन्द्र ने भी उसे सूर्य ही समझ लिया और प्रलय-काल के यम के समान क्रोध से जलते हुए सभी वानरों को देखकर कहने लगे--'हे वानरो, तुम लोगों ने आकाश में निकलनेवाले सूर्य को देखा ? पुण्य तथा शील से समन्वित हमारे वंश का आरम्भकर्त्ता, अन्धकार का शत्रु तथा कमल-बंधु यह सूर्य आज शत्रु से मिल गया है और लक्ष्मण के ऐसे पड़े रहते हुए निकल रहा है। अब मैं इस सूर्य-मंडल को पृथ्वी पर गिरा दूँगा ।' इस प्रकार कहते हुए दुर्वार साहसी राम ने धनुष को अपने हाथ में ऐसे सँभाला, जैसे प्रलय के समय शिवजी ने ब्रह्माण्डों का भंजन करने के निमित्त ब्रह्मा आदि देवताओं को भयभीत करते हुए अपने हाथ में पिनाक धारण किया था । उस समय अपने पूर्ण बाहुबल से युक्त राम स्वयं शिवजी के समान दीप्त होने लगे । अत्यन्त क्रोधोन्मत्त हो शीघ्र उन्होंने ही अपने धनुष पर रौद्र-अस्त्र का संधान किया। राम की अद्वितीय शक्ति से परिचित जांबवान् ने भय से व्याकुल होते हुए क्रोधोद्दीप्त राम को देखकर कहा--'हे देव, क्रोधावेश से अपनी दुर्वार शक्ति का प्रदर्शन करते हुए आपके इस प्रकार शर-संधान से देव तथा गंधर्व धैर्य खोकर चारों ओर भाग रहे हैं । हे राघव, यह कैसा आश्चर्य है कि आप (आकाश की ओर) सावधानी से देखकर भी सचाई समझ नहीं पाये। यह जो प्रकाश दीख रहा है, वह सूर्य का नहीं है, किन्तु अनेक दीप्त वृक्षों की कांति से परिपूर्ण उज्ज्वल द्रोणाचल है,

जिसे गुरुसत्त्व-संपन्न (महान् शक्तिशाली) पवनकुमार लिये आ रहा है । सूर्य-सम तेजस्वी पवनपुत्र की अगवानी करने के लिए आप वानर-वीरों को भेजिए ।' तब रघुराम की आज्ञा से हनुमान् के स्वागतार्थ वानर गये ।

हनुमान् आकाश से नीचे उतर आया और उस पर्वत को पृथ्वी पर रख दिया । फिर, उसने रामचन्द्र के समक्ष उपस्थित होकर उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा--'हे देव, मैंने द्रोणाचल पर जाकर ओषधियों के लिए बहुत ढूँढ़ा, किन्तु उनको प्राप्त नहीं कर सका, इसलिए मैं उस पर्वत को ही उठा लाया हूँ । आपकी आज्ञा प्राप्त करके यहाँ से द्रोणाद्रि जाते समय तथा वहाँ से लौटते समय मेरे मार्ग में कई विघ्न उपस्थित हुए, अतः विलंब हो गया । इसे आप मन में नहीं लाइए ।' तब राम हनुमान् को देखकर बड़ी प्रसन्नता से कहने लगे--'हे पवनपुत्र, भला तुम में कोई दोष हो सकता है ? तुम्हारे कारण ही तो काकुत्स्थ-वंशजों के यश तथा गौरव आज स्थिर रह पाये । अपनी अनुपम शक्ति से तुमने आज देवताओं के लिए भी असाध्य कार्य संपन्न किया है ।'

१३२. संजीवकरणी से लक्ष्मण की मूर्च्छा का दूर होना

तब सुग्रीव ने सुषेण को देखकर कहा--'तुम दूसरे वानरों के साथ इस पर्वत पर चढ़ जाओ और आवश्यक महौषधियों को लाकर लक्ष्मण की मूर्च्छा दूर करो ।' तब सुषेण अन्य वानरों के साथ शीघ्र उस पहाड़ पर चढ़ गया । वह अपने साथियों को पर्वत पर भिन्न-भिन्न स्थलों को दिखाकर कहता था--'यहाँ पर इन्द्र ने अमरों के साथ अमृत-पान किया था । यहाँ पर विष्णु ने जगत् के कल्याणार्थ अपने चक्र से राहु का सिर काटा था ।' फिर, वह उस पर्वत से आवश्यक ओषधियों का संचय करके ले आया और लक्ष्मण पर उनका प्रयोग किया । उन ओषधियों के प्रभाव से लक्ष्मण के शरीर में गड़े हुए बाण निकल आये और लक्ष्मण की चेतना लौट आई । सभी वानर आनन्द के अतिरेक से भरे रामचन्द्र के समक्ष आ पहुँचे ।

तब राम ने सौमित्र को हृदय से लगा लिया और आँखों से हर्ष के अश्रु बहाते हुए समीरकुमार को देखकर कहने लगे--'हे पुण्यात्मा, आज तुमने मुझे सौमित्र का दान दिया । तुम्हारे कारण आज मैं काकुत्स्थ-वंशज कमनीय गात्रवाले लक्ष्मण को प्राप्त कर सका । गिरे हुए मेरे भाई को पुनर्जीवित करके तुमने मेरे प्राण बचाये । मेरा यह भाई मेरे प्राणों के समान है । तुम मेरे प्राण-बंधु हो तथा परम मित्र हो । तुम्हारे द्वारा ही यह कार्य संपन्न हो सकता था । अन्यों के द्वारा इसकी पूर्ति असम्भव थी। हे वानर-वीर, उपकार का प्रत्युपकार करना उत्तम है। किन्तु मैं तुम्हारा कोई प्रत्युपकार नहीं कर सकता; क्योंकि समस्त लोकों में तुम्हारे लिए कोई विपत्ति ही नहीं है ।' इसके पश्चात् राम ने सुषेण की भी प्रशंसा की और उसे हृदय से लगा लिया । सुषेण आनन्द से समुद्र के समान फूल उठा । उसने राम की अनुमति से रण में गिरे हुए वानरों को पुनर्जीवित किया । सभी वानरों ने मन-ही-मन अत्यन्त हर्षित होते हुए राम की अनुमति पाकर उस पर्वत के समस्त रत्नों से युक्त उज्ज्वल सानुओं तथा शृंगों पर विचरण किया, विविध स्थलों को देखा, परिपक्व फलों को छककर खाया, मधु का जी भरकर पान किया, अमृतोपम जल

पिया, और उसके पश्चात् पर्वत से नीचे उतर आये । तब राघव ने पवनकुमार को देखकर कहा--'इस पर्वताधीश को उसके स्थान पर फिर प्रतिष्ठित कर आओ ।'

राम की आज्ञा प्राप्त करके हनुमान् अपनी अपार शक्ति से उस पर्वत को उठाकर आकाश-मार्ग से जाने लगा । समुद्र के मध्य में राक्षसों ने यह देख लिया और तुरन्त रावण को इसकी सूचना दी । तब लंकेश्वर ने विजयधन, शंकुकर्ण, स्थूलजंघ, महानाद, महावक्त्र, चतुर्वक्त्र, मेघजीत, हस्तिकर्ण, महावीर, जैत्र, उल्कामुख आदि राक्षसों को बुलाकर कहा--'तुम लोग अपने अनुपम पराक्रम से हनुमान् का मार्ग रोककर उसे पकड़कर ले आओ, या वह जिस पर्वत को ले जा रहा है, उसे उसके हाथ से छीनकर समुद्र में गिरा दो । इन दोनों में किसी एक कार्य को पूरा कर सकोगे, तो मैं अपना आधा राज्य अभी तुमको दूँगा ।'

यह सुनकर वे अपनी महाशक्तिशाली सहस्रों विपुल सेनाओं के साथ, दानव तथा अमरों का वेष धारण किये हुए, खड्ग, तोमर, शूल, धनुष, परशु, भाले आदि शस्त्रों को धारण किये हुए चल पड़े । उन्होंने बड़े दर्प से गर्जन एवं हुंकार करते हुए, प्रलय-काल के मेघ जैसे सूर्य को घेर लेते हैं, वैसे ही, हनुमान् को घेर लिया और उसका मार्ग रोककर गर्जन करते हुए, वे दुर्मति कहने लगे--'हम देवासुरों को देखने के निमित्त (पर्वत सौंपने के निमित्त) ही तो तुम जा रहे हो । अब इस पर्वत को लिये कहाँ जा रहे हो ?' तब हनुमान् उनको देखकर आँखों से प्रलय-काल के अग्नि-स्फुलिंगों को विकीर्ण करते हुए काल-चक्र के आकारवाली वज्र-सम कठोर अपनी पूँछ को भयंकर गति से घुमाते हुए उससे उन राक्षसों पर प्रहार करने लगा । तब राक्षसों ने भी (अपने शस्त्रों से) हनुमान् को अच्छी तरह मारा । तब हनुमान् ने कुछ राक्षसों को पद-प्रहार से मार डाला, कुछ राक्षसों को अपनी पूँछ के आघातों से मार गिराया, अपनी भयंकर मुष्टि के आघातों से कुछ राक्षसों का संहार किया, अपने नाखूनों से कुछ राक्षसों को चीर डाला, अपने भयंकर गर्जन-मात्र से कुछ राक्षसों को गिरा दिया और अपनी परुष तथा उग्र दृष्टि-मात्र से कुछ राक्षसों के प्राण हर लिये । महाशक्ति-संपन्न हनुमान् ने ऐसा भयंकर युद्ध करके, अपने अनुपम पराक्रम से उन राक्षसों की सेना को इस प्रकार तितर-बितर कर दिया, जैसे सूर्य हिमशिखरों को शीघ्र नष्ट कर देता है । इसके पश्चात् हनुमान् आकाश-मार्ग से जाने लगा, तो देवता तथा गंधर्व उसके बाहुबल की प्रशंसा करते हुए उसपर पुष्प-वृष्टि करने लगे । हनुमान् अत्यधिक वेग से जाकर उस पर्वत को यथास्थान प्रतिष्ठित करके शीघ्र रघुराम के पास लौट आया और पर्वत को लाने तथा उसको पुनः प्रतिष्ठित करने के संबंध में उनपर बीती हुई विपत्तियों को कह सुनाया । तब राम ने बड़े हर्ष से वायु-पुत्र का आलिंगन कर लिया ।

तदनंतर सभी कपियों ने एकत्र होकर ऐसा सिंहनाद किया कि सारी लंका व्याकुल हो उठी । आकाश में टिमटिमानेवाले तारे एक-एक करके ऐसे लुप्त होने लगे, मानों दशकंठ के पुण्य के चिह्न एक-एक करके लुप्त होते जा रहे हों । निदान, सूर्योदय हुआ और दैत्यों के दारुण रोष एवं गर्वांधकार के साथ-साथ अन्धकार भी दूर हुआ । वानरों के

मुख-कमलों के साथ ही सरोज भी विकसित हुए । शक्तिहीन दनुजों के मुख-कैरवों के साथ-ही-साथ पृथ्वी पर कैरव भी मुरझा गये । सूर्यवंशाधीश राम के प्रताप-सूर्य के साथ-ही-साथ सूर्यबिम्ब भी प्राची दिशा में दिखाई पड़ने लगा ।

तब राम ने सौमित्र को देखकर अत्यन्त आनन्द से भरे हृदय से कहा--'हे सद्-गुणशील, सौमित्र, तुम बच गये, सचमुच यह मेरा सौभाग्य है ।' राम के इन प्रशंसापूर्ण वाक्यों को सुनकर लक्ष्मण राम को प्रणाम करके बोले--'हे देव, क्या आप प्राकृतजन हैं ? क्या आप दीन हैं, क्या आप निर्धन या क्षुद्र हैं ? आप अपने महत्त्व को भूलकर ऐसे दीन वचन क्यों कहते हैं ? हे लोकेश, दण्डकवन में आपने मुनियों को जो वचन दिये थे, उनका स्मरण कीजिए । आपका विश्वास करके आये हुए इस विभीषण से आपने जो प्रतिज्ञा की है, उसका विचार कीजिए और आज सूर्य के अस्त होने से पहले रावण का संहार कीजिए । इन बातों को सुनकर राम ने कहा--'ऐसा ही होगा' और रण-विक्रम-दीप्ति से भासित होने लगे ।

१३३. रावण का शुक्राचार्य से परामर्श करना

इस वृत्तान्त को सुनकर रावण मन-ही-मन चिन्ता से व्याकुल हो उठा और अपने समस्त पराक्रम को तजकर दीन हो शुक्राचार्य के पास पहुँचा । उनको बड़ी भक्ति से प्रणाम करके रावण ने कहा--'हे गुरुदेव, रघुराम की निशित (तीक्ष्ण) बाणाग्नि ने मेरे सगे-संबंधियों, पुत्रों तथा भाइयों को जलाकर भस्म कर दिया है और प्रलय-काल की अग्नि के समान अमोघ दिखाई पड़ रही है । वह दुर्वार दीखती है और युद्ध में सबका संहार कर रही है । मैं अब कैसे बच सकूँगा । कृपया बताइए ।' तब शुक्राचार्य ने कहा--'हे रावण, तुम व्याकुल क्यों होते हो ? ऐसे कितने ही उपाय हैं, जिनके द्वारा महान् युद्धों में भी नरों को जीता जा सकता है । केवल इस बात की आवश्यकता है कि तुम बिना विघ्न के हवन पूरा करो । हवन करने से हवन-कुंड से भयंकर संग्राम के योग्य श्रेष्ठ रथ, अश्व, भयंकर खड्ग, शर, चाप तथा कवच तुम्हें मिल जायेंगे । उनकी सहायता से तुम नरों को जीत सकते हो । वे अस्त्र-शस्त्र तुम्हें अवश्य विजय प्रदान करेंगे ।' इतना कहकर शुक्राचार्य उसे हवन के लिए आवश्यक मंत्रों का उपदेश किया और हवन-विधि आदि बता-कर विदा किया ।

शुक्राचार्य की आज्ञा लेकर रावण अन्तःपुर को लौट आया और नगर की रक्षा करनेवाले महान् शक्ति-संपन्न राक्षस-वीरों को सावधान किया । उसके पश्चात् उसने सिंह-द्वारों को बंद कराया और उनकी रक्षा के लिए अपनी चतुरंगिणी सेना को नियुक्त किया। फिर, उसने यम-सदृश आकारवाले तथा उद्धत शूर विद्युज्जिह्व नामक एक वीर राक्षस को बुलाकर कहा--'तुम अपनी सेना के साथ बड़ी तत्परता से नगर की रक्षा करते रहो। असावधान मत रहो और अपने स्थान से किसी भी दशा में मत हटो ।'

१३४. पाताल-होम

उसके पश्चात् रावण ने हवन का अनुष्ठान करने के निमित्त, पाताल-गुफा में ऐसे प्रवेश किया, मानों मृत्यु के मुँह में ही प्रवेश कर रहा हो । वहाँ पर बड़ी निश्चलता के

साथ हवन-कर्म के लिए अनुरूप रक्त वस्त्र, रक्त माल्य तथा रक्त चंदन धारण किया; दक्षिण दिशा में सिद्ध की हुई होम-वेदी की चंदन-पुष्पों से अर्चना की; अग्नि को प्रतिष्ठित किया; विधिवत् होम-मंत्रों का उच्चारण करते हुए; पैने अस्त्रों को परिधि के रूप में सजाया; पीपल और भिलावा आदि समिधाओं को बार-बार जलाया; सरसों, दूर्वा, खील, गुग्गुल, अगरु, घी, मधु, ताड़ी, खून, दही, परमान्न, दर्भ, प्रवाल, भेड़, मछली, गीध, वराह आदि की बलि क्रमशः देते हुए उस महावेदी के समक्ष निश्चल ध्यान में मग्न रहा ।

उस समय उस गुफा से भयंकर धुएँ का समूह, पवन के संघात से बिजलियों को गिराते हुए समस्त आकाश में ऐसा व्याप्त होने लगा, मानों रावण के सभी पाप एकत्र होकर आकाश की ओर उठ रहे हों । यह देखकर देवता त्रस्त हुए, मुनि भयभीत हुए, दिक्पाल संभ्रमित हुए और वानर भय-विह्वल हुए । उस धुएँ को देखकर विभीषण ने राम से कहा--'हे देव, रण में आपका सामना करके, आपके समक्ष खड़े रहने में अपने को असमर्थ पाकर रावण कपट-कर्म के द्वारा आप पर विजय प्राप्त करने के निमित्त हवन कर रहा है । वह देखिए, हवन-कुंड से निकलनेवाला धुआँ समस्त आकाश में व्याप्त हो रहा है। यदि इसकी इच्छा के अनुसार हवन निर्विघ्न समाप्त हुआ, तो लोक-भयंकर रावण को जीतना देवासुरों के लिए भी असंभव हो जायगा । अतः, इस हवन में विघ्न डालना ही चाहिए । इसके लिए आप शीघ्र वानर-वीरों को भेजिए ।

उसकी मंत्रणा स्वीकार करके राम ने वानर-वीरों को (हवन में विघ्न डालने के लिए) भेजा । तब असमान बलवान् गवाक्ष, तार, शरभ, क्रथन, शतवली, नल, गवय, मैन्द, गंधमादन, हनुमान्, पनस, अंगद, कुमुद, ज्योतिर्मुख, गोमुख आदि दस करोड़ उद्भट रण-विक्रमी तथा प्रतापी वानर अत्यधिक क्रोध से आकाश-मार्ग से लंका में पहुँच गये । अपने हुंकारों तथा पदाघातों से पृथ्वी को विदीर्ण करते हुए, दिग्गजों को कुचलते हुए, आकाश को कंपित करते हुए, उन साहसी तथा उत्साही वीरों ने प्रचंड गति से राक्षसों पर आक्रमण किया और नगर की रक्षा करनेवाले कई बलवान् राक्षसों को छिन्न-भिन्न कर दिया और द्वारपालों को क्रूरता से मार डाला; अपनी विशाल शक्ति से द्वारों को चूर-चूर कर दिया और अत्यंत शीघ्रता से नगर में प्रवेश किया । कुछ पर्वताकार वानर तुरंत दशानन का अन्वेषण करने लगे; कुछ रथशालाओं में प्रवेश करके रथों को चूर-चूर करने लगे; कुछ गजशालाओं में जाकर अपने मुष्टि-घातों से गजों के सिर फोड़ने लगे; कुछ अश्वशालाओं में पहुँचकर अपने भयंकर नखों से घोड़े के शरीर चीरने लगे; कुछ वानर घोड़ों (शूलकों) को नष्ट-भ्रष्ट करने लगे; कुछ शस्त्रागारों में पहुँचकर शस्त्रास्त्रों को खंडित करने लगे; कुछ भांडार-घरों में पहुँचकर वहाँ की चीजों को बाहर फेंकने लगे । दूसरी ओर कुछ वानर अपनी प्रचंड शक्ति से झूलते हुए तोरणों को तोड़ते थे; स्वर्ण-कलशों तथा स्वर्ण-हर्म्यों को पृथ्वी पर गिरा देते थे; कुछ वानर राक्षसों को यंत्रणा देते हुए कहते थ--'उस जगत्-द्रोही (रावण) को बाँधकर लाओ; कुछ वानर घरों में घुसकर, राक्षसों को उनकी पत्नियों तथा सुतों के हाहाकार के बीच बाहर खींचकर लाते थे और

उनके सिर काट डालते थे। वानरों के ऐसे पीड़ित करने से सारा राक्षस-नगर भयभीत हो, दीन तथा व्याकुल दीखने लगा। वानरों से प्रपीड़ित घोड़ों की हिनहिनाहटों, गजों के भयंकर चिंघाड़ों, वृद्धा तथा बालाओं के दीन विलापों तथा कपियों के सिंहनादों के व्याप्त होने से सारी लंका प्रलय-काल में दीप्त होनेवाली वडवाग्नि की ज्वालाओं से भयभीत हो गर्जन करनेवाले समुद्र की भाँति, हाहाकार करने लगी।

इसी समय सूर्योदय हुआ। वानरों ने सब स्थानों में रावण को ढूँढ़ा, किंतु वे कहीं भी उसको देख नहीं सकने के कारण संभ्रमित हो गये। तब विभीषण की चतुर पत्नी सरमा ने, अपने पति के हित का विचार करके बड़ी उद्विग्नता से, हाथ के संकेत से अंगद को रावण के रहने का स्थान बताया। तुरंत उस वीर ने क्रुद्ध होकर उस गुफा के मुँह पर स्थित शिला को अपने पदाघात से चूर-चूर कर दिया और अपने महान पराक्रम का प्रदर्शन करते हुए, अपने बाहुबल से राक्षसों को भयभीत करते हुए अंदर प्रवेश किया और हवन-कर्म में निश्चल निष्ठा से लगे हुए तथा विविध मंत्र-तंत्रों में लगे रावण को देखकर चिल्ला उठा--'मैंने रावण को देख लिया। शीघ्र चले आओ।' यह सुनकर अनिलकुमार आदि राक्षस बड़े वेग से गुफा की रक्षा करनेवाले राक्षसों को मारकर अंदर चले आये। तब उन्होंने अकेले हवन करनेवाले रावण को देखा और बड़े क्रोध से कहने लगे--'विना किसी को साथ लिये यह अकेले फँस गया है। हम इसका हवन कर देंगे।' यह कहकर वानरों ने हवनकुंड के चारों ओर रहनेवाले कलश-समिधाएँ, हाथी, मुर्गा, जंबूक, अश्व, ऊँट, कुत्ता आदि जानवरों के मस्तक, घी तथा मधु के पात्र आदि होमकुंड में फेंककर सिंहनाद किया। यह देखकर राक्षस भयभीत हुए। फिर, वानर उस पापी रावण के अंगों पर होमकुंड के अंगारों की वर्षा करने लगे और जलते हुए मशाल उठाकर राक्षसों पर फेंकने लगे। एक वानर ने रावण के हाथ के स्रुक्-स्रुवा को बलात् खींचकर उन्हीं से रावण पर प्रहार किया। कपियों के इस प्रकार के आक्रमण के कारण रावण की निष्ठा डोल गई। फिर भी विना विचलित हुए या विना क्रुद्ध हुए वह निष्ठा में ऐसे निमग्न रहा, मानों वह सोया हुआ पर्वत हो।

१३५. अंगद का मंदोदरी को रावण के पास घसीटकर लाना

तब युद्ध-कला-कुशल, दुर्जय तथा अंगदों से अलंकृत बाहुओं से विलसित अंगद, शीघ्र रावण के अंतःपुर में पहुँचा और रानियों के निवास में प्रवेश किया। वहाँ उसने उमड़ते हुए दुःख से संतप्त होनेवाली मंदोदरी को देखा। उसका सूजा हुआ लाल मुख-चंद्र, उसके कर-पल्लव पर ऐसा टिका हुआ था, जैसे रोहिणी से अलग हुए चंद्र को तरुण पल्लव-शय्या पर पहुँचा दिया गया हो। वह अपने बंधुओं के साथ यह सोचकर व्याकुल हो रही थी कि घोर युद्ध में कुंभकर्ण आदि मरे; महावीर तथा घोर विक्रमी पुत्र सब नष्ट हुए; केवल मेरे पति बच गये हैं; भला वे क्या रघुराम को जीत सकते हैं? वह मन-ही-मन इन्द्रजीत की मृत्यु का स्मरण करके रो रही थी। रमणीय मणि-मंदिर में बैठकर शोक करनेवाली रमणी मंदोदरी की सुंदर वेणी को बलात् पकड़कर अंगद उसे खींचने लगा। तब उस मृगनयनी के मुख-चंद्र की कांति ऐसे मलिन पड़ गई, जैसे ग्रहण के समय राहु से

घिरे हुए चंद्र-मंडल की कांति मलिन पड़ जाती है। उसके बालों में सजे हुए सुरभित मल्लिका-कुसुम पृथ्वी पर ऐसे गिरने लगे, मानों रावण के कीर्त्ति-कुसुम ही गंध-हीन हो पृथ्वी पर गिर रहे हों। उसकी माँग में पिरोये हुए मोती भय एवं क्रोध से ऐसे गिरने लगे, मानों रावण की राज्य-लक्ष्मी ही सीमंत-वीथी से च्युत हो रही हो। उसके लाल मुख-कमल के नील अलक, ऐसे बिखर गये, मानों राक्षसों की लक्ष्मी के मुख-कमल के आश्रित भ्रमर बिखरकर उड़ रहे हों। उसके दोनों कर्ण-कुंडल टूटकर पृथ्वी पर ऐसे गिर पड़े, मानों मंगलप्रद श्रेष्ठ आभूषण रावण की लक्ष्मी के कानों में रहने की इच्छा न रखने से गिर रहे हों। उसकी आँखों से काजल से युक्त अश्रु ऐसे गिरने लगे, मानों वे दनुजेश्वर के अपयश की धाराएँ हों। उसके मणिमय आभूषण ऐसे टूटकर गिरने लगे, मानों राक्षस-राज के लिए अपशकुन सूचित करनेवाली महान् उल्काएँ गिर रही हों। उस रमणी के धर्म का निर्मल आवरण-रूपी कंचुक के शिथिल होने से उसके उन्नत स्तन-कलश ऐसे विचलित हो उठे, मानों रावण की इस लोक की तथा परलोक की उन्नति ही विचलित हो गई हो। उसकी तनु-लता ऐसी कुचल गई, मानों देव-शत्रु रावण की गुण-लता ही कुचल गई हो। उसकी मेखलावली का बंधन ऐसे खुल गया, मानों पवित्रात्मा राम के द्वारा राक्षसराज के कर्म-बंधन ऐसे ही कट जायेंगे। उसके चरण-नूपुर निनाद करते हुए एक-एक करके ऐसे छूटकर गिरने लगे, मानों प्रमद राक्षसराज-पद की सन्धियाँ चटक गई हों और उसकी विमल कीर्त्ति खंड-खंड होकर गिर रही हो। इस प्रकार, जब अंगद क्रुद्ध होकर मंदोदरी को राक्षसेश्वर के समक्ष घसीटकर लाने लगा, तब राक्षस-वधुएँ आर्त्तनाद करने लगीं और कारागार में पड़ी हुई देव-स्त्रियाँ हर्षित होने लगीं।

तब मंदोदरी शोक-संतप्त हृदय से दानवेंद्र को देखकर कहने लगी—'हे देव, इंद्र को परास्त करनेवाली आपकी शक्ति कहाँ लुप्त हो गई ? क्या, आज चंद्रहास की धार कुंठित हो गई ? प्रमथ-गणों से युक्त शिव के साथ कैलाश पर्वत को उठाने का आपका दर्प कहाँ चला गया ? तीनों लोकों को आपने जीत लिया था, ऐसी शक्ति को आप क्यों त्याग रहे हैं ? यदि मुझे त्याग कर इंद्रजीत इंद्रलोक में नहीं गया होता, तो क्या, वह मुझे इस दशा में देखते हुए चुप रहता ? यदि मेरा पुत्र जीवित रहता, तो क्या, मैं ऐसी नीच दुर्दशा को प्राप्त होती ? शत्रु इस प्रकार मेरा अपमान तथा उपहास कर रहे हैं और आप देख तथा सुन रहे हैं। क्या, आप निर्लज्ज वधिर हो गये हैं ? आपका यह हवन किस काम का ? आपकी यह निष्ठा किसलिए ? इन आहुतियों ने स्वयं आपकी पूर्णाहुति कर दी। बुद्धिमान् होकर भी आप राम की वाणाग्नि से दग्ध हो जायेंगे। कुटिल क्रियाओं से जब कोई प्रयोजन नहीं है। अब उन्हें त्याग दीजिए।' इन बातों को सुनकर दशकंठ क्रोध से भभक उठा। उसने अपने हाथ की आहुति पृथ्वी पर फेंक दी। निष्ठुर क्रोध से उसकी भौंहें तन गईं। वह यमराज के समान भयंकर रूप धारण करके उठ खड़ा हुआ। अपने भीषण खड्ग को खींचकर उसने अनुपम रत्नों के अंगदों से विलसित अंगद पर प्रहार किया और अपनी पत्नी को उसके हाथों से छुड़ा लिया। तब खुली हुई वेणी तथा उतरे हुए मुँह से दुःख प्रकट करती हुई वह दैत्य-रमणी अंतःपुर को चली गई।

उसके पश्चात् हनुमान् अपनी भयंकर मुष्टि से दशकंठ के सिर पर कठोर प्रहार किया। इतने में वालिपुत्र सँभल गया और रावण पर कठोर प्रहार करके फिर गिर पड़ा। इस प्रहार से रावण लाल रक्त से भींगे हुए एक लाल पर्वत की भाँति दीख रहा था। फिर भी, उसने भयंकर क्रोध के आवेश में आकर अंगद पर गदा का प्रहार किया, हनुमान् पर अपने तेज खड्ग को चलाया, नल पर शर-प्रहार करके उसको ऐसे दबा दिया, जैसे अंकुश के प्रहार से गज को झुका दिया हो, मूसल का प्रहार करके नील को दंड दिया, शक्ति के प्रयोग से शतबली का दर्प चूर कर दिया, वज्र-सम मुद्गर तथा बाणों को चलाकर द्विविद तथा मैन्द को गिरा दिया। तब वानर-वीर आश्चर्यजनक वेग से अपनी सेना में जा पहुँचे।

अनिलकुमार ने राघवेश्वर के समक्ष पहुँचकर हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा--'हे देव, हम दानवेंद्र का हवन भ्रष्ट करके लौट आये हैं।' यह सुनकर रघुराम मन-ही-मन बहुत हर्षित हुए।

वहाँ दैत्येंद्र शीघ्र अंतःपुर में गया और अपार शोकाग्नि में जलनेवाली मंदोदरी को देखकर कहने लगा,--'हे प्रिये, विधि-विधान के संबंध में मन-ही-मन ऐसे शोक करने की क्या आवश्यकता है। आज मैं युद्ध में राम का वध करूँगा। यदि इसके विपरीत वह मेरा संहार कर डाले, तो तुम भी जानकी को मारकर शीघ्र अग्नि में प्रवेश कर जाना।'

१३६. रावण को मन्दोदरी का राघव की महिमा बताना

तब वह रमणी अपने पति को देखकर कहने लगी--"हे राक्षसेंद्र, आप रघुराम को युद्ध में जीत नहीं सकते। आप ही क्यों, देवासुर भी मिलकर उन्हें जीत नहीं सकते। आप उन्हें एक साधारण राजा मत मानिए। वे पुराण-पुरुष हैं। उन्होंने पूर्वकाल में मत्स्यावतार लेकर सौमक का संहार किया और श्रुतियों का उद्धार किया था। उन्होंने कमठ का रूप लेकर मंदराचल को अपनी पीठ पर धारण किया था। वराह का अवतार लेकर उन्होंने हिरण्याक्ष का संहार करके पृथ्वी का उद्धार किया था। उन्होंने नृसिंह का रूप धरकर क्रुद्ध हो नीच राक्षस का वध किया और प्रह्लाद की रक्षा की थी। वामन का अवतार लेकर उन्होंने बलि से याचना करके उसे बाँधा था। जमदग्नि के यहाँ जन्म लेकर उन्होंने महाशूर कार्त्तवीर्य का संहार किया और समस्त संसार को कश्यप ब्रह्मा को दान में दे दिया। अपनी समस्त शक्ति को एकत्र करके, अब तुम्हारा संहार करने के निमित्त, अपना तेज चारों ओर व्याप्त करते हुए उन्होंने दशरथ का पुत्र होकर जन्म लिया है। उनकी महिमा तथा उनके कार्यों का वर्णन मैं कैसे करूँ? इसी राम ने अपने बाल्य-काल में अपने महान् विक्रम तथा विशाल शक्ति का परिचय देते हुए कौशिक के यज्ञ की रक्षा ऐसे की कि कौशिक तथा अन्य प्रमुख दिक्पाल भी उनकी प्रशंसा करने लगे। फिर, उस मुनि से उन्होंने शत-सहस्रादि संख्या में दिव्यास्त्र प्राप्त किये। उन्होंने जनक को संतुष्ट करते हुए अपनी अनुपम शक्ति का परिचय देकर शिव-धनुष का भंग किया और दैव-नियोग से वैदेही को अपनी धर्म-पत्नी के रूप में स्वीकार किया। उसी राम ने भार्गव राम

का गर्व-भंग करके अपने बाहुबल का परिचय दिया। अपने पिता की आज्ञा से वे मुनि-वृत्ति स्वीकार करके वनवास करने आये हैं। उन्होंने अपनी प्रशंसनीय शक्ति से विराध का वध किया, शूर्पणखा को दंड दिया और अपने चरण-स्पर्श से दण्डक वन की भूमि को पुण्यभूमि बना दिया। उन्होंने खर, दूषण आदि वीर राक्षसों को उनके चौदह सहस्र सैनिकों के साथ मार डाला, मारीच का संहार किया और भयंकर आकारवाले कबंध का वध किया। जिस वालि ने आपके पौरुष को कुंठित करके, अपनी पूँछ से आपको बाँधकर चारों समुद्रों में डुबोकर अपनी अनुपम शक्ति का परिचय दिया था, उसे एक ही बाण से गिराकर, सुग्रीव का राजतिलक कर दिया। अपने बाणों की अग्नि-ज्वालाओं से समुद्र को सुखा दिया। युद्धभूमि में कुंभकर्ण का संहार किया। इतना ही नहीं, लक्ष्मण ने युद्ध में अतिकाय तथा इंद्रजीत का वध किया। राम भूपाल कदाचित् ही कभी क्रोध करते हैं। यदि वे क्रुद्ध हो जायँ, तो इंद्रादि देवता भी उनके समक्ष खड़े नहीं रह सकते। हे दैत्यनाथ, ऐसे वसुधेश्वर की पत्नी को धोखे से ले आना क्या, आपको उचित था? क्या आप राम के नित्यसत्त्व को नहीं जानते? क्या, आप उनकी महिमा से परिचित नहीं हैं? न जाने किस पाप का फल है कि राम की शक्ति की श्रेष्ठता आपको सूझती नहीं है। हे देव, अब भी आप जानकी के साथ-साथ अपने समस्त राज्य को राम को समर्पित कीजिए और उनके निष्ठुर बाणों की अग्नि-ज्वालाओं से अपने को बचा लीजिए। अबतक हमने राज-भोग का अनुभव किया, यही पर्याप्त है। अब हम तपोवृत्ति स्वीकार करके वनों में विचरण करेंगे। यदि आपका अंत हो जायगा, तो मैं आपके साथ अग्निमुख में गिरकर जल भी नहीं सकती; क्योंकि मेरे पिता ने मुझे यह वर दिया है कि जरा-मृत्यु मेरा स्पर्श नहीं करेंगी। अब मैं राज-सुख भोगना नहीं चाहती। आप इस मार्ग का त्याग कीजिए। मेरे पिता का वर दुस्तर है। अब मुझे या तो सरमा की या जानकी की सेवा करनी पड़ेगी।"

तब दशकंठ उस पिकबैनी को देखकर उत्कट क्रोध से कहने लगा--"हे सुंदरी, तुम इतना दुःखी क्यों होती हो? क्या, मेरी दशा इतनी दीन हो गई है? पुत्र, बंधु, मित्र, सेवकों का वध कराने के पश्चात्, देव-दानवों को भी भयभीत करनेवाले अपने प्रताप को तजकर, मैं केवल अपने प्राणों की रक्षा क्यों करूँ? इन्द्रजीत जैसे पुत्र का वध कराने के पश्चात्, मैं जीवित क्यों रहूँ? मैंने गरुड़, उरग, अमर तथा गंधर्वों को जीत लिया है, पुण्यात्माओं का विनाश किया है और तपस्वियों का वध किया है। अब यदि मैं स्वयं तपस्वी बनने जाऊँ, तो क्या सभी तपस्वी मेरा उपहास नहीं करेंगे? इसलिए हे कमलाक्षी, तुम्हारे ये वचन आचरण करने योग्य नहीं हैं। अब मैं किसी भी प्रकार से हो, राघवों का वध कर ही डालूँगा। अनुपम बल से समन्वित, मैं किसी भी दशा में सीता को नहीं दूँगा। यदि मैं राम के बाणों से मारा जाऊँगा, तो मैं जिस वैकुंठ की इच्छा करता हूँ, वह स्वयं मेरे समक्ष आ जायगा। हे सुंदरी, तब मुझे न तुम्हारी आवश्यकता रहेगी, न इस लंका की। मैं अपनी इच्छित मुक्ति-पथ को प्राप्त करूँगा। मेरी मृत्यु के पश्चात्, तुम शुभलक्षण श्री से रहित हो सूर्य-विहीन कमलिनी की भाँति, शशिहीन कुमुदिनी की

भाँति रहना ।" यह सुनकर मंदोदरी लज्जा से अभिभूत हो प्रत्युत्तर देने से भयभीत होती हुई चुप हो गई ।

१३७. रावण का तृतीय युद्ध के लिए प्रस्थान

उसके पश्चात् रावण अत्यधिक उत्साह एवं हर्ष से युद्ध की तैयारियाँ करने लगा । उसने आदित्य को त्रस्त करते हुए तथा ब्रह्माण्ड को विदीर्ण करते हुए रण-भेरी का निनाद कराया और सेना को एकत्र करने के लिए भटों को भेजा । फिर, उसने अपनी विशाल भुजाओं को रत्न, केयूर तथा कंकणों से अलंकृत किया, इंद्र आदि देवताओं को जीतने के उपलक्ष्य में स्मारक-स्वरूप एक वीर-कंकण पहना, अपने सभी करों में भयंकर चंद्रहास, धनुष, बाण, गदा तथा चक्रों को धारण किया और अपने नेत्रों से क्रोधाग्नि की कांति को चारों ओर व्याप्त करते हुए बाहर निकला । फिर, वह अच्छी तरह निर्मित सोलह चक्रवाले दो करोड़ क्षुद्र घंटिकाओं के निनाद से भयोत्पादक तथा एक सहस्र घोड़े जुते हुए रथ पर इस प्रकार आरूढ हुआ, मानों राम के शरों से मृत होकर वैकुंठ के रथ पर आरूढ हो रहा हो । महान् बलशाली तथा रथ-कला-निपुण कालकेतु उस रथ को चलाने लगा । रावण के ऊपर अनेक चंद्रिका-सम उज्ज्वल छत्र तने हुए थे । रावण के श्रेष्ठ साहस का परिचय देनेवाले, राहु के मस्तक से अंकित तीन ध्वजाएँ, आकाश का स्पर्श करती हुई ऐसे फड़फड़ा रही थीं, मानों सूर्य-मंडल एवं चंद्र-मंडल को निगलने के लिए उद्यत राहुत्रय हों । (सेना की) भेरी, मृदंग आदि के गंभीर निनादों से समुद्र उमड़ने लगे और उनके उमड़ने के प्रयत्न के फलस्वरूप पृथ्वी काँप उठी । रावण के साथ ही साथ, गज, अश्व, रथ एवं बल-शाली तथा उद्भट भटों का समूह भी निकला और सभी दिशाओं में व्याप्त हो गया । उस सेना के साथ ही प्रलय-काल के आदित्यों की भाँति अद्भुत शौर्य के साथ खड्गरोम, वृश्चिकरोम, सर्परोम तथा अग्निवर्ण नामक राक्षस भी युद्ध के लिए निकल पड़े । तब सारे समुद्र क्षुब्ध हुए, समस्त लोक भयभीत हुआ, दिग्गज धँस गये और सभी कुलपर्वत काँप उठे ।

इस प्रकार की युद्ध-सज्जा के साथ जब रावण निकला, तब आकाश में देवता उसे देखकर आपस में कहने लगे—"रावण जिस समय इंद्र के ऊपर आक्रमण करने के लिए क्रोध से निकल पड़ा था, उस दिन भी उसकी युद्ध-सज्जा तथा क्रोध आज के समान नहीं थे । आज अवश्य वह अपनी सारी शक्ति के साथ लक्ष्मण से युक्त राघव पर आक्रमण करेगा । ऐसा सोचते हुए रत्नमय विमानों में आरूढ हो सभी देवता एकटक हो रण की गति देखने लगे । वानर-सेना-रूपी अरण्य को जलाने के लिए आनेवाले दावानल की भाँति अत्यधिक वेग से आक्रमण करनेवाली राक्षसों की सहस्रों सेनाओं को देखकर वानर-वीरों ने अंगद के साथ अट्टहास करते हुए बड़े उत्साह से सिंह-गर्जन किया । फिर, विशाल वृक्षों, भारी पर्वतों तथा गिरि-शृंगों को उठाये हुए पर्वताकार वानर-सैनिकों ने राक्षस-सेना पर इस प्रकार आक्रमण किया, जैसे दक्षिण समुद्र तथा उत्तर समुद्र एक दूसरे से टकरा गये हों। तब दानवों ने क्रोध से जलते हुए दहाड़ों, धमकियों तथा हुंकारों के निनादों से आकाश को भरते हुए अपने मदमत्त गजों के समूह को उनके ऊपर चलाते हुए बहुत वेग से जाने-

वाले अश्वों को, उनपर दौड़ाते हुए रथों को अंधाधुंध चलाते हुए, पैदल सेना से उन पर भयंकर आक्रमण कराते हुए, उनका सामना किया । फिर, उन्होंने करवाल, मूसल, मुद्‌गर, परशु, तोमर, शर तथा चक्रों से वानरों पर प्रहार किया और उन्हें काटा, चुभोया, रौंदा तथा पृथ्वी पर गिराकर नाना विधि से उनका संहार किया । इस भयंकर आक्रमण से क्रुद्ध होकर वानर-वीरों ने उद्धत रण-कौशल प्रदर्शित करते हुए निकट ही रहनेवाले पर्वतों, असंख्य गिरि-शृंगों, वृक्षों तथा शिलाओं को उठाकर राक्षसों पर फेंका । फिर, घोड़ों पर कूदकर घुड़सवारों को पदाघातों से नीचे गिराते, भयंकर रूप धरकर गज-समूहों पर पिल पड़ते और पहाड़ों से उन पर प्रहार करके महावतों को मारते, और हाथियों के कुंभ-स्थल पर ऐसा प्रहार करते कि हाथी पृथ्वी पर गिर पड़ते । फिर वे अश्वों, सारथियों तथा रथिकों के साथ रथों को एकदम ऊपर उठा लेते और उसे रण-मध्य में फेंककर उसको चूर-चूर कर देते। सारी पृथ्वी उस समय काँप उठती। इतना ही नहीं, वे पदचर सेना पर पर्वतों तथा वृक्ष-समूहों से भयंकर प्रहार करते, उन्हें दाँतों से काटते, हथेलियों से मारते, पैरों से कुचलते, नखों से नोंचते, पूँछों से अच्छी तरह पीटते और अपने हाथ के मुक्कों से उनपर प्रहार करते ।

पनस, नील, अंगद आदि प्रमुख वानर इससे संतुष्ट न होकर दुर्वार गति से आकाश की ओर उड़कर और वहाँ से राक्षस-सेना पर पहाड़ों की ऐसी वर्षा करते, जैसे प्रलय के समय बिजलियों की वर्षा होती है । इस प्रकार की शैल तथा पाषाणों की वर्षा से राक्षस-सेना में हाथी गिरे, महावत जहाँ के तहाँ मरे, अश्व पृथ्वी पर लोटने लगे और उनपर अश्वारोही गिरने लगे, रथ पिस गये, सारथी समाप्त हो गये, शव रौंदे गये, मांस-खंड बिखर गये, मुकुट पृथ्वी पर लोटने लगे, मस्तक फूटने लगे, रक्त की धारा बहने लगी, शरीर छिन्न-भिन्न होने लगे, अँतड़ियाँ छितराने लगीं और खड्‌ग टूटने लगे । उस समय वह रण, विविध भोग-विलसित पर्जन्य* (मेघ—इन्द्र) की संपत्ति की भाँति महान् अभ्र-मातंग* (ऐरावत—श्वेत गज) के मद से सिंचित था; अति रौद्र रुद्र-विहार (कैलास पर्वत—श्मशान) की भाँति आहत गज एवं असुरों से युक्त हो पिशाचों के लिए आनंद-दायक था । अक्षीण राम-कटाक्ष के समान प्रेक्षण-हृष्ट-विभीषण * (देखने में भयंकर, देखकर संतुष्ट विभीषण) था; कलियुगांत के भयंकर काल के समान बल-रहित एवं विध्वस्तधर्मा* (धर्म-भ्रष्ट, नीति-भ्रष्ट) था; रात्रि के उपरांत विकसित कमलिनी * (सरोवर—कमलिनी) की भाँति शिलीमुखों* (बाण—भ्रमर) से आश्रित पुण्डरीक * (कमल—श्वेतच्छत्र) समूह के समान था; उदार व्यक्ति के सुंदर एवं शुभप्रद सदन की भाँति आरक्त * (अनुरक्त, रक्त से सींचे), मार्गणों * (बाण—याचक) से परिपूर्ण था; शाश्वत-पुण्यमूल नदी के पति (समुद्र) की भाँति हरि-शक्ति-निर्मथित * (साँप से मथित, वानरों से मथित) हो भयंकर दीखता था और निर्मल वेद-विहित यज्ञ की भाँति देव-लोक के चित्त को प्रसन्न करनेवाला था। ऐसे भयंकर रण में रक्त-सिक्त हो, अँतड़ियाँ-रूपी प्रवालसमूह, रथ-रूपी नावें, टूटकर गिरे हुए रथ-चक्र-रूपी कच्छप-समूह, शव-रूपी मगर, कटकर गिरी हुई भुजाएँ-रूपी साँप, आयुधों का चूर्ण-रूपी रेत, गज-समूह-रूपी विशाल पर्वत, दंष्ट्र-रूपी तिमि-तिमिंगल,

---

***चिह्नित शब्द श्लिष्ट हैं ।—ले०**

बृहत्काय अश्व-समूह-रूपी चल एवं उत्तुंग तरंगें, विविध अश्वों की लार-रूपी उज्ज्वल फेन, धवल आतपत्र-रूपी हंस, असंख्य मुकुटों की प्रभा-रूपी वाडवाग्नि-शिखाएँ, बिखरे हुए मांस-खंड-रूपी मणियाँ, संतुष्ट निशाचर, प्रेत एवं वैतालों का अट्टहास-रूपी भयंकर घोष, रघुराम-चंद्र-रूपी चंद्र, उनकी हास्य-द्युति-रूपी चंद्रिका से युक्त हो रक्तसमुद्र-रूपी समुद्र, उमड़ रहा था ।

१३८. वानरों के द्वारा खड्गरोम आदि राक्षसों का वध

तब हनुमान् को असुरेंद्र पर आक्रमण करने के लिए उद्यत होते देखकर पर्वताकार-वाला अनुपम साहसी, रुचिर खड्ग से संपन्न, खड्गरोम क्रुद्ध हुआ और कहने लगा--'हे पवनकुमार, उधर कहाँ जा रहे हो ? उधर जाने की क्या आवश्यकता है ? मैं तो यहाँ हूँ ही, इधर आओ ।' यह सुनकर पवनपुत्र उसपर कूद पड़ा और उसके शरीर के रोमों के पैने खड्ग धाराओं में डूब-सा गया । किंतु किसी तरह वह उनसे बाहर निकला और भयंकर रूप धारण करके अपनी उन्नत शक्ति को प्रकट करते हुए, कुलपर्वत की समता करनेवाले एक विशाल पर्वत को उठाकर भयंकर गर्जन करके उसे उस राक्षस पर ऐसा फेंका कि पृथ्वी काँप उठी । किंतु उसने अपने रोम-खड्ग की धाराओं से उसको खंडित कर दिया और वानर-सेना को काटते हुए हनुमान् पर आक्रमण किया । तब हनुमान् ने एक विशाल पर्वत को उठाकर उस राक्षस-वीर पर ऐसा प्रहार किया कि वह वज्र के आघात से आहत शैल की भाँति गिर पड़ा ।

तब सर्परोम ने भयंकर सर्प की भाँति क्रुद्ध हो, बड़े दर्प से अंगद पर आक्रमण किया और अपने रोम-सर्प के समूह से उसे पीड़ित किया । तब अंगद ने प्रलय-काल के यम की भाँति जलते हुए उस राक्षस पर अपनी हथेली से ऐसा प्रहार किया कि उसका सिर फूट गया और रक्त की धाराएँ बहने लगीं । फिर भी, रोषाग्नि उगलते हुए उस राक्षस ने भयंकर रूप धारण करके अंगद के अंगों पर अपने रोम-सर्पों से आघात किया । तब अंगद ने अत्यधिक क्रोध से उस राक्षस के सिर पर अपनी भयंकर मुष्टि से प्रहार किया और उसे नीचे गिराकर पैरों से रौंदते हुए उसका सिर तोड़कर फेंक दिया ।

तब वृश्चिकरोम ने भीषण रण-कुशल नील पर आक्रमण किया और विष-ज्वालाओं को उगलनेवाले अपने रोम-वृश्चिकों के प्रयोग से नील को अत्यधिक पीड़ा पहुँचाई । इसको सहने में असमर्थ होकर नील ने उस दानव की परवाह किये विना एक विशाल शाल-वृक्ष को उसपर फेंका । तब उस राक्षस ने अपने विष-भरे रोम-कंटकों से उस वृक्ष को तोड़ डाला । यह देखकर नील ने क्रोधातुर हो, अपने भयंकर बाहुबल का प्रदर्शन करते हुए असंख्य शाखाओं से युक्त एक विशाल वृक्ष को उखाड़ा और उससे उस राक्षस के वक्षःस्थल पर ऐसा प्रहार किया कि उसके प्राण जाते रहे । सभी देवता हर्ष से फूल उठे ।

उसके पश्चात् शत्रुभंजक एवं अकुंठित पराक्रमी अग्निवर्ण ने प्रचंड क्रोध से विशाल वनों को दुर्वार गति से जलानेवाली दावाग्नि के समान अपने अंगों में अगणित अग्नि-शिखाओं को दीप्त करके वानर-सैनिकों को जलाकर भस्म करते हुए आगे बढ़ा । राम ने उसे क्रोधपूर्ण दृष्टि से देखा, वानर-वीरों का पराभव होते भी देखा, करुणार्द्रचित्त

होने के कारण वे उसके अत्याचारों को सहन न कर सके, किंतु उसकी भयंकरता को देखकर सिर कँपाते हुए विभीषण से कहने लगे––'हे विभीषण, मैं अनुमान नहीं कर पा रहा हूँ कि यह कौन आ रहा है । पता नहीं कि रावण की आज्ञा से स्वयं अग्निदेव युद्ध करने के लिए आ रहे हैं या कोई राक्षस-वीर ही आ रहा है । यह कौन है ? इसका परिचय मुझे दो ।'

तब विभीषण ने कहा––'हे देव, यह अग्निवर्ण है । यह अपने शरीर से अग्नि-ज्वालाओं को प्रज्वलित करके पर्वतों को भी भस्म कर सकता है; यह अखंड वीर एवं महान् घमंडी है ।' यह सुनकर राम आश्चर्यचकित हुए । फिर भी, उसके भयंकर औद्धत्य को देखकर उन्होंने उस पर वारुणास्त्र चलाया । तब उस अस्त्र ने समस्त आकाश को घने बादलों से आच्छादित कर दिया और अविराम गति से वर्षा करके उस राक्षस के द्वारा प्रज्वलित अग्नि-ज्वालाओं को बुझाकर भयंकर ध्वनि के साथ उस राक्षस का वध कर डाला ।

युद्ध में अग्निवर्ण को इस प्रकार गिरते हुए देखकर, रावण ने आँखों से अग्निवर्षा करते हुए, प्रलय-काल के सूर्य की भाँति जलती हुई दृष्टियों से राम को देखकर कहा—'हे राम, क्या तुम मुझे नहीं पहचानते ? अपने निष्ठुर वज्र की दुर्वार धारा से कुलपर्वतों को खंडित करनेवाले इंद्र भी यदि बड़ी उद्धतता से अपने देवताओं के साथ युद्ध में मेरा सामना करे, तो मैं उसे भी परास्त कर दूँगा । तब, मैं तुम्हारी क्या परवाह करूँगा ? क्या, तुम्हारे जैसे क्षुद्र प्राणियों का प्रयत्न मुझे परास्त कर सकेगा ? अब तुम अपनी शूरता प्रकट करो और अंत तक मेरा सामना करते रहो। मैं अपने शस्त्रास्त्रों से तुम्हें गिरा दूँगा और तुम्हें अपनी शक्ति का परिचय दूँगा।'

रघुराम उस दुरात्मा का प्रलाप सुनकर हँस पड़े और मत्त सिंधुर (हाथी) के चिंघाड़ सुननेवाले सिंधुरातक मत्त सिंह की भाँति चुप हो रहे । तब रामानुज ने क्रुद्ध होकर रावण पर आक्रमण किया और उस पर भयंकर बाण चलाने लगे। तब रावण ने उन शरों को सहज ही खंडित कर दिया और उनकी परवाह किये विना भानु पर आक्रमण करने के लिए आनेवाले स्वर्भानु (राहु) के समान भानुवंशाधीश (राम) पर आक्रमण करके दारुण वज्रधर की समता करनेवाले बाणों से उन्हें ढक दिया। तब राम ने क्रोधोन्मत्त हो, अंगारों को उगलनेवाले निष्ठुर अस्त्रों को उस राक्षस पर चलाया। तब रावण उन बाणों का सामना करने के लिए युद्ध-भूमि के मध्य आया।

१३९. इंद्र का मातलि के द्वारा राम को रथ भेजना

तब इंद्र ने राम को देखकर मातलि से कहा––'देवताओं के हित के लिए ही राघव राक्षसों से घोर युद्ध कर रहे हैं । किंतु वे पदाति हो पृथ्वी पर खड़े हैं और राक्षस रथ पर आरूढ हैं । ये लोकोन्नत (राम) दुःखों से पीड़ित हो उस कुमार्गी के सामने नीचे खड़े हैं । वेद-पल्लवों पर विहरण करनेवाले, सुखी तथा संपन्न व्यक्ति आज कठोर रणभूमि पर खड़े हैं । कमला के मन-रूपी रथ पर अत्युन्नत सुख-राशि में डोलनेवाले आज पृथ्वी पर खड़े हैं । अतः, हे मातलि, तुम शीघ्र उनके लिए दिव्य रथ पृथ्वी पर ले जाओ ।

तब वायु तथा मन के वेग से जानेवाले अश्वों से युक्त कनक-दंडों में बँधी हुई पताकाओं से विलसित, महनीय कांतियुक्त मणि-समूहों से जटित, बालसूर्य के समान दीप्त होनेवाले रथ को लिये हुए मातलि पृथ्वी पर उतर आया और राम के समक्ष खड़े होकर हाथ जोड़े हुए राम से निवेदन किया--'हे देव, हे राघव-भूपाल, हे समस्त देवताओं के आराध्य, हे भक्त-जन-साध्य, इंद्र ने आपके लिए शर, चाप, कवच आदि से युक्त दिव्य रथ भेजा है। अब आप कौशिक की आज्ञा के अनुसार इस वज्र-कवच को धारण कीजिए और इस दिव्य रथ पर आरूढ होकर इन आयुधों से उस दुर्मदांध राक्षस का सामना करके उसपर विजय प्राप्त कीजिए। पूर्वकाल में मेरे सारथी के रूप में रहते हुए इंद्र ने समस्त दानवों को जीत लिया था।' तब राम ने विभीषण से परामर्श करने के पश्चात् उस रथ की परिक्रमा की और अपने शरीर की उज्ज्वल कांति को चौदहों भुवनों में आकाश तक व्याप्त हुए वानरों के जय-निनादों के बीच, उस रथ पर ऐसे आरूढ हुए, जैसे कमल-बंधु (सूर्य) उदयाद्रि पर आरुढ होता है। उस समय समस्त आकाश हिलने लगा और शरत्-कालीन मेघ एवं संध्या के मेघों की समता करनेवाले गरुड़, उरग तथा देवताओं के विमानों से सारा आकाश भर गया। इस दृश्य को देखने के लिए एकत्र सुर, खेचर तथा किन्नर अत्यंत हर्ष तथा भय से अभिभूत हो कहने लगे--'राम-रावण का यह द्वंद्व दो पर्वतों का द्वंद्व है। ये समुद्रयुगल हैं, पावकद्वय हैं, आकाशद्वय हैं। आज ये दोनों आपस में भिड़ रहे हैं। यह समान जोड़ी है। न जाने क्या होगा।' विजय की आकांक्षा एवं विजय की उत्कट अभिलाषा से राम तथा रावण एक दूसरे से भिड़ गये। तब समस्त जग कंपित हुआ, पहाड़ प्रकंपित हुए; दोनों ओर की सेनाएँ आकंपित हुईं; उनकी दृष्टि-रूपी वज्रपात से बिजलियाँ पिसकर आकाश में बिखर गईं; दोनों पक्षों की सेनाओं के सिंहनाद से स्वर्ग आदि लोक क्षुब्ध हो उठे। वे दोनों प्रवीण धनुर्धर, अन्योन्य विजय की इच्छा रखते हुए अपने रथों को विविध रीतियों से चलाते हुए, सूर्य तथा अग्नि-सम प्रचंड, वज्र के समान तीक्ष्ण शरों को करों, कंठों, पार्श्वों, स्कंधों, वक्षों, ललाटों, जाँघों तथा पसलियों पर चलाकर एक दूसरे को पीड़ित करने लगे। वे दोनों आपस में भिड़ते, एक दूसरे पर रोब जमाते, बाणों से युद्ध करते। उस समय उनकी चाल-ढाल, पराक्रम एवं साहस देखकर आश्चर्य होता था। वे दोनों सफल पराक्रमी वीर जब एक ही समय में बाण चलाने लगते, तब यह जानना असंभव हो जाता कि कब वे तरकस में रखे तीरों को निकालने के लिए अपने हाथ फैलाते, कब शरों को धनुष पर चढ़ाते, कब धनुष की प्रत्यंचा खींचते, कब लक्ष्य साधते और बाण छोड़ते। उन दोनों के द्वारा वेग से चलाये जानेवाले भयंकर बाणों को गिनना तो असंभव ही हो गया; किंतु यह कहना भी असत्य नहीं है कि उनके बाण प्रचंड कोदण्ड-रूपी रवि-मंडल से निकलनेवाले चंचल किरणों के समान एक के पीछे एक चलते थे। धनुर्विद्या में पारंगत तथा अक्षय तूणीरों से संपन्न वे दोनों वीर एक शर के पीछे दस शर, दस के बदले सौ शर, सौ के बदले सहस्र शर, सहस्र के बदले दस सहस्र शर, दस सहस्र के बदले एक लाख शर, एक लाख के बदले एक करोड़ प्रतिशर चलाते थे और सभी शर एक ही समय में राम-रावण पर लग जाते थे।

१४०. राम का रावण के बाणों का प्रतिबाण चलाना

तब देवताओं के शत्रु रावण ने अपने धनुष की डोरी को खींचकर शीघ्र गति से देव तथा गंधर्वों के बाण चलाये । उनके आने का ढंग देखकर समस्त अस्त्रों के ज्ञाता राम ने बिना विलंब किये, देव तथा गंधर्व-बाणों को चलाकर उन्हें टुकड़े-टुकड़े कर दिया । तब क्रोधोन्मत्त हो रावण ने राम पर राक्षस-बाण चलाया । वह बाण उभरी हुई आँखें, दीर्घ दंष्ट्र, खुरदरे, छोटे तथा घुँघराले केश तथा विशालकाय दानवों का रूप धरकर आगे बढ़ा । यह देखकर रघुकुलाधीश ने रोष से वैष्णवास्त्र का प्रयोग किया और जिस प्रकार सूर्य की कांति अंधकार को नष्ट करती है, वैसे ही उसने राक्षस-बाण के प्रताप को नष्ट कर दिया । तब रावण ने नागास्त्र का संधान करके चलाया । उसको चलाते ही, उस महा बाण से दस, बीस, बारह, दो, तेरह, तीन, पंद्रह तथा पाँच शिरोंवाले भयंकर सर्प अपने शिरों पर उज्ज्वल कांतियुक्त मणियों को धारण किये हुए निकल पड़े । उद्धत गति से आनेवाले वे सर्प ऐसे दीख रहे थे, मानों कि सर्प-सेना राम पर इस विचार से आक्रमण करने के लिए निकली हों कि राम गरुडवाहन हैं । अपनी अत्युज्ज्वल ज्वालाओं को समस्त आकाश में व्याप्त करते हुए आनेवाले उन सर्पों को देखकर राम ने गारुडास्त्र चलाया । तब उससे गरुड़ के आकारवाले असंख्य बाण निकले और अपने पंखों की फड़फड़ाहट से उत्पन्न वायु से पर्वतों को भी हिलाते हुए वे आगे बढ़े और बीच में ही उन नाग-बाणों को तोड़ डाला । यह देखकर देवता आकाश से हर्ष-निनाद करने लगे ।

उसके पश्चात् राघव ने क्रुद्ध होकर दैत्यराज पर अग्नि-बाण चलाया । वह बाण, धूम एवं स्फुलिंगों से दिशाओं को जलाते हुए, अपनी ज्वालाओं को चारों ओर व्याप्त करते हुए रावण पर आक्रमण करने चला, तो रावण ने भयंकर वारुणास्त्र चलाया । तब उस अस्त्र ने समस्त आकाश में घनघोर बादल व्याप्त कर दिया और घोर जल-वृष्टि करके अग्नि-बाण के प्रताप को नष्ट करके भयंकर गर्जन किया । तब राम ने उस शर पर वायव्यास्त्र चलाकर उसकी शक्ति को नष्ट कर दिया । तब उस राक्षस ने गजमुखास्त्र का प्रयोग किया । उस अस्त्र के प्रयोग से असंख्य गज-समूह अपने गंड-स्थलों से मद-जल की धाराएँ बहाते हुए, राम पर आक्रमण करने चले । तब राम ने नृसिंहास्त्र चलाया । उस बाण से असंख्य सिंह बादलों के समूह के समान अपने घोर गर्जनों से दिग्गजों को विचलित करते हुए, अपने कुलिश-सम नखों से हाथियों के कुंभस्थलों को चीरते हुए उन्हें मार डाला । तब देवताओं ने राघव की प्रशंसा की ।

१४१. रावण का राम पर शूल चलाना

तब रावण ने क्रुद्ध होकर प्रलय-काल की अग्नि-ज्वालाओं को उगलनेवाला, समस्त-लोक-भयंकर शूल उठाया और अपने सिंहनाद से पृथ्वी को कँपाते हुए, समुद्रों को क्षुब्ध करते हुए, समस्त दिशाओं को गुंजायमान करते हुए, सभी भूतों को भयभीत करते हुए कहने लगा—'हे राम, इस शूल की अग्नि से मैं तुम्हें और तुम्हारे भाई को भस्म कर दूँगा और जिन वीरों ने युद्ध में तुम्हारा सामना करके स्वर्ग को प्राप्त किया है, उनकी पत्नियों की अश्रुधारा को रोक दूँगा ।' इस प्रकार, कहते हुए राम पर उसने वह

शूल चलाया । तब राम ने प्रलय-काल की अग्नि पर वर्षा करनेवाले इंद्र की भाँति अद्भुत तथा पैने बाणों की वर्षा की, किंतु उन बाणों से रावण का शूल नष्ट नहीं हुआ । वह शूल उन सभी बाणों को खंडित करते हुए राम की ओर बढ़ने लगा । तब राम ने देवेंद्र की भेजी हुई शक्ति लेकर उस पर चलाया । तब उस शक्ति ने घंटिकाओं का रव करते हुए, अग्नि-ज्वालाओं को उगलते हुए, यक्ष, देवता तथा खेचरों को आनंद देते हुए, राक्षस-लोक को भयभीत करते हुए, मन तथा वायु के वेग से आनेवाले रावण के शूल को भस्म कर दिया । तब रावण ने क्रुद्ध होकर अपने दोनों हाथों में दस धनुष धारण करके भयंकर गर्जन करते हुए राम को शर-वर्षा में डुबो दिया । किंतु राम ने अपने एक ही कोदंड से उसके सभी शरों को काट डाला । तब रावण ने मद, मात्सर्य, अभिमान एवं हठ के साथ आँखों से अग्नि की वर्षा करते हुए, रघुराम पर घोर शर-वृष्टि की । उससे संतुष्ट न होकर उसने दस बाणों से मातलि को तथा दस और बाणों से अश्वों को संज्ञाहीन कर दिया और एक विषम अस्त्र को चलाकर रथ की ध्वजा को काट डाला । वानर तथा देवता विपुल चिंता के भार से विवश-से हो गये । समस्त भुवन भीत हो गया; बुध (ग्रह) रोहिणी में पहुँचकर पीड़ा पहुँचाने लगा । अपने महान् तेज से भय उत्पन्न करते हुए मंगल ग्रह विशाखा में पहुँच गया । चंचल एवं भयंकर गति से समुद्र उमड़ने लगे; उत्तुंग लहरें आकाश को छूने लगीं । वाडवाग्नि की लपटें धुएँ के समान ऊपर उठने लगीं । सूर्यबिम्ब से टकराती हुई उल्काएँ भयंकर दीप्ति के साथ गिरने लगीं । सूर्य भी तेजोहीन होकर क्षीण प्रकाश से चमकने लगा ।

१४२. अगस्त्य के द्वारा राम को आदित्यहृदय का उपदेश

मैनाक की भाँति अविचल होकर दशकंठ जब बड़े वेग से बाणों को चलाने लगा, तब राघव संभ्रमित हो देखने लगे । तब अगस्त्य मुनि वहाँ आये और राम को देखकर कहने लगे-- "हे राम, हे महाबाहुबली, युद्ध में अवश्य विजय दिलानेवाली, गोपनीय 'आदित्यहृदय' नामक मंत्र का आप भक्ति-भाव से अनुष्ठान कीजिए । उस महामंत्र के जप से आप अवश्य शत्रुओं को जीत सकेंगे । इतना ही नहीं, वह आयु को बढ़ाता है, दुःख का दमन करता है और समस्त कल्याण का कारण बनता है । हे समस्त सुरासुरों के वंद्य, कमल-बंधु सूर्य की पूजा आपको करनी चाहिए । यही इस संसार के नेत्र-समान है और अपनी किरणों के द्वारा समस्त संसार में विचरण करता है । ब्रह्मा, विष्णु और शिव ने ब्रह्म-कल्प के प्रारंभ में सूर्य का रूप धारण किया था, इसलिए आपको उचित है कि सूर्य को समस्त देवताओं का प्राण मानें । जो व्यक्ति इस कमल-बंधु की स्तुति करता है, उसे युद्ध में अवश्य विजय मिलती है ।"

इतना कहकर अगस्त्य मुनि अपने आश्रम को लौट गये । राम ने बड़ी भक्ति के साथ सूर्य-मंत्र का जप किया और महोन्नत शक्ति से विलसित होते हुए, रावण का औद्धत्य देखकर क्रोध से अपनी आँखों से अग्नि उगलने लगे । उनकी भौंहें तन गईं और उन्होंने रावण के रथ में जुते हुए भयंकर अश्वों पर श्रेष्ठ बाणों से प्रहार किया और तीन शरों से रावण के ललाट पर प्रहार करके उसे रक्त-सिक्त कर दिया । रक्त-सिक्त अंगों से

युक्त लंकेश्वर तब ऐसा दीखने लगा, मानों रामचंद्र के शर-रूपी वसंत के आगमन के प्रभाव से विकसित तरुण, अरुण अशोक वृक्ष हो। तब राक्षसपति ने रोष से राम के विशाल वक्ष पर एक सहस्र बाण चलाये। वे बाण काकुत्स्थ-वंशज के शरीर में प्रवेश करके आश्चर्यजनक रीति से उनके शरीर के पार निकल गये और पृथ्वी में धँसकर पाताल में प्रवेश कर गये, मानों वे बता रहे हों कि अधम राक्षस के द्वारा प्रयुक्त हो, देवताओं के दुर्भाग्य से विचलित न होकर अपनी विषम शक्ति को प्रकट करते हुए, निर्मल गुणों से रहित हो, धर्म-मार्ग को तजकर, अपने औद्धत्य से राघव को दुःख देनेवाले बाण अधोगति के सिवा सद्गति कैसे प्राप्त कर सकते हैं? क्षतों से बहनेवाले रक्त से राघव लथपथ हो गये और प्रलय-काल की भीषण अग्नि-ज्वालाओं की भाँति जलते हुए, आँखों से निकलनेवाले अग्नि-कणों को आकाश-भर में व्याप्त करते हुए प्रलय के समय जहाँ-तहाँ विचरनेवाले यम के समान भयंकर तेज से युक्त हो, प्रचंड मार्त्तण्ड-मण्डल की किरणों के समान तेजस्वी शर-समूह को चलाकर रावण के गर्व, मद तथा शक्ति का नाश करते हुए उसका सारा शरीर ऐसा जर्जर कर दिया कि वह निश्चेष्ट-सा रह गया। रघुराम के बाणों के वेग को देखकर रावण निर्वेद से अभिभूत होकर खड़ा रह गया।

१४३. राम-रावण का परस्पर दोषारोपण

तब प्रताप-भास्कर राघव ने दशकंठ को देखकर कहा--"क्यों रे रावण, निर्वेद से चेष्टाहीन होकर तू ऐसे क्यों खड़ा है? तू तो कहता था कि मैं कभी हारूँगा नहीं। वे दर्प-पूर्ण वचन अब कहाँ गये? रे दशकंठ! अपने भाई कुबेर का अपमान करके, एक पराये व्यक्ति की तरह उसका पुष्पक विमान ले आना और वन में हमें धोखा देकर सीता को चुराकर ले आना, क्या ये सब वीरोचित कार्य हैं? क्या, इन्हीं कार्यों पर तू गर्व करता था? अपने पूर्व जन्म के पापों के कारण तू मेरे दृष्टिपथ में पड़ गया है। अब मैं तेरा संहार किये बिना कैसे छोड़ दूँ? मैं न तुझे छोड़ूँगा और न तेरी लंका को छोड़ूँगा, चाहे हरिहर और ब्रह्मा ही तेरी सहायता करने के लिए क्यों न आवें, फिर भी मैं युद्ध में तेरा वध अवश्य करूँगा; तुझे कदापि छोड़ूँगा नहीं। रे रावण, आज मैं तेरा रक्त-मांस समस्त भूतों को खिलाऊँगा। तू क्रूर है, अति कामातुर है, दुष्ट-बुद्धि है, और देवताओं का द्रोही है, इसलिए तू युद्ध-भूमि से भाग भी जायगा, तो भी तेरा पीछा करके तेरा संहार करना मेरे लिए महान् पुण्य का कार्य होगा। तेरी मृत्यु अब तेरे निकट आ पहुँची है, इसलिए तुझे ऐसी बातें कहने से कोई प्रयोजन नहीं है। आज मैं तेरे पराक्रम, बाहुबल तथा वैभव को समाप्त करूँगा। क्या, तू नहीं जानता कि मैंने तेरे भाई भुवन-भयंकर खर नामक दैत्य का संहार किया है। और एक बात मैं तुझसे कहूँ, तू यदि आज भी जानकी को मुझे लौटाकर मेरी शरण माँगो, तो मैं तेरी रक्षा करूँगा। इसमें संदेह मत कर। यदि युद्ध करेगा, तो तेरी विजय असंभव है और पराजय निश्चित है। (ब्रह्मा के) वर के प्रताप से तूने दीर्घ आयु पाई है, कई प्रकार की मायाओं को जानता है। भयंकर युद्ध के शस्त्रास्त्र रखता है और इंद्रादि समस्त दिक्पालों तथा तीनों भुवनों को तूने जीत लिया है। ऐसे वीर का वध आज मैं अवश्य करूँगा।"

रघुराम की ये बातें रावण को अग्नि-ज्वालाओं के समान जलाने लगीं। तब दश-कंठ क्रोधोन्मत्त हो रघुराम से कहने लगा--'कदाचित् तुम इस बात के कारण फूल रहे हो कि तुमने कुछ क्षुद्र राक्षसों का संहार किया है। तुम मुझे नहीं जानते। मेरी शक्ति का परिचय तुम्हें नहीं है। मैं ने स्वर्ग के निवासी यक्ष, गंधर्व, देवता तथा दिक्पालों का अपमान करके उन्हें परास्त किया है और बड़ी निरंकुशता के साथ राज्य करता रहा। ऐसे बल-पराक्रम से संपन्न मैं तुम्हारी परवाह करूँगा? जबतक मैं तुम्हें और तुम्हारे भाई का युद्ध में संहार करके उस दृश्य को जी भरकर नहीं देखूँगा, तबतक मैं लंका में प्रवेश नहीं करूँगा।' ऐसा कहकर रावण ने प्रलय-काल की अग्नि के समान जलनेवाले असंख्य दिव्य अस्त्र-शस्त्र राम पर चलाये। तब राम ने क्रुद्ध होकर एक प्रतिबाण छोड़ा। उसके पश्चात् उन्होंने बड़े हर्ष से उन दिव्यास्त्रों का स्मरण किया, जिन्हें विश्वामित्र ने ताड़का के वध के दिन दिया था। स्मरण करते ही वे सभी दिव्यास्त्र स्फुलिंगों को विकीर्ण करते हुए उनके समक्ष साकार होकर उपस्थित हो गये। तब राम ने उन दिव्यास्त्रों का समुचित रीति से संधान किया और दायें-बायें इस प्रकार चलाया, जैसे पर्वत पर बिजलियों की वर्षा होती है। इससे भी तृप्त न होकर राम ने अपनी उद्धत शक्ति का प्रदर्शन करते हुए ऐसी बाण-वृष्टि की कि दशकंठ दृष्टि से भी ओझल हो गया।

१४४. रावण की मूर्च्छा

राम के शरों के आघात से आहत हो रावण रथ परही मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। यह देखकर कालकेतु भयाकुल हो उस रथ को युद्ध-भूमि के बाहर ले गया। इससे देखकर देवता हर्ष-निनाद करने लगे और वानर-समूह उत्साह से सिंह-गर्जन करने लगा। थोड़ी देर के पश्चात् राक्षसराज की मूर्च्छा दूर हुई। वह रण-विक्रम का प्रदर्शन करते हुए रथ पर खड़े हुए अपने सारथी से कहा--'क्यों रे, तुमने ऐसा अपराध क्यों किया? युद्ध-भूमि से तुम रथ को इतनी दूर क्यों ले आये? मेरी कीर्त्ति को कलंकित करते हुए तुमने राम को हँसने का अवसर क्यों दिया?' तब सारथी ने कहा--'हे देव, परास्त होने पर या शत्रु से मिलने पर मुझे रथ को युद्ध-भूमि से बाहर नहीं लाना चाहिए। रथी को संकट में देखकर ही रथ को युद्ध-भूमि से लौटा ले जाना सारथी का रण-धर्म है। इसलिए मैं, आपको यहाँ ले आया हूँ।' तब रावण ने उसके विवेक की प्रशंसा करते हुए बड़े हर्ष के साथ उसे उचित भेंट दी और उसको देखकर कहा--'वह देखो, राम अब भी रण के मध्य खड़ा है। उसके रथ के निकट हमारा रथ ले चलो।' तब कालकेतु ने बड़े वेग से रथ चलाकर उसे राम के रथ के आगे प्रतिष्ठित किया। दशकंठ के रथ को उद्धत वेग से आते हुए देखकर राम ने मातलि से कहा--'रावण का रथ आ रहा है। तुम मेरा रथ शीघ्र उसके निकट ले चलो। दृष्टि को चंचल किये विना, तीव्र बाणों के भय से विचलित हुए विना, बागडोर को अच्छी तरह सँभाले हुए अश्वों को हाँको। हे मातलि, घोड़ों का मन तुम जानते हो। ऐसा सारथ्य करो कि रथ का वेग विचित्र दिखाई पड़े। कोई ऐसी बात नहीं, जो तुम नहीं जानते। मैं और तुम्हें क्या कहूँ?' तब मातलि ने अपना रथ विपरीत मार्ग से रावण के रथ के पास ले गया। तब लोककंटक तथा तीनों लोकों को

भयभीत करनेवाले रावण ने पृथ्वी को कँपाते हुए अद्भुत अस्त्र चलाकर रथ को ढक-सा दिया, सारथी को व्याकुल कर दिया, अश्वों को शक्तिहीन कर दिया और एक प्रचंड बाण चलाकर राघव का धनुष तोड़ दिया और कई बाणों से राघव को भी पीड़ित किया । तब क्रुद्ध होकर राम ने भयंकर रूप धारण करके देवेंद्र के द्वारा भेजे हुए धनुष को सँभाला और उसकी प्रत्यंचा के टंकार से ब्रह्मांड को विदीर्ण करते हुए दानवों के गर्वांधकार का नाश करने के निमित्त सूर्य-सम भास्वर सैकड़ों, सहस्रों, लाखों, करोड़ों तथा अरबों की संख्या में शर रावण पर चलाये । वे बाण कदाचित् यह सोचकर उसके शरीर को पार कर जाते थे कि यह महान् पापी है, क्रूर है, चंचल है, मायावी है, धर्मबद्ध रहनेवाले हमें इसके शरीर में नहीं रहना चाहिए । कुछ बाण कदाचित् यह सोचकर आकाश की ओर, पृथ्वी की ओर और लंका की ओर जाने लगे, मानों वे यह समाचार पृथ्वी को देवताओं तथा सीता को सुनाने जा रहे हैं कि अब अधिक विलंब नहीं है, रावण अब मरनेवाला ही है, तुम अब व्याकुल मत होओ । अग्नि की प्रभा के समान दीप्त होनेवाले राम के बाण मूसलाधार वर्षा की भाँति रावण पर गिरने लगे, फिर भी रावण अविचल रहते हुए प्रचंड शरों से राम के बाणों को काटने लगा । इस प्रकार, विशाल बाहुबल तथा रण-कौशल से युक्त वे दोनों पराक्रमी समान सत्त्व, समान वेग, समान बाण-संपत्ति, समान रण-कौशल से युक्त हो, भिड़ गये, और बंधन से मुक्त क्रोध से भरे सिंहों की भाँति, सात दिन तथा सात रात तक अविराम युद्ध करते रहे । उस समय रावण के रथ पर मेघ रक्त की वर्षा करने लगे; रथ के अश्वों की पूँछों से अग्नि-कण निकलने लगे, सूर्य की किरणें भिन्न-भिन्न कांतियों में दीप्त होने लगीं । रावण को देखकर समस्त भूत कहने लगे--'अब तुम बच नहीं सकोगे; आज अवश्य मरोगे ।' आकाशवाणी हुई--'हे राघव, आप विजयी होंगे ।'

अपनी पराजय को सूचित करनेवाले दुःशकुनों को देखकर रावण ने विजय की आशा छोड़ दी। फिर भी, बड़े साहस के साथ राघव पर निशित बाण, करवाल, गदाएँ, शूल, परिघ, शक्ति आदि चलाकर उन्हें कष्ट पहुँचाने लगा । किंतु राम ने वज्र-सम तथा प्रचंड प्रलयाग्नि की समता करनेवाले अर्द्ध-चंद्रास्त्र चलाकर उन्हें बीच में ही खंडित कर दिया । रावण ने अत्यंत भयंकर रूप से भीषण बाणों की वर्षा की, तो राघव ने अर्द्ध-चंद्र बाणों से उन्हें काट डाला ।

इस प्रकार, विजय की आकांक्षा करके दोनों वीर बड़ी धीरता के साथ परस्पर युद्ध करते रहे । तब वानर एवं राक्षस-सैनिक अपने-अपने अस्त्र सँभाले हुए रण-विचक्षण राम-रावण का युद्ध-कौशल देखते हुए चित्रलिखित की भाँति युद्ध भूलकर खड़े रहे । अपनी पराजय को निश्चत जानते हुए भी रावण और अपनी विजय निश्चित जानते हुए राम, दोनों बड़ी तत्परता के साथ क्षण-क्षण आगे बढ़ते हुए, उत्साह के साथ युद्ध करने लगे । उसी समय क्रोध से अपनी आँखों से अग्नि-कणों की वर्षा करते हुए राम ने एक पैने अर्द्ध-चंद्र बाण से रावण के रथ की ध्वजा को काट डाला । तब रावण ने भी अत्यधिक रोष से घोर बाणों का संधान करके, राम के रथ के अश्वों तथा मातलि पर चलाया । किंतु वे उन बाणों से आहत होकर भी कमल-नालों से आहत व्यक्तियों के

समान विना हिले-डुले निश्चल खड़े रहे । तब वानर अट्टहास करते हुए रावण पर पिल पड़े । रावण ने अपनी माया से उस वानर-सेना पर महान् शस्त्रों की वृष्टि की । उस बाण-वृष्टि से वानर-वीर भयभीत हो उठे। तब राम ने रावण पर, उसके सारथी, रथ तथा रथ के अश्वों पर असंख्य बाण चलाकर उसे व्याकुल कर दिया । दशकंठ ने भी दाशरथि पर बाणों की वृष्टि की । तब राम ने अद्वितीय ढंग से भयंकर बाणों का संधान किया और उनसे समस्त आकाश तथा पृथ्वी को ढक दिया । महेंद्र पर्वत तथा मंदराचल के समान धैर्य रखनेवाले वे दोनों वीर, युद्धभूमि में स्थिर होकर इस प्रकार युद्ध करने लगे, जैसे नभ के साथ नभ, समुद्र के साथ समुद्र युद्ध करते हों और 'रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयो-रिव' वाली उक्ति को चरितार्थ करने लगे । तब मेघ-गर्जन के समान धनुष की ध्वनि, प्रचंड शरों के परस्पर टकराने की ध्वनि, युद्ध के समय सुनाई पड़नेवाले भयंकर गर्जन, रथों के चलने से उत्पन्न होनेवाली विपुल ध्वनि तथा घोड़ों की हिनहिनाहट आदि की सम्मिलित ध्वनि से समुद्र आलोडित हुए, उल्काएँ गिरने लगीं, दिशाएँ कंपित हो उठीं, पृथ्वी हिल उठी, समस्त लोक चकरा गये, पर्वत काँप उठे, दिग्गज चकराने लगे, देवता आनंदित हो उठे, समस्त भूत त्रस्त हो उठे और आदिशेष विचलित हो उठा। इस प्रकार, अत्यधिक वीरता के साथ लड़ते-लड़ते उन दोनों की बाहुओं का दर्प कुछ शिथिल हुआ, उनकी प्रचंडता कुछ कम हुई, और थोड़ी देर तक अपने-अपने धनुष का संधान करना छोड़कर वे एक दूसरे को देखने लगे । चंचल फूत्कार, श्रमजल का प्रवाह, चीत्कार आदि के पश्चात् उनकी थकावट आधी घड़ी में ही दूर हो गई ।

१४५. राम का रावण के कर-चरणों को खंडित करना

तुरंत वे फिर रणोत्साह से दीप्त हो उठे और प्रलय-काल के यम की भाँति भयंकर रूप धारण करके महान् साहस के साथ रावण से भिड़ गये। राम ने तब प्रलय-काल के रुद्र के समान भयंकर दीखते हुए घोर तथा पैनी कर्त्तरी, आरा तथा भाला को चलाकर उस दशकंठ के दसों सिर और बीसों बाहुओं को एक साथ ही काट डाला। सब लोग आश्चर्य-चकित होकर देखने लगे । किंतु दूसरे ही क्षण करवाल, मूसल, मुद्गर, शर, चाप तथा केयूरों से युक्त बीस बाहुएँ तथा महान् मुकुटों से अलंकृत दसों सिर ऐसे उग आये कि राम भी इसे देख चकित होकर कहने लगे--'मेरा काटना ही झूठ था ।' इस पर क्रुद्ध होकर दाशरथि ने पुनः उसके सिर और हाथ काट डाले । किंतु जितने वेग से राम उसके सिर काट देते, उतने ही वेग के साथ उसके सिर उग आते थे । सिर के मुकुटों पर बाणों के लगने की ध्वनि कानों में पड़ने के पहले ही नये उगे हुए सिरों से निकलनेवाला भयंकर अट्टहास कानों में सुनाई पड़ता था । रावण के कटे हुए सिरों के स्थान पर तुरंत नये सिर उग आते थे और कटे हुए सिरों में राम के बाण गड़े हुए रह जाते थे, तो ऐसा लगता था कि मानों रावण ने ब्रह्मा से, केवल कंठ पर सिरों के उग आने का ही वर नहीं प्राप्त किया था, बल्कि शरों में भी सिरों के उग आने का वर प्राप्त किया था । उसके सिरों का कटना, कटे हुए सिरों का बाण के साथ ऊपर उठना, फिर नये उग आये हुए सिरों को बाणों से काटना, ये सभी व्यापार एक के बाद एक इतनी शीघ्र गति से चलते थे

कि दर्शक चकित रह जाते थे और ऐसा लगता था, मानों सौरभ-युक्त राम-बाण-रूपी उत्पलों के साथ रावण के सिर-रूपी कमल-समूह को मिलाकर, रक्त-धारा-रूपी सूत्र में माला गूँथकर, स्वर्ग का माली बार-बार देवताओं को मालाएँ समर्पित कर रहा हो।

रघुराम क्रोध से व्यग्र हो, अपना रण-कौशल दिखाते हुए, अच्छी तरह लक्ष्य साधकर, अपनी दृढ मुष्टि के चमत्कार से, रावण के सिर तथा भुजाएँ काटते जाते थे और शीघ्र ही वे उग आते थे। जितनी ही शीघ्रता से राम उन्हें काटते थे, उतनी ही शीघ्रता से वे उग आते थे। राम के शर-समूह से रावण के सिर तथा करों का कट जाना और फिर उनका निकल आना इस वेग से होता था कि राक्षसों तथा वानरों को इसका पता भी नहीं लगता था। रघुराम के शरों से कटकर गिरे हुए रावण के सिर न जँभाई लेते थे, न दर्द का अनुभव करते थे, न मंद पड़ते थे, न शक्तिहीन होते थे, न अपने उल्लास से रहित होते थे, न कांति-हीन होते थे, न परितप्त होते थे, न पलक मारते थे, न उत्साह खोते थे, और न अपनी क्रुद्ध दृष्टि ही तजते थे। पूर्व की भाँति वही क्रुद्ध दृष्टि, वे ही तनी हुई भौंहें, वही अट्टहास, वही गर्जन, वही वाणी, वही अनुग्रह, वही युद्ध की क्लांति, वही धृति, और वही हुंकार ? इनसे रहित एक भी सिर उस रण-भूमि में कटकर गिरे हुए रावण के सिरों में नहीं दीखता था। जो अट्टहास, जो दर्प और जो रोष-पूर्ण दृष्टि, गिरते हुए सिरों में दीखते थे, उसी प्रकार के अट्टहास, दर्प एवं रोषपूर्ण दृष्टि उगते हुए सिरों में भी दिखाई पड़ते थे। दानवेंद्र के सिरों तथा बाहुओं से पृथ्वी तथा आकाश के बीच का भाग भरने लगा। यह देखकर राम का क्रोध और भी अधिक बढ़ गया; वे लगातार बाणों को चलाने लगे। तब रावण अपने कटे हुए सिरों तथा बाहुओं को, नये उगे हुए करों से उठा-उठाकर क्रोधपूर्ण दृष्टि के साथ बड़े वेग से राम पर फेंकने लगा। उसके फेंके हुए सिर और भुजाएँ राम पर इस तरह आक्रमण करते हुए जान पड़ते थे, जैसे कमनीय वानर-ग्रह के मध्य विलसित कुमुद-बंधु, षोडश कला-पूर्ण, जगदानंददायक रघुराम-रूपी चंद्र को देखकर, चंद्र के भ्रम में, कमल-समूह (रावण के सिर) राहु-कोटि (रावण की भुजाएँ) से युक्त हो, परस्पर सहायता करते हुए, एक साथ आकर उन (राम-रूपी चंद्र) पर आक्रमण करते हों।* सिरों तथा करों का एक साथ आना ऐसा लगता था, मानों राम तथा विजय-लक्ष्मी के विवाह के समय देवताओं ने पल्लव-रत्न-दर्पण तोरण सुंदर ढंग से सजाये हों। कटते हुए सिर एवं विशाल बाहुएँ, बरसनेवाले शर तथा उलूक, काक आदि खग, पृथ्वी को कंपित करते हुए गगन-मंडल में ऐसे व्याप्त हो गये, मानों यमराज की सभा का भयंकर वितान हो। इस कारण देवताओं को भी यह मालूम नहीं होता था कि यह दिन है या रात है या संध्या। प्रख्यात धनुषों एवं शरों की दीप्ति के कारण भूमि में दिन की भाँति प्रकाश व्याप्त था।

अपनी शक्ति-भर प्रयत्न के पश्चात् भी उस दैत्य को जीतने की किंचित् भी आशा न देखने के कारण राम शर-संधान का कार्य स्थगित करके बार-बार मन-ही-मन सोचने

***कमल और राहु दोनों चंद्र के शत्रु माने जाते हैं, इसलिए दोनों मिलकर राम-रूपी चंद्रमा पर आक्रमण कर रहे थे।—ले०**

लगे कि अविराम गति से इस राक्षस का सिर काटते-काटते तंग आ गया हूँ; बाहुओं को काटते-काटते ऊब गया हूँ, वक्षःस्थल पर बाण चलाते-चलाते थक गया हूँ, बिना रुके शर-प्रहार करते-करते क्लांत हो गया हूँ; फिर भी यह दुष्ट मरता नहीं है । अब इस दुरात्मा को कैसे मारूँ ? ऐसे उत्साह-शिथिल होनेवाले राम को देखकर विभीषण ने कहा--'हे सूर्य-कुलाधीश, ब्रह्मा के वर से, इसकी नाभि में कुंडलाकार में अमृत रहता है । उस अमृत का प्रभाव उसे मरने नहीं देता । आप भले ही असंख्य बार उसके सिर तथा बाहुओं को काटें, वे पुनः-पुनः उगते ही रहेंगे । उनका उन्मूलन नहीं होगा। यही कारण है कि दानवेंद्र विचलित नहीं होता । आप इस प्रकार लगातार उसके सिरों एवं बाहुओं को कबतक काटते जायेंगे ? इसका अंत ही नहीं होगा, अतः आप आग्नेय शर चलाइए । इससे उसके नाभि-विवर में स्थित अमृत सूख जायगा । तब राक्षसराज स्वयं परास्त हो जायगा। आपके द्वारा चलाये जानेवाले बाणों से रावण के हाथ और सिर युद्ध में एक सौ नौ बार उग आयेंगे और उसके बाद उसकी मृत्यु होगी ।

१४६. आग्नेय अस्त्र के प्रयोग से राम का रावण को शक्तिहीन कर देना

तब राम ने विभीषण की विनय, नीति, ज्ञान, स्वामिभक्ति, श्रद्धा तथा पवित्र भावों को देखकर उसकी प्रशंसा की । उसके पश्चात् उन्होंने अपने धनुष की प्रत्यंचा की ऐसी ध्वनि की कि देवता हर्षित हुए, रावण विचलित हुआ और गंगा आदि नदियाँ क्षुब्ध हुईं। फिर, उन्होंने प्रज्वलित वज्रों की वर्षा करनेवाले आग्नेय अस्त्र का संधान करके चलाया । रावण की नाभि में स्थित अमृत को उस शर की अग्नि में आहुति दी और एक सौ नौ बार रावण के सिरों तथा बाहुओं को काट डाला । उसके पश्चात् राम ने एक सौ दसवीं बार एक अनुपम बाण चलाकर उसके एक सिर तथा दो बाहुओं को छोड़ शेष शिरों तथा बाहुओं को काट डाला । यह देखकर देवता हर्षोन्मत्त हो उठे और वानर हर्ष-निनाद करने लगे । सिरों के कटने पर, रक्त-धाराओं के पृथ्वी पर गिरते समय, रावण ऐसा दीख रहा था, मानों प्रलयाग्नि, सभी लोकों को जलाकर अपनी लाल लपटों से युक्त हो जल रही हो । सारे शरीर से रक्त की धाराएँ छूट रही थीं । उस समय रावण के शरीर पर स्थित एक सिर ऐसा दीखता था, मानों अस्ताचल पर स्थित हो सूर्य-बिंब अरुण आतप की कांतियों को विकीर्ण कर रहा है ।

तब विभीषण को देखकर रावण ने अत्यंत क्रोधावेश से कहा--'इसीने राम को मेरा वह रहस्य बता दिया, जिसे अबतक कोई नहीं जानता था । इसलिए अब मैं पहले इसीका वध करूँगा ।' इस प्रकार कहते हुए रावण ने भयंकर शक्ति को विभीषण पर चलाया, तब वह शक्ति आकाश-मार्ग से अग्नि-ज्वालाएँ उगलती हुई आनेवाली प्रलयानल की भाँति विभीषण की ओर आने लगी । तुरंत राम ने अविचल भाव से घोर बाण चलाकर बीच में ही उसे काट डाला । रघुराम की अविराम शर-वृष्टि से राक्षस की क्रोधाग्नि जैसे नष्ट हो जाती है, वैसे ही उसके शरीरस्थ तेज भी अद्भुत गति से तिरोहित हो गया । एक सिर तथा दो बाहुओं को छोड़कर रावण के शेष सिर एवं भुजाएँ कट गई थीं । वीर रस के महान् प्रवाह की भाँति स्रवित होनेवाली रक्त-धाराओं से वह सना हुआ था। फिर भी,

उसने बड़े दर्प से रण-भूमि में रक्त से भींगकर पड़े हुए अपने सिरों तथा बाहुदंडों को निहारा, उनपर चोंच मारनेवाले पक्षी-समूह को देखा, फिर राम की ओर दृष्टि दौड़ाई। तब उसने केश नोचने से क्रुद्ध हो बंधनों को तोड़कर मुक्त होनेवाले सिंह के समान गर्जन किया, दाँतों को उखाड़ने से क्रुद्ध होकर आक्रमण करनेवाले उग्र-साँप की भाँति, मूँछों को खींचने से खीजकर दंड देने के लिए उद्यत यम की भाँति तथा सारे संसार को एक साथ निगल जानेवाले के समान क्रोध से उन्मत्त हो, रावण ने भयंकर रूप धारण किया। फिर, अपनी पहले की सभी बाहुओं की शक्ति अपनी बची हुई दोनों बाहुओं में संचित करके भयंकर अट्टहास किया, और अविराम गति से बरछा, तोमर, शूल, परशु, खड्ग, शर, भाला, शक्ति, गदा आदि चलाते हुए राम को विविध प्रकार से कष्ट दिया, और ऐसे आश्चर्यजनक साहस के साथ भयंकर युद्ध करने लगा कि देवता भी भयातुर हो उठे। शक्ति, गर्व एवं यत्न के साथ युद्ध करनेवाले रावण को देखकर मातलि ने भयाकुल हो, राम से कहा—'हे देव, अब विलम्ब क्यों? इसके सिर और भुजाएँ कहीं फिर उग न आयें। उसके पहले ही आप ब्रह्मास्त्र चलाकर इस नीच का संहार कीजिए और अपनी शक्ति का परिचय दीजिए।"

१४७. ब्रह्मास्त्र से रावण का वध

मातलि की बातें सुनकर श्रेष्ठ बलशाली, प्रशंसनीय पराक्रमी, बाहुबल-संपन्न राम ने सोचा कि ब्रह्मास्त्र को चलाने का यही समय है। फिर, उन्होंने पृथ्वी, देवता, तपोधन, वेद, वैदिककर्म आदि का स्मरण किया, और अपने प्रताप एवं दर्प को प्रदर्शित करके पृथ्वी को कँपाते हुए धनुष का टंकार किया और उस अक्षय ब्रह्मास्त्र का स्मरण किया, जिसे विश्वामित्र ने अपने यज्ञ के समय राम को प्रदान किया था। फिर, उन्होंने अक्षत वेद-मंत्रों का उच्चारण करके, उस ब्रह्मास्त्र को प्रत्यंचा पर चढ़ाया और प्रत्यंचा को तानकर वाम चरण को आगे रखा और रावण के वक्षःस्थल को लक्ष्य करके बाण चलाया। यह देखकर देवेन्द्र आदि देवता फूल उठे। तब वह बाण प्रचण्ड गति से तथा भयंकर ज्वालाओं से युक्त हो वसुओं को पार्श्व-भाग में, आदित्यों को अपने अग्रभाग में, इन्द्र आदि देवताओं को पृष्ठभाग में तथा पृथुल पवन को आगे किये हुए चल पड़ा। अपने पंखों से उज्ज्वल तथा दिव्य आभा को व्याप्त करते हुए अपनी अमोघ महिमा से दीप्त होते हुए, समस्त वानरों के अभीष्ट को सफल बनाने के निमित्त वह शर विना रुके आगे बढ़ा और प्रलय-काल के मेघों तथा वज्रों का-सा घोष चारों ओर व्याप्त करके राक्षस-नेताओं को भयभीत करते हुए जय-ध्वनियों से आकाश को कंपित करते हुए रावण के वक्षःस्थल में गड़ गया, उस अस्त्र ने इन्द्र, यम तथा वरुणों के लिए भी अभेद्य उसके (रावण के) मर्मस्थल को भेद डाला और उसके प्राण लेकर उसके हृदय को पार करके निकल गया और पृथ्वी में इस प्रकार गड़ गया, मानों पृथ्वी से कह रहा हो कि जिस पापी ने तुम्हारी पुत्री को बन्दी बनाकर बड़ी नीचता के साथ उन्हें अपनाने का विचार किया था, उसके प्राण मैंने हर लिये हैं। फिर, लौटकर उस बाण ने राघव के महिमामय तूणीर में प्रवेश किया, मानों ब्रह्मा के (पुलस्त्य) पोते का वध करने के पाप से मुक्त होने के लिए कहीं भी शरण न पाकर उसने राघव की शरण ली हो।

तब राघव के अस्त्र के आघात से रावण के शरीर से रक्त की धाराएँ बहने लगीं और वज्राघात से पृथ्वी पर गिरनेवाले कुलपर्वतों की भाँति रावण पृथ्वी पर गिर पड़ा। उस दैत्य के विशाल शरीर के गिरने से पृथ्वी आश्चर्यजनक ढंग से धँस गई। पर्वत भी धँस गये, दिग्गज दब गये, आदिशेष तथा कूर्म भी खिसक गये। सप्त पातालों के अधिपति व्याकुल हो गये। हतशेष दैत्य-वीर भयभीत हुए। वानरों ने सिंहनाद किया; अमर, किन्नर, खेचर आदि राम की स्तुति करने लगे। अप्सराओं ने रघराम पर पुष्पवृष्टि की, सारे स्वर्ग में दिव्य दुंदुभियाँ, दिव्य काहल एवं दिव्य शंख बजने लगे। शीतल-मंद-सुगंध पवन चलने लगा और दिशाएँ निर्मल हो गईं। इस प्रकार, सुर, मुनि एवं खेचरों के शोक का निवारण करके, समस्त भूमि का भार उतारकर, अपनी इच्छित विजय को प्राप्त करने के पश्चात् प्रभु राम ने अपने हाथ के धनुष की प्रत्यंचा को शिथिल किया और प्रसन्नचित्त हो उसे लक्ष्मण को सौंपा। समस्त वानर, सभी खेचर, सभी दिक्पाल, सारे भूपति, समस्त भूत, सभी देवता, सभी गन्धर्व, सभी सन्मुनि, सभी पन्नग, सकल सिद्ध एवं सभी लोक तब राम की प्रशंसा करने लगे। उस समय युद्ध में अन्धकासुर का वध करके शोभायमान होनेवाले धूर्जटि (शिवजी) के समान राम, लोकाभिराम, विजयधाम एवं नवसुधा-धाम की भाँति सुशोभित हुए।

१४८. विभीषण का शोक

तब विभीषण अत्यधिक शोक से संतप्त होते हुए युद्ध में गिरे हुए अपने अग्रज को देखकर बार-बार ऊँचे स्वर में विलाप करने लगा—"हाय, सुरासुरों के लिए भयप्रद, युद्ध-भयंकर, तुम्हारी ये भुजाएँ आज पक्षियों के वशीभूत हो गईं; अत्यन्त कोमल शय्या पर लेटने-वाला यह शरीर आज कठोर युद्धभूमि पर गिरा हुआ है। शत्रु-रूपी अन्धकार के लिए बाल-सूर्य की भाँति ये मणिमय किरीट आज मिट्टी में मिल गये! हे बन्धु! विक्रम, विनय, नय तथा कीर्त्ति में तुम्हारी समता कोई नहीं कर सकता था। ऐसे तुम, घोर पापों में प्रवृत्त होने के कारण क्रूर, पापी एवं उद्धत कहलाने लगे। नीति-च्युत होना बुरा है, यह तुमने कभी सोचा ही नहीं। मेरी बातों पर तुमने ध्यान नहीं दिया; प्रशस्त नीति-मार्ग को तुम पहचान नहीं सके। जानकी को राम के सुपुर्द करने के लिए मैंने परामर्श दिया, किन्तु तुम ऐसा नहीं कर सके। मैंने तुम्हें समझाया था कि तुम राम को साधारण मानव मत समझो, किन्तु तुमने मेरी बातों की अवहेलना कर दी। तुम्हारे अभिमान तथा गर्व ने ही आज तुम्हारी ऐसी दशा कर दी। अब मैं तुम्हारे लिए कैसे शोक करूँ? क्या मैंने तुमसे नहीं कहा था कि राम के साथ वैर करना उचित नहीं है, उसे (वैर) छोड़ दो। हे अनुपम नीति-सम्पन्न! क्या, तुम्हारे जैसे सुकृति के लिए परस्त्री को माता के सदृश नहीं मानना चाहिए? तुमने उचित-अनुचित का विचार ही नहीं किया। अन्त में मेरे वचन ही सत्य सिद्ध हुए!" इस प्रकार, वह अपने अग्रज के अपराधों का स्मरण करके बार-बार शोक करने लगा।

१४९. मृत रावण के निकट मंदोदरी का आना

तब मंदोदरी आदि दनुज-वधुएँ उमड़ती हुई शोकाग्नि में जलती हुई, अपने मुखों तथा छातियों को पीटती हुई तथा उच्च स्वर में रुदन एवं विलाप करती हुई लंका से

युद्ध-भूमि की ओर मन्द गति से चल पड़ीं। उनके चलते समय, उनके चरणों की अरुण कान्ति पृथ्वी पर पड़ रही थी; लड़खड़ाकर चलने से उनकी मेखलाएँ शिथिल हो रही थीं; उनकी क्षीण कटियाँ अवश हो झुकी जा रही थीं; हृदय के शोक-भार से उनकी तनु-लताएँ काँप रही थीं; उनके कंठ-हार टूट रहे थे; आँखों से आँसू का प्रवाह झर रहा था; उनके आँचल खिसक रहे थे; वेणियाँ खुलकर पीठ पर डोल रही थीं और उनके मुख कान्तिहीन हो गये थे। अपनी रुदन-ध्वनि से समस्त आकाश को गुँजाती हुई वे युद्ध-भूमि में पहुँचीं। उस समय वह रण-भूमि टूटे हुए रथ, छिन्न-भिन्न होकर पड़े हाथी के कुंभ-स्थल, कटे हुए सिर, पैर एवं शरीर, चूर-चूर बने हुए हाथी के दाँत, कुचले हुए सिर, टूटी हुई गदाएँ, चूर्ण बने हुए कवच, कटे हुए वक्ष, उखड़े हुए मस्तक, फटे हुए कंठ, भग्न हुए शस्त्र, आँतों की राशियाँ, माँस-खंड, मृत पड़े हुए गज, खण्डित अश्व, पर्वत-शृंग, एक दूसरे पर पड़े हुए धड़, अजस्र बहनेवाली रक्त की नदियों में बहनेवाली हाथी के शुंड, पर्वतों के नीचे गिरकर दब जाने से निकली हुई आँखोंवाले सैनिक तथा कठोर ध्वनि करते हुए शवों पर मँडरानेवाले अनेक काक, घूक, कंक, गीध आदि से भरी हुई थी।

इतना ही नहीं, उस युद्ध-भूमि में अनेक भूतों का संचार होने लगा था। कुछ भूत राम के बाणों के आघात से बहनेवाले रक्त-प्रवाह का पान करते हुए उसे सोमपान समझकर झूमते थे। कुछ भूत राम को धोखा देकर सीता को ले आनेवाले राक्षसेन्द्र की प्रशंसा करते थे; कुछ रावण के दस सिरों एवं बीस हाथों को उसके धड़ में यथा-स्थान जोड़कर मृत रावण के शरीर को देखकर कह रहे थे कि हे दैत्येन्द्र, तुम्हारे लिए यह अनुचित है, तुम सीता को राम के सुपुर्द कर दो। कुछ भूत वानरों के शरीर में प्रविष्ट होकर, वानर बनकर हाथी के धड़ों को ले आते और रक्त-समुद्र में डालकर बड़े यत्न से सेतु बाँधने में तत्पर दिखाई देते थे। कोई भूत कहता—'मैं नारायण हूँ। तुम देवता हो, तुम राक्षस हो।' फिर, वे हाथी के धड़ पर आँतों को वासुकि के समान लपेटते और उस धड़ को रक्त-समुद्र में डालकर मथने लगते (मानों वे समुद्र-मंथन की पुनरावृत्ति कर रहे हों)। कुछ भूत इन्द्र की ओर देखकर हँसते हुए कहते—'हमारे राम के बाणों से अच्छी तरह मथे हुए मांस को लेकर उसके बदले हमें स्वर्ग क्यों नहीं देते? क्यों बकरी के थोड़े मांस-खण्डों के बदले स्वर्ग देते हो?' * कुछ भूत यह कहते हुए नाच रहे थे कि शक्ति-संपन्न कुमार एवं तारकासुर की युद्ध-भूमि भी हमने देखी थी; भीषण गति से युद्ध करनेवाले शिवजी तथा अन्धकासुर की रण-भूमि भी हमने देखी थी; इन्द्र तथा वृत्रासुर का रण-क्षेत्र भी हमने देखा था; किन्तु इतने मांस-खण्ड, इतने धड़, ऐसा रक्त-प्रवाह ऐसी विविध स्वादिष्ठ वस्तुएँ हमने अबतक कभी नहीं देखीं। कुछ भूत रवि-कुलाधिप राम के विक्रम की भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे; कुछ भूत कहते थे कि 'राम का विक्रम भी क्या, हमारी प्रशंसा के योग्य है?' इसने तो युद्ध में उस दशकंठ का वध कर डाला, जो भयंकर युद्ध करके, श्रेष्ठ रक्त-मांस आदि से हमें तुष्ट किया करता था;

***यज्ञ के समय इन्द्र को बकरी के मांस की जो बलि दी जाती है, उसी की ओर संकेत है।**

अब हमें वह भाग्य कहाँ मिलेगा ? कुछ भूत ऊँचे ध्वज-दण्डों को खड़ा करके, उनमें आँतों के झूले डालकर बड़े मोद से अपनी स्त्रियों के साथ उनपर झूलते हुए सरस आनन्द का अनुभव करते; कुछ भूत हड्डियों तथा शरों को एक ओर हटाकर, एक विशाल स्थान बना लेते और अपने प्रिय जनों तथा प्रेमिकाओं के साथ आराम से बैठकर रक्तपान करते हुए आनंदित होते थे और संतुष्ट हो आशीर्वाद देते थे कि सीता के साथ राम सुखी रहें। ऐसे भूत-समूह से भरे, भयंकर दिखाई देनेवाले उस युद्ध-क्षेत्र में राक्षस-वधुएँ रोती-कलपती तथा बार-बार पति को पुकारती हुई पहुँच गईं। वहाँ उन्होंने अनुपम रीति से व्याप्त राम की शर-चन्द्रिकाओं से व्याकुल होकर वीर-लक्ष्मी के विरह की अग्नि से दग्ध होकर पृथ्वी पर गिरे हुए दशकंठ को देखा। कटी हुई तथा रक्त से भींगी हुई उसकी विशाल भुजाएँ ही उसके लिए शीतलोपचार के योग्य किसलय-शय्या के समान थीं। उसके मुकुट की अकलंक मणियों की अरुण कान्ति उसके सारे शरीर पर व्याप्त हो धातु के वस्त्रों के समान दीप्त हो रही थीं। उसके सिर की मज्जा सारे शरीर में व्याप्त होकर चन्दन-लेप की भाँति दीख रही थी। (राम के) घोर प्रहारों के फलस्वरूप उसके शरीर-भर में व्याप्त अस्थियों का चूर्ण, अनुपम पुष्प-रज के समान दीखता था। टूटकर झुके हुए रथ के ताल-सम ऊँची ध्वजाएँ तथा रावण के कोमल एवं विमल दुकूल-खण्ड, (पवन में हिलते हुए) झलनेवाले पंखों के समान दीखते थे। चारों ओर पृथ्वी पर विकीर्ण हो पड़े हुए, गज-मुक्ताफल उपचार के निमित्त उपयोग में लाने के पश्चात् बिखरी हुई मल्लिका की कलियों के समान दीखते थे। इस प्रकार मृत पड़े हुए रावण को देखकर शोक-सागर की तरंगों में डूबी हुई दानव-वधुएँ दनुजेश्वर के शरीर पर गिर पड़ीं।

१५०. मन्दोदरी का विलाप

तब मन्दोदरी पति के मृत शरीर पर गिर पड़ी और उमड़ते हुए शोक-सागर को पार करने में असमर्थ होकर आँखों से अविराम अश्रु-धारा बहाती हुई बार-बार ऊँचे स्वर में यों विलाप करने लगी––"हे राक्षसेश्वर, हे वीरवर, हे रणालंकार, हे नाथ," फिर उसने अपने शोक एवं क्लान्ति को प्रकट करते हुए बार-बार विलाप किया और उसके पश्चात् यों कहने लगी––"हे लंकेश ! आज सूर्य-रश्मियाँ निश्शंक होकर आपकी लंका में पहुँच गई हैं। इन्द्रादि देवता यह सोचकर आनन्दित हो रहे हैं कि अब अच्छा अवसर मिल गया है। आपने इन्द्र को जीता, अग्नि को जीता, यम को जीता, नैर्ऋत को जीता, वरुण को परास्त किया, पवन को हराया, कुबेर को जीता और ईशान को भी परास्त किया और समस्त लोकों पर अपनी प्रभुता जमाई। आप कहीं भी दुर्वार थे, आपकी यह दुर्दशा कैसे हुई ? क्या आपसे भी अधिक बलवान् कोई उत्पन्न हुआ ? मैंने आपसे कहा था कि आप राम को सीता लौटा दीजिए; आपका यह कार्य उचित नहीं है; राघव स्वयं नारायण हैं; वे नर नहीं हैं। किन्तु मेरी बातें आपने नहीं सुनीं। भला, आपका दुर्भाग्य आपको मेरी बातें सुनने क्यों देता ? हे दशकंठ, पहले तपस्या करते समय आपने अत्यधिक निष्ठा से अपनी इन्द्रियों का दमन किया था। कदाचित् उन्हीं इन्द्रियों ने सीता को ले आने के लिए आपको प्रेरित किया और युद्ध में सूर्यवंशज (राम) से आपका वध

कराया । देवताओं के लिए दुर्भेद्य इस लंका में हनुमान् ने अकेले प्रवेश किया । विना प्रयास के समुद्र पर सेतु बांधना क्या वानरों के लिए संभव था ? मैंने उसी समय कहा था कि ये देवता हैं (वानर नहीं)। जनस्थान में राम ने अकेले अपने बाहुबल से खर-दूषण आदि अनेक राक्षसों का संहार किया था । उस दिन से आपको देखकर और राम का स्मरण करके मैं भयभीत होती रहती थी । वह मेरा भय आज पूर्णतया सत्य सिद्ध हुआ । सारा संसार उसी दिन जान गया कि धर्मपरायणा अरुंधती से, निर्मल-मति-संपन्न रोहिणी से, अत्यधिक उज्ज्वलगुणवती भूदेवी से भी अधिक सहनशील एवं पुण्य-साध्वी जानकी को जिस दिन आप ले आये, उसी दिन आप उस देवी की क्रोधाग्नि से झुलस गये। जो व्यक्ति जैसा कर्म करता है, वह अवश्य ही वैसा फल पाता है । अत्यन्त नीति-सम्पन्न विभीषण पुण्यात्मा हैं, इसीलिए वह अतुल सुख को प्राप्त कर सका । समस्त लोकों को पीड़ित करनेवाले आप पापात्मा की ऐसी दुर्दशा हुई । सीता देवी से भी अधिक सौभाग्य-संपन्न कितनी ही सुन्दर कामिनियाँ हैं ? किन्तु काम-रूप अन्धकार ने आपके नयनों को ढक लिया था; इसलिए आप उन्हें पहचान नहीं पाये थे । कुल, रूप, दाक्षिण्य, गुण एवं कला में वैदेही किसी भी प्रकार मेरी समता नहीं कर सकती । मैं नहीं कह सकती थी कि वह आपकी दृष्टि में मुझसे श्रेष्ठ दीख पड़ी या मेरे समान दीख पड़ी । यह सत्य है कि जीवों की मृत्यु किसी-न-किसी निमित्त से होती है । दूर की मृत्यु को समीप लाने के समान आप वैदेही को ले आये । भाग्यवती सीता ने पति से मिलकर योग्य सुख को प्राप्त किया। हे नाथ, मुझ अभागिन की ओर निहारिए; मैं दुःख-समुद्र में डूब रही हूँ । आपके साथ पुष्पक विमान पर आरूढ हो मैंने मंदराचल, धवलगिरि, कनकाद्रि, विशाल नन्दनवन आदि स्थानों में बड़े उल्लास से लीला-विहार किया था । हाय ! वे सभी विनोद मुझे सालने के मिस मेरे प्राण ले रहे हैं । हे नाथ, मैं गर्व करती थी कि मेरे पिता मय हैं, मेरे पति रावण हैं, और मेरा पुत्र, युद्ध-प्रेमी इन्द्रजीत है । किन्तु मैं जानती नहीं थी कि युद्ध में राम-भूपाल के हाथों से आपका वध हो जायगा । वज्र-पात से गिरकर नष्ट होनेवाले पर्वत की भाँति आप चूर-चूर होकर पृथ्वी पर गिर पड़े हैं । आप मृत्यु के लिए मृत्यु-समान थे, पर आज पृथ्वी पर गिरकर मृत्यु के वश में हो गये । आप शत्रु-स्त्रियों को वैधव्य देते थे, आज आपकी पत्नियों को उसका फल मिल गया ।"

इस प्रकार, रोती, विलाप करती हुई मंदोदरी, कभी असुरेन्द्र का मुख देखकर उसका वर्णन करती, कभी आँसू गिराती, कभी अपनी गोद में रावण का सिर रख लेती, कभी अपने अश्रु-जल से रावण के मुख की धूलि धोती, कभी खिन्न होती, कभी रावण का हाथ अपने अरुण हाथों में ले लेती । वह इस तरह फूट-फूटकर रोने लगती कि शोकतप्त हृदय फट जाय । वह अपने प्राणेश्वर का सिर बायें हाथ में उठाकर थाम लेती । उसे देखकर अपना सिर कँपाती । दाहिना हाथ पृथ्वी पर फटकारकर कहती—'हाय तुम चल बसे।' कभी कहती—'राम-भूपाल क्या ऐसा भी करते हैं । अब मैं क्या करूँ ?' कभी छटपटाकर पृथ्वी पर लोटती और अपनी दीन दशा का विचार करके अत्यन्त दुःखी होती ।

अपनी भाभी को अनन्त शोकाग्नि में इस प्रकार दग्ध होते देखकर विभीषण उसके

चरणों पर गिरा और उमड़ते हुए शोक से कहने लगा--'हे साध्वी, अत्यधिक वेग से उमड़नेवाला रावण-रूपी समुद्र रघुराम की बाणाग्नि में सूख गया है। राघव-रूपी प्रलय-मारुत ने रावण-रूपी सरस पारिजात को गिरा दिया है। राघव-रूपी भयंकर दावानल ने दशानन-रूपी कानन को भस्म कर दिया है। राघव-रूपी पश्चिम समुद्र में रावण-रूपी दिवाकर अस्त हो गया है। राघव-रूपी अमोघ नील मेघ की शर-वृष्टि ने रावण-रूपी अग्नि को बुझा दिया है।'

१५१. राम का विभीषण के द्वारा रावण की अंत्येष्टि कराना

इस प्रकार, विविध रीतियों से शोक-सन्तप्त होनेवाले विभीषण को देखकर काकुत्स्थ ने कहा--'हे विभीषण, अब इन स्त्रियों का दुःख दूर करो और तुम भी अब शोक करना छोड़ दो। युद्ध में शूर, शत्रुओं पर आक्रमण करके उनके हाथों से मरते हैं और शत्रुओं को मारते हैं। समर में दोनों पक्षों की विजय तो होती नहीं, न जय-पराजय ही स्थिर वस्तु हैं। रावण ने समस्त देवताओं को जीत लिया था; सभी दिक्पालों पर विजय प्राप्त की थी। यह एकाकी वीर है, महान् साहसी है, अद्वितीय विजयी है और त्रिलोक-भयंकर है। मैंने तो देखा ही है कि तुम्हारे अग्रज ने रण में कैसी शक्ति दिखाई थी। कौन ऐसा है, जो इस प्रकार अविचल युद्ध कर सकता है? कौन ऐसा है, जो अन्त में ऐसी मृत्यु को प्राप्त करेगा। ऐसी शक्ति तथा ऐसी मृत्यु दूसरों के लिए असम्भव है। हे अनघ, तुम्हारा अग्रज कृतार्थ हुआ। अब शोक करने की आवश्यकता नहीं है। इसलिए अब धैर्य धारण किये हुए इस दनुजेश्वर की अंत्येष्टि-क्रिया का प्रबन्ध करो।'

तब भयभीत हो विभीषण ने अत्यन्त भक्ति के साथ हाथ जोड़कर कहा--'हे देव, अब इसके लिए क्रिया-कर्म की क्या आवश्यकता है? यह मेरा अग्रज ही कहाँ है? यह तो मेरा शत्रु है। आपकी पत्नी को यह क्रूर, नीच एवं दुष्ट यहाँ हर लाया था; अब इसके लिए क्रिया-कर्म कैसा? पर-वधुओं का स्पर्श-मात्र करनेवाले पुरुष अधोगति को प्राप्त होते हैं। ऐसे लोगों का स्पर्श करना भी उचित नहीं है। उनको देखना भी नहीं चाहिए। इस पापी को मैं छू भी नहीं सकता। यह वैदिक कर्म के लिए योग्य नहीं है।'

विभीषण की इन बातों पर मन-ही-मन विचार करने के पश्चात् राघव ने विभीषण को देखकर कहा--'हे अनघ, तुम्हारी बातें सच हैं, किन्तु अब दनुजेश्वर की निन्दा नहीं करनी चाहिए। उसने युद्ध-रूपी गंगा-प्रवाह में अपने सभी पापों को धो दिया है। मेरे सभी कार्य सम्पन्न हो गये। मृत्यु के पश्चात् वैर रखना उचित नहीं है। अतः, तुम निष्ठा के साथ रावण की अन्त्येष्टि-क्रिया करो।' तब विभीषण ने उनका आदेश स्वीकार करके वेद-विधियों का अनुसरण करते हुए अग्नि-त्रय को मँगाया और एकनिष्ठ हो अपने अग्रज का अग्नि-संस्कार किया। उसके पश्चात् बड़ी श्रद्धा से उसकी अंत्येष्टि-क्रिया पूरी की। क्रिया-कर्म से निवृत्त होने के पश्चात् उसने आकर रामचन्द्र के चरणों में प्रणाम किया। तब उस विमलात्मा को देखकर राम ने मिष्ट भाषण से उसका आदर किया और दयार्द्र हो उसे सांत्वना दी।

१५२. विभीषण का राजतिलक

तत्पश्चात् राम ने अपने अनुज को देखकर अनुपम करुणार्द्र चित्त से कहा--'हे लक्ष्मण, तुम लंका में प्रवेश करके इस पुण्यात्मा विभीषण का राजतिलक संपन्न करके आओ।' रामानुज बड़ी प्रीति के साथ लंका में गये; वानर-श्रेष्ठों को भेजकर समुद्र-जल मँगाया। राक्षस-पुरोहितों तथा सज्जन मंत्रियों को बुलवा भेजा और मंगल-वाद्यों के विपुल नाद के बीच, विभीषण को अभिषिक्त किया और मंगलोपचार के साथ उसे सिंहासन पर आसीन किया। इस प्रकार, बड़े हर्ष के साथ उसे लंका का राजा बनाकर लक्ष्मण ने आशीर्वाद दिया कि 'जबतक रवि-चन्द्र, पृथ्वी, कुलपर्वत, आकाश-समुद्र और सभी दिशाएँ रहेंगी, जबतक राघव का कीर्त्ति-गान इस पृथ्वी पर होता रहेगा, तबतक तुम इस राज्य पर शासन करते रहो। राक्षस-राज्य का वहन करना और उसका संचालन करना दुर्लभ कार्य है। अतः, तुम सावधान होकर इसका संचालन करो और शाश्वत धर्म का पालन करो।' तब विभीषण विशाल राज्य-प्राप्ति के आनन्द में इतराते हुए मंगल-द्रव्य, आभूषण, वस्त्र एवं अमूल्य मणिसमूह साथ लिये हुए लक्ष्मण के साथ राम की सेवा में उपस्थित हुआ और उन वस्तुओं को राम के चरणों में समर्पित करके बड़ी भक्ति के साथ प्रणाम किया। रघुराम ने वे वस्तुएँ मातलि को भेंट के रूप में दीं और बड़ी प्रीति से उसे विदा दिया। मातलि ने रथ पर आरूढ हो वेग के साथ स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया। उसके पश्चात् राम ने मन में विचार करके मारुति को देखकर कहा--'तुम शीघ्र लंका में प्रवेश करके जानकी को हमारी विजय तथा कुशल का वृत्तांत सुनाओ।'

१५३. हनुमान् का सीता को राम की विजय का समाचार देना

राम का आदेश पाकर हनुमान् अत्यन्त हर्षित हुआ और बड़े वेग से लंका में प्रवेश किया। राम की विजय की मन-ही-मन कामना करती हुई, अशोक-वन में बैठी राम की पत्नी को देखकर हनुमान् ने उनको प्रणाम किया और अत्यन्त विनय से कहा--'हे कल्याणी, मैं आ गया हूँ और आपके लिए हर्ष का समाचार लाया हूँ। जो आप चाहती थीं, वही हुआ। हे देवी, आपके पति राम देव ने लोक-भयंकर रावण का संहार किया और अनेक दुष्ट राक्षसों का नाश करते हुए अद्भुत रीति से युद्ध किया। वे अब अपने अनुज सौमित्र के साथ सकुशल हैं।' इसके पश्चात् उसने उस साध्वी की चिन्ता को दूर करते हुए, इसके पहले कहे गये वचनों का स्मरण दिलाते हुए कहा--'हे कल्याणी, मैंने आप से पहले ही निवेदन किया था कि आप के पति समुद्र पर सेतु बाँधेंगे, लंका पर आक्रमण करेंगे, और रावण का संहार करके आपको अपनायेंगे। वे वचन आज सत्य हो गये हैं। अब मैं आपकी आज्ञा चाहता हूँ। मेरे योग्य सेवा का आदेश दीजिए।'

तब पवन-पुत्र को देखकर तथा रावण का मरण और रघुराम की विजय को सोचकर हर्ष के साथ वे बोलीं--'हे अनघ, तुम्हारे प्रताप की सहायता से ही राम भूपाल ने यह कार्य संपन्न किया है। दैत्यों के गर्वान्धकार से आवृत इस लंका में प्रवेश करके इसे साधना, दूसरों के लिए कहाँ संभव था? तुम्हारे धैर्य, गंभीरता, महान् शौर्य, माधुर्य एवं सद्गुणों की महिमा की प्रशंसा कैसे करूँ? तुम्हारे शील एवं पराक्रम की सराहना मैं कैसे करूँ?

असंख्य, नवाभरण, श्रेष्ठ वस्त्र, स्वर्ग और रत्नों से युक्त राज्य तुम्हें भेंट दूँ, तो भी वह तुम्हारे वीरतापूर्ण कार्यों के लिए अल्प ही होंगे । हे पवनपुत्र, तुम्हारे कार्य से मैं अपने मन में बहुत संतुष्ट हूँ ।'

सीता की बातें सुनकर हनुमान् अत्यंत हर्ष से कहने लगा--'हे माता ! आप मुझपर इतनी करुणा-पूर्ण दृष्टि रखती हैं और मेरा इतना आदर करती हैं, यही मेरे लिए पर्याप्त हैं । सच तो यह है कि (आपका आदर प्राप्त करना) इन्द्र-पद या किसी दूसरी वस्तु से भी महान् है । तब भूमिसुता ने हनुमान् को देखकर कहा--'हे अनघ ! तुम्हें बल, शौर्य, पराक्रम, अपार तेज, क्षमा, ज्ञान, उदारता, स्थैर्य, सतत निश्चल स्वामिभक्ति, विनय आदि विश्रुत गुण प्राप्त हों ।' इसके पश्चात् हनुमान् ने उस देवी के निकट रहनेवाली भयंकर आकारवाली राक्षसियों को देखकर कहा--'उस पापात्मा की आज्ञा का पालन करती हुई ये पापी स्त्रियाँ कदाचित् आपको हानि पहुँचायेंगी । मैं अभी इन्हें अपनी कठोर मुष्टि-प्रहार स मार डालता हूँ ।' तब जानकी ने हनुमान् को देखकर कहा--'बाण चलानेवाले के रहते हुए भला बाण को दोषी ठहराना क्या उचित है ? दासियों का वध करना कदापि उचित नहीं । मैंने अपने पापों के फलस्वरूप यह सब विपत्ति पाई । इसके लिए ये कैसे दोषी हो सकती हैं ? हे पुण्यचरित, महान् व्यक्ति पापियों पर भी दया दिखाते हैं । अतः हे वानरोत्तम, इन राक्षसियों का मारना तुम्हारे लिए उचित नहीं है ।' तब हनुमान् ने कहा--'हे देवी ! आप निर्मल गुण-रत्नों की निधि हैं । आप राम की धर्म-पत्नी बनने के योग्य हैं । अब मुझे राम की सेवा में जाने की आज्ञा दीजिए ।' तब उस देवी ने कहा--'हे वानरोत्तम, अबतक उन्हीं को मैं अपनी आत्मा मानकर अपने प्राण रोके हुई हूँ । अब मैं उन्हें देखे बिना एक क्षण भी नहीं जी सकती । यह बात मेरे प्रभु को बतलाना । अब तुम जाओ ।' इस प्रकार कहने के पश्चात् उन्होंने हनुमान् को आशीर्वाद दिया । हनुमान् ने बड़ी भक्ति से उन्हें प्रणाम किया और राम भूपाल के निकट पहुँचकर अत्यंत विनय से निवेदन किया कि हे देव, मैंने आपकी विजय तथा कुशल का वृत्तांत देवी सीता से निवेदन किया, तो वे बहुत हर्षित हुईं । उन्होंने मुझसे कहा कि तुम मेरी ओर से प्रभु से निवेदन करना कि मैं उनके दर्शनों की अभिलाषिणी हूँ ।

१५४. राम के आदेश से विभीषण का सीता को लिवा लाना

तब राम ने थोड़ी देर तक मन-ही-मन सोचा और विभीषण को बुलाकर कहा--'हे विभीषण ! तुम शीघ्र जानकी के मंगल-स्नान का प्रबन्ध करो और दिव्य वस्त्राभरण एवं पुष्प-मालाओं से अलंकृत कराके उन्हें यहाँ लिवा लाओ ।' तब उसने बड़े हर्ष से जाकर सरमा आदि अपने अन्तःपुर की स्त्रियों से सारी बातें समझाकर जानकी को लिवा लाने का आदेश दिया । वे भी बड़ी प्रीति से सीता के पास गई और उन्हें बड़ी भक्ति के साथ प्रणाम करके कहा--'हे देवी, आपके पति राम देव ने विभीषण को, आपको लिवा लाने की आज्ञा दी है । इस हेतु उन्होंने हमें आपकी सेवा में भेजा है । आप प्रसन्न होकर अभीष्ट मंगलदाता राम के समक्ष पधारें । हे सुन्दरी, आप यह वेश तज दीजिए । आप तो शुभ-प्रदायिनी हैं ।' इस प्रकार कहने के पश्चात् उन्होंने उनका मंगल-स्नान कराया,

उनकी तनुलता को पोंछकर दिव्य वस्त्रों से उन्हें सजाया, दिव्य मालाएँ और दिव्य आभूषणों से उन्हें अलंकृत किया और उसके पश्चात् स्वर्ण-पालकी में बिठाकर उन्हें ले चलीं। तब राक्षसेश्वर विभीषण बड़ी भक्ति के साथ राजचिह्न तथा वेत्र धारण करके अपने-आपको धन्य मानते हुए, एक सेवक के समान प्रमुख राक्षसों के साथ पालकी के आगे-आगे चलने लगा। राम के निवास से थोड़ी दूर पर पालकी को रोककर विभीषण राम की सेवा में उपस्थित हुआ और हाथ जोड़कर नम्रता से बोला—'देव, लिवा लाया हूँ, देवी को! देवी यहाँ पधारी हुई हैं।'

तब राम ने अत्यन्त हर्ष, रोष एवं दैन्य से अभिभूत हो, मन में विचार कर विभीषण से कहा—'लिवा लाओ।' तब परम पावन तथा ज्ञानी विभीषण पावन-चरिता सीता को बड़ी श्रद्धा से लिवा ले चला। उस समय राक्षसों एवं वानरों की भीड़ (सीता के दर्शनों की तीव्र उत्कंठा से) उमड़-उमड़कर मार्ग को रोकने लगी। तब विभीषण निर्दय होकर अपने हाथ की बेंत से उनपर कसकर प्रहार करने लगा। इस कारण से भीड़ में उठनेवाले आर्त्त-नाद को सुनकर राम ने विभीषण से कहा—'हे विभीषण! ऐसा भयंकर कार्य क्या तुम्हारे लिए उचित है? अब इनमें से हमारे लिए पराया कौन है? अपनों को इस प्रकार दुःख क्यों पहुँचाते हो? उन्हें रोको मत। सभी लोग आकर देखें। इसमें बुरा क्या है? (स्त्री के लिए) कालान्तर एवं देशान्तर में नष्ट न होनेवाला एक शील ही गोपन की वस्तु है। ये विशाल दुर्ग, भवन, पर्दे आदि कभी स्त्रियों के लिए उचित आवरण नहीं हो सकते। व्यसनों में, विवाहों में, युद्धों में, मित्रों में और उत्सवों में स्त्रियों के लिए आवरण अनावश्यक है। मैं यहाँ हूँ और यह रण-भूमि है। अतः, इसमें कोई दोष नहीं है; उन्हें आने दो।'

तब राम के आदेशानुसार विभीषण सीता को लिवा लाया। उस समय कल्याणी सीता का शरीर स्वेद-बिन्दुओं से ऐसे आप्लावित हो रहा था, मानों उनके हृदय में उमड़ता हुआ आनन्द (हृदय से) छलककर सारे शरीर में व्याप्त हो गया हो। उन्होंने राका-शशि रामचन्द्र के दर्शनामृत का पान करके चिरविरहाग्नि को शान्त किया और परम-अनुराग से भरी हुई अपने मन की उत्कंठ इच्छा से प्रेरित हो राघव को देखने लगी। राघव को देखते ही उनके धवल-लोचन-उत्पलों से अश्रु-प्रवाह उमड़ आया। वे भय, प्रीति एवं व्रीडा से अभिभूत होकर सिर झुकाये खड़ी रही।

तब रघुराम का मन क्रोधावेश से भर गया। उन्होंने उस रमणी को देखकर कहा—'हे नारी, पुण्यशीला स्त्रियों के लिए लज्जा ही प्राण है। हे लज्जावती, प्रतिष्ठा की रक्षा का विचार करके मैंने तुम्हें मुक्त किया है। इसके सिवा मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति कोई आसक्ति शेष नहीं है। काकुत्स्थ-वंशज धैर्य के धनी होते हैं, लोक-रक्षण-तत्पर होते हैं, तथा लोक-प्रशंसा के योग्य होते हैं। उनके वंश में जन्म लेकर (यदि मैं तुम्हें ग्रहण करूँ, तो) लोग कहेंगे कि मैंने अपने औचित्य को त्याग दिया। शत्रु के घर में रही हुई तुम्हारा स्पर्श करके तुम्हें अपनाना धर्म-संगत नहीं हो सकता। इस भय से कि लोग यह न कह बैठें कि यह अपनी पत्नी को खो बैठा और उसे छुड़ाकर नहीं ला सका, मैंने तुम्हें छुड़ाया है। इसके सिवा तुम्हें लाने का मेरा कोई दूसरा उद्देश्य नहीं है। मैं तुम्हें स्वीकार नहीं कर सकता। तुम जहाँ चाहो, जा सकती हो।'

राम के इन निष्ठुर वचन-बाणों के लगने से सीता तिलमिला उठीं । वह कमलाक्षी सद्य:प्राप्त आनन्द को भूल गई और अवाक् एवं स्तंभित-सी रह गई । क्षोभ, दुःख एवं क्रोध से अभिभूत हो, वे रामचन्द्र को देखकर गद्गद कंठ से कहने लगीं--'हे देव, क्या आप मेरा हृदय नहीं जानते ? क्या, आप सर्वज्ञ एवं मनीषी नहीं हैं ? बाल्यावस्था में आप मुझे ले आये और तब से मेरा पालन-पोषण तथा रक्षण करते रहे । आप ऐसे कठोर वचनों से मुझे क्यों दुःखी बना रहे हैं ? मैं कहाँ, आप कहाँ और आपके ये वचन कैसे ? मैंने भू-माता के गर्भ से जन्म लिया; उसके पश्चात् महाराज जनक ने मुझे पाल-पोसकर बड़ा किया; फिर आप-जैसे नृप-शिरोमणि की पत्नी हुई । क्या, चंचल चित्तवाली स्त्रियों का-सा व्यवहार मेरे लिए कभी सह्य हो सकता है ? पुरुष, अविश्वसनीय स्त्रियों के प्रति जैसे वचन कहते ह, वैसे वचन आप मेरे प्रति कह रहे हैं । क्या, यह आपके लिए उचित है ? यदि आपको मुझपर विश्वास नहीं था, तो जिस दिन मेरा पता जानने के लिए हनुमान् को भेजा था, उसी दिन कहला भेजते, तो उसी दिन मैं अपनी सभी आशाओं को तजकर प्राण त्याग देती ।'

इसके पश्चात् सीता ने लक्ष्मण को देखकर कहा--'हे अनघ, तुम्हारे अग्रज मुझपर संदेह करके मेरे प्रति परुष वचन कह रहे हैं । क्या मेरे प्रति ऐसा व्यवहार उचित है ? क्या, ऐसी बातें वे मुझे कह सकते हैं ? क्या, तुम्हें उनसे यह कहना नहीं चाहिए कि ऐसे वचन कहना उचित नहीं है ? मेरा आचरण देखते हुए, क्या, तुम मुझमें किसी पाप का अनुमान कर सकते हो ?'

१५६. सीता का अग्नि-प्रवेश

वे आगे कहने लगीं--'अब शंका मत करो । तुम भली भाँति विचार करो और यदि तुम लोगों का यही निश्चय है, तो यहाँ चिता सजाओ । मैं सबके समक्ष, विना विचलित हुए अग्नि में प्रवेश करूँगी । अग्नि के द्वारा मैं अपनी पवित्रता का प्रमाण दूँगी और ब्रह्मादि देवताओं की प्रशंसा प्राप्त करते हुए भूमि में प्रवेश कर जाऊँगी ।'

तब लक्ष्मण ने बड़ी व्याकुलता से अपने अग्रज की ओर देखा और उनके मन के भावों को समझकर सीता के लिए चिता का प्रबन्ध किया । तब सीता ने बड़ी भक्ति से चिता की परिक्रमा की और उसकी स्तुति करके, उसे प्रणाम किया । फिर, अग्निदेव के समक्ष खड़े होकर हाथ जोड़े हुए वे कहने लगीं--'हे धर्मादि देवताओ, हे धर्मो, हे निर्मला-त्माओ, हे नियतात्माओ, हे जगत् के अधिष्ठाताओ, हे सूर्य-चन्द्र, हे वेदसाधको, हे वेदो, हे महात्माओ, हे सर्वज्ञो, हे पंचभूतो, हे परहितात्माओ, हे श्रेष्ठ नरो, हे श्रेष्ठ किन्नरो, हे सुरवरो, हे भूसुरवरो, हे कृपालुओ, हे दिक्पालो, हे सन्मतियो, हे पापसंहारको, मैंने मन-वचन-कर्म से राजा राम के सिवा और किसी का स्मरण नहीं किया है । यदि मैंने ऐसा किया हो, तो मैं इस अग्नि का सहन नहीं कर सकूँगी और सब के समक्ष इसी अग्नि में भस्म हो जाऊँगी ।' यों कहती हुई सीता ने आकाश तक व्याप्त होनेवाली अनुपम आकार की भयंकर ज्वालाओं से युक्त प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश किया । अग्नि-कुंड में अविचल खड़ी रहनेवाली सीता किंचित् भी नहीं जलीं । कर-चरण-आनन-रूपी कमल, चक्र-

वाक-रूपी कुच-द्वय, बाहुलताएँ-रूपी मृणाल, विमल त्रिवली-रूपी तरंगें, विशाल एवं चंचल नेत्र-रूपी मत्स्य, सहज नील चिकुर-रूपी शैवाल से युक्त सरोवर की भाँति सुशोभित उस कमलाक्षी को देखकर वानर एवं राक्षस शोक करने लगे । सुर, सिद्ध एवं साध्य स्तुति करने लगे । पवन-पुत्र, सूर्य-पुत्र, सौमित्र, विभीषण, अंगद, वानर-सेना, दानव-वीर, साथ ही सरमा आदि राक्षस-वधुएँ अत्यधिक शोक से संतप्त हो उठीं । राम निर्वेद से अभिभूत हो स्थिर रहे ।

तब शिव, ब्रह्मा, अखिल दिक्पाल, गरुड़-गंधर्व एवं खेचर-श्रेष्ठ विमान पर आरूढ हो वहाँ आ पहुँचे । राम उन्हें देखकर उनके स्वागतार्थ खड़े हुए । राम को देखकर उन्होंने कहा––"हे देव ! आप वेदान्त के द्वारा ज्ञेय हैं; (अखिल संसार के) साक्षी हैं, कर्त्ता हैं, ज्ञान-स्वरूप हैं, मुक्त हैं, नित्यपूर्ण हैं, सर्वज्ञ हैं, जगदेकनिधि हैं, अक्षीण पुण्यात्मा हैं, अव्यक्त हैं, अक्षर त्रिमूर्त्ति हैं और आद्यंत-पति हैं । भुवन, समुद्र, भूत, नदियाँ, यज्ञ, पर्वत, जन्तु-समूह, वृक्ष, मार्ग, तन्त्र, विधियाँ, सुर, नक्षत्र, वेद, शास्त्र आदि सहस्रों, लाखों, करोड़ों तथा अरबों की संख्या में एक-एक ब्रह्माण्ड में पाये जाते हैं, उनकी गणना कोई भी नहीं कर सकता । ऐसे असंख्य ब्रह्माण्ड आपके उदर में रहते हैं । उनकी गणना ही नहीं हो सकती । आपके स्वरूप का पार पाना किसके लिए संभव है ? आपकी माया का प्रभाव जानना आपके सिवा दूसरों के लिए कहाँ संभव है ? 'आपने अमुक का संहार किया, आपने अमुक को जीता, अमुक ने आपको जीता, अमुक आपके अधीन हैं, अमुक आपसे श्रेष्ठ हैं'––ऐसी निन्दा एवं स्तुति आपका स्पर्श भी नहीं कर सकती । दास-भाव को छोड़कर अन्य किसी भी मार्ग से आपके ज्ञान-रूप का दर्शन दुर्लभ है । हे राजन्, आप आदिनारायण हैं और जानकी आदिलक्ष्मी हैं । लोक-रक्षणार्थ आप काकुत्स्थ के रूप में विख्यात हुए हैं । आप स्वयं अपने को क्यों भूल गये हैं ? निष्ठुर वह्नि में स्थित जानकी को देखते हुए चुप रहना आपके लिए उचित नहीं है । आप उन्हें अपनाइए; प्रीति से आदर कीजिए । उस वनजाक्षी की उपेक्षा मत कीजिए ।"

१५७. सीता-परिग्रहण

देवताओं ने जब रामचन्द्र को कई रीतियों से समझाया, तब दैत्य तथा कपि परस्पर कहने लगे––'इस साध्वी के शरीर से न श्रम-बिन्दु निकल रहे हैं, न इनका मुख कुम्हला रहा है, न इनकी तनुलता सूख रही है, न ये व्याकुल हो रही हैं, न इनकी धारण की हुई पुष्प-मालाएँ मुरझाई हैं और न इनका अंगराग ही छूटा है ।' वे सीता को देखकर शोक-संतप्त होते हुए गद्गद कंठ से कहने लगे––'रामचन्द्र को ऐसी पवित्र पत्नी के प्रति ऐसे निष्ठुर वचन नहीं कहना चाहिए । ऐसा साहस उचित नहीं है । उनके इस प्रकार कहते समय अग्निदेव कोमलांगी सीता को अपनी गोद में उठाकर बाहर निकले और उन्हें बड़ी प्रीति से राम के सामने खड़ा करके कहा––'यह कल्याणी मुग्धा है । तुम्हीं इसके देवता हो, तुम्हीं इसके प्राण हो, तुम्हीं इसके बन्धु हो और तुम्हीं इसके सर्वस्व हो । तुम्हारे सिवा और किसी को इसके हृदय में स्थान नहीं है । रावण की आज्ञा से कई राक्षस-स्त्रियों ने कई प्रकार से इसे पीड़ित किया, भयंकर कृत्यों से इसे डराया, धमकाया और छल किया ।

इस पर भी यह साध्वी तुम्हारा विस्मरण नहीं करती थी, विचलित नहीं होती थी, अपना मन तुम पर ही केन्द्रित करके अपना सर्वस्व तुम्हारे विश्वास पर त्यागकर अपना दिन बिताती रही । अब प्रीति के साथ इस कमलाक्षी को स्वीकार करो । स्वीकार न करना अधर्म होगा ।'

जब अग्निदेव ने इस प्रकार कहा, तब राम ने अपने मन-ही-मन कुछ देर तक विचार किया और फिर शिव, ब्रह्मा, आदि देवताओं की मंडली को देखकर इस प्रकार कहने लगे– 'मैं जानता हूँ कि इस रमणी में कोई पाप नहीं है । यह उन्नत विचारवाली रमणी मेरे प्रति अकलंक निष्ठा रखती आई है; इस सुन्दरी में भय, भक्ति, शील, ज्ञान आदि गुण हैं। मैं यह भी जानता हूँ कि राक्षस इसे अपने वश में कर नहीं सका। किन्तु, मुझे जानकी को ऐसा आदेश इसलिए देना पड़ा कि पीछे लोग यह न कहें कि महान् पापी तथा अत्यधिक बलवान् रावण ने अपने उद्यान में जानकी को रखा था, किन्तु रघुराम उसे चुप-चाप ले आये । ऐसा कामुक व्यक्ति इस संसार में और कौन हो सकता है, जो अपने अपयश का किंचित् भी विचार नहीं करता । अब सभी शंकाओं का निर्मूलन हो गया । आपके आदेशों का पालन करके मैं सीता को स्वीकार करता हूँ ।' इस प्रकार कहते हुए उन्होंने सीता को अपने निकट बुला लिया । उस समय रघुराम सीता के साथ ऐसे शोभित हुए, जैसे आकाश में रोहिणी से युक्त प्रभा-संपन्न चन्द्र हो ।

तब महादेव ने आश्रित-कल्पतरु रामचन्द्र को देखकर बड़ी प्रीति से कहा––'हे अनघ, ऐसे महत्तर कार्य को साधने के लिए आपके सिवा और कौन उद्यत होगा ? ऐसे लोक-कल्याण का कार्य और कौन संपन्न करेगा ? रावण तो लोक-कंटक, त्रिलोक-भयंकर, देवों की वंदना को प्राप्त करनेवाला तथा महा बलशाली था । ऐसे रावण का नाश करना किसी के लिए भी संभव नहीं था । ऐसे व्यक्ति से आपने शत्रुत्व ठाना, उस पर आक्रमण किया, उसका संहार किया और उसका दहन-संस्कार करके अपने अनुपम बल तथा विक्रम की प्रौढता दिखाई; आपकी समता करनेवाला इस संसार में कौन हो सकता है ? आपने रावण का संहार किया और आपके कारण चौदहों भुवनों की रक्षा हुई । इस शोभा को देखने के लिए आपके पिता महाराज दशरथ स्वर्ग से आये हैं । वह देखिए, वे देवताओं के आधिपत्य से दीप्त हो विमान पर आरूढ हैं । आप उस सत्यनिधि एवं पुण्यात्मा की पूजा तथा सत्कार कीजिए ।'

१५८. दशरथ के दर्शन

तब सुशील रघुराम ने अनुज-युक्त हो, बड़े प्रेम, श्रद्धा एवं निष्ठा के साथ महाराज को साष्टांग प्रणाम किया। तब महाराज ने बाँहें फैलाकर बड़े मोद से उन्हें हृदय से लगा लिया और राम को देखकर कहा––'हे वत्स, कैकेयी की बातें सुनकर तुम जैसे लोक-रक्षण-कला-निरत को मैंने वन में भेज दिया । मैंने औचित्य का विचार नहीं किया और न शुभ कार्य को पहचान सका । तुम्हारा राजतिलक करके तुमको राज्य करते हुए जी भरकर देखने का तथा समस्त संसार को सुखी होते देखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ । पुत्र-शोक से मैंने मृत्यु को प्राप्त किया। ऐसे मुझे इन्द्र-लोक में प्रवेश करने का अधिकार कहाँ?

वह दुःख सतत प्रज्वलित अग्नि के समान मेरे हृदय में जलता रहता है । अमर लोक में भी जो अग्नि शमित नहीं हुई, वही आज तुम्हारे समक्ष उपशमित (शान्त) हो गई । हे कमलाप्त-सम-तेजस्वी, हे कमलाभिराम, हे कमलाप्तवंशज, तुम अयोध्या को लौट जाओ और निखिल धर्मों का पालन करते हुए साम्राज्य को ग्रहण करके अक्षय कीर्त्ति के साथ चिर काल तक इस पृथ्वी का ऐसा पालन करो कि प्रजा कहे कि राम लोकाभिराम हैं।

उसके पश्चात् उन्होंने लक्ष्मण को देखकर कहा--'हे सौमित्र, तुमने राम के साथ अरण्य में घूमते हुए अनेक उत्तम एवं साहसपूर्ण कार्य करके पुण्य प्राप्त किया है । भविष्य में भी सावधानी के साथ, अपने अग्रज के मन को दुःखी बनाये बिना आचरण करते रहना।' तदनंतर उन्होंने अपना सिर झुकाकर प्रणाम करके खड़ी हुई सीता को देखकर कहा--'हे पुत्री, परम पवित्र पातिव्रत्य धर्म में तुम्हारी समता कोई स्त्री नहीं कर सकती । तुम उत्तम साध्वी हो । राम ने तुम्हें जो निष्ठुर वचन कहे, उनके लिए तुम रुष्ट और दुःखी मत होना । तुम राघव के समान महान् कीर्त्तिवान् पुत्रों को प्राप्त करो; पुण्य प्राप्त करते हुए जीवन व्यतीत करो ।' इस प्रकार, तीनों को आशीर्वाद देकर महाराज दशरथ मन-ही-मन संतुष्ट हुए ।

१५९. देवताओं का अभिनन्दन

तब चन्द्र-सम शीतल प्रभु राम को देखकर इन्द्र आदि देवताओं ने कहा--'हे पुण्यात्मा, आपने हमारे निमित्त मनुष्य के रूप में जन्म लिया, राक्षसों का संहार किया, अनेक प्रकार के दुःखों का सहन किया और भूमि का भार उतारकर हमारी रक्षा की, हमें जीवन-दान दिया और हमें शान्ति प्रदान करके भेज रहे हैं । हम आपको वर देंगे। आप अपना अभीष्ट कहें ।'

तब राम ने देवताओं को देखकर मंदहास करते हुए कहा--'आपकी कृपा से इस संसार में मेरे सभी कार्य सम्पन्न हो गये । कितने ही वानर, अपना-अपना देश, घर-बार, बन्धुजन, पुत्र तथा मित्रों को छोड़कर, बड़े साहस के साथ, अपने प्राणों की भी परवाह किये बिना मेरे लिए शत्रुओं के साथ युद्ध करके प्राण खो बैठे हैं । ये कपि-वीर उन्नतात्मा हैं। उन्हें जीवन प्रदान कीजिए।' तब देवताओं ने कहा--'ऐसा ही हो । ये वानर प्राण प्राप्त करेंगे।' इतना कहकर महादेव, ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवता तथा दिक्पाल, मुनि, सुर सभी राम की प्रशंसा करते हुए स्वर्गलोक को चले गये । उसके पश्चात् दशरथ भी स्वर्ग को चले गये ।

देवताओं के वर के प्रताप से युद्धभूमि में कटकर गिरे हुए सभी वानर जीवन प्राप्त करके ऐसे उठे, मानों वे नींद से जाग रहे हों । फिर, राम को देखकर बड़े हर्ष से उन्होंने प्रणाम किया । तब राम बड़ी दया से उन सब को निहारकर बहुत प्रसन्न हुए ।

तब विभीषण ने राम को देखकर बड़ी भक्ति के साथ कहा--'हे देव, हे राघव-राज, आपके लंका में पधारकर अभिषेक स्वीकार करने का यही उचित समय है ।' तब राघव ने कहा--'जटाओं का भार धारण किये हुए तथा वल्कल पहने भरत के (अयोध्या में) तप में निरत रहते समय, उसको बिना देखे हमारा यहाँ सुख-भोग में तत्पर रहना अनुचित है ।'

तब विचारवान् विभीषण ने बड़ी भक्ति से पुण्यात्मा स्त्रियों तथा पुरुषों को, पुण्य वाद्यों के साथ भेजकर चन्दन एवं अक्षत-भरे स्वर्णपात्र, रत्नाभरण एवं कनकांबर मँगाये और अत्यन्त विनय के साथ उन्हें राम-लक्ष्मण तथा सीता को धारण करने के निमित्त दिया। तब आकाश से देव-दुंदुभियाँ बज उठीं, देवता स्तुति करने लगे और अप्सराएँ पुष्प-वृष्टि करने लगीं। तब राम ने निश्चल आनन्द में भरे हुए प्रीति के साथ कहा--'हे विभीषण हमें और भी कितने ही महान् कार्य करना शेष है। हम अब यहाँ विलम्ब नहीं कर सकते। हमें शीघ्र अयोध्या पहुँचना चाहिए।'

१६०. पुष्पक-आरोहण

तब विभीषण ने राम को देखकर भक्ति से कहा--'हे देव, पूर्वकाल में रावण ने क्रुद्ध होकर कुवेर के साथ भयंकर युद्ध किया था और युद्ध में उसे पराजित करके उसका विमान छीन लिया था, वह विमान तैयार है। इन्द्रलोक के पुष्पक विमान की भाँति यह भी अद्भुत वेग से जा सकता है, अतः आप उस पुष्पक में आरूढ हो, हर्ष के साथ अयोध्या लौटें। यही अच्छा होगा।'

इस पर राम ने (उसे लाने की) अनुमति दी। तब राक्षसराज अत्यधिक संभ्रम एवं प्रीति से समस्त वैभवों से विलसित उस पुष्पक को ले आया। वह पुष्पक अचल नवरत्न-दीपों तथा मन्द पवन से युक्त था। वे दीप ऐसे दीखते थे, मानों समस्त लोकों को जला देने की शक्ति रखनेवाले रावण की शक्ति की कल्पना करके अनिल दीपों को हिलाने से डरता हो और दीप भी हिलने से डरते हों। उसके विमल द्वारों पर हरित-नील मणियाँ ऐसी भासमान हो रही थीं, मानों विमान के भीतर सजे हुए पुष्पों का रसपान करने के लिए आये हुए भ्रमर भय के कारण भीतर प्रवेश नहीं कर रहे हों। उन नील-मणियों के निकट ही जड़ी हुई मुक्ता-मणियाँ ऐसी दीख रही थीं, मानों पुष्प-वाटिका में मुग्धावस्था में रहनेवाली मल्लिका की कलियों को मुग्ध करके उन्हें छोड़कर भ्रमर यहाँ चले आये हैं और उनके विरह से मल्लिका की कलियाँ यहाँ आकर भ्रमरों के साथ रहने लगी हों। हंसों तथा कमलों के चित्र काढ़े हुए दुकूलों से रचित उसका वितान ऐसा दीख रहा था, मानों त्रिभुवन में भ्रमण करने के पश्चात् यहाँ आकर गंगा अलसाई हुई लेटी हो। उसके उज्ज्वल स्तंभों में खचित मणिमय मूर्त्तियाँ ऐसी दीखती थीं, मानों देव-कन्याएँ, यह विचार करती हुई कि राम यहाँ कब (इस पुष्पक विमान में) पधारेंगे, हम उन्हें कब देखेंगे, स्तंभों पर अपनी तनु-लताओं को टेके हुए प्रतीक्षा कर रही हों। वह विमान ऐसा सुन्दर दीख रहा था, मानों समस्त सृष्टि के रक्षणार्थ जब विष्णु राम के रूप में पृथ्वी पर आये, तब वैकुंठ ही पुष्पक के रूप में यहाँ आ गया हो। ऐसे पुष्पक विमान को देखकर काकुत्स्थ-वंशज बड़े प्रेम से विभीषण को देखकर और वानरों को लक्ष्य करके कहने लगे--'हे विभीषण, ये (वानर) ही रावण-रूपी भयंकर अग्नि को बुझानेवाले महान् मेघ-पुंज हैं। अतः इनका आदर-सत्कार करो तथा विपुल धन-संपत्ति से इन्हें पुरस्कृत करो।' तब विभीषण ने बड़ी प्रीति से धन, वस्त्र, योग्य आभूषण तथा स्वर्ण आदि मँगाकर राम के समक्ष ही उन वानरों को क्रमशः भेंट किये। उसके पश्चात् राम ने अपनी पत्नी तथा अनुज के

साथ, उस पुष्पक की पूजा की और उसकी परिक्रमा करने के बाद बड़े हर्ष से उस विमान पर आरूढ हुए ।

तब राम ने सुग्रीव आदि मित्रों तथा अन्य वानरों को देखकर कहा--'तुम लोगों ने मित्रता के नाते जो कार्य किये, उन्हें देवता भी नहीं कर सकते थे । मैंने तुम्हारे कारण समस्त तेज, समस्त सुख तथा अपार कीर्त्ति प्राप्त की । तुम पुण्यात्मा, परम-पावन तथा धन्यजीवी होओगे । अब तुम लोग अपने-अपने देश को लौट जाओ ।' तब कपियों ने कहा--'हे राजन्, हम भी आपकी सेवा करते हुए अयोध्या जायेंगे, आपका राजतिलक देखेंगे और आपके अनुपम चरित्रवान् अनुज भरत-शत्रुघ्न को, परम-पावनी आपकी माताओं को देखेंगे और आपके नगर तथा गंगाजी के दर्शन करके लौटेंगे ।'

तब राम ने मन-ही-मन हर्षित होते हुए विभीषण, सुग्रीव, अंगद, हनुमान्, नील आदि अनेक महान् वानर-श्रेष्ठों को पुष्पक में चढ़ने की अनुमति दे दी । वे भी बड़े उत्साह से पुष्पक में बैठ गये। दनुज-स्त्रियां सीता को प्रणाम करके अपने-अपने निवास को लौट गईं । तब दाशरथि को देखकर विभीषण ने कहा--'हे देव, इस पुष्पक की विशेषता यह है कि इसमें कितने लोग भी बैठें, सब के लिए तो इसमें स्थान निकल आयगा, साथ ही एक कोने में पांच सौ लोगों के लिए स्थान बचा रहेगा ।' तब राम ने बड़े हर्ष से असंख्य वानर एवं राक्षसों को उस विमान में बैठने की अनुमति दी । इसके पश्चात् वह पुष्पक गगन की ओर उड़कर आकाश-मार्ग से, मनोवेग के सदृश वेग से ऐसा जाने लगा, मानों सूर्यबिम्ब पूर्व से पश्चिम को जाना छोड़ दक्षिण से उत्तर की ओर जा रहा हो ।

१६१. श्रीराम का सीता को विभिन्न दृश्यों को दिखाकर समझाना

तब नित्य-पुण्यवान्, राम ने सीता से कहा--'हे शुकबयनी, क्या तुमने अक लंक श्री से विलसित इस लंका को देखा ? यह विश्वकर्मा द्वारा निर्मित हुई है और त्रिकूट पर्वत के मध्य में स्थित है । इस लंका का राज्य करने का भाग्य रावण को नहीं था, इसलिए उस दुर्जन का नाश हुआ ।' उसके पश्चात् राम ने उन्हें रक्त, मांस, मज्जा तथा अस्थि-खण्डों से परिपूर्ण समर-भूमि को दिखाते हुए कहा--'हे कमलाक्षी, यहीं पर रावण अपना रण-कौशल दिखाते हुए युद्ध करके मारा गया । देखो, वहां महान् शक्ति-संपन्न कुंभकर्ण घोर युद्ध करने के पश्चात् हत हुआ । यहां पर प्रहस्त नील पर आक्रमण करके नष्ट हुआ। यहीं पर हनुमान् ने महान् बली धूम्राक्ष का संहार किया । उस स्थान पर अजेय हो मेघ-नाद ने हमें नाग-पाशों से बांधा था । वहां पर सौमित्र ने अपना शौर्य तथा शक्ति दिखाते हुए अतिकाय का वध किया था । यहां पर अक्षीण बलशाली मकराक्ष युद्ध करते हुए गिरा था । इस स्थान पर शत्रु-दलन तथा अकुंठित विक्रमी अग्निवर्ण गिरा । उस स्थान पर सौमित्र ने इंद्रजीत का संहार किया । हे सरोजाक्षी, इसी स्थान पर अंगद ने अनुपम बली अतिकाय का वध किया था । इसी स्थान पर महोदर तथा महापार्श्व नामक भयंकर विक्रमी लड़ते हुए गिरे थे । यहां देवांतक एवं नरांतक क्रूरता से युद्ध करते हुए मारे गये थे ।

'यह लो, यहीं पर महान् सेतु है, जिसे हमने अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हुए समुद्र पर बाँधा था । यही गंधमादन नामक पुण्य-तीर्थ है । यह सदाशिव का सर्वमान्य निवास-स्थान है । हे कमलाक्षी, यह जो कांचनाचल दीख रहा है, वहीं हिरण्यनाभ है । हे सुंदरी, पवन-पुत्र तुम्हारा अन्वेषण करते हुए बड़े वेग से लंका की ओर जा रहा था, तब उसको आतिथ्य देने के उद्देश्य से यह महान् पर्वत समुद्र से ऊपर निकल आया था ।'

जब राम इस प्रकार वर्णन कर ही रहे थे कि राम ने अपने समक्ष भयंकर आकार से युक्त रावण का रूप देखा । उसे देखते ही संभ्रमचित्त हो राम ने विभीषण से कहा-- 'हे विभीषण, यह कैसा विचित्र है ? मैं ने अपने प्रचण्ड बाहुबल से युद्ध-क्षेत्र में दशकंठ का संहार किया था, और इसके लिए ब्रह्मा आदि समस्त देवताओं ने बार-बार मेरी प्रशंसा भी की थी । तब फिर आज मेरी आँखों के सामने रावण आकर कैसे खड़ा है ? इसका क्या रहस्य है ?' तब विभीषण ने कहा--'हे राजन्, ब्रह्मा की संतति में जन्म लिये हुए दुर्जन रावण का आपने वध किया था। अतः, आपको ब्रह्म-हत्या का दोष लग गया है । इसलिए कदाचित् रावण आपको दीख पड़ा है । इस पाप का प्रायश्चित्त यहीं करके आगे बढ़ना चाहिए । नहीं तो आगे के कार्य सफल नहीं होंगे। अतः, आप मन-ही-मन ब्रह्मा का स्मरण कीजिए । देवताओं के साथ वे बड़े हर्ष से आयेंगे और कर्त्तव्य का निर्देश करेंगे।

तब राम ने पुष्पक विमान को पृथ्वी पर उतरवाया और मन-ही-मन बड़ी श्रद्धा से ब्रह्मा का स्मरण किया । तुरन्त सभी दिक्पालों, मुनियों तथा देवताओं के साथ ब्रह्मा वहाँ आये और बड़ी प्रीति से बोले--'हे देव, आपने मुझे किसलिए स्मरण किया है ?' तब रघुराम ने अपने देखे हुए रावण के रूप का वृत्तांत सुनाया । तब ब्रह्मा विस्मित होकर बोले--'हे देव, यह दैत्य मेरे तेज से इस पृथ्वी पर पैदा हुआ और इतने घोर पाप किये, फिर भी अन्त में पाप-रहित होकर मरा। इस पृथ्वी पर विप्र अपने वर्णाश्रम धर्म का ज्ञान रखते हुए, उसके अनुसार कर्म न करे, उसके विपरीत कर्म करे, अतुल पाप करे, गुरु-दूषण करे, कुल-भ्रष्ट हो जाय और गो-ब्राह्मण हत्या आदि घोर पाप भी क्यों न करे, फिर भी वह इस पृथ्वी पर वध के योग्य नहीं है । राजा को यही चाहिए कि ऐसे दुर्जन, क्रूर एवं पापी के वंश को निर्मूल कर दे और उसे अपने देश से निर्वासित कर दे । हे जगदीश, विश्ववसु का पुत्र, अब मोक्षार्थी हो आपके सामने खड़ा हुआ है । उसे संतुष्ट कीजिए और एक शुभ लग्न में समुद्र के सेतु पर अपने नाम पर शिव की प्रतिष्ठा कीजिए। इसके पश्चात् उसकी विधि बतलाकर ब्रह्मा चले गये ।

१६२. राम के द्वारा शिवलिंग का प्रतिष्ठापन

तुरन्त राम ने अपने निकट रहनेवाले पवन-पुत्र को देखकर कहा--'हे प्रशंसनीय बलाढ्य तथा साहसी हनुमान्, तुमने हमारा कार्य पूरा करके हमारा उद्धार किया है और हमारी कीर्त्ति को चारों ओर फैलाकर हमें कृतार्थ किया है । विनय, विक्रम, धैर्य एवं प्रसिद्धि में निखिल लोकों में तुम्हारी समता कोई नहीं कर सकता । अभी हमारा एक और कार्य संपन्न करो। हे वानरोत्तम, तुम असंख्यफलप्रदायिनी काशी को शीघ्र जाकर वहाँ से एक शिवलिंग ले आओ । यहाँ से काशी दो सौ दस योजन दूर है । दो घड़ी में

तुम शिवलिंग को लेकर वापस आओ । कहीं भी विलम्ब किये विना शीघ्र आना । पृथ्वी पर मूर्च्छित होकर गिरे हुए मेरे भाई के लिए तुम तेईस लाख बीस सहस्र और दस योजन की दूरी पवन-वेग से पार करके ओषधी-शैल ले आये थे और फिर उसे यथास्थान पहुँचा दिया था । यह सारा कार्य तुमने एक अर्द्ध प्रहर में संपन्न किया था । यह कार्य तुम्हारे लिए कोई बड़ा नहीं है ।'

यह सुनकर हनुमान् ने हर्ष से फूलते हुए रामचन्द्र को प्रणाम किया और उनकी आज्ञा लेकर चल पड़ा । वह तुरन्त महेन्द्राचल पर चढ़कर अपनी सारी शक्ति के साथ आकाश की ओर उछलकर आकाश-मार्ग से काशी नगरी में पहुँच गया । उसने वहाँ पुण्य-तरंगिणी गंगा में स्नान किया, काशी में विलसित परम दयालु, भक्तजन-पालक विश्वनाथजी के दर्शन करके उनकी स्तुति की । वहाँ से एक शिवलिंग को लेकर हनुमान् तुरन्त अत्यधिक वेग से लौटने लगा ।

हनुमान् के आगमन की प्रतीक्षा में बैठे हुए बंधु-जन-वंदित राम मन-ही-मन सोचने लगे--'शुभ लग्न आसन्न हो रहा है । पता नहीं कि हनुमान् अभी तक क्यों नहीं आया है। कदाचित् किसी राक्षस से छेड़े जाने पर उससे युद्ध कर रहा होगा। न जाने क्या बात हुई ?' फिर, उन्होंने निश्चय किया--'शुभ मुहूर्त्त के बीतने के पहले ही मैं एक सैकत लिंग बनाकर उसकी प्रतिष्ठा कर दूँगा ।' 'ऐसा निश्चय करके राम ने एक योग्य स्थल को चुनकर वहाँ अपने हाथों से एक सैकत लिंग बनाया। कमलाक्षी सीता ने पार्वती-नाथ के लिंग के ठीक सामने रेत से एक नन्दी बनाई । उसके पश्चात् राम उस लिंग की पूजा करने लगे ।

उसी समय वायुपुत्र वायु वेग से वहाँ पहुँचकर रामचन्द्र के चरणों में प्रणाम किया । फिर, वह रामचन्द्र द्वारा प्रतिष्ठित शिवलिंग को देखकर खिन्न हुआ । उसका सारा शरीर दुःख के आवेश से काँपने लगा और गद्‌गद कंठ से वह राम को देखकर बोला--'हे सूर्य-वंशतिलक, आपकी आज्ञा के अनुसार मैं काशी गया और ब्रह्मा आदि देवताओं के समक्ष ही मैं वहाँ से एक शिवलिंग ले आया हूँ । मुझे भेजकर, मेरे लौटने के पहले ही आपने शिवजी का प्रतिष्ठापन संपूर्ण कर दिया। क्या, यह आपके लिए उचित था ? हे देव, कदाचित् मैं आपके विश्वास के अयोग्य हो गया हूँ, आपके मन में मेरे प्रति प्रेम नहीं है ।' तब राम ने मंद-मंद मुस्कुराते हुए हनुमान् के देखकर कहा--'हे पवन-पुत्र, तुम भी मेरे भाइयों में एक हो । मेरा तुम पर अपार स्नेह है । शुभ मुहूर्त्त न बीत जाय, यही विचार करके मैंने रेत से शिवजी का प्रतिष्ठापन किया । इतने में तुम आ गये । मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। अब बुरा ही क्या है ? तुम इस शिवलिंग को हटाकर अपने लाये हुए शिवलिंग का प्रतिष्ठापन करो ।' तब वायुपुत्र ने बड़े हर्ष से अपनी पूँछ से उस शिवलिंग को लपेटा और बार-बार उसे हिलाने का प्रयत्न किया, किन्तु वह शिवलिंग किंचित् भी नहीं हिला। हनुमान् मन-ही-मन आशंकित होने लगा। फिर भी, उसने अनेक बार प्रयत्न किया, किन्तु उसे हिलाने में अपने को असमर्थ पाकर मन-ही-मन चिंताकुल हो सोचने लगा--'हाय, मैं पूर्व में सहज ही द्रोणाचल को उखाड़कर लाया था । शिव तथा भूतगण से युक्त कैलास

पर्वत को उठानेवाले रावण भी जब सौमित्र को उठाने में अपने आपको असमर्थ पाया, तब मैंने सौमित्र को उठाकर इन्द्र आदि देवताओं की प्रशंसा प्राप्त की । मेरु तथा मन्दर पर्वतों को मैंने अपने पैर के अँगूठे से उछालने की शक्ति रखता हूँ । क्या आश्चर्य है कि यह शिवलिंग मेरे लिए बहुत भारी हो रहा है । कदाचित् मेरी शक्ति ही घट गई है, अथवा सूर्यवंशज को क्रोध से अपशब्द कहने का पाप मुझे लग गया है या काशी का शिवलिंग यहाँ तक ले आने के कारण ही ऐसा हो रहा है । अन्यथा यह कैसे हो सकता है कि यह शिवलिंग मेरे लिए भारी पड़ जाय ।'

इस प्रकार सोचकर हनुमान् ने अपनी सारी शक्ति का संचय किया और उस शिवलिंग को उखाड़ने का शक्ति-भर प्रयत्न किया, किन्तु वह असफल हुआ । उसकी सारी शक्ति जाती रही और वह रक्त उगलते हुए मूच्छित हो नीचे गिर पड़ा । तब राम ने अपने दीप्तिमान् एवं कोमल कर-कमल फैलाकर हनुमान् को उठाया । तब उसकी चेतना लौट आई और उसने राम को साष्टांग प्रणाम करके कहा--'हे सीता के हृदय-कमल-षट्चरण, आपकी जय हो । हे घोर कुटिल-राक्षस-समूह-संहारक, आपकी जय हो । हे शिव के उद्दण्ड-कोदण्ड-भंजक, आपकी जय हो। हे बाणाग्नि से समुद्र को सोखनेवाले वीर, आपकी जय हो। हे रावण-रूपी उन्नत शैल के लिए अमरेन्द्र-स्वरूप, आपकी जय हो। हे भक्तवत्सल ! आपकी जय हो। हे निर्मलात्मा, सज्जन-कल्पतरु, शतकोटि सूर्य-सम तेजस्वी, आपकी जय हो। आपकी महिमा महेश्वर, इन्द्र, नागेन्द्र तथा वागीश, इनमें कोई भी जान नहीं सकते । तब भला मेरी शक्ति ही क्या है कि मैं आपकी महिमा जानूँ ? आपके द्वारा प्रतिष्ठित शिवलिंग को अबोध की भाँति उखाड़ने का प्रयत्न करके मैंने जो अपराध किया है, उसे आप क्षमा कीजिए और आपकी आज्ञा के अनुसार मेरे द्वारा लाये गये इस शिवलिंग की यथोचित व्यवस्था कीजिए ।"

इस प्रकार अत्यन्त भक्ति से स्तुति करनेवाले हनुमान् को देखकर राघव ने कहा--'हे पवनपुत्र, तुम मन-ही-मन ऐसे क्यों दुःखी होते हो ? तुम अपने लाये हुए लिंग को यहीं पर प्रतिष्ठित करो । इस पृथ्वी के लोग पहले उसी शिव की पूजा करेंगे, उसके पश्चात्, मेरे द्वारा प्रतिष्ठित ईश्वर की अर्चना करेंगे । जो भक्त जाह्नवी का पुण्य-सलिल ले आकर उससे तुम्हारे लाये हुए शिवलिंग का अभिषेक करेंगे, उनके किये हुए ब्रह्म-हत्या आदि पाप नष्ट हो जायेंगे, उनकी कीर्त्ति शाश्वत होगी, अनुपम पुत्र-पौत्रों की वृद्धि उन्हें प्राप्त होगी और वे अनुपम संपत्ति प्राप्त करेंगे ।' यह सुनकर हनुमान् अत्यन्त हर्षित एवं संतुष्ट हुआ ।

उसके पश्चात् राम ने काशी-लिंग को वहाँ प्रतिष्ठित किया और पहले उसी लिंग की षोडशोपचार पूजा बड़ी भक्ति के साथ की और उसके पश्चात् अत्यन्त हर्ष से अपने द्वारा प्रतिष्ठित शिव की पूजा की । तब देवताओं ने राम पर पुष्प-वृष्टि की और सभी वानर आनन्द से प्रफुल्लित हो उठे । तब विभीषण ने राम से कहा---'हे जगदीश, आप ऐसी कोई व्यवस्था कीजिए कि इस सेतु-मार्ग से कोई लंका में न आ सके ।'

१६३. श्रीराम का सेतु की महिमा बताना

श्रीराम ने तब बड़े हर्ष से उस विभीषण को देखकर कहा—'ऐसा ही होगा ।'

फिर, वे सेतु पर कुछ कदम आगे चले और उस पर खड़े होकर अपने अनुज के हाथ का धनुष अपने हाथ में लिया और उसकी नोक से उस सेतु पर एक रेखा खींचकर उसे इस प्रकार काट दिया कि कपियों के द्वारा निर्मित उस सेतु के सभी जोड़ टूट गये। उसके पश्चात् वे बोले--'जो व्यक्ति इस स्थान पर स्नान करेगा, उसके परस्त्रीगमन, ब्रह्महत्या, गुरु-द्रोह, गो-वध, सुरापान, वेद-दूषण, पर-वित्तापहरण, सहोदरी रति, स्त्री-हत्या, चोरों की मित्रता, गृह-दाह, मांस-भक्षण आदि कार्यों के द्वारा उत्पन्न समस्त पाप नष्ट हो जायेंगे, पुण्य की प्राप्ति होगी, और उसे चिरायु, आरोग्य, पर-हितबुद्धि, सौभाग्य एवं शाश्वत कीर्त्ति प्राप्त होगी।'

इसके पश्चात् राघव बड़े हर्ष से पुष्पक पर आरूढ हुए। यह पुष्पक देवताओं के आशीर्वाद तथा वानरों की प्रशंसा प्राप्त करते हुए पूर्ववत् आकाश-मार्ग में बड़े वेग से जाने लगा। तब मनुकुलेश्वर भूमि सुता को देखकर बोले--'हे विधुवदनी, इसी स्थान पर विभीषण हम से मिला था। यहीं पर मैंने कुश-शय्या पर शयन किया था। यहीं पर मैंने एकान्त-सेवा की और ब्रह्मास्त्र को चढ़ाकर समुद्र पर चलाने का उपक्रम किया, तो नदियों के साथ समुद्र ने आकर इसी स्थान पर मुझे प्रणाम किया था। हे कमलमुखी, यहाँ पर मैंने अनुपम विक्रम एवं शान्ति से बाण का संधान करके वालि का वध किया था। वहाँ देखो, प्रचुर वनों और फलों से युक्त किष्किन्धापुरी है, जो सुग्रीव की राजधानी है।

तब चंचल नेत्रवाली जानकी ने रामचन्द्र से कहा--'हे नाथ, मेरी इच्छा है कि सुग्रीव की पत्नियों को भी अपने साथ अयोध्या ले चलूँ।' तव राम ने पुष्पक को वहाँ रोक दिया। राम की आज्ञा से सुग्रीव आकाश-मार्ग से जाकर तारा आदि अपनी पत्नियों को ले आया। वे बड़ी भक्ति के साथ सीता को प्रणाम करके पुष्पक विमान में बैठ गईं। फिर, पुष्पक पूर्ववत् चलने लगा। ऋष्यमूक पर्वत के निकट पहुँचते ही रघुराम ने जानकी को देखकर कहा--'यही ऋष्यमूक पर्वत मेरे वानर-मित्रों का निवास है। इसी पर्वत पर मैंने सभी रहस्यों को जानकर सुग्रीव से मित्रता की थी। यही वह पंपा सरोवर है, जो सदा रवि-किरणों से विकसित कमलों से दीप्तिमान् रहता है। हे सीते, तुम्हारे वियोग से तप्त मैं इस पुण्य सरोवर के मृदुल तटों पर जब अपार दुःख का अनुभव कर रहा था, तब पुण्यात्मा पवनकुमार हमसे मिला और मेरे हृदय-कमल को शान्ति पहुँचाकर सुग्रीव से हमारी भेंट कराई। वहाँ देखो, उस वन के मध्य शबरी का आश्रम सुशोभित हो रहा है। यहीं पर मैंने क्रुद्ध होकर घोर युद्ध-कौशल दिखाया था और महा बलशाली कबंध का वध किया था। इसी स्थान पर उन्नतात्मा जटायु का स्वर्गवास हुआ। तुम्हें ले जानेवाले नीच रावण को उसने रोका था और उसके साथ युद्ध करके यहीं पर आहत होकर गिरा था। वहाँ झाड़ियों एवं वनों से आकीर्ण प्रदेश ही 'जनस्थान' कहलाता है। वहाँ देखो, उसी स्थान पर सौमित्र ने शूर्पणखा के नाक-कान काटे थे। यहाँ देखो, इस स्थान पर मद-मत्त हो हम पर आक्रमण करने आये हुए खर-दूषण आदि राक्षसों का संहार हुआ था। यहाँ पर मायामृग के रूप में मारीच ने मुझे तंग किया था और यहाँ पर उसकी मृत्यु हुई। यही पंचवटी है। लो, यही वह पर्णशाला है, जहाँ से रावण मायारूप धरकर तुम्हें चुरा ले गया था। वहाँ देखो, वही सुतीक्ष्ण मुनि का आश्रम है और उससे थोड़ी दूर पर

दीखने वाला आश्रम अगस्त्य का है। वहाँ शरभंग मुनि का आश्रम है और वह देखो महामुनि अत्रि का आश्रम दीख रहा है। वहीं पर सती अनसूया ने तुम्हें प्रेम से अंगराग प्रदान किया था। वही चित्रकूट पर्वत है, जहाँ भरत ने मुझसे (घर लौटने की) प्रार्थना की थी। वहाँ देखो, अनतिदूर विमल काननों के मध्य यमुना सुशोभित हो रही है। वहाँ देखो, अनेक दिव्य मुनि जिसकी सेवा करते हैं, ऐसी विमल तरंगावली से युक्त गंगा नदी प्रवाहित हो रही है। उसके किनारे अनेक उद्यानों से परिपूर्ण शृंगबेरपुर विलसित हो रहा है। वहीं वह सुन्दर स्थान है, जहाँ गुह बड़ी भक्ति के साथ हमसे मिला था। वह देखो, वही सरयू नदी है, जिसके तट पर अनेक यूप-काष्ठ विलसित हैं। हे कमलाक्षी, विशाल पुण्य-राशि अयोध्या वहाँ दीख रही है, उसे प्रणाम करो।' इस प्रकार, जब राम ने सीता को संकेत से अयोध्या दिखाई, तब बड़े कुतूहल से वानर एवं राक्षस उचक-उचककर उस सुन्दर नगर को देखने लगे, जो असंख्य रत्नों, स्वर्ण-सौधों, असंख्य तोरणों, ध्वजाओं तथा बहुत-से गज, अश्व, रथ, पदाति-सेना से युक्त हो अपार वैभव से विलसित होते हुए अमरावती के समान दीख रहा था।

१६४. भरद्वाज मुनि का आतिथ्य

चौदह वर्ष की समाप्ति के पश्चात् शुक्ल पंचमी (पंचम) के शुभ दिन में राम अविरत तेजस्वी भरद्वाज मुनि के आश्रम के निकट उतरे। वे पुष्पक को आकाश में ठहरा-कर आप आश्रम में गये और उस मुनि के चरण-कमलों में अपना मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और बड़े हर्ष से मुनि के आशीर्वाद प्राप्त किये। उसके पश्चात् उन्होंने अत्यन्त विनय के साथ कहा—'हे अनघ, बहुत समय से मुझे आपका कुशल-समाचार ज्ञात नहीं हुआ था। वनवास में रहते हुए बहुत समय व्यतीत हो गया है। आप को, कंद, मूल, फल, जल आदि उपलब्ध होने में कोई कष्ट तो नहीं होता? आप की तपस्या विना विघ्न-बाधा के सतत चल रही है न?'

राम के विनयपूर्ण वचनों को सुनकर मुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे बोले—'हे निखिल लोकाराध्य, जब तुम स्वयं यहाँ जन्म लेकर बड़ी निष्ठा से समस्त लोकों का पालन करते हो, तब भला, कहीं किसी को कष्ट या कोई दुःख हो सकता है? पुण्य-कर्म करने-वालों को कहीं कोई विघ्न-बाधा हो सकती है? हे सत्यनिष्ठ, तुम्हारे प्रसाद से हम अत्यंत सुखी हो सभी धर्म-कार्य संपन्न करते, वेद-विहितअनुष्ठान का आचरण करते हुए तपस्या करते हैं। वनवास के लिए जाते समय तुम यहाँ आये थे। यहाँ से जाने के दिन से फिर आज लौटकर आने तक तुम्हारा सारा वृत्तांत मैंने अपनी दिव्य दृष्टि से जान लिया है। तुम्हारे किये हुए अद्भुत कार्य देवताओं के लिए भी असंभव हैं। तुम्हारे वन जाने के दिन से ही समस्त सुख-भोगों का त्याग कर घन जटा-भार एवं वल्कल धारण किये हुए, भरत अत्यन्त भक्ति से तुम्हारी पादुकाओं पर समस्त राज्य-भार डालकर राज्य चला रहा है। आश्चर्यजनक श्रद्धा से वह तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा कर रहा होगा। अपने अनुज की श्रद्धा का विचार करके तुम्हें वहाँ शीघ्र पहुँच जाना चाहिए। किन्तु हे अनघ, तुम वनवास से थके हुए आये हो, अतः आज तुम हमारे आश्रम में विश्राम करो। कल प्रातःकाल ही हम से विदा लेकर यहाँ से जाना। मैं प्रीतिभोज की व्यवस्था करता हूँ।

इतना कहकर मुनि ने अपने श्रेष्ठ तप की महिमा से राम को चकित करते हुए कामधेनु का स्मरण किया । तुरन्त उस कामधेनु ने स्वच्छ कान्ति से चमकता हुआ, भात, फल, घृत, दाल, विविध मिष्टान्न, मधुर शाक, शक्कर, दधि, परमान्न, औंटाया हुआ दूध, मधु, शिखरन, शरबत, चटनी, पेवस, बरी, सुगंधित जल और स्वादिष्ट अँचार आदि का प्रबन्ध कर दिया । तब राम ने वानर तथा दैत्य-नायकों के साथ बड़ी भक्ति एवं प्रीति से भोजन किया । तदनंतर भरद्वाज ने राम से कहा––'हे सुगुणाभिराम, हे कल्याणगुणधाम, मैं तुम्हें कोई वर देना चाहता हूँ । तुम अपनी इच्छा से माँग लो ।' तब राम ने हाथ जोड़कर कहा––'हे मुनीश्वर, आप कृपा करके ऐसा वर प्रदान कीजिए कि साकेत नगरी के चारों ओर तीन योजन तक की भूमि वर्ष भर शस्य-श्यामल बनी रहे और वहाँ के वृक्ष सदा फूलते-फलते रहें । इसके सिवा मैं और कोई वर नहीं चाहता ।' मुनि ने ऐसा ही वर देने की कृपा की । वानर-वीर मुनि के दर्शन करके हर्ष से प्रफुल्लित होकर अपने को कृतार्थ मानने लगे ।

तब रघुपति अनिलकुमार को देखकर बोले––'हे मारुति, तुम अपनी अनुपम शक्ति से शीघ्र शृंगबेरपुर जाकर पुण्यात्मा गुह से मिलो और हमारे आगमन की सूचना उसे दो। उस पुण्यात्मा से मार्ग जानकर नंदीग्राम पहुँचकर हमारे अनुज शुभव्रती, दयालु तथा उन्नतात्मा भरत को हमारे आगमन का समाचार देकर शीघ्र लौट आओ ।'

तब हनुमान् ने मानव-रूप धारण कर बड़े वेग से गंगा नदी को पार किया, और शृंगबेरपुर में पहुँचा । वहाँ परहितात्मा परमेश्वर के आगमन का समाचार न जानने के कारण गुह मन-ही-मन सोचने लगा––'मैं अपने प्रभु राजाराम के चरण-कमलों की सेवा करते हुए उनके साथ वन में नहीं जा सका। पता नहीं, वे वहाँ कैसे रहते हैं और कहाँ हैं ? कदाचित् वे सिंह, भेरुण्ड, राक्षस, अग्नि, भुजंग, विष आदि से पीड़ित हो कहीं नष्ट तो नहीं हो गये । अन्यथा, (चौदह वर्ष की) अवधि समाप्त होने के पश्चात् भी रघुराम लौटकर क्यों नहीं आये। राम अपने वचन तोड़नेवाले नहीं हैं। मुझसे भूल हो गई। मैं अभी अग्नि में प्रवेश करके राम को प्राप्त करूँगा ।' ऐसा निश्चय करने के पश्चात् उसने चिता सजाई और उसमें अग्नि को प्रज्वलित किया । फिर बड़ी भक्ति से वह अपने अनुज, पुत्र एवं स्त्री को साथ लिये हुए अपने मन में राम को धारण किये हुए उस अग्नि में प्रवेश करने का उपक्रम करने लगा ।

उसी समय हनुमान् ने उसका मार्ग रोककर कहा––'अपने व्रत का पालन करके प्रभु राम लौटकर आ रहे हैं । वे कल ही यहाँ पहुँचेंगे । यह असत्य नहीं है । तुम अग्नि-प्रवेश करो, तो राम के चरणों की सौगन्ध है ।' राम के आगमन का समाचार सुनकर अपने अनुचरों के साथ गुह अत्यन्त हर्षित हुआ और पवन-पुत्र को प्रणाम किया। फिर, गुह से आदर-सत्कार प्राप्त करके हनुमान् सरयू नदी को पार करके आगे बढ़ा । नंदीग्राम में पवित्रचरित्र भरत अपने मन में सोच रहे थे––'पता नहीं, राम-लक्ष्मण तथा सीता कैसी अवस्था में हैं और कहाँ हैं ? चौदह वर्ष पूरे हो गये, फिर भी राम लौटे नहीं । मैं धोखे में पड़ गया । जिस प्रकार सुमित्रानंदन, मुनि-वृत्ति स्वीकार करके राम के चरण-

कमलों की सेवा करते हुए गया, वैसे मैं भी उस दिन जा नहीं सका। राम से अलग हो, मैं कैसे इस पृथ्वी पर जीवित रह सकता हूँ ? मैंने उसी दिन प्रतिज्ञा की थी कि यदि चौदह वर्ष समाप्त होने के पश्चात् भी रघुपति लौटने की कृपा नहीं करेंगे, तो मैं चिता में जलकर अपने प्राण त्याग दूँगा। क्या, मैं उस प्रतिज्ञा को झूठी होने दूं।' ऐसा निश्चय करके उन्होंने अपने मंत्रियों को बुलाकर कहा--'मैं राम से मिलने के लिए अग्नि-प्रवेश करके अपने प्राण त्यागूंगा। तुम शत्रुओं का मद हरण करनेवाले, शौर्य-सम्पन्न शत्रुघ्न का राजतिलक कर दो।' तब शत्रुघ्न ने भरत को देखकर कहा--'हे राजन्, आपके न रहने पर मुझे यह राज्य किसलिए चाहिए ? यह शरीर किसलिए ? मैं भी आपके चरणों की सेवा करते हुए आपके साथ ही चलूंगा।' ऐसा दृढ निश्चय किये हुए उनको देखकर सभी लोग भयभीत हो गये।

१६५. हनुमान् का भरत को राघवों का कुशल-समाचार सुनाना

इसी समय अनिलकुमार अत्यन्त वेग के साथ वहाँ पहुँच गया और भरत को बहुत विनय से प्रणाम करके खड़ा रहा। तब भरत ने पूछा--'तुम कौन हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? तुम्हारे यहाँ आने का क्या कारण है ? तुम किस कुल के हो ? तुम कहाँ से आ रहे हो और कहाँ जा रहे हो ?' तब अनिलपुत्र ने भरत से कहा--'हे देव, मैं वानर हूँ और रघुराम का प्रिय दूत हूँ। सूर्य-कुल-कमल-भानु, उत्तमचरित्र राम ने अपने वनवास की अवधि समाप्त करके सौमित्र तथा जानकी के साथ वन में ठहरे हुए हैं। उन्होंने आपका कुशल-समाचार जानकर यहाँ आने के लिए मुझे भेजा है, इसीलिए मैं आया हूँ।'

तब भरत अत्यधिक हर्ष से पुलकित हो उठे और बोले--'हे पुण्यवत्सल, हे वानर-श्रेष्ठ, हे पवन कुमार, मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ।' इसके पश्चात् उन्होंने उस वानर-श्रेष्ठ को हृदय से लगा लिया और उन्हें गज-मुक्ताओं तथा मणियों की मालाएँ, कनकांबर, श्रेष्ठ आभूषण, असंख्य धन तथा नगर भेंट किये और कहा--'हमारे प्रभु राम के वनवास गये हुए बहुत समय व्यतीत हो गया है। वे कहाँ रहे ? कहाँ-कहाँ विचरे ? अब वे कहाँ हैं ? तुम राघव के प्रिय दूत हो, इसलिए हे अनघ, तुम सभी बातें विस्तार से कहो। मैं तुम्हारी बातों का विश्वास नहीं कर पा रहा हूँ। हे वानरश्रेष्ठ, क्या उनका आना सत्य है ?'

तब उस विमलात्मा ने हँसकर बड़ी भक्ति से कहा--"आपके पिता महाराज ने राम को राज्याधिकार से वंचित करके उनके वनवास की आज्ञा दी, तो वे बड़ी भक्ति से जटाएँ तथा वल्कल धारण किये हुए जानकी तथा लक्ष्मण के साथ पैदल ही वनवास के लिए रवाना हुए और बड़े हर्ष से श्रेष्ठ मुनियों की संगति में चित्रकूट पर्वत में रहने लगे। तब आपने राज्य-ग्रहण को अस्वीकार कर अपने अग्रज को लौटा लाने का प्रयत्न किया। उनके अस्वीकार करने पर आप बड़ी भक्ति के साथ उनकी पादुकाओं को ले आये और उनपर राज्य-भार डालकर राज-भोग त्याग कर तपस्वी के समान यहाँ रहने लगे। वहाँ से राघव कुटिल दानवों से पूर्ण दण्डक-वन में पहुँचे। पहले वे शरभंग मुनि के आश्रम में ठहरे और वहाँ मुनियों के प्रति होनेवाले राक्षसों के अत्याचारों को दूर करके, सांत्वना देने के पश्चात्

आगे बढ़े और जनस्थान में राक्षसराज की बहन शूर्पणखा की नाक और कान काटे। उसके बाद उन्होंने खर, दूषण आदि चौदह सहस्र राक्षसों का संहार किया और वहाँ (पंच-वटी में) पर्णशाला बनाकर रहने लगे। वहाँ रहते समय राक्षसराज रावण की प्रेरणा से मारीच नामक मायावी राक्षस सुन्दर स्वर्ण-मृग का रूप धारण किये हुए वहाँ दिखाई पड़ा। तब मृगनैत्री सीता ने उस मृग को देखकर राम से कहा--'हे नाथ, मुझे यह मृग बहुत प्रिय लग रहा है। आप इसे अवश्य ला दीजिए।' राघवेश्वर ने चाप लेकर पीछा किया और निदान उसपर तीक्ष्ण बाण चलाया, तो वह कुटिल राक्षस--'हाय लक्ष्मण! हाय लक्ष्मण!' कहकर आर्त्तनाद करते हुए गिर पड़ा। यह आर्त्तस्वर सुनकर साध्वी सीता ने भय से व्याकुल होकर लक्ष्मण को भेज दिया। तब मुनि-वेष धरकर रावण वहाँ आया और सीता को बलात् उठाकर ले जाने लगा। तब जटायु ने इसे देखा। उसने रावण को रोका, तो रावण ने उसके साथ युद्ध करके उसे परास्त करके मार डाला। उसने समुद्र पार किया और लंका के अपने उद्यान में सीता देवी को बंदिनी बनाकर रखा। जब रामचन्द्र मायामृग का वध करके क्लान्त हो लौटने लगे, तब उन्होंने मार्ग में लक्ष्मण को देखा। तुरन्त उन्होंने व्याकुल हो लक्ष्मण से पूछा कि सीता को अकेली छोड़कर यहाँ क्यों आये? दोनों भाई शीघ्र पर्णशाला में लौट आये। किन्तु वहाँ सीता को न देखकर वे अत्यन्त शोकाभिभूत हो गये। फिर, सीता की खोज करते हुए वे दोनों वनों में से होकर जाने लगे। मार्ग में उन्होंने रावण के बाहुबल से कटकर पृथ्वी पर गिरे हुए जटायु को देखा। जटायु से उन्हें विदित हुआ कि दशकंठ उसकी ऐसी दशा करके सीता को ले गया है। फिर, उस विहगेश की दाह-क्रिया करके वे जंगलों में भटकते हुए जाने लगे। ऋष्यमूक पर पहुँचकर उन्होंने सुग्रीव से मित्रता की। राम ने सुग्रीव के लिए वालि का संहार किया और तारा के साथ वानर-राज्य सुग्रीव को प्रदान किया। सुग्रीव बड़े हर्ष से सीता के अन्वेषणार्थ दो लाख असमान बलशाली तथा यशस्वी वानरों को प्रत्येक दिशा में भेजा। वानर दत्तचित्त हो सीता का अन्वेषण करने लगे, तो संपाति ने उन्हें बतलाया कि सीता लंका में हैं। तुम चिन्ता मत करो। मैं जैसा कहता हूँ वैसा करो। मैं ने संपाति के परामर्श से सौ योजन समुद्र को पार करके अशोक-वन में शोक-संतप्त हो रहनेवाली वैदेही के दर्शन किये। उन्हें रामचन्द्र की मुद्रिका दी। उस देवी से चूडामणि प्राप्त की और उसे लाकर रामचन्द्र को दिया। तब राम अत्यन्त प्रसन्न हुए और फिर समस्त वानर-सेना के साथ वे लंका पर आक्रमण करने के लिए चले, समुद्र पर सेतु को बाँधा, लंका पर आक्रमण किया और अपने प्रशंसनीय पराक्रम से लंकेश्वर का संहार किया और संसार का दुःख दूर किया। फिर, उन्होंने पुण्यात्मा विभीषण को लंका का राजा बनाया और पवित्रात्मा ब्रह्मादि देवताओं से अनेक वर प्राप्त किये। तदनन्तर देवताओं के साथ आये हुए आपके पिता के चरणों में प्रणाम करके, अग्नि-मुख से पवित्र घोषित की हुई सीता को स्वीकार किया। फिर, उन्होंने वानरों, राक्षसों, सुग्रीव, विभीषण, अंगद आदि के साथ पुष्पक विमान पर आरूढ हो लंका से प्रस्थान किया और सफल, विक्रम तथा यश से सुशोभित होते हुए भरद्वाज मुनि के आश्रम में पहुँचकर वहाँ ठहरे हुए हैं। वे अवश्य ही कल यहाँ पधारेंगे।"

भरत ने हनुमान् की बातों से अत्यन्त हर्षित होकर, शत्रुघ्न से कहा—'हे शत्रुघ्न, तुम तुरन्त अयोध्या में जाकर सर्वत्र मंगलोत्सव की घोषणा करा दो। राज-सभा-भवन में राम के सेतु-बन्धन आदि के चित्र बनवाओ। देव-गृहों, भूदेव-गृहों (ब्राह्मण-गृह) का अलंकरण, तुम स्वयं अपने समक्ष कराओ, नगर-मार्ग को श्रेष्ठ तोरणों तथा ध्वजाओं से सजाओ। युवतियों के द्वारा मोतियों से (घरों के आगे) चौक पुरवाओ, सभी घरों में सुन्दर वस्तुएँ वितरित कराओ। और, सभी नगर-वासियों को सुन्दर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित रहने का आदेश दो। श्रीराम के आगमन का शुभ समाचार निकटवर्त्ती देशों के राजाओं के पास भेजो और गज-तुरंगों की विपुल ध्वनि किये विना चतुरंगिणी सेना तथा मंत्रियों को साथ लेकर माताओं की सेवा में तुम शीघ्र यहाँ लौट आओ।'

भरत का आदेश प्राप्त करके अनघ शत्रुघ्न अत्यन्त वेग से अयोध्या में गये और बड़े उल्लास के साथ राघव के आगमन का शुभ समाचार अपने सभी बंधु-जनों को सुनाया, कौशल्या से कहा, कैकेयी से कहा और फिर सुमित्रा को कह सुनाया। फिर, उन्होंने भरत के आदेशानुसार नगर को सजवाया और अकलंक रीति से अन्तःपुरों का अलंकरण कराया, चन्दन एवं कर्पूर से सुगन्धित जल आँगनों में छिड़कवाया और नगर-वीथियों में नव-रत्न-तोरण बँधवाये। तब महात्मा वसिष्ठ आदि मुनि, पुरोहित, मुनि-पत्नियाँ, माताएँ, बन्धु-जन, मंत्री, मित्र, स्त्रियाँ, नगर-निवासी तथा वृद्ध-जन, कुछ रथों में, कुछ पालकियों में, कुछ अश्वों पर, कुछ गजों पर आरूढ हो चल पड़े। शत्रुघ्न पंच महावाद्यों के रव के साथ सभी को साथ लेकर भरत की सेवा में पहुँच गये।

१६६. भरत-मिलाप

भरत अपनी माताओं, अनुज तथा सेना के साथ राम की अगवानी करने के लिए, अत्यधिक उल्लास से चले। तब हनुमान् ने भरत से कहा—'हे अनघ, वह देखिए। राघव भरद्वाज मुनि के आश्रम से आ रहे हैं। वही पुष्पक है। वहाँ देखिए, वे ही राम हैं। वही कपि-सेना है। वह सुनिए, वानरों के सरयू नदी को पार करने की ध्वनि सुनाई पड़ रही है।' भरत विमान को देखकर फूले नहीं समाये और जहाँ उस पुष्पक को देखा, उसी स्थान पर वह बड़ी भक्ति से भाई को साष्टांग प्रणाम किया। फिर, उदयाद्रि पर प्रकाशमान होनेवाले उदयोन्मुख सूर्य की भाँति अपनी प्रभा को दसों दिशाओं में विकीर्ण करते हुए पुष्पक पर आरूढ, पुण्यात्मा रघुराम के निकट पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया।

तब राम ने पुष्पक को पृथ्वी पर उतारा और लक्ष्मण के साथ बड़े हर्ष से एक-एक करके अपनी माताओं को प्रणाम किया। माताओं ने आशीर्वाद देकर उन्हें हृदय से लगाया। उसके पश्चात् भरत एवं शत्रुघ्न ने बड़ी भक्ति से राम, सीता तथा लक्ष्मण को प्रणाम किया। राम ने उन्हें हृदय से लगाकर आशीर्वाद दिया। फिर, सीता ने बड़ी प्रीति एवं श्रद्धा से अपनी सासों को प्रणाम किया, तो उन्होंने अलग-अलग उन्हें हृदय से लगाकर आशीर्वाद दिये। राम-लक्ष्मण ने बड़ी भक्ति से मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ को प्रणाम किया, तो उस मुनि ने उन राजपुत्रों को आशीर्वाद देकर बड़े स्नेह से उनका आलिंगन किया। भरत तथा शत्रुघ्न ने संतुष्ट हृदयों से अपनी माताओं को प्रणाम किया और राम के पीछे भक्ति-युक्त हो रहनेवाले

विमलात्मा विभीषण, सुग्रीव, अंगद तथा प्रमुख वानर-वीरों से प्रेमालाप करके उन्हें हृदय से लगाकर कहा--'आपके सदृश अनघ भृत्यों के रहने से राघव ने अनुपम कीर्त्ति एवं विजय प्राप्त की। आपकी शुभ सेवा, नीति एवं औन्नत्य के फलस्वरूप राम ने विजय प्राप्त की। ऐसे हितू, भृत्य एवं आप्त-बंधु हमारे और कौन हो सकते हैं ?' इस प्रकार कहते हुए वे अत्यधिक आनन्दित हुए। तब राजशिरोमणि राम ने अपनी प्रसन्नचित्त माताओं, बंधुओं, अनुजों, वानरों तथा सेना को साथ लिये हुए तथा अपने तेज को विकीर्ण करते हुए नंदीग्राम में प्रवेश किया।

तदनंतर राम ने पुष्पक विमान की पूजा-अर्चना करके कहा--'अब तुम धनद (कुबेर) के पास अलकापुरी में जाकर रहो और (फिर कभी) मेरे स्मरण करते ही चले आना।' इन वचनों के साथ उन्होंने उसे विदा किया। तब भरत राम की सेवा में पहुँचे और हाथ जोड़कर बड़ी भक्ति से कहा--'हे देव ! मैं अबतक राज्य-भार आपकी पादुकाओं पर रखकर, निर्लिप्त भाव से सावधान हो राज-काज का संचालन करता रहा।' यों कहकर उन्होंने राम की पादुकाएँ उनके चरणों के पास रख दीं और फिर अत्यन्त विनम्र होकर कहा--'अब आपको अयोध्या में पधारना चाहिए। उसके लिए यह मुनिवेष ठीक नहीं है। आप कृपया, राजा के योग्य वस्त्राभूषण धारण करें और वल्कल एवं जटा-भार यहीं तज दें।'

तब राम ने मन-ही-मन इस कथन के औचित्य पर विचार करने के पश्चात् कहा--'जैसी तुम्हारी इच्छा।' तब प्रवीण सेवकों ने आकर बड़े यत्न से उनकी जटिल जटाओं को सुलझाया। राम ने अपने अनुजों के साथ अभ्यंग-स्नान किया। फिर, दिव्य वस्त्र, आभरण तथा मालाओं को धारण किया। दशरथ की पत्नियों ने बड़ी प्रीति से भूमि-सुता सीता का अलंकार किया। तारा आदि सुग्रीव की पत्नियों ने भी सीता का शृंगार किया।

इतने में हनुमान् सादर गुह को लिवा लाया। वल्कल एवं जटाएँ धारण किये हुए गुह अपने सहस्रों धनुर्धर भीलों के साथ, गंधबिलाव, चमरी मृग की पूँछें, मत्त गज के सुन्दर दाँत एवं मोती, वराह के दाँत, बाँस के मोती, साँपों के शिरों पर रहनेवाली मणियाँ, शार्दूल के नख, भेरुण्ड के नख, तथा सिंह-नख, कृष्णाजिन (काला मृग-चर्म), गोरोचन, कस्तूरी, मुरलियाँ, मधु तथा विविध फल, काँवरियों में लिये हुए आया और इन सब उपहारों को राम के समक्ष रखकर उन्हें साष्टांग प्रणाम किया और हाथ जोड़ खड़ा रहा।

तब कृपानिधि राम ने उसपर अत्यन्त स्नेह-वर्षा करते हुए, अमृतोपम वचनों से उसका आदर करते हुए कहा--'हे तेजस्वी भीलराज, तुम्हारी भक्ति, महत्ता एवं साहस मैंने पवन-पुत्र के द्वारा सुना है। तुम भी हमारे अपने लोगों में से ही एक हो। अतः, तुम भी इन जटाओं तथा वल्कलों का त्याग करो और पूर्ववत् राजा के योग्य वस्त्र आदि धारण करो।' राम की आज्ञा के अनुसार भीलराज ने वल्कल एवं जटा-भार त्यागकर स्वच्छ जल में स्नान आदि से पवित्र हो राम की सेवा में पहुँचा। तब राम ने उसे दिव्य वस्त्राभूषण प्रदान किये। उसने बड़ी भक्ति से उन्हें धारण किया और राम की सेवा में संलग्न हुआ।

१६७. अयोध्या में प्रवेश

तब शत्रुघ्न के आदेश से प्रभु-भक्त सुमंत ने बहु-रत्नों की निर्मल प्रभा से विलसित सूर्यबिंब के समान उज्ज्वल रथ को ले आकर राघव के सामने उपस्थित किया। जब राम ने अपनी सभी माताओं को प्रणाम किया, तब माताओं ने ऊँचे स्वर में आशीर्वाद दिया। शुभ लग्न में राम अपने गुरु वसिष्ठ को आगे किये हुए रथ पर ऐसे आरूढ हुए, मानों अपनी विशाल कीर्त्ति को व्याप्त करते हुए जनता के मनोरथ पर आरूढ हो रहे हों। निरुपम भक्ति-तत्पर भरत, धवल आतपत्र सँभाले हुए थे और सुमित्रा-पुत्र विशाल व्यजन डुला रहे थे। पंच महावाद्यों की ध्वनि के साथ देव-दुंदुभियों का रव भी होने लगा; आकाश से देवता पुष्प-वृष्टि करने लगे और सारी प्रजा जयघोष करने लगी। राम के रथ के पीछे एक विशाल रथ पर आरूढ हो विभीषण जा रहा था। पार्श्व-भागों में सुग्रीव आदि वानर अनेक गजों पर बैठे हुए जा रहे थे। चतुरंगिणी सेना भी साथ चल रही थी। सभी बंधु-वर्ग रथ के साथ-साथ चल रहे थे। बंदी-मागध राम के सेतुबंधन आदि महान् कार्यों का उल्लेख करते हुए उनका कीर्त्ति-गान कर रहे थे। राजमाताएँ, तारा आदि स्त्रियाँ तथा जानकी रथों में आरूढ हो जा रही थीं। इस प्रकार, सभी लोग रामचन्द्र के साथ ही बड़े उल्लास से अयोध्या की ओर चल पड़े। पुरोहित जहाँ-तहाँ आशीर्वाद देने लगे। हाथियों के चिंघाड़, रथों की घड़घड़ाहट, अश्वों की हिनहिनाहट तथा भेरी-मृदंग आदि की ध्वनि चारों ओर व्याप्त होने लगी। ऐसी राजसी ठाट से अक्षीण कल्याण-स्वरूप, राम-भूपाल, नक्षत्रों से परिवृत चन्द्र की भाँति, दीप्तिमान् होते हुए अयोध्या में पहुँचे।

तब पल्लव-हस्त, पल्लव-अधर, पल्लवारुण चरण-पल्लवों से सुशोभित, सिंह-कटि-सम क्षीणकटि, चन्द्रमुखी, गजगामिनी, कमललोचनी, अलिनीलकुंतला, कमलगंधी, लतांगी सुंदरियों ने उमड़ते हुए आनन्द के साथ प्रासादों से, राम के पुण्य दर्शन करके, उनपर पुण्य पुष्पाक्षतों की वर्षा की। (राम के दर्शनार्थ) सौधों पर खड़ी हुई मीनलोचनी तरुणियाँ अपनी सहेलियों से कहने लगीं—'हे सखी, इस पुण्यधन (राम) ने बाल्यावस्था में जो कार्य किये, उन्हें सोचकर आश्चर्य होता है। अपने ऊपर आक्रमण करनेवाली ताड़का का वध किया, अनघ कौशिक की रक्षा की, शिव का धनुष तोड़ा और दर्पोद्धत परशुराम का गर्व-भंग किया। दुष्ट-दलन करनेवाले राम सहज शूर हैं, इसीलिए उन्होंने ऐसे महान् कार्य किये। बहुत ही छोटी अवस्था में वनवास की आज्ञा मिलते ही वनवास के लिए चल पड़े। वहाँ उनके सदृश और कौन जगत्-कल्याण के कार्य कर सकता था? सेतु को बाँधकर, रावण के साथ युद्ध करके उसका संहार किया और असंख्य राक्षसों का वध कर डाला। पिता की आज्ञा से वनवास के लिए जाते समय उनके प्रिय मुख की कान्ति कितनी भव्य थी। आज इतने महान् कार्यों की सिद्धि के पश्चात् लौटनेवाले इनके मुख की उज्ज्वल प्रभा, कितने ही प्रकार से दीप्त हो रही है। हे चंचलनेत्री, उस लक्ष्मण को देखो, जिस इन्द्रजीत ने इन्द्र को सहज ही जीतकर सुरों को भयभीत करके अपने बाहुबल का प्रदर्शन किया था, उसे इन्होंने युद्ध में मारा। वहाँ उस विभीषण को देखो, अपने दुष्ट अग्रज को छोड़-कर, यही आज लंकाधीश बना हुआ है। हे सखी, यह वालि का भाई सुग्रीव है, और यह

वालि-पुत्र अंगद है । (उस पवन-पुत्र को देखो) उस पुण्यात्मा ने समुद्र को पार करके सीता का पता लगाया, सहज ही सेतु को बँधवाकर राम को लंका में ले गया और युद्ध में गिरे हुए लक्ष्मण के लिए ओषधियों को लाकर उन्हें प्राण-प्रदान किया ।'

पुरजनों के ऐसे वार्त्तालापों के बीच सूर्यवंशज रामचन्द्र ने अन्तःपुर में प्रवेश किया । फिर, उन्होंने भरत-शत्रुघ्न को बुलाकर उन्हें दैत्यराज तथा वानर-नायकों के ठहरने के लिए आवश्यक प्रबन्ध करने का आदेश दिया और उन्हें विविध स्वादिष्ट भोजन आदि भिजवाये । इसके पश्चात् भरत ने सुग्रीव से कहा—'हे अनघ, हमने कल सूर्यवंश-मणि रामचन्द्र के राजतिलक करने का प्रबन्ध किया है । इसके लिए हमें चारों समुद्र का जल तथा गंगा आदि तीर्थों के जल चाहिए। उनको मँगवाने का प्रबन्ध करो । सूर्य-पुत्र ने परम हर्ष से गज, सुषेण, जांबवान् और शीघ्रगामी वेगदर्शी को बुलाकर उन्हें सुन्दर रत्न-कलश देकर तीर्थों का जल लाने के लिए भेजा । फिर नल, गवाक्ष, वायुपुत्र तथा ऋषभ को समुद्र का जल लाने के लिए भेजा । तब वानर-वीर अत्यन्त वेग से गये और दूसरे ही दिन प्रातःकाल तक आवश्यक तीर्थों के जल आदि ले आये । यह देखकर सब लोग आश्चर्यचकित रह गये ।

१६८. राजतिलक

भरत ने निर्मलचेता एवं सदाचार-सम्पन्न वसिष्ठ, गौतम, जाबालि, कश्यप, कण्व, वामदेव आदि मुनीश्वरों को तथा चतुर्वेद-पारंगत विबुधों को बुलाकर विनय एवं भक्ति के साथ उनसे कहा—'आप कृपया विधिवत् श्रीराम का राजतिलक कीजिए ।' तब वे मंगल-वाद्यों की ध्वनि के साथ जानकी तथा राम को बुला लाये और रमणीय रत्न-पीठ पर उन दोनों को आसीन किया और वेदमंत्र-पूर्वक पुण्य-सलिल से उनका अभिषेक किया । राम के सिर पर से गिरनेवाली पूर्ण जल की धारा देखने में बहुत ही रमणीय प्रतीत होती थी । देवताओं की स्तुतियों को प्राप्त करते हुए, पार्वती के साथ विलसित होनेवाले परमशिव की जटा से झरने-वाली गंगानदी की भाँति वह जल-धारा अत्यन्त कमनीय दीख रही थी । वह जल-धारा क्रमशः उनके चरणों से होकर पृथ्वी पर ऐसे गिरने लगी, मानों विष्णु के चरणों से जन्म लेकर पवित्र गंगा पृथ्वी पर उतर रही हो । इस प्रकार, उस समय रामचन्द्र स्वयं विष्णु तथा शिव की भाँति शोभायमान हुए । राज्याभिषिक्त राम उस समय अपने ललाट पर बँधे राजपट्ट के साथ, देखनेवालों को शिव की भाँति दीख रहे थे और ललाट पर बँधा हुआ पट्ट, ऐसा दीखता था मानों शिव की जटाओं में स्थित हो, अपनी सरस कान्ति से जटाओं को आलोकित करनेवाली शशिरेखा ही गंगा की लहरों के धक्के से फिसलकर ललाट पर आ गई हो । उस समय गरुड, खेचर, गंधर्व, सुर, सिद्ध तथा साध्य, आकाश से अत्यन्त उत्साह से जय-निनाद करने लगे । अप्सराएँ नृत्य करने लगीं । उस शुभ घड़ी में इन्द्र ने अनिल के द्वारा बड़े प्रेम से राम के पास पारिजात पुष्पों की माला तथा मोती के हार भेजे । राघव ने बड़े आदर के साथ उन्हें धारण किया । उस महान् उत्सव के समय, पृथ्वी शस्यश्यामला हो गई, वृक्ष पुष्पों एवं फलों से लद गये, पुष्पों में अद्वितीय सुगंध आ गई और दिशाएँ निर्मल हो गईं ।

तब रघुराम ने भूसुरों तथा महात्माओं को अनुपम भक्ति-युक्त हृदय से तीस करोड़ मुद्राएँ, एक लाख अश्व, एक लाख गज तथा एक लाख गायें दान दीं; सुग्रीव को प्रिय वचनों से

अपने निकट बुलाकर उसे ललित दिव्यांबर आभूषण तथा स्वर्ण-कुसुमों की माला दी; अंगद को अमूल्य रत्न-जटित स्वर्ण-अंगद (केयूर) दिये; पुण्यात्मा विभीषण को अमूल्य केयूर एवं मुकुट दिये। नील को लोल कान्तियों से विलसित नील मणियों का और नल को नव-रत्नों का सुन्दर हार दिया। उसके पश्चात् प्रसन्नचित्त हो राम भूपाल ने सभी वानरों को देख-देख-कर, एक को भी छोड़े विना, सबको दिव्य वस्त्र तथा आभूषण दिये। फिर, उन्होंने सीता को शरच्चन्द्र से भी उज्ज्वल कान्तियुक्त मणिमय हार दिया। किन्तु सीता ने उसे पहना नहीं, किन्तु वह उस उपहार को हाथ में लिये साभिप्राय दृष्टि से रामचन्द्र के मुख की ओर देखने लगीं। उनकी दृष्टि का अभिप्राय समझकर चतुर राम ने अनुमति दी, तो उन्होंने अपने कृपा-रस से सींचते हुए उस हार को हनुमान् के कंठ में पहना दिया। उस पवित्र हार को धारण कर वह पुण्यात्मा पवन-पुत्र, शरत्काल के बादलों से घिरे हुए मेरु पर्वत की भाँति सुशोभित होने लगा।

उसके पश्चात् वसिष्ठ की आज्ञा से राम अन्तःपुर में गये और क्रमशः अपनी सभी माताओं को प्रणाम किया। सभी माताओं ने बड़े स्नेह से उन्हें आशीर्वाद दिये। सीता ने भी अपनी सासों को बड़ी भक्ति से प्रणाम किया। तब उन्होंने सीता को हृदय से लगाकर आशीर्वाद दिया—'तुम लक्ष्मी के सदृश, सरस्वती की भाँति, पार्वती के समान पति-भक्ति, सुमति, सौभाग्य, तेज एवं अतुल कीर्त्ति से सम्पन्न होती हुई, सूर्य-चन्द्र के समान तेजस्वी पुत्रों की माता बनो।'

१६९. मित्रों को प्रीतिभोज देना

उसके पश्चात् रघुकुलाधिप बड़े उल्लास से भोजनालय में गये। उन्होंने मित्रों, बंधुओं, अनुजों तथा रवि-पुत्र आदि वानरों, विभीषण आदि दैत्य-वीरों एवं पवित्रात्मा गुह आदि लोगों को बड़े स्नेह से बुलवा भेजा और उन्हें उचित आसनों पर बिठाया। बड़े स्नेह से सच्चरित्र हनुमान् को अपने साथ बैठकर भोजन करने के लिए कहा। (जब सब लोग उचित आसनों पर उपस्थित हुए), सुन्दरियों ने प्रत्येक के आगे सोने के थाले लगाये और पायस, भात, दाल, मिष्टान्न, बढ़िया सूखा शाक, विविध स्वादिष्ट शाक, कई प्रकार की चटनियाँ शिखरन, अँचार, ताजा घी और मीठे फल आदि परोसे। तब सूर्यवंशाधीश ने दुगुनी प्रीति से हनुमान् से कहा—'हे अनिलकुमार, भोजन प्रारंभ करो।' इतना कहकर उन्होंने स्वयं एक कौर ग्रहण किया। तब हनुमान् ने अत्यन्त भक्ति से उस थाल को, जिसमें रामचन्द्र ने भोजन प्रारंभ किया था, उठाकर अपने सिर पर रख लिया और आनंदातिरेक से नृत्य करते हुए कहने लगा—'हे वानरो, आओ। राम के थाल का प्रसाद प्रचुर मात्रा में हम सब को मिल गया है।' यों कहते हुए उसने सामने के अगस्त्य वृक्ष पर चढ़कर उसके पत्ते तोड़ लिये और उन पत्तों में उस प्रसाद को रखकर बड़ी भक्ति से सभी वानर-वीरों को बाँटा। वे भी उस प्रसाद को ग्रहण करके अत्यन्त संतुष्ट हुए। यही कारण है कि उस दिन से अगस्त्य वृक्ष के पर्ण एकादशी (पारण) के लिए बहुत ही मुख्य माने जाते हैं।

रघुराम ने, अंजना-सुत (हनुमान्) की भक्ति से अत्यन्त संतुष्ट हो, दूसरा थाल मँगवा-कर भोजन तथा जल ग्रहण किया। तदनंतर उन्होंने सुगंध-पुष्पों की मालाओं से सब लोगों का

अलंकार किया और कर्पूर, तांबूल, चन्दन आदि सब को बाँट दिये। फिर, अत्यन्त प्रसन्नता एवं प्रीति से सकल भृत्य एवं अमात्यों के साथ राजसभा में बैठे।

उसी समय निद्रा देवी सौमित्र को अपने वश कर लेने का उपक्रम करने लगी। सभा में राम के समक्ष बैठे हुए लक्ष्मण यह देखकर जोर से हँसने लगे। तब राम, सीता, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान्, अंगद, नल, नील, शरभ, सन्नाद, तार आदि वानर तथा शत्रुघ्न, भरत आदि ने अपने-अपने कलंक की बात सोचकर अपने सिर झुका लिये। तब राम ने सब की यह दशा देखकर अपने अनुज से कहा--'हे लक्ष्मण, तुम अकारण ही क्यों हँसे? इसका क्या अभिप्राय है बताओ।'

तब लक्ष्मण ने भयभीत हो हाथ जोड़कर कहा--'हे देव, जब मैं आपकी सेवा करते हुए वन में आपके साथ रहने लगा, तब निद्रा मुझ पर अपना प्रभाव डालने लगी। तब मैंने उससे कहा कि तुम चौदह वर्ष तक मेरे पास मत आओ। मेरी बात मानकर वह चली गई। चौदह वर्ष समाप्त होते ही वह फिर लौटकर मेरे पास आई। हे देव, यही सोचकर मैं हँसा और यही मेरे हँसने का मूल कारण है। हे दयासमुद्र, मैं आपके चरणों की सौगंध खाकर कहता हूँ, इसके सिवा मेरे हँसने का और कोई कारण नहीं है।' तब सब लोगों के मन की शंकाएँ दूर हुईं और सभी प्रसन्न हुए।

करुणामूर्त्ति राम ने सब वानरों को देखकर कहा--'सभी कार्यों में सदा किसी भी धर्म की अपेक्षा किये विना, उनका आचरण करते रहो।' इतना कहकर उन्होंने उन्हें बड़े आदर से कई प्रकार के उपदेश देकर प्रिय वचनों से जाने की अनुमति दी। उसके पश्चात् उन्होंने अनिलकुमार, सुग्रीव आदि प्रमुख वानरों को तथा विभीषण को विदा किया। सुग्रीव आदि वानर प्रसन्नचित्त हो किष्किंधा लौट गये। विभीषण भी राक्षसों के साथ बड़े उत्साह से लंका लौट गया।

राम ने मनस्वी सौमित्र एवं भरत को युवराज बनाया और विशाल राज-वैभव का अनुभव करते हुए, सीता के साथ समस्त सुखों को भोगते हुए राज्य करने लगे। वे अपने पूर्वजों की अपेक्षा अधिक वेद-विहित धर्मों का आचरण करते हुए, कई प्रकार के अनुष्ठान आदि करते थे। उन्होंने अश्वमेध तथा वाजपेय आदि कई श्रेष्ठ यज्ञ करते हुए, देवता और भूसुरों की रक्षा करते हुए परिपूर्ण रूप से धर्मनिष्ठ हो, ग्यारह सहस्र वर्ष तक पृथ्वी का पालन किया। उनके राज्य में प्रजा को कोई दुःख नहीं था, अकाल और पाप कहीं नहीं था, सत्य तथा धर्म नष्ट नहीं होते थे और सभी जन परहित-रत थे।

इस प्रकार, आन्ध्र-भाषा का सम्राट्, काव्य, आगम आदि के प्रशंसनीय ज्ञाता, आचारवान्, अपार धैर्य-संपन्न, भूलोक-निधि, गोनबुद्ध भूपाल ने सुन्दर गुणों से सम्पन्न, धैर्यवान्, शत्रुओं के लिए भयंकर, महात्मा, महान् दयालु तथा ललित सद्गुणालंकार अपने पिता विट्ठल-नरेश के नाम पर, अनुपम तथा ललित शब्द एवं अर्थ से सम्पन्न, रामायण के इस युद्धकांड की, श्रेष्ठ अलंकार एवं सुन्दर भावों से परिपूर्ण बनाकर, इस प्रकार रचना की, कि वह इस संसार में आचन्द्रार्क अत्यन्त पूजनीय हो, शोभायमान होता रहे।

रसिकजनों के लिए आनन्ददायक, इस प्रसिद्ध तथा आर्ष आदि काव्य का पठन जो कोई करेगा, या जो इसका श्रवण करेगा, उसे सामवेद आदि विविध वेदों का आधार राम-नाम-रूपी चिन्तामणि के

द्वारा नव्य भोग, परोपकार-बुद्धि, उदात्त विचार, परिपूर्ण शक्ति, राज्य-सुख, निर्मल कीर्त्ति, नित्य सुख, धर्मनिष्ठा, दान-पुण्य में अनुरक्ति, चिरायु, स्वास्थ्य तथा अपार ऐश्वर्य प्राप्त होंगे । उनके पापों का क्षय होगा, उन्हें श्रेष्ठ पुत्र लाभ होगा, उनके शत्रु नष्ट होंगे और उन्हें धन-धान्य की समृद्धि सुलभ होगी । उनका जीवन निर्विघ्न रहेगा, घर में लावण्यवती स्त्रियों का अनुराग प्राप्त होगा। भाइयों की वृद्धि होगी तथा उनके साथ सुखमय सहजीवन का भाग्य मिलेगा । उनके घरों में सतत देव-पूजन तथा पितरों की तृप्ति होती रहेगी । यह रामायण मोक्ष-साधक, पाप-हारक, भव्य, दिव्य तथा शुभप्रद है । विधिवत् इस रामायण की पूजा करने से पुण्य प्राप्त होंगे । इसके रचयिताओं की श्रेष्ठ एवं शुभ उन्नति होगी तथा इन्द्र-लोक का निवास प्राप्त होगा । जबतक कुलपर्वत, समुद्र, सूर्य-चन्द्र, वेद, दिशाएँ, पृथ्वी तथा सभी भुवन सुशोभित रहेंगे, तबतक यह कथा अक्षय आनन्द-समूह का आगार बनी रहेगी ।

ओं तत्सत् !

परिषद् के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

१. हिन्दी-साहित्य का आदिकाल—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी। ३.२५।
२. यूरोपीय दर्शन—स्व० महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा। ३.२५।
३. हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल। ६.५०।
४. विश्वधर्म-दर्शन—श्रीसाँवलियाविहारीलाल वर्मा। १३.५०।
५. सार्थवाह—डॉ० मोतीचन्द्र। १०० ऐतिहासिक चित्र। ११.००।
६. वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा—डॉ० सत्यप्रकाश ८.००।
७. सन्तकवि दरिया : एक अनुशीलन—डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री। १४.००।
८. काव्यमीमांसा (राजशेखर-कृत)—अनुवादक स्व० पं० केदारनाथ शर्मा। ६.५०।
९. श्रीरामावतार शर्मा-निबन्धावली—स्व० महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा। ८.७५।
१०. प्राङ्मौर्य बिहार—डॉ० देवसहाय त्रिवेद। ७.२५।
११. गुप्तकालीन मुद्राएँ—स्व० डॉ० अनन्त सदाशिव अलतेकर। ६.५०।
१२. भोजपुरी भाषा और साहित्य—डॉ० उदयनारायण तिवारी १३.५०।
१३. राजकीय व्यय-प्रबन्ध के सिद्धांत—श्रीगोरखनाथ सिंह। १.५०।
१४. रबर—श्रीफूलदेवसहाय वर्मा, एम्० एस्-सी०। चित्र ६१। ७.५०।
१५. ग्रह-नक्षत्र—श्रीत्रिवेणीप्रसाद सिंह, आइ० सी० एस्०। ४.२५।
१६. नीहारिकाएँ—डॉ० गोरखप्रसाद (प्रयाग-विश्वविद्यालय)। ४.२५।
१७. हिन्दू धार्मिक कथाओं के भौतिक अर्थ—श्रीत्रिवेणीप्रसाद सिंह। ३.००।
१८. ईख और चीनी—श्रीफूलदेवसहाय वर्मा। चित्र १०४। १३.५०।
१९. शैवमत—मूल लेखक और अनुवादक डॉ० यदुवंशी। ८.००।
२०. मध्यदेश : ऐतिहासिक और सांस्कृतिक सिंहावलोकन—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा। कई रंगीन मानचित्र, ऐतिहासिक महत्त्व के कलापूर्ण चित्र। ७.००।
२१-२२. प्राचीन हस्तलिखित पोथियों का विवरण—(पहला और दूसरा खंड)। सं० डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री। प्रत्येक का मूल्य २.५०।
२३--२६. शिवपूजन-रचनावली—आचार्य शिवपूजन सहाय (४ भाग)। मूल्य क्रमशः ८.७५; ६.००; १०.००; ८.५०।
२७. राजनीति और दर्शन—डॉ० विश्वनाथप्रसाद वर्मा। १४.००।
२८. बौद्धधर्म-दर्शन—स्व० आचार्य नरेन्द्रदेव। पृष्ठ ८५०। १७.००।
२९-३०. मध्य एसिया का इतिहास—(दो खंडों में) महापंडित राहुल सांकृत्यायन। प्रथम खण्ड १२.२५। द्वितीय खण्ड ८.५०।
३१. दोहाकोश—मूल कवि : बौद्धसिद्ध सरहपाद। छायानुवादक—महापण्डित राहुल सांकृत्यायन। पृष्ठ ५५८। १३.२५।

३२. **हिन्दी को मराठी संतों की देन**—आचार्य विनयमोहन शर्मा। ११.२५।
३३. **रामभक्ति-साहित्य में मधुर उपासना**—डॉ० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'। १०.२५।
३४. **अध्यात्मयोग और चित्तविकलन**—स्वर्गीय वेङ्कटेश्वर शर्मा। ७.५०।
३५. **प्राचीन भारत की सांग्रामिकता**—पण्डित रामदीन पाण्डेय। ६.५०।
३६. **बाँसरी बज रही**—श्रीजगदीश त्रिगुणायत। ८.००।
३७. **चतुर्दशभाषा-निबन्धावली**—पृष्ठ १८४। ४.२५।
३८. **भारतीय कला को बिहार की देन**—डॉ० विन्ध्येश्वरीप्रसाद सिंह। पृष्ठ २१९। ७.५०।
३९. **भोजपुरी के कवि और काव्य**—श्रीदुर्गाशंकरप्रसाद सिंह। सं० डॉ० विश्वनाथ प्रसाद। पृष्ठ ३९९। ५.७५।
४०. **पेट्रोलियम**—श्रीफूलदेवसहाय वर्मा। चित्र ४०। ५.५०।
४१. **नील-पंछी**—(मूल-लेखक मारिस मेटरलिंक)। अनु० डॉ० कामिल बुल्के। २.५०।
४२. **लिंग्विस्टिक सर्वे आफ् मानभूम एण्ड सिंहभूम**। ४.५०।
४३. **षडदर्शन-रहस्य**—पं० रंगनाथ पाठक। ५.००।
४४. **जातक-कालीन भारतीय संस्कृति**—श्रीमोहनलाल महतो 'वियोगी'। ६.५०।
४५. **प्राकृत भाषाओं का व्याकरण**—मूल-ले० श्रीरिचर्ड पिशल। अनु० डॉ० हेमचन्द्र जोशी। पृष्ठ १००४। २०.००।
४६. **दक्खिनी हिन्दी-काव्यधारा**—महापण्डित राहुल सांकृत्यायन। ६.००।
४७. **भारतीय प्रतीक-विद्या**—डॉ० जनार्दन मिश्र। पृष्ठ ६१२। ११.००।
४८. **संतमत का सरभंग-सम्प्रदाय**—डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री। ५.५०।
४९. **कृषिकोश (प्रथम खण्ड)**—सं० डॉ० विश्वनाथ प्रसाद। ३.००।
५०. **कुँवरसिंह-अमरसिंह**—अनु० पं० छविनाथ पाण्डेय। ५.००।
५१. **मुद्रण-कला**—पं० छविनाथ पाण्डेय। ७.२५।
५२. **लोक-साहित्य : आकर-साहित्य-सूची**—आचार्य नलिनविलोचन शर्मा। ५० न० पै०।
५३. **लोककथा-कोश**—आचार्य नलिनविलोचन शर्मा। ३२ न० पै०।
५४. **लोकगाथा-परिचय**—आचार्य नलिनविलोचन शर्मा। २५ न० पै०।
५५. **बौद्धधर्म और बिहार**—पं० हवलदार त्रिपाठी 'सहृदय'। ७७ दुर्लभ चित्र। ८.००।
५६. **साहित्य का इतिहास-दर्शन**—आचार्य नलिनविलोचन शर्मा। ५.००।
५७. **मुहावरा-मीमांसा**—डॉ० ओम्प्रकाश गुप्त। ६.५०।
५८. **वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति**—म० म० पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी। ५.००।
५९. **पंचदश लोकभाषा-निबन्धावली**। ४.५०।
६०.६१. **प्राचीन हस्तलिखित पोथियों का विवरण (३-४ खण्ड)**—सं० आचार्य नलिनविलोचन शर्मा। १.२५। १.००।
६२. **हिन्दी-साहित्य और बिहार (बिहार का साहित्यिक इतिहास; सातवीं शती से अठारहवीं शती तक)**—सं० आचार्य शिवपूजन सहाय। ५.५०।
६३. **कथा-सरित्सागर**—मूल-लेखक महाकवि सोमदेवभट्ट। अनु० स्व० पं० केदारनाथ शर्मा सारस्वत। (प्रथम खण्ड; षष्ठ लम्बक तक) पृष्ठ ८४६। १०.००।

***उपर्युक्त प्रत्येक सजिल्द पुस्तक पर तिरंगा नयनाभिराम आवरण है।**